दयानन्द-यजुर्वेद भाष्य-भास्कर

महर्षि दयानन्द का वेद-भाष्य
व्याख्या सहित

॥ ओ३म् ॥

दयानन्द-यजुर्वेदभाष्य-भास्कर

(महर्षि दयानन्द के वेदभाष्य की अनुपम व्याख्या)

तृतीय भाग

(२१-३० अध्याय)

व्याख्याता

श्री पण्डित सुदर्शनदेव आचार्य, एम० ए०

प्रकाशकः

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट

४५५ खारी बावली, दिल्ली-६

फोन : २२६५४७, २६८३६०,

संवत् २०३१ वि०

सन् १९७४ ई०

सृष्टिसंवत् १९६०८५३०७५

प्रथम वार ११००

मूल्य २४)

मुद्रक—आर० के० प्रिन्टर्स, ८० डी, कमला नगर, दिल्ली-७

प्रकाशकीय

परमपिता परमात्मा की असीम कृपा से 'दयानन्द-यजुर्वेदभाष्य-भास्कर' का तीसरा भाग पाठकों को समर्पित करते हुए बड़ा हर्ष हो रहा है। वेद ईश्वरीय ज्ञान है। वेद का पढ़ना पढ़ाना व सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। यह बात सृष्टि की आदि से लेकर महर्षि दयानन्द पर्यन्त ऋषियों ने कही, जो यथार्थ है। किन्तु इस समय दुर्भाग्यवश संस्कृत का पठन पाठन उतना नहीं कि जो वेद मन्त्रार्थ को सीधा समझ सके। वेदों के परम्परागत अर्थों का भी प्रचलन नहीं रहा।

महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के पठन-पाठन विषय में वेदभाष्य पढ़ने की विधि लिखी है। जिसके अनुसार वर्त्तमान समय में सभी की योग्यता महर्षियों द्वारा किए भाष्यों को पढ़ने की तो है स्वयं वेदार्थ करने की नहीं। इसका विस्तार से संकेत हम पूर्व कई बार कर चुके हैं। वेद मन्त्रों का क्रमशः अर्थ इस समय केवल महर्षि दयानन्द का ही मिलता है। महर्षि दयानन्द ने अपने कार्यों में सबसे अधिक समय इस कार्य में लगाया। उन्होंने लिखा—'जिस समय मेरा यह वेदभाष्य बन जाएगा तो सूर्य का सा प्रकाश हो जाएगा जिसको मेंटने और झेंपने का किसी को सामर्थ्य न होगा।' ऐसे महत्त्वपूर्ण भाष्य का पठन पाठन बहुत ही न्यून हुआ। इसका कारण साधारण पाठकों के वेदभाष्य समझने में कठिनाई थी। इसका परिणाम यह हुआ कि अधूरे काल्पनिक मिथ्या दूषितार्थ व अनार्ष वेदभाष्यों का प्रचलन जोर पकड़ गया। वेद मन्त्रों के मनचाहे अर्थ निकालने की प्रवृत्ति प्रबल हुई। **इस 'भास्कर' की रचना में यह प्रयत्न किया गया है कि महर्षि का भाष्य हस्तामलकवत् समझ में आ जाए।**

इसके लिए अनेक कार्य इसमें किए गए हैं जिनका अनुभव स्वाध्यायशील पाठक स्वयं ही अनुभव करेंगे। उदाहरणार्थ—

सपदार्थान्वय— दयानन्द-यजुर्वेदभाष्य-भास्कर' का यह प्रधान कार्य है। इसमें महर्षि के मन्त्रान्वय पूर्वक पदार्थ को रखा गया है। इसमें अन्वय को प्रधान मानकर अन्वय में भी जो पदार्थ आया है उसे हमने=अर्थात् चिह्न के साथ पहले दिया है तत्पश्चात् पदार्थ नामक सन्दर्भ में मन्त्र-पद का जो अर्थ लिखा है सो दिया है। क्रिया पद के सहयोग से सन्दर्भ भी बनाये हैं। सपदार्थान्वय में महर्षि के मन्त्रान्वय को बड़ी सरलता से पढ़ा जा सकता है। अन्वय के क्रम को कहीं भी नहीं बदला है और अन्वय का एक पद भी नहीं छोड़ा है।

भाष्यसार—महर्षि के वेदभाष्य के मन्थन के उपरान्त जितने सार रूप तत्त्व हमें भाष्य में दृष्टिगोचर हुए उन्हें सार रूप में भाष्यसार नामक सन्दर्भ में प्रकाशित किया है। इसमें भी विषय को अधिक स्पष्ट करने के लिए ईश्वर, भौतिक अग्नि, विद्युत्, राजा विद्वान् आदि पृथक् पृथक्

सन्दर्भ बनाकर महर्षि के वेदभाष्य का नवनीत पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करने का पूर्ण प्रयास किया गया है।

भाषार्थ—'भास्कर' नामक इस व्याख्या में भाषा नवीन रूप से धारावाही पूर्णतया संस्कृत के अनुसार बनाई गई है। क्योंकि वेदभाष्य की भाषा पण्डितों ने बनाई जो स्थान-स्थान पर अशुद्ध है तथा धारावाही न होने से पाठकों की समझ में नहीं आती। परोपकारिणी सभा से छपे वेदभाष्य में पदार्थ और अन्वय को एक बनाकर भाषा नहीं बनाई गई जिससे उसकी भाषा ठीक नहीं बन पाई। हमने दोनों को बड़े पुरुषार्थ से सम्मिलित करके उसी के सामने भाषार्थ लिखा है जिससे भाषार्थ पूर्णतया संस्कृतानुसारी बना है। और पाठकों को पढ़ने में अत्यन्त सरलता रहती है।

वेदभाष्य में भाषार्थ ऋषि का नहीं

कुछ समय से पण्डितंमन्य कुछ विद्वानों ने यह निरर्थक विवाद खड़ा किया है कि वेदभाष्य में भाषार्थ ऋषि का ही है। जब कि कुछ मूल तथ्य ऐसे हैं जिनके होते यह बिलकुल स्वीकार नहीं किया जा सकता। **परोपकारिणी सभा से प्रकाशित वेदभाष्यों में भी अभी तक यही लिखा आया करता था कि—'इस वेदभाष्य की भाषा पण्डितों ने बनाई और संस्कृत को भी शोधा है।'** यह ठीक है कि वेदभाष्य के प्रारूप के विषय में स्वामी जी ने भूमिका के प्रारम्भ में लिखा है—

संस्कृतप्राकृताभ्यां यद्भाषाभ्यामन्वितं शुभम्।
मन्त्रार्थवर्णनं चात्र क्रियते कामधुङ् मया॥

इसके अनुसार वेदभाष्य की भाषा को भी ऋषि को ही बनाना चाहिए जैसा कि ऋग्वेद के प्रथम सूक्त के नमूने के रूप में जो भाष्य बना उसमें भाषार्थ भी महर्षि ने स्वयं ही किया। उसमें अन्वय पदार्थ और भावार्थ को मिला कर भाषार्थ धारावाही ही लिखा है। उस नमूने के अङ्क की भाष्य शैली वर्त्तमान भाष्य से सर्वथा भिन्न है। प्रतीत होता है कि उसके पश्चात् काल्पनिक वेदार्थों की समीक्षा के लिए जो कि उनका मुख्योद्देश्य था व समय अत्यल्प होने के कारण ऋषि ने अपनी भाष्य शैली को परिवर्त्तित किया। अतएव वर्त्तमान भाष्य का मूलरूप ऋषि ने भूमिका के अन्त में स्पष्ट लिखा है—

मन्त्रार्थभूमिका ह्यत्र मन्त्रस्तस्य पदानि च।
पदार्थान्वयभावार्थाः क्रमाद् बोध्याः विचक्षणैः॥

यहाँ भाषार्थ की चर्चा बिलकुल भी नहीं। स्पष्ट है कि भूमिका के अन्त तक ऋषि का स्वयं भाषार्थ लिखने का विचार नहीं रह गया था।

जिन अनेकों पत्रों से भाषार्थ पण्डितों का सिद्ध होता है वे सब पत्र वेदभाष्य के भाषार्थ सम्बन्धी हैं। उनका समय भूमिका के प्रकाशन के बाद का है। अतः यह भाषार्थ ऋषि का नहीं है यही विचार करके नवीन धारावाही भाषा बनाई गई है। ऋषि भाष्य में संस्कृत को कहीं भी संशोधित नहीं किया गया है।

कागज की महंगाई और अभाव इस कार्य की पूर्त्ति में वड़ा बाधक बना रहा परन्तु इस काय को प्रारम्भ कर दिया था। अतः इसको बड़े उत्साह और परिश्रम से पूर्ण किया गया है। आशा है चौथा भाग भी बहुत शीघ्र ही पाठकों को सुलभ हो जाएगा।

पं० सुदर्शनदेव जी आचार्य ने यह ग्रन्थ बड़े पुरुषार्थ और योग्यता से तैयार किया है। इससे महर्षि के वेदभाष्य को समझने में जो कठिनाई पाठकों के सामने थी वह अब सर्वथा दूर हो गई है। इस योग्यतापूर्ण प्रशंसनीय कार्य के लिए मैं श्री आचार्य जी का हार्दिक धन्यवाद करता हूँ।

ऋषि चरणों का अनुचर—
दीपचन्द आर्य
प्रधान—आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
२ एफ, कमला नगर, दिल्ली - ७

८-७-१९७४

॥ ओ३म् ॥

अथैकविंशतितमोऽध्याय आरभ्यते

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ॥ १ ॥

य० ३० । ३ ॥

शुनःशेपः । **वरुणः=विद्वान्** । निचृद् गायत्री । षड्जः ॥

अथ विद्वद्विषयमाह ॥

अब इक्कीसवें अध्याय का आरम्भ है । इसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों के विषय में कहा है ॥

इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युरा चके ॥ १ ॥

पदार्थः—(**इमम्**) (**मे**) मम (**वरुण**) उत्तमविद्वन् (**श्रुधि**) शृणु । अत्र संहितायामिति दीर्घः (**हवम्**) स्तवनम् (**अद्य**) अस्मिन्नहनि । अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (**च**) (**मृडय**) (**त्वाम्**) (**अवस्युः**) आत्मनोऽवइच्छुः (**आ**) (**चके**) कामये । **आचक इति कान्तिकर्मा ॥ निघं० २ । ६ ॥ १ ॥**

प्रमाणार्थ—(**आचके**) कामये । 'आचके' यह पद निघं० (२ । ६) में कान्ति-अर्थक क्रियाओं में पठित है ॥ २१ । १ ॥

अन्वयः—हे वरुण ! योऽवस्युरहमिमं त्वामाचके स त्वं मे हवं श्रुधि । अद्य मां मृडय च ॥ १ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे वरुण !** उत्तम-विद्वन् ! **योऽवस्युः** आत्मनोऽवइच्छुः **अहमिमं त्वामाचके** कामये, **स त्वं मे** मम **हवं** स्तवनं **श्रुधि** शृणु । **अद्य** अस्मिन्नहनि **मां मृडय च** ॥ २१ । १ ॥

भाषार्थ—हे (वरुण) उत्तम विद्वान् ! जो (अवस्युः) अपनी रक्षा का इच्छुक मैं विद्यार्थी--(इमम्) इस (त्वा) तुझको (आचके) चाहता हूँ, सो तू (मे) मेरी (हवम्) स्तुति को (श्रुधि) सुन, (च) और (अद्य) आज मुझे (मृडय) सुखी कर ॥ २१ । १ ॥

भावार्थः—सर्वैर्विद्याकामैरनूचानो विद्वान् कमनीयः,

भावार्थ--सब विद्या की कामना करने वाले मनुष्य अनूचान विद्वान् की इच्छा करें,

स विद्यार्थिनां स्वाध्यायं श्रुत्वा, सुपरीक्ष्य, सर्वानानन्दयेत् ॥ २१ । १ ॥

वह विद्यार्थियों के स्वाध्याय को सुन कर, अच्छे प्रकार परीक्षा करके सबको आनन्दित करे ॥ २१ । १ ॥

भा० पदार्थः—वरुण=अनूचान विद्वन् । अवस्युः=विद्याकामः । हवम्=स्वाध्यायम् ॥

भाष्यसार—**विद्वान् विषयक उपदेश**—विद्यार्थी लोग इस प्रकार प्रार्थना करें—हे उत्तम विद्वान् ! अपनी रक्षा का इच्छुक मैं विद्याभिलाषी आपकी कामना करता हूँ, सो तू मेरी स्तुति को सुन और मुझे आज अर्थात् शीघ्र ही सुखी कर ।

सब विद्याभिलाषी मनुष्य अनूचान नामक विद्वान् की कामना करें। वह भी विद्यार्थियों के स्वाध्याय को सुनकर और अच्छे प्रकार परीक्षा करके सब विद्यार्थियों को आनन्दित करे ॥ २१ । १ ॥

शुनःशेपः । **वरुणः=विद्वान्** । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वान् के विषय में फिर उपदेश किया है ॥

तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः ।
अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशꣳस मा न ऽ आयुः प्र मोषीः ॥ २ ॥

पदार्थः—(**तत्**) तम् (**त्वा**) त्वाम् (**यामि**) प्राप्नोमि (**ब्रह्मणा**) वेदविज्ञानेन (**वन्दमानः**) स्तुवन् (**तत्**) (**आ**) (**शास्ते**) इच्छति (**यजमानः**) (**हविर्भिः**) होतुं=दातुमर्हैः पदार्थैः (**अहेडमानः**) सत्क्रियमाणः (**वरुण**) अत्युत्तम (**इह**) अस्मिन् संसारे (**बोधि**) बोधय (**उरुशंस**) बहुभिः प्रशंसित (**मा**) (**नः**) अस्माकम् (**आयुः**) जीवनं विज्ञानं वा (**प्र**) (**मोषीः**) चोरयेः ॥ २ ॥

अन्वयः—हे वरुण विद्वज्जन ! यथा यजमानो हविर्भिस्तदाशास्ते तथा ब्रह्मणा वन्दमानोऽहं तत्त्वा यामि । हे उरुशंस ! मयाऽहेडमानस्त्वमिह न आयुर्मा प्रमोषीः शास्त्रं बोधि ॥ २ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे वरुण**=**विद्वज्जन** अत्युत्तम ! **यथा यजमानो हविर्भिः** होतुं=दातुमर्हैः पदार्थैः **तद् आ+शास्ते** इच्छति; **तथा ब्रह्मणा** वेदविज्ञानेन **वन्दमानः** स्तुवन् **अहं तत्** तं **त्वा** त्वां **यामि** प्राप्नोमि ।

हे उरुशंस ! बहुभिः प्रशंसित ! **मयाऽहेडमानः** सत्क्रियमाणः **त्वमिह** अस्मिन् संसारे **नः** अस्माकम् **आयुः** जीवनं विज्ञानं वा **मा प्रमोषीः** चोरयेः; **शास्त्रं बोधि** बोधय ॥ २१ । २ ॥

भाषार्थ—हे (वरुण) अत्युत्तम विद्वज्जन ! जैसे—(यजमानः) यजमान (हविर्भिः) देने योग्य पदार्थों से (तद्) तुझे (आ+शास्ते) चाहता है, वैसे (ब्रह्मणा) वेद-विज्ञान से (वन्दमानः) स्तुति करता हुआ मैं (तत्) उक्त गुणों से युक्त (त्वा) तुझको (यामि) प्राप्त करता हूँ ।

हे (उरुशंस) बहुत लोगों से प्रशंसित विद्वान् ! मुझ से (अहेडमानः) सत्कृत तू—(इह) इस संसार में (नः) हमारे (आयुः) जीवन वा विज्ञान को (मा, प्रमोषीः) मत चुरा, और शास्त्र को (बोधि) पढ़ा ॥ २१ । २ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यो यस्माद् विद्यामाप्नुयात् स तं पूर्वमभिवादयेत् ।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है ॥ जो जिससे विद्या प्राप्त करे वह उसे

प्रथम अभिवादन करे।

यो यस्याध्यापकः स्यात् स तस्मै विद्यादानाय कपटं न कुर्यात्, कदाचित् केनचिदाचार्यो नाऽव-मन्तव्यः ॥ २१ । २ ॥

जो जिसका अध्यापक हो वह उसे विद्या देने में कपट न करे, कभी कोई आचार्य का अपमान न करे ॥ २१ । २ ॥

भाष्यसार—१. **विद्वान् विषयक उपदेश**—विद्यार्थी लोग विद्वान् से इस प्रकार प्रार्थना करें—हे अत्युत्तम विद्वान्! जैसे यजमान देने योग्य पदार्थों से आपकी कामना करता हूँ वैसे वेद-विज्ञान की कामना से आपकी वन्दना करता हुआ मैं आपको प्राप्त हुआ हूँ। हे बहुत लोगों से प्रशंसित विद्वान्! मुझ से सत्कृत होकर तू इस संसार में हमारे जीवन वा विज्ञान को नष्ट मत कर अपितु शास्त्रों का बोध प्रदान कर।

जो विद्यार्थी जिस गुरु से विद्या प्राप्त करे उसको प्रथम अभिवादन करे। अध्यापक विद्या-दान में कपट न करे, कोई भी विद्यार्थी आचार्य का कभी अपमान न करे॥

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा वाचक 'इव' पद लुप्त है अतः वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि यजमान के समान विद्यार्थी विद्वान् की कामना करे॥ २१ । २ ॥

वामदेवः । **अग्निवरुणौ**=**विद्यार्थि-विद्वांसौ** । स्वराड्पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वान् के विषय में फिर उपदेश किया है ॥

त्वं नों ऽ अग्ने वरुंणस्य विद्वान् देवस्य हेडो ऽ अवं यासिसीष्ठाः ।
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुंचानो विश्वा द्वेषांᳬसि प्र मुंमुग्ध्यस्मत् ॥ ३ ॥

पदार्थः—(**त्वम्**) (**नः**) अस्माकम् (**अग्ने**) पावकवत्प्रकाशमान (**वरुणस्य**) श्रेष्ठस्य (**विद्वान्**) विद्यायुक्तः (**देवस्य**) विदुषः (**हेडः**) अनादरः (**अव**) निषेधे (**यासिसीष्ठाः**) यायाः=प्राप्नुयाः (**यजिष्ठः**) अतिशयेन यष्टा (**वह्नितमः**) अतिशयेन वोढा (**शोशुचानः**) शुद्धः=शोधयन् सन् (**विश्वा**) सर्वाणि (**द्वेषांसि**) द्वेषादियुक्तानि कर्माणि (**प्र**) (**मुमुग्धि**) प्रमोचय (**अस्मत्**) अस्माकं सकाशात् ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे अग्ने यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विद्वांस्त्वं वरुणस्य देवस्य यो हेडस्तमव यासिसीष्ठा मा कुर्याः । हे अग्ने ! त्वं यो नोऽस्माकं हेडो भवेत्तं मा स्वीकुर्याः । हे शिक्षक ! त्वमस्मद्विश्वा द्वेषांसि प्रमुमुग्धि ॥ ३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने** पावकवत् प्रकाशमान **यजिष्ठः** अतिशयेन यष्टा, **वह्नितमः** अतिशयेन वोढा, **शोशुचानः** शुद्धः=शोधयन् सन्, **विद्वान्** विद्यायुक्तः **त्वं वरुणस्य** श्रेष्ठस्य **देवस्य** विदुषः **यो हेडः** अनादरः **तमवयासिसीष्ठाः**=**मा कुर्याः** न यायाः=प्राप्नुयाः।

भाषार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान विद्या से प्रकाशमान, (यजिष्ठः) अत्यन्त यज्ञ करने वाले, (वह्नितमः) अत्यन्त सुख को प्राप्त करने वाले, (शोशुचानः) शुद्ध (विद्वान्) विद्वान्! तू—(वरुणस्य) श्रेष्ठ (देवस्य) विद्वान् का जो (हेडः) अनादर है उसे (अव-यासिसीष्ठाः) मत कर एवं प्राप्त न हो।

हे अग्ने ! पावकवत्प्रकाशमान ! **त्वं यो नः**=

हे (अग्ने) अग्नि के समान विद्या से प्रकाशमान

अस्माकं हेडः अनादरः **भवेत्तं मा स्वीकुर्याः ।**

हे शिक्षक ! त्वमस्मद् अस्माकं सकाशाद् **विश्वा** सर्वाणि **द्वेषांसि** द्वेषादियुक्तानि कर्माणि **प्रमुमुग्धि** प्रमोचय ॥ २१ । ३ ॥

भावार्थः—कोऽपि मनुष्यो विदुषामनादरं, कोऽपि विद्वान् विद्यार्थिनामसत्कारं न कुर्यात् ।

सर्वे मिलित्वेर्ष्याक्रोधादिदोषांस्त्यक्त्वा सर्वेषां सखायो भवेयुः ॥ २१ । ३ ॥

विद्वान् ! तू—जो (नः) हमारा (हेडः) अनादर है उसे मत स्वीकार कर ।

हे शिक्षक ! तू—(अस्मत्) हम से (विश्वा) सब (द्वेषांसि) द्वेष आदि से युक्त कर्मों को (प्रमुमुग्धि) मुक्त कर ॥ २१ । ३ ॥

भावार्थ—कोई भी मनुष्य विद्वानों का अनादर न करे, कोई भी विद्वान् विद्यार्थियों का असत्कार न करे ।

सब मिलकर, ईर्ष्या, क्रोध, आदि दोषों को छोड़ कर सबके मित्र हों ॥ २१ । ३ ॥

भा० पदार्थः—हेडः=असत्कारः । द्वेषांसि=ईर्ष्याक्रोधादिदोषान् ॥

भाष्यसार—विद्वान् विषयक उपदेश—विद्या से अग्नि के समान प्रकाशमान, अत्यन्त यज्ञ करने वाला, शुद्ध, विद्वान् श्रेष्ठ विद्वान् का अनादर न करे । अनादर होने पर भी विद्वान् पुरुष उसे स्वीकार न करे । शिक्षक लोग विद्यार्थियों को सब द्वेष आदि से युक्त कर्मों से मुक्त करें । जिससे कोई भी विद्यार्थी विद्वानों का अनादर न करे । विद्वान् लोग भी विद्यार्थियों का असत्कार न करें अपितु सब मिलकर, ईर्ष्या-क्रोध आदि दोषों को छोड़कर सबके मित्र बनें ॥ २१ । ३ ॥

वामदेवः । **अग्निवरुणौ=विद्यार्थि-विद्वांसौ** । स्वराड्पंक्तिः । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वान् के विषय में फिर उपदेश किया है ॥

स त्वं नो ऽ अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो ऽ अस्या ऽ उषसो व्युष्टौ ।

अव यक्ष्व नो वरुणꣳ रराणो वीहि मृडीकꣳ सुहवो न ऽ एधि ॥ ४ ॥

पदार्थः—(**सः**) (**त्वम्**) (**नः**) अस्माकम् (**अग्ने**) (**अवमः**) रक्षकः (**भव**) (**ऊती**) ऊत्या (**नेदिष्ठः**) अतिशयेनान्तिकः (**अस्याः**) (**उषसः**) प्रत्यूषवेलायाः (**व्युष्टौ**) विविधे दाहे (**अव**) (**यक्ष्व**) संगमय । अत्र बहुलं छन्दसीति विकरणाभावः (**नः**) अस्माकम् (**वरुणम्**) उत्तमम् (**रराणः**) रममाणः (**वीहि**) व्याप्नुहि (**मृडीकम्**) सुखप्रदम् (**सुहवः**) शोभनो हवो=दानं यस्य सः (**नः**) अस्मान् (**एधि**) भव ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे अग्ने ! यथाऽस्या उषसो व्युष्टौ वह्निर्नेदिष्ठो रक्षकश्च भवति तथा स त्वमूती नोऽवमो भव नो वरुणमवयक्ष्व रराणः सन् मृडीकं वीहि नः सुहव एधि ॥ ४ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे अग्ने ! यथा-ऽस्याः उषसः** प्रत्यूषवेलायाः **व्युष्टौ** विविधे दाहे **वह्निर्नेदिष्ठः** अतिशयेनान्तिकः **रक्षकश्च भवति, तथा स त्वमूती** ऊत्या **नः** अस्माकम् **अवमः** रक्षकः **भव । नः** अस्माकं **वरुणम्** उत्तमम् **अवयक्ष्व** सङ्ग-

भाषार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् ! जैसे—(अस्याः) इस (उषसः) प्रभात वेला के (व्युष्टौ) विविध प्रकाश में अग्नि (नेदिष्ठः) अत्यन्त निकट और रक्षक होती है वैसे तू—(ऊती) रक्षा करने से (नः) हमारा (अवमः) रक्षक (भव) बन । (नः)

मय । रराणः रममाणः सन् मृडीकं सुखप्रदं वीहि व्याप्नुहि । नः अस्मान् सुहवः शोभनो हवो=दानं यस्य सः एधि भव ॥ २१ । ४ ॥

हमारा (वरुणम्) उत्तम जन से (अवयक्ष्व) संग करा। और—(रराणः) रमण करता हुआ तू (मृडीकम्) सुखदायक विद्यादि पदार्थ (वीहि) प्रदान कर । और—(नः) हमें (सुहवः) उत्तम दान करने वाला (एधि) हो ॥ २१ । ४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यथा प्रातः समये सूर्यः सन्निहितः सन् सर्वान् सन्निहितान् मूर्त्तान् पदार्थान् व्याप्नोति, तथाऽन्तेवासिनां सन्निधावध्यापको भूत्वैतानात्मनो विद्यया व्याप्नुयात् ॥ २१ । ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है । जैसे प्रातःकाल सूर्य निकट होकर सब समीपस्थ मूर्त्त पदार्थों को व्याप्त करता है, वैसे अध्यापक शिष्यों के समीप होकर इन्हें अपनी विद्या से व्याप्त करे ॥ २१ । ४ ॥

भा० पदार्थः—उषसः=प्रातःसमये । नेदिष्ठः=सन्निहितः । ऊती=विद्यया ॥

भाष्यसार—१. **विद्वान् विषयक उपदेश**—विद्यार्थी विद्वान् से प्रार्थना करें—हे विद्वान् ! जैसे प्रभात वेला के विविध प्रकाश में अग्नि अत्यन्त निकट और रक्षक है वैसे तू रक्षा करके हमारा रक्षक बन । तात्पर्य यह है कि जैसे प्रातःकाल सूर्य निकट होकर सब समीपस्थ मूर्त्त पदार्थों को व्याप्त कर लेता है वैसे तू हम अन्तेवासियों के समीप होकर हमें अपनी विद्या से व्याप्त कर । हमें उत्तम पुरुषों का संग करा । हममें रमण करता हुआ सुखदायक विद्या आदि पदार्थ प्रदान कर । हमें शिक्षा आदि सुन्दर पदार्थों का दान करने वाला हो ॥

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचकलुप्तोपमा अलंकार है उपमा यह है कि विद्वान् सूर्य के समान शिष्यों को विद्या के प्रकाश से व्याप्त करे ॥२१।४॥

वामदेवः । **आदित्याः**=पृथिवी । निचृत्त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथ पृथिव्या विषयमाह ॥

अब पृथिवी विषय का उपदेश किया जाता है ॥

महीमू षु मातरꣳ सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हुवेम ।
तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूचीꣳ सुशर्माणमदितिꣳ सुप्रणीतिम् ॥ ५ ॥

पदार्थः—(**महीम्**) भूमिम् (**उ**) उत्तमे (**सु**) शोभने (**मातरम्**) मातरमिव वर्त्तमानाम् (**सुव्रतानाम्**) शोभनानि व्रतानि=सत्याचरणानि येषां तेषाम् (**ऋतस्य**) प्राप्तसत्यस्य (**पत्नीम्**) स्त्रीवद्वर्त्तमानाम् (**अवसे**) रक्षणाद्याय (**हुवेम**) आदद्याम (**तुविक्षत्राम्**) तुविर्बहु क्षत्रं=धनं यस्यां ताम् (**अजरन्तीम्**) वयोहानिरहिताम् (**उरूचीम्**) या उरूणि=बहून्यञ्चति=प्राप्नोति ताम् (**सुशर्माणम्**) शोभनानि शर्माणि=गृहाणि यस्यास्ताम् (**अदितिम्**) अखण्डिताम् (**सुप्रणीतिम्**) शोभनाः=प्रकृष्टाः नीतयो यस्यां ताम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा वयं मातरमिव सुव्रतानामृतस्य पत्नीं तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूचीं सुशर्माणं सुप्रणीतिमु महीमदितिमवसे सुहुवेम तथा यूयमपि गृह्णीत ॥ ५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! यथा

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम (मातम्)

वयं मातरं मातरम् **इव सुव्रतानां** शोभनानि व्रतानि=सत्याचरणानि येषां तेषाम् **ऋतस्य** प्राप्तसत्यस्य **पत्नीं** स्त्रीवद् वर्त्तमानां **तुविक्षत्रां** तुविर्बहु क्षत्रं=धनं यस्यां ताम् **अजरन्तीं** वयोहानिरहिताम् **उरूचीं** या उरूणि=बहून्यञ्चति=प्राप्नोति तां **सुशर्माणं** शोभनानि शर्माणि=गृहाणि यस्यास्तां **सुप्रणीतिं** शोभनाः=प्रकृष्टा नीतयो यस्यां ताम् **उ** उत्तमां **महीं** भूमिम् **अदितिम्** अखण्डिताम् **अवसे** रक्षणाद्याय **सुहुवेम** शोभनमादद्याम ॥ २१ । ५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा माताऽपत्यानि, पतिव्रता पतिं च पालयति तथेयं भूमिः सर्वान् रक्षति ॥ २१ । ५ ॥

माता के समान, (सुव्रतानाम्) उत्तम सत्याचरण रूप व्रतों वालों में (ऋतस्य) सत्य को प्राप्त हुए पुरुष की (पत्नीम्) पत्नी के समान, (तुविक्षत्राम्) बहुत धन वाली, (अजरन्तीम्) जरा से रहित, (उरूचीम्) बहुत पदार्थों को प्राप्त कराने वाली, (सुशर्माणम्) सुन्दर घरों वाली, (सुप्रणीतिम्) राजा की उत्तम नीतियों से युक्त, (उ) उत्तम, (अदितिम्) अखण्डित (महीम्) भूमि के (अवसे) रक्षा आदि के लिए (सुहुवेम) अच्छे प्रकार ग्रहण करते हैं वैसे तुम भी ग्रहण करो ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है ॥ जैसे माता बच्चों का और पतिव्रता स्त्री पति का पालन करती है वैसे यह भूमि. सब की रक्षा करती है ॥ २१ । ५ ॥

भाष्यसार—१. **पृथिवी विषयक उपदेश**—जैसे माता बच्चों का पालन करती है, सत्याचरण आदि व्रतों के पालन करने वालों में सत्य को प्राप्त हुए पुरुष की पतिव्रता पत्नी पति का पालन करती है वैसे पृथिवी सब का पालन करती है। यह भूमि बहुत धन वाली है, जरा से रहित है, बहुत पदार्थों को प्राप्त कराने वाली है, सुन्दर घरों वाली है, उत्तम नीतियों वाली है अर्थात् इस पर नीतिमान् राजा शासन करते हैं, स्वयं उत्तम है, अखण्डित है। विद्वान् लोग रक्षा आदि के लिए इसे ग्रहण करते हैं, इसके अधिपति बनते हैं।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है माता आदि के समान भूमि सब का पालन करती है ॥ २१ । ५ ॥

गयप्लातः। **अदितिः**=**नौः (जलयानम्)**। भुरिक् त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

अथ जलयानविषयमाह ॥

अब जलयान विषय का उपदेश किया जाता है ॥

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसꣳ सुशर्माणमदितिꣳ सुप्रणीतिम्।
दैवीं नावꣳ स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥ ६ ॥

पदार्थः—(**सुत्रामाणम्**) शोभनानि त्रामाणि=रक्षणादीनि यस्यास्ताम् (**पृथिवीम्**) विस्तीर्णाम् (**द्याम्**) सुप्रकाशम् (**अनेहसम्**) अहन्तव्याम्। **नञि हन एह च ॥ उ० ५१० ४ । २२४ ॥** (**सुशर्माणम्**) सुशोभितगृहाम् (**अदितिम्**) (**सुप्रणीतिम्**) बहुराजप्रजाऽखण्डितनीतियुक्ताम् (**दैवीम्**) देवानामाप्तानां विदुषामियं ताम् (**नावम्**) नोदयन्ति=प्रेरयन्ति यया ताम् (**स्वरित्राम्**) शोभनान्यरित्राणि यस्यां ताम् (**अनागसम्**) अविद्यमानाऽपराधाम् (**अस्रवन्तीम्**) अच्छिद्राम् (**आ**) (**रुहेम**) अधितिष्ठेम। **अत्र संहितायामिति दीर्घः** (**स्वस्तये**) सुखाय ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे शिल्पिनः ! यथा वयं स्वस्तये सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीं दैवीं नावमारुहेम तथा यूयमिमामारोहत ॥ ६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे शिल्पिनः ! **यथा वयं स्वस्तये** सुखाय **सुत्रामाणं** शोभनानि त्रामाणि=रक्षणादीनि यस्यास्तां **पृथिवीं** विस्तीर्णां, **द्यां** सुप्रकाशाम्, **अनेहसम्** अहन्तव्यां, **सुशर्माणं** सुशोभितगृहाम्, **अदितिं, सुप्रणीतिं** बहुराजप्रजाऽखण्डितनीतियुक्तां, **स्वरित्रां** शोभनान्यरित्राणि यस्यां ताम्, **अनागसम्** अविद्यमानाऽपराधाम्, **अस्रवन्तीम्** अच्छिद्रां, **दैवीं** देवानामाप्तानां विदुषामियं तां, **नावं** नोदयन्ति=प्रेरयन्ति यया ताम् **आरुहेम** अधितिष्ठेम; **तथा यूयमिमामारोहत** ॥ २१ । ६ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्या यस्यां बहूनि गृहाणि, बहूनि साधनानि, बहूनि रक्षणानि, बहुविधः प्रकाशः, बहवो विद्वांसश्च स्युस्तस्यामच्छिद्रायां महत्यां नावि स्थित्वा, समुद्रादिजलाशयेष्वारपारौ देशान्तरद्वीपान्तरौ च गत्वाऽऽगत्य भूगोलस्थान् देशान् द्वीपांश्च विज्ञाय श्रीमन्तो भवन्तु ॥ २१ । ६ ॥

भाषार्थ—हे शिल्पी लोगो ! जैसे हम—(स्वस्तये) सुख के लिए (सुत्रामाणम्) उत्तम रक्षादि के साधनों से युक्त, (पृथिवीम्) विस्तृत, (द्याम्) बहुत प्रकार के प्रकाश वाली, (अनेहसम्) हिंसा से रहित, (सुशर्माणम्) सुशोभित घरों वाली, (अदितिम्) अखण्डित, (सुप्रणीतिम्) बहुत राजा और प्रजा जनों की अखण्डित नीति से युक्त, (स्वरित्राम्) उत्तम अरित्र=चप्पुओं वाली, (अनागसम्) दोष रहित, (अस्रवन्तीम्) छिद्ररहित, (दैवीम्) आप्त विद्वानों से युक्त (नावम्) नौका में (आरुहेम) बैठते हैं वैसे तुम भी इसमें बैठो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है ॥ मनुष्य—जिस नौका में बहुत घर, बहुत साधन, नाना रक्षाएँ, बहुत प्रकार का प्रकाश और बहुत विद्वान् हों उस छिद्र रहित महान् नौका में बैठकर, समुद्र आदि जलाशयों में देशान्तर और द्वीपान्तर के आर-पार जाकर तथा आकर भूगोल के देशों और द्वीपों को जानकर श्रीमान् बनें ॥२१।६॥

भा० पदार्थः—सुशर्माणम्=बहूनि गृहाणि यस्यां ताम् । सुत्रामाणम्=बहूनि साधनानि, बहूनि रक्षणानि यस्यां ताम् । द्याम्=बहुविधः प्रकाशो यस्यां ताम् ! दैवीम्=बहवो विद्वांसो यस्यां ताम् । पृथिवीम्=महतीम् ॥

भाष्यसार—**१. जलयान विषयक उपदेश**—विद्वान् लोग सुख-प्राप्ति के लिए बहुत रक्षा आदि साधनों से युक्त, विस्तृत, नाना प्रकार के प्रकाश से युक्त, हिंसा से रहित, बहुत सुशोभित घरों वाली, अखण्डित, बहुत से राजा और प्रजा जनों की अखण्डित नीति से युक्त, उत्तम अरित्र=चप्पुओं वाली, अपराध=दोष रहित, छिद्र रहित आप्त विद्वानों से युक्त नौका में बैठें अर्थात्—उक्त नौका में बैठकर समुद्र आदि जलाशयों में विद्यमान देशान्तर और द्वीपान्तर में यातायात करके भूगोल के देशों और द्वीपों को जानकर श्रीमान् बनें ।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि पद लुप्त है । अतः वाचकलुप्तोपमा अलंकार है । उपमा यह है कि विद्वानों के समान शिल्पी लोग नौका में बैठें ॥ २१ । ६ ॥

गयप्लातः । **स्वर्ग्या नौः**=महती नौः । यवमध्या गायत्री । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

जलयान विषय का फिर उपदेश किया है ॥

सुनावमा रुहेयमस्रवन्तीमनागसम् । शतारित्राᳬं स्वस्तये ॥ ७ ॥

पदार्थः—(**सुनावम्**) शोभनां=सुनिर्मितां नावम् (**आ**) (**रुहेयम्**) (**अस्रवन्तीम्**)

छिद्रादिदोषरहिताम् (**अनागसम्**) निर्माणदोषरहिताम् (**शतारित्राम्**) शतमरित्राणि यस्यास्ताम् (**स्वस्तये**) सुखाय ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथाऽहं स्वस्तयेऽस्रवन्तीमनागसं शतारित्रां सुनावमारुहेयं तथास्यां यूयमप्यारोहत ॥ ७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **यथाऽहं स्वस्तये** सुखाय **अस्रवन्तीं** छिद्रादिदोषरहिताम्, **अनागसं** निर्माणदोषरहितां, **शतारित्रां** शतमरित्राणि यस्यास्तां **सुनावं** शोभनां=सुनिर्मितां नावम् **आरुहेयं; तथास्यां यूयमप्यारोहत** ॥ २१ । ७ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं—(स्वस्तये) सुख के लिए (अस्रवन्तीम्) छिद्र आदि दोषों से रहित (अनागसम्) निर्माण दोषों से रहित, (शतारित्राम्) बहुत अरित्र=चप्पुओं वाली (सुनावम्) उत्तम नौका में (आरुहेयम्) बैठता हूँ, वैसे इसमें तुम भी बैठो ॥ २१ । ७ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । मनुष्या महतीर्नावः सुपरीक्ष्य तासु स्थित्वा समुद्रादिपारावारौ गच्छेयुः ।

यत्र बहून्यरित्रादीनि स्युस्ता नावोऽतीवोत्तमाः स्युः ॥ २१ । ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ मनुष्य—बड़ी नौकाओं की अच्छे प्रकार परीक्षा करके उनमें बैठकर समुद्र आदि के आर-पार जावें ।

जिसमें बहुत अरित्र (चप्पु) आदि होते हैं वे नौकाएं अति उत्तम होती हैं ॥ २१ । ७ ॥

भा० पदार्थः—अनागसम्=सुपरीक्षिताम् । शतारित्राम्=बहून्यरित्रादीनि यस्यास्ताम् ॥

भाष्यसार—१. **जलयान विषयक उपदेश**—विद्वान् लोग सुख की प्राप्ति के लिए छिद्र आदि तथा निर्माण सम्बन्धी दोष से रहित, बहुत अरित्र (चप्पु) आदि अङ्गों से युक्त अति उत्तम बड़ी-बड़ी नौकाओं की अच्छे प्रकार परीक्षा करके उनमें बैठकर समुद्र आदि के आर-पार जावें ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि विद्वान् के समान सब मनुष्य नौकाओं में बैठें ॥ २१ । ७ ॥

विश्वामित्रः । **मित्रावरुणौ=प्राणोदानाविव शिल्पिनौ** । निचृद् गायत्री । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

जलयान विषय का फिर उपदेश किया है ॥

आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् । मध्वा रजांꣳसि सुक्रतू ॥ ८ ॥

पदार्थः—(**आ**) समन्तात् (**नः**) अस्माकम् (**मित्रावरुणा**) प्राणोदानाविव (**घृतैः**) उदकैः (**गव्यूतिम्**) क्रोशद्वयम् (**उक्षतम्**) सिंचतम् (**मध्वा**) मधुना=जलेन (**रजांसि**) लोकान् (**सुक्रतू**) शोभनाः प्रज्ञाः कर्माणि वा ययोस्तौ ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे मित्रावरुणा प्राणोदानवद्वर्त्तमानौ सुक्रतू शिल्पिनौ ! युवां घृतैर्नो गव्यूतिमुक्षतमा मध्वा रजांस्युक्षतम् ॥ ८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मित्रावरुणा**=

भाषार्थ—हे (मित्रावरुणा) प्राण और

प्राणोदानवद्वर्त्तमानौ प्राणोदानाविव **सुक्रतू**= **शिल्पिनौ** शोभनाः प्रज्ञाः कर्माणि वा ययोस्तौ ! **युवां—घृतैः** उदकैः **नः** अस्माकं **गव्यूतिं** क्रोशद्वयम् **उक्षतं** सिञ्चतम्, **आ** समन्तात् **मध्वा** मधुना= जलेन **रजांसि** लोकान् **उक्षतम्** सिञ्चतम् ॥२१।८॥

उदान के समान (सुक्रतू) उत्तम प्रज्ञा वा कर्म वाले दो शिल्पी लोगो ! तुम—(घृतैः) जलों से (नः) हमारे (गव्यूतिम्) दो कोस तक अधोमार्ग को (उक्षतम्) सींचो, और (आ) सब ओर (मध्वा) जल से (रजांसि) लोकों अर्थात् ऊर्ध्व-मार्गों को (उक्षतम्) सींचो ॥ २१ । ८ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यदि शिल्पिनो यानानि जलादिना चालयेयुस्तर्हि त ऊर्ध्वाऽधोमार्गेषु गन्तुं शक्नुयुः ॥ २१ । ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है ॥ यदि शिल्पी लोग यानों को जल आदि से चलावें तो वे ऊपर और नीचे के मार्गों में गति कर सकते हैं ॥ २१ । ८ ॥

आ० पदार्थः—घृतैः=जलादिना । गव्यूतिम्=अधोमार्गम् । रजांसि=ऊर्ध्वमार्गान् ।

भाष्यसार—१. **जलयान विषयक उपदेश**—दो शिल्पी लोग प्राण और उदान के समान मिलकर कार्य करने वाले तथा उत्तम बुद्धि और कर्म वाले हों। वे जलों से दो कोस तक भू-मार्गों को तथा आकाश के ऊर्ध्व-मार्गों को भी सींचें। उनमें जल आदि से यानों को चलावें।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि पद लुप्त है। अतः वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि प्राण और उदान के समान दो शिल्पी जन मिलकर कार्य करें ॥२१।८॥

वसिष्ठः । **अग्निः=अध्यापक उपदेष्टा च** । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनर्विद्वद्विषयमाह ॥

विद्वानों के विषय में फिर उपदेश किया है ॥

प्र बाहवा सिसृतं जीवसे न ऽ आ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन ।
आ मा जने श्रवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ॥ ९ ॥

पदार्थः—(प्र) (**बाहवा**) बाहू इव। अत्र सुपां सुलुगित्याकारादेशः (**सिसृतम्**) प्राप्नुतम् (**जीवसे**) जीवितुम् (**नः**) अस्मान् (**आ**) (**नः**) अस्माकम् (**गव्यूतिम्**) क्रोशयुग्मम् (**उक्षतम्**) सिञ्चेताम् (**घृतेन**) जलेन (**आ**) (**मा**) माम् (**जने**) (**श्रवयतम्**) श्रावयतम् । वृद्ध्यभावश्छान्दसः (**युवाना**) युवानौ= मिश्रितामिश्रितयोः कर्त्तारौ (**श्रुतम्**) शृणुतम् (**मे**) मम (**मित्रावरुणा**) मित्रश्च वरुणश्च तौ (**हवा**) हवानि=हवनानि (**इमा**) इमानि ॥ ९ ॥

अन्वयः—हे मित्रावरुणा बाहवा युवाना युवां नो जीवसे मा प्रसिसृतं घृतेन नो गव्यूतिमोक्षतं नानाकीर्तिमाश्रवयतं मे जन इमा हवा श्रुतम् ॥ ९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मित्रावरुणा** मित्रश्च वरुणश्च तौ **बाहवा** बाहू इव **युवाना**= मिश्रितामिश्रितयोः कर्त्तारौ ! **युवां नः** अस्मान् **जीवसे** जीवितुं **मा** मां **प्रसिसृतं** प्राप्नुतम्, **घृतेन** जलेन **नः** अस्माकं **गव्यूतिं** क्रोशयुग्मम् **आ-उक्षतं**

भाषार्थ—हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण (बाहवा) दो बाहुओं के तुल्य (युवाना) संयुक्त और वियुक्त करने वाले अध्यापक और उपदेशक ! तुम दोनों—(नः) हमारे (जीवसे) जीवन के लिए (मा) मुझे (प्रसिसृतम्) प्राप्त

सिञ्चेताम्, **नाना कीर्तिमाश्रवयतं** श्रावयतां, **मे** मम **जन इमा** इमानि **हवा** हवानि=हवनानि **श्रुतं** शृणुतम् ॥ २१ । ६ ॥

होओ, (घृतेन) जल से (नः) हमारे (गव्यूतिम्) दो कोस पर्यन्त मार्ग को (आ-उक्षतम्) सींचो, नाना कीर्ति को (आश्रावयतम्) सुनाओ, (मे) मेरे (जने) मनुष्य गण में (इमा) इन (हवा) संवादों को (श्रुतम्) सुनो ॥ २१ । ६ ॥

भावार्थः—अध्यापकोपदेष्टारौ प्राणोदानवत् सर्वेषां जीवनहेतू भवेताम्,

विद्योपदेशाभ्यां सर्वेषामात्मनो जलेन वृक्षानिव सिञ्चेताम् ॥ २१ । ६ ॥

भावार्थ—अध्यापक और उपदेशक दोनों प्राण तथा उदान के समान सबके जीवन के कारण होवें।

विद्या और उपदेश से सबके आत्माओं को जल से वृक्षों के समान सींचे ॥ २१ । ६ ॥

भा० पदार्थः—मित्रावरुणा=प्राणोदानवत् अध्यापकोपदेष्टारौ । जीवसे=जीवनहेतवे ।

भाष्यसार—**विद्वानों के लिए उपदेश**—अध्यापक और उपदेशक दोनों प्राण (मित्र) और उदान (वरुण) के समान सबके जीवन का कारण बनें, सबको जीवन सम्बन्धी शिक्षा दें । भुजाओं के समान बलवान् हों । श्रेष्ठों को संयुक्त करें और दुष्टों को वियुक्त करने वाले हों । जीवन सम्बन्धी शिक्षा के लिए मनुष्यों के पास जावें । जैसे जल से दो कोस पर्यन्त वृक्षों को सींचते हैं वैसे विद्या और उपदेश से सबकी आत्माओं को सींचें । महापुरुषों की नाना कीर्ति को सुनावें । मनुष्य समाज में बैठकर उनकी बातें भी सुनें ॥ २१ । ६ ॥

आत्रेयः । **ऋत्विजः**=**विद्वांसः** । भुरिक् पंक्तिः । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वानों के विषय में फिर उपदेश किया है ॥

शन्नो॑ भवन्तु वा॒जिनो॒ हवे॑षु दे॒वता॑ता मि॒तद्र॑वः स्व॒र्काः ।
ज॒म्भय॒न्तोऽहिं॒ वृक॒ꣳ रक्षा॑ꣳसि॒ सने॑म्य॒स्मद्यु॑यव॒न्नमी॑वाः ॥ १० ॥

पदार्थः—(**शम्**) सुखकारकाः (**नः**) अस्मभ्यम् (**भवन्तु**) (**वाजिनः**) प्रशस्तविज्ञानयुक्ताः (**हवेषु**) दानाऽऽदानेषु (**देवताता**) देवता=विद्वांस इव वर्त्तमानाः (**मितद्रवः**) ये मितं द्रवन्ति ते (**स्वर्काः**) सुष्ठ्वर्काः=अन्नानि वज्रो वा येषान्ते (**जम्भयन्तः**) विनाशयन्तः (**अहिम्**) मेघं सूर्य इव (**वृकम्**) स्तेनम् (**रक्षांसि**) दुष्टान् जीवान् (**सनेमि**) सनातनं=पुराणम् । **सनेमि इति पुराणनाम ॥ निघं० ३ । २७ ॥** (**अस्मत्**) (**युयवन्**) पृथक्कुर्वन्तु (**अमीवाः**) रोगान् ॥ १० ॥

प्रमाणार्थ—(**सनेमि**) यह शब्द पुराणनामों में है ।

अन्वयः—हे स्वर्का मितद्रवो देवताता वाजिनो हवेषु विद्वांसो भवन्तोऽहिं सूर्य इव वृकं रक्षांसि च जम्भयन्तो नः सनेमि शं भवन्तु । अस्मदमीवा युयवन् ॥ १० ॥

सपदार्थान्वयः—हे **स्वर्काः** सुष्ठ्वर्का=अन्नानि वज्रो वा येषान्ते, **मितद्रवः** ये मितं द्रवन्ति ते, **देवताता** देवता=विद्वांस इव वर्त्तमानाः,

भाषार्थ—हे (स्वर्काः) उत्तम अन्न वा वज्र वाले, (मितद्रवः) परिमित गति वाले, देवताता=देवता=विद्वानों के समान वर्ताव करने वाले,

वाजिनः प्रशस्तविज्ञानयुक्ताः, **हवेषु** दानाऽऽदानेषु **विद्वांसो ! भवन्तोऽहिं मेघं सूर्य इव वृकं** स्तेनं, **रक्षांसि** दुष्टान् जीवान् **च जम्भयन्तः** विनाशयन्तः **नः** अस्मभ्यं **सनेमि** सनातनं=पुराणं **शं** सुखकारकाः **भवन्तु; अस्मदमीवाः** रोगान् **युयवन्** पृथक्कुर्वन्तु ॥ २१ । १० ॥

(वाजिनः) प्रशस्त विज्ञान से युक्त विद्वान् मनुष्यो ! आप—(हवेषु) देन-लेन में (अहिम्) जैसे सूर्य मेघ का हनन करता है वैसे (वृकम्) चोर और (रक्षांसि) दुष्ट जीवों का (जम्भयन्तः) विनाश करते हुए (नः) हमारे लिए (सनेमि) सदा (शम्) सुखकारक होओ। (अस्मत्) हमसे (अमीवाः) रोगों को (युयवन्) पृथक् करो ॥ २१ । १० ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा सूर्योऽन्धकारं निवर्त्य सर्वान् सुखयति तथा विद्वांसः प्राणिनां सर्वान् शरीरात्मरोगान् निवार्यानन्दयेयुः ॥ २१ । १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है ॥ जैसे सूर्य अन्धकार को हटाकर सबको सुखी करता है वैसे विद्वान् लोग प्राणियों के सब शरीर और आत्मा के रोगों को हटाकर आनन्दित करें ॥ २१ । १० ॥

भा० पदार्थः—अमीवाः=शरीरात्मरोगान् ॥

भाष्यसार—१. **विद्वानों के लिए उपदेश**—विद्वान् लोग उत्तम अन्न वा वज्र वाले, परिमित गति वाले, देवताओं (विद्वानों) के तुल्य वर्ताव करने वाले तथा प्रशस्त विज्ञान से युक्त हों। वे देन-लेन के व्यवहारों में—जैसे सूर्य मेघ का हनन करता है वैसे चोर और दुष्ट जीवों का विनाश करें अर्थात् जैसे सूर्य अन्धकार को हटाकर सबको सुखी करता है वैसे विद्वान् लोग प्राणियों के सब शारीरिक और आत्मिक रोगों को दूर करके उन्हें आनन्दित करें।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि जैसे सूर्य मेघों का हनन करके सबको सुखी करता है वैसे विद्वान् लोग भी प्राणियों के रोगों को दूर करके आनन्दित करें ॥ २१ । १० ॥

आत्रेयः। **विद्वांसः=मेधाविविद्वांसः**। निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वानों के विषय में फिर उपदेश किया है ॥

वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा ऽ अमृता ऽ ऋतज्ञाः।
अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥ ११ ॥

पदार्थः—(**वाजेवाजे**) युद्धे युद्धे (**अवत**) रक्षत (**वाजिनः**) विज्ञानवन्तः (**नः**) अस्मान् (**धनेषु**) (**विप्राः**) मेधाविनः (**अमृताः**) आत्मस्वरूपेण नित्याः (**ऋतज्ञाः**) य ऋतं=सत्यं जानन्ति ते (**अस्य**) (**मध्वः**) मधुरस्य रसस्य। अत्र कर्मणि षष्ठी (**पिबत**) (**मादयध्वम्**) आनन्दयत (**तृप्ताः**) प्रीताः (**यात**) गच्छत (**पथिभिः**) (**देवयानैः**) देवा=विद्वांसो यान्ति येषु तैः ॥ ११ ॥

अन्वयः—हे अमृता ऋतज्ञा वाजिनो विप्राः ! यूयं वाजेवाजे धनेषु नोऽवतास्य मध्वः पिबत तेन मादयध्वमनेन तृप्ताः सन्तो देवयानैः पथिभिर्यात ॥ ११ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अमृताः** आत्म-

भाषार्थ—हे (अमृताः) आत्मस्वरूप से

स्वरूपेण नित्याः, **ऋतज्ञाः** य ऋतं=सत्यं जानन्ति ते, **वाजिनः** विज्ञानवन्तः **विप्राः** मेधाविनः! **यूयं वाजेवाजे** युद्धे युद्धे, **धनेषु नः** अस्मान् **अवत** रक्षत; **अस्य मध्वः** मधुरस्य रसस्य **पिबत; तेन मादयध्वम्** आनन्दयत; **अनेन तृप्ताः** प्रीताः **सन्तो देवयानैः** देवा=विद्वांसो यान्ति येषु तैः **पथिभिर्यात** गच्छत ॥ २१ । ११ ॥

नित्य, (ऋतज्ञाः) **सत्य** को जानने वाले, (वाजिनः) विज्ञान से युक्त (विप्राः) मेधावी लोगो ! तुम— (वाजेवाजे) प्रत्येक युद्ध में और (धनेषु) धनों में (नः) हमारी (अवत) रक्षा करो; (अस्य) इस (मध्वः) मधुर रस का (पिबत) पान करो; उससे (मादयध्वम्) आनन्द को प्राप्त करो, इससे (तृप्ताः) तृप्त होकर (देवयानैः) जिनमें विद्वान् लोग जाते हैं उन (पथिभिः) मार्गों से (गच्छत) जाओ ॥२१।११॥

भावार्थः—यथा विद्वांसो विद्यादानोपदेशाभ्यां सर्वान् सुखयन्ति तथैव राजपुरुषा रक्षाऽभयदानाभ्यां सर्वान् सुखयन्तु ।

धर्म्यमार्गेषु गच्छन्तोऽर्थकाममोक्षान् प्राप्नुवन्तु ॥ २१ । ११ ॥

भावार्थ—जैसे विद्वान् लोग विद्यादान और उपदेश से सबको सुखी करते हैं वैसे ही राजपुरुष रक्षा और अभयदान से सबको सुखी करें । और—

धर्मयुक्त मार्गों में चलते हुए अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त करें ॥ २१ । ११ ॥

भा० पदार्थः—विप्राः=विद्वांसः । देवयानैः=धर्म्यमार्गैः । यात=अर्थकाममोक्षान् प्राप्नुत ॥

भाष्यसार—**विद्वानों के लिए उपदेश**—आत्म-स्वरूप से नित्य, सत्य को जानने वाले, विज्ञानवान्, मेधावी विद्वान् लोग—प्रत्येक युद्ध में विद्यादान और उपदेश से सब की रक्षा करें, मधुर-रस का पान करें, उससे आनन्द को प्राप्त करें, प्रसन्न होकर विद्वानों के पथ पर चलें, धर्मयुक्त मार्ग पर चलकर अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त करें ॥ २१ । ११ ॥

स्वस्त्यात्रेयः । **अग्निः=विद्वान्** । विराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनर्विद्वद्विषयमाह ॥

विद्वानों के विषय में फिर उपदेश किया है ॥

समिद्धो ऽ अग्निः समिधा सुसमिद्धो वरेण्यः । गायत्री छन्द ऽ इन्द्रियं त्र्यविर्गौर्वयो दधुः ॥१२॥

पदार्थः—(**समिद्धः**) सम्यक् प्रदीप्तः (**अग्निः**) वह्निः (**समिधा**) सम्यक् प्रकाशेन (**सुसमिद्धः**) सुष्ठुप्रकाशितः सूर्यः (**वरेण्यः**) वरणीयो जनः (**गायत्री**) (**छन्दः**) (**इन्द्रियम्**) मनः (**त्र्यविः**) त्रयाणां शरीरेन्द्रियात्मनामवीरक्षणं यस्मात् सः (**गौः**) स्तोता (**वयः**) जीवनम् (**दधुः**) दधीरन् ॥ १२ ॥

अन्वयः—यथा समिद्धोऽग्निः समिधा सुसमिद्धो वरेण्यो गायत्री छन्दश्चेन्द्रियं प्राप्नोति यथा च त्र्यविर्गौर्वयो दधाति तथा विद्वांसो दधुः ॥ १२ ॥

सपदार्थान्वयः—**यथा समिद्धः** सम्यक् प्रदीप्तः **अग्निः** वह्निः, **समिधा** सम्यक् प्रकाशेन **सुसमिद्धः** सुष्ठुप्रकाशितः सूर्यः, **वरेण्यः** वरणीयो जनः, **गायत्री छन्दश्चेन्द्रियं** मनः **प्राप्नोति; यथा च त्र्यविः** त्रयाणां शरीरेन्द्रियात्मनामवी रक्षणं यस्मात्

भाषार्थ—जैसे (समिद्धः) अच्छे प्रकार प्रदीप्त (अग्निः) अग्नि, (समिधा) अच्छे प्रकाश से (सुसमिद्धः) प्रकाशित सूर्य, (वरेण्यः) वरण करने योग्य पुरुष और (गायत्री, छन्दः) गायत्री छन्द (इन्द्रियम्) मन को प्राप्त होता है; और जैसे

सः, **गौः** स्तोता **वयः** जीवनं **दधाति; तथा विद्वांसो दधुः** दधीरन् ॥ २१ । १२ ॥

(त्र्यविः) शरीर, इन्द्रिय तथा आत्मा इन तीनों की रक्षा करने वाला (गौः) स्तोता पुरुष (वयः) जीवन को धारण करता है, वैसे विद्वान् लोग (दधुः) जीवन को धारण करें ॥ २१ । १२ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । विद्वांसो विद्यया सर्वेषामात्मनः प्रकाश्य, जितेन्द्रियान् कृत्वा, दीर्घायुषः सम्पादयन्तु ॥ २१ । १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। विद्वान् लोग विद्या से सब के आत्माओं को प्रकाशित करके तथा सब को जितेन्द्रिय बनाकर दीर्घायु बनावें ॥२१।१२॥

भा० पदार्थः—अग्निः=विद्वान् । समिधा=विद्यया । इन्द्रियम्=जितेन्द्रियम् । वयः=दीर्घायुः ॥

भाष्यसार—**१. विद्वानों के लिए उपदेश**—जैसे प्रदीप्त अग्नि, उत्तम प्रकाश से प्रकाशित सूर्य, श्रेष्ठ पुरुष और गायत्री छन्द मन को प्राप्त होता है, और जैसे शरीर आत्मा तथा इन्द्रिय इन तीनों की रक्षा का हेतु स्तोता पुरुष आयु=जीवन को धारण करता है वैसे विद्वान् लोग विद्या के द्वारा सबकी आत्माओं को प्रकाशित करके, सब को जितेन्द्रिय तथा दीर्घायु बनावें।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमावाचक इव आदि पद लुप्त है । अतः वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि विद्वान् लोग सूर्य के समान सबके आत्माओं को विद्या से प्रकाशित करें ॥ २१ । १२ ॥

स्वस्त्यात्रेयः । **विद्वांसः=स्पष्टम्** । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वानों के विषय में फिर उपदेश किया है ॥

तनूनपाच्छुचिव्रतस्तनूपाश्च सरस्वती । उष्णिहा छन्द ऽ इन्द्रियं दित्यवाड् गौर्वयो दधुः ॥ १३ ॥

पदार्थः—(**तनूनपात्**) यस्तनूं न पातयति सः (**शुचिव्रतः**) पवित्रधर्माचरणशीलः (**तनूपाः**) यस्तनूः पाति (**च**) (**सरस्वती**) वाणी (**उष्णिहा**) (**छन्दः**) (**इन्द्रियम्**) इन्द्रस्य=जीवस्य लिङ्गम् (**दित्यवाट्**) दितये हितं वहति (**गौः**) स्तोता (**वयः**) कामनाम् (**दधुः**) ॥ १३ ॥

अन्वयः—यथा शुचिव्रतस्तनूपात्तनूनपाः सरस्वती चोष्णिहा छन्द इन्द्रियं दधाति यथा च दित्यवाड् गौर्वयो वर्धयति तथैतत्सर्वं विद्वांसो दधुः ॥ १३ ॥

सपदार्थान्वयः—यथा शुचिव्रतः पवित्रधर्माचरणशीलः, **तनूनपात्**, यस्तनूं न पातयति सः, **तनूपाः** यस्तनूः पाति **सरस्वती** वाणी **चोष्णिहा छन्द इन्द्रियं** इन्द्रस्य=जीवस्य लिङ्गं **दधाति; यथा च दित्यवाड्** दितये हितं वहति, **गौः** स्तोता **वयः** कामनां **वर्धयति, तथैतत्सर्वं विद्वांसो दधुः** ॥२१।१३॥

भाषार्थ—जैसे (शुचिव्रतः) पवित्र धर्माचरण वाला, (तनूनपात्) शरीर को पतित न करने वाला, (तनूपाः) शरीर का पालक, (सरस्वती) वाणी, (उष्णिहा, छन्दः) उष्णिक् छन्द (इन्द्रियम्) जीव के चिह्न रूप इन्द्रियों को धारण करता है; और जैसे (दित्यवाट्) दुष्टों का हित करने वाला (गौः) स्तोता पुरुष (वयः) कामना को बढ़ाता है

वैसे, इन्द्रिय आदि सब को विद्वान् लोग धारण करें ॥ २१ । १३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । ये पवित्राचरणा, येषां वाणी विद्यासुशिक्षायुक्ताऽस्ति, ते पूर्णं जीवनं धातुमर्हन्ति ॥ २१ । १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है ॥ जो पवित्र आचरण वाले हैं, जिनकी वाणी विद्या और सुशिक्षा से युक्त है वे पूर्ण जीवन को धारण कर सकते हैं ॥ २१ । १३ ॥

भा० पदार्थः—शुचिव्रतः=पवित्राचरणः । सरस्वती=विद्यासुशिक्षायुक्ता वाणी । वयः=पूर्णं जीवनम् । दधुः=धातुमर्हन्ति ॥

भाष्यसार—१. **विद्वानों के लिए उपदेश**—जैसे पवित्र धर्माचरण वाला, शरीर को पतित न करने वाला, शरीर का रक्षक पुरुष और वाणी तथा उष्णिक् छन्द जीवन को धारण करते हैं, और जैसे दुष्ट जनों का भी हित करने वाला स्तोता पुरुष कामना को बढ़ाता है। वैसे विद्वान् लोग आत्मा को धारण करें, शुभ कामनाओं को बढ़ावें। पवित्र आचरण वाले और विद्या तथा सुशिक्षा से युक्त वाणी वाले विद्वान् ही पूर्ण जीवन को धारण कर सकते हैं।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है। अतः वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि पवित्र धर्माचरण वाले पुरुष के समान विद्वान् लोग जीवन को धारण करें ॥ २१ । १३ ॥ ●

स्वस्त्यात्रेयः । **विद्वांसः**=स्पष्टम् । विराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वानों के विषय में फिर उपदेश किया है ॥

इडा॑भिर॒ग्निरीड्यः॒ सोमो॑ दे॒वो ऽ अम॑र्त्यः । अ॒नु॒ष्टुप् छन्द॑ ऽ इन्द्रि॒यं पञ्चा॑वि॒र्गौर्वयो॑ द॒धुः ॥ १४ ॥

पदार्थः—(**इडाभिः**) (**अग्निः**) पावक इव (**ईड्यः**) स्तुत्योऽध्यन्वेषणीयः (**सोमः**) ऐश्वर्य्यवान् (**देवः**) दिव्यगुणः (**अमर्त्यः**) स्वस्वरूपेण मृत्युरहितः (**अनुष्टुप्**) (**छन्दः**) (**इन्द्रियम्**) ज्ञानादिव्यवहारसाधकम् (**पञ्चाविः**) यः पञ्चभिरव्यते=रक्ष्यते सः (**गौः**) विद्यया स्तोतव्यः (**वयः**) तृप्तिम् (**दधुः**) दध्युः ॥ १४ ॥

अन्वयः—यथाऽग्निरमर्त्यः सोम ईड्यो देवः पञ्चाविर्गौर्विद्वानिडाभिरनुष्टुप् छन्द इन्द्रियं वयश्च दध्यात्तथैतत्सर्वं दधुः ॥ १४ ॥

सपदार्थान्वयः—**यथाऽग्निः** पावक इव, **अमर्त्यः** स्वस्वरूपेण मृत्युरहितः, **सोमः** ऐश्वर्यवान्, **ईड्यः** स्तुत्योऽध्यन्वेषणीयः, **देवः** दिव्यगुणः, **पञ्चाविः** यः पञ्चभिरव्यते=रक्ष्यते सः **गौः**=**विद्वान्** विद्यया स्तोतव्यः; **इडाभिरनुष्टुप् छन्द इन्द्रियं** ज्ञानादिव्यवहारसाधकं **वयः** तृप्तिं **च दध्यात्तथैतत्सर्वं दधुः** दध्युः ॥ २१ । १४ ॥

भाषार्थ—जैसे (अग्निः) अग्नि के समान विद्या से प्रकाशमान, (अमर्त्यः) अपने आत्मस्वरूप से मृत्यु रहित, (सोमः) ऐश्वर्य वाला, (ईड्यः) स्तुति और अन्वेषण करने योग्य, (देवः) दिव्य गुणों वाला, (पञ्चाविः) पाँचों से रक्षा करने योग्य (गौः) विद्या से स्तुति करने योग्य विद्वान्—(इडाभिः) स्तुतियों से (अनुष्टुप्, छन्दः) अनुष्टुप् छन्द,

(इन्द्रियम्) ज्ञान आदि व्यवहार की साधक इन्द्रिय और (वयः) तृप्ति को धारण करता है, वैसे इस छन्द आदि को सब (दध्युः) धारण करें ॥२१।१४॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये धर्मेण विद्यैश्वर्यं प्राप्नुवन्ति, ते सर्वान् मनुष्यान् प्रापयितुं शक्नुवन्ति ॥ २१ । १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। जो विद्वान् धर्म से विद्या और ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं वे सब मनुष्यों को विद्या और ऐश्वर्य प्राप्त करा सकते हैं ॥ २१ । १४ ॥

भा० पदार्थः—इडाभिः=धर्मेण। इन्द्रियम्=विद्या। वयः=ऐश्वर्यम् ॥

भाष्यसार—१. **विद्वानों के लिए उपदेश**—विद्वान् मनुष्य—अग्नि के समान विद्या से प्रकाशमान, आत्म स्वरूप से मृत्यु-रहित, ऐश्वर्य वाला, स्तुति और अन्वेषण करने योग्य, दिव्य गुणों से युक्त, पंच-जनों से रक्षा करने योग्य तथा विद्या के कारण स्तुति के योग्य होता है। वह ज्ञान आदि व्यवहार के साधक मन आदि इन्द्रियों को और ऐश्वर्यजन्य तृप्ति को धारण करे। जो विद्वान् धर्मपूर्वक विद्या और ऐश्वर्य को स्वयं प्राप्त करते हैं वे ही अन्यों को प्राप्त करा सकते हैं।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक इव आदि पद लुप्त है। अतः वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि विद्वान् पुरुष के समान ज्ञान और ऐश्वर्य को सब मनुष्य धारण करें ॥ २१ । १४ ॥

स्वस्त्यात्रेयः। **विद्वांसः**=स्पष्टम्। निचृदनुष्टुप्। गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वानों के विषय में फिर उपदेश किया है ॥

सुबर्हिरग्निः पूषण्वान्त्स्तीर्णबर्हिरमर्त्यः। बृहती छन्द ऽ इन्द्रियं त्रिवत्सो गौर्वयो दधुः ॥ १५ ॥

पदार्थः—(**सुबर्हिः**) सुशोभनं बर्हिरन्तरिक्षं यस्मात् सः (**अग्निः**) पावकः (**पूषण्वान्**) पूषाणः=पुष्टिकरा गुणा विद्यन्ते यस्मिन् (**स्तीर्णबर्हिः**) स्तीर्णं बर्हिरन्तरिक्षं येन सः (**अमर्त्यः**) स्वस्वरूपेण मृत्युधर्मरहितः (**बृहती**) (**छन्दः**) (**इन्द्रियम्**) (**त्रिवत्सः**) त्रीणि देहेन्द्रियमनांसि वत्सा इवानुचराणि यस्य सः (**गौः**) धेनुः (**वयः**) येन व्येति=व्याप्नोति तत् (**दधुः**) दध्युः ॥ १५ ॥

अन्वयः—यथा पूषण्वान् स्तीर्णबर्हिरमर्त्यः सुबर्हिरग्निरिव जनो बृहती छन्दश्चेन्द्रियं दध्यात् त्रिवत्सो गौरिव वयो दध्यात् तथैतद् दधुः ॥ १५ ॥

सपदार्थान्वयः—यथा **पूषण्वान्** पूषाणः=पुष्टिकरा गुणा विद्यन्ते यस्मिन्, **स्तीर्णबर्हिः** स्तीर्णं बर्हिरन्तरिक्षं येन सः, **अमर्त्यः** स्वस्वरूपेण मृत्युधर्मरहितः, **सुबर्हिः** सुशोभनं बर्हिरन्तरिक्षं यस्मात् सः, **अग्निः** पावक **इव जनो बृहती छन्दश्चेन्द्रियं दध्यात्, त्रिवत्सः** त्रीणि देहेन्द्रियमनांसि वत्सा इवानुचराणि यस्य सः **गौः**

भाषार्थ—जैसे (पूषण्वान्) पुष्टिकारक गुणों से युक्त, (स्तीर्णबर्हिः) अन्तरिक्ष में व्याप्त, (अमर्त्यः) अपने स्वरूप से मृत्यु धर्म से रहित, (सुबर्हिः) अन्तरिक्ष को सुशोभित करने वाली (अग्निः) अग्नि के समान विद्वान् मनुष्य और (बृहती, छन्दः) बृहती छन्द (इन्द्रियम्) जीव के चिह्न रूप मन आदि इन्द्रियों को धारण करता

धेनुः **इव वयः** येन व्येति=व्याप्नोति तत् **दध्यात् तथैतद् दधुः** दध्युः ॥ २१ । १५ ॥

है; और (त्रिवत्सः) देह, इन्द्रिय तथा मन ये तीनों जिसके बछड़ों के समान अनुचर हैं वह (गौः) धेनु=दुधारू गाय के समान विद्वान् (वयः) सूक्ष्म निराकार पदार्थविद्या को धारण करता है वैसे इस इन्द्रिय आदि को सब (दधुः) धारण करे ॥

भावार्थः--अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यथाऽग्निरन्तरिक्षे चरति, तथा विद्वांसः सूक्ष्मनिराकारपदार्थविद्यायां चरन्ति ।

यथा गोरनु वत्सो भवति तथा विद्वदनुकूला अविद्वांसश्चरन्तु, इन्द्रियाणि च वशमानयेयुः ॥ २१ । १५ ॥

भावार्थ--इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ जैसे अग्नि अन्तरिक्ष में विचरण करता है, वैसे विद्वान् लोग सूक्ष्म निराकार पदार्थ-विद्या में विचरण करते हैं ।

जैसे गौ के पीछे बछड़ा चलता है वैसे अविद्वान् लोग विद्वानों के अनुकूल चलें और इन्द्रियों को वश में लावें ॥ २१ । १५ ॥

भाष्यसार--१. **विद्वानों के लिए उपदेश**--जैसे अग्नि पुष्टिकारक गुणों से युक्त है, आकाश में व्याप्त है, स्वस्वरूप से मृत्यु-धर्म से रहित अर्थात् नित्य है, आकाश को उत्तम बनाने वाली है वैसे विद्वान् लोग जीवन को धारण करें । अर्थात् जैसे अग्नि अन्तरिक्ष में विचरण करती है वैसे विद्वान् लोग सूक्ष्म निराकार पदार्थ-विद्या में विचरण करें । जैसे देह, इन्द्रियाँ और मन ये तीनों बछड़े गौ के समान जिसके अनुचर हैं उस विद्वान् का सब मनुष्य अनुसरण करें और अपनी इन्द्रियों को वश में लावें ।

२. **अलङ्कार**--इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचकलुप्तोपमा अलंकार है । उपमा यह है कि जैसे अग्नि सूक्ष्म अन्तरिक्ष में विचरण करता है वैसे विद्वान् लोग सूक्ष्म पदार्थ-विद्या में विचरण करें । और जैसे बछड़ा गौ का अनुसरण करता है वैसे सब मनुष्य विद्वानों का अनुसरण करें ॥ २१ । १५ ॥ ●

स्वस्त्यात्रेयः । **विद्वांसः=स्पष्टम्** । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

अथ वायुप्रभृतिपदार्थप्रयोजनमुपदिश्यते ॥

अब वायु आदि पदार्थों के प्रयोजन का उपदेश किया जाता है ॥

दुरो॑ दे॒वीर्दिशो॑ म॒हीर्ब्र॒ह्मा दे॒वो बृह॒स्पतिः॑ । प॒ङ्क्तिश्छन्द॑ऽइ॒हेन्द्रि॒यं तु॑र्य्य॒वाड् गौर्वयो॑ द॒धुः ॥१६॥

पदार्थः--(**दुरः**) द्वाराणि (**देवीः**) देदीप्यमाना (**दिशः**) (**महीः**) महत्यः (**ब्रह्मा**) (**देवः**) देदीप्यमानः (**बृहस्पतिः**) बृहतां पालकः सूर्य्यः (**पङ्क्तिः**) (**छन्दः**) (**इह**) (**इन्द्रियम्**) धनम् (**तुर्य्यवाट्**) यस्तुर्य्यं=चतुर्थं वहति=प्राप्नोति सः (**गौः**) धेनुः (**वयः**) जीवनम् (**दधुः**) दधीरन् ॥ १६ ॥

अन्वयः--हे मनुष्याः ! यथेह देवीर्महीर्दुरो दिशो ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः पङ्क्तिश्छन्द इन्द्रियं तुर्य्यवाड् गौर्वयश्च दधुस्तथा यूयमपि धरत ॥ १६ ॥

सपदार्थान्वयः--**हे मनुष्याः ! यथेह देवीः** देदीप्यमाना **महीः** महत्यः **दुरः** द्वाराणि, **दिशो, ब्रह्मा, देवः** देदीप्यमानः **बृहस्पतिः** बृहतां पालकः

भाषार्थ--हे मनुष्यो ! जैसे--(इह) यहाँ (देवीः) प्रकाशमान (महीः) बड़े (दुरः) द्वार, (दिशः) दिशाएं, (ब्रह्मा) ब्रह्मा (देवः) प्रकाशमान

सूर्य्यः, **पङ्क्तिश्छन्द, इन्द्रियं** धनं, **तुर्य्यवाड्** यस्तुर्य्यं=चतुर्थं वहति=प्राप्नोति सः, **गौः** धेनुः, **वयो** जीवनं **च दधुः** दधीरन्; **तथा यूयमपि धरत** ॥ २१ । १६ ॥

(बृहस्पतिः) बड़ों का पालक सूर्य, (पंक्तिश्छन्दः) पंक्ति छन्द, (इन्द्रियम्) धन, (तुर्यवाट्) चतुर्थ अवस्था को प्राप्त संन्यासी और (गौः) दुधारू गाय (वयः) जीवन को (दधुः) धारण करते हैं वैसे तुम भी धारण करो ॥ २१ । १६ ॥

भावार्थः—न हि कश्चिदप्यन्तरिक्षस्थ-वाय्वादिभिर्विना जीवितुं शक्नोति ॥ २१ । १६ ॥

भावार्थ—कोई भी प्राणी आकाश में स्थित वायु आदि के विना जीवित नहीं रह सकता ॥ २१ । १६ ॥

भाष्यसार—वायु आदि पदार्थों का प्रयोजन—प्रकाशमान महान् द्वार, दिशाएँ, ब्रह्मा, देदीप्यमान सूर्य, पंक्ति छन्द, धन, तुर्याश्रमी संन्यासी, गौ ये सब जीवन को धारण करते हैं। जीवन के हेतु हैं। कोई भी मनुष्य अन्तरिक्ष में स्थित वायु आदि पदार्थों के विना जीवित नहीं रह सकता ॥ २१ । १६ ॥ ●

स्वस्त्यात्रेयः । **विश्वेदेवाः**=**पृथिव्यादयः** । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

पृथिवी आदि पदार्थों के प्रयोजन का फिर उपदेश किया है ॥

उ॒षे य॒ह्वी सु॒पेश॑सा॒ विश्वे॑ दे॒वा ऽ अम॑र्त्याः । त्रि॒ष्टुप् छन्द॑ ऽ इ॒हेन्द्रि॒यं प॑ष्ठ॒वाड् गौर्वयो॑ दधुः ॥१७॥

पदार्थः—(**उषे**) दहनकर्त्र्याविव स्त्रियौ (**यह्वी**) महती=महत्यौ (**सुपेशसा**) सुष्ठु पेशो=रूपं ययोस्तावध्यापिकोपदेशिके । विभक्तेरात्वम् (**विश्वे**) सर्वे (**देवाः**) देदीप्यमानाः पृथिव्यादयः (**अमर्त्याः**) तत्त्वस्वरूपेण नित्याः (**त्रिष्टुप्**) (**छन्दः**) (**इह**) अस्मिन् संसारे (**इन्द्रियम्**) धनम् (**पष्ठवाट्**) यः पष्ठेन=पृष्ठेन वहति सः । इदं पृषोदरादिना सिद्धम् (**गौः**) वृषभः (**वयः**) प्रजननम् (**दधुः**) दध्युः ॥१७॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथेह सुपेशसोषे यह्वी अमर्त्या विश्वे देवास्त्रिष्टुप् छन्दः पष्ठवाड्-गौर्वय इन्द्रियं दधुस्तथा यूयमप्याचरत ॥ १७ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यथेह** अस्मिन् संसारे **सुपेशसा** सुष्ठु पेशो=रूपं ययोस्तावध्यापिकोपदेशिके, **उषे** दहनकर्त्र्याविव स्त्रियौ **यह्वी** महती=महत्यौ, **अमर्त्याः** तत्त्वस्वरूपेण नित्याः **विश्वे** सर्वे **देवाः** देदीप्यमानाः पृथिव्यादयः, **त्रिष्टुप्, छन्दः पष्ठवाड्** यः पष्ठेन=पृष्ठेन वहति सः **गौः** वृषभः, **वयः** प्रजननम् **इन्द्रियं** धनं **दधुः** दध्युः **तथा यूयमप्याचरत** ॥ २१ । १७ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे—(इह) इस संसार में (सुपेशसा) रूपवती अध्यापिका और उपदेशिका (उषे) अन्धकार को नष्ट करने वाली (यह्वी) दो महान् स्त्रियाँ, (अमर्त्याः) तत्त्व स्वरूप से नित्य (विश्वे) सब (देवाः) प्रकाशमान पृथिवी आदि, (त्रिष्टुप्, छन्दः) त्रिष्टुप् छन्द, (पष्ठवाट्) पीठ से वहन करने वाला (गौः) बैल—(वयः) प्रजनन शक्ति एवं (इन्द्रियम्) धन को धारण करते हैं; वैसे तुम भी आचरण करो ॥ २१ । १७ ॥

भावार्थः—यथा पृथिव्यादयः पदार्थाः परोपकारिणः सन्ति, तथाऽत्र मनुष्यैर्भवितव्यम् ॥ २१ । १७ ॥

भावार्थ—जैसे पृथिवी आदि पदार्थ परोपकारी हैं वैसे इस लोक में मनुष्य भी परोपकारी हों ॥ २१ । १७ ॥

भाष्यसार—**पृथिवी आदि पदार्थों का प्रयोजन**—अध्यापिका, उपदेशिका स्त्री, सब पृथिवी आदि पदार्थ, वृषभ ये प्रजनन शक्ति एवं धन को धारण करते हैं। जैसे ये पृथिवी आदि पदार्थ परोपकार करते हैं वैसे सब मनुष्य परोपकार करें ॥ २१ । १७ ॥

स्वस्त्यात्रेयः । **विश्वेदेवाः**=वैद्याः । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

अथ भिषग्वदितरैराचरितव्यमित्युपदिश्यते ॥

अब वैद्य के तुल्य अन्यों को आचरण करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

दैव्या होतारा भिषजेन्द्रेण सयुजा युजा । जगती छन्द ऽ इन्द्रियमनड्वान् गौर्वयो दधुः ॥ १८ ॥

पदार्थः—(**दैव्या**) देवेषु=विद्वत्सु कुशलौ (**होतारा**) दातारौ (**भिषजा**) सद्वैद्यौ (**इन्द्रेण**) ऐश्वर्य्येण (**सयुजा**) यौ समानं युङ्क्तस्तौ (**युजा**) समाहितौ (**जगती**) (**छन्दः**) (**इन्द्रियम्**) धनम् (**अनड्वान्**) वृषभः (**गौः**) (**वयः**) कमनीयम् (**दधुः**) दध्युः ॥ १८ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथेन्द्रेण सयुजा युजा दैव्या होतारा भिषजाऽनड्वान् गौर्जगती-छन्दश्च वय इन्द्रियं दधुस्तथैतद्भवन्तो दधीरन् ॥ १८ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यथेन्द्रेण** ऐश्वर्येण **सयुजा** यौ समानं युङ्क्तस्तौ, **युजा** समाहितौ, **दैव्या** देवेषु=विद्वत्सु कुशलौ, **होतारा** दातारौ, **भिषजा** सद्वैद्यौ; **अनड्वान्** वृषभः, **गौः**, **जगती छन्दश्च वयः** कमनीयम् **इन्द्रियं** धनं **दधुः** दध्युः **तथैतद्भवन्तो दधीरन्** ॥ २१ । १८ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे—(इन्द्रेण) ऐश्वर्य से (सयुजा) समान रूप से युक्त, (युजा) समाहित चित्त वाले, (दैव्या) देव=विद्वानों में कुशल, (होतारा) दाता (भिषजा) दो श्रेष्ठ वैद्य, (अनड्वान्) बैल, (गौः) गाय और (जगती, छन्दः) जगती छन्द (वयः) कामना करने योग्य (इन्द्रियम्) धन को (दधुः) धारण करते हैं; वैसे इसे आप धारण करो ॥ २१ । १८ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ यथा वैद्यैः स्वेषां परेषां च रोगान् निवार्य स्वेऽन्ये चैश्वर्यवन्तः क्रियन्ते, तथा सर्वैर्मनुष्यैर्वर्तितव्यम् ॥ २१ । १८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ जैसे वैद्य लोग अपने और दूसरों के रोगों का निवारण करके अपने और दूसरे लोगों को ऐश्वर्यवान् बनाते हैं वैसे सब मनुष्य वर्ताव करें ॥ २१ । १८ ॥

भाष्यसार—**१. वैद्यों के समान आचरण करें**—जैसे वैद्य लोग अपने तथा दूसरे लोगों को समान रूप से ऐश्वर्यवान् बनाते हैं, समाहित चित्त वाले होते हैं, विद्वानों में कुशल होते हैं, दाता होते हैं, अपने और दूसरे लोगों के रोगों का निवारण करते हैं वैसे सब मनुष्य वर्ताव करें। जैसे बैल, गौ और जगती छन्द कमनीय धन को धारण करते हैं वैसे सब मनुष्य इसे धारण करें ॥

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि सब मनुष्य वैद्यों के समान वर्ताव करें तथा वृषभ आदि के समान धन को धारण करें ॥ २१ । १८ ॥

स्वस्त्यात्रेयः । **विश्वे देवाः**=विद्वांसः । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनर्विद्वद्विषयमाह ॥

विद्वानों के विषय में फिर उपदेश किया है ॥

तिस्र ऽ इडा सरस्वती भारती मरुतो विशः । विराट् छन्द ऽ इहेन्द्रियं धेनुर्गौर्न वयो दधुः ॥१९॥

पदार्थः—(**तिस्रः**) त्रित्वसंख्यावत्यः (**इडा**) भूमिः (**सरस्वती**) वाणी (**भारती**) धारणवती प्रज्ञा (**मरुतः**) वायवः (**विशः**) मनुष्याद्याः प्रजाः (**विराट्**) यद्विविधं राजते तत् (**छन्दः**) बलम् (**इह**) अस्मिन् संसारे (**इन्द्रियम्**) धनम् (**धेनुः**) या धापयति सा (**गौः**) (**न**) इव (**वयः**) प्राप्तव्यं वस्तु (**दधुः**) दध्युः ॥ १६ ॥

अन्वयः—यथेहेडा सरस्वती भारती च तिस्रो मरुतो विशो विराट् छन्द इन्द्रियं धेनुर्गौर्न वयश्च दधुस्तथा सर्वे मनुष्या एतद्धत्वा वर्तेरन् ॥ १६ ॥

सपदार्थान्वयः—**यथेह** अस्मिन् संसारे **इडा** भूमिः, **सरस्वती** वाणी, **भारती** धारणवती प्रज्ञा **च तिस्रः** त्रित्वसंख्यावत्यः; **मरुतः** वायवः **विशः** मनुष्याद्याः, प्रजाः, **विराट्** यद्विविधं राजते तत्, **छन्दः** बलम्, **इन्द्रियं** धनं, **धेनुः** या धापयति सा **गौर्न** इव **वयः** प्राप्तव्यं वस्तु **च दधुः** दध्युः; **तथा सर्वे मनुष्या एतद्धत्वा वर्तेरन्** ॥ २१ । १६ ॥

भाषार्थ—जैसे—(इह) इस संसार में (इडा) भूमि, (सरस्वती) वाणी, और (भारती) धारणवती बुद्धि (तिस्रः) ये तीन; (मरुतः) वायु, (विशः) मनुष्य आदि प्रजा, (विराट्) विविध रूप में प्रकाशमान (छन्दः) बलम्, (इन्द्रियम्) धन, (धेनुः) दुधारू गाय (गौः) बैल के (न) समान (वयः) प्राप्तव्य वस्तु को (दधुः) धारण करते हैं; वैसे सब मनुष्य इसे धारण करके वर्ताव करें ॥ २१ । १६ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः । यथा विद्वांसः सुशिक्षितया वाचा, विद्यया, प्राणैः, पशुभिश्चैश्वर्यं लभन्ते, तथाऽन्यैर्लब्धव्यम् ॥ २१ । १६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचक लुप्तोपमा अलंकार हैं ॥ जैसे विद्वान् लोग सुशिक्षित वाणी, विद्या, प्राण और पशुओं से ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं वैसे अन्य लोग भी प्राप्त करें ॥ २१ । १६ ॥

भा० पदार्थः—इडा=सुशिक्षिता वाक् । सरस्वती=विद्या । भारती=प्राणः । गौः=पशुः ।

भाष्यसार—**१. विद्वानों के लिए उपदेश**—इस संसार में भूमि, वाणी, धारणवती बुद्धि ये तीनों तथा वायु, मनुष्य आदि प्रजा—विविध बल और धन को दुधारू गौ के समान धारण करते हैं वैसे सब मनुष्य बल और धन को धारण करें । जैसे विद्वान् लोग सुशिक्षित वाणी, विद्या, प्राण और पशुओं से ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं वैसे सब मनुष्य ऐश्वर्य को प्राप्त करें ।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'न' पद है अतः उपमा अलंकार है । उपमा यह है कि विद्वानों के समान सब मनुष्य ऐश्वर्य को प्राप्त करें ॥ २१ । १६ ॥

स्वस्त्यात्रेयः । **विश्वे देवाः**=विद्वांसः । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वानों के विषय में फिर उपदेश किया है ॥

त्वष्टा तुरीपो ऽ अद्भुत ऽ इन्द्राग्नी पुष्टिवर्धना । द्विपदा छन्द ऽ इन्द्रियमुक्षा गौर्न वयो दधुः ॥ २० ॥

पदार्थः—(**त्वष्टा**) तनूकर्त्ता (**तुरीपः**) तूर्णमाप्नोति सः (**अद्भुतः**) आश्चर्यगुणकर्मस्वभावः (**इन्द्राग्नी**) इन्द्रश्चाग्निश्च तौ वाय्वग्नी (**पुष्टिवर्धना**) यौ पुष्टिं वर्धयतस्तौ (**द्विपदा**) द्वौ पादौ यस्यां सा (**छन्दः**) (**इन्द्रियम्**) श्रोत्रादिकम् (**उक्षा**) सेचनसमर्थः (**गौः**) (**न**) इव (**वयः**) जीवनम् (**दधुः**) धरेयुः ॥ २० ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! येऽद्भुतस्तुरीपस्त्वष्टा पुष्टिवर्धनेन्द्राग्नी द्विपदा छन्द इन्द्रियमुक्षा गौर्न वयो दधुस्तान् विजानीत ॥ २० ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! येऽद्भुतः आश्चर्यगुणकर्मस्वभावः **तुरीपः** तूर्णमाप्नोति सः **त्वष्टा** तनूकर्त्ता, **पुष्टिवर्धना** यौ पुष्टिं वर्धयतस्तौ **इन्द्राग्नी** इन्द्रश्चाग्निश्च तौ वाय्वग्नी, **द्विपदा** द्वौ पादौ यस्यां सा **छन्दः**, **इन्द्रियं** श्रोत्रादिकम्, **उक्षा** सेचनसमर्थः **गौर्न** इव **वयः** जीवनं **दधुः** धरेयुः **तान् विजानीत** ॥ २१ । २० ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो—(अद्भुतः) अद्भुत गुण, कर्म, स्वभाव वाला प्रसिद्ध अग्नि, (तुरीपः) शीघ्र पहुँचने वाला विद्युत्, (त्वष्टा) कृश करने वाला जाठर अग्नि, (पुष्टिवर्धना) पुष्टि को बढ़ाने वाले (इन्द्राग्नी) वायु=प्राण और वडवानल, (द्विपदा, छन्दः) दो पादों वाला छन्द, (इन्द्रियम्) श्रोत्र आदि इन्द्रियाँ, (उक्षा) वीर्य-सेचन में समर्थ (गौः) सांड के समान (वयः) जीवन को (दधुः) धारण करते हैं; उन्हें जानो ॥

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः । यथा प्रसिद्धोऽग्निः, विद्युत्, जाठरः, वडवानल एते चत्वारः, प्राणः, इन्द्रियाणि, गवादयः पशवश्च सर्वस्य जगतः पुष्टिं कुर्वन्ति, तथैव मनुष्यैर्ब्रह्मचर्यादिना स्वस्य परेषां च बलं वर्द्धनीयम् ॥ २१ । २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलंकार है ॥ जैसे प्रसिद्ध अग्नि, विद्युत्, जाठर, वडवानल ये चार; प्राण, इन्द्रियाँ और गौ आदि पशु सब जगत् की पुष्टि करते हैं; वैसे ही मनुष्य ब्रह्मचर्य आदि से अपने और दूसरों के बल को बढ़ावें ॥ २१ । २० ॥

भाष्यसार—**१. विद्वानों के लिए उपदेश**—जैसे आश्चर्य से युक्त गुण, कर्म, स्वभाव वाला प्रसिद्ध अग्नि, शीघ्र पहुँचने वाला विद्युत्, कृश करने वाला जाठराग्नि, और वडवानल ये चार अग्नियाँ; पुष्टि को बढ़ाने वाले प्राण वायु, द्विपदा छन्द, श्रोत्र आदि इन्द्रियाँ, वीर्य-सेचन में समर्थ सांड जीवन को धारण करते हैं वैसे सब मनुष्य ब्रह्मचर्य आदि से जीवन को धारण करें अर्थात् अपने और दूसरों के बल को बढ़ावें ।

२. अलंकार—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'न' पद है । अतः उपमा अलंकार है । उपमा यह है कि जैसे अग्नि तथा गौ आदि पशु जगत् के जीवन-धारण के हेतु हैं वैसे मनुष्य ब्रह्मचर्य आदि से जीवन को धारण करें ॥ २१ । २० ॥

स्वस्त्यात्रेयः । **विश्वे देवाः**=प्रजाः । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनः प्रजाविषयमाह ॥

फिर प्रजाविषय को कहते हैं ॥

श॒मि॒ता नो॒ वन॒स्पतिः॑ सवि॒ता प्र॑सु॒वन् भग॑म् । क॒कुप् छन्द॑ ऽ इ॒हेन्द्रि॒यं व॒शा वे॒हद्वयो॑ दधुः ॥२१॥

पदार्थः—(**शमिता**) शान्तिप्रदः (**नः**) अस्माकम् (**वनस्पतिः**) ओषधिराजो वृक्षाणां पालकश्च (**सविता**) सूर्यः (**प्रसुवन्**) उत्पादयन् (**भगम्**) धनम् (**ककुप्**) (**छन्दः**) (**इह**) संसारे (**इन्द्रियम्**) जीवलिङ्गम् (**वशा**) अप्रसूता (**वेहत्**) या प्रसवं विहन्ति सा (**वयः**) व्याप्तव्यम् (**दधुः**) ॥ २१ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यः शमिता वनस्पतिः सविता भगं प्रसुवन् ककुप् छन्द इन्द्रियं वशा वेहच्चेह नो वयो दधुस्तान् यूयं विज्ञायोपकुरुत ॥ २१ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यः शमिता** शान्तिप्रदः **वनस्पतिः** ओषधिराजो वृक्षाणां पालकश्च, **सविता** सूर्यः **भगं** धनं **प्रसुवन्** उत्पादयन्, **ककुप् छन्द, इन्द्रियं** जीवलिङ्गं, **वशा** अप्रसूता, **वेहद्** या प्रसवं विहन्ति सा **चेह** संसारे **नः** अस्माकं **वयः** व्याप्तव्यं **दधुः, तान् यूयं विज्ञायोपकुरुत** ॥२१॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो (शमिता) शान्ति प्रदान करने वाला (वनस्पतिः) ओषधियों का राजा और वृक्षों का पालक (सविता) सूर्य (भगम्) धन को (प्रसुवन्) उत्पन्न करता है; (ककुप्, छन्दः) ककुप् छन्द, (इन्द्रियम्) जीव का चिह्न रूप इन्द्रियां, (वशा) अप्रसूता और (वेहत्) गर्भपातिनी (इह) इस संसार में (नः) हमारे (वयः) प्राप्त करने योग्य पदार्थ को (दधुः) धारण करते हैं; उन्हें तुम जानकर उपकार करो ॥ २१ । २१ ॥

भावार्थः—येन मनुष्येण सर्वरोग-प्रणाशिका ओषधय, आवरकाण्युत्तमानि च वस्त्राणि सेव्यन्ते, स चिरंजीवी भवति ॥ २१ । २१ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सब रोगों को नष्ट करने वाली ओषधियों और धारण करने योग्य उत्तम वस्त्रों का सेवन करता है वह चिरंजीवी होता है ॥ २१ । २१ ॥

भा० पदार्थः—शमिता=सर्वरोगप्रणाशकः । वनस्पतिः=ओषधयः । ककुप्=उत्तमानि वस्त्राणि । छन्दः=आवरकाणि । वयः=चिरजीवनम् ॥

भाष्यसार—प्रजा के लिए उपदेश—ओषधियों का राजा तथा वृक्षों का पालक शान्ति प्रदान करने वाला है, ओषधियाँ सब रोगों को नष्ट करने वाली हैं, सूर्य धन को उत्पन्न करने वाला है, ककुप् छन्द, उत्तम वस्त्र, इन्द्रियाँ और गौ आदि पशु जीवन-धारण का हेतु हैं। प्रजा-जन इन्हें जानकर इनसे यथावत् उपकार ग्रहण करें। जो इनसे उपकार ग्रहण करते हैं वे चिरंजीवी होते हैं ॥ २१ । २१ ॥ ●

स्वस्त्यात्रेयः । **विद्वांसः**=स्पष्टम् । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

प्रजा विषय का फिर उपदेश किया है ॥

स्वाहा॑ य॒ज्ञं वरु॑णः सु॒क्ष॒त्रो भे॑ष॒जं क॑रत् । अति॑च्छन्दा ऽ इन्द्रि॒यं बृ॒हदृ॑ष॒भो गौर्वयो॑ दधुः ॥ २२ ॥

पदार्थः—(**स्वाहा**) सत्यया क्रियया (**यज्ञम्**) संगतिमयम् (**वरुणः**) श्रेष्ठः (**सुक्षत्रः**) शोभनं क्षत्रं=धनं यस्य सः । **क्षत्रमिति धनना० ॥ निघं० २ । १० ॥** (**भेषजम्**) औषधम् (**करत्**) कुर्यात् (**अतिच्छन्दाः**) (**इन्द्रियम्**) ऐश्वर्यम् (**बृहत्**) महत् (**ऋषभः**) श्रेष्ठः (**गौः**) (**वयः**) कमनीयं निजव्यवहारम् (**दधुः**) धरेयुः ॥ २२ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यूयं यथा वरुणः सुक्षत्रः स्वाहा यज्ञं भेषजं च करद्योऽतिच्छन्दा ऋषभो गौर्बृहदिन्द्रियं वयश्च धत्तस्तथैव सर्वे दधुरेतज्जानीत ॥ २२ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यूयं यथा वरुणः** श्रेष्ठः **सुक्षत्रः** शोभनं क्षत्रं=धनं यस्य सः, **स्वाहा** सत्यया क्रियया **यज्ञं** सङ्गतिमयं **भेषजम्** औषधं **च करत्** कुर्यात्; **योऽतिच्छन्दाः, ऋषभः** श्रेष्ठः **गौः, बृहद्** महद् **इन्द्रियम्** ऐश्वर्यं **वयः** कमनीयं निजव्यवहारं **च धत्तः, तथैव सर्वे दधुः** धरेयुः, **एतज्जानीत** ॥ २१ । २२ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—जैसे (वरुणः) श्रेष्ठ (सुक्षत्रः) उत्तम धन वाला पुरुष (स्वाहा) सत्य क्रिया से (यज्ञम्) संगतिमय यज्ञ और (भेषजम्) औषध को (करत्) बनाता है; और जो (अतिच्छन्दाः) अति छन्द तथा (ऋषभः) श्रेष्ठ (गौः) बैल (बृहत्) महान् (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य और (वयः) कामना करने योग्य निजव्यवहार को धारण करते हैं; वैसे ही सब (दधुः) धारण करें, इसे जानो ॥ २१ । २२ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । ये सुपथ्यौषधसेवनेन रोगान् हरन्ति, पुरुषार्थेन धनमायुश्च धरन्ति, तेऽतुलं सुखम् ॥ २१ । २२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है ॥ जो सुपथ्य एवं औषध सेवन से रोगों को हरते हैं, पुरुषार्थ से धन और आयु को धारण करते हैं वे अतुल को प्राप्त करते हैं ॥ २१ । २२ ॥

भा० पदार्थः—स्वाहा=सुपथ्यसेवनेन । भेषजम्=औषधसेवनम् । इन्द्रियम्=धनम् । वयः=आयुः ॥ दधुः=धरन्ति ।

भाष्यसार—**१. प्रजा के लिए उपदेश**—जैसे श्रेष्ठ, धनवान् पुरुष सत्याचरण से संगतिमय यज्ञ और सुपथ्य तथा औषध-सेवन से रोगों को दूर करता है, अति छन्द तथा श्रेष्ठ बैल के समान जो पुरुष धन और आयु एवं कामना करने योग्य निज-व्यवहार को धारण करते हैं वे अतुल सुख को प्राप्त करते हैं ।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है । अतः वाचकलुप्तोपमा अलंकार है । उपमा यह है कि श्रेष्ठ, धनवान् पुरुष के समान सब मनुष्य संगतिमय यज्ञ करें, औषध-सेवन से रोगों का निवारण करें ॥ २१ । २२ ॥ ●

स्वस्त्यात्रेयः । **रुद्राः**=**विद्वांसः** । भुरिगनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

प्रजा विषय का फिर उपदेश किया है ॥

व॒सन्तेन॑ ऽ ऋ॒तुना॑ दे॒वा वस॑वस्त्रि॒वृता॑ स्तु॒ताः । र॒थ॒न्त॒रेण॒ तेज॑सा ह॒विरिन्द्रे॒ वयो॑ दधुः ॥ २३ ॥

पदार्थः—(**वसन्तेन**) वसन्ति सुखेन यस्मिंस्तेन (**ऋतुना**) प्राप्तव्येन (**देवाः**) दिव्याः (**वसवः**) पृथिव्यादयोऽष्टौ प्राथमकल्पिका विद्वांसो वा (**त्रिवृता**) यस्त्रिषु कालेषु वर्त्तते तेन (**स्तुताः**) प्राप्तस्तुतयः (**रथन्तरेण**) यत्र रथेन तरति तत्, तेन (**तेजसा**) तीक्ष्णस्वरूपेण (**हविः**) दातव्यं वस्तु (**इन्द्रे**) सूर्य्यप्रकाशे (**वयः**) आयुर्वर्धकम् (**दधुः**) ॥ २३ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! ये वसवो देवा स्तुतास्त्रिवृता वसन्तेनर्तुना सह वर्तमाना रथन्तरेण तेजसेन्द्रे हविर्वयो दधुस्तान् स्वरूपतो विज्ञाय संगच्छद्ध्वम् ॥ २३ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! ये वसवः** पृथिव्यादयाऽष्टौ प्राथमकल्पिका विद्वांसो वा **देवाः** दिव्याः **स्तुताः** प्राप्तस्तुतयः, **त्रिवृता** यस्त्रिषु कालेषु वर्त्तते तेन **वसन्तेन** वसन्ति सुखेन यस्मिंस्तेन **ऋतुना** प्राप्तव्येन **सह वर्तमाना, रथन्तरेण** यत्र रथेन तरति तत्, तेन **तेजसा** तीक्षणस्वरूपेण **इन्द्रे** सूर्य्यप्रकाशे **हविः** दातव्यं वस्तु **वयः** आयुर्वर्धकं **दधुः, तान् स्वरूपतो विज्ञाय संगच्छध्वम्** ॥२१।२३॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो—(वसवः) पृथिवी आदि आठ वसु वा प्रथम कोटि के विद्वान् (देवाः) दिव्य गुणों से युक्त और (स्तुताः) स्तुति को प्राप्त हैं, तथा (त्रिवृता) तीनों कालों में वर्तमान, (वसन्तेन) जिसमें मनुष्य सुख से रहते हैं उस वसन्त, (ऋतुना) प्राप्त करने योग्य ऋतु के साथ, वर्तमान होकर (रथन्तरेण) रथ से पार करने योग्य (तेजसा) अपने तीक्ष्ण स्वरूप से (इन्द्रे) सूर्य के प्रकाश में (वयः) आयु को बढ़ाने वाली (हविः) दान करने योग्य वस्तु को (दधुः) धारण करते हैं, उन्हें स्वरूप से जानकर उनका संग करो ॥२१।२३॥

भावार्थः—ये मनुष्या वासहेतून् दिव्यान् पृथिव्यादीन् विदुषो वा वसन्ते संगच्छेरँस्ते वासन्तिकं सुखं प्राप्नुयुः॥ २१ । २३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य वास के हेतु दिव्य गुणों से युक्त पृथिवी आदि वा विद्वानों का वसन्त ऋतु में संग करते हैं वे वसन्त-ऋतु के सुख को प्राप्त करते हैं ॥ २१ । २३ ॥

भा० पदार्थः—वसवः=वासहेतवः पृथिव्यादयः विद्वांसो वा । देवाः=दिव्याः पृथिव्यादयो विद्वांसो वा । वयः=वासन्तिकं सुखम् ॥

भाष्यसार—**प्रजा के लिए उपदेश**—पृथिवी आदि आठ वसु वा विद्वान् लोग दिव्य गुणों से युक्त हैं, स्तुति के योग्य हैं। ये भूत, भविष्यत्, वर्तमान इन तीनों कालों में विद्यमान वसन्त ऋतु के साथ रहने वाले हैं। ये तीक्ष्ण स्वरूप से सूर्य के प्रकाश में यज्ञ के द्वारा हवि तथा आयु को स्थापित करते हैं। प्रजा-जन इन्हें स्वरूप से जानकर इनका संग करें और वसन्त-ऋतु के सुख को प्राप्त करें ॥ २१ । २३ ॥ ●

स्वस्त्यात्रेयः । **विश्वे देवाः**=विद्वांसः । अनुष्टुप् गान्धारः ॥

मध्यमब्रह्मचर्यविषयमाह ॥

मध्यम ब्रह्मचर्य विषय का उपदेश किया है ॥

ग्रीष्मेण ऽ ऋतुना देवा रुद्राः पञ्चदशे स्तुताः । बृहता यशसा बलꣳ हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥२४॥

पदार्थः—(**ग्रीष्मेण**) सर्वरसग्रहीत्रा (**ऋतुना**) औष्ण्यं प्रापकेन (**देवाः**) दिव्यगुणाः (**रुद्राः**) दश प्राणा एकादश आत्मा मध्यमविद्वांसो वा (**पञ्चदशे**) (**स्तुताः**) प्रशस्ताः (**बृहता**) महता (**यशसा**)

कीर्त्या (**बलम्**) (**हविः**) आदातव्यम् (**इन्द्रे**) जीवे (**वयः**) जीवनम् (**दधुः**) दध्युः ॥ २४ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! ये स्तुता रुद्रा देवाः पञ्चदशे ग्रीष्मेणर्त्तुना बृहता यशसेन्द्रे हविर्बलं वयश्च दधुस्तान् यूयं विजानीत ॥ २४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **ये स्तुताः** प्रशस्ताः **रुद्राः** दश प्राणा एकादश आत्मा मध्यमविद्वांसो वा **देवाः** दिव्यगुणाः **पञ्चदशे, ग्रीष्मेण** सर्वरसग्रहीत्रा **ऋतुना** औष्ण्यं प्रापकेन, **बृहता** महता **यशसा** कीर्त्या **इन्द्रे** जीवे **हविः** आदातव्यं **बलं वयः** जीवनं **च दधुः** दध्युः; **तान् यूयं विजानीत** ॥ २१ । २४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो (स्तुताः) प्रशस्त (रुद्राः) दश प्राण, ग्यारहवां आत्मा अथवा मध्यम कोटि के (देवाः) दिव्य गुणों से युक्त विद्वान् लोग—(पंचदशे) पन्द्रह (ग्रीष्मेण) सब रसों को ग्रहण करने वाले ग्रीष्म (ऋतुना) उष्णता-प्रापक ऋतु से, (बृहता) महान् (यशसा) कीर्ति से (इन्द्रे) जीव में (हविः) ग्रहण करने योग्य बल (वयः) जीवन को (दधुः) धारण करते हैं; उन्हें तुम जानो ॥ २१ । २४ ॥

भावार्थः—ये चतुश्चत्वारिंशद् वर्षयुक्तेन ब्रह्मचर्येण जातविद्वांसोऽन्येषां शरीरात्मबलमुन्नयन्ति, ते भाग्यशालिनो जायन्ते ॥ २१ । २४ ॥

भावार्थ—जो ४४ वर्ष ब्रह्मचर्य-पालन से विद्वान् होकर दूसरों के शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाते हैं वे भाग्यशाली होते हैं ॥ २१ । २४ ॥

भा० पदार्थः—रुद्राः=चतुश्चत्वारिंशद्वर्षयुक्तेन ब्रह्मचर्येण जातविद्वांसः । हविः=शरीरात्मबलम् । दधुः=उन्नयन्ति ॥

भाष्यसार—**मध्यम ब्रह्मचर्य**—प्रशस्त दश प्राण, ग्यारहवां आत्मा अथवा ४४ वर्ष ब्रह्मचर्य-पालन से विद्वान् हुए मध्यम-कोटि के रुद्र लोग दिव्य गुणों से युक्त हैं । वे ग्रीष्म-ऋतु तथा महान् कीर्ति से आत्मा में बल और जीवन को स्थापित करते हैं । अन्यों के शरीर और आत्मा को बढ़ा कर भाग्यशाली होते हैं ॥ २१ । २४ ॥ ●

स्वस्त्यात्रेयः । **इन्द्रः=जीवः** । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

अथोत्तमब्रह्मचर्यविषयमाह ॥

अब उत्तम ब्रह्मचर्य विषय का उपदेश किया जाता है ॥

वर्षाभिर्ऋतुनादित्या स्तोमे सप्तदशे स्तुताः । वैरूपेण विशौजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥ २५ ॥

पदार्थः—(**वर्षाभिः**) वर्षन्ति मेघा यासु ताभिः (**ऋतुना**) (**आदित्याः**) द्वादश मासा उत्तमा विद्वांसो वा (**स्तोमे**) स्तुतिव्यवहारे (**सप्तदशे**) एतत्संख्याके (**स्तुताः**) प्रशंसिताः (**वैरूपेण**) विविधानां रूपाणां भावेन (**विशा**) प्रजया (**ओजसा**) बलेन (**हविः**) दातव्यम् (**इन्द्रे**) जीवे (**वयः**) कालविज्ञानम् (**दधुः**) दध्युः ॥ २५ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! ये वर्षाभिर्ऋतुना वैरूपेणौजसा विशा सह वर्त्तमाना आदित्याः सप्तदशे स्तोमे स्तुता इन्द्रे हविर्वयो दधुस्तान् यूयं विज्ञायोपकुरुत ॥ २५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **ये वर्षाभिः** वर्षन्ति मेघा यासु ताभिः **ऋतुना, वैरूपेण**

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो—(वर्षाभिः) जिसमें बादल बरसते हैं उस वर्षा (ऋतुना) ऋतु,

विविधानां रूपाणां भावेन **ओजसा** बलेन, **विशा** प्रजया **सह वर्त्तमाना आदित्याः** द्वादश मासा उत्तमा विद्वांसो वा, **सप्तदशे** एतत्संख्याके **स्तोमे** स्तुतिव्यवहारे **स्तुताः** प्रशंसिताः, **इन्द्रे** जीवे **हविः** दातव्यं **वयः** कालविज्ञानं **दधुः** दध्युः, **तान् यूयं विज्ञायोपकुरुत** ॥ २१ । २५ ॥

(वैरूपेण) विविध रूप वाले (ओजसा) बल तथा (विशा) प्रजा के साथ वर्तमान (आदित्याः) बारह मास वा विद्वान् लोग (सप्तदशे) सतरहवें (स्तोमे) स्तुति-व्यवहार में (स्तुताः) प्रशंसित होकर (इन्द्रे) जीवात्मा में (हविः) देने योग्य (वयः) काल-विज्ञान को (दधुः) धारण करते हैं; उन्हें तुम लोग जानकर उपकार ग्रहण करो ॥ २१ । २५ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या विद्वत्संगेन कालस्य स्थूलसूक्ष्मगती विज्ञायैकक्षणमपि व्यर्थं न नयन्ति ते विचित्रमैश्वर्यमाप्नुवन्ति ॥ २१ । २५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्वानों के संग से काल की स्थूल और सूक्ष्म गति को जानकर एक क्षण भी व्यर्थ नहीं गंवाते हैं वे विचित्र ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं ॥ २१ । २५ ॥

भा० पदार्थः—वयः=कालस्य स्थूलसूक्ष्मगतिम् । विचित्रमैश्वर्यम् । दधुः=आप्नुवन्ति ॥

भाष्यसार—उत्तम ब्रह्मचर्य का उपदेश—जो मनुष्य वर्षा ऋतु, विविध बल तथा प्रजा के साथ रहने वाले आदित्य अर्थात् वर्ष के बारह मास तथा उत्तम ब्रह्मचर्य को धारण करने वाले विद्वानों के संग से काल की स्थूल और सूक्ष्म गति को जान लेते हैं और जीवन के एक क्षण को भी व्यर्थ नहीं जाने देते हैं, वे संसार में विचित्र ऐश्वर्य वाले होते हैं ॥ २१ । २५ ॥ ●

स्वस्त्यात्रेयः । **विश्वेदेवाः=सर्वे विद्वांसः** । विराड् बृहती । मध्यमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

उत्तम ब्रह्मचर्य का फिर उपदेश किया है ॥

शारदेन ऽ ऋतुना देवा ऽ एकविꣳश ऽ ऋभवं स्तुताः ।
वैराजेन श्रिया श्रियꣳ हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥ २६ ॥

पदार्थः—(**शारदेन**) शरदि भवेन (**ऋतुना**) (**देवाः**) (**एकविंशे**) एतत्संख्याके (**ऋभवः**) मेधाविनः (**स्तुताः**) (**वैराजेन**) विराजि भवेनार्थेन (**श्रिया**) शोभया लक्ष्म्या वा (**श्रियम्**) लक्ष्मीम् (**हविः**) दातव्यमादातव्यम् (**इन्द्रे**) जीवे (**वयः**) कमनीयं सुखम् (**दधुः**) दध्युः ॥ २६ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! य एकविंशे स्तुता ऋभवो देवाः शारदेनर्तुना वैराजेन श्रिया सह वर्त्तमाना इन्द्रे श्रियं हविर्वयश्च दधुस्तान् यूयं सेवध्वम् ॥ २६ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! य एकविंशे** एतत्संख्याके **स्तुता ऋभवः** मेधाविनः **देवाः, शारदेन** शरदि भवेन **ऋतुना, वैराजेन** विराजि भवेनार्थेन, **श्रिया** शोभया लक्ष्म्या वा **सह वर्त्तमानाः, इन्द्रे** जीवे **श्रियं** लक्ष्मीं **हविः** दातव्य-मादातव्यं **वयः** कमनीयं सुखं **च दधुः** दध्युः, **तान् यूयं सेवध्वम्** ॥ २१ । २६ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो (एकविंशे) इक्कीसवें स्तुति-व्यवहार में (स्तुताः) स्तुति को प्राप्त (ऋभवः) मेधावी (देवाः) विद्वान् लोग—(शारदेन) शरद् (ऋतुना) ऋतु, (वैराजेन) विराट् पुरुष में विद्यमान अर्थ, (श्रिया) शोभा वा लक्ष्मी के साथ वर्त्तमान होकर (इन्द्रे) जीवात्मा में (श्रियम्) लक्ष्मी, (हविः) देने-लेने योग्य पदार्थ

और (वयः) कमनीय सुख को (दधुः) धारण करते हैं; उनकी तुम सेवा करो ॥ २१ । २६ ॥

भावार्थः—ये सुपथ्यकारिणो जनाः शरदि अरोगा भवन्ति, ते श्रियमाप्नुवन्ति ॥ २१ । २६ ॥

भावार्थ—जो सुपथ्य सेवन करने वाले शरद् ऋतु में नीरोग होते हैं वे श्री=लक्ष्मी को प्राप्त करते हैं ॥ २१ । २६ ॥

भा० पदार्थः—ऋभवः=सुपथ्यकारिणो जनाः । दधुः=आप्नुवन्ति ॥

भाष्यसार—**उत्तम ब्रह्मचर्य का उपदेश**—शरद् ऋतु, विराट् पुरुष में विद्यमान गुण शोभा वा लक्ष्मी से युक्त, उत्तम ब्रह्मचर्य का सेवन करने वाले मेधावी विद्वान् लोग मनुष्यों में लक्ष्मी और कमनीय सुख को स्थापित करें । ऐसे मेधावी विद्वानों की सब सेवा करें । सब मनुष्य शरद् ऋतु में सुपथ्य सेवन करने वाले होकर नीरोग रहें, क्योंकि नीरोग पुरुष ही श्री को प्राप्त कर सकते हैं ॥ २१ । २६ ॥ ●

आत्रेयः । **विद्वांसः=स्पष्टम्** । भुरिगनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

उत्तम ब्रह्मचर्य का फिर उपदेश किया है ॥

हे॒मन्तेन॑ ऽ ऋ॒तुना॑ दे॒वास्त्रि॒ण॒वे म॒रुतः॑ स्तु॒ताः । बले॑न॒ शक्व॑री॒ः सहो॑ ह॒विरि॑न्द्रे॒ वयो॑ द॒धुः ॥ २७ ॥

पदार्थः—(हेमन्तेन) वर्द्धन्ते देहा यस्मिंस्तेन (**ऋतुना**) (**देवाः**) दिव्यगुणाः (**त्रिणवे**) त्रिगुणा नव यस्मिंस्तस्मिन् सप्तविंशे व्यवहारे (**मरुतः**) मनुष्याः (**स्तुताः**) (**बलेन**) मेघेन (**शक्वरीः**) शक्तिनिमित्ता गाः (**सहः**) बलम् (**हविः**) (**इन्द्रे**) (**वयः**) इष्टसुखम् (**दधुः**) ॥ २७ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! ये त्रिणवे हेमन्तेनर्तना सह वर्त्तमाना स्तुता देवा मरुतो बलेन शक्वरीः सहो हविर्वय इन्द्रे दधुस्तान् सेवध्वम् ॥ २७ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! ये त्रिणवे** त्रिगुणा नव यस्मिंस्तस्मिन् सप्तविंशे व्यवहारे **हेमन्तेन** वर्द्धन्ते देहा यस्मिंस्तेन **ऋतुना सह वर्त्तमानाः स्तुता देवाः** दिव्यगुणाः **मरुतः** मनुष्याः, **बलेन** मेघेन **शक्वरीः** शक्तिनिमित्ता गाः, **सहः** बलं, **हविः**, **वयः** इष्टसुखम् **इन्द्रे दधुः तान् सेवध्वम्** ॥ २१ । २७ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो (त्रिणवे) तीन गुणा नौ ९×३=२७ सत्ताइसवें व्यवहार में (हेमन्ते) जिसमें देह बढ़ते हैं उस हेमन्त (ऋतुना) ऋतु के साथ वर्तमान, (स्तुताः) स्तुति को प्राप्त (देवाः) दिव्य गुणों वाले (मरुतः) मनुष्य हैं; वे (बलेन) मेघ के द्वारा (शक्वरीः) शक्ति की निमित्त गाय, (सहः) बल, (हविः) देने-लेने योग्य पदार्थ और (वयः) इष्ट सुख को (इन्द्रे) जीवात्मा में (दधुः) धारण करते हैं; उनकी सेवा करो ॥२७॥

भावार्थः—ये सर्वरसपरिपाचके हेमन्ते यथायोग्यं व्यवहारं कुर्वन्ति, ते बलिष्ठा जायन्ते ॥ २१ । २७ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सब रसों का परिपाक करने वाले हेमन्त ऋतु में यथायोग्य व्यवहार करते हैं वे बलिष्ठ होते हैं ॥ २१ । २७ ॥

भा० पदार्थः—हेमन्तेन=सर्वरसपरिपाचकेन हेमन्तेन ।

भाष्यसार—उत्तम ब्रह्मचर्य का उपदेश—सब रसों का परिपाक करने वाले हेमन्त ऋतु में उत्तम ब्रह्मचर्य का सेवन करने वाले, दिव्य गुणों से युक्त विद्वान् लोग मेघ के द्वारा मनुष्यों में शक्तिशाली गाय, बल और अभीष्ट सुख को स्थापित करें। सब मनुष्य ऐसे विद्वानों की सेवा करें। हेमन्त ऋतु में यथायोग्य आहार-विहार करके बलवान् बनें ॥ २१ । २७ ॥

स्वस्त्यात्रेयः । **विश्वे देवाः**=**दिव्यपदार्थाः** । भुरिगनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

उत्तम ब्रह्मचर्य का फिर उपदेश किया है ॥

शैशिरेण ऽ ऋतुना देवास्त्रयस्त्रिꣳशेऽमृता स्तुताः ।
सत्येन रेवतीः क्षत्रꣳ हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥ २८ ॥

पदार्थः—(**शैशिरेण**) शिशिरेण (**ऋतुना**) (**देवाः**) दिव्यगुणकर्मस्वभावाः (**त्रयस्त्रिंशे**) वस्वादिसमूहे (**अमृताः**) स्वस्वरूपेण नित्याः (**स्तुताः**) प्रशंसिताः (**सत्येन**) (**रेवतीः**) धनवतीः शत्रुसेनोल्लङ्घिकाः प्रजाः (**क्षत्रम्**) धनं राज्यं वा (**हविः**) (**इन्द्रे**) (**वयः**) (**दधुः**) ॥ २८ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! येऽमृताः स्तुताः शैशिरेणर्त्तुना देवाः सत्येन सह त्रयस्त्रिंशे विद्वांसो रेवतीरिन्द्रे हविः क्षत्रं वयश्च दधुस्तेभ्यो भूम्यादिविद्या गृह्णीत ॥ २८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! **येऽमृताः** स्वस्वरूपेण नित्याः **स्तुताः** प्रशंसिताः, **शैशिरेण** शिशिरेण **ऋतुना, देवाः** दिव्यगुणकर्मस्वभावाः, **सत्येन सह त्रयस्त्रिंशे** वस्वादिसमूहे **विद्वांसो, रेवतीः** धनवतीः शत्रुसेनोल्लङ्घिकाः प्रजाः **इन्द्रे, हविः, क्षत्रं** धनं राज्यं वा **वयश्च दधुः, तेभ्यो भूम्यादिविद्या गृह्णीत** ॥ २१ । २८ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो (अमृताः) स्वस्वरूप से नित्य, (स्तुताः) प्रशंसित, (शैशिरेण) शिशिर (ऋतुना) ऋतु के साथ, (देवाः) दिव्य गुण, कर्म, स्वभाव वाले, (सत्येन) सत्य के साथ (त्रयस्त्रिंशे) तैंतीस वसु आदि के समूह में विद्यमान विद्वान् लोग हैं, वे (रेवतीः) शत्रु-सेना का उल्लंघन करने वाली धनवान् प्रजा को (इन्द्रे) इन्द्र में (हविः) देने-लेने योग्य पदार्थ, (क्षत्रम्) धन वा राज्य और (वयः) इष्ट सुख को (दधुः) धारण करते हैं; उनसे भूमि आदि की विद्याओं को ग्रहण करो ॥ २१ । २८ ॥

भावार्थः—ये पूर्वोक्तानष्टौ वसून्, एकादश रुद्रान्, द्वादशाऽऽदित्यान्, विद्युतं, यज्ञं चेमान् त्रयस्त्रिंशद् दिव्यान् पदार्थान् जानन्ति, तेऽक्षय्यं सुखमाप्नुवन्ति ॥ २१ । २८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य—आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, विद्युत् और यज्ञ इन ३३ तैंतीस दिव्य पदार्थों को जानते हैं वे अक्षय सुख को प्राप्त करते हैं ॥ २१ । २८ ॥

भा० पदार्थः—त्रयस्त्रिंशे=अष्टौ वसवः, एकादश रुद्राः, द्वादशाऽऽदित्याः, विद्युत्, यज्ञश्चेति त्रयस्त्रिंशद् दिव्याः पदार्थाः । क्षत्रम्—अक्षय्यम् ॥

भाष्यसार—उत्तम ब्रह्मचर्य का उपदेश—आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, विद्युत् और यज्ञ ये ३३ तैंतीस पदार्थ दिव्य गुण कर्म स्वभाव वाले हैं, सत्य हैं, स्वस्वरूप से नित्य हैं, विद्वानों से

प्रशंसित हैं। उत्तम ब्रह्मचर्य का सेवन करने वाले विद्वान् लोग इन्हें जानकर मनुष्यों में शत्रु-सेना का उल्लंघन करने वाली धनवान् प्रजा, लेन-देन का व्यवहार, धन, राज्य और अभीष्ट अक्षय सुख को स्थापित करते हैं। सब मनुष्य ऐसे विद्वानों से पृथिवी आदि आठ वसु आदि की विद्या को ग्रहण करें ॥ २१ । २८ ॥

स्वस्त्यात्रेयः । **अग्न्यश्वीन्द्रसरस्वत्याद्या लिङ्गोक्ताः**=अग्निः, सूर्याचन्द्रमसौ, सुशिक्षिता वाक् इत्याद्याः । निचृदष्टिः । मध्यमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

उत्तम ब्रह्मचर्य का फिर उपदेश किया है ॥

होता॑ यक्षत्स॒मिधा॒ग्निमि॒डस्प॒देऽश्विनेन्द्र॒ꣳ सर॑स्वतीम॒जो धू॒म्रो न गो॒धूमैः॑ कुव॑लैर्भेष॒जं मधु॒ शष्पै॒र्न तेज॑ ऽ इन्द्रि॒यं पयः॒ सोमः॑ परि॒स्रुता॑ घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥ २९ ॥

पदार्थः—(**होता**) दाता (**यक्षत्**) यजेत्=संगच्छेत् (**समिधा**) इन्धनादिसाधनैः (**अग्निम्**) पावकम् (**इडस्पदे**) पृथिव्यन्नस्थाने (**अश्विना**) सूर्याचन्द्रमसौ (**इन्द्रम्**) ऐश्वर्यं जीवं वा (**सरस्वतीम्**) सुशिक्षितां वाचम् (**अजः**) प्राप्तव्यो मेषः (**धूम्रः**) धूम्रवर्णः (**न**) इव (**गोधूमैः**) (**कुवलैः**) कुत्सितं बलं यैस्तैर्बदरैः । अत्र कुशब्द इत्यस्माद्धातोरौणादिकः कलन् प्रत्ययः (**भेषजम्**) औषधम् (**मधु**) मधुरमुदकम् (**शष्पैः**) हिंसनैः (**न**) इव (**तेजः**) प्रागल्भ्यम् (**इन्द्रियम्**) धनम् (**पयः**) दुग्धमन्नं वा (**सोमः**) ओषधिगणः (**परिस्रुता**) परितः=सर्वतः स्रुता=प्राप्तेन रसेन (**घृतम्**) आज्यम् (**मधु**) क्षौद्रम् (**व्यन्तु**) प्राप्नुवन्तु (**आज्यस्य**) घृतम् । अत्र कर्मणि षष्ठी (**होतः**) (**यज**) ॥ २९ ॥

अन्वयः—हे होतर्यथा होतेडस्पदे समिधाग्निमश्विनेन्द्रं सरस्वतीमजो धूम्रो न कश्चिज्जीवो गोधूमैः कुवलैर्भेषजं यक्षत्तथा शष्पैर्न यानि तेजो मध्विन्द्रियं पयः परिस्रुता स सोमो घृतं मधु व्यन्तु तैः सह वर्त्तमानमाज्यस्य यज ॥ २९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे होतः ! यथा—**होता** दाता **इडस्पदे** पृथिव्यन्नस्थाने **समिधा** इन्धनादिसाधनैः **अग्नि** पावकम्, **अश्विना** सूर्याचन्द्रमसौ, **इन्द्रम्** ऐश्वर्यं जीवं वा, **सरस्वतीम्** सुशिक्षितां वाचम् **अजः** प्राप्तव्यो मेषः, **धूम्रः** धूम्रवर्णः **न** इव **कश्चिज्जीवो**, **गोधूमैः**, **कुवलैः** कुत्सितं बलं यैस्तैर्बदरैः, **भेषजम्** औषधं **यक्षत्** यजेत्=संगच्छेत् **तथा शष्पैः** हिंसनैः **न** इव **यानि**–**तेजः** प्रागल्भ्यं, **मधु** मधुरमुदकम्, **इन्द्रियं** धनं, **पयः** दुग्धमन्नं वा **परिस्रुता** परितः=सर्वतः स्रुता=प्राप्तेन रसेन **स सोमः** ओषधिगणः, **घृतम्** आज्यं, **मधु** क्षौद्रं **व्यन्तु** प्राप्नुवन्तु; **तैः सह वर्त्तमानस्याज्यस्य** घृतं **यज** ॥ २१ । २९ ॥

भाषार्थ—हे होता ! जैसे—(होता) दाता पुरुष (इडस्पदे) पृथिवी एवं अन्न के स्थान में (समिधा) इन्धन आदि साधनों से (अग्निम्) अग्नि को, (अश्विनौ) सूर्य और चन्द्रमा (इन्द्रम्) ऐश्वर्य वा जीव को; तथा (सरस्वतीम्) सुशिक्षित वाणी का; (धूम्रः) धूम्र वर्ण वाले (अजः) प्राप्त करने योग्य बकरे के (न) समान कोई जीव—(गोधूमैः) गेहूँ, (कुवलैः) कुत्सित बल के हेतु बेरों के साथ (भेषजम्) औषध को (यक्षत्) मिलाता है; वैसे (शष्पैः) हिंसाओं के (न) समान जो (तेजः) प्रगल्भता, (मधु) मधुर जल, (इन्द्रियम्) धन, (पयः) दूध वा अन्न को (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त रस के साथ वह (सोमः) ओषधि-गण (घृतम्) घृत, (मधु) मधु को (व्यन्तु) प्राप्त करें;

उनके साथ वर्तमान (आज्यस्य) घृत का (यज) यज्ञ कर ॥ २१ । २९ ॥

भावार्थः — अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ ॥ येऽस्य संसारस्य मध्ये साधनोपसाधनैः पृथिव्यादिविद्यां जानन्ति, ते सर्वे उत्तमान् पदार्थान् प्राप्नुवन्ति ॥ २१ । २९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ जो इस संसार में साधन-उपसाधनों से पृथिवी आदि की विद्या को जानते हैं वे सब उत्तम पदार्थों को प्राप्त करते हैं ॥२१।२९ ॥

भा० पदार्थः—इडस्पदे=अस्य संसारस्य मध्ये । समिधा=साधनोपसाधनैः ॥

भाष्यसार—१. **उत्तम ब्रह्मचर्य का उपदेश**—जो विद्वान् लोग इस संसार में उत्तम ब्रह्मचर्य का सेवन करके साधन-उपसाधनों से पृथिवी आदि की विद्या को जान लेते हैं वे अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, ऐश्वर्य, जीव, सुशिक्षित वाणी, भेड़ आदि पशु, धूम्रवर्ण के प्राणी, गेहूँ, बेर, ओषध, तेज, मधुर जल, धन, दूध, अन्न, ओषधि-गण, घृत और मधु आदि उत्तम पदार्थों को प्राप्त करते हैं ॥

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'न' पद है अतः उपमा अलङ्कार है। उपमा-वाचक पद को लुप्त मानकर वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार भी है। उपमा यह है कि सब मनुष्य उत्तम ब्रह्मचर्य का सेवन करने वाले विद्वान् के समान पृथिवी आदि की विद्या को जानकर उत्तम पदार्थों को प्राप्त करें ॥ २१ । २९ ॥

94

स्वस्त्यात्रेयः । **अश्व्यादयो लिङ्गोक्ताः**=सूर्याचन्द्रमसादयः ।
भुरिगत्यष्टिः । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

उत्तम ब्रह्मचर्य का फिर उपदेश किया है ॥

होता॑ यक्ष॒त्तनू॒नपा॒त्सर॑स्वती॒मवि॑र्मे॒षो न भे॑ष॒जं प॒था मधु॑म॒ता भर॑न्न॒श्विनेन्द्रा॑य वी॒र्यं॒ बद॑रैरुप॒वाका॑भिर्भेष॒जं तोक्म॑भिः॒ पयः॒ सोमः॑ परि॒स्रुता॑ घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥३०॥

पदार्थः—(**होता**) आदाता (**यक्षत्**) यजेत् (**तनूनपात्**) यस्तन्वा ऊनं पाति सः (**सरस्वतीम्**) बहुज्ञानवतीं वाचम् (**अविः**) (**मेषः**) (**न**) इव (**भेषजम्**) ओषधम् (**पथा**) मार्गेण (**मधुमता**) बहूदकयुक्तेन (**भरन्**) धरन् (**अश्विना**) (**इन्द्राय**) ऐश्वर्याय (**वीर्यम्**) पराक्रमम् (**बदरैः**) बदर्याः फलैः (**उपवाकाभिः**) उपदेशक्रियाभिः (**भेषजम्**) (**तोक्मभिः**) अपत्यैः (**पयः**) जलम् (**सोमः**) ओषधिगणः (**परिस्रुता**) परितः स्रुता=प्राप्तेन (**घृतम्**) (**मधु**) (**व्यन्तु**) (**आज्यस्य**) (होतः) हवनकर्त्तः (**यज**) ॥ ३० ॥

अन्वयः—हे होतर्यथा तनूनपाद्धोता सरस्वतीमविर्मेषो न मधुमता पथा भेषजं भरन्निन्द्रायाऽश्विना वीर्यं बदरैरुपवाकाभिर्भेषजं यक्षत् तथा यानि तोक्मभिः पयः परिस्रुता सह सोमो घृतं मधु च व्यन्तु तैस्सह वर्त्तमानस्त्वमाज्यस्य यज ॥ ३० ॥

सपदार्थान्वयः—हे होतः हवनकर्त्तः ! **यथा तनूनपात्** यस्तन्वा ऊनं पाति सः **होता** आदाता, **सरस्वतीं** बहुज्ञानवतीं वाचम् **अविर्मेषो न** इव **मधुमता** बहूदकयुक्तेन **पथा** मार्गेण

भाषार्थ—हे (होतः) हवन करने वाले पुरुष ! जैसे—(तनूनपात्) शरीर से निर्बल की रक्षा करने वाला, (होता) लेने वाला पुरुष—(सरस्वतीम्) बहुत ज्ञान वाली वाणी को, (अविः)

भेषजम् औषधं **भरन्** धरन्, **इन्द्राय** ऐश्वर्याय **अश्विना वीर्यं** पराक्रमं, **बदरैः** बदर्याः फलैः **उपवाकाभिः** उपदेशक्रियाभिः **भेषजम्** औषधं **यक्षत्** यजेत् **तथा यानि तोक्मभिः** अपत्यैः **पयः** जलं, **परिस्रुता** परितः स्रुता=प्राप्तेन **सह सोमः** ओषधिगणः, **घृतं, मधु च व्यन्तु, तैस्सह वर्त्तमानस्त्वमाज्यस्य यज** ॥ २१ । ३० ॥

भेड़ (मेषः) बकरे के (न) समान (मधुमता) बहुत जल से युक्त (पथा) मार्ग से (भेषजम्) औषध को (भरन्) ग्रहण करता हुआ, (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिए (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा (वीर्यम्) पराक्रम को, (बदरैः) बेरी-फलों से तथा (उपवाकाभिः) उपदेशात्मक क्रियाओं से (भेषजम्) औषध का (यक्षत्) यजन करता है, वैसे जो (तोक्मभिः) सन्तानों के साथ (पयः) जल, (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त रस के साथ (सोमः) ओषधि-गण, (घृतम्) घृत और (मधु) मधु को (व्यन्तु) प्राप्त करें, उनके साथ वर्त्तमान तू (आज्यस्य) घृत का (यज) यज्ञ कर ॥ २१ । ३० ॥

भावार्थः — अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ । ये संगन्तारो विद्यासुशिक्षासहितां वाचं प्राप्य, पथ्याहारविहारैर्वीर्यं वर्द्धयित्वा, पदार्थविज्ञानं प्राप्यैश्वर्यं वर्द्धयन्ति, ते जगद्भूषका भवन्ति ॥ २१ । ३० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमा अलंकार हैं। जो संग करने वाले मनुष्य विद्या और सुशिक्षा से युक्त वाणी को प्राप्त करके पथ्य आहार-विहार से वीर्य को बढ़ाकर, पदार्थ-विज्ञान को प्राप्त करके ऐश्वर्य को बढ़ाते हैं वे जगत् के भूषक होते हैं ॥ २१ । ३० ॥

भा० पदार्थः—होता=संगन्ता । सरस्वती=विद्यासुशिक्षासहिता वाक् । पथा=पथ्याहारविहारैः ॥

भाष्यसार—**१. उत्तम ब्रह्मचर्य का उपदेश**—उत्तम ब्रह्मचर्य का सेवन करने वाला विद्वान् शरीर से निर्बल पुरुष की रक्षा करने वाला होता है। बहुत ज्ञान वाली वाणी को ग्रहण करने वाला होता है। वह भेड़-बकरी आदि के समान बहुत जल से युक्त मार्ग से औषध को ग्रहण कर लेता है। ऐश्वर्य के लिए अध्यापक-उपदेशक तथा पराक्रम का संग करता है। पथ्य आहार-विहार से वीर्य को बढ़ाता है। विद्वानों के उपदेशानुसार बदरी-फलों से औषध को संगत करता है अर्थात् पदार्थ-विज्ञान को प्राप्त करके ऐश्वर्य को बढ़ाता है। सन्तानों के साथ जल, रस के साथ ओषधिगण, घृत और मधु आदि पदार्थों को प्राप्त करता है। उक्त विद्वान् जगत् का भूषक है ॥

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'न' पद है। अतः उपमा अलंकार है। उपमा-वाचक पद को लुप्त मानकर वाचकलुप्तोपमा अलंकार भी है। उपमा यह है कि विद्वान् मनुष्य भेड़-बकरी आदि के समान जल-युक्त मार्ग से औषध को प्राप्त करे, तथा होता मनुष्य उक्त विद्वान् के समान यज्ञ का अनुष्ठान करे ॥ २१ । ३० ॥ ●

स्वस्त्यात्रेयः । **अश्व्यादयः=द्यावापृथिव्यादयः** । अतिधृतिः । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

उत्तम ब्रह्मचर्य का फिर उपदेश किया है ॥

होता यक्षन्नराशंसं न नग्नहुं पतिं सुरया भेषजं मेषः सरस्वती भिषग्रथो न चन्द्र्यश्विनोर्वपाऽइन्द्रस्य वीर्यं बदरैरुपवाकाभिर्भेषजं तोक्मभिः पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३१ ॥

पदार्थः—(**होता**) दाता (**यक्षत्**) यजेत् (**नराशंसम्**) यो नरैराशस्यते=स्तूयते तम् (**न**) इव (**नग्नहुम्**) यो नग्नान्=दुष्टान् जुहोति=कारागृहे प्रक्षिपति तम्। अत्र हुधातोर्बाहुलकादौणादिको डुः प्रत्ययः (**पतिम्**) स्वामिनम् (**सुरया**) उदकेन। सुरेत्युदकनाम० ॥ निघं० १। १२ ॥ (**भेषजम्**) औषधम् (**मेषः**) उपदेष्टा (**सरस्वती**) विद्यासम्बन्धिनी वाक् (**भिषक्**) वैद्यः (**रथः**) (**न**) इव (**चन्द्री**) चन्द्रं=बहुविधं सुवर्णं विद्यते यस्य (**अश्विनाः**) द्यावापृथिव्योः (**वपाः**) वपन्ति याभिः क्रियाभिस्ताः (**इन्द्रस्य**) दुष्टजनविदारकस्य सकाशात् (**वीर्यम्**) वीरेषु साधु (**बदरैः**) बदरीफलैरिव (**उपवाकाभिः**) उपगताभिर्वाग्भिः (**भेषजम्**) चिकित्सकम् (**तोक्मभिः**) अपत्यैः (**पयः**) दुग्धम् (**सोमः**) (**परिस्रुता**) परितः स्रुता=प्राप्तेन (**घृतम्**) (**मधु**) (**व्यन्तु**) (**आज्यस्य**) (**होतः**) (**यज**) ॥ ३१ ॥

प्रमाणार्थ—(**सुरया**) उदकेन। 'सुरा' पद निघं० १। १२ में उदक (जल) नामों में पठित है ॥

अन्वयः—हे होतर्यथा होता नराशंसं नं नग्नहुं पतिं सुरया सह वर्त्तमानं भेषजमिन्द्रस्य वीर्यं यक्षत् मेषः सरस्वती भिषग्रथो न चन्द्रयश्विनोर्वपा बदरैरुपवाकाभिः सह भेषजं यक्षत्तथा यानि तोक्मभिः सह पयः परिस्रुता सह सोमो घृतं मधु च व्यन्तु तैः सह वर्त्तमानस्त्वमाज्यस्य यज ॥ ३१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे होतः! **यथा**—**होता** दाता **नराशंसं** यो नरैराशस्यते=स्तूयते तं **न** इव, **नग्नहुं** यो नग्नान्=दुष्टान् जुहोति=कारागृहे प्रक्षिपति तं, **पतिं** स्वामिनं, **सुरया** उदकेन **सह वर्त्तमानं भेषजम्** औषधम्, **इन्द्रस्य** दुष्टजनविदारकस्य **वीर्यं** वीरेषु साधु **यक्षत्** यजेत् **मेषः** उपदेष्टा, **सरस्वती** विद्यासम्बन्धिनी वाक्, **भिषक्** वैद्यः, **रथो न** इव **चन्द्री** चन्द्रं=बहुविधं सुवर्णं विद्यते यस्य [सः] **अश्विनोः** द्यावापृथिव्योः **वपाः** वपन्ति याभिः क्रियाभिस्ताः, **बदरैः** बदरीफलैरिव **उपवाकाभिः** उपगताभिर्वाग्भिः **सह भेषजं** चिकित्सकं **यक्षत्** यजेत् **तथा यानि तोक्मभिः** अपत्यैः **सह पयः** दुग्धं **परिस्रुता** परितः स्रुता=प्राप्तेन **सह, सोमो, घृतं, मधु च व्यन्तु; तैः सह वर्त्तमानस्त्वमाज्यस्य यज** ॥ २१। ३१ ॥

भाषार्थ—हे (होतः) होम करने वाले मनुष्य! जैसे—(होता) विद्या का दाता पुरुष—(नराशंसम्) नरों से स्तुति करने योग्य पुरुष के (न) तुल्य (नग्नहुम्) दुष्टों को कारागार में डालने वाले (पतिम्) स्वामी का, (सुरया) जल के साथ विद्यमान (भेषजम्) औषध का (इन्द्रस्य) दुष्टों का विदारण करने वाले पुरुष की (वीर्यम्) वीरता का (यक्षत्) संग करता है, वह (मेषः) उपदेशक (सरस्वती) विद्या-सम्बन्धी वाणी, (भिषक्) वैद्य, (रथः) रथ के (न) समान (चन्द्री) नाना प्रकार के सुवर्ण वाला होकर, (अश्विनोः) द्युलोक और भूलोक की (वपाः) वपन-क्रियाओं, तथा (बदरैः) बदरी फलों के समान (उपवाकाभिः) समीप प्राप्त वाणियों से (भेषजम्) चिकित्सक का (यक्षत्) संग करता है; तथा जिन्हें (तोक्मभिः) सन्तानों के साथ (पयः) दूध तथा (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त रस के साथ (सोमः) ओषधि-गण, (घृतम्) घृत, और (मधु) मधु (व्यन्तु) प्राप्त होते हैं; उनके साथ वर्तमान होकर तू (आज्यस्य) घृत का (यज) होम कर ॥ २१। ३१ ॥

भावार्थः — अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ ।। ये निर्लज्जान् दण्डयन्ति, प्रशंसनीयान् स्तुवन्ति, जलेन सहौषधं सेवन्ते, ते बलाऽऽरोग्ये प्राप्यैश्वर्यवन्तो जायन्ते ।। २१ । ३१ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ।। जो निर्लज्जों को दण्ड देते हैं, प्रशंसनीयों की स्तुति करते हैं, जल के साथ ओषध का सेवन करते हैं वे बल और आरोग्य को प्राप्त करके ऐश्वर्यवान् होते हैं ।। २१ । ३१ ।।

भा० पदार्थः—नग्नहुम्=यो निर्लज्जान् दण्डयति तम् । नराशंसम्=यः प्रशंसनीयान् स्तौति तम् । वीर्यम्=बलाऽऽरोग्यम् ।।

भाष्यसार—१. **उत्तम ब्रह्मचर्य का उपदेश**—विद्या का दाता, उत्तम ब्रह्मचर्य का सेवन करने वाला विद्वान् नरों से स्तुति करने योग्य तथा दुष्टों को कारागार में डालने वाले स्वामी का सत्कार करता है । निर्लज्जों को दण्ड देता है । प्रशंसनीयों की प्रशंसा करता है । जल के साथ ओषध का सेवन करता है । दुष्ट जनों का विदारण करने वाले इन्द्र के बल को बढ़ाता है । उपदेशक, विद्या सम्बन्धी वाणी और रथ के समान सुवर्ण वाला होकर द्युलोक और पृथिवी की वपन क्रियाओं का संग करता है । बदरी फलों के समान प्राप्त हुई वाणियों से चिकित्सकों का सत्कार करता है । बल और आरोग्य को प्राप्त करता है । सन्तान, दूध, रस, ओषधि-गण, घृत और मधु आदि ऐश्वर्य से सम्पन्न होता है ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'न' पद है अतः उपमा अलङ्कार है । उपमा-वाचक पद को लुप्त मानकर वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार भी है । उपमा यह है कि उत्तम ब्रह्मचर्य का सेवन करने वाले विद्या के दाता विद्वान् के समान होता जन मन्त्र में प्रतिपादित यज्ञ का अनुष्ठान करें ।। २१ । ३१ ।।

स्वस्त्यात्रेयः । **सरस्वत्यादयः**=वागादयः । विराडतिधृतिः । षड्जः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

होता यक्षदिडेडित ऽ आजुह्वानः सरस्वतीमिन्द्रं बलेन वर्धयन्नृषभेण गवेन्द्रियमश्विनेन्द्राय भेषजं यवैः कर्कन्धुभिर्मधु लाजैर्न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ।। ३२ ।।

पदार्थः—(**होता**) प्रशंसितुं योग्यः (**यक्षत्**) यजेत् प्रशंसितया (**इडा**) वाचा (**ईडितः**) प्रशंसितः (**आजुह्वानः**) सत्कारेणाहूतः (**सरस्वतीम्**) वाचम् (**इन्द्रम्**) ऐश्वर्य्यम् (**बलेन**) (**वर्द्धयन्**) (**ऋषभेण**) मन्तुं योग्येन (**गवा**) (**इन्द्रियम्**) धनम् (**अश्विना**) (**इन्द्राय**) ऐश्वर्याय (**भेषजम्**) (**यवैः**) यवादिभिरन्नैः (**कर्कन्धुभिः**) ये कर्क=बदरक्रियां दधति तैः (**मधु**) (**लाजैः**) प्रस्फुल्लितैरन्नैः (**न**) इव (**मासरम्**) ओदनम् (**पयः**) रसः (**सोमः**) ओषधिगणः (**परिस्रुता**) सर्वतः प्राप्तेन रसेन (**घृतम्**) (**मधु**) (**व्यन्तु**) (**आज्यस्य**) (**होतः**) (**यज**) ।। ३२ ।।

अन्वयः—हे होतर्य इडेडित आजुह्वानो होता बलेन सरस्वतीमिन्द्रमृषभेण गवेन्द्रियमश्विना यवैरिन्द्राय भेषजं वर्द्धयन् कर्कन्धुभिर्मधु लाजैर्न मासरं यक्षत्तथा यानि परिस्रुता सह सोमः पयो घृतं मधु व्यन्तु तैस्सह वर्त्तमानस्त्वमाज्यस्य यज ।। ३२ ।।

सपदार्थान्वयः—हे होतः ! **यः इडा** प्रशंसितया वाचा **ईडितः** प्रशंसितः, **आजुह्वानः** सत्कारेणाहूतः **होता** प्रशंसितुं योग्यः, **बलेन सरस्वतीं** वाचम् **इन्द्रम्** ऐश्वर्यम्, **ऋषभेण** मन्तुं योग्येन **गवेन्द्रियं** धनम् **अश्विना, यवैः** यवादिभिरन्नैः **इन्द्राय** ऐश्वर्याय **भेषजं वर्द्धयन्, कर्कन्धुभिः** ये कर्क=बदरक्रियां दधति तैः **मधु**, लाजैः प्रस्फुलितैरन्नैः **न** इव **मासरम्** ओदनं **यक्षत्** यजेत् **तथा यानि परिस्रुता** सर्वतः प्राप्तेन रसेन **सह, सोमः** ओषधिगणः, **पयः** रसः, **घृतं, मधु व्यन्तु तैस्सह वर्त्तमानस्त्वमाज्यस्य यज** ॥ २१ । ३२ ॥

भाषार्थ—हे (होतः) होम करने वाले मनुष्य ! जो (इडा) प्रशंसित वाणी से (ईडितः) प्रशंसित (आजुह्वानः) सत्कारपूर्वक निमन्त्रित, (होता) प्रशंसा के योग्य पुरुष है वह (बलेन) बल से (सरस्वतीम्) वाणी का, (इन्द्रम्) ऐश्वर्य का, (ऋषभेण) मान करने योग्य (गवा) गौ आदि से (इन्द्रियम्) धन का तथा (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक का, (यवैः) जौ आदि अन्नों से (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिए (भेषजम्) औषध को (वर्द्धयन्) बढ़ाता हुआ, (कर्कन्धुभिः) बेर की क्रिया को धारण करने वालों से (मधु) मधु का, (लाजैः) फूले हुए अन्नों के (न) समान (मासरम्) भात का (यक्षत्) यज्ञ करता है; तथा—जिन्हें (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त रस के साथ (सोमः) ओषधिगण, (पयः) रस, (घृतम्) घृत (मधु) मधु (व्यन्तु) प्राप्त होवें उनके साथ वर्त्तमान होकर तू (आज्यस्य) घृत का (यज) होम कर ॥ २१ । ३२ ॥

भावार्थः — अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्या ब्रह्मचर्येण शरीरात्मबलं, विद्वत्सेवया विद्यां, पुरुषार्थेनैश्वर्यं प्राप्य, पथ्यौषधसेवनाभ्यां रोगान् हत्वारोग्यमाप्नुयुः ॥ २१ । ३२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचक लुप्तोपमालङ्कार है ॥ मनुष्य ब्रह्मचर्य से शरीर और आत्मा के बल को, विद्वानों की सेवा से विद्या को तथा पुरुषार्थ से ऐश्वर्य को प्राप्त करके, पथ्य और औषध-सेवन से रोगों का नाश करके आरोग्य को प्राप्त करें ॥ २१ । ३२ ॥

भा० पदार्थः—बलेन=ब्रह्मचर्येण शरीरात्मबलं तेन। सरस्वतीम्=विद्याम्। ऋषभेण=पुरुषार्थेन। इन्द्रियम्=ऐश्वर्यम्। यवैः=पथ्यसेवनेन। भेषजम्=औषधसेवनम्।

भाष्यसार—१. **उत्तम ब्रह्मचर्य का उपदेश**—उत्तम ब्रह्मचर्य का सेवन करने वाला विद्वान् प्रशंसित वाणी से सर्वत्र प्रशंसा को प्राप्त होता है । उसे सब मनुष्य सत्कारपूर्वक निमन्त्रित करते हैं। वह शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाता है। विद्वानों की सेवा से सरस्वती=विद्या को प्राप्त होता है। गौ आदि पशुओं से धन को प्राप्त करता है। जौ आदि अन्नों से ऐश्वर्य-प्राप्ति के लिए प्रयत्न करता है । पथ्य और औषध-सेवन से रोगों का हनन करके आरोग्य को प्राप्त करता है। मधु, खील और भात का यज्ञ करता है। रस औषधि-गण, दूध, घृत और मधु आदि पदार्थों को प्राप्त करता है।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'न' पद है। अतः उपमा अलंकार है। उपमा-वाचक पद को लुप्त मानकर वाचक-लुप्तोपमा अलंकार भी है। उपमा यह है कि उत्तम ब्रह्मचर्य का सेवन करने वाले प्रशंसित विद्वान् के समान होता जन मन्त्र में प्रतिपादित यज्ञ का अनुष्ठान करें ॥ २१ । ३२ ॥

स्वस्त्यात्रेयः । **अश्व्यादयः**=वैद्यादयः । निचृदष्टिः । मध्यमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

उत्तम ब्रह्मचर्य का फिर उपदेश किया है ॥

होता यक्षद् बर्हिरूर्णम्रदा भिषङ् नासत्या भिषजाश्विनाश्वा शिशुमती भिषग्धेनुः सरस्वती भिषग्दुह ऽ इन्द्राय भेषजं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३३ ॥

पदार्थः—(**होता**) दाता (**यक्षत्**) (**बर्हिः**) अन्तरिक्षम् (**ऊर्णम्रदाः**) य ऊर्णानाच्छादकानि मृद्नन्ति ते (**भिषक्**) वैद्यः (**नासत्या**) सत्यकर्त्तारौ (**भिषजा**) सद्वैद्यौ (**अश्विना**) वैद्यकविद्याव्यापिनौ (**अश्वा**) आशुगमनशीला वडवा (**शिशुमती**) प्रशस्ताः शिशवो विद्यन्ते यस्याः सा (**भिषक्**) रोगनिवारकः (**धेनुः**) दुग्धदात्री गौः (**सरस्वती**) सरो=विज्ञानं विद्यते यस्यां सा (**भिषक्**) वैद्यः (**दुहे**) दोहनाय (**इन्द्राय**) जीवाय (**भेषजम्**) उदकम् । **भेषजमित्युदकनाम० ॥ निघं० १ । १२ ॥** (**पयः**) दुग्धम् (**सोमः**) ओषधिगणः (**परिस्रुता**) (**घृतम्**) (**मधु**) (**व्यन्तु**) (**आज्यस्य**) (**होतः**) (**यज**) ॥ ३३ ॥

अन्वयः—हे होतर्यथा होतोर्णम्रदा भिषक् शिशुमत्यश्वा च दुहे बर्हिर्यक्षत् । नासत्याऽश्विना भिषजा यजेतां भिषग्धेनुः सरस्वती भिषगिन्द्राय यक्षत्तथा यानि परिस्रुता भेषजं पयः सोमो घृतं मधु व्यन्तु तैः सह वर्त्तमानस्त्वमाज्यस्य यज ॥ ३३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे होतः ! यथा-**होता** दाता, **ऊर्णम्रदाः** य ऊर्णानाच्छादकानि मृद्नन्ति ते, **भिषक्** वैद्यः, **शिशुमती** प्रशस्ताः शिशवो विद्यन्ते यस्याः सा **अश्वा** आशु गमनशीला वडवा **च**, **दुहे** दोहनाय **बर्हिः** अन्तरिक्षं **यक्षत्**, **नासत्या** सत्यकर्त्तारौ **अश्विना** वैद्यकविद्याव्यापिनौ **भिषजा** सद्वैद्यौ **यजेताम्**, **भिषक्** वैद्यः, **धेनुः** दुग्धदात्री गौः, **सरस्वती** सरो=विज्ञानं विद्यते यस्यां सा **भिषक्** रोगनिवारकः **इन्द्राय** जीवाय **यक्षत्**, **तथा—यानि परिस्रुता भेषजम्** उदकं, **पयः** दुग्धं, **सोमः** ओषधिगणः, **घृतं, मधु व्यन्तु; तैः सह वर्त्तमानस्त्वमाज्यस्य यज** ॥ २१ । ३३ ॥

भाषार्थ—हे (होतः) होम करने वाले मनुष्य ! जैसे (होता) विद्या दान करने वाला, (ऊर्णम्रदाः) सुख को ढापने वाले लोगों का मर्दन करने वाले जन, (भिषक्) वैद्य और (शिशुमती) प्रशस्त शिशुओं वाली (अश्वा) शीघ्र चलने वाली घोड़ी (दुहे) सुख से परिपूर्ण करने के लिए (बर्हिः) आकाश का (यक्षत्) संग करती है; (नासत्या) सत्य व्यवहार करने वाले (अश्विना) वैद्यक विद्या में व्यापक (भिषजा) दो श्रेष्ठ वैद्य पदार्थों को संगत करते हैं, (भिषक्) वैद्य, (धेनुः) दुधारू गाय, (सरस्वती) विज्ञान वाली वाणी तथा (भिषक्) रोगों का निवारण करने वाला साधारण वैद्य (इन्द्राय) जीव के लिए (यक्षत्) सुख प्रदान करता है वैसे जिन्हें (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त रस के साथ (सोमः) ओषधि-गण (पयः) रस, (घृतम्) घृत (मधु) (व्यन्तु) प्राप्त होवें । उनके साथ वर्तमान होकर तू (आज्यस्य) घृत का (यज) होम कर ॥ २१ । ३३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यदि मनुष्या विद्यासंगतिभ्यां सर्वेभ्यः पदार्थेभ्य

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है ॥ यदि मनुष्य विद्या और संगति से सब

उपकारान् गृह्णीयुस्तर्हि वाय्वग्निवत् सर्वविद्यासुखानि व्याप्नुयुः ॥ २१ । ३३ ॥

पदार्थों से उपकार ग्रहण करें तो वायु और अग्नि के समान सब विद्यासुखों को व्याप्त कर सकते हैं ॥ २१ । ३३ ॥

भाष्यसार—१. **उत्तम ब्रह्मचर्य का उपदेश**—उत्तम ब्रह्मचर्य का सेवन करने वाला, विद्या का दाता विद्वान्, जगत् को सुख से पूरण करने के लिए आकाश को यज्ञ से व्याप्त करता है। सुख को आच्छादित करने वाले लोगों का मर्दन करने वाले पुरुष भी आकाश को यज्ञ से व्याप्त करते हैं। वैद्य लोग भी आकाश को यज्ञ से सुगन्धित करते हैं। शीघ्र चलने वाली घोड़ी भी सवार को सुख से पूरण करने के लिए आकाश का संग करती है अर्थात् आकाश में दौड़ती है। सत्य व्यवहार करने वाले वैद्यक विद्या के ज्ञाता श्रेष्ठ वैद्य लोग सबको सुख से पूरण करने के लिए पदार्थों को परस्पर मिलाते हैं। वैद्य, गाय और सरस्वती, जीव को सुख प्रदान करती हैं। जो मनुष्य इस प्रकार विद्या और संगति से सब पदार्थों से उपकार ग्रहण करते हैं वे जैसे वायु अग्नि सब में व्याप्त हैं वैसे सब विद्या जन्य सुखों में व्याप्त होते हैं और रस, ओषधि-गण, दूध, घृत और मधु आदि पदार्थों को प्राप्त करते हैं।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक पद लुप्त है। अतः वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि उत्तम ब्रह्मचर्य का सेवन करने वाले, विद्या के दाता विद्वानों आदि के समान होता जन मन्त्र में प्रतिपादित यज्ञ का अनुष्ठान करें ॥ २१ । ३३ ॥ ●

स्वस्त्यात्रेयः । **अश्व्यादयः**=**सूर्याचन्द्रमसौ आदयः** । भुरिगतिधृतिः । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

उत्तम ब्रह्मचर्य का फिर उपदेश किया है ॥

होता यक्षदुरो दिशः कवष्यो न व्यचस्वतीरश्विभ्यां न दुरो दिश ऽ इन्द्रो न रोदसी दुघे दुहे धेनुः सरस्वत्यश्विनेन्द्राय भेषजꣳ शुक्रं न ज्योतिरिन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३४ ॥

पदार्थः—(**होता**) आदाता (**यक्षत्**) (**दुरः**) द्वाराणि (**दिशः**) (**कवष्यः**) सच्छिद्राः (**न**) इव (**व्यचस्वतीः**) (**अश्विभ्याम्**) इन्द्राग्निभ्याम् (**न**) इव (**दुरः**) द्वाराणि (**दिशः**) (**इन्द्रः**) विद्युत् (**न**) इव (**रोदसी**) द्यावापृथिव्यौ (**दुघे**) अत्र वा छन्दसीति केवलादपि कप् प्रत्ययः (**दुहे**) दोहनाय=प्रपूरणाय (**धेनुः**) धेनुरिव (**सरस्वती**) विज्ञानवती वाक् (**अश्विना**) सूर्याचन्द्रमसौ (**इन्द्राय**) जीवाय (**भेषजम्**) औषधम् (**शुक्रम्**) वीर्य्यकरमुदकम् । **शुक्रमित्युदकनाम० ॥ निघं० १ । १२ ॥** (**न**) इव (**ज्योतिः**) प्रकाशकम् (**इन्द्रियम्**) मन आदि (**पयः**) दुग्धम् (**सोमः**) ओषधिगणः (**परिस्रुता**) (**घृतम्**) (**मधु**) (**व्यन्तु**) (**आज्यस्य**) (**होतः**) दातः (**यज**) ॥ ३४ ॥

अन्वयः—हे होतर्यथा होता कवष्यो न दुरो व्यचस्वतीर्दिशोऽश्विभ्यां न दुरो दिश इन्द्रो न दुघे रोदसी धेनुः सरस्वतीन्द्रायाश्विना शुक्रं न भेषजं ज्योतिरिन्द्रियं दुहे यक्षत्तथा यानि परिस्रुता पयः सोमो घृतं मधु व्यन्तु तैः सह वर्तमानस्त्वमाज्यस्य यज ॥ ३४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे होतः ! दातः ! यथा—**होता** आदाता **कवष्यः** सच्छिद्राः **न** इव **दुरः** द्वाराणि, **व्यचस्वतीर्दिशोऽश्विभ्याम्** इन्द्राग्निभ्यां

भाषार्थ—हे (होतः) दाता पुरुष ! जैसे (होता) लेने वाला मनुष्य (कवष्यः) छिद्रों वाली वस्तुओं को (दुरः) द्वारों के (न) समान, (व्यच-

न इव, **दुरः** द्वाराणि **दिश इन्द्रः** विद्युत् **न** इव, **दुघे रोदसी** द्यावापृथिव्यौ **धेनुः** धेनुरिव, **सरस्वती** विज्ञानवती वाक्, **इन्द्राय** जीवाय **अश्विना** सूर्याचन्द्रमसौ **शुक्रं** वीर्यकरमुदकं **न** इव **भेषजम्** औषधं, **ज्योतिः** प्रकाशकम् **इन्द्रियं** मन आदि **दुहे** दोहनाय=प्रपूरणाय **यक्षत्**, **तथा यानि परिस्रुता पयः** दुग्धं, **सोमः** ओषधिगणः, **घृतं**, **मधु व्यन्तु**, **तैः सह वर्तमानस्त्वमाज्यस्य यज** ॥ २१ । ३४ ॥

स्वतीः) व्यापक (दिशः) दिशाओं को (अश्विभ्याम्) इन्द्र और अग्नि के (न) समान, (दुरः) द्वारों तथा (दिशः) दिशाओं को (इन्द्रः) विद्युत् के (न) समान (दुघे) पूर्ण (रोदसी) द्युलोक और पृथिवी को (धेनुः) गाय के समान, (सरस्वती) विज्ञान वाली वाणी, (इन्द्राय) जीव के लिए (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा को (शुक्रम्) बलकारी जल के (न) समान, (भेषजम्) औषध, (ज्योतिः) प्रकाशक (इन्द्रियम्) मन आदि को (दुहे) पूरण करने के लिए (यक्षत्) संगत करता है; वैसे जिन्हें (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त रस के साथ (पयः) दूध, (सोमः) ओषधिगण, (घृतम्) घृत और (मधु) मधु (व्यन्तु) प्राप्त होवें, उनके साथ वर्तमान होकर तू (आज्यस्य) घृत का (यज) होम कर ॥ २१ । ३४ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ । ये मनुष्या सर्वदिग्द्वाराणि सर्वर्तुसुखकराणि गृहाणि निर्मिमीरंस्ते पूर्णसुखं प्राप्नुयुः ।

नैतेषामाभ्युदयिकसुखन्यूनता कदाचिज्जायेत ॥ २१ । ३४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचक लुप्तोपमा अलंकार हैं ॥ जो मनुष्य सब दिशाओं में द्वारों वाले, सब ऋतुओं में सुखकारी घर बनाते हैं वे पूर्ण सुख को प्राप्त होते हैं ।

इनके ऐहलौकिक सुख की न्यूनता कभी नहीं होती ॥ २१ । ३४ ॥

भाष्यसार—१. उत्तम ब्रह्मचर्य का उपदेश—उत्तम ब्रह्मचर्य का सेवन करने वाले, विद्या आदि शुभ गुणों को ग्रहण करने वाले विद्वान् लोग सब दिशाओं में द्वारों वाले घरों का निर्माण करें । जो घर छिद्र (झरोंखा) से युक्त हों, दिशाओं के अनुकूल हों, वि द्युत् और अग्नि से युक्त हों अर्थात् सब ऋतुओं में सुखकारी हों । ऐसे घरों में द्युलोक और पृथिवी धेनु के समान सुखदायक होते हैं । सरस्वती भी जीव को सुख देती है । सूर्य और चन्द्रमा भी जल के समान सुख-शान्ति प्रदान करते हैं । औषध और प्रकाश भी सुख देते हैं । मन आदि इन्द्रियाँ भी सुख से पूरण रहती हैं । रस, दूध, ओषधि-गण, घृत और मधु आदि आभ्युदयिक सुखों की कोई कमी नहीं रहती ।

२. अलंकार—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'न' पद है । अतः उपमा अलंकार है । मन्त्र में उपमा-वाचक पद को लुप्त मान कर वाचकलुप्तोपमा अलंकार भी है । उपमा यह है कि उत्तम ब्रह्मचर्य का सेवन करने वाले विद्वानों के समान होता जन मन्त्र में प्रतिपादित यज्ञ का अनुष्ठान करें ॥ २१ । ३४ ॥

स्वस्त्यात्रेयः । **अश्व्यादयः**=**सूर्यचन्द्रादयः** । भुरिगतिधृतिः । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

उत्तम ब्रह्मचर्य का फिर उपदेश किया है ॥

होता यक्षत्सुपेशसोषे नक्तं दिवाश्विना समञ्जाते सरस्वत्या त्विषिमिन्द्रे न भेषजꣳ श्येनो न रजसा हृदा श्रिया न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३५ ॥

पदार्थः—(**होता**) आदाता (**यक्षत्**) यजेत् (**सुपेशसा**) सुखरूपे स्त्रियौ (**उषे**) कामं दहन्त्यौ (**नक्तम्**) (**दिवा**) (**अश्विना**) व्याप्तिमन्तौ सूर्याचन्द्रमसौ (**समञ्जाते**) सम्यक् प्रकाशयतः (**सरस्वत्या**) विज्ञानयुक्तया वाचा (**त्विषिम्**) प्रदीप्तिम् (**इन्द्रे**) परमैश्वर्यवति प्राणिनि (**न**) इव (**भेषजम्**) जलम् (**श्येनः**) श्यायति—विज्ञापयतीति श्येनो विद्वान् (**न**) इव (**रजसा**) लोकैः सह (**हृदा**) हृदयेन (**श्रिया**) लक्ष्म्या शोभया वा (**न**) इव (**मासरम्**) ओदनम् । उपलक्षणमेतत् तेन सुसंस्कृतमन्नमात्रं गृह्यते (**पयः**) सर्वौषधिरसः (**सोमः**) सर्वौषधिगणः (**परिस्रुता**) सर्वतः प्राप्तेन रसेन (**घृतम्**) उदकम् (**मधु**) क्षौद्रम् (**व्यन्तु**) (**आज्यस्य**) (**होतः**) (**यज**) ॥ ३५ ॥

अन्वयः—हे होतर्यथा सुपेशसोषे नक्तं दिवाऽश्विना सरस्वत्येन्द्रे त्विषिं भेषजं समञ्जाते न च रजसा सह श्येनो न होता श्रिया न हृदा मासरं यक्षत्तथा यानि परिस्रुता पयः सोमो घृतं मधु व्यन्तु तैः सह वर्त्तमानस्त्वमाज्यस्य यज ॥ ३५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे होतः ! **यथा**— **सुपेशसा** सुखरूपे स्त्रियौ, **उषे** कामं दहन्त्यौ, **नक्तं दिवाऽश्विना** व्याप्तिमन्तौ सूर्याचन्द्रमसौ, **सरस्वत्या** विज्ञानयुक्तया वाचा **इन्द्रे** परमैश्वर्यवति प्राणिनि **त्विषिं** प्रदीप्तिं, **भेषजं** जलं, **समञ्जाते** सम्यक् प्रकाशयतः **न** इव **च**, **रजसा** लोकैः **सह श्येनः** श्यायति=विज्ञापयतीति श्येनो विद्वान् **न** इव **होता** आदाता **श्रिया** लक्ष्म्या शोभया वा **न** इव **हृदा** हृदयेन **मासरम्** ओदनं **यक्षत्** यजेत्, **तथा यानि परिस्रुता** सर्वतः प्राप्तेन रसेन **पयः** सर्वौषधिरसः, **सोमः** सर्वौषधिगणः, **घृतम्** उदकं, **मधु** क्षौद्रं **व्यन्तु**; **तैः** सह **वर्त्तमानस्त्वमाज्यस्य यज** ॥ ३५ ॥

भाषार्थ—हे (होतः) दाता पुरुष ! जैसे (सुपेशसा) सुख रूप दो स्त्रियाँ (उषे) काम को दग्ध करने वाली हैं तथा (नक्तम्) रात और (दिवा) दिन (अश्विना) व्यापक सूर्य और चन्द्रमा (सरस्वत्या) विज्ञान युक्त वाणी से (इन्द्रे) परम-ऐश्वर्य वाले प्राणी में (त्विषिम्) प्रकाश तथा (भेषजम्) जल को (समञ्जाते) ठीक प्रकाशित करते हैं, उनके (न) समान और—(रजसा) लोकों के साथ (श्येनः) शिक्षा देने वाले विद्वान् के (न) समान, (होता) शिक्षा लेने वाला पुरुष (श्रिया) लक्ष्मी वा शोभा के (न) समान (हृदा) हृदय से (मासरम्) भात आदि का (यक्षत्) यज्ञ करता है, वैसे जिन्हें (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त रस के साथ (पयः) सब ओषधिओं का रस, (सोमः) सब ओषधिगण, (घृतम्) जल, (मधु) मधु (व्यन्तु) प्राप्त होवें, उनके साथ वर्तमान होकर तू (आज्यस्य) घृत का (यज) होम कर ॥ २१ । ३५ ॥

भावार्थः — अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ । हे मनुष्याः ! यथाऽहर्निशं सूर्याचन्द्रमसौ सर्वं प्रकाशयतः,

रूपयौवनसंपन्नाः पत्न्यः पतिं परिचरन्ति च, यथा वा—

पाकविद्याविद् विद्वान् पाककर्मोपदिशति, तथा सर्वप्रकाशं सर्वपरिचरणं च कुरुत, भोजनपदार्थाश्चोत्तमतया निर्मिमीध्वम् ॥ २१ । ३५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचक लुप्तोपमा अलंकार हैं ॥ हे मनुष्यो ! जैसे दिन, रात, सूर्य और चन्द्रमा सब को प्रकाशित करते हैं ।

और रूप तथा यौवन से सम्पन्न पत्नियाँ अपने पतियों की सेवा करती हैं; वा जैसे—

पाक-विद्या का ज्ञाता विद्वान् पाक-कर्म का उपदेश करता है, वैसे सबको प्रकाशित करो और सब की सेवा करो और भोजन के पदार्थों को उत्तम रीति से बनाओ ॥ २१ । ३५ ॥

भा० पदार्थः--सुपेशसा=रूपयौवनसम्पन्ने पत्न्यौ। श्येनः=पाकविद्याविद् विद्वान्। मासरम्=पाककर्म। यक्षत्=उपदिशति।

भाष्यसार--१. **उत्तम ब्रह्मचर्य का उपदेश**--जैसे रूप और यौवन से सम्पन्न, सुखदायक, काम को दग्ध करने वाली पत्नियाँ, अपने पतियों की सेवा करती हैं; जैसे सूर्य और चन्द्रमा दिन और रात को प्रकाशित करते हैं तथा प्राणियों में प्रकाश और जल को प्रकाशित करते हैं; उपदेश करने वाला, विद्या आदि शुभ गुणों को ग्रहण करने वाला, उत्तम ब्रह्मचर्य का सेवन करने वाला विद्वान्, भात से यज्ञ करता है तथा रस, ओषधि-गण, जल और मधु को प्राप्त करता है वैसे होता जन मन्त्र में प्रतिपादित यज्ञ का अनुष्ठान करें अर्थात् सब को विद्या आदि से प्रकाशित करें, सब की सेवा करें और भोजन के पदार्थों को उत्तम रीति से बनावें।

२. **अलंकार**--इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'न' पद है अतः उपमा अलंकार है। उपमा-वाचक पद को लुप्त मानकर वाचक लुप्तोपमा अलंकार भी है। उपमा यह है कि होता जन सूर्य चन्द्रमा आदि के समान सबको विद्या आदि से प्रकाशित करें ॥ २१ । ३५ ॥ ●

स्वस्त्यात्रेयः। **अश्व्यादयः**=अग्नि-वाय्वादयः। निचृदष्टिः। मध्यमः॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

उत्तम ब्रह्मचर्य का फिर उपदेश किया है ॥

होता॑ यक्ष॒द्दैव्या॒ होता॑रा भि॒षजा॒श्विनेन्द्रं॒ न जागृ॑वि॒ दिवा॒ नक्तं॒ न भे॑ष॒जैः शूष॒ꣳ सर॑स्वती भि॒षक् सीसे॑न दुह ऽ इन्द्रि॒यं पयः॒ सोमः॑ परि॒स्रुता॑ घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥ ३६ ॥

पदार्थः--(**होता**) दाता (**यक्षत्**) (**दैव्या**) देवेषु लब्धौ (**होतारा**) आदातारौ (**भिषजा**) वैद्यवद्रोगापहारकौ (**अश्विना**) अग्निवायू (**इन्द्रम्**) विद्युतम् (**न**) इव (**जागृवि**) जागरूका कार्यसाधनेऽप्रमत्ता। अत्र सुपां सुलुगिति सोर्लोपः (**दिवा**) (**नक्तम्**) (**न**) (**भेषजैः**) जलैः (**शूषम्**) बलम्। **शूषमिति बलना० निघं० ॥ २। ६ ॥** (**सरस्वती**) वैद्यकशास्त्रवित् प्रशंस्तज्ञानवती स्त्री (**भिषक्**) वैद्यः (**सीसेन**) धनुर्विशेषेण (**दुहे**) दुग्धे। लट्प्रयोगः। लोपस्त० इति तलोपः। (**इन्द्रियम्**) धनम् (**पयः**) (**सोमः**) (**परिस्रुता**) (**घृतम्**) (**मधु**) (**व्यन्तु**) (**आज्यस्य**) (**होतः**) (**यज**) ॥ ३६ ॥

प्रमाणार्थ--(**शूषम्**) बलम्। 'शूष' यह पद निघं० (२। ६) में बल-नामों में पठित है ॥

अन्वयः--हे होतर्यथा होता दैव्या होतारा भिषजाश्विनेन्द्रं न यक्षत् दिवा नक्तं जागृवि सरस्वती भिषग् भेषजैः सीसेन शूषं न इन्द्रियं दुहे तथा यानि परिस्रुता पयः सोमो घृतं मधु व्यन्तु तैः सह वर्त्तमानस्त्वमाज्यस्य यज ॥ ३६ ॥

सपदार्थान्वयः--हे होतः! यथा--**होता**--दाता--**दैव्या** देवेषु लब्धौ, **होतारा** आदातारौ, **भिषजा** वैद्यवद्रोगापहारकौ, **अश्विना** अग्निवायू **इन्द्रं** विद्युतं **न** इव यक्षत्, **दिवा नक्तं जागृवि** जागरूका कार्यसाधनेऽप्रमत्ता **सरस्वती** वैद्यकशास्त्रवित् प्रशस्तज्ञानवती स्त्री, **भिषक्** वैद्यः, **भेषजैः** जलैः,

भाषार्थ--हे (होतः) दाता पुरुष! जैसे (होता) विद्या का दाता विद्वान्--(दैव्या) देवों में प्राप्त, (होतारा) ग्रहण करने वाले, (भिषजा) वैद्य के समान रोगों का अपहरण करने वाले (अश्विना) अग्नि और वायु तथा (इन्द्रम्) विद्युत् के (न) समान (यक्षत्) यज्ञ करता है; (दिवा) दिन

सीसेन धनुर्विशेषेण **शूषं** बलं **न** इव **इन्द्रियं** धनं **दुहे** दुग्धे, तथा—**यानि परिस्रुता पयः, सोमो, घृतं, मधु व्यन्तु, तैः सह वर्तमानस्त्वमाज्यस्य यज** ॥ २१ । ३६ ॥

(नक्तम्) रात (जागृवि) जागरूक अर्थात् कार्य करने में प्रमाद-रहित (सरस्वती) वैद्यक-शास्त्र की ज्ञात्री एवं प्रशस्त ज्ञान वाली स्त्री (भिषक्) वैद्य (भेषजैः) जलों से तथा (सीसेन) धनुष विशेष से (शूषम्) बल के (न) समान (इन्द्रियम्) धन को (दुहे) दुहता है, वैसे जिन्हें (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त रस के साथ (पयः) दूध, (सोमः) ओषधि-गण, (घृतम्) घृत और (मधु) मधु प्राप्त होवें उनके साथ वर्तमान होकर तू (आज्यस्य) घृत का (यज) होम कर ॥ २१ । ३६ ॥

भावार्थः — अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ ॥ हे विद्वांसः ! यथा सद्वैद्याः स्त्रियः कार्याणि साधयितुमहर्निशं प्रयतन्ते, यथा वा—

वैद्या रोगान्निवार्य शरीरबलं वर्धयन्ति, तथा वर्त्तित्वा सर्वैरानन्दितव्यम् ॥ २१ । ३६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार हैं ॥ हे विद्वानो ! जैसे श्रेष्ठ वैद्य स्त्रियां कार्यों को सिद्ध करने के लिए दिन-रात यत्न करती हैं, अथवा जैसे—

वैद्य लोग रोगों का निवारण करके शरीर-बल को बढ़ाते हैं वैसा बर्ताव करके सब आनन्दित रहें ॥ २१ । ३६ ॥

भा० पदार्थः—सरस्वती=सद्वैद्या स्त्री। जागृवि=कार्याणि साधयितुं प्रयत्नशीला। शूषम्=शरीरबलम् ॥

भाष्यसार—१. **उत्तम ब्रह्मचर्य का उपदेश**—विद्या का दाता, उत्तम ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला विद्वान्—देवों में प्राप्त, दुःखों को ग्रहण करने वाले, वैद्य के समान रोगों को हरण करने वाले जो अग्नि, वायु और विद्युत् हैं उनके समान यज्ञ करता है अर्थात् रोगों का निवारण करता है। दिन-रात जागरूक रहने वाली, वैद्यक-शास्त्र की ज्ञात्री एवं प्रशस्त विज्ञान वाली स्त्री तथा वैद्य लोग जैसे जलों से और धनुष-विशेष से बल को बढ़ाते हैं, वैसे धन से भी परिपूरण करते हैं तथा रस, दूध, ओषधि, घृत और मधु को प्राप्त करते हैं।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा वाचक 'न' पद है अतः उपमा अलङ्कार है। उपमा-वाचक पद को लुप्त मानकर वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार भी है। उपमा यह है कि जैसे वैद्य स्त्रियाँ कार्य को सिद्ध करने के लिए दिन-रात प्रयत्न करती हैं तथा जैसे वैद्य लोग रोग-निवारण करके बल को बढ़ाते हैं वैसे सब मनुष्य बर्ताव करके आनन्दित रहें ॥ २१ । ३६ ॥ ●

स्वस्त्यात्रेयः। **अश्व्यादयः**=**सूर्यचन्द्रादयः**। धृतिः। ऋषभः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

उत्तम ब्रह्मचर्य का फिर उपदेश किया है ॥

होता यक्षत्तिस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपसो रूपमिन्द्रे हिरण्ययमश्विनेडा न भारती वाचा सरस्वती मह ऽ इन्द्राय दुह ऽ इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३७ ॥

पदार्थः—(**होता**) विद्यादाता (**यक्षत्**) संगमयेत् (**तिस्रः**) (**देवीः**) देदीप्यमाना नीतीः (**न**) इव (**भेषजम्**) औषधम् (**त्रयः**) तदस्मद्युष्मत्पदवाच्याः (**त्रिधातवः**) दधति सर्वान् विषयानिति धातवस्त्रयो धातवो येषान्ते जीवाः (**अपसः**) कर्मवन्तः। अत्र विन्प्रत्ययस्य लुक् (**रूपम्**) चक्षुर्विषयम् (**इन्द्रे**) विद्युति (**हिरण्ययम्**) (**अश्विना**) सूर्याचन्द्रमसौ (**इडा**) स्तोतुमर्हा (**न**) इव (**भारती**) धारणावती प्रज्ञा (**वाचा**) विद्यासुशिक्षायुक्तवाण्या (**सरस्वती**) परमविदुषी स्त्री (**महः**) महत् (**इन्द्राय**) ऐश्वर्य्यवते (**दुहे**) प्रपूरयति (**इन्द्रियम्**) धनम् (**पयः**) रसः (**सोमः**) ओषधिगणः (**परिस्रुता**) सर्वतः प्राप्तेन (**घृतम्**) (**मधु**) (**व्यन्तु**) (**आज्यस्य**) (**होतः**) (**यज**) ॥ ३७ ॥

अन्वयः—हे होतर्यथा होता तिस्रो देवीर्न भेषजं यक्षद् यथाऽपसस्त्रिधातवस्त्रयो हिरण्ययं रूपमिन्द्रे यजेरन्। अश्विनेडा भारती न सरस्वती वाचेन्द्राय मह इन्द्रियं दुहे तथा यानि परिस्रुता पयस्सोमो घृतं मधु व्यन्तु तैः सह वर्त्तमानस्त्वमाज्यस्य यज ॥ ३७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे होतः! यथा—**होता** विद्यादाता **तिस्रः देवीः** देदीप्यमाना नीतीः **न** इव **भेषजम्** औषधं, **यक्षत्** सङ्गमयेत्, **यथाऽपसः** कर्मवन्तः **त्रिधातवः** दधति सर्वान् विषयानिति धातवस्त्रयो धातवो येषान्ते जीवाः, **त्रयः** तदस्मद्-युष्मत्पदवाच्याः, **हिरण्यं रूपं** चक्षुर्विषयम् **इन्द्रे** विद्युति **यजेरन्, अश्विना** सूर्याचन्द्रमसौ, **इडा** स्तोतुर्महा **भारती** धारणावती प्रज्ञा **न** इव **सरस्वती** परमविदुषी स्त्री, **वाचा** विद्यासुशिक्षायुक्तवाण्या **इन्द्राय** ऐश्वर्यवते **महः** महत् **इन्द्रियं** धनं **दुहे** प्रपूरयति, **तथा—यानि परिस्रुता** सर्वतः प्राप्तेन **पयः** रसः, **सोमः** ओषधिगणः, **घृतं मधु, व्यन्तु, तैः सह वर्तमानस्त्वमाज्यस्य यज** ॥ २१ । ३७ ॥

भाषार्थ—हे (होतः) दाता पुरुष! जैसे (होता) विद्या का दाता विद्वान्—(तिस्रः) तीन (देवीः) देदीप्यमान नीतियों के (न) समान (भेषजम्) औषध को (यक्षत्) संगत करता है; जैसे (अपसः) कर्म करने वाले (त्रिधातवः) सब विषयों को धारण करने वाले सत्त्व, रज, तम तीन गुणों से युक्त (त्रयः) तत्=वह, अस्मत्=हम, युष्मत्=तुम इन तीन पदों से वाच्य जीव—(हिरण्यम्) ज्योतिर्मय (रूपम्) चक्षु के विषय को (इन्द्रे) विद्युत् में (यजेरन्) संगत करते हैं; (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा तथा (इडा) स्तुति के योग्य (भारती) धारणावती बुद्धि के (न) समान (सरस्वती) परम विदुषी स्त्री—(वाचा) विद्या और सुशिक्षा से युक्त वाणी से (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् पुरुष के लिए (महः) महान् (इन्द्रियम्) धन को (दुहे) दुहती है; वैसे जिन्हें (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त रस के साथ (पयः) ओषधि-रस, (सोमः) ओषधि-गण (घृतम्) घृत, (मधु) मधु (व्यन्तु) प्राप्त होवें, उनके साथ वर्तमान होकर (आज्यस्य) घृत का (यज) होम कर ॥ २१ । ३७ ॥

भावार्थः — अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ ॥ हे मनुष्याः! यथाऽस्थिमज्जवीर्याणि शरीरे कर्मसाधनानि सन्ति, यथा च सूर्यादयो वाणी च शरीरे सर्वज्ञापकाः सन्ति, तथा भूत्वा सृष्टिविद्यां प्राप्य श्रीमन्तो भवत ॥ २१ । ३७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ हे मनुष्यो! जैसे हड्डी, मज्जा, वीर्य शरीर में कर्म के साधन हैं; और जैसे सूर्य आदि तथा वाणी सब के ज्ञापक हैं, वैसे बन कर तुम सृष्टि-विद्या को प्राप्त करके श्रीमान् बनो ॥ २१ । ३७ ॥

भा० पदार्थः—अपसः=कर्मसाधनानि । त्रिधातवः=अस्थिमज्जावीर्याणि । सरस्वती=वाणी ॥

भाष्यसार—१. उत्तम ब्रह्मचर्य का उपदेश—विद्या का दाता, उत्तम ब्रह्मचर्य का सेवन करने वाला विद्वान्—साम, दाम, दण्ड तीन प्रकाशमान नीतियों से तथा औषध से संयुक्त रहता है । वह, तू, और मैं इन तीन पदों से सम्बोधित किये जाने वाले, अस्थि (हड्डी), मज्जा और वीर्य इन तीन धातुओं से शरीर को धारण करने वाले, कर्म करने वाले जीव हिरण्य रूप को विद्युत् में प्राप्त करते हैं । सूर्य और चन्द्रमा के समान विद्या से प्रकाशमान, स्तुति के योग्य, धारणावती बुद्धि के समान परम विदुषी स्त्री विद्या और सुशिक्षा से युक्त वाणी से ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए महान् धन को धारण करती है तथा उक्त विद्वान् और परम विदुषी स्त्रियाँ रस, दूध, घृत और मधु को प्राप्त करती हैं ।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'न' पद है । अतः उपमा अलङ्कार है । उपमा-वाचक पद को लुप्त मानकर वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार भी है । उपमा यह है कि उक्त विद्वान् और परम विदुषी के समान सब मनुष्य सृष्टि-विद्या को प्राप्त करके श्रीमान् बनें ॥ २१ । ३७ ॥ ●

स्वस्त्यात्रेयः । **अश्व्यादयः**=वायु-विद्युदादयः । भुरिक्कृतिः ।

निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

उत्तम ब्रह्मचर्य का फिर उपदेश किया है ॥

होता यक्षत्सुरेतसमृषभं नर्यापसं त्वष्टारमिन्द्रमश्विना भिषजं न सरस्वतीमोजो न जूतिरिन्द्रियं वृको न रभसो भिषग् यशः सुरया भेषजꣳ श्रिया न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३८ ॥

पदार्थः—(**होता**) आदाता (**यक्षत्**) प्राप्नुयात् (**सुरेतसम्**) सुष्ठुवीर्यम् (**ऋषभम्**) बलीवर्दम् (**नर्यापसम्**) नृषु साध्वपः कर्म यस्य तम् (**त्वष्टारम्**) दुःखच्छेत्तारम् (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्यवन्तम् (**अश्विना**) वायुविद्युतौ (**भिषजम्**) वैद्यवरम् (**न**) इव (**सरस्वतीम्**) बहुविज्ञानयुक्तां वाचम् (**ओजः**) बलम् (**न**) इव (**जूतिः**) वेगः (**इन्द्रियम्**) मनः (**वृकः**) **वज्रः । वृक इति वज्रना० ॥ निघं० २ । २० ॥** (**न**) (**रभसः**) वेगम् । द्वितीयार्थे प्रथमा । (**भिषक्**) वैद्यः (**यशः**) धनमन्नं वा (**सुरया**) जलेन (**भेषजम्**) औषधम् (**श्रिया**) लक्ष्म्या (**न**) इव (**मासरम्**) संस्कृतभोज्यमन्नम् (**पयः**) पातुं योग्यम् (**सोमः**) ऐश्वर्यम् । (**परिस्रुता**) सर्वतोभिगतेन पुरुषार्थेन (**घृतम्**) (**मधु**) (**व्यन्तु**) (**आज्यस्य**) (**होतः**) (**यज**) ॥ ३८ ॥

प्रमाणार्थ—(वृकः) वज्रः । 'वृक' यह पद निघं० (२ । २०) में वज्र-नामों में पठित है ॥

अन्वयः—हे होतस्त्वं यथा होता सुरेतसमृषभं नर्यापसं त्वष्टारमिन्द्रमश्विना भिषजं न सरस्वतीमोजो न यक्षद्भिषग्वृको न जूतिरिन्द्रियं रभसो यशः सुरया भेषजं श्रिया न क्रियया मासरं यक्षत्तया परिस्रुता पयः सोमो घृतं मधु च व्यन्तु तैः सह वर्त्तमानस्त्वमाज्यस्य यज ॥ ३८ ॥

सपदार्थान्वयः-हे होतः ! त्वं यथा—**होता** आदाता **सुरेतसं** सुष्ठुवीर्यम् **ऋषभं** बलीवर्दं **नर्यापसं** नृषु साध्वपः कर्म यस्य तं **त्वष्टारं** दुःख-

भाषार्थ—हे (होतः) दाता पुरुष ! तू—जैसे (होता) विद्या को ग्रहण करने वाला विद्वान्—(सुरेतसम्) उत्तम वीर्य वाले (ऋषभम्) बैल,

छेत्तारम् इन्द्रं परमैश्वर्यवन्तम्, **अश्विना** वायुविद्युतौ, **भिषजं** वैद्यवरं **न** इव **सरस्वतीं** बहुविज्ञानयुक्तां वाचम्, **ओजः** बलं **न** इव **यक्षत्** प्राप्नुयात्, **भिषग्** वैद्यः **वृकः** वज्रः **न** इव **जूतिः** वेगः, **इन्द्रियं** मनः, **रभसः** वेगं, **यशः** धनमन्नं वा, **सुरया** जलेन **भेषजम्** औषधं, **श्रिया** लक्ष्म्या **न** इव **क्रियया मासरं** संस्कृत-भोज्यमन्नं **यक्षत्** प्राप्नुयात्, **तथा परिस्रुता** सर्वतो-भिगतेन पुरुषार्थेन **पयः** पातुं योग्यं, **सोमः** ऐश्वर्यं, **घृतं, मधु च व्यन्तु; तैः सह वर्त्तमानस्त्वमाज्यस्य यज** ।। २१ । ३८ ।।

(नर्यापसम्) नरों में साधु कर्म वाले (त्वष्टारम्) दुःखों के छेदक (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्यवान् पुरुष को, (अश्विना) वायु तथा विद्युत् और (भिषजम्) श्रेष्ठ वैद्य (न) के समान (सरस्वतीम्) बहुत विज्ञान युक्त वाणी को (ओजः) बल के (न) समान (यक्षत्) प्राप्त करता है; (भिषक्) वैद्य, (वृकः) वज्र के (न) समान (जूतिः) वेग (इन्द्रियम्) मन, (रभसः) वेग, (यशः) धन वा अन्न, (सुरया) जल के साथ (भेषजम्) औषध, (श्रिया) लक्ष्मी के (न) समान क्रिया से (मासरम्) सुगन्धित भोज्य अन्न को (यक्षत्) प्राप्त करता है, वैसे (परिस्रुता) सर्वत्र पुरुषार्थ से (पयः) पेय पदार्थ, (सोमः) ऐश्वर्य, (घृतम्) घृत, और (मधु) मधु (व्यन्तु) प्राप्त होवें उनके साथ वर्त्तमान होकर तू (आज्यस्य) घृत का (यज) होम कर ।। २१ । ३८ ।।

भावार्थः — अत्रोपमावाचकलुप्तोपमा-लङ्कारौ । यथा विद्वांसो ब्रह्मचर्येण, धर्माचरणेन विद्यया सत्सङ्गादिना चाखिलं सुखं प्राप्नुवन्ति, तथा मनुष्यैः पुरुषार्थेन लक्ष्मीः प्राप्तव्या ।। २१ । ३८ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचक लुप्तोपमा अलंकार हैं । जैसे विद्वान् लोग ब्रह्मचर्य, धर्माचरण, विद्या और सत्सङ्ग आदि से सकल सुख को प्राप्त करते हैं वैसे सब मनुष्य पुरुषार्थ से लक्ष्मी को प्राप्त करें ।। २१ । ३८ ।।

भाष्यसार—१. **उत्तम ब्रह्मचर्य का उपदेश किया है**—विद्या को ग्रहण करने वाला, उत्तम ब्रह्मचर्य का सेवन करने वाला विद्वान्, उत्तम बल वाले बैल; नरों में उत्तम कर्म करने वाले, दुःख-छेदक और परम ऐश्वर्य वाले राजा; वायु और विद्युत् के समान बल को प्राप्त करें । श्रेष्ठ वैद्य के समान बहुत विज्ञान से युक्त वाणी को भी बल के समान प्राप्त करे । वैद्य लोग वज्र के समान वेग को प्राप्त करें; मन, वेग, धन वा अन्न को प्राप्त करें, जल के साथ औषध को प्राप्त करें; लक्ष्मी के समान उत्तम आचरण से उत्तम भोजन को प्राप्त करें । उक्त विद्वान् तथा वैद्य लोग रस, दूध, ऐश्वर्य घृत और मधु को प्राप्त करें ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'न' पद है । अतः उपमा अलंकार है । उपमा-वाचक पद को लुप्त मानकर वाचकलुप्तोपमा अलंकार भी है । उपमा यह है कि विद्वानों के समान सब मनुष्य पुरुषार्थ से लक्ष्मी को प्राप्त करें ।। २१ । ३८ ।। ●

आत्रेयः । **अश्व्यादयः**—सभासेनेशादयः । निचृदत्यष्टिः । गान्धारः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

उत्तम ब्रह्मचर्य का फिर उपदेश किया है ।।

होता यक्षद्वनस्पतिꣳ शमितारꣳ शतक्रतुं भीमं न मन्युꣳ राजानं व्याघ्रं नमसाश्विना भामꣳ सरस्वती भिषगिन्द्राय दुहऽइन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३९॥

पदार्थः—(**होता**) आदाता (**यक्षत्**) (**वनस्पतिम्**) किरणानां पालकम् (**शमितारम्**) शान्तिप्रदम् (**शतक्रतुम्**) असंख्यप्रज्ञं बहुकर्माणं वा (**भीमम्**) भयंकरम् (**न**) इव (**मन्युम्**) क्रोधम् (**राजानम्**) राजमानम् (**व्याघ्रम्**) सिंहम् (**नमसा**) वज्रेण (**अश्विना**) सभासेनेशौ (**भामम्**) क्रोधम् (**सरस्वती**) प्रशस्तविज्ञानवती (**भिषक्**) वैद्यः (**इन्द्राय**) धनाय (**दुहे**) प्रपूरयेत् (**इन्द्रियम्**) धनम् (**पयः**) रसम् (**सोमः**) चन्द्रः (**परिस्रुता**) (**घृतम्**) (**मधु**) मधुरं वस्तु (**व्यन्तु**) (**आज्यस्य**) प्राप्तुमर्हस्य (**होतः**) (**यज**) ॥ ३९ ॥

अन्वयः—हे होतर्यथा भिषग्घोता इन्द्राय वनस्पतिमिव शमितारं शतक्रतुं भीमं न मन्युं नमसा व्याघ्रं न राजानं यक्षत् सरस्वत्यश्विना भामं दुहे तथा परिस्रुतेन्द्रियं पयः सोमो घृतं मधु व्यन्तु तैः सह वर्त्तमानस्त्वमाज्यस्य यज ॥ ३९ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे होतः ! यथा—भिषग्** वैद्यः **होता** आदाता **इन्द्राय** धनाय **वनस्पतिं** किरणानां पालकम् **इव शमितारं** शान्तिप्रदं, **शतक्रतुम्** असंख्यप्रज्ञं बहुकर्माणं वा, **भीमं** भयङ्करं **न** इव **मन्युं** क्रोधं, **नमसा** वज्रेण **व्याघ्रं** सिंहं **न** इव, **राजानं** राजमानं **यक्षत् सरस्वती** प्रशस्त-विज्ञानवती **अश्विना** सभासेनेशौ **भामं** क्रोधं **दुहे** प्रपूरयेत्, **तथा परिस्रुतेन्द्रियं** धनं, **पयः** रसं, **सोमः** चन्द्रः, **घृतं मधु** मधुरं वस्तु **व्यन्तु**; **तैः सह वर्त्तमान-स्त्वमाज्यस्य** प्राप्तुमर्हस्य **यज** ॥ २१ । ३९ ॥

भाषार्थ—हे (होतः) दाता पुरुष ! जैसे (भिषक्) वैद्य तथा (होता) विद्या को ग्रहण करने वाला विद्वान्—(इन्द्राय) धन के लिए (वनस्पतीम्) किरणों के पालक के समान, (शमितारम्) शान्ति देने वाले, (शतक्रतुम्) असंख्य बुद्धि वाले बहुत कर्म करने वाले (भीमम्) भयङ्कर पुरुष के (न) समान, (मन्युम्) क्रोध तथा (नमसा) वज्र से (व्याघ्रम्) सिंह के (न) समान (राजानम्) राजा का (यक्षत्) संग करता है; (सरस्वती) प्रशस्त विज्ञान वाली स्त्री; (अश्विना) सभापति तथा सेनापति, (भामम्) क्रोध को (दुहे) धारण करते हैं, वैसे (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त रस के साथ (इन्द्रियम्) धन, (पयः) रस, (सोमः) चन्द्र, (घृतम्) घृत, (मधु) मधुर वस्तु, (व्यन्तु) प्राप्त होवें, उनके साथ वर्तमान होकर तू (आज्यस्य) प्राप्त करने योग्य द्रव्य का (यज) होम कर ॥ २१ । ३९ ॥

भावार्थः — अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ । ये मनुष्या विद्यया वह्निं, शान्त्या विद्वांसं, पुरुषार्थेन प्रज्ञां, न्यायेन राज्यं च प्राप्यैश्वर्यं वर्द्धयन्ति, ते—ऐहिकपारमार्थिके सुखे प्राप्नुवन्ति । २१ । ३९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचक-लुप्तोपमा अलंकार हैं। जो मनुष्य विद्या से अग्नि को, शान्ति से विद्वान् को, पुरुषार्थ से बुद्धि को और न्याय से राज्य को प्राप्त करके ऐश्वर्य को बढ़ाते हैं, वे लौकिक और पारमार्थिक सुखों को प्राप्त करते हैं ॥ २१ । ३९ ॥

भा० पदार्थः—वनस्पतिम्=वह्निम् । शमितारम्=शान्त्या विद्वांसम् । शतक्रतुम्=पुरुषार्थेन प्रज्ञाम् । नमसा=न्यायेन । राजानम्=राज्यम् । यक्षत्=ऐश्वर्यं वर्द्धयति ॥

भाष्यसार—**१. उत्तम ब्रह्मचर्य का उपदेश**—वैद्य एवं विद्या को ग्रहण करने वाला विद्वान् धन की प्राप्ति के लिए—सूर्य के समान शान्तिदायक, असंख्य प्रज्ञा वाले एवं बहुत कर्म करने वाले, क्रोध के समान भयङ्कर, वज्र धारण करने से सिंह के समान पराक्रमी राजा का संग करे। प्रशस्त विज्ञान वाली

विदुषी स्त्री तथा सभापति और सेनापति क्रोध को धारण करें। रस, धन, दूध, चन्द्र, घृत और मधुर वस्तुओं को प्राप्त करें। विद्या से अग्नि, शान्ति से विद्वान्, पुरुषार्थ से प्रज्ञा और न्याय से राज्य को प्राप्त कर ऐश्वर्य को बढ़ावें।

२. अलंकार—इस मन्त्र में 'न' पद उपमा-वाचक है। अतः उपमा-अलंकार है। उपमा-वाचक पद को लुप्त मानकर वाचकलुप्तोपमा अलंकार भी है। उपमा यह है कि विद्वान् राजा सूर्य आदि के समान गुणों से युक्त हो ॥ २१ । ३९ ॥ ●

स्वस्त्यात्रेयः । **अश्व्यादयः**=राज्यस्वामि-पशुपालादयः । निचृदत्यष्टचौ । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

उत्तम ब्रह्मचर्य का फिर उपदेश किया है ॥

होता यक्षदग्निथ्ं स्वाहाज्यस्य स्तोकानाथ्ं स्वाहा मेदसां पृथक् स्वाहा छागमश्विभ्याथ्ं स्वाहा मेषथ्ं सरस्वत्यै स्वाहऽऋषभमिन्द्राय सिथ्ंहाय सहसऽइन्द्रियथ्ं स्वाहाग्निं न भेषजथ्ं स्वाहा सोममिन्द्रियथ्ं स्वाहेन्द्रथ्ं सुत्रामाणथ्ं सवितारं वरुणं भिषजां पतिथ्ं स्वाहा वनस्पतिं प्रियं पाथो न भेषजथ्ं स्वाहा देवा ऽ आज्यपा जुषाणो ऽ अग्निर्भेषजं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ४० ॥

पदार्थः—(**होता**) आदाता (**यक्षत्**) यजेत् (**अग्निम्**) पावकम् (**स्वाहा**) सुष्ठुक्रियया (**आज्यस्य**) प्राप्तुमर्हस्य (**स्तोकानाम्**) स्वल्पानाम् (**स्वाहा**) सुष्ठुरक्षणक्रियया (**मेदसाम्**) स्निग्धानाम् (**पृथक्**) (**स्वाहा**) उत्तमरीत्या (**छागम्**) दुखं छेत्तुमर्हम् (**अश्विभ्याम्**) राज्यस्वामिपशुपालाभ्याम् (**स्वाहा**) (**मेषम्**) सेचनकर्त्तारम् (**सरस्वत्यै**) विज्ञानयुक्तायै वाचे (**स्वाहा**) परमोत्तमया क्रियया (**ऋषभम्**) श्रेष्ठं पुरुषार्थम् (**इन्द्राय**) परमैश्वर्याय (**सिंहाय**) यो हिनस्ति तस्मै (**सहसे**) बलाय (**इन्द्रियम्**) धनम् (**स्वाहा**) शोभनया वाचा (**अग्निम्**) पावकम् (**न**) इव (**भेषजम्**) औषधम् (**स्वाहा**) उत्तमया क्रियया (**सोमम्**) सोमलताद्योषधिगणम् (**इन्द्रियम्**) मनः प्रभृतीन्द्रियमात्रम् (**स्वाहा**) सुष्ठुशान्तिक्रियया विद्यया च (**इन्द्रम्**) सेनेशम् (**सुत्रामाणम्**) सुष्ठुरक्षकम् (**सवितारम्**) ऐश्वर्य्यकारकम् (**वरुणम्**) श्रेष्ठम् (**भिषजाम्**) वैद्यानाम् (**पतिम्**) पालकम् (**स्वाहा**) निदानादिविद्यया (**वनस्पतिम्**) वनानां पालकम् (**प्रियम्**) कमनीयम् (**पाथः**) पालकमन्नम् (**न**) इव (**भेषजम्**) औषधम् (**स्वाहा**) सुष्ठुविद्यया (**देवाः**) विद्वांसः (**आज्यपाः**) य आज्यं=विज्ञानं पान्ति=रक्षन्ति ते (**जुषाणः**) सेवमानः (**अग्निः**) पावक इव प्रदीप्तः (**भेषजम्**) चिकित्सनीयम् (**पयः**) उदकम् (**सोमः**) ओषधिगणः (**परिस्रुता**) (**घृतम्**) (**मधु**) (**व्यन्तु**) (**आज्यस्य**) (**होतः**) दातः (**यज**) ॥ ४० ॥

अन्वयः—हे होतर्यथा होताऽऽज्यस्य स्वाहा स्तोकानां मेदसां स्वाहाऽग्निं पृथक्स्वाहाश्विभ्यां छागं सरस्वत्यै स्वाहा मेषमिन्द्राय स्वाहर्षभं सहसे सिंहाय स्वाहेन्द्रियं स्वाहाग्निं न भेषजं सोममिन्द्रियं स्वाहा सुत्रामाणमिन्द्रं भिषजां पतिं सवितारं वरुणं स्वाहा वनस्पतिं स्वाहा प्रियं पाथो न भेषजं यक्षद्यथा वाज्यपा देवा भेषजं जुषाणोऽग्निश्च यक्षत् तथा यानि परिस्रुता पयः सोमो घृतं मधु व्यन्तु तैः सह वर्त्तमानस्त्वमाज्यस्य यज ॥ ४० ॥

सपदार्थान्वयः—हे होतः ! दातः ! **यथा**—होता आदाता **आज्यस्य** प्राप्तुमर्हस्य **स्वाहा** सुष्ठुक्रियया, **स्तोकानां** स्वल्पानां **मेदसां** स्निग्धानां **स्वाहा** सुष्ठुरक्षणक्रियया, **अग्निं** पावकं **पृथक् स्वाहा** उत्तमरीत्या, **अश्विभ्यां** राज्यस्वामिपशुपालाभ्यां **छागं** दुखं छेत्तुमर्हं **सरस्वत्यै** विज्ञानयुक्तायै वाचे **स्वाहा, मेषं** सेचनकर्त्तारम् **इन्द्राय** परमैश्वर्याय **स्वाहा** परमोत्तमया क्रियया, **ऋषभं** श्रेष्ठं पुरुषार्थं **सहसे** बलाय **सिंहाय** यो हिनस्ति तस्मै **स्वाहा** परमोत्तमया क्रियया, **इन्द्रियं** धनं **स्वाहा** शोभनया वाचा, **अग्निं** पावकं **न** इव **भेषजम्** औषधं **सोमं** सोमलताद्योषधिगणम् **इन्द्रियं** मनः प्रभृतीन्द्रियमात्रं **स्वाहा** सुष्ठुशान्तिक्रियया विद्यया च, **सुत्रामाणं** सुष्ठुरक्षकम् **इन्द्रं** सेनेशं, **भिषजां** वैद्यानां **पतिं** पालकं **सवितारम्** ऐश्वर्यकारकं **वरुणं** श्रेष्ठं **स्वाहा** निदानादिविद्यया, **वनस्पतिं** वनानां पालकं **स्वाहा** सुष्ठुविद्यया, **प्रियं** कमनीयं **पाथः** पालकमन्नं **न** इव **भेषजम्** औषधं **यक्षत्** यजेत्, **यथा वा**—**आज्यपाः** य आज्यं=विज्ञानं पान्ति=रक्षन्ति ते **देवाः** विद्वांसः **भेषजं** चिकित्सनीयं **जुषाणः** सेवमानः **अग्निः** पावक इव प्रदीप्तः **च यक्षत्** यजेत्, **तथा**—**यानि परिस्रुता पयः** उदकं **सोमः** ओषधिगणः **घृतं मधु व्यन्तु; तैः सह वर्त्तमानस्त्वमाज्यस्य यज** ॥ २१ । ४० ॥

94

भाषार्थ—हे (होतः) दाता पुरुष ! जैसे (होता) विद्या को ग्रहण करने वाला विद्वान्—(आज्यस्य) प्राप्त करने योग्य द्रव्य का (स्वाहा) उत्तम क्रिया से, (स्तोकानाम्) थोड़े (मेदसाम्) स्निग्ध पदार्थों के (स्वाहा) अच्छे प्रकार रक्षण से, (अग्निम्) अग्नि को (पृथक्) पृथक् (स्वाहा) उत्तम रीति से, (अश्विभ्याम्) राज्य के स्वामी तथा पशुपालन के द्वारा (छागम्) दुःख का छेदन करने वाले द्रव्य को (सरस्वत्यै) विज्ञान से युक्त वाणी के लिए (स्वाहा) उत्तम क्रिया से, (मेषम्) सेचन करने वाले मेघ को (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य के लिए (स्वाहा) परम उत्तम क्रिया से, (ऋषभम्) श्रेष्ठ पुरुषार्थ को (सहसे) बल के लिए तथा (सिंहाय) हिंसक के लिए (स्वाहा) परम उत्तम क्रिया से, (इन्द्रियम्) धन को (स्वाहा) सुन्दर वाणी से, (अग्निम्) अग्नि के (न) समान (भेषजम्) औषध, (सोमम्) सोम लता आदि ओषधि-गण तथा (इन्द्रियम्) मन आदि इन्द्रिय मात्र को (स्वाहा) उत्तम शान्ति और विद्या से, (सुत्रामाणम्) उत्तम रक्षक (इन्द्रम्) सेनापति, (भिषजाम्) वैद्यों के (पतिम्) पालक, (सवितारम्) ऐश्वर्य के कर्ता (वरुणम्) श्रेष्ठ पुरुष को (स्वाहा) निदान आदि विद्या से, (वनस्पतिम्) वनों के पालक को (स्वाहा) उत्तम विद्या से, (प्रियम्) कामना करने योग्य (पाथः) पालक अन्न के (न) समान (भेषजम्) औषध को (यक्षत्) संगत करता है; अथवा जैसे (आज्यपाः) विज्ञान की रक्षा करने वाले (देवाः) विद्वान् लोग तथा (भेषजम्) चिकित्सा के योग्य रोगी की (जुषाणः) सेवा करने वाले (अग्निः) अग्नि के समान विद्या से प्रदीप्त विद्वान् (यक्षत्) यज्ञ करता है; वैसे जिन्हें (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त रस के साथ (पयः) जल, (सोमः) ओषधि-गण, (घृतम्) घृत, (मधु) मधु (व्यन्तु) प्राप्त होवें; उनके साथ वर्तमान होकर—तू (आज्यस्य) घृत का (यज) होम कर ॥ २१ । ४० ॥

भावार्थः — अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। ये मनुष्या विद्याक्रियाकौशलयत्नैरग्न्यादि-

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार हैं। जो मनुष्य—विद्या, क्रिया-

विद्यां विज्ञाय, गवादीन् पशून् संपाल्य सर्वोपकारं कुर्वन्ति, ते वैद्यवत् प्रजादुःखध्वंसका भवन्ति ॥ २१ । ४० ॥

कौशल तथा यत्न से अग्नि आदि विद्या को जान कर, गौ आदि पशुओं का पालन कर के सब का उपकार करते हैं, वे वैद्यों के समान प्रजा के दुःखों का विध्वंस करने वाले होते हैं ॥ २१ । ४० ॥

भा० पदार्थः—अग्निम्=अग्निविद्याम् ।

भाष्यसार—१. **उत्तम ब्रह्मचर्य का उपदेश**—विद्या को ग्रहण करने वाला, उत्तम ब्रह्मचर्य का सेवन करने वाला विद्वान्—प्राप्त करने योग्य द्रव्यों को उत्तम क्रिया से प्राप्त करे, स्वल्प स्निग्ध पदार्थों की रक्षा करे, अग्नि को उत्तम रीति से प्राप्त करे, राज्य के स्वामी और पशुपालक के द्वारा दुःखों का छेदन करें, विज्ञान-युक्त वाणी की प्राप्ति के लिए उत्तम आचरण करे, भूमि को सेचन करने वाले मेघ को अन्नादि परम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए परम उत्तम यज्ञ कर्म से प्राप्त करे, श्रेष्ठ पुरुषार्थ को बल और हिंसक पुरुष के लिए परम उत्तम कर्म से प्राप्त करे, उत्तम वाणी से धन को प्राप्त करे, अग्नि, औषध, सोमलता आदि ओषधियों और मन आदि इन्द्रियों को उत्तम शान्ति और विद्या से प्राप्त करे, उत्तम रक्षक सेनापति को प्राप्त करे, वैद्यों के पालक, ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाले श्रेष्ठ पुरुष को निदान आदि विद्या के निमित्त प्राप्त करे, वनों के पालक पुरुष को उत्तम विद्या से प्राप्त करे, प्रिय अन्न के समान औषध को प्राप्त करे। विज्ञान की रक्षा करने वाले विद्वानों के समान तथा रोगी की सेवा करने वाले विद्या से प्रदीप्त विद्वान् के समान यज्ञ का अनुष्ठान करे। रस, जल, ओषधि, घृत और मधु को प्राप्त करे।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'न' पद है। अतः उपमा अलङ्कार है। उपमा-वाचक 'न' पद को लुप्त मानकर वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि मनुष्य विद्वानों के समान विद्या, क्रियाकौशल एवं यत्न से अग्नि आदि की विद्या को जानें, गौ आदि पशुओं का पालन करके सब का उपकार करें। वैद्यों के समान प्रजा के दुःख का विध्वंस करें इत्यादि ॥ २१ । ४० ॥

आत्रेयः । **विद्वांसः**=स्पष्टम् । अतिधृतिः । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

उत्तम ब्रह्मचर्य का फिर उपदेश किया है ॥

होता॑ यक्षद॒श्विनौ॒ छाग॑स्य व॒पाया॒ मेद॑सो जु॒षता॒ᳬ ह॒विर्हो॑त॒र्यज॑ ।
होता॑ यक्ष॒त्सर॑स्वतीं मे॒षस्य॑ व॒पाया॒ मेद॑सो जु॒ताषᳬ ह॒विर्हो॑त॒र्यज॑ ।
होता॑ यक्ष॒दिन्द्र॑मृष॒भस्य॑ व॒पाया॒ मेद॑सो जु॒षता॒ᳬ ह॒विर्हो॑त॒र्यज॑ ॥ ४१ ॥

पदार्थः—(**होता**) दाता (**यक्षत्**) (**अश्विनौ**) पशुपालकृषीवलौ (**छागस्य**) अजादेः (**वपायाः**) बीजतन्तुसन्तानिकायाः क्रियायाः (**मेदसः**) स्निग्धस्य (**जुषेताम्**) सेवेताम् (**हविः**) होतव्यम् (**होतः**) दातः (**यज**) (**होता**) आदाता (**यक्षत्**) (**सरस्वतीम्**) विज्ञानवतीं वाचम् (**मेषस्य**) अवेः (**वपायाः**) बीजवर्द्धिकायाः क्रियायाः (**मेदसः**) स्नेहयुक्तस्य पदार्थस्य (**जुषताम्**) सेवताम् (**हविः**) प्रक्षेप्तव्यं सुसंस्कृतमन्नादिकम् (**होतः**) (**यज**) (**होता**) (**यक्षत्**) (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्य्यकारकम् (**ऋषभस्य**) वृषभस्य (**वपायाः**) वर्द्धिकाया रीत्याः (**मेदसः**) स्नेहस्य (**जुषताम्**) सेवताम् (**हविः**) दातव्यम् (**होतः**) (**यज**) ॥ ४१ ॥

अन्वयः—हे होतस्त्वं यथा होता यक्षदश्विनौ छागस्य वपाया मेदसो हविर्जुषेताम् तथा

यज । हे होतस्त्वं यथा होता मेषस्य वपाया मेदसो हविः सरस्वतीञ्च जुषतां यक्षत्तथा यज । हे होतस्त्वं होतर्षभस्य वपाया मेदसो हविरिन्द्रं च जुषतां यक्षत्तथा यज ॥ ४१ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे होतः** ! दातः ! **त्वं यथा होता** दाता **यक्षदश्विनौ** पशुपालकृषीवलौ **छागस्य** अजादेः **वपायाः** बीजतन्तुसन्तानिकायाः क्रियायाः **मेदसः** स्निग्धस्य **हविः** होतव्यं **जुषेतां** सेवेतां **तथा यज** ।

हे होतः दातः ! **त्वं यथा होता** आदाता **मेषस्य** अवेः **वपायाः** बीजवर्द्धिकायाः क्रियायाः **मेदसः** स्नेहयुक्तस्य पदार्थस्य **हविः** प्रक्षेप्तव्यं सुसंस्कृत-मन्नादिकं **सरस्वतीं** विज्ञानवतीं वाचं **च जुषतां** सेवतां **यक्षत्तथा यज** ।

हे होतः दातः ! **त्वं यथा होता** दाता **ऋषभस्य** वृषभस्य **वपायाः** वर्द्धिकाया रीत्याः **मेदसः** स्नेहस्य **हविः** दातव्यम् **इन्द्रं** परमैश्वर्यकारकं **च जुषतां** सेवतां **यक्षत्तथा यज** ॥ २१ । ४१ ॥

भाषार्थ—हे (होतः) दाता पुरुष ! तू जैसे (होता) विद्या का दान करने वाला विद्वान्—(यक्षत्) यज्ञ करता है तथा (अश्विनौ) पशुपालक और किसान (छागस्य) बकरे आदि की (वपायाः) बीज तन्तुओं को फैलाने वाली क्रिया तथा (मेदसः) स्निग्ध पदार्थ की (हविः) हवि का (जुषेताम्) सेवन करते हैं, वैसे (यज) होम कर ।

हे (होतः) दाता पुरुष ! तू जैसे (होता) विद्या को ग्रहण करने वाला विद्वान्—(मेषस्य) भेड़ की (वपायाः) बीज को बढ़ाने वाली क्रिया की तथा (मेदसः) स्नेहयुक्त पदार्थ की (हविः) एवं सुगन्धित अन्न आदि की हवि और (सरस्वतीम्) विज्ञान वाली वाणी का (जुषताम्) सेवन करता है, (यक्षत्) यज्ञ करता है, वैसे (यज) होम कर ।

हे (होतः) दाता पुरुष ! तू जैसे (होता) विद्या का दाता विद्वान्—(ऋषभस्य) बैल को (वपायाः) बढ़ाने वाली रीति तथा (मेदसः) स्निग्ध पदार्थ की (हविः) देने योग्य हवि और (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाले का (जुषताम्) सेवन कर, (यक्षत्) संग कर तथा (यज) होम कर ॥ २१ । ४१ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । ये मनुष्याः पशुसंख्यां बलं च वर्द्धयन्ति, ते स्वयमपि बलिष्ठा जायन्ते ।

ये पशुजं दुग्धं तज्जमाज्यं च स्निग्धं सेवन्ते ते कोमलप्रकृतयो भवन्ति ।

ये कृषिकरणाद्यायैतान् वृषभान् युञ्जन्ति, ते धनधान्ययुक्ता जायन्ते ॥ २१ । ४१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। जो मनुष्य पशुओं की संख्या और बल को बढ़ाते हैं वे स्वयं भी बलिष्ठ होते हैं ।

जो पशुओं से उत्पन्न दूध, दूध से उत्पन्न घृत एवं स्निग्ध पदार्थों का सेवन करते हैं वे कोमल प्रकृति वाले होते हैं ।

जो कृषि करने आदि कार्यों के लिए इन बैलों को युक्त करते हैं, वे धन-धान्य से युक्त होते हैं ॥ २१ । ४१ ॥

भा० पदार्थः—ऋषभस्य=वृषभस्य । इन्द्रम्=धनधान्यम् ।

भाष्यसार—**१. उत्तम ब्रह्मचर्य का उपदेश**— विद्या का दाता, उत्तम ब्रह्मचर्य का सेवन

करने वाला विद्वान् यज्ञ करे। पशु-पालक और किसान, बकरे आदि पशुओं के बीज-तन्तु को फैलावें अर्थात् पशुओं की संख्या को बढ़ावें। पशुओं से उत्पन्न होने वाले दूध आदि स्निग्ध पदार्थों का सेवन करें। उक्त विद्वान् सुगन्धित अन्न आदि और विज्ञानवती वाणी का सेवन करे, और बैलों को बढ़ावे। कृषि कार्य में बैलों का उपयोग करके धनधान्य से युक्त हों। स्निग्ध पदार्थों के सेवन से बलवान् और कोमल प्रकृति वाला हो।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि विद्या के दाता विद्वान् के समान होता मन्त्र में प्रतिपादित यज्ञ का अनुष्ठान करे॥ २१। ४१॥

आत्रेयः। **होत्रादयः**=दात्रादयः। पूर्वस्य त्रिपाद् गायत्री। सुरामाण इत्यस्यातिधृतिः। षड्जः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

उत्तम ब्रह्मचर्य का फिर उपदेश किया है॥

होता यक्षदश्विनौ सरस्वतीमिन्द्रꣳ सुत्रामाणमिमे सोमाः सुरामाणश्छागैर्न मेषैर्ऋषभैः सुताः शष्पैर्न तोक्मभिर्लाजैर्महस्वन्तो मदा मासरेण परिष्कृताः शुक्राः पयस्वन्तोऽमृताः प्रस्थिता वो मधुश्चुतस्तानश्विना सरस्वतीन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा जुषन्ताꣳ सोम्यं मधु पिबन्तु मदन्तु व्यन्तु होतर्यज॥ ४२॥

पदार्थः—(**होता**) दाता (**यक्षत्**) यजेत् (**अश्विनौ**) अध्यापकोपदेष्टारौ (**सरस्वतीम्**) विज्ञानवतीं वाचम् (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्य्ययुक्तराजानम् (**सुत्रामाणम्**) प्रजायाः सुष्ठुरक्षकम् (**इमे**) (**सोमाः**) ऐश्वर्य्यवन्तः सभासदः (**सुरामाणः**) सुष्ठुदातारः (**छागैः**) (**न**) इव (**मेषैः**) (**ऋषभैः**) (**सुताः**) अभिषेकक्रियाजाताः (**शष्पैः**) हिंसकैः। अत्रौणादिको बाहुलकात्कर्त्तरि यत् (**न**) इव (**तोक्मभिः**) अपत्यैः (**लाजैः**) भर्जितैः (**महस्वन्तः**) महांसि=पूजनानि सत्करणानि विद्यन्ते येषान्ते (**मदाः**) आनन्दाः (**मासरेण**) ओदनेन (**परिष्कृताः**) परितः शोभिताः। संपर्य्युपेभ्यः करोतौ भूषण इति सुट्। (**शुक्राः**) शुद्धाः (**पयस्वन्तः**) प्रशस्तजलदुग्धादियुक्ताः (**अमृताः**) अमृतात्मैकरसाः (**प्रस्थिताः**) कृतप्रस्थानाः (**वः**) युष्मभ्यम् (**मधुश्चुतः**) मधुरादिगुणा विश्लिष्यन्तो येभ्यः (**तान्**) (**अश्विना**) सुसत्कृतौ पुरुषौ (**सरस्वती**) प्रशस्तविद्यायुक्ता स्त्री (**इन्द्रः**) (**सुत्रामा**) सुष्ठुरक्षकः (**वृत्रहा**) मेघस्य हन्ता सूर्य्य इव (**जुषन्ताम्**) सेवन्ताम् (**सोम्यम्**) सोमार्हम् (**मधु**) मधुररसम् (**पिबन्तु**) (**मदन्तु**) आनन्दन्तु (**व्यन्तु**) व्याप्नुवन्तु (**होतः**) (**यज**)॥ ४२॥

अन्वयः—हे होतर्यथा होताऽश्विनौ सरस्वतीं सुत्रामाणमिन्द्रं यक्षद्य इमे सुरामाणः सोमाः सुताश्छागैर्न मेषैर्ऋषभैः शष्पैर्न तोक्मभिर्लाजैर्महस्वन्तो मदा मासरेण परिष्कृताः शुक्राः पयस्वन्तोऽमृता मधुश्चुतः प्रस्थिता वो निर्मितास्तान् यक्षद्यथाऽश्विना सरस्वती सुत्रामा वृत्रहेन्द्रश्च सोम्यं मधु जुषन्तां पिबन्तु मदन्तु सकला विद्या व्यन्तु तथा यज॥ ४२॥

सपदार्थान्वयः— हे होतः! यथा— **होता** दाता **अश्विनौ** अध्यापकोपदेष्टारौ **सरस्वतीं**

भाषार्थ—हे (होतः) दाता पुरुष! तू— जैसे (होता) विद्या का दाता विद्वान्—(अश्विनौ)

विज्ञानवतीं वाचं **सुत्रामाणं** प्रजायाः सुष्ठुरक्षकम् **इन्द्रं** परमैश्वर्ययुक्तराजानं **यक्षद्** यजेत्; **य इमे सुरामाणः** सुष्ठुदातारः, **सोमाः** ऐश्वर्यवन्तः सभासदः, **सुताः** अभिषेकक्रियाजाताः, **छागैर्न** इव **मेषैर्ऋषभैः, शष्पैः** हिंसकैः **न** इव **तोक्मभिः** अपत्यैः **लाजैः** भर्जितैः, **महस्वन्तः**, महांसि=पूजनानि सत्करणानि विद्यन्ते येषान्ते, **मदाः** आनन्दाः, **मासरेण** ओदनेन **परिष्कृताः** परितः शोभिताः, **शुक्राः** शुद्धाः, **पयस्वन्तः** प्रशस्तजलदुग्धादियुक्ताः, **अमृताः** अमृतात्मैकरसाः, **मधुश्चुतः** मधुरादिगुणा विश्लिष्यन्तो येभ्यः, **प्रस्थिताः** कृतप्रस्थानाः **वः** युष्मभ्यं **निर्मितास्तान यक्षद्** यजेत् । **यथाऽश्विना** सुसत्कृतौ पुरुषौ, **सरस्वती** प्रशस्तविद्यायुक्ता स्त्री, **सुत्रामा** सुष्ठुरक्षकः **वृत्रहा** मेघस्य हन्ता सूर्य्य इव **इन्द्रश्च सोम्यं** सोमार्हं **मधु** मधुरसं **जुषन्तां** सेवन्तां, **पिबन्तु मदन्तु** आनन्दन्तु, **सकला विद्या व्यन्तु** व्याप्नुवन्तु, **तथा यज** ॥२१।४२॥

अध्यापक और उपदेशक, (सरस्वतीम्) विज्ञान वाली वाणी, (सुत्रामाणम्) प्रजा के उत्तम रक्षक (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य से युक्त राजा का (यक्षत्) संग करता है, और जो ये (सुरामाणः) उत्तम दाता, (सोमाः) ऐश्वर्यवान् सभासद (सुताः) अभिषेक क्रिया से बने हैं; जो (छागैः) बकरों के (न) समान, (मेषैः) भेड़, (ऋषभैः) बैल और (शष्पैः) हिंसक पशुओं के समान, (तोक्मभिः) सन्तानों और (लाजैः) भूने हुए अन्नों से (महस्वन्तः) पूजा सत्कार वाले, (मदाः) आनन्द, (मासरेण) भात से (परिष्कृताः) शोभायमान, (शुक्राः) शुद्ध, (पयस्वन्तः) प्रशस्त जल और दुग्धादि से युक्त, (अमृताः) अमृतात्मक एक रस वाले, (मधुश्चुतः) मधुरादि गुणों को विश्लिष्ट करने वाले, (प्रस्थिताः) प्रस्थान करने वाले (वः) तुम्हारे लिए बनाये हैं उनका (यक्षत्) संग करता है; जैसे (अश्विनौ) उत्तम रीति से सत्कृत दो पुरुष, (सरस्वती) प्रशस्त विद्या से युक्त स्त्री, (सुत्रामा) उत्तम रक्षक और (वृत्रहा) मेघ के हनन करने वाले सूर्य के समान (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य वाला पुरुष (सोम्यम्) सोम-गुण से युक्त (मधु) मधुर रस का (जुषन्ताम्) सेवन करते हैं, (पिबन्तु) पान करते हैं (मदन्तु) आनन्द ग्रहण करते हैं, सकल विद्याओं को (व्यन्तु) प्राप्त करते हैं; वैसे (यज) यज्ञ कर ॥ २१ । ४२ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ ये सृष्टिपदार्थविद्यां, सत्यां वाचं, सुरक्षकं राजानं च प्राप्य, पशूनां पय आदिभिः पुष्यन्ति, ते सुरसान् सुसंस्कृतान्नादीन् सुपरीक्षितान् भोगान् युक्त्या भुक्त्वा, रसान् पीत्वा, धर्मार्थकाममोक्षार्थे **प्रयतन्ते** ते सदा सुखिनो भवन्ति ॥ २१ । ४२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ जो मनुष्य सृष्टि के पदार्थों की विद्या, सत्य वाणी और सुरक्षा करने वाले राजा को प्राप्त कर, पशुओं के दुग्ध आदि से पुष्ट होते हैं, वे उत्तम रसों वाले सुगन्धित अन्न आदि एवं सुपरीक्षित भोगों को युक्ति से भोग कर, रसों को पीकर; धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के लिए प्रयत्न करते हैं, वे सदा सुखी रहते हैं ॥ २१ । ४२ ॥

भा० पदार्थः—अश्विनौ=सृष्टिविद्याम् । सरस्वतीम्=सत्यां वाचम् । सुत्रामाणम्=सुरक्षकम् । इन्द्रम्=राजानम् । छागैः=पशूनां पय आदिभिः । मदन्तु=सुखिनो भवन्तु ॥

भाष्यसार—१. उत्तम ब्रह्मचर्य का उपदेश—विद्या का दाता, उत्तम ब्रह्मचर्य का सेवन करने वाला विद्वान्, अध्यापक और उपदेशक सरस्वती=विज्ञानवती वाणी का दान करें; प्रजा के उत्तम रक्षक परम ऐश्वर्य से युक्त राजा का संग करें एवं उसका सत्कार करें । उक्त विद्वान्—जो विद्या आदि

शुभ गुणों का दान करने वाले, ऐश्वर्य सम्पन्न, अभिषिक्त सभासद हों उनका बकरी, भेड़, गाय आदि पशुओं के दूध आदि से सत्कार करें। अन्य आनन्ददायक पदार्थ, भात, जल, अमृत रूप रसीले पदार्थ बनाकर उक्त सभासदों का सत्कार करें। उत्तम रीति से सत्कृत अध्यापक और उपदेशक, प्रशस्त विद्या से युक्त स्त्री और राजा सोम्य मधुर रस पान करें, आनन्द करें और सकल विद्याओं को प्राप्त करें। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के लिए प्रयत्न करें।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि विद्या के दाता विद्वान्, अध्यापक और उपदेशक आदि के समान होता मन्त्र में प्रतिपादित यज्ञ का अनुष्ठान करे ॥ २१ । ४२ ॥

आत्रेय:। **होत्राद्यः**=आदात्रादयः। आद्यस्य याजुषी पङ्क्तिः। पञ्चमः।
उत्तरस्योत्कृतिः। षड्जः॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

उत्तम ब्रह्मचर्य का फिर उपदेश किया है ॥

होता यक्षद॒श्विनौ॒ छाग॑स्य ह॒विष॒ ऽ आत्ता॑म॒द्य मध्य॒तो मेद॒ ऽ उद्भृ॑तं पु॒रा द्वेषो॑भ्यः पु॒रा पौरु॑षेय्या गृ॒भो घस्तां॑ नू॒नं घा॒से ऽ अ॒ज्राणां॒ यव॑सप्रथमाना॒थ्ठं सु॒मत्क्ष॑राणा॒थ्ठं शतरु॒द्रिया॑णामग्निष्वा॒त्ताना॒ं पीवो॑पवसनानां पार्श्व॒तः श्रो॑णि॒तः शि॑ताम॒त ऽ उ॑त्साद॒तोऽङ्गा॑दङ्गा॒दव॑त्ताना॒ं कर॑त ऽ ए॒वाश्विना॑ जु॒षेता॒थ्ठं ह॒विर्होत॒र्यज॑ ॥ ४३ ॥

पदार्थः—(होता) आदाता (**यक्षत्**) (**अश्विनौ**) अध्यापकोपदेशकौ (**छागस्य**) (**हविषः**) आदातुमर्हस्य (**आत्ताम्**) (**अद्य**) (**मध्यतः**) मध्यात् (**मेदः**) स्निग्धम् (**उद्भृतम्**) उत्कृष्टतया धृतम् (**पुरा**) (**द्वेषोभ्यः**) दुष्टेभ्यः (**पुरा**) (**पौरुषेय्याः**) पुरुषाणां समूहे साध्व्यः (**गृभः**) ग्रहीतुं योग्यायाः (**घस्ताम्**) भक्षयताम् (**नूनम्**) निश्चितम् (**घासे अज्राणाम्**) भोजनेऽग्रे प्राप्तव्यानाम् (**यवसप्रथमानाम्**) यवसो-यवान्नं प्रथमं येषां तेषाम् (**सुमत्क्षराणाम्**) सुष्ठु मदां क्षरः-संचलनं येषां तेषाम् (**शतरुद्रियाणाम्**) शतं रुद्राः शतरुद्राः शतरुद्रा देवता येषां तेषाम् (**अग्निष्वात्तानाम्**) अग्निः सुष्ठ्वात्तो=गृहीतो यैस्तेषाम् (**पीवोपवसनानाम्**) पीवांस्युपवसनान्याच्छानानि येषां तेषाम् (**पार्श्वतः**) उभयतः (**श्रोणितः**) कटिप्रदेशात् (**शितामतः**) शितस्तीक्ष्ण आमोऽपरिपक्वं यस्मिंस्तस्मात् (**उत्सादतः**) उत्सादनं कुर्वतः (**अङ्गादङ्गात्**) प्रत्यङ्गात् (**अवत्तानाम्**) नम्रीभूतानामुत्कृष्टानामङ्गानाम् (**करतः**) कुर्याताम् (**एव**) (**अश्विना**) सद्वैद्यौ (**जुषेताम्**) (**हविः**) अत्तुमर्हम् (**होतः**) (**यज**) ॥ ४३ ॥

अन्वयः—हे होतर्यथा होताश्विनौ यक्षत्तौ चाद्य छागस्य मध्यतो हविषो मेद उद्भृतमात्तां यथा वा पुरा द्वेषोभ्यो गृभः पौरुषेय्याः पुरा नूनं घस्तां यथा वा यवसप्रथमानां घासे अज्राणां सुमत्क्षराणां शतरुद्रियाणां पीवोपवसनानामग्निष्वात्तानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामत उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्ताना-मेवाश्विना करतो हविर्जुषेतां तथा त्वं यज ॥ ४३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे होतः! यथा—**होता** आदाता **अश्विनौ** अध्यापकोपदेशकौ **यक्षत् तौ चाद्य छागस्य मध्यतः** मध्यात् **हविषः** आदातुमर्हस्य **मेदः** स्निग्धम् **उद्भृतम्** उत्कृष्टतया धृतम्

भावार्थ—हे (होतः) दाता पुरुष! जैसे (होता) विद्या को ग्रहण करने वाला विद्वान्—(अश्विनौ) अध्यापक और उपदेशक का (यक्षत्) संग करता है; और वे दोनों (अद्य) आज (छागस्य)

आत्ताम् यथा वा—पुरा द्वेषोभ्यः दुष्टेभ्यः **गृभः** ग्रहीतुं योग्यायाः **पौरुषेय्याः** पुरुषाणां समूहे साध्व्यः **पुरा नूनं** निश्चितं **घस्तां** भक्षयताम्, **यथा वा—यवसप्रथमानां** यवसो=यवान्नं प्रथमं येषां तेषां **घासे अज्राणां** भोजनेऽग्रे प्राप्तव्यानां **सुमत्क्षराणां** सुष्ठु मदां क्षरः=सञ्चलनं येषां तेषां **शतरुद्रियाणां** शतं रुद्राः शतरुद्राः शतरुद्राः देवता येषां तेषां **पीवोपवसनानाम्** पीवांस्युपवसनान्याच्छादनानि येषां तेषाम् **अग्निष्वात्तानाम्** अग्निः सुष्ठ्वात्तो=गृहीतो यैस्तेषां, **पार्श्वतः** उभयतः **श्रोणितः** कटिप्रदेशात् **शितामतः** शितस्तीक्ष्णं आमोऽपरिपक्वं यस्मिंस्तस्माद् **उत्सादतः** उत्सादनं कुर्वतः **अङ्गादङ्गात्** प्रत्यङ्गाद् **अवत्तानां** नम्रीभूतानामुत्कृष्टानामङ्गानाम् **एवाश्विना** सद्वैद्यौ **करतः** कुर्यातां **हविः** अत्तुमर्हं **जुषेतां तथा त्वं यज** ॥ २१ । ४३ ॥

बकरी आदि पशुओं के (मध्यतः) मध्य से (हविषः) ग्रहण करने योग्य (मेदः) दूध, घृत आदि स्निग्ध पदार्थों को (उद्भृतम्) उत्तम रीति से धारण करके (आत्ताम्) सेवन करें ; अथवा जैसे—(पुरा) पहले (नूनम्) निश्चय से (घस्ताम्) खावें; अथवा जैसे—(यवसप्रथमानाम्) जौ अन्न को प्रथम मानने वाले, (घासे अज्राणाम्) भोजन में आगे पहुँचने वाले, (सुमत् क्षराणाम्) उत्तम आनन्दों का संचालन करने वाले, (शतरुद्रियाणाम्) सैकड़ों रुद्र देवता वाले, (पीवोपवसनानाम्) मोटे वस्त्रों को धारण करने वाले, (अग्निष्वात्तानाम्) अग्नि-विद्या को उत्तम रीति से ग्रहण करने वाले विद्वानों के (पार्श्वतः) दोनों ओर (श्रोणितः) एवं कटि प्रदेश (शितामतः) तीक्ष्ण एवं अपरिपक्व स्थान से (उत्सादतः) उखाड़े जाते हुए (अङ्गादङ्गात्) प्रत्येक अङ्ग से (अवत्तानाम्) नम्र एवं उत्कृष्ट अङ्गों की (एव) ही (अश्विना) दो श्रेष्ठ वैद्य (करतः) चिकित्सा करें, (हविः) भोज्यपदार्थ का (जुषेताम्) सेवन करें, वैसे तू (यज) यज्ञ कर ॥ २१ । ४३ ॥

भावार्थः—ये छागादीनां रक्षां विधाय, तेषां दुग्धादिकं सुसंस्कृत्य भुक्त्वा, द्वेषादियुक्तान् पुरुषान् निवार्य सुवैद्यानां सङ्गं कृत्वा, शोभनं भोजनाच्छादनं कुर्वन्ति, ते प्रत्यङ्गाद्रोगान् निवार्य, सुखिनो भवन्ति ॥ २१ । ४३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य बकरी आदि पशुओं की रक्षा कर, उनके दूध आदि को सुगन्धित कर एवं उनका सेवन करके, द्वेषादि दोषों से युक्त पुरुषों को दूर हटा कर, श्रेष्ठ वैद्यों का संग करके, उत्तम भोजन आच्छादन करते हैं वे प्रत्येक अङ्ग से रोगों को दूर करके सुखी रहते हैं ॥ २१ । ४३ ॥

भा० पदार्थः—मेदः=दुग्धादिकम् । द्वेषोभ्यः=द्वेषादियुक्तेभ्यः पुरुषेभ्यः । अश्विनौ=सुवैद्यौ । हविः=शोभनं भोजनाच्छादनम् ॥

भाष्यसार—उत्तम ब्रह्मचर्य का उपदेश—विद्या आदि शुभ गुणों को ग्रहण करने वाला, उत्तम ब्रह्मचर्य का सेवन करने वाला विद्वान्; अध्यापक और उपदेशक यज्ञ का अनुष्ठान करें। वे पशुओं से उत्पन्न दूध आदि स्निग्ध पदार्थों का सेवन करें। दुष्ट पुरुषों का निवारण करें। पुरुषों साध्वी स्त्रियों से प्रथम भोजन करें। यव=जौ अन्न को प्राथमिकता देने वाला, भोजन में प्रथम प्राप्त होने वाले, उत्तम आनन्द-कार्यों का संचालन करने वाले, सौ रुद्र (दुष्टों को रुलाने वाले) देवताओं वाले, स्थूल वस्त्रों को धारण करने वाले, अग्नि-विद्या के ज्ञाता श्रेष्ठ वैद्य जनों का संग करके उत्तम भोजन-आच्छादन से प्रत्येक अङ्ग के रोग का निवारण करके सुखी रहें ॥ २१ । ४३ ॥

आत्रेयः । **विद्वांसः**=स्पष्टम् । पूर्वस्य याजुषी त्रिष्टुप् । धैवतः । हविष इत्युत्तरस्य स्वराडुत्कृतिः । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

उत्तम ब्रह्मचर्य का फिर उपदेश किया है ॥

होता यक्षत् सरस्वतीं मेषस्य हविष ऽ आवयदद्य मध्यतो मेद ऽ उद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घसन्नूनं घासे ऽ अज्राणां यवसप्रथमानाᳪं सुमत्क्षराणाᳪं शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामत ऽ उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करदेवᳪं सरस्वती जुषताᳪं हविर्होतर्यज ॥ ४४ ॥

पदार्थः—(होता) दाता (**यक्षत्**) (**सरस्वतीम्**) वाचम् (**मेषस्य**) उपदिष्टस्य (**हविषः**) दातुमर्हस्य (**आ**) (**अवयत्**) वेति=प्राप्नोति (**अद्य**) (**मध्यतः**) मध्ये भवात् (**मेदः**) स्निग्धम् (**उद्भृतम्**) उद्धृतम् (**पुरा**) (**द्वेषोभ्यः**) शत्रुभ्यः (**पुरा**) (**पौरुषेय्याः**) पुरुषसम्बन्धिन्याः (**गृभः**) ग्रहीतुं योग्यायाः (**घसत्**) (**नूनम्**) निश्चितम् (**घासे अज्राणाम्**) भोजने कमनीयानाम् (**यवसप्रथमानाम्**) मिश्रितामिश्रिताद्यानाम् (**सुमत्क्षराणाम्**) श्रेष्ठानन्दवर्षकराणाम् (**शतरुद्रियाणाम्**) बहूनां मध्ये विद्वदधिष्ठातॄणाम् (**अग्निष्वात्तानाम्**) सुसंगृहीताग्निविद्यानाम् (**पीवोपवसनानाम्**) स्थूलवस्त्रधारिणाम् (**पार्श्वतः**) समीपात् (**श्रोणितः**) कटिप्रदेशात् (**शितामतः**) तीक्ष्णस्वभावात् (**उत्सादतः**) गात्रोत्सादनात् (**अङ्गादङ्गात्**) (**अवत्तानाम्**) गृहीतानाम् (**करत्**) कुर्यात् (**एवम्**) अमुना प्रकारेण (**सरस्वती**) विदुषी स्त्री (**जुषताम्**) (**हविः**) आदातव्यम् (होतः) आदातः (**यज**) ॥ ४४ ॥

अन्वयः—हे होतर्यथा होताऽद्य मेषस्य शितामतो हविषो मध्यतो यन्मेद उद्भृतं तत् सरस्वतीं चावयत् यक्षत् द्वेषोभ्यः पुरा गृभः पौरुषेय्या पुरा नूनं घसद् घासे अज्राणां यवसप्रथमानां सुमत्क्षराणां पीवोपवसनानामग्निष्वात्तानां शतरुद्रियाणां पार्श्वतः श्रोणितः उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां सकाशाद्विद्यां करदेवमेतत्सरस्वती जुषतां तथा त्वं च हविर्यज ॥ ४४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे होतः आदातः ! यथा—होता दाता **अद्य मेषस्य** उपदिष्टस्य **शितामतः** तीक्ष्णस्वभावाद् **हविषः** दातुमर्हस्य **मध्यतः** मध्ये भवाद् **यन्मेदः** स्निग्धम् **उद्भृतम्** उदधृतं **तत्, सरस्वतीं** वाचं **चावयत्** वेति-प्राप्नोति **यक्षत्; द्वेषोभ्यः** शत्रुभ्यः **पुरा गृभः** ग्रहीतुं योग्यायाः **पौरुषेय्याः** पुरुषसम्बन्धिन्याः **पुरा नूनं** निश्चितं **घसद्, घासे अज्राणां** भोजने कमनीयानां, **यवसप्रथमानां** मिश्रितामिश्रिताद्यानां, **सुमत्क्षराणां** श्रेष्ठानन्दवर्षकराणां, **पीवोपवसनानां** स्थूलवस्त्रधारिणाम्, **अग्निष्वात्तानां** सुसंगृहीताग्निविद्यानां, **शतरुद्रियाणां** बहूनां मध्ये विद्वदधिष्ठातॄणां **पार्श्वतः** समीपात्, **श्रोणितः** कटिप्रदेशाद्, **उत्सादतः**

भाषार्थ—हे (होतः) विद्या को ग्रहण करने वाले मनुष्य ! जैसे (होता) विद्या का दाता विद्वान्—(अद्य) आज (मेषस्य) उक्त भेड़ (शितामतः) तीक्ष्ण स्वभाव के कारण (हविषः) देने योग्य पदार्थ के (मध्यतः) मध्य में जो (मेदः) चिकनापन (उद्भृतम्) ग्रहण किया है उसे और (सरस्वतीम्) वाणी को, (आवयत्) प्राप्त करता है, (यक्षत्) यज्ञ करता है; और (द्वेषोभ्यः) शत्रुओं से (पुरा) पहले (गृभः) ग्रहण करने योग्य (पौरुषेय्याः) पुरुष—सम्बन्धिनी स्त्री से (पुरा) पहले (नूनम्) निश्चय से (घसत्) खाता है; और (घासे अज्राणाम्) भोजन में कामना करने के योग्य, (यवसप्रथमानाम्) मिश्रित—अमिश्रित आदि

गात्रोत्सादनाद् **अङ्गादङ्गादवत्तानां** गृहीतानां **सकाशाद्विद्यां करत्** कुर्यात्, **एवम्** अमुना प्रकारेण **एतत्सरस्वती** विदुषी स्त्री **जुषतां, तथा त्वं च हविः** आदातव्यं **यज** ॥ २१ । ४४ ॥

(सुमत्क्षराणाम्) श्रेष्ठ आनन्द की वर्षा करने वाले, (पीवोपवसनानाम्) स्थूल वस्त्रों को धारण करने वाले (अग्निष्वात्तानाम्) अग्निविद्या को उत्तम रीति से ग्रहण करने वाले, (शतरुद्रियाणां) विद्वानों के अधिष्ठाता पुरुषों के (पार्श्वतः) समीप, (श्रोणितः) कटिप्रदेश से (उत्सादतः) शरीर को उखेड़ कर (अङ्गादङ्गात्) प्रत्येक अङ्ग से (अवत्तानाम्) ग्रहण किये हुए रोगों से वैद्यक-विद्या को (करत्) प्राप्त करता है; (एवम्) इस प्रकार इसे (सरस्वती) विदुषी स्त्री (जुषताम्) सेवन करती है; वैसे तू (हविः) ग्रहण करने योग्य पदार्थ का (यज) यज्ञ कर ॥ २१ । ४४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ ये मनुष्या सज्जनसंगेन दुष्टान् निवार्य युक्ताहार-विहाराभ्यामारोग्यं प्राप्य, धर्मं सेवन्ते, ते कृतकृत्या जायन्ते ॥ २१ । ४४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है ॥ जो मनुष्य सज्जनों के संग से दुष्टों का निवारण कर, युक्त आहार-विहार से आरोग्य को प्राप्त करके धर्म का सेवन करते हैं वे कृतकृत्य हो जाते हैं ॥ २१ । ४४ ॥

भाष्यसार—१. **उत्तम ब्रह्मचर्य का उपदेश**—विद्या का दाता, उत्तम ब्रह्मचर्य का सेवन करने वाला विद्वान् मेष=भेड़ आदि पशुओं से उत्पन्न दुग्ध आदि स्निग्ध पदार्थों को प्राप्त करे, सरस्वती =वाणी को प्राप्त करे। सज्जनों के संग से दुष्ट शत्रुओं का निवारण करे, स्त्री से पहले भोजन करे। भोजन में कामना करने योग्य, श्रेष्ठों से मिश्रित और दुष्टों से अमिश्रित रहने वाले, श्रेष्ठ आनन्द की वर्षा करने वाले, स्थूल वस्त्रों को धारण करने वाले, अग्नि-विद्या के ज्ञाता, विद्वानों के अधिष्ठाता पुरुषों का संग करे, उनसे अङ्गों को चीर-फाड़ करने की विद्या को ग्रहण करे, विदुषी स्त्री भी ऐसा ही आचरण करे। उक्त विद्वान् तथा विदुषी युक्त आहार-विहार से आरोग्य को प्राप्त करे, धर्म का सेवन करके कृतकृत्य हों।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है। अतः वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि विद्या के दाता विद्वान् के समान होता मन्त्र में प्रतिपादित यज्ञ का अनुष्ठान करे ॥ २१ । ४४ ॥ ●

आत्रेयः । **यजमानर्त्विजः**=स्पष्टम्। पूर्वस्य भुरिक्प्राजापत्योष्णिक् । आवयदित्युत्तरस्य भुरिगभिकृतिः । ऋषभः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

उत्तम ब्रह्मचर्य का फिर उपदेश किया है ॥

होता यक्षदिन्द्रमृषभस्य हविष ऽ आवयदद्य मध्यतो मेद ऽ उद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घसन्नूनं घासे ऽ अज्राणां यवसप्रथमानाᳬ सुमत्क्षराणाᳬ शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामत ऽ उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करदेवमिन्द्रो जुषताᳬ हविर्होतर्यज ॥ ४५ ॥

पदार्थः—(**होता**) आदाता (**यक्षत्**) सत्कुर्यात् (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्यम् (**ऋषभस्य**) उत्तमस्य (**हविषः**) आदातुमर्हस्य (**आ**) (**अवयत्**) व्याप्नुयात् (**अद्य**) (**मध्यतः**) मध्ये भवात् (**मेदः**) स्निग्धम् (**उद्भृतम्**) उत्कृष्टतया पोषितम् (**पुरा**) पुरस्तात् (**द्वेषोभ्यः**) विरोधिभ्यः (**पुरा**) (**पौरुषेय्याः**) पुरुषसम्बन्धिन्या विद्यायाः (**गृभः**) ग्रहीतुं योग्यायाः (**घसत्**) अद्यात् (**नूनम्**) (**घासे अज्राणाम्**) (**यवसप्रथमानाम्**) यवसस्य विस्तारकाणाम् (**सुमत्क्षराणाम्**) सुष्ठु प्रमादनाशकानाम् (**शतरुद्रियाणाम्**) शतानां रुद्राणां=दुष्टरोदकानाम् (**अग्निष्वात्तानाम्**) अग्निना=जाठराग्निना सुष्ठु गृहीतान्नानाम् (**पीवोपवसनानाम्**) स्थूलदृढाऽच्छादनानाम् (**पार्श्वतः**) इतस्ततोऽङ्गात् (**श्रोणितः**) क्रमशः (**शितामतः**) तीक्ष्णत्वेनोच्छिन्नरोगात् (**उत्सादतः**) त्यागमात्रात् (**अङ्गादङ्गात्**) प्रत्यङ्गात् (**अवत्तानाम्**) उदारचेतसाम् (**करत्**) कुर्यात् (**एवम्**) (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान् राजा (**जुषताम्**) सेवताम् (**हविः**) रोगनाशकं वस्तु (**होतः**) (**यज**) ॥ ४५ ॥

अन्वयः—हे होतर्यथा होता घासे अज्राणां यवसप्रथमानां सुमत्क्षराणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां शतरुद्रियाणामवत्तानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामत उत्सादतोऽङ्गादङ्गाद्धविरिन्द्रं च करदिन्द्रो जुषतां यथाऽद्यर्षभस्य हविषो मध्यतो मेद उदभृतमावपत् द्वेषोभ्यः पुरा गृभः पौरुषेय्याः पुरा नूनं यक्षदेवं घसत् तथा त्वं यज ॥ ४५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे होतः ! **यथा**—**होता** आदाता **घासे अज्राणां यवसप्रथमानां** यवसस्य विस्तारकाणां **सुमत्क्षराणां** सुष्ठुप्रमादनाशकानाम् **अग्निष्वात्तानाम्** अग्निना=जाठराग्निना सुष्ठु गृहीतान्नानाम् **पीवोपवसनानां** स्थूलदृढाऽऽच्छादनानां **शतरुद्रियाणां** शतानां रुद्राणां=दुष्टरोदकानाम् **अवत्तानाम्** उदारचेतसां **पार्श्वतः** इतस्ततोऽङ्गात् **श्रोणितः** क्रमशः **शितामतः** तीक्ष्णत्वेनोच्छिन्नरोगात् **उत्सादतः** त्यागमात्रात् **अङ्गादङ्गात्** प्रत्यङ्गात् **हविः** रोगनाशकं वस्तु **इन्द्रं** परमैश्वर्यं **च करत्** कुर्याद्, **इन्द्रः** परमैश्वर्यवान् राजा **जुषतां** सेवताम्, **यथाऽद्यर्षभस्य** उत्तमस्य **हविषः** आदातुमर्हस्य **मध्यतः** मध्ये भवात् **मेदः** स्निग्धम् **उद्भृतम्** उत्कृष्टतया पोषितम् **आ-अवयत्** व्याप्नुयात्, **द्वेषोभ्यः** विरोधिभ्यः पुरा **पुरस्तात् गृभः** ग्रहीतुं योग्यायाः **पौरुषेय्याः** पुरुषसम्बन्धिन्या विद्यायाः **पुरा** पुरस्तात्

भावार्थ—हे (होतः) दाता पुरुष ! जैसे (होता) विद्या को ग्रहण करने वाला विद्वान्—(घासे अज्राणाम्) भोजन में प्रथम प्राप्त होने वाले, (यवसप्रथमानाम्) जौ आदि का विस्तार करने वाले, (सुमत्क्षराणाम्) अच्छे प्रकार प्रमाद का नाश करने वाले, (अग्निष्वात्तानाम्) जाठर-अग्नि से अच्छे प्रकार अन्नों को ग्रहण करने वाले, (पीवोपवसनानाम्) स्थूल एवं दृढ़ आच्छादन वाले, (शतरुद्रियाणाम्) सैकड़ों दुष्टों को रुलाने वाले, (अवत्तानाम्) उदार चित्त वाले, लोगों के (पार्श्वतः) इधर-उधर के अङ्गों से (श्रोणितः) क्रमशः (शितामतः) तीक्ष्णतापूर्वक उच्छिन्न रोग के (उत्सादतः) त्याग से एवं (अङ्गादङ्गात्) प्रत्येक अङ्ग से (हविः) रोगनाशक वस्तु और (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य को (कुर्यात्) सिद्ध करता है; (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् राजा (जुषताम्) सेवन करता है;

नूनं यक्षत् सत्कुर्यात्, **एवं घसत्** अद्यात्, **तथा त्वं यज** ।। २१ । ४५ ।।

और जैसे—(अद्य) आज (ऋषभस्य) उत्तम (हविषः) ग्रहण करने योग्य पदार्थ के (मध्यतः) मध्य में विद्यमान (मेदः) स्निग्ध तत्त्व को (उद्भृतम्) उत्कृष्टता से पोषित करके (आ+अवयत्) प्राप्त करता है; और (द्वेषोभ्यः) विरोधियों से (पुरा) पहले (गृभः) ग्रहण करने योग्य (पौरुषेय्याः) पुरुष-सम्बन्धी विद्या के निमित्त (पुरा) पहले (नूनम्) निश्चय से (यक्षत्) सत्कार करता है, एवं (घसत्) भोजन करता है; वैसे तू (यज) यज्ञ कर ।। २१ । ४५ ।।

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । ये मनुष्या विदुषां संगेन दुष्टान् निवार्य, श्रेष्ठान् सत्कृत्य, ग्रहीतव्यं गृहीत्वाऽन्यान् ग्राहयित्वा, सर्वानुन्नयन्ति ते पूज्या जायन्ते ।। २१ । ४५ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है ।। जो मनुष्य विद्वानों के संग से दुष्टों का निवारण, श्रेष्ठों का सत्कार कर, ग्रहण करने योग्य पदार्थ को स्वयं ग्रहण करते तथा अन्यों को ग्रहण कराकर सबको उन्नत करते हैं वे पूज्य होते हैं ।। २१ । ४५ ।।

94

भाष्यसार—१. **उत्तम ब्रह्मचर्य का उपदेश**—विद्या आदि शुभ गुणों को ग्रहण करने वाला, उत्तम ब्रह्मचर्य का सेवन करने वाला विद्वान्—भोजन में प्राप्त होने वाले, जौ आदि अन्नों का विस्तार करने वाले, उत्तम रीति से प्रमाद का नाश करने वाले, जाठराग्नि से अन्नों को ग्रहण करने वाले, स्थूल एवं दृढ़ वस्त्रों को धारण करने वाले, दुष्टों को रुलाने वाले, उदार चित्त वाले विद्वानों का संग करे; रोग नाशक वस्तुओं का सेवन करे; परम ऐश्वर्य को बढ़ावे; उत्तम, ग्रहण करने योग्य दुग्ध आदि स्निग्ध पदार्थों को स्वयं ग्रहण करे तथा अन्यों को भी करावे और उससे पुष्टि को प्राप्त करे; विरोधियों का निवारण करे; ग्रहण करने योग्य विद्या को ग्रहण करे, श्रेष्ठों का सत्कार करे, सबको उन्नत करके पूज्य बने ।।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है । अतः वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि विद्यादि शुभ गुणों को ग्रहण करने वाले विद्वान् के समान होता मन्त्र में प्रतिपादित यज्ञ का अनुष्ठान करे ।। २१ । ४५ ।। ●

स्वस्त्यात्रेयः । **अश्व्यादयः**=सूर्यचन्द्रादयः । भुरिगभिकृती छन्दसी ।

ऋषभः स्वरः ।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

उत्तम ब्रह्मचर्य का फिर उपदेश किया है ।।

होता यक्षद्वनस्पतिमभि हि पिष्टतमया रभिष्ठया रशनयाधित। यत्राश्विनोश्छागस्य हविषः प्रिया धामानि यत्र सरस्वत्या मेषस्य हविषः प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्य ऽ ऋषभस्य हविषः प्रिया धामानि यत्राग्नेः प्रिया धामानि यत्र सोमस्य प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्य सुत्राम्णः प्रिया धामानि यत्र सवितुः प्रिया धामानि यत्र वरुणस्य प्रिया धामानि यत्र वनस्पतेः प्रिया पाथांꣳसि यत्र देवानामाज्यपानां प्रिया धामानि यत्राग्नेर्होतुः प्रिया धामानि तत्रैतान् प्रस्तुत्येवोपस्तुत्येवोपावस्रक्षद्रभीयसऽइव कृत्वी करदेवं देवो वनस्पतिर्जुषताꣳ हविर्होतर्यज ॥ ४६ ॥

पदार्थः—(होता) आदाता (**यक्षत्**) (**वनस्पतिम्**) वटादिकम् (**अभि**) (**हि**) किल (**पिष्टतमया**) (**रभिष्टया**) (**रशनया**) रश्मिना (**अधित**) दध्यात् (**यत्र**) (**अश्विनोः**) सूर्य्याचन्द्रमसोः (**छागस्य**) छेदकस्य (**हविषः**) दातुमर्हस्य (**प्रिया**) कमनीयानि (**धामानि**) जन्मस्थाननामानि (**यत्र**) (**सरस्वत्याः**) नद्याः। सरस्वतीति नदीना० ॥ निघं १ । १३ ॥ (**मेषस्य**) अवेः (**हविषः**) आदातुमर्हस्य (**प्रिया**) (**धामानि**) (**यत्र**) (**इन्द्रस्य**) ऐश्वर्ययुक्तस्य (**ऋषभस्य**) प्राप्तुं योग्यस्य (**हविषः**) दातुं योग्यस्य (**प्रिया**) (**धामानि**) (**यत्र**) (**अग्नेः**) पावकस्य (**प्रिया**) (**धामानि**) (**यत्र**) (**सोमस्य**) ओषधिगणस्य (**प्रिया**) (**धामानि**) (**यत्र**) (**इन्द्रस्य**) ऐश्वर्ययुक्तस्य (**सुत्राम्णः**) सुष्ठु रक्षकस्य (**प्रिया**) (**धामानि**) (**यत्र**) (**सवितुः**) प्रेरकस्य (**प्रिया**) (**धामानि**) (**यत्र**) (**वरुणस्य**) श्रेष्ठस्य (**प्रिया**) (**धामानि**) (**वनस्पतेः**) वटादेः (**प्रिया**) (**पाथांसि**) अन्नानि (**यत्र**) (**देवानाम्**) पृथिव्यादीनां दिव्यानाम् (**आज्यपानाम्**) गत्या पालकानाम् (**प्रिया**) (**धामानि**) (**यत्र**) (**अग्नेः**) विद्यया प्रकाशमानस्य (**होतुः**) दातुः (**प्रिया**) (**धामानि**) (**तत्र**) (**एतान्**) (**प्रस्तुत्येव**) प्रकरणेन संश्लाघ्येव (**उपस्तुत्येव**) समीपेन स्तुत्येव (**उपावस्रक्षत्**) उपावसृजेत् (**रभीयस इव**) अतिशयेनारब्धस्येव (**कृत्वी**) कृत्वा (**करत्**) कुर्यात् (**एवम्**) (**देवः**) दिव्यगुणः (**वनस्पतिः**) रश्मिपालकोऽग्निः (**जुषताम्**) सेवताम् (**हविः**) संस्कृतमन्नादिकम् (**होतः**) (**यज**) ॥ ४६ ॥

अन्वयः—हे होतर्यथा होता पिष्टतमया रभिष्ठया रशनया यत्राऽश्विनोश्छागस्य हविषः प्रिया धामानि यत्र सरस्वत्या मेषस्य हविषः प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्यर्षभस्य हविषः प्रिया धामानि यत्राग्नेः प्रिया धामानि यत्र सोमस्य प्रिया धामानि यत्र सुत्राम्ण इन्द्रस्य प्रिया धामानि यत्र सवितुः प्रिया धामानि यत्र वरुणस्य प्रिया धामानि यत्र वनस्पतेः प्रिया पाथांसि यत्राज्यपानां देवानां प्रिया धामानि यत्र होतुरग्नेः प्रिया धामानि सन्ति तत्रैतान्प्रस्तुत्येवोपस्तुत्येवोपावस्रक्षद्रभीयस इव कृत्वी कार्य्येषूपयुञ्जीतैवं करद्यथा वनस्पतिर्देवो हविर्जुषतां हि वनस्पतिमभियक्षदधित तथा त्वं यज ॥ ४६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे होतः ! यथा **होता** आदाता **पिष्टतमया रभिष्ठया रशनया** रश्मिना, **यत्राऽश्विनोः** सूर्य्याचन्द्रमसोः **छागस्य** छेदकस्य **हविषः** दातुमर्हस्य **प्रिया** कमनीयानि **धामानि** जन्मस्थाननामानि, **यत्र सरस्वत्याः** नद्याः **मेषस्य** अवेः **हविषः** आदातुमर्हस्य **प्रिया** कमनीयानि **धामानि** जन्मस्थाननामानि, **यत्रेन्द्रस्य** ऐश्वर्ययुक्तस्य **ऋषभस्य** प्राप्तुं योग्यस्य **हविषः** दातुं

भावार्थ—हे (होतः) दाता पुरुष ! जैसे (होता) विद्या को ग्रहण करने वाला विद्वान्—(पिष्टतमया) सूक्ष्म, (रभिष्ठया) उत्तम रीति से बनी हुई (रशनया) रश्मि के साथ (यत्र) जहाँ (अश्विनोः) सूर्य और चन्द्र, (छागस्य) छेदक द्रव्य तथा (हविषः) देने योग्य हवि के (प्रिया) प्रिय (धामानि) जन्म, स्थान और नाम हैं ; (यत्र) जहाँ (सरस्वत्याः) नदी, (मेषस्य) भेड़ तथा (हविषः)

योग्यस्य **प्रिया** कमनीयानि **धामानि** जन्मस्थाननामानि, **यत्राग्नेः** पावकस्य **प्रिया** कमनीयानि **धामानि** जन्मस्थाननामानि, **यत्र सोमस्य** ओषधिगणस्य **प्रिया** कमनीयानि **धामानि** जन्मस्थाननामानि, **यत्र सुत्राम्णः** सुष्ठु रक्षकस्य **इन्द्रस्य** ऐश्वर्ययुक्तस्य **प्रिया** कमनीयानि **धामानि** जन्मस्थाननामानि, **यत्र सवितुः** प्रेरकस्य **प्रिया** कमनीयानि **धामानि** जन्मस्थाननामानि, **यत्र वरुणस्य** श्रेष्ठस्य **प्रिया** कमनीयानि **धामानि** जन्मस्थाननामानि, **यत्र वनस्पतेः** वटादेः **प्रिया** कमनीयानि **पाथांसि** अन्नानि, **यत्राज्यपानां** गत्या पालकानां **देवानां** पृथिव्यादीनां दिव्यानां **प्रिया** कमनीयानि **धामानि** जन्मस्थाननामानि, **यत्र होतुः** दातुः **अग्नेः** विद्यया प्रकाशमानस्य **प्रिया** कमनीयानि **धामानि** जन्मस्थाननामानि **सन्ति**; **तत्रैतान् प्रस्तुत्येव** प्रकरणेन संश्लाघ्येव **उपस्तुत्येव** समीपेन स्तुत्येव **उपावस्रक्षत्** उपावसृजेत् ; **रभीयस इव** अतिशयेनारब्धस्येव **कृत्वी कृत्वा कार्य्येषूपयुञ्जीतैवं करत्** कुर्यात् ;

ग्रहण करने योग्य पदार्थ के (प्रिया) प्रिय (धामानि) जन्म, स्थान और नाम हैं; (यत्र) जहाँ (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य से युक्त पुरुष, (ऋषभस्य) प्राप्त करने योग्य तथा (हविषः) देने योग्य पदार्थ के (प्रिया) प्रिय (धामानि) जन्म, स्थान और नाम हैं; (यत्र) जहाँ (अग्नेः) अग्नि के (प्रिया) प्रिय (धामानि) जन्म, स्थान और नाम हैं; (यत्र) जहाँ (सोमस्य) ओषधि-गण के (प्रिया) प्रिय (धामानि) जन्म, स्थान और नाम हैं; (यत्र) जहाँ (सुत्राम्णः) उत्तम रक्षक (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य-युक्त पुरुष के (प्रिया) प्रिय (धामानि) जन्म, स्थान और नाम हैं ; (यत्र) जहाँ (सवितुः) प्रेरक पुरुष के (प्रिया) प्रिय (धामानि) जन्म, स्थान और नाम हैं; (यत्र) जहाँ (वरुणस्य) श्रेष्ठ पुरुष के (प्रिया) प्रिय (धामानि) जन्म, स्थान और नाम हैं ; (यत्र) जहाँ (वनस्पतेः) वट आदि के (प्रिया) प्रिय (पाथांसि) अन्न हैं; (यत्र) जहाँ (आज्यपानाम्) गति से पालन करने वाले (देवानाम्) पृथिवी आदि दिव्य पदार्थों के (प्रिया) प्रिय (धामानि) जन्म, स्थान और नाम हैं ; (यत्र) जहाँ (होतुः) दाता एवं (अग्नेः) विद्या से प्रकाशमान पुरुष के (प्रिया) प्रिय (धामानि) जन्म, स्थान और नाम हैं; वहां इन पदार्थों की (प्रस्तुत्येव) प्रकरण से प्रशंसा एवं (उपस्तुत्येव) समीपता से स्तुति करके (उपावस्रक्षत्) उपयोग करता है, (रभीयस इव) इन पदार्थों का निर्माण (कृत्वी) करके कार्यों में उपयोग कर सके वैसा (करत्) बनावे ।

यथा वनस्पतिः रश्मिपालकोऽग्निः **देवः** दिव्यगुणः **हविः** संस्कृतमन्नादिकं **जुषतां** सेवतां **हि** किल **वनस्पतिं** वटादिकं **अभियक्षदधित** दध्यात्, **तथा त्वं यज** ।। २१ । ४६ ।।

जैसे (वनस्पतिः) रश्मियों का पालक अग्नि, (देवः) दिव्य गुणों वाला (हविः) सुगन्धित अन्न आदि हवि का (जुषताम्) सेवन करता है, (हि) निश्चय से (वनस्पतिम्) वट आदि वृक्षों को (अभियक्षत्) सब ओर से व्याप्त करता है, (अधित) धारण करता है ; वैसे तू (यज) यज्ञ कर ।। २१ ।। ४६ ।।

भावार्थः — अत्रोपमावाचकलुप्तोपलङ्कारौ ।। यदि मनुष्या ईश्वरेण सृष्टानां पदार्थानां

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचक लुप्तोपमा अलंकार हैं ।। यदि मनुष्य ईश्वर के

गुणकर्मस्वभावान् विदित्वैतान् कार्यसिद्धये प्रयुञ्जीरँस्तर्हि स्वेष्टानि सुखानि लभेरन् ॥ २१। ४६ ॥

रचे पदार्थों के गुण, कर्म, स्वभाव को जानकर इन्हें कार्य-सिद्धि के लिए प्रयोग करें तो अपने अभीष्ट सुखों को प्राप्त कर सकते हैं ॥ २१ । ४६ ॥

भा० पदार्थः—हविः=स्वेष्टानि सुखानि । जुषताम्= लभेत ॥

भाष्यसार—**१. उत्तम ब्रह्मचर्य का उपदेश**—विद्या आदि शुभ गुणों को ग्रहण करने वाला, उत्तम ब्रह्मचर्य का पालक विद्वान्—रश्मियों के द्वारा सूर्य और चन्द्रमा के छेदक गुण एवं नाम, जन्म और स्थान को जाने । नदी, भेड़ आदि पशुओं के, ऐश्वर्य से युक्त लेने-देने योग्य पदार्थों के, अग्नि के, उत्तम रक्षक एवं ऐश्वर्य से युक्त राजा के, शुभ कर्मों में प्रेरणा करने वाले पुरुष के, श्रेष्ठ जनों के, वट आदि वृक्षों के, गति से पालन करने वाले, पृथिवी आदि देवों के, दाता एवं विद्या से प्रकाशमान विद्वान् के जन्म, स्थान और नाम को जाने ; इनकी स्तुति एवं संग करे । इनमें से कार्यों में उपयोग लेने योग्य पदार्थों का उपयोग करे । रश्मियों के पालक एवं दिव्य गुणों से युक्त अग्नि का तथा सुगन्धित अन्न आदि का सेवन करे । वट आदि वृक्षों से यज्ञ करे और उनका धारण-पोषण करे। तात्पर्य यह है कि ईश्वर के रचे पदार्थों के गुण, कर्म और स्वभाव को जाने तथा उनका कार्यों में उपयोग करे और अभीष्ट सुखों को प्राप्त करे ।

२. अलंकार—इस मन्त्र में उपमावाचक 'इव' पद है अतः उपमा अलंकार है । उपमा वाचक पद को लुप्त मानकर वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि विद्या आदि शुभ गुणों को ग्रहण करने वाले विद्वान् के समान होता मन्त्र में प्रतिपादित यज्ञ का अनुष्ठान करे ॥ २१ । ४६ ॥

स्वस्त्यात्रेयः । **अश्व्यादयः**=**वायुविद्युदादयः** । पूर्वस्य भुरिगाकृतिरयाडित्युत्तरस्याऽऽकृतिः । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

उत्तम ब्रह्मचर्य का फिर उपदेश किया है ॥

होता यक्षदग्निꣳ स्विष्टकृतमयाडग्निरश्विनोश्छागस्य हविषः प्रिया धामान्ययाट् सरस्वत्या मेषस्य हविषः प्रिया धामान्ययाडिन्द्रस्य ऽ ऋषभस्य हविषः प्रिया धामान्ययाडग्नेः प्रिया धामान्ययाट् सोमस्य प्रिया धामान्ययाडिन्द्रस्य सुत्राम्णः प्रिया धामान्ययाट् सवितुः प्रिया धामान्ययाड् वरुणस्य प्रिया धामान्ययाड् वनस्पतेः प्रिया पाथाꣳस्ययाड् देवानामाज्यपानां प्रिया धामानि यक्षदग्नेर्होतुः प्रिया धामानि यक्षत् स्वं महिमानमायजमेज्ताया ऽ इषः कृणोतु सो ऽ अध्वरा जातवेदा जुषताꣳ हविर्होतर्यज ॥ ४७ ॥

पदार्थः—(**होता**) आदाता (**यक्षत्**) संगच्छेत् (**अग्निम्**) पावकम् (**स्विष्टकृतम्**) स्विष्टेन कृतं स्विष्टकृतम् (**अयाट्**) यजेत् (**अग्निः**) पावकः (**अश्विनोः**) वायुविद्युतोः (**छागस्य**) (**हविषः**) आदातुमर्हस्य (**प्रिया**) (**धामानि**) (**अयाट्**) यजेत् (**सरस्वत्याः**) वाण्याः (**मेषस्य**) (**हविषः**) आदातुमर्हस्य (**प्रिया**) (**धामानि**) (**अयाट्**) यजेत् (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्ययुक्तस्य (**ऋषभस्य**) उत्कृष्टगुणकर्मस्वभावस्य राज्ञः (**हविषः**) ग्रहीतुमर्हस्य (**प्रिया**) (**धामानि**) (**अयाट्**) (**अग्नेः**) विद्युतः (**प्रिया**) (**धामानि**) (**अयाट्**)

(**सोमस्य**) ऐश्वर्यस्य (**प्रिया**) (**धामानि**) (**अयाट्**) (**इन्द्रस्य**) सेनेशस्य (**सुत्राम्णः**) सुष्ठु रक्षकस्य (**प्रिया**) (**धामानि**) (**अयाट्**) (**सवितुः**) (**प्रिया**) (**धामानि**) (**अयाट्**) (**वरुणस्य**) सर्वोत्कृष्टस्य जलस्य वा (**प्रिया**) (**धामानि**) (**अयाट्**) (**वनस्पतेः**) वटादेः (**प्रिया**) तर्पकाणि (**पाथांसि**) फलादीनि (**अयाट्**) (**देवानाम्**) विदुषाम् (**आज्यपानाम्**) ज्ञातव्यरक्षकाणां रसानां वा (**प्रिया**) (**धामानि**) (**यक्षत्**) यजेत् (**अग्नेः**) प्रकाशकस्य सूर्यस्य (**होतुः**) आदातुः (**प्रिया**) (**धामानि**) (**यक्षत्**) (**स्वम्**) स्वकीयम् (**महिमानम्**) महत्त्वम् (**आ**) समन्तात् (**यजताम्**) गृह्णातु (**एज्याः**) समन्तात् यष्टुं=सङ्गन्तुं योग्याः क्रियाः (**इषः**) इच्छाः (**कृणोतु**) करोतु (**स**) (**अध्वरा**) अहिंसनीयान् यज्ञान् (**जातवेदाः**) प्राप्तप्रज्ञः (**जुषताम्**) सेवताम् (**हविः**) संगन्तव्यं वस्तु (**होतः**) (**यज**) ॥ ४७ ॥

अन्वयः—हे होतर्यथा होता स्विष्टकृतमग्निं यक्षद्यथाग्निरश्विनोश्छागस्य हविषः प्रिया धामान्ययाट् सरस्वत्या मेषस्य हविषः प्रिया धामान्ययाडिन्द्रस्यर्षभस्य हविषः प्रिया धामान्ययाडग्नेः प्रिया धामान्ययाट् सोमस्य प्रिया धामान्ययाट् सुत्राम्ण इन्द्रस्य प्रिया धामान्ययाट् सवितुः प्रिया धामान्ययाड् वरुणस्य प्रिया धामान्ययाड् वनस्पतेः प्रिया पाथांस्ययाडाज्यपानां देवानां प्रिया धामानि यक्षत् होतुरग्नेः प्रिया धामानि यक्षत् स्वं महिमानमायजतां यथा जातवेदा य एज्या इषः कृणोतु सोऽध्वरा हविश्च जुषतां तथा त्वं यज ॥ ४७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे होतः ! **यथा**—**होता** आदाता **स्विष्टकृतं** स्विष्टेन कृतं स्विष्टकृतम् **अग्नि** पावकं **यक्षत्** सङ्गच्छेत्, **यथाग्निः** पावकः **अश्विनोः** वायुविद्युतोः **छागस्य हविषः** आदातुमर्हस्य **प्रिया धामान्ययाट्** यजेत्, **सरस्वत्या** वाण्याः **मेषस्य हविषः** आदातुमर्हस्य **प्रिया धामान्ययाट्** यजेत्, **इन्द्रस्य** परमैश्वर्ययुक्तस्य **ऋषभस्य** उत्कृष्टगुणकर्म-स्वभावस्य राज्ञः **हविषः** ग्रहितुमर्हस्य **प्रिया धामान्ययाट्** यजेत्, **अग्नेः** विद्युतः **प्रिया धामान्ययाट्** यजेत्, **सोमस्य** ऐश्वर्यस्य **प्रिया धामान्ययाट्** यजेत्, **सुत्राम्णः** सुष्ठु रक्षकस्य **इन्द्रस्य** सेनेशस्य **प्रिया धामान्ययाट्** यजेत्, **सवितुः प्रिया धामान्ययाट्** यजेत्, **वरुणस्य** सर्वोत्कृष्टस्य जलस्य **प्रिया धामान्ययाट्** यजेत्, **वनस्पतेः** वटादेः **प्रिया** तर्पकाणि **पाथांसि** फलादीनि **अयाट्** यजेत्, **आज्यपानां** ज्ञातव्यरक्षकाणां रसानां वा **देवानां** विदुषां **प्रिया धामानि यक्षत्** यजेत्, **होतुः** आदातुः **अग्नेः** प्रकाश-कस्य सूर्यस्य **प्रिया धामानि यक्षत्** यजेत्, **स्वं** स्वकीयं **महिमानं** महत्त्वम् **आयजतां** समन्ताद् गृह्णातु, **यथा जातवेदाः** प्राप्तप्रज्ञः **य एज्याः** समन्तात् यष्टुं=सङ्गन्तुं योग्याः क्रियाः **इषः** इच्छाः **कृणोतु** करोतु **सोऽध्वरा** अहिंसनीयान् यज्ञान् **हविः**

भाषार्थ—हे (होतः) दाता पुरुष ! जैसे (होता) विद्या को ग्रहण करने वाला विद्वान्—(स्विष्टकृतम्) उत्तम अभीष्ट को सिद्ध करने वाली (अग्निम्) अग्नि का (यक्षत्) संग करता है अर्थात् उसे जानता है; और जैसे (अग्निः) अग्नि (अश्विनोः) वायु तथा विद्युत्, (छागस्य) छेदक (हविषः) ग्रहण करने योग्य पदार्थ के (प्रिया) प्रिय (धामानि) धामों को (अयाट्) प्राप्त होता है; (सरस्वत्याः) वाणी, (मेषस्य) भेड़ और (हविषः) ग्रहण करने योग्य पदार्थ के (प्रिया) प्रिय (धामानि) धामों को (अयाट्) प्राप्त होता है; (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्य से युक्त (ऋषभस्य) उत्तम गुण, कर्म, स्वभाव वाले राजा के (प्रिया) प्रिय (धामानि) धामों को (अयाट्) प्राप्त होता है; (अग्नेः) विद्युत् के (प्रिया) प्रिय (धामानि) धामों को (अयाट्) प्राप्त होता है, (सोमस्य) ऐश्वर्य के (प्रिया) प्रिय (धामानि) धामों को (अयाट्) प्राप्त होता है, (सुत्राम्णः) उत्तम रक्षक (इन्द्रस्य) सेनापति के (प्रिया) प्रिय (धामानि) धामों को (अयाट्) प्राप्त होता है, (सवितुः) प्रेरक पुरुष के (प्रिया) प्रिय (धामानि) धामों को (अयाट्) प्राप्त होता है; (वरुणस्य) सब से उत्कृष्ट जल के (प्रिया) प्रिय

सङ्गन्तव्यं वस्तु **च जुषतां** सेवतां, **तथा त्वं यज** ॥ २१ । ४७ ॥

(धामानि) धामों को (अयाट्) प्राप्त होता है, (वनस्पतेः) वट आदि वनस्पति के (प्रिया) तृप्ति-कारक (पाथांसि) फल आदि को (अयाट्) प्राप्त करता है, (आज्यपानाम्) ज्ञातव्य रक्षकों वा रसों तथा (देवानाम्) विद्वानों के (प्रिया) प्रिय (धामानि) धामों को (यक्षत्) प्राप्त होता है, (होतुः) रसों को ग्रहण करने वाले (अग्नेः) प्रकाशक सूर्य के (प्रिया) प्रिय (धामानि) धामों को (यक्षत्) प्राप्त होता है; (स्वम्) अपने (महिमानम्) महत्त्व को (आ+यजताम्) सब ओर से ग्रहण करता है, और जैसे (जातवेदाः) प्रज्ञा को प्राप्त विद्वान् जो (एज्याः) सब ओर से संग करने योग्य क्रियाओं और (इषः) इच्छाओं को (कृणोतु) सिद्ध करता है; (सः) वह (अध्वरा) हिंसा रहित यज्ञों और (हविः) प्राप्त करने योग्य हवि का (जुषताम्) सेवन करता है; वैसे तू (यज) यज्ञ कर ॥ २१ । ४७ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ ये स्वेष्टसाधकाग्न्यादीन् सृष्टिस्थान् पदार्थान् सम्यग् विज्ञाय, प्रियाणि सुखान्याप्नुवन्ति, ते स्वं महिमानं प्रथन्ते ॥ २१ । ४७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा-अलङ्कार है ॥ जो अपने अभीष्ट को सिद्ध करने वाले अग्नि आदि सृष्टि के पदार्थों को ठीक-ठीक जानकर प्रिय सुखों को प्राप्त करते हैं, वे अपनी महिमा का विस्तार करते हैं ॥ २१ । ४७ ॥

भा० पदार्थः—स्विष्टकृतम्=स्वेष्टसाधकम् । प्रिया=प्रियाणि । धामानि=सुखानि । अयाट्=आप्नुयात् ॥

भाष्यसार—**१. उत्तम ब्रह्मचर्य का उपदेश**—विद्या आदि शुभ गुणों को ग्रहण करने वाला एवं उत्तम ब्रह्मचर्य का पालक विद्वान्—अभीष्ट सुख को सिद्ध करने वाले अग्नि का संग करे, वायु और विद्युत् के छेदक पदार्थ, वाणी, भेड़ आदि पशु, परम ऐश्वर्य से युक्त उत्तम गुण, कर्म, स्वभाव वाले राजा विद्युत् ऐश्वर्य, उत्तम रक्षक सेनापति, शुभ कर्मों में प्रेरक महान् पुरुष, सर्वोत्कृष्ट जल, वट आदि वृक्षों के फल, और सूर्य के धामों को जाने और उनसे प्रिय सुखों को प्राप्त करे। यज्ञ और इच्छाओं को सिद्ध करे। शुभ कर्मों से अपनी महिमा को फैलावे ॥

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है। अतः वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि विद्या आदि शुभ गुणों को ग्रहण करने वाले विद्वान् के समान होता मन्त्र में प्रतिपादित यज्ञ का अनुष्ठान करे ॥ २१ । ४७ ॥

स्वस्त्यात्रेयः । **सरस्वत्यादयः**=प्रशस्तविज्ञानयुक्ता रूपादयः ।। त्रिष्टुप् । धैवतः ।

अथ विद्वांसः कथं वर्त्तेरन्नित्याह ।।

अब विद्वान् कैसे वर्त्ताव करें, इस विद्या का उपदेश किया जाता है ।।

देवं बर्हिः सरस्वती सुदेवमिन्द्रे ऽ अश्विना
तेजो न चक्षुरक्ष्योर्बर्हिषा दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ।। ४८ ।।

पदार्थः—(**देवम्**) दिव्यम् (**बर्हिः**) अन्तरिक्षम् (**सरस्वती**) प्रशस्तविज्ञानयुक्ता स्त्री (**सुदेवम्**) शोभनं विद्वांसम् (**इन्द्रे**) परमैश्वर्य्ये (**अश्विना**) अध्यापकोपदेशकौ (**तेजः**) (**न**) इव (**चक्षुः**) नेत्रम् (**अक्ष्योः**) अक्ष्णोः (**बर्हिषा**) अन्तरिक्षेण (**दधुः**) (**इन्द्रियम्**) धनम् (**वसुवने**) धनप्रापणाय (**वसुधेयस्य**) वसुधेयं यस्मिंस्तस्य (**व्यन्तु**) प्राप्नुवन्तु (**यज**) यजते ।। ४८ ।।

अन्वयः—हे विद्वन् ! यथा सरस्वतीन्द्रे देवं सुदेवं बर्हिरश्विना चक्षुस्तेजो न यज यथा च विद्वांसो वसुधेयस्य वसुवनेऽक्ष्योर्बर्हिषेन्द्रियं दधुर्व्यन्तु च तथैतत् त्वं धेहि प्राप्नुहि च ।। ४८ ।।

सपदार्थान्वयः—हे **विद्वन्** ! **यथा सरस्वती** प्रशस्तविज्ञानयुक्ता स्त्री **इन्द्रे** परमैश्वर्ये **देवं** दिव्यं **सुदेवं** शोभनं विद्वांसं **बर्हिः** अन्तरिक्षम् **अश्विना** अध्यापकोपदेशकौ **चक्षुः** नेत्रं **तेजो न** इव **यज** यजते, **यथा च विद्वांसो वसुधेयस्य** वसुधेयं यस्मिंस्तस्य **वसुवने** धनप्रापणाय **अक्ष्योः** अक्ष्णोः **बर्हिषा** अन्तरिक्षेण **इन्द्रियं** धनं **दधुः**, **व्यन्तु** प्राप्नुवन्तु **च**, **तथैतत् त्वं धेहि, प्राप्नुहि च** ।। २१ । ४८ ।।

भाषार्थ—हे विद्वान् ! जैसे (सरस्वती) प्रशस्त विज्ञान से युक्त स्त्री (इन्द्रे) परम ऐश्वर्य के निमित्त (देवम्) दिव्य गुणों वाले (सुदेवम्) उत्तम विद्वान्, (बर्हिः) अन्तरिक्ष, (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक का एवं (चक्षुः) नेत्ररूप (तेजः) तेज अर्थात् अग्नि के (न) समान (यज) यज्ञ करती है; और जैसे विद्वान् लोग (वसुधेयस्य) धन को धारण करने वालों के (वसुवने) धन को प्राप्त करने के लिए (अक्ष्योः) आँखों के (बर्हिषा) अवकाश से अर्थात् आँखों से देखकर (इन्द्रियम्) धन को (दधुः) धारण करते हैं और (व्यन्तु) प्राप्त करते हैं, वैसे इसे तू धारण और प्राप्त कर ।।४८।।

भावार्थः — अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ ।। हे मनुष्याः ! यथा विदुषी ब्रह्मचारिणी कुमारी स्वार्थं हृद्यं पतिं प्राप्यानन्दति, तथा विद्या सृष्टिपदार्थबोधं प्राप्य भवद्भिरप्यानन्दितव्यम् ।। २१ । ४८ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमा अलंकार हैं ।। हे मनुष्यो ! जैसे विदुषी ब्रह्मचारिणी कुमारी अपने लिए प्रिय पति को प्राप्त करके आनन्दित होती है वैसे विद्या और सृष्टि के पदार्थों के बोध को प्राप्त करके आप भी आनन्दित रहें ।। २१ । ४८ ।।

भा० पदार्थः—सरस्वती=विदुषी ब्रह्मचारिणी कुमारी । सुदेवं=हृद्यं पतिम् ।

भाष्यसार—**१. विद्वान् कैसे वर्ताव करें**—जैसे प्रशस्त विज्ञान से युक्त स्त्री परम ऐश्वर्य के लिए दिव्य गुणों से युक्त सुन्दर एवं हृद्य विद्वान् पति को प्राप्त करके आनन्द करती है, अन्तरिक्ष को यज्ञ से पवित्र करती है, अध्यापक और उपदेशक का सत्कार करती है, वैसे विद्वान् लोग विद्या एवं सृष्टि के

पदार्थों का बोध करके आनन्द में रहें। जैसे अन्य विद्वान् धन-प्राप्ति के लिए आँखों से देखकर धन को धारण करते हैं एवं उसे प्राप्त करते हैं वैसे धन को धारण करे एवं प्राप्त करे।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'न' पद है अतः उपमा अलंकार है। उपमा-वाचक पद को लुप्त मानकर वाचकलुप्तोपमा अलंकार भी है। उपमा यह है कि विद्वान्—प्रशस्त विज्ञान से युक्त विदुषी स्त्री तथा अन्य महान् विद्वानों के समान वर्त्ताव करें। विदुषी स्त्री नेत्र और तेज=सूर्य के सम्बन्ध के समान पति से सम्बन्ध रखे ॥ २१ । ४८ ॥

स्वस्त्यात्रेयः । **अश्व्यादयः**=वायु-सूर्यादयः । ब्राह्म्युष्णिक् । ऋषभः ॥

पुनर्विद्वदुपदेशः कीदृशो भवतीत्याह ॥

फिर विद्वानों का उपदेश कैसा होता है, इसका वर्णन किया है ॥

दे॒वीर्द्वारो॑ऽ अ॒श्विना॑ भि॒षजेन्द्रे॒ सर॑स्वती ।
प्रा॒णं न वी॒र्य्यं॑ न॒सि द्वारो॑ द॒धुरि॑न्द्रि॒यं व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥ ४९ ॥

पदार्थः—(**देवीः**) देदीप्यमानाः (**द्वारः**) प्रवेशनिर्गमार्थानि द्वाराणि (**अश्विना**) वायुसूर्य्यौ (**भिषजा**) वैद्यौ (**इन्द्रे**) ऐश्वर्य्ये (**सरस्वती**) विज्ञानवती स्त्री (**प्राणम्**) जीवनहेतुम् (**न**) इव (**वीर्य्यम्**) (**नसि**) (**नासिकायाम्**) (**द्वारः**) (**दधुः**) (**इन्द्रियम्**) धनम् (**वसुवने**) धनसेवनाय (**वसुधेयस्य**) जनकोशस्य (**व्यन्तु**) (**यज**) ॥ ४६ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! यथाश्विना सरस्वती भिषजेन्द्रे देवीर्द्वारः प्राप्नुवतो नसि प्राणं न वीर्य्यं द्वारश्च दधुर्वसुवने वसुधेयस्येन्द्रियं विद्वांसो व्यन्तु तथा त्वं यज ॥ ४६ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे विद्वन् ! यथा-श्विना** वायुसूर्यौ **सरस्वती** विज्ञानवती स्त्री **भिषजा** वैद्यौ **इन्द्रे** ऐश्वर्ये **देवीः** देदीप्यमानाः **द्वारः** प्रवेश-निर्गमार्थानि द्वाराणि **प्राप्नुवन्तः, नसि** नासिकायां **प्राणं** जीवनहेतुं **न** इव **वीर्य्यं द्वारः** प्रवेशनिर्गमार्थानि द्वाराणि **च दधुः; वसुवने** धनसेवनाय **वसुधेयस्य** धनकोशस्य **इन्द्रियं** धनं **विद्वांसो व्यन्तु; तथा त्वं यज** ॥ २१ । ४६ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् ! जैसे (अश्विना) वायु और सूर्य (सरस्वती) विज्ञान वाली स्त्री, (भिषजा) दो वैद्य (इन्द्रे) ऐश्वर्य के निमित्त (देवीः) देदीप्यमान (द्वारः) प्रवेश और निर्गम के लिए बने द्वारों को प्राप्त करते हुए; (नसि) नासिका में (प्राणम्) जीवन के हेतु प्राण के (न) समान (वीर्यम्) वीर्य को और (द्वारः) प्रवेश और निर्गम के लिए बने द्वारों को (दधुः) धारण करते हैं; और (वसुवने) धन के सेवन के लिए (वसुधेयस्य) धन-कोश के (इन्द्रियम्) धन को विद्वान् लोग (व्यन्तु) प्राप्त करते हैं; वैसे तू (यज) यज्ञ कर ॥२१।४६॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ । यथा सूर्यचन्द्रप्रकाशो द्वारेभ्यो गृहं प्रविश्यान्तः प्रकाशते तथा विद्वदुपदेशः श्रोत्रान् प्रविश्य स्वान्ते प्रकाशते । एवं—

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमा अलंकार हैं। जैसे सूर्य और चन्द्र का प्रकाश द्वारों से घर में प्रविष्ट होकर अन्दर प्रकाश करता है; वैसे विद्वानों का उपदेश कानों में प्रविष्ट होकर हृदय में प्रकाश करता है।

ये विद्यया प्रयतन्ते ते श्रीमन्तो जायन्ते ।।४६।।

इस प्रकार जो विद्या से प्रयत्न करते हैं वे श्रीमान् बनते हैं ।। २१ । ४६ ।।

भा० पदार्थः—अश्विनौ=सूर्याचन्द्रौ ।

भाष्यसार—**१. विद्वानों का उपदेश कैसा होता है**—जैसे वायु, सूर्य और चन्द्र का प्रकाश द्वारों से घर में प्रविष्ट होकर उसके आन्तरिक भाग को प्रकाशित करता है, वैसे विज्ञानवती स्त्री एवं वैद्य जनों का उपदेश कर्ण-द्वारों से प्रविष्ट होकर हृदय में प्रकाश करता है। यह उपदेश नासिका में विद्यमान प्राण के समान आत्मा में वीर्य=बल को स्थापित करता है। विद्वानों के उपदेशानुसार जो विद्यापूर्वक प्रयत्न करते हैं वे धन-कोश के धन को सेवन करने के लिए उसे प्राप्त करते हैं और श्रीमान् होते हैं।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'न' पद है। अतः उपमा अलंकार है। उपमा-वाचक पद को लुप्त मानकर वाचकलुप्तोपमा अलंकार भी है। उपमा यह है कि एक विद्वान् अन्य महान् विद्वानों के समान मन्त्र में प्रतिपादित यज्ञ का अनुष्ठान करे। विद्वानों का उपदेश सूर्य और चन्द्रमा के समान हृदय को प्रकाशित करता है ।। २१ । ४६ ।।

स्वस्त्यात्रेयः । **अश्व्यादयः**=**सूर्यचन्द्रादयः** । त्रिष्टुप् । धैवतः ।।

पुनर्मनुष्याः कथं वर्त्तेरन्नित्याह ।।

फिर मनुष्य कैसे वर्त्तें, इस विषय का फिर उपदेश किया है ।।

देवी ऽ उषासावश्विना सुत्रामेन्द्रे सरस्वती ।

बलं न वाचमास्य ऽ उषाभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ।। ५० ।।

पदार्थः—(**देवीः**) देदीप्यमाने (**उषासौ**) सायंप्रातः सन्धिवेले **अत्रान्येषामपीत्युपधादीर्घः** (**अश्विना**) सूर्याचन्द्रमसौ (**सुत्रामा**) सुष्ठु रक्षकौ (**इन्द्रे**) परमैश्वर्य्ये (**सरस्वती**) विज्ञाननिमित्ता स्त्री (**बलम्**) (**न**) इव (**वाचम्**) (**आस्ये**) मुखे (**उषाभ्याम्**) उभयवेलाभ्याम् । **अत्र छान्दसो वर्णलोपो वेति सलोपः** (**दधुः**) दध्युः (**इन्द्रियम्**) धनम् (**वसुवने**) धनसेविने (**वसुधेयस्य**) धनाधारस्य (**व्यन्तु**) (**यज**) ।। ५० ।।

प्रमाणार्थ—(**उषासौ**) यहां 'अन्येषामपि दृश्यते' से उपधा को दीर्घ है। (**उषाभ्याम्**) यहां 'उषस्' शब्द के सकार का 'छान्दसो वर्णलोपो वा' इस विधि से लोप है ।।

अन्वयः—हे विद्वन् ! यथा देवी उषासौ सुत्रामा सरस्वत्यश्विना वसुवने वसुधेयस्येन्द्रे बलं नास्ये वाचमुषाभ्यामिन्द्रियं च दधुः सर्वान् व्यन्तु च तथा त्वं यज ।। ५० ।।

सपदार्थान्वयः—**हे विद्वन् ! यथा देवी** देदीप्यमाने **उषासौ** सायंप्रातः सन्धिवेले **सुत्रामा** सुष्ठु रक्षकौ, **सरस्वती** विज्ञाननिमित्ता स्त्री, **अश्विना** सूर्याचन्द्रमसौ, **वसुवने** धनसेविने **वसुधेयस्य** धनाधारस्य **इन्द्रे** परमैश्वर्य्ये **बलं न** इव **आस्ये** मुखे **वाचम् उषाभ्याम्** उभयवेलाभ्याम् **इन्द्रियं** धनं

भाषार्थ—हे विद्वान् ! जैसे (देवी) देदीप्यमान (उषासौ) सायंकाल और प्रातःकाल की सन्धिवेला, (सुत्रामा) दो उत्तम रक्षक, (सरस्वती) विज्ञान का निमित्त स्त्री, (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा (वसुवने) धन का सेवन करने वाले के लिए (वसुधेयस्य) धन कोश के (इन्द्रे) परम ऐश्वर्य में

च दधुः दध्युः, **सर्वान् व्यन्तु च, तथा त्वं यज** ॥ २१ । ५० ॥

विद्यमान (बलम्) बल के (न) समान (आस्ये) मुख में (वाचम्) वाणी को और (उषाभ्याम्) सायं और प्रातः दोनों वेलाओं से (इन्द्रियम्) धन को (दधुः) धारण करते हैं और सबको (व्यन्तु) प्राप्त होते हैं; वैसे तू (यज) यज्ञ कर ॥ २१ । ५० ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये पुरुषार्थिनो मनुष्याः सूर्यचन्द्रसन्ध्यावन्नियमेन प्रयतन्ते, सन्धिवेलायां शयनाऽऽलस्यादिकं विहाय, ध्यानं कुर्वन्ति, ते—पुष्कलां श्रियं प्राप्नुवन्ति ॥ २१ । ५० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। जो पुरुषार्थी मनुष्य सूर्य, चन्द्र और सन्ध्या के समान नियम से प्रयत्न करते हैं; सन्धि-वेला में शयन और आलस्य आदि को छोड़कर ध्यान करते हैं; वे पर्याप्त श्री धन प्राप्त करते हैं ॥ २१ । ५० ॥

भा० पदार्थः--इन्द्रियम्=पुष्कलां श्रियम्।

भाष्यसार—१. **मनुष्य कैसे वर्ताव करें**—मनुष्य सायंकाल और प्रातः की देदीप्यमान सन्धि-वेला में शयन और आलस्य आदि को छोड़कर ईश्वर का ध्यान=चिन्तन करें। सूर्य, चन्द्रमा और सन्धि-वेला के तुल्य नियम से प्रयत्न करें। उत्तम रक्षक सभापति और सेनापति तथा विज्ञानवती स्त्री के तुल्य परम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए धन को धारण करें। जैसे परम ऐश्वर्य में बल है वैसे मुख में बल-युक्त वाणी को धारण करें।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि विद्वान् मनुष्य सूर्य, चन्द्र और सन्धि-वेला के समान नियम से प्रयत्न करे। परम ऐश्वर्य में विद्यमान बल के समान मुख में बलयुक्त वाणी को धारण करे ॥ २१ । ५० ॥

स्वस्त्यात्रेयः। **अश्व्यादयः=वायुविद्युदादयः**। त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

पुनर्मनुष्याः कीदृशा भवन्तीत्याह ॥

फिर मनुष्य कैसे होते हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

दे॒वी जोष्ट्री॒ सर॑स्वत्य॒श्विनेन्द्र॑मवर्धयन्।
श्रोत्रं॒ न कर्ण॑यो॒र्यशो॒ जोष्ट्री॑भ्यां दधुरिन्द्रि॒यं व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥ ५१ ॥

पदार्थः—(**देवी**) प्रकाशदात्री (**जोष्ट्री**) सेवनीया (**सरस्वती**) विज्ञाननिमित्ता (**अश्विना**) वायुविद्युतौ (**इन्द्रम्**) सूर्यम् (**अवर्धयन्**) वर्धयन्ति (**श्रोत्रम्**) येन शृणोति तत् (**न**) इव (**कर्णयोः**) श्रोत्रयोः (**यशः**) कीर्तिम् (**जोष्ट्रीभ्याम्**) सेविकाभ्यां वेलाभ्याम् (**दधुः**) दधति (**इन्द्रियम्**) धनम् (**वसुवने**) धनसेविने (**वसुधेयस्य**) धनकोशस्य (**व्यन्तु**) (**यज**) ॥ ५१ ॥

अन्वयः—हे विद्वन्! यथा देवी जोष्ट्री सरस्वत्यश्विनेन्द्रमवर्धयन् मनुष्या वा जोष्ट्रीभ्यां कर्णयोर्यशः श्रोत्रं न दधुर्वसुधेयस्य वसुवन इन्द्रियं व्यन्तु तथा त्वं यज ॥ ५१ ॥

सपदार्थान्वयः--हे विद्वन्! यथा **देवी** प्रकाशदात्री **जोष्ट्री** सेवनीया **सरस्वती** विज्ञान-

भाषार्थ—हे विद्वान्! जैसे (देवी) प्रकाश देने वाली (जोष्ट्री) सेवा करने योग्य, (सरस्वती)

निमित्ता, **अश्विना** वायुविद्युतौ, **इन्द्रं** सूर्यम् **अवर्धयन्** वर्धयन्ति; **मनुष्या वा जोष्ट्रीभ्यां** सेविकाभ्यां वेलाभ्यां **कर्णयोः** श्रोत्रयोः **यशः** कीर्ति **श्रोत्रं** येन शृणोति तत् **न** इव **दधुः** दधति; **वसुधेयस्य** धनकोशस्य **वसुवने** धनसेविने **इन्द्रियं** धनं **व्यन्तु**; **तथा त्वं यज** ॥ २१ । ५१ ॥

विज्ञान का निमित्त स्त्री, (अश्विना) वायु और विद्युत् (इन्द्रम्) सूर्य को (अवर्धयन्) बढ़ाते हैं; अथवा मनुष्य (जोष्ट्रीभ्याम्) सेविका रूप दोनों वेलाओं से (कर्णयोः) कानों में (यशः) कीर्ति को (श्रोत्रम्) सुनने के साधन श्रोत्र इन्द्रिय के (न) समान (दधुः) धारण करते हैं; (वसुधेयस्य) धन कोश के (वसुवने) धन को सेवन करने वाले के लिए (इन्द्रियम्) धन को (व्यन्तु) प्राप्त करते हैं; वैसे तू (यज) यज्ञ कर ॥ २१ । ५१ ॥

भावार्थः — अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ ॥ ये सूर्यकारणानि विदन्ति ते यशस्विनो भूत्वा श्रीमन्तो भवन्ति ॥ २१ । ५१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार हैं ॥ जो मनुष्य सूर्य के कारणों को जानते हैं वे यशस्वी होकर श्रीमान् होते हैं ॥ २१ । ५१ ॥

भाष्यसार—**१. मनुष्य कैसे हों**—विद्या-प्रकाश देने वाली, सेवा करने के योग्य, विज्ञानवती विदुषी स्त्री यज्ञ से सूर्य को बढ़ावे अर्थात् गुण-सम्पन्न करे। वायु और विद्युत् सूर्य को बढ़ाते हैं। इस विज्ञान को सब मनुष्य जानें क्योंकि जो मनुष्य सूर्य के कारणों को जानते हैं वे यशस्वी होकर श्रीमान्=धनवान् होते हैं।

प्रातःकाल और सायंकाल दो सन्धि-वेलाएँ प्राणियों की सेविका रूप हैं। मनुष्य इन दोनों सन्धि-वेलाओं में शुभ कर्मों के अनुष्ठान से श्रोत्रों में श्रवण-शक्ति के तुल्य यश=कीर्ति को धारण करें। धन-कोश के धन को प्राप्त करें ॥

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'न' पद है। अतः उपमा अलङ्कार है। उपमा-वाचक पद को लुप्त मानकर वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार भी है। उपमा यह है कि विज्ञानवती विदुषी स्त्री के समान विद्वान् लोग यज्ञ से सूर्य को बढ़ावें। कानों में विद्यमान श्रवण-शक्ति के समान यश को धारण करें ॥ २१ । ५१ ॥ ●

स्वस्त्यात्रेयः । **अश्व्यादयः**=**अध्यापकोपदेशकादयः** । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनर्मनुष्यैः कथं वर्तितव्यमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को कैसे अपना वर्त्ताव करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

देवी ऽ ऊर्जाहुती दुघे सुदुघेन्द्रे सरस्वत्यश्विना भिषजावतः ।
शुक्रं न ज्योतिस्तनयोराहुती धत्त ऽ इन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५२ ॥

पदार्थः—(**देवी**) कमनीये (**ऊर्जाहुती**) अन्नस्याहुती (**दुघे**) प्रपूरके प्रातःसायंवेले (**सुदुघा**) प्रपूरकौ (**इन्द्रे**) परमैश्वर्य्ये (**सरस्वती**) विशेषज्ञानवती (**अश्विना**) अध्यापकोपदेशकौ (**भिषजा**) सद्वैद्यौ (**अवतः**) रक्षतः (**शुक्रम्**) शुद्धं जलम् (**न**) इव (**ज्योतिः**) प्रकाशम् (**स्तनयोः**) (**आहुती**) आदातव्ये (**धत्त**) धरत (**इन्द्रियम्**) धनम् (**वसुवने**) धनसेविने (**वसुधेयस्य**) धनाधारस्य संसारस्य मध्ये (**व्यन्तु**) (**यज**) ॥ ५२ ॥

अन्वयः—हे विद्वांसो यूयं यथा देवी दुघे इन्द्र ऊर्जाहुती सरस्वती सुदुघा भिषजाऽश्विना च शुक्रं न ज्योतिरवतस्तथा स्तनयोराहुती धत्त वसुधेयस्य वसुवन इन्द्रियं धत्त येनैतानि सर्वे व्यन्तु हे गुणग्राहिन् ! तथा त्वं यज ॥ ५२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वांसः ! **यूयं यथा—देवी** कमनीये **दुघे** प्रपूरके प्रातःसायं वेले, **इन्द्रे** परमैश्वर्ये **ऊर्जाहुती** अन्नस्याहुती, **सरस्वती** विशेषज्ञानवती **सुदुघा** प्रपूरकौ **भिषजा** सद्वैद्यौ, **अश्विना** अध्यापकोपदेशकौ **च शुक्रं** शुद्धं जलं **न** इव **ज्योतिः** प्रकाशम् **अवतः** रक्षतः **तथा स्तनयोराहुती** आदातव्ये **धत्त** धरत; **वसुधेयस्य** धनाधारस्य संसारस्य मध्ये **वसुवने** धनसेविने **इन्द्रियं** धनं **धत्त** धरत; **येनैतानि सर्वे व्यन्तु, हे गुणग्राहिन् ! तथा त्वं यज** ॥ २१ । ५२ ॥

भाषार्थ—हे विद्वानो ! तुम—जैसे (देवी) कामना करने योग्य (दुघे) सुख से पूर्ण करने वाली प्रातः और सायं वेलाएँ, (इन्द्रे) परम ऐश्वर्य के निमित्त (ऊर्जाहुती) अन्न की आहुति, (सरस्वती) विशेष ज्ञान वाली स्त्री, (सुदुघा) सुख से पूर्ण करने वाले (भिषजा) दो श्रेष्ठ वैद्य और (अश्विना) अध्यापक तथा उपदेशक (शुक्रम्) शुद्ध जल के (न) समान (ज्योतिः) प्रकाश की (अवतः) रक्षा करते हैं; वैसे (स्तनयोः) स्तनों की (आहुती) धारण करने योग्य दो चेष्टाओं को (धत्त) धारण करो; (वसुधेयस्य) धन के आधार संसार के मध्य में (वसुवने) धन का सेवन करने वाले के लिए (इन्द्रियम्) धन को (धत्त) धारण करो; जिससे इन्हें सब (व्यन्तु) प्राप्त हों। हे गुणग्राही ! वैसे तू (यज) यज्ञ कर ॥ २१ । ५२ ॥

भावार्थः — अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यथा सद्वैद्याः स्वानि परेषां च शरीराणि रक्षयित्वा वर्द्धयन्ति,

तथा—सर्वैर्धनं रक्षयित्वा वर्धनीयं, येनास्मिन् संसारेऽतुलं सुखं भूयात् ॥ २१ । ५२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमा अलंकार हैं ॥ जैसे श्रेष्ठ वैद्य अपने और दूसरों के शरीरों की रक्षा करके बढ़ाते हैं, वैसे सब मनुष्य धन की रक्षा करके बढ़ावें।

जिससे इस संसार में अतुल सुख हो ॥ २१ । ५२ ॥

भा० पदार्थः—शुक्रम्=शरीरम्।

भाष्यसार—**१. मनुष्य कैसे वर्त्ताव करें**—जैसे कामना करने के योग्य, सुख से पूर्ण करने वाली प्रातः और सायं दो सन्धि-वेलाएँ प्रकाश की रक्षा करती हैं; परम ऐश्वर्य की निमित्त अन्न की आहुतियाँ प्रकाश की रक्षा करती हैं वैसे विशेष ज्ञानवती विदुषी, सुख से पूर्ण करने वाले दो श्रेष्ठ वैद्य अध्यापक और उपदेशक शुद्ध जल के तुल्य पवित्र विद्या-प्रकाश की रक्षा करें। जैसे श्रेष्ठ वैद्य लोग स्तन=वक्षःस्थल आदि अपने तथा अन्यों के भी शरीर-अङ्गों की रक्षा करके उन्हें बढ़ाते हैं वैसे सब मनुष्य धन की रक्षा करके उसे बढ़ावें और संसार में अतुल सुख को प्राप्त करें।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'न' पद है अतः उपमा अलंकार है। उपमा-वाचक पद को लुप्त मानकर वाचकलुप्तोपमा अलंकार भी है। उपमा यह है कि विद्वान् मनुष्य विज्ञानवती विदुषी आदि के समान विद्या-प्रकाश की रक्षा करें। शुद्ध जल के समान विद्या का प्रकाश शुद्धि का हेतु है ॥ २१ । ५२ ॥

स्वस्त्यात्रेयः । **अश्व्यादयः**=विद्याव्यापिचिकित्सकादयः । अतिजगती । निषादः ॥

पुनर्मनुष्यैः कथं वर्त्तितव्यमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

दे॒वा दे॒वानां॑ भि॒षजा॒ होता॑रा॒विन्द्र॑म॒श्विना॑ । व॒ष॒ट्का॒रैः सर॑स्वती॒ त्विषिं॒ न हृद॑ये म॒तिꣳ होतृ॑भ्यां द॒धुरि॑न्द्रि॒यं व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥ ५३ ॥

पदार्थः—(**देवा**) वैद्यविद्यया प्रकाशमानौ (**देवानाम्**) सुखदातॄणां विदुषां (**भिषजा**) चिकित्सकौ (**होतारौ**) सुखस्य दातारौ (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्यम् (**अश्विना**) विद्याव्यापिनौ (**वषट्कारैः**) श्रेष्ठैः कर्मभिः (**सरस्वती**) प्रशस्तविद्यासुशिक्षायुक्ता वाङ्मती (**त्विषिम्**) प्रकाशम् (**न**) इव (**हृदये**) अन्तःकरणे (**मतिम्**) (**होतृभ्याम्**) दातृभ्याम् (**दधुः**) (**इन्द्रियम्**) शुद्धं मनः (**वसुवने**) धनसंविभाजकाय (**वसुधेयस्य**) कोशस्य (**व्यन्तु**) (**यज**) ॥ ५३ ॥

अन्वयः—हे विद्वांसो भवन्तो यथा देवानां होतारौ देवा भिषजाऽश्विना वषट्कारैरिन्द्रं दध्यातां सरस्वती त्विषिं न हृदये मतिं दध्यात्तथा होतृभ्यां सहैता वसुधेयस्य वसुवन इन्द्रियं दधुर्व्यन्तु च हे मनुष्य ! तथा त्वमपि यज ॥ ५३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वांसः ! भवन्तो यथा—**देवानां** सुखदातॄणां विदुषां **होतारौ** सुखस्य दातारौ, **देवा** वैद्यविद्यया प्रकाशमानौ, **भिषजा** चिकित्सकौ, **अश्विना** विद्याव्यापिनौ; **वषट्कारैः** श्रेष्ठैः कर्मभिः **इन्द्रं** परमैश्वर्यं **दध्याताम्**; **सरस्वती** प्रशस्तविद्यासुशिक्षायुक्ता वाङ्मती **त्विषिं** प्रकाशं **न** इव **हृदये** अन्तःकरणे **मतिं दध्यात्**, **तथा**—**होतृभ्यां** दातृभ्यां **सहैता वसुधेयस्य** कोशस्य **वसुवने** धनसंविभाजकाय **इन्द्रियं शुद्धं मनः दधुः**, **व्यन्तु च**; **हे मनुष्य ! तथा त्वमपि यज** ॥ २१ । ५३ ॥

भाषार्थ—हे विद्वानो ! आप लोग—जैसे (देवानाम्) सुख दाता विद्वानों को (होतारौ) सुख देने वाले, (देवा) वैद्य-विद्या से प्रकाशमान, (भिषजा) चिकित्सक, (अश्विना) विद्या में व्यापक दो विद्वान् (वषट्कारैः) श्रेष्ठ कर्मों से (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य को धारण करते हैं; (सरस्वती) प्रशस्त विद्या और सुशिक्षा से युक्त वाणी वाली स्त्री (त्विषिम्) प्रकाश के (न) समान (हृदये) अन्तःकरण में (मतिम्) बुद्धि को धारण करती है; वैसे (होतृभ्याम्) दो दाता पुरुषों के साथ ये स्त्रियाँ (वसुधेयस्य) कोश के (वसुवने) धन का संविभाग करने वाले पुरुष के लिए (इन्द्रियम्) शुद्ध मन को (दधुः) धारण करती और (व्यन्तु) प्राप्त करती हैं, हे मनुष्य ! वैसे तू भी (यज) यज्ञ कर ॥ २१ । ५३ ॥

भावार्थः — अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालंकारौ ॥ यथा विद्वत्सु विद्वांसौ सद्वैद्यौ सत्क्रियया सर्वानरोगीकृत्य श्रीमतः सम्पादयतः, यथा वा—विदुषां वाग् विद्यार्थिनां स्वान्ते प्रज्ञामुन्नयति तथाऽन्यैर्विद्याधने संचयनीये ॥ २१ । ५३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमा अलंकार हैं ॥ जैसे विद्वानों में विद्वान् दो श्रेष्ठ वैद्य उत्तम क्रिया से सब को निरोग करके श्रीमान् बनाते हैं; अथवा जैसे विद्वानों की वाणी विद्यार्थियों के हृदय में बुद्धि को बढ़ाती है; वैसे अन्य लोग विद्या और धन का संचय करें ॥ ५१ । ५३ ॥

भा० पदार्थः—देवानाम्=विद्वत्सु । देवा=विद्वांसौ । भिषजा=सद्वैद्यौ । वषट्कारैः=सत्क्रियया । हृदये=स्वान्ते । मतिम्=प्रज्ञाम् । दधुः=दध्यात्, उन्नयति ॥

भाष्यसार—१. मनुष्य कैसा वर्त्ताव करें—सुखदायक विद्वानों को सुख देने वाले, वैद्यक-विद्या से प्रकाशमान, विद्या में व्याप्त दो श्रेष्ठ वैद्य श्रेष्ठ-कर्मों से परम ऐश्वर्य को धारण करें अर्थात् चिकित्सा से सबको नीरोग करके श्रीमान् बनावें । प्रशस्त विद्या और सुशिक्षा से युक्त विदुषी विद्या-प्रकाश के समान अन्तःकरण में मति को धारण करें । विद्यार्थियों के हृदय में बुद्धि को बढ़ावें । विद्या और धन का संचय करें । शुद्ध मन को धारण करें ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'न' पद है अतः उपमा-अलङ्कार है । उपमा-वाचक पद को लुप्त मानकर वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार भी है । उपमा यह है कि विद्वान्, श्रेष्ठ वैद्यों के समान परम ऐश्वर्य को धारण करें । सरस्वती=विदुषी के विद्या-प्रकाश के समान हृदय में मति=बुद्धि को धारण करें ॥ २१ । ५३ ॥

स्वस्त्यात्रेयः । **अश्व्यादयः**=अध्यापकोपदेशकादयः ॥ त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनर्जननीजनकाः स्वसन्तानान् कीदृशान् कुर्युरित्याह ॥

फिर माता-पिता अपने सन्तानों को कैसा बनाएँ, इस विषय का उपदेश किया है ॥

देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीरश्विनेडा सरस्वती ।
शूषं न मध्ये नाभ्यामिन्द्राय दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५४ ॥

पदार्थः—(**देवीः**) देदीप्यमानाः (**तिस्रः**) त्रित्वसंख्याकाः (**तिस्रः**) (**देवीः**) विद्यया प्रकाशिताः (**अश्विना**) अध्यापकोपदेशकौ (**इडा**) स्ताविका (**सरस्वती**) प्रशस्तविद्यायुक्ता (**शूषम्**) बलं सुखं वा (**न**) इव (**मध्ये**) (**नाभ्याम्**) तुन्दे (**इन्द्राय**) जीवाय (**दधुः**) दध्युः (**इन्द्रियम्**) अन्तःकरणम् (**वसुवने**) धनेच्छुकाय (**वसुधेयस्य**) धेयानि वसूनि यस्मिंस्तस्य जगतः (**व्यन्तु**) (**यज**) ॥ ५४ ॥

अन्वयः—हे विद्यार्थिन् ! यथा तिस्रो देवीर्वसुधेयस्य मध्ये वसुवन इन्द्राय तिस्रो देवीर्दधुर्यथाश्विनेडा सरस्वती च नाभ्यां शूषन्नेन्द्रियं दध्युर्यथैत एतानि व्यन्तु तथा त्वं यज ॥ ५४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्यार्थिन् ! यथा **तिस्रः** त्रित्वसंख्याकाः **देवीः** देदीप्यमानाः **वसुधेयस्य** धेयानि वसूनि यस्मिंस्तस्य जगतः **मध्ये वसुवने** धनेच्छुकाय **इन्द्राय** जीवाय **तिस्रः** त्रित्वसंख्याकाः **देवीः** विद्यया प्रकाशिताः **दधुः**; दध्युः; **यथाश्विना** अध्यापकोपदेशकौ **इडा** स्ताविका **सरस्वती** प्रशस्त-विद्यायुक्ता **च नाभ्यां** तुन्दे **शूषं** बलं सुखं वा **न** इव **इन्द्रियम्** अन्तःकरणं [**दधुः**] दध्युः, **यथैत एतानि व्यन्तु ; तथा त्वं यज** ॥ २१ । ५४ ॥

भाषार्थ—हे विद्यार्थिन् ! जैसे (तिस्रः) माता, अध्यापिका और उपदेशिका तीन (देवीः) विद्या से देदीप्यमान देवियाँ (वसुधेयस्य) वसुओं का धारण करने वाले इस जगत् में (वसुवने) धन के इच्छुक (इन्द्राय) जीव के लिए (तिस्रः) तीन (देवीः) विद्या से प्रकाशित देवियों को (दधुः) धारण करती हैं; जैसे (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक, (इडा) स्तुति करने वाली और (सरस्वती) प्रशस्त विद्या से युक्त स्त्री (नाभ्याम्) नाभि में विद्यमान (शूषम्) बल वा सुख के (न) समान (इन्द्रियम्) अन्तःकरण को (दधुः) धारण करती

हैं; जैसे ये इन्हें (व्यन्तु) प्राप्त करते हैं; वैसे तू (यज) यज्ञ कर ॥ २१ । ५४ ॥

भावार्थः— अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यथा जननी, अध्यापिका, उपदेष्ट्री च तिस्रो, विदुष्यः कुमारीः, विदुषीः कृत्वा सुखयन्ति। तथा—जनकाध्यापकोपदेष्टारः कुमारान् विद्यार्थिनो, विपश्चितः कृत्वा सुसभ्यान् कुर्युः ॥ २१ । ५४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमा अलंकार हैं ॥ जैसे माता, अध्यापिका और उपदेशिका तीन विदुषियाँ कुमारियों को विदुषी करके सुखी करती हैं; वैसे पिता, अध्यापक और उपदेशक कुमार-विद्यार्थियों को विद्वान् बना कर उन्हें सुसभ्य बनायें ॥ २१ । ५४ ॥

भा० पदार्थः—देवीः—जननी, अध्यापिका, उपदेष्ट्री। अश्विना=जनकाध्यापकोपदेष्टारः ॥

भाष्यसार—१. **माता-पिता सन्तानों को कैसा बनावें**—इस जगत् में माता, अध्यापिका और उपदेशिका ये विदुषियाँ विद्या-धन की इच्छुक कुमारियों को विद्या से प्रकाशित करके उन्हें विदुषी बनावें। पिता अध्यापक और उपदेशक लोग विद्या-धन के इच्छुक कुमारों को विद्वान् बनाकर उन्हें सभ्य बनावें।

२. **अलंकार**— इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'न' पद है अतः उपमा अलंकार है। उपमा-वाचक पद को लुप्त मानकर वाचकलुप्तोपमा अलंकार भी है। उपमा यह है कि माता-पिता, अध्यापक और उपदेशक एवं अध्यापिका और उपदेशिका के समान विद्यार्थी कुमार और कुमारियाँ विद्या से प्रकाशमान बनें। पिता, अध्यापक और उपदेशक आदि लोग नाभि में विद्यमान बल और सुख के समान अन्तःकरण को भी बल और सुख से युक्त करें ॥ २१ । ५४ ॥ ●

स्वस्त्यात्रेयः। **अश्व्यादयः**=अग्नि-वाय्वादयः। स्वराट् शक्वरी। धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

माता-पिता अपने सन्तानों को कैसा बनायें, इसका फिर उपदेश किया है ॥

देव ऽ इन्द्रो नराशꣳसस्त्रिवरूथः सरस्वत्याश्विभ्यामीयते रथः।
रेतो न रूपममृतं जनित्रमिन्द्राय त्वष्टा दधदिन्द्रियाणि वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५५ ॥

पदार्थः—(**देवः**) विद्वान् (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान् (**नराशंसः**) ये नराशंसन्ति तान् (**त्रिवरूथः**) त्रिषु भूम्यधोन्तरिक्षेषु वरूथानि=गृहाणि यस्य सः (**सरस्वत्या**) सुशिक्षितया वाचा (**अश्विभ्याम्**) अग्निवायुभ्याम् (**ईयते**) गम्यते (**रथः**) यानम् (**रेतः**) वीर्यम् (**न**) इव (**रूपम्**) आकृतिम् (**अमृतम्**) जलम् (**जनित्रम्**) जनकम् (**इन्द्राय**) जीवाय (**त्वष्टा**) दुःखविच्छेदकः (**दधत्**) दध्यात् (**इन्द्रियाणि**) श्रोत्रादीनि (**वसुवने**) धनसेविने (**वसुधेयस्य**) संसारस्य (**व्यन्तु**) (**यज**) ॥ ५५ ॥

अन्वयः—हे विद्वन्! यथा त्रिवरूथ इन्द्रो देवः सरस्वत्या नराशंसोऽश्विभ्यां रथ ईयत इव सन्मार्गे गमयति यथा वा जनित्रममृतं रेतो न रूपं वसुधेयस्य वसुवन इन्द्रायेन्द्रियाणि त्वष्टा दधद्यथैत एतानि व्यन्तु तथा त्वं यज ॥ ५५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन्! यथा **त्रिवरूथः** त्रिषु भूम्यधोन्तरिक्षेषु वरूथानि=गृहाणि

भाषार्थ—हे विद्वान्! जैसे (त्रिवरूथः) भूमि, पाताल और अन्तरिक्ष तीनों स्थानों में घरों

यस्य सः **इन्द्रः** परमैश्वर्यवान् **देवः** विद्वान्, **सरस्वत्या** सुशिक्षितया वाचा **नराशंसः** ये नरा शंसन्ति तान् **अश्विभ्याम्** अग्निवायुभ्यां **रथः** यानम् **ईयते=इव सन्मार्गे गमयति; यथा वा—जनित्रं** जनकम् **अमृतं** जलं **रेतः** वीर्यं **न** इव **रूपम्** आकृतिं **वसुधेयस्य** संसारस्य **वसुवने** धनसेविने **इन्द्राय** जीवाय **इन्द्रियाणि** श्रोत्रादीनि **त्वष्टा** दुःखविच्छेदकः **दधत्** दध्यात्, **यथैत एतानि व्यन्तु; तथा त्वं यज** ।। ५५ ।।

वाला, (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य वाला (देवः) विद्वान् (सरस्वत्या) सुशिक्षित वाणी से (नराशंसः) स्तुति करने वाले नरों को एवं (अश्विभ्याम्) अग्नि और वायु से (रथः) रथ=यान को जैसे (ईयते) सन्मार्ग पर ले जाता है; अथवा जैसे—(जनित्रम्) पिता, (अमृतम्) जल, (रेतः) वीर्य के (न) समान (रूपम्) आकृति को (वसुधेयस्य) संसार के (वसुवने) धन का सेवन करने वाले (इन्द्राय) जीव के लिए (इन्द्रियाणि) श्रोत्र आदि इन्द्रियों को (त्वष्टा) दुःखों का विनाश करने वाला ईश्वर (दधत्) धारण करता है; जैसे ये इन्हें (व्यन्तु) प्राप्त करें, वैसे तू (यज) यज्ञ कर ।। २१ । ५५ ।।

भावार्थः — अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ । हे मनुष्याः ! यदि यूयं धर्म्येण व्यवहारेण श्रियं संचिनुयात, तर्हि जलाग्निभ्यां चालितो रथ इव, सद्यः सर्वाणि सुखानि प्राप्नुयात ।। २१ । ५५ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमा अलंकार हैं ।। हे मनुष्यो ! यदि तुम धर्मयुक्त व्यवहार से श्री=धन का संचय करो तो जल और अग्नि से चालित रथ के समान शीघ्र सब सुखों को प्राप्त कर सकते हो ।। २१ । ५५ ।।

भा० पदार्थः—सरस्वत्या=धर्म्येण व्यवहारेण । अश्विभ्याम्=जलाग्निभ्याम् ।।

भाष्यसार—**१. माता-पिता सन्तानों को कैसा बनावें**—भूमि, पाताल और अन्तरिक्ष में घरों वाला, परम ऐश्वर्य से युक्त विद्वान्—सुशिक्षित वाणी से स्तुति करने वाले नरों को अग्नि और वायु से संचालित रथ के समान सन्मार्ग पर चलावे एवं शीघ्र सब सुखों को प्राप्त करे । जनक, जल एवं वीर्य के समान रूप को धारण करे । संसार के धन का सेवन करने वाले प्राणियों के लिए दुःख-छेदक होकर श्रोत्र आदि इन्द्रियों को धारण करे अर्थात् अपनी प्रत्येक इन्द्रिय से प्राणियों के दुःखों का उच्छेद करे धर्मयुक्त व्यवहार से श्री=धन का संचय करे ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'न' पद है अतः उपमा अलङ्कार है । उपमा-वाचक पद को लुप्त मानकर वाचकलुप्तोपमा अलंकार भी है । उपमा यह है कि विद्वान् मनुष्य मन्त्र में प्रतिपादित परमैश्वर्य-युक्त विद्वान् के समान मन्त्रोक्त यज्ञ का अनुष्ठान करे । जनक, जल और वीर्य के समान रूप=आकृति होती है ।। २१ । ५५ ।। ●

स्वस्त्यात्रेयः । **अश्व्यादयः**=जलाग्नचादयः । निचृदत्यष्टिः । गान्धारः ।।

पुनर्मनुष्याः कथं वर्त्तेरन्नित्याह ।।

फिर मनुष्य कैसे वर्त्तें, इस विषय का उपदेश किया है ।।

देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णो ऽ अश्विभ्याᳬं सरस्वत्या सुपिप्पल ऽ इन्द्राय पच्यते मधु । ओजो न जूतिर्ऋषभो न भामं वनस्पतिर्नो दधदिन्द्रियाणि वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ।। ५६ ।।

पदार्थः—(**देवः**) द्योतमानः (**देवैः**) प्रकाशकैः (**वनस्पतिः**) रश्मिपालकः (**हिरण्यवर्णः**) तेजःस्वरूपः (**अश्विभ्याम्**) जलाग्निभ्याम् (**सरस्वत्या**) गतिमत्या नीत्या (**सुपिप्पलः**) शोभनानि पिप्प-

लानि फलानि यस्य सः (**इन्द्राय**) जीवाय (**पच्यते**) (**मधु**) मधुरं फलम् (**ओजः**) जलम् (**न**) इव (**जूतिः**) वेगः (**ऋषभः**) बलिष्ठः (**न**) इव (**भामम्**) क्रोधम् (**वनस्पतिः**) वटादिः (**नः**) अस्मभ्यम् (**दधत्**) दधाति (**इन्द्रियाणि**) धनानि (**वसुवने**) धनेच्छुकाय (**वसुधेयस्य**) सर्वपदार्थाधारस्य संसारस्य (**व्यन्तु**) (**यज**) ।। ५६ ।।

अन्वयः—हे विद्वन् ! यथाश्विभ्यां देवैः सह देवो हिरण्यवर्णो वनस्पतिः सरस्वत्या सुपिप्पल इन्द्राय मध्विव पच्यते जूतिरोजो न भाममृषभो न वनस्पतिर्वसुधेयस्य नो वसुवन इन्द्रियाणि दधद्यथैताने-तानि व्यन्तु तथा त्वं यज ।। ५६ ।।

सपदार्थान्वयः—**हे विद्वन् ! यथा-श्विभ्यां** जलाग्निभ्यां **देवैः** प्रकाशकैः **सह देवः** द्योतमानः **हिरण्यवर्णः** तेजःस्वरूपः **वनस्पतिः** रश्मिपालकः **सरस्वत्या** गतिमत्या नीत्या **सुपिप्पलः** शोभनानि पिप्पलानि=फलानि यस्य सः **इन्द्राय** जीवाय **मधु** मधुरं फलम् **इव पच्यते, जूतिः** वेगः **ओजः** जलं **न** इव, **भामं** क्रोधम् **ऋषभः** बलिष्ठः **न** इव, **वनस्पतिः** वटादिः, **वसुधेयस्य** सर्वपदार्था-धारस्य संसारस्य **नः** अस्मभ्यं **वसुवने** धनेच्छुकाय **इन्द्रियाणि** धनानि **दधत्** दधाति, **यथैतानेतानि व्यन्तु; तथा त्वं यज** ।। २१ । ५६ ।।

भाषार्थ—हे विद्वान् ! जैसे (अश्विभ्याम्) जल और अग्नि तथा (देवैः) प्रकाशक देवों के साथ (देवः) प्रकाशमान (हिरण्यवर्णः) तेजःस्वरूप (वनस्पतिः) रश्मि-पालक सूर्य है वह (सरस्वत्या) गतिमान् नीति से (सुपिप्पलः) उत्तम फलों वाला होकर (इन्द्राय) जीव के लिए मधुर फलों को (पच्यते) पकाता है; (जूतिः) वेग को (ओजः) जल के (न) समान, (भामम्) क्रोध को (ऋषभः) बलिष्ठ प्राणी के (न) समान, (वनस्पतिः) वट आदि वृक्ष—(वसुधेयस्य) पदार्थों के आधार संसार के (नः) हम मनुष्यों एवं (वसुवने) धन के इच्छुक व्यक्ति के लिए (इन्द्रियाणि) धनों को (दधत्) धारण करता है; जैसे इन्हें ये (व्यन्तु) प्राप्त हों; वैसे तू (यज) यज्ञ कर ।। २१ । ५६ ।।

भावार्थः — अत्रोपमावाचकलुप्तोपमा-लङ्कारौ । हे मनुष्याः ! भवन्तो यथा सूर्यो वृष्ट्या, नदी स्वजलेन च वृक्षान् संरक्ष्य मधुराणि फलानि जनयति; तथा सर्वार्थं सर्वं वस्तु जनयन्तु ।

यथा च धार्मिको राजा दुष्टाय क्रुध्यति तथा दुष्टान् प्रत्यप्रीतिं कृत्वा, श्रेष्ठेषु प्रेम धरन्तु ।। ५६ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचक-लुप्तोपमा अलंकार हैं ।। हे मनुष्यो ! आप जैसे सूर्य वर्षा से और नदी अपने जल से वृक्षों का संरक्षण करके मधुर फलों को उत्पन्न करती है; वैसे सबके लिए सब वस्तुएँ उत्पन्न करो ।

और जैसे धार्मिक राजा दुष्ट पर क्रोध करता है वैसे दुष्टों के प्रति अप्रीति करके श्रेष्ठ-जनों में प्रेम को धारण करें ।। २१ । ५६ ।।

भा० पदार्थः—वनस्पतिः=सूर्यः । सरस्वत्या=वृष्ट्या । नदी स्वजलेन च । सुपिप्पलः= वृक्षः ।

भाष्यसार—**१. मनुष्य कैसे वर्त्ताव करें**—सूर्य, जल और अग्नि एवं प्रकाशक देवों के साथ प्रकाशमान है; तेजः स्वरूप और रश्मियों का पालक है । वह अपनी गति से जीवों के लिए मधुर फल पकाता है । अर्थात् वर्षा से वृक्षों का संरक्षण करके मधुर फलों को उत्पन्न करता है, वैसे सब मनुष्य सबके लिए सब वस्तुओं को उत्पन्न करें । जैसे जल वेग को धारण करता है, जैसे बलिष्ठ एवं

धार्मिक राजा दुष्टों पर क्रोध को धारण करता है वैसे मनुष्य दुष्टों के प्रति अप्रीति को धारण करें और श्रेष्ठों पर प्रेम रखें। जैसे वट आदि वृक्ष धन के इच्छुक व्यक्ति के लिए धन को धारण करते हैं वैसे मनुष्य धन को धारण करें।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'न' पद है अतः उपमा अलंकार है। उपमा-वाचक पद को लुप्त मान कर वाचकलुप्तोपमा अलंकार भी है। उपमा यह है कि विद्वान् मनुष्य सूर्य के समान सब के लिए सब वस्तुओं को उत्पन्न करे। जल के समान वेग को धारण करे इत्यादि ॥ २१ । ५६ ॥ ●

स्वस्त्यात्रेयः। **अश्व्यादयः**=वायुविद्युदादयः ॥ अतिशक्वरी। पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्य कैसे वर्त्तें, इसका फिर उपदेश किया है ॥

दे॒वं ब॒र्हिर्वारि॑तीनामध्व॒रे स्ती॒र्णम॒श्विभ्या॒मूर्णम्र॑दाः सर॑स्वत्या स्यो॒नमि॑न्द्र ते॒ सदः॑। ई॒शायै॑ म॒न्युꣳ राजा॑नं ब॒र्हिषा॑ दधुरिन्द्रि॒यं व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥ ५७ ॥

पदार्थः—(**देवम्**) दिव्यम् (**बर्हिः**) अन्तरिक्षम् (**वारितीनाम्**) वारिणि=जले इतिर्गतिर्येषां तेषाम् (**अध्वरे**) अहिंसनीये यज्ञे (**स्तीर्णम्**) आच्छादकम् (**अश्विभ्याम्**) वायुविद्युद्भ्याम् (**ऊर्णम्रदाः**) य ऊर्णैराच्छादकैर्मृदन्ते ते (**सरस्वत्या**) उत्तमवाण्या (**स्योनम्**) सुखम् (**इन्द्र**) इन्द्रियस्वामिन् जीव (**ते**) तव (**सदः**) सीदन्ति यस्मिंस्तत् (**ईशायै**) यथैश्वर्यं प्राप्नोति तस्यै (**मन्युम्**) मननम् (**राजानम्**) राजमानम् (**बर्हिषा**) अन्तरिक्षेण (**दधुः**) (**इन्द्रियम्**) धनम् (**वसुवने**) पृथिव्यादिसेवकाय (**वसुधेयस्य**) पृथिव्याद्याधारस्य (**व्यन्तु**) (**यज**) ॥ ५७ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र ! यस्य ते सरस्वत्या सह स्योनं सदोऽस्ति यथोर्णम्रदा अश्विभ्यामध्वरे वारितीनां स्तीर्णं देवं बर्हिरीशायै मन्युं राजानमिव बर्हिषा वसुधेयस्य वसुवन इन्द्रियं दधुरेतानि व्यन्तु तथा त्वं यज ॥ ५७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **इन्द्र** इन्द्रिय-स्वामिन् जीव ! **यस्य ते** तव **सरस्वत्या** उत्तमवाण्या **सह स्योनं** सुखं **सदः** सीदन्ति यस्मिंस्तत् **अस्ति, यथोर्णम्रदाः** य ऊर्णैराच्छादकैर्मृदन्ते ते **अश्विभ्यां** वायुविद्युद्भ्याम् **अध्वरे** अहिंसनीये यज्ञे **वारितीनां** वारिणि=जले इतिर्गतिर्येषां तेषां **स्तीर्णम्** आच्छादकं **देवं** दिव्यं **बर्हिः** अन्तरिक्षम्, **ईशायै** यथैश्वर्यं प्राप्नोति तस्यै **मन्युं** मननं **राजानं** राजमानम् **इव, बर्हिषा** अन्तरिक्षेण **वसुधेयस्य** पृथिव्याद्याधारस्य **वसुवने** पृथिव्यादिसेवकाय **इन्द्रियं** धनं **दधुः, एतानि व्यन्तु; तथा त्वं यज** ॥ २१ । ५७ ॥

भाषार्थ—हे (इन्द्र) इन्द्रियों के स्वामी जीव (ते) तेरी (सरस्वत्या) उत्तम वाणी के साथ (स्योनम्) सुखदायक (सदः) घर है; जैसे (ऊर्णम्रदाः) आच्छादित पदार्थों से द्रव्यों का मर्दन करने वाले विद्वान्—(अश्विभ्याम्) वायु और विद्युत् से (अध्वरे) हिंसा रहित यज्ञ में (वारितीनाम्) जल में गति करने वाले मनुष्यों के (स्तीर्णम्) आच्छादक, (देवम्) दिव्य, (बर्हिः) आकाश को; (ईशायै) ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए (मन्युम्) मननशील (राजानम्) राजा के समान ; (बर्हिषा) अन्तरिक्ष से (वसुधेयस्य) पृथिवी आदि के आधार जगत् में (वसुवने) पृथिवी आदि के सेवक पुरुष के लिए (इन्द्रियम्) धन को (दधुः) धारण करते हैं एवं

इन्हें (व्यन्तु) प्राप्त करते हैं वैसे तू (यज) यज्ञ कर ॥ २१ । ५७ ॥

भावार्थः — अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ । यदि मनुष्या आकाशवदक्षोभा, आनन्दप्रदा एकान्तप्रासादा, अभङ्गाज्ञाः, पुरुषार्थिनोऽभविष्यँस्तर्हि अस्य संसारस्य मध्ये श्रीमन्तः कुतो नाभविष्यन् ॥ २१ । ५७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमा अलंकार हैं ॥ यदि मनुष्य आकाश के समान क्षोभ रहित, आनन्ददायक, एकान्त स्थान वाले, आज्ञा का भङ्ग न करने वाले और पुरुषार्थी हों तो इस संसार के मध्य में श्रीमान्=धनवान् क्यों न हों ॥ २१ । ५७ ॥

भा० पदार्थः—स्योनम्=सुखप्रदम् । सदः=प्रासादः । ईशायै=पुरुषार्थाय । मन्युम्=आज्ञाम् । बर्हिषा=आकाशवदक्षोभः । वसुधेयस्य=संसारस्य मध्ये ।

भाष्यसार—१. **मनुष्य कैसे वर्त्ताव करें**—इन्द्रियों का स्वामी जीवात्मा उत्तम—वाणी के साथ सुखदायक घर में निवास करे । पदार्थों का मर्दन करने वाले विद्वान् वायु और विद्युत् के द्वारा हिंसा रहित यज्ञ में, जल में गति करने वालों के आच्छादक दिव्य गुणों से युक्त अन्तरिक्ष को धारण करें अर्थात् उत्तम पदार्थों के होम से आकाश को दोषरहित एवं पवित्र बनावें । जिससे ऐश्वर्य प्राप्त हो उस पुरुषार्थ को प्राप्त हों अर्थात् पुरुषार्थी बनें । मननशील राजा के समान इसे जगत् पृथिवी आदि के सेवक जनों के लिए धन को धारण करें ।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'न' पद है अतः उपमा अलंकार है । उपमा-वाचक पद को लुप्त मानकर वाचकलुप्तोपमा अलंकार भी है । उपमा यह है कि इन्द्रियों का स्वामी जीवात्मा मन्त्र में प्रतिपादित विद्वानों के समान धन आदि को धारण करे एवं मन्त्रोक्त यज्ञ का अनुष्ठान करे । मननशील राजा के समान आचरण करे ॥ २१ । ५७ ॥ ●

स्वस्त्यात्रेयः । **अश्व्यादयः**=वायुविद्युदादयः । आद्यस्याऽत्यष्टिः । गान्धारः ।
स्विष्टोऽग्निरित्युत्तरस्य निचृत्त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्य कैसे वर्त्तें, यह फिर उपदेश किया है ॥

देवो ऽ अग्निः स्विष्टकृद्देवान्यक्षद्यथायथꣳ होताराविन्द्रमश्विना वाचा वाचꣳ सरस्वतीमग्निꣳ सोमꣳ स्विष्टकृत् स्विष्ट ऽ इन्द्रः सुत्रामा सविता वरुणो भिषगिष्टो देवो वनस्पतिः स्विष्टा देवा ऽ आज्यपाः स्विष्टो ऽ अग्निरग्निना होता होत्रे स्विष्टकृद्यशो न दधदिन्द्रियमूर्जमपचितिꣳ स्वधां वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५८ ॥

पदार्थः—(**देवः**) दिव्यः (**अग्निः**) पावकः (**स्विष्टकृत्**) यः शोभनमिष्टं करोति सः (**देवान्**) दिव्यगुणकर्मस्वभावान् पृथिव्यादीन् (**यक्षत्**) यजेत्=संगच्छेत् (**यथायथम्**) यथायोग्यम् (**होतारौ**) आदातारौ (**इन्द्रम्**) सूर्यम् (**अश्विना**) वायुविद्युतौ (**वाचा**) वाण्या (**वाचम्**) वाणीम् (**सरस्वतीम्**) विज्ञानयुक्ताम् (**अग्निम्**) पावकम् (**सोमम्**) चन्द्रम् (**स्विष्टकृत्**) सुष्ठुसुखकारी (**स्विष्टः**) शोभनश्चासाविष्टश्च सः (**इन्द्रः**) परमैश्वर्ययुक्तो राजा (**सुत्रामा**) सुष्ठुपालकः (**सविता**) सूर्यः (**वरुणः**) जलसमुदायः (**भिषक्**) रोगविनाशकः (**इष्टः**) संगन्तुमर्हः (**देवः**) दिव्यस्वभावः (**वनस्पतिः**) पिप्पलादिः

(**स्विष्टाः**) शोभनमिष्टं येभ्यस्ते (**देवाः**) दिव्यस्वरूपाः (**आज्यपाः**) य आज्यं पातुमर्हं रसं पिबन्ति ते (**स्विष्टः**) शोभनमिष्टं यस्मात्सः (**अग्निः**) वह्निः (**अग्निना**) विद्युता (**होता**) दाता (**होत्रे**) दात्रे (**स्विष्टकृत्**) शोभनेष्टकारी (**यशः**) कीर्तिकरं धनम् (**न**) इव (**दधत्**) धरेत् (**इन्द्रियम्**) इन्द्रस्य लिङ्गं श्रोत्रादि (**ऊर्जम्**) बलम् (**अपचितम्**) सत्कृतिम् (**स्वधाम्**) अन्नम् (**वसुवने**) ऐश्वर्य्यसेवकाय (**वसुधेयस्य**) संसारस्य (**व्यन्तु**) (**यज**) ॥ ५८ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! यथा वसुधेयस्य वसुवने स्विष्टकृद्देवोऽग्निर्देवान् यथायथं यक्षद्यथा होतारावश्विनेन्द्रं वाचा सरस्वती वाचमग्निं सोमं च यथायथं गमयतो यथा स्विष्टकृत्स्विष्टः सुत्रामेन्द्रः सविता वरुणो भिषगिष्टो देवो वनस्पतिः स्विष्टा आज्यपा देवा अग्निना स्विष्टो होता स्विष्टकृदग्निर्होत्रे यशो नेन्द्रियमूर्जमपचितिं स्वधां यथायथं दधद्यथैतानेतानि व्यन्तु तथा यथायथं यज ॥ ५८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! यथा—**वसुधेयस्य** संसारस्य **वसुवने** ऐश्वर्यसेवकाय **स्विष्टकृत्** यः शोभनमिष्टं करोति सः **देवः** दिव्यः **अग्निः** पावकः **देवान्** दिव्यगुणकर्मस्वभावान् पृथिव्यादीन् **यथायथं** यथायोग्यं **यक्षद्** यजेत्=संगच्छेत्; **यथा—होतारौ** आदातारौ **अश्विना** वायुविद्युतौ, **इन्द्रं** सूर्य्यं, **वाचा** वाण्या **सरस्वतीं** विज्ञानयुक्तां **वाचं** वाणीम्, **अग्निं** पावकं, **सोमं** चन्द्रं **च यथायथं** यथायोग्यं **गमयतः**; **यथा—स्विष्टकृत्** सुष्ठुसुखकारी **स्विष्टः** शोभनश्चासाविष्टश्च सः **सुत्रामा** सुष्ठुपालकः **इन्द्रः** परमैश्वर्ययुक्तो राजा, **सविता** सूर्य्यः, **वरुणः** जलसमुदायः, **भिषग्** रोगविनाशकः, **इष्टः** संगन्तुमर्हः **देवः** दिव्यस्वभावः, **वनस्पतिः** पिप्पलादिः, **स्विष्टाः** शोभनमिष्टं येभ्यस्ते **आज्यपाः** य आज्यं=पातुमर्हं रसं पिबन्ति ते **देवाः** दिव्यस्वरूपाः, **अग्निना** विद्युता **स्विष्टः** शोभनमिष्टं यस्मात्सः **होता** दाता **स्विष्टकृत्** शोभनेष्टकारी **अग्निः** वह्निः, **होत्रे** दात्रे **यशः** कीर्तिकरं धनं **न** इव **इन्द्रियम्** इन्द्रस्य लिङ्गं श्रोत्रादि, **ऊर्जं** बलम्, **अपचितिं** सत्कृतिं, **स्वधाम्** अन्नं, **यथायथं** यथायोग्यं **दधत्** धरेत्; **यथैतानेतानि व्यन्तु**; **तथा यथायथं** यथायोग्यं **यज** ॥ २१ । ५८ ॥

भाषार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (वसुधेयस्य) संसार के (वसुवने) ऐश्वर्य के सेवक पुरुष के लिए (स्विष्टकृत्) उत्तम अभीष्ट सुखकारी, (देवः) दिव्य, (अग्निः) अग्नि—(देवान्) दिव्य गुण, कर्म, स्वभाव वाले पृथिवी आदि भूतों को (यथायथम्) यथायोग्य (यक्षत्) संगत करता है; जैसे (होतारौ) पदार्थों को ग्रहण करने वाले (अश्विना) वायु और विद्युत् (इन्द्रम्) सूर्य को; (वाचा) वाणी से (सरस्वतीम्) विज्ञान युक्त (वाचम्) वाणी को एवं (अग्निम्) अग्नि और (सोमम्) चन्द्र को (यथायथम्) यथायोग्य चलाते हैं; जैसे (स्विष्टकृत्) उत्तम सुखकारी, (स्विष्टः) अत्यन्त इष्ट=प्रिय, (सुत्रामा) उत्तम पालक (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य से युक्त राजा, (सविता) सूर्य, (वरुणः) जल-समुदाय, (भिषक्) रोग-विनाशक वैद्य, (इष्टः) संग करने योग्य (देवः) दिव्य स्वभाव वाला (वनस्पतिः) पीपल आदि वृक्ष, (स्विष्टाः) उत्तम अभीष्ट के निमित्त (आज्यपाः) पेय रस का पान करने वाले (देवाः) दिव्य स्वरूप वाले देव, (अग्निना) विद्युत् से (स्विष्टः) उत्तम अभीष्ट का हेतु (होता) दाता पुरुष, (स्विष्टकृत्) उत्तम अभीष्टकारी (अग्निः) अग्नि (होत्रे) दाता पुरुष के लिए (यशः) कीर्तिकर धन के (न) समान (इन्द्रियम्) इन्द्र के लिङ्ग श्रोत्र आदि एवं (ऊर्जम्) बल, (अपचितिम्) सत्कार और (स्वधाम्) अन्न को (यथायथम्) यथायोग्य (दधत्) धारण करता है; जैसे इन्हें ये (व्यन्तु) प्राप्त हों; वैसे (यथायथम्) यथायोग्य (यज) यज्ञ कर ॥ २१ । ५८ ॥

भावार्थः — अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ ॥ ये मनुष्या ईश्वरनिर्मितानेतन्मन्त्रोक्त यज्ञादीन् पदार्थान् विद्ययोपयोगाय दधति, ते स्विष्टानि सुखानि लभन्ते ॥ २१ । ५८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमा अलंकार हैं ॥ जो मनुष्य ईश्वर कृत एवं इस मन्त्र में प्रतिपादित यज्ञ आदि पदार्थों को विद्या से उपयोग के लिए धारण करते हैं; वे उत्तम अभीष्ट सुखों को प्राप्त करते हैं ॥ २१ । ५८ ॥

भाष्यसार—**१. मनुष्यों का वर्त्ताव**—जैसे संसार के ऐश्वर्य का सेवन करने वाले मनुष्य के लिए अग्नि उत्तम अभीष्ट को सिद्ध करने वाली है, दिव्य गुणों से युक्त है एवं दिव्य गुण, कर्म, स्वभाव वाले पृथिवी आदि भूतों को यथायोग्य संगत करती है; जैसे वायु और विद्युत्—सूर्य, वाणी, अग्नि और चन्द्र को यथायोग्य चलाते हैं; जैसे उत्तम सुखों को सिद्ध करने वाला, अत्यन्त प्रिय, उत्तम पालक, परम ऐश्वर्य सम्पन्न राजा; सूर्य, जल-समुदाय=समुद्र, वैद्य, पीपल आदि वृक्ष, विद्वान् और अग्नि श्रोत्र आदि इन्द्रियों, बल, सत्कार और अन्न को यथायोग्य धारण करते हैं वैसे विद्वान् मनुष्य भी इन्हें धारण करें ॥

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'न' पद है अतः उपमा अलंकार है। उपमा-वाचक पद को लुप्त मानकर वाचकलुप्तोपमा अलंकार भी है। उपमा यह है कि विद्वान् मनुष्य मन्त्रोक्त अग्नि आदि पदार्थों के समान गुणों को धारण करे ॥ २१ । ५८ ॥

स्वस्त्यात्रेयः । **अग्न्यादयः**=पावकादयः । धृतिः । ऋषभः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्य कैसे वर्त्तें, यह फिर उपदेश किया है ॥

अ॒ग्निम॒द्य होता॑रमवृणीता॒यं यज॑मान॒ः पच॒न् पक्तीः॒ पच॑न पु॒रो॒डाशा॑न ब॒ध्नन्न॒श्विभ्या॒ं छाग॒ꣳ सर॑स्वत्यै मे॒षमिन्द्रा॑यऽऋष॒भꣳ सु॒न्वन्न॒श्विभ्या॒ꣳ सर॑स्वत्या॒ऽइन्द्रा॑य सु॒त्राम्णे॑ सुरा॒सो॒मान् ॥५९॥

पदार्थः—(**अग्निम्**) पावकम् (**अद्य**) इदानीम् (**होतारम्**) सुखानां दातारम् (**अवृणीत**) वृणोति (**अयम्**) (**यजमानः**) (**पचन्**) (**पक्तीः**) (**पचन्**) (**पुरोडाशान्**) पाकविशेषान् (**बध्नन्**) बध्नन्ति (**अश्विभ्याम्**) प्राणापानाभ्याम् (**छागम्**) (**सरस्वत्यै**) विज्ञानयुक्तायै वाचे (**मेषम्**) अविम् (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य्याय (**ऋषभम्**) वृषभम् (**सुन्वन्**) सुनुयुः (**अश्विभ्याम्**) (**सरस्वत्यै**) (**इन्द्राय**) राज्ञे (**सुत्राम्णे**) (**सुरासोमान्**) सुरया=रसेन युक्तान् सोमान्=पदार्थान् ॥ ५९ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथाऽयं पक्तीः पचन् पुरोडाशान् पचन् यजमानो होतारमग्निमवृणीत यथाऽश्विभ्यां छागं सरस्वत्यै मेषमिन्द्रायर्षभं बध्नन्नश्विभ्यां सरस्वत्यै सुत्राम्ण इन्द्राय सुरासोमान्सुन्वँस्तथा यूयमद्य कुरुत ॥ ५९ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः! यथाऽयं पक्तीः पचन्, पुरोडाशान्** पाकविशेषान् **पचन् यजमानो होतारं** सुखानां दातारम् **अग्निं** पावकम् **अवृणीत** वृणोति; **यथाऽश्विभ्यां** प्राणापानाभ्यां **छागं, सरस्वत्यै** विज्ञानयुक्तायै वाचे **मेषम्** अविम्, **इन्द्राय**

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे यह (पक्तीः) पाकों को (पचन्) पकाता हुआ, (पुरोडाशान्) पाक-विशेषों को (पचन्) पकाता हुआ (यजमानः) यजमान—(होतारम्) सुखों के दाता (अग्निम्) अग्नि को (अवृणीत) चुनता है; जैसे (अश्विभ्याम्)

परमैश्वर्य्याय **ऋषभं** वृषभं **बध्नन्** बध्नन्ति, **अश्विभ्यां** प्राणापानाभ्यां, **सरस्वत्यै** विज्ञानयुक्तायै वाचे, **सुत्राम्ण इन्द्राय राज्ञे सुरासोमान्** सुरया=रसेन युक्तान् सोमान्=पदार्थान् **सुन्वन्** सुनुयुः, **तथा यूयमद्य** इदानीं **कुरुत** ॥ २१ । ५९ ॥

प्राण और अपान के लिए (छागम्) बकरा, (सरस्वत्यै) विज्ञान-युक्त वाणी के लिए (मेषम्) भेड़, (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य के लिए (ऋषभम्) बैल को (बध्नन्) बाँधते हैं; (अश्विभ्याम्) प्राण और अपान के लिए, (सरस्वत्यै) विज्ञान-युक्त वाणी के लिए, (सुत्राम्णे) उत्तम रक्षक (इन्द्राय) राजा के लिये (सुरासोमान्) सुरा=रस से युक्त सोम=पदार्थों का (सुन्वन्) सार निकालते हैं; वैसे तुम (अद्य) अब करो ॥ २१ । ५९ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! यथा संगन्तारो वैद्या अपानार्थं छागदुग्धं, वाग्वृद्धचर्थमविपयः, ऐश्वर्याय गोः पयः, रोगनिवारणायौषधिरसांश्च सम्पाद्य; सुसंस्कृतान्यन्नानि भुक्त्वा बलवन्तो भूत्वा, दुष्टान् शत्रून् बध्नन्ति ते परमैश्वर्यं लभन्ते ॥ २१ । ५९ ॥

भावार्थ—इसमें वाचकलुप्तोपमा अलंकार है॥ हे मनुष्यो! जैसे संगति करने वाले वैद्य लोग अपान के लिए बकरी का दूध, और वाणी की वृद्धि के लिए भेड़ का दूध, ऐश्वर्य के लिए गौ का दूध और रोग-निवारण के लिए ओषधि-रसों को सिद्ध करके, सुगन्धित अन्नों को खाकर बलवान् होकर, दुष्ट शत्रुओं को बांधते हैं; वे परम ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं ॥ २१ । ५९ ॥

भा० पदार्थः—यजमानः=संगन्ता वैद्यः । अश्विभ्याम्=अपानार्थम् । छागम्=छागदुग्धम् । सरस्वत्यै=वाग्वृद्धचर्थम् । मेषम्=अविपयः । इन्द्राय=ऐश्वर्याय । ऋषभम्=गोपयः । सुत्राम्णे=रोगनिवारणाय । सुरासोमान्=ओषधिरसान् । पुरोडाशान्=सुसंस्कृतान्यन्नानि ।

भाष्यसार—१. **मनुष्य कैसे वर्त्ताव करें**—यजमान पाकों एवं पाकविशेषों को पकावें, सुखों के दाता अग्नि को वरण करें। पदार्थों को संगत करने वाले वैद्य लोग प्राण और अपान के लिए बकरी के दूध को, विज्ञानयुक्त वाणी के लिए भेड़ के दूध को, परम ऐश्वर्य के लिए गौ के दूध को सिद्ध करें और रोग-निवारण के लिए ओषधि-रसों को सिद्ध करें। सुगन्धित अन्नों का सेवन करके बलवान् बनें, दुष्ट शत्रुओं को बांधें, परम ऐश्वर्य को प्राप्त करें।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक पद लुप्त है अतः वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि मनुष्य यजमान और वैद्यों के समान पाक और दूध आदि को सिद्ध करें ॥ २१ । ५९ ॥

स्वस्त्यात्रेयः । **लिङ्गोक्ताः**=**अश्व्यादयः** [**प्राणापानादयः**] । धृतिः । ऋषभः ॥

पुनर्मनुष्यैः किं कृत्वा किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को क्या करके क्या करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

सूपस्थाऽअद्य देवो वनस्पतिरभवदश्विभ्यां छागेन सरस्वत्यै मेषेणेन्द्रायऽऋषभेणाक्षँस्तान्मेदस्तः प्रतिपचताग्रभीषतावीवृधन्त पुरोडाशैरपुरश्विना सरस्वतीन्द्रः सुत्रामा सुरासोमान् ॥६०॥

पदार्थः—(**सूपस्थाः**) ये सुष्ठूपतिष्ठन्ति ते (**अद्य**) (**देवः**) दिव्यगुणः (**वनस्पतिः**) वटादिः (**अभवत्**) भवेत् (**अश्विभ्याम्**) प्राणापानाभ्याम् (**छागेन**) दुःखछेदकेन (**सरस्वत्यै**) वाचे (**मेषेण**)

(इन्द्राय) **(ऋषभेण)** **(अक्षन्)** भुञ्जीरन् **(तान्)** **(मेदस्तः)** मेदशः=स्निग्धान् **(प्रति)** **(पचता)** पचतानि=पक्तव्यानि । अत्रौणादिकोऽतच् **(अगृभीषत)** गृह्णन्तु **(अवीवृधन्त)** वर्धन्ताम् **(पुरोडाशैः)** संस्कृतान्नविशेषैः **(अपुः)** पिबन्तु **(अश्विना)** प्राणाऽपानौ **(सरस्वती)** प्रशस्ता वाक् **(इन्द्रः)** परमैश्वर्य्यो राजा **(सुत्रामा)** सुष्ठुरक्षकः **(सुरासोमान्)** ये सुरयाऽभिषवेन सूयन्ते तान् ॥ ६० ॥

प्रमाणार्थ—(**पचता**) यहाँ औणादिक 'अतच्' प्रत्यय है ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथाऽद्य सूपस्था देवो वनस्पतिरिव येन येनाश्विभ्यां छागेन सरस्वत्यै मेषेणेन्द्राय ऋषभेणाक्षँस्तान् मेदस्तः प्रतिपचतागृभीषत पुरोडाशैरवीवृधन्ताश्विना सरस्वती सुत्रामेन्द्रः सुरासोमानपुस्तथा भवानभवद्भवेत् ॥ ६० ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यथा-ऽद्य सूपस्थाः** ये सुष्ठूपतिष्ठन्ति ते, **देवः** दिव्यगुणः **वनस्पतिः** वटादिः **इव येन येनाश्विभ्यां** प्राणापानाभ्यां **छागेन** दुःखछेदकेन, **सरस्वत्यै** वाचे **मेषेण, इन्द्राय ऋषभेणाक्षन्** भुञ्जीरन् **तान् मेदस्तः** मेदशः=स्निग्धान् **प्रतिपचता** पचतानि=पक्तव्यानि **अगृभीषत** गृह्णन्तु, **पुरोडाशैः** संस्कृतान्नविशेषैः **अवीवृधन्त** वर्द्धन्ताम्, **अश्विना** प्राणाऽपानौ, **सरस्वती** प्रशस्ता वाक्, **सुत्रामा** सुष्ठुरक्षकः **इन्द्रः** परमैश्वर्यो राजा **सुरासोमान्** ये सुरयाऽभिषवेन सूयन्ते तान् **अपुः** पिबन्तु, **तथा भवानभवद्**=**भवेत्** ॥ २१ । ६० ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (अद्य) आज (सूपस्थाः) भलीभाँति उपस्थित रहने वाले मनुष्य—(देवः) दिव्य गुणों से युक्त (वनस्पतिः) वट आदि वृक्ष के समान जिस जिस साधन से एवं (अश्विभ्याम्) प्राण और अपान के लिए (छागेन) दुःख-छेदक बकरे से, (सरस्वत्यै) वाणी के लिए (मेषेण) भेड़ से (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य के लिए (ऋषभेण) बैल से (अक्षन्) पदार्थों का उपभोग करते हैं; उन (मेदस्तः) स्निग्ध (प्रतिपचता) पकाने योग्य पदार्थों को (अगृभीषत) ग्रहण करते हैं; (पुरोडाशैः) सुगन्धित अन्न-विशेषों से (अवीवृधन्त) बढ़ते हैं; (अश्विना) प्राण और अपान, (सरस्वती) प्रशस्त-वाणी, (सुत्रामा) उत्तम रक्षक (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य वाला राजा (सुरासोमान्) ओषधि-रसों को (अपुः) पीते हैं; वैसे आप (अभवत्) बनो ॥ २१ । ६० ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । ये मनुष्याश्छागादिदुग्धादिभिः प्राणापानरक्षणाय स्निग्धान् पदार्थान् भुक्त्वा, उत्तमान् रसान् पीत्वा वर्द्धन्ते, ते सुसुखं लभन्ते ॥ २१ । ६० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है ॥ जो मनुष्य बकरी आदि के दुग्ध आदि पदार्थों से प्राण और अपान की रक्षा के लिए स्निग्ध पदार्थों को खाकर, उत्तम रसों को पीकर बढ़ते हैं; वे उत्तम सुख को प्राप्त करते हैं ॥ २१ । ६० ॥

भा० पदार्थः—अश्विभ्याम्=प्राणापानरक्षणाय । छागेन=छागदुग्धादिभिः । सुरासोमान्=उत्तमान् रसान् ।

भाष्यसार—१. मनुष्य क्या करके क्या करें—विद्वानों के समीप बैठने वाले सत्पुरुष प्राण और अपान की रक्षा के लिए दुःख-छेदक बकरी के दूध के साथ, वाणी के लिए भेड़ के दूध के साथ, ऐश्वर्य के लिए गौ के साथ पदार्थों का सेवन करें, स्निग्ध पके हुए पदार्थों को ग्रहण करें, पुरोडाश=

सुगन्धित अन्न-विशेषों से शरीर को बढ़ावें, प्राण और अपान की रक्षा एवं वाणी के लिए उत्तम रसों का पान करें। उत्तम रक्षक, परम ऐश्वर्यवान् राजा उत्तम रसों का पान करे।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि सब मनुष्य विद्वानों का संग करने वाले श्रेष्ठ पुरुषों के समान दुग्ध आदि पदार्थों से प्राण-अपान आदि की रक्षा करें॥ २१। ६०॥

स्वस्त्यात्रेयः। **लिङ्गोक्ताः**=ऋष्यादयः॥ भुरिग् विकृतिः। मध्यमः॥

पुनर्मनुष्याः कथं वर्त्तेरन्नित्याह॥

फिर मनुष्य कैसे अपना वर्त्ताव करें; इस विषय का उपदेश किया है॥

त्वाम॒द्यऽऋ॑षऽआर्षेयऽऋषीणां नपादवृणीता॒यं यज॑मानो ब॒हुभ्य॒ऽआ सङ्ग॑तेभ्य ऽए॒ष मे॑ दे॒वेषु॒ वसु॒ वार्यायं॑क्ष्यत॒ऽइ॒ति ता या दे॒वा दे॑व॒ दाना॒न्यदु॒स्तान्य॑स्मा॒ऽआ च॒ शास्स्वा च॑ गुरस्वेषि॒तश्च॒ होत॒रसि भद्रवाच्या॑य॒ प्रेषि॑तो॒ मानु॑षः सूक्तवा॒काय॑ सू॒क्ता ब्रू॑हि॥६१॥

पदार्थः—(त्वाम्) (अद्य) (ऋषे) मंत्रार्थवित् (आर्षेय) ऋषिषु साधुस्तत्संबुद्धौ। अत्र छान्दसो ढक् (ऋषीणाम्) मंत्रार्थविदाम् (नपात्) अपत्यम् (अवृणीत) वृणोतु (अयम्) (यजमानः) यज्ञकर्त्ता (बहुभ्यः) (आ) (संगतेभ्यः) (योगेभ्यः) (एषः) (मे) मम (देवेषु) विद्वत्सु (वसु) धनम् (वारि) जलम् (आ) (यक्ष्यते) (इति) (ता) तानि (या) यानि (देवाः) विद्वांसः (देव) विद्वन् (दानानि) दातव्यानि (अदुः) ददति (तानि) (अस्मै) (आ) (च) (शास्स्व) शिक्ष (आ) (च) (गुरस्व) उद्यमस्व (इषितः) इष्टः (च) (होतः) (असि) भव (भद्रवाच्याय) भद्रं वाच्यं यस्मै तस्मै (प्रेषितः) प्रेरितः (मानुषः) मनुष्यः (सूक्तवाकाय) सूक्तानि वाकेषु यस्य तस्मै (सूक्ता) सुष्ठुवक्तव्यानि (ब्रूहि)॥ ६१॥

प्रमाणार्थ—(आर्षेय) यहाँ छान्दस 'ढक्' प्रत्यय है॥

अन्वयः—हे ऋषे आर्षेय! ऋषीणां नपाद् यजमानोऽयमद्य बहुभ्यः संगतेभ्यस्त्वामावृणीतैष देवेषु मे वसु वारि चावृणीत। हे देव! य आयक्ष्यते देवा या यानि दानान्यदुस्तानि चास्मै आशास्स्व प्रेषितः सन्नागुरस्व च हे होतरिषितो मानुषो भद्रवाच्याय सूक्तवाकाय सूक्ता ब्रूहीति ता प्राप्तवांश्चासि॥ ६१॥

सपदार्थान्वयः—हे ऋषे! मन्त्रार्थवित्! **आर्षेय!** ऋषिषु साधुस्तत्सम्बुद्धौ! **ऋषीणां** मन्त्रार्थविदां **नपाद्** अपत्यं **यजमानः** यज्ञकर्त्ता **अयमद्य बहुभ्यः सङ्गतेभ्यस्त्वामा+अवृणीत** वृणोतु; **एषः देवेषु** विद्वत्सु **मे** मम **वसु** धनं **वारि** जलं **चावृणीत** वृणोतु।

भाषार्थ—हे (ऋषे) मन्त्रार्थ के वेत्ता (आर्षेय) ऋषियों में श्रेष्ठ विद्वान्! (ऋषीणाम्) मन्त्रार्थ के वेत्ता ऋषियों की (नपात्) सन्तान (यजमानः) यजमान, (अयम्) यह—(अद्य) अब (बहुभ्यः) बहुत (सङ्गतेभ्यः) संगत लोगों में से (त्वा) तुझे (आ+अवृणीत) चुने; (एषः) यह (देवेषु) विद्वानों में (मे) मेरे (वसु) धन और (वारि) जल को (अवृणीत) स्वीकार करे।

हे देव! विद्वन्! **य आयक्ष्यते; देवाः** विद्वांसः **या=यानि दानानि** दातव्यानि **अदुः** ददति; **तानि**

हे (देव) विद्वान्! जो (आयक्ष्यते) यज्ञ करता है; (देवाः) विद्वान् लोग (या) जिन (दानानि)

चास्मै आशास्स्व शिक्ष, **प्रेषितः** प्रेरितः **सन्नागुरस्व** उद्यमस्व **च** ।

देने योग्य पदार्थों को (अदुः) देते हैं; (तानि) उन्हें (अस्मै) इस यजमान को (आशास्स्व) सिखा; और (प्रेषितः) प्रेरित होकर (आगुरस्व) उद्यम=पुरुषार्थ कर ।

हे **होतः** ! **इषितः** इष्टः **मानुषः** मनुष्यः **भद्रवाच्याय** भद्रं वाच्यं यस्मै तस्मै **सूक्तवाकाय** सूक्तानि वाकेषु यस्य तस्मै **सूक्ता** सुष्ठुवक्तव्यानि **ब्रूहीति ता** तानि **प्राप्तवांश्चासि** भव ॥ २१ । ६१ ॥

हे (होतः) दाता पुरुष ! तू (इषितः) प्रिय (मानुषः) मनुष्य है; सो (भद्रवाच्याय) भद्र कहने योग्य एवं (सूक्तवाकाय) उत्तम वचन बोलने वाले मनुष्य के लिए (सूक्ता) उत्तम वचन (ब्रूहि) बोल ; और (इति) इस प्रकार (ता) उन्हें प्राप्त करने वाला (असि) हो ॥ २१ । ६१ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या बहूनां विदुषां सकाशाद् विद्वांसं वृत्वा वेदविद्या अधीत्य महर्षयो भवेयुस्तेऽन्यानध्यापयितुं शक्नुयुः । ये च दातार उद्यमिनः स्युस्ते विद्यां वृत्वा, अविदुषामुपरि दयां कृत्वा विद्याग्रहणाय, रोषेण सन्ताड्यैतान् सुसभ्यान् कुर्युः; तेऽत्र सत्कर्त्तव्याः स्युरिति ॥ २१ । ६१ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य बहुत विद्वानों में से विद्वान् को चुनकर, वेद-विद्याओं को पढ़कर महर्षि होते हैं वे अन्यों को पढ़ा सकते हैं । और जो दाता लोग पुरुषार्थी होते हैं; वे विद्या को ग्रहण कर, अविद्वानों पर दया करके, विद्या ग्रहण कराने के लिए रोषपूर्वक ताड़ना करके इन्हें सुसभ्य बनाते हैं ; वे इस लोक में सत्कार के योग्य होते हैं ॥ २१ । ६१ ॥

भाष्यसार— **मनुष्य कैसे वर्त्ताव करें**—ऋषि अर्थात् मन्त्रार्थ के ज्ञाता विद्वानों की सन्तान यजमान=यज्ञ करने वाली हो । वह बहुत विद्वानों में से श्रेष्ठ ऋषि=विद्वान् का वरण करे, उससे वेद विद्याओं का अध्ययन करके ऋषि बने और अन्यों को भी वेद-विद्या पढ़ावे । जो विद्वान् दाता हों वे उद्यमी होकर विद्या को ग्रहण करें और अविद्वानों पर दया करके उन्हें शिक्षित करें विद्या ग्रहण करने के लिए रोषपूर्वक ताड़ना भी करें जिससे वे सुसभ्य हों । ऐसे दाता विद्वानों का सब मनुष्य उत्तम वचनों से सत्कार करें ॥ २१ । ६१ ॥

[पूर्वापराध्यायार्थसंगतिमाह]

अत्र वरुणाग्निविद्वद्राजप्रजाशिल्पवाग्गृहाश्व्यृतुहोत्रादिगुणवर्णनादेतदध्यायोक्तार्थस्य पूर्वाध्योयोक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति वेद्यम् ॥ २१ ॥

इस अध्याय में वरुण (१-४), अग्नि (६, १२), विद्वान् (११, १३), राजा प्रजा (२५), शिल्प (८), वाणी (३२), घर (३४), अश्वी (२९, ३०, ३१ ३३-४०), ऋतु (२३-२८), होता (२९-४७), आदि के गुणों का वर्णन होने से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति है; ऐसा समझें ॥ २१ ॥

इति श्रीयुतपण्डितसुदर्शनदेवाचार्यकृते दयानन्द-यजुर्वेदभाष्यभास्करे
एकविंशोऽध्यायः सम्पूर्णः ॥

॥ ओ३म् ॥

* अथ द्वाविंशोऽध्याय आरभ्यते *

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ॥ १ ॥

य० । ३ । ३० ॥

प्रजापतिः । **सविता**=आप्तविद्वान् । निचृत्पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

तत्रादावाप्तो विद्वान् कथं वर्त्तेतेत्याह ॥

अब बाईसवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है, इसके प्रथम मन्त्र में आप्त=सकल शास्त्रों का जानने वाला विद्वान् कैसे अपना वर्त्ताव करें, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

तेजो॑ऽसि शु॒क्रम॒मृत॑मायु॒ष्पा ऽ आयु॑र्मे पाहि ।
दे॒वस्य॑ त्वा स॒वि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्या॒माद॑दे ॥ १ ॥

पदार्थः—(**तेजः**) प्रकाशः (**असि**) (**शुक्रम्**) वीर्यम् (**अमृतम्**) स्वस्वरूपेण नाशरहितम् (**आयुष्पाः**) यः आयुः पाति सः (**आयुः**) जीवनम् (**मे**) मम (**पाहि**) (**देवस्य**) सर्वप्रकाशकस्य (**त्वा**) त्वाम् (**सवितुः**) सकलजगदुत्पादकस्य (**प्रसवे**) प्रसूयन्ते प्राणिनो यस्मिन् संसारे तस्मिन् (**अश्विनोः**) वायुविद्युतोः (**बाहुभ्याम्**) (**पूष्णः**) पुष्टिकर्त्तुः सूर्यस्य (**हस्ताभ्याम्**) (**आ**) (**ददे**) गृह्णामि ॥ १ ॥

अन्वयः—हे विद्वन्नहं देवस्य सवितुर्जगदीश्वरस्य प्रसवेऽश्विनोर्धारणाकर्षणाभ्यामिव बाहुभ्यां पूष्णः किरणैरिव हस्ताभ्यां यन्त्वाददे यस्त्वममृतं शुक्रं तेज इवायुष्पा असि स त्वं स्वं दीर्घायुः कृत्वा मे ममाऽऽयुः पाहि ॥ १ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! अहं **देवस्य** सर्वप्रकाशकस्य **सवितुः=जगदीश्वरस्य** सकलजगदुत्पादकस्य, **प्रसवे** प्रसूयन्ते प्राणिनो यस्मिन्संसारे तस्मिन् **अश्विनोः** वायुविद्युतोः **धारणा-कर्षणाभ्यामिव बाहुभ्यां, पूष्णः** पुष्टिकर्त्तुः सूर्यस्य

भावार्थ—हे विद्वान् ! मैं—(देवस्य) सब के प्रकाशक (सवितुः) सकल जगत् के उत्पादक जगदीश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किए इस संसार में (अश्विनोः) वायु और विद्युत् के एवं धारण आकर्षण रूप (बाहुभ्याम्) भुजाओं से तथा

किरणैरिव हस्ताभ्यां यं त्वा त्वाम् **आ-ददे** गृह्णामि ।

(पूष्णः) पुष्टि-कर्त्ता सूर्य के किरण रूप (हस्ताभ्याम्) हाथों से (त्वा) तुझे (आ-ददे) ग्रहण करता हूँ ।

यस्त्वममृतं स्वस्वरूपेण नाशरहितं **शुक्रं** वीर्यं **तेजः** प्रकाशः **आयुष्पाः** यः आयुः पाति सः **असि; स त्वं स्वं दीर्घायुः कृत्वा मे**=ममाऽऽयुः जीवनं **पाहि** ॥ २२ । १ ॥

तू (अमृतम्) स्वस्वरूप से नाश रहित, (शुक्रम्) वीर्यवान्, (तेजः) प्रकाशमान, (आयुष्पाः) आयु का रक्षक (असि) है, सो तू अपनी दीर्घ आयु करके (मे) मेरी (आयुः) आयु=जीवन की (पाहि) रक्षा कर ॥ २२ । १ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ यथा शरीरस्था विद्युच्छरीरं रक्षति, यथा बाह्यौ सूर्यवायू जीवनहेतुस्तथेश्वररचितेऽस्मिन् जगति आप्तो विद्वान् भवतीति सर्वैर्वेद्यम् ॥ २२ । १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है ॥ जैसे शरीर में विद्यमान विद्युत् शरीर की रक्षा करती है, जैसे बाह्य सूर्य और वायु जीवन के हेतु हैं वैसे ईश्वर के रचे इस जगत् में आप्त विद्वान् होता है, ऐसा सब समझें ॥ २२ । १ ॥

भा० पदार्थः—तेजः=शरीरस्था विद्युत् ।

भाष्यसार—**१. आप्त विद्वान् का वर्ताव**—सब के प्रकाशक, सकल जगत् के उत्पादक जगदीश्वर ने इस संसार को रचा है । इस संसार के वायु और विद्युत् की धारण और आकर्षण रूप शक्तियाँ बाहु हैं, पुष्टिकर्त्ता सूर्य की किरणें हाथ हैं जो संसार को ग्रहण किए हुए हैं; वैसे ही मनुष्य आप्त विद्वान् को ग्रहण करें क्योंकि आप्त विद्वान् ईश्वर-रचित इस जगत् में अमृत, वीर्यवान्, विद्या से प्रकाशमान और आयु का रक्षक होता है और वह मनुष्यों की आयु की रक्षा करता है ।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त हैं अतः वाचकलुप्तोपमा अलंकार है । उपमा यह है कि जैसे शरीरस्थ विद्युत् शरीर की रक्षा करती है वैसे विद्वान् सब की रक्षा करे, सूर्य और वायु के समान मनुष्यों के जीवन का हेतु बने ॥ २२ । १ ॥

यज्ञपुरुषः । **विद्वांसः**=स्पष्टम् । निचृत्त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनर्मनुष्यैरायुः कथं वर्त्तितव्यमित्याह ॥

मनुष्यों को आयु कैसे वर्त्तनी चाहिए, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

इमामगृभ्णन् रशनामृतस्य पूर्वे ऽ आयुषि विदथेषु कव्या ।
सा नो ऽ अस्मिन्त्सुत ऽ आ बभूव ऽ ऋतस्य सामन्त्सरमारपन्ती ॥ २ ॥

पदार्थः—(**इमाम्**) (**अगृभ्णन्**) गृह्णीयुः (**रशनाम्**) व्यापिकां रज्जुमिव (**ऋतस्य**) सत्यस्य कारणस्य (**पूर्वे**) पूर्वस्मिन् (**आयुषि**) प्राणधारणे (**विदथेषु**) यज्ञादिषु (**कव्या**) कवयः । **अत्र सुपां सु० इति विभक्तेर्ड्यादेशः** (**सा**) (**नः**) अस्माकम् (**अस्मिन्**) (**सुते**) उत्पन्ने जगति (**आ**) (**बभूव**) भवति (**ऋतस्य**) सत्यस्य कारणस्य (**सामन्**) सामन्यन्ते कर्मणि (**सरम्**) प्राप्तव्यम् (**आरपन्ती**) व्यक्तशब्दं वदन्ती ॥ २ ॥

प्रमाणार्थ—(**कव्या**) कवयः । यहाँ 'सुपां सुलुक्०' (७ । १ । ३९) से जस्—विभक्ति के स्थान में ड्या-आदेश है ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! या ऋतस्य सरमारपन्त्याबभूव यामिमामृतस्य रशनां विदथेषु पूर्वं आयुषि कव्या अगृभ्णन् साऽस्मिन् सुते नः सामन्नाबभूव ॥ २ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्या ! या ऋतस्य** सत्यस्य=कारणस्य **सरं** प्राप्तव्यम् **आरपन्ती** व्यक्तशब्दं वदन्ती **आबभूव** भवति; **यामिमामृतस्य** सत्यस्य=कारणस्य **रशनां** व्यापिकां रज्जुमिव **विदथेषु** यज्ञादिषु, **पूर्वे** पूर्वस्मिन् **आयुषि** प्राणधारणे, **कव्या** कवयः **अगृभ्णन्** गृह्णीयुः; **साऽस्मिन् सुते** उत्पन्ने जगति **नः** अस्माकं **सामन्** सामन्यन्ते कर्मणि **आ-बभूव** भवति ॥ २२ । २ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो (ऋतस्य) सत्य=कारण के (सरम्) प्राप्त करने योग्य सार को (आरपन्ती) व्यक्त रूप में बतलाने वाली (आबभूव) है; इस (अमृतस्य) सत्य=कारण की (रशनाम्) व्यापक रस्सी के तुल्य आयु को (विदथेषु) यज्ञ आदि में (पूर्वे) पहली (आयुषि) आयु में (कव्य) कवि लोग (अगृभ्णन्) ग्रहण करते हैं; वह (अस्मिन्) इस (सुते) उत्पन्न जगत् में (नः) हमारे (सामन्) अन्तिम कर्म में (आ-बभूव) विद्यमान होती है ॥ २२ । २ ॥

भावार्थः—यथा रशनया बद्धाः प्राणिन इतस्ततः पलायितुं न शक्नुवन्ति, तथा युक्त्या धृतमायुरकाले न पलायते ॥ २२ । २ ॥

भावार्थ—जैसे रशना=रस्सी से बंधे हुए प्राणी इधर-उधर भाग नहीं सकते; वैसे युक्ति-पूर्वक धारण की हुई आयु असमय में नहीं भागती ॥ २२ । २ ॥

भाष्यसार—मनुष्य आयु को कैसे वर्ते—मनुष्यों की आयु रूप रस्सी सत्य=कारण (प्रकृति) के सार को प्राप्त करे और उसका सब को उपदेश करे अर्थात् मनुष्य अपने जीवन में प्रकृति के सार को स्वयं समझें तथा उसका अन्यों को भी उपदेश करें। कवि=विद्वान् लोग यज्ञ आदि शुभ कर्मों के अनुष्ठान से इस आयु को पहले ग्रहण करते रहे हैं सो यह इस जगत् में हमारे सब कर्मों में विद्यमान रहे अर्थात् इस आयु में सब यज्ञ आदि शुभ कर्मों का अनुष्ठान करें। जैसे रस्सी से बंधे प्राणी इधर-उधर नहीं भाग सकते वैसे इस आयु को भी सब मनुष्य युक्ति से धारण करें और इसे समय से पहले न भागने दें ॥ २२ । २ ॥ ●

प्रजापतिः । **अग्निः=पावकवद्विद्वान्** । भुरिगनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनर्विद्वान् कीदृशो भवतीत्याह ॥

विद्वान् कैसा हो, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

अभिधा ऽ असि भुवनमसि यन्तासि धर्त्ता । स त्वमग्निं वैश्वानरꣳ सप्रथसं गच्छ स्वाहाकृतः ॥३॥

पदार्थः—(**अभिधा**) योऽभिदधाति सः (**असि**) (**भुवनम्**) उदकम् । भुवनमित्युदकना० निघं० १ । १२ ॥ (**असि**) (**यन्ता**) नियन्ता (**असि**) (**धर्त्ता**) सकलव्यवहारधारकः (**सः**) (**त्वम्**) (**अग्निम्**) पावकम् (**वैश्वानरम्**) विश्वेषु वस्तुषु नायकम् (**सप्रथसम्**) प्रख्यातत्वेन सह वर्त्तमानम् (**गच्छ**) (**स्वाहा-कृतः**) सत्क्रियया निष्पन्नः ॥ ३ ॥

प्रमाणार्थ—(भुवनम्) उदकम् । 'भुवन' पद निघं० (१ । १२) में उदक नामों में पठित है । उदक=जल ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! यस्त्वं भुवनमिवास्यभिधा असि यन्तासि स स्वाहाकृतो धर्त्ता त्वं सप्रथसं वैश्वानरमग्निं गच्छ जानीहि ॥ ३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **विद्वन्** ! **यस्त्वं भुवनम्** उदकम् **इवासि; अभिधा** योऽभिदधाति सः **असि, यन्ता** नियन्ता **असि, स स्वाहाकृतः** सत्क्रियया निष्पन्नः, **धर्त्ता** सकलव्यवहारधारकः, **त्वं सप्रथसं** प्रख्यातत्वेन सह वर्तमानं, **वैश्वानरं** विश्वेषु वस्तुषु नायकम् **अग्निं** पावकं **गच्छ**=**जानीहि** ॥ २२ । ३॥

भाषार्थ—हे विद्वान् ! तू—(भुवनम्) जल के समान (असि) है; (अभिधाः) उपदेश करने वाला (असि) है; (यन्ता) नियन्ता (असि) है; सो (स्वाहाकृतः) शुभकर्म से युक्त, (धर्त्ता) सकल व्यवहार को धारण करने वाला तू—(सप्रथसम्) विख्यात (वैश्वानरम्) सब वस्तुओं के नायक (अग्निम्) अग्नि को (गच्छ) जान ॥ २२ । ३ ॥

भावार्थः—यथा सर्वेषां प्राण्यप्राणिनां जीवनमूलं जलमग्निश्चास्ति, तथा विद्वांसं सर्वे जानीयुः ॥ २२ । ३ ॥

भावार्थ—जैसे सब प्राणी और अप्राणियों के जीवन का मूल जल और अग्नि है; वैसे विद्वान् को सब लोग जानें ॥ २२ । ३ ॥

भा० पदार्थः—भुवनम्=जीवनमूलं जलम् । अग्निम्=जीवनमूलमग्निः ॥

भाष्यसार—**विद्वान् कैसा होता है**—जैसे जल और अग्नि सब प्राणी और अप्राणी रूप जगत् के जीवन का मूल हैं वैसे आप्त विद्वान् भी सबके जीवन का मूल होता है । वह विद्या और सुशिक्षा का उपदेश करता है । वह सत्क्रिया से निष्पन्न और सकल व्यवहारों को धारण करने वाला होता है । वह विख्यात, सब वस्तुओं के नायक अग्नि को जानता है ॥ २२ । ३ ॥ ●

प्रजापतिः । **विश्वेदेवाः**=**विद्वांसः** । जगती । निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वान् कैसा हो, इस विषय का फिर उपदेश किया है ॥

स्वगा त्वा देवेभ्यः प्रजापतये ब्रह्मन्नश्वं भन्त्स्यामि देवेभ्यः प्रजापतये तेन राध्यासम् ।
तं बधान देवेभ्यः प्रजापतये तेन राध्नुहि ॥ ४ ॥

पदार्थः—(**स्वगा**) स्वयं गच्छतीति स्वगास्तं स्वयंगामिनम् । **अत्र विभक्तेर्डादेशः** (**त्वा**) त्वाम् (**देवेभ्यः**) विद्वद्भ्यः (**प्रजापतये**) प्रजायाः पालकाय (**ब्रह्मन्**) विद्यया वृद्ध (**अश्वम्**) महान्तम् (**भन्त्स्यामि**) बद्धं करिष्यामि (**देवेभ्यः**) दिव्यगुणेभ्यः (**प्रजापतये**) प्रजापालकाय गृहस्थाय (**तेन**) (**राध्यासम्**) सम्यक् सिद्धो भवेयम् (**तम्**) (**बधान**) (**देवेभ्यः**) दिव्यगुणकर्मस्वभावेभ्यः (**प्रजापतये**) प्रजापालकाय (**तेन**) (**राध्नुहि**) सम्यक् सिद्धो भव ॥ ४ ॥

प्रमाणार्थ—(**स्वगा**) यहाँ 'सुपां सुलुक्०' (७ । १ । ३९) से सु-विभक्ति के स्थान में डा-आदेश है ॥

अन्वयः—हे ब्रह्मन्नहं त्वा स्वगा करोमि देवेभ्यः प्रजापतयेऽश्वं भन्त्स्यामि तेन देवेभ्यः प्रजापतये राध्नुहि ॥ ४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **ब्रह्मन्** ! विद्यया वृद्ध ! **अहं त्वा** त्वां **स्वगा** स्वयं गच्छतीति स्वगास्तं

भाषार्थ—हे (ब्रह्मन्) विद्या से वृद्ध विद्वान् ! मैं—(त्वा) तुझे (स्वगा) स्वयं गति करने

स्वयंगामिनं **करोमि, देवेभ्यः** विद्वद्भ्यः **प्रजापतये** प्रजायाः पालकाय **अश्वं** महान्तं **भन्त्स्यामि** बद्धं करिष्यामि, **तेन देवेभ्यः** दिव्यगुणेभ्यः **प्रजापतये** प्रजापालकाय गृहस्थाय [**राध्यासम्**] सम्यक् सिद्धो भवेयम्, [**तं**] [**बधान**] [**तेन**] [**देवेभ्यः**] दिव्यगुणकर्मस्वभावेभ्यः [**प्रजापतये**] प्रजापालकाय [**राध्नुहि**] सम्यक् सिद्धो भव ॥ २२ । ४ ॥

वाला बनाता हूँ; (देवेभ्यः) विद्वानों के लिए एवं (प्रजापतये) प्रजा के पालक राजा के लिए (अश्वम्) महान् बल को (भन्त्स्यामि) बाधूँगा=सुरक्षित करूँगा; (तेन) उससे (देवेभ्यः) दिव्य गुणों से युक्त विद्वानों के लिए एवं (प्रजापतये) प्रजा के पालक गृहस्थ के लिए (राध्यासम्) सिद्ध होऊँ=तैयार होऊँ, [तम्] उस महान् बल को तू [बधान] बांध; [तेन] उस बल से [देवेभ्यः] दिव्य गुण, कर्म, स्वभाव वाले विद्वानों के लिए एवं [प्रजापतये] प्रजा के पालक गृहस्थ के लिए [राध्नुहि] अच्छी शिक्षा के लिए तैयार हो ॥ २२ । ४ ॥

भावार्थः— सर्वैर्मनुष्यैर्विद्यासुशिक्षाब्रह्मचर्यसत्सङ्गैः शरीरात्मनोर्महद्बलं सम्पाद्य, दिव्यान् गुणान् गृहीत्वा, विद्वद्भ्यः सुखं दत्त्वा, स्वस्य परेषां च वृद्धिः कार्या ॥ २२ । ४ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य विद्या, सुशिक्षा, ब्रह्मचर्य और सत्सङ्ग से शरीर और आत्मा के महान् बल को सिद्ध करके, दिव्य गुणों को ग्रहण कर, विद्वानों को सुख देकर अपनी और दूसरों की वृद्धि करें ॥ २२ । ४ ॥

भा० पदार्थः—देवेभ्यः=विद्यासुशिक्षाब्रह्मचर्यसत्सङ्गेभ्यः । अश्वम्=शरीरात्मनोर्महद्बलम् । देवेभ्यः=दिव्यान् गुणान् ग्रहीतुम् । देवेभ्यः=विद्वद्भ्यः सुखं दातुम् ॥

भाष्यसार—**विद्वान् कैसा होता है**—विद्या से वृद्ध आप्त विद्वान् स्वयंगामी होता है । वह दिव्य गुणों से युक्त विद्वानों में एक प्रजा-पालक गृहस्थ के लिए उत्तम सिद्ध होता है । सब मनुष्य आप्त विद्वान् से विद्या, सुशिक्षा ग्रहण करें; ब्रह्मचर्य की शिक्षा लें, उसका सत्संग करके शरीर और आत्मा के महान् बल को बढ़ावें, दिव्य गुणों को ग्रहण करें, विद्वानों को सुख प्रदान करें, अपनी और दूसरों की वृद्धि करें ॥ २२ । ४ ॥ ●

प्रजापतिः । **इन्द्रादयः**=**जीवादयो विद्वांसः** । अतिधृतिः । षड्जः ॥

पुनर्मनुष्याः कान् वर्द्धयेयुरित्याह ॥

फिर मनुष्य किन को बढ़ावें, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

प्रजापतये त्वा जुष्टं प्रोक्षामीन्द्राग्निभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वायवे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि
विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि सर्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि ।
यो ऽ अर्वन्तं जिघांसति तमभ्यमीति वरुणः । परो मर्त्तः परः श्वा ॥ ५ ॥

पदार्थः—(**प्रजापतये**) प्रजापालकाय (**त्वा**) त्वाम् (**जुष्टम्**) प्रीतम् (**प्रोक्षामि**) प्रकृष्टतयाऽभिषिञ्चामि (**इन्द्राग्निभ्याम्**) जीवाग्निभ्याम् (**त्वा**) (**जुष्टम्**) (**प्रोक्षामि**) (**वायवे**) पवनाय (**त्वा**) (**जुष्टम्**) (**प्रोक्षामि**) (**विश्वेभ्यः**) अखिलेभ्यः (**त्वा**) त्वाम् (**देवेभ्यः**) विद्वद्भ्यः (**जुष्टम्**) (**प्रोक्षामि**) (**सर्वेभ्यः**) समग्रेभ्यः (**त्वा**) (**देवेभ्यः**) दिव्येभ्यः पृथिव्यादिपदार्थेभ्यः (**जुष्टम्**) (**प्रोक्षामि**) (**यः**) (**अर्वन्तम्**)

शीघ्रगामिनमश्वम् (**जिघांसति**) हन्तुमिच्छति (**तम्**) (**अभि**) (**अमीति**) प्राप्नोति (**वरुणः**) श्रेष्ठः (**परः**) उत्कृष्टः (**मर्त्तः**) मनुष्यः (**परः**) (**श्वा**) कुक्कुरः ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे विद्वन्! यः परो वरुणो मर्त्तोऽर्वन्तं जिघांसति तमभ्यमीति यः परः श्वेव वर्त्तते यस्तं निवारयति तं प्रजापतये जुष्टं त्वा प्रोक्षामीन्द्राग्निभ्यां जुष्टं त्वा प्रोक्षामि वायवे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि विश्वेभ्यो देवेभ्यो जुष्टं त्वा प्रोक्षामि सर्वेभ्यो देवेभ्यो जुष्टं त्वा प्रोक्षामि ॥ ५ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे विद्वन्! यः परः** उत्कृष्टः, **वरुणः** श्रेष्ठः, **मर्त्तः** मनुष्यः **अर्वन्तं** शीघ्रगामिनमश्वं **जिघांसति** हन्तुमिच्छति **तमभ्यमीति** प्राप्नोति; **यः परः** उत्कृष्टः **श्वा** कुक्कुरः **इव वर्त्तते, यस्तं निवारयति, तं प्रजापतये** प्रजापालकाय **जुष्टं** प्रीतं **त्वा** त्वां **प्रोक्षामि** प्रकृष्टतयाऽभिषिञ्चामि;

इन्द्राग्निभ्यां जीवाग्निभ्यां **जुष्टं** प्रीतं **त्वा** त्वां **प्रोक्षामि** प्रकृष्टतयाऽभिषिञ्चामि; **वायवे** पवनाय **त्वा** त्वां **जुष्टं** प्रीतं **प्रोक्षामि** प्रकृष्टतयाऽभिषिञ्चामि; **विश्वेभ्यः** अखिलेभ्यः **देवेभ्यः** विद्वद्भ्यः **जुष्टं** प्रीतं **त्वा** त्वां **प्रोक्षामि** प्रकृष्टतयाऽभिषिञ्चामि; **सर्वेभ्यः** समग्रेभ्यः **देवेभ्यः** दिव्येभ्यः पृथिव्यादिपदार्थेभ्यः **जुष्टं** प्रीतं **त्वा** त्वां **प्रोक्षामि** प्रकृष्टतयाऽभिषिञ्चामि ॥ २२ । ५ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान्! जो (परः) उत्कृष्ट (वरुणः) श्रेष्ठ (मर्त्तः) मनुष्य—(अर्वन्तम्) शीघ्रगामी घोड़े को (जिघांसति) मारना चाहता है, उसे (अभ्यमीति) प्राप्त करता है; जो (परः) उत्कृष्ट (श्वा) कुत्ते के समान है, जो उसका निवारण करता है, सो (प्रजापतये) प्रजा का पालक बनने के लिए (जुष्टम्) प्रीतिपूर्वक (त्वा) तुझे (प्रोक्षामि) अभिषिक्त करता हूँ;

(इन्द्राग्निभ्याम्) जीव और अग्नि के लिए (जुष्टम्) प्रीतिपूर्वक (त्वा) तुझे (प्रोक्षामि) अभिषिक्त करता हूँ; (वायवे) वायु के लिए (त्वा) तुझे (जुष्टम्) प्रीतिपूर्वक (प्रोक्षामि) अभिषिक्त करता हूँ; (विश्वेभ्यः) सब (देवेभ्यः) विद्वानों के लिए (जुष्टम्) प्रीतिपूर्वक (त्वा) तुझे (प्रोक्षामि) अभिषिक्त करता हूँ; (सर्वेभ्यः) सब (देवेभ्यः) दिव्य गुणों से युक्त पृथिवी आदि पदार्थों के लिए (जुष्टम्) प्रीतिपूर्वक (त्वा) तुझे (प्रोक्षामि) अभिषिक्त करता हूँ ॥ २२ । ५ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या उत्तमान् पशून् हिंसितुमिच्छेयुस्ते सिंहवद्धन्तव्याः; य एतान् रक्षितुं यतेरंस्ते सर्वरक्षणायाधिकर्त्तव्याः ॥ २२ । ५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य उत्तम पशुओं की हिंसा करना चाहें उनका सिंह के समान हनन करें, और जो इनकी रक्षा करना चाहें उन्हें सबकी रक्षा के लिए अधिकारी बनावें ॥ २२ । ५ ॥

भा० पदार्थः—अर्वन्तम्=उत्तमान् पशून्। जिघांसति=हिंसितुमिच्छति।

भाष्यसार—मनुष्य किन को बढ़ावें—श्रेष्ठ पुरुषों का कर्त्तव्य है कि जो मनुष्य शीघ्रगामी घोड़े आदि उत्तम पशुओं को मारना चाहते हैं उन्हें वश में करें अथवा सिंह के समान उनका हनन करें। जो इनकी रक्षा करना चाहें उन्हें रक्षा का अधिकार दें। जो कुत्ते के समान वर्त्ताव करें उन्हें दूर हटावें। श्रेष्ठ जनों को प्रजापति, जीव, अग्नि, वायु, विद्वान्, पृथिवी आदि सब पदार्थों की रक्षा के लिए अभिषिक्त करें, इन्हें बढ़ावें ॥ २२ । ५ ॥

प्रजापतिः । **अग्न्याद्यः**=अग्नि-सोम-अप्-सवितृ-वायु-विष्णु-इन्द्र-बृहस्पति-मित्र-वरुणाः । भुरिगतिजगती । निषादः ॥

पुनर्मनुष्याः कथं वर्त्तेरन्नित्याह ॥

मनुष्य कैसे अपना वर्त्ताव करें, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहापां मोदाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा वायवे स्वाहा विष्णवे स्वाहेन्द्राय स्वाहा बृहस्पतये स्वाहा मित्राय स्वाहा वरुणाय स्वाहा ॥ ६ ॥

पदार्थः—(**अग्नये**) पावकाय (**स्वाहा**) श्रेष्ठया क्रियया (**सोमाय**) ओषधिगणशोधनाय (**स्वाहा**) (**अपाम्**) जलानाम् (**मोदाय**) आनन्दाय (**स्वाहा**) सुखप्रापिका क्रिया (**सवित्रे**) सूर्याय (**स्वाहा**) (**वायवे**) (**स्वाहा**) (**विष्णवे**) व्यापकाय विद्युद्रूपाय (**स्वाहा**) (**इन्द्राय**) जीवाय (**स्वाहा**) (**बृहस्पतये**) बृहतां पालकाय (**स्वाहा**) (**मित्राय**) सख्ये (**स्वाहा**) सत्क्रिया (**वरुणाय**) श्रेष्ठाय (**स्वाहा**) उत्तम क्रिया ॥ ६ ॥

अन्वयः—यदि मनुष्या अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहाऽपां मोदाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा वायवे स्वाहा विष्णवे स्वाहेन्द्राय स्वाहा बृहस्पतये स्वाहा मित्राय स्वाहा वरुणाय स्वाहा क्रियेरंस्तर्हि किं किं सुखं न प्राप्येत ॥ ६ ॥

सपदार्थान्वयः—**यदि मनुष्या अग्नये** पावकाय **स्वाहा** श्रेष्ठाय क्रिया, **सोमाय** ओषधिगण-शोधनाय **स्वाहा**, **अपां** जलानां **मोदाय** आनन्दाय **स्वाहा** सुखप्रापिका क्रिया, **सवित्रे** सूर्याय **स्वाहा**, **वायवे स्वाहा**, **विष्णवे** व्यापकाय विद्युद्रूपाय **स्वाहा इन्द्राय** जीवाय **स्वाहा**, **बृहस्पतये** बृहतां पालकाय **स्वाहा**, **मित्राय** सख्ये **स्वाहा** सत्क्रिया, **वरुणाय** श्रेष्ठाय **स्वाहा** उत्तमक्रिया **क्रियेरंस्तर्हि किं किं सुखं न प्राप्येत** ॥ २२ । ६ ॥

भाषार्थ—यदि मनुष्य—(अग्नये) अग्नि के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (सोमाय) ओषधि-गण के शोधन के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (अपाम्) जलों के (मोदाय) आनन्द के लिए (स्वाहा) सुख-प्रापक क्रिया, (सवित्रे) सूर्य के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (वायवे) वायु के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (विष्णवे) व्यापक विद्युत् रूप अग्नि के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (इन्द्राय) जीव के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (बृहस्पतये) बड़ों के पालक बृहस्पति के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (मित्राय) मित्र के लिए (स्वाहा) सत्कार, (वरुणाय) श्रेष्ठ पुरुष के लिए (स्वाहा) उत्तम क्रिया करें तो क्या-क्या सुख प्राप्त न हो ? ॥ ६ ॥

भावार्थः—हे मनुष्याः ! यदग्नौ संस्कृतं घृतादिकं हविर्हूयते तत्—

ओषधिं जलं सूर्यतेजो, वायुविद्युतौ च संशोध्य,

ऐश्वर्यवर्द्धनं प्राणापानप्रजारक्षणश्रेष्ठसत्कार-निमित्तं जायते ।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो अग्नि में सुगन्धित घृत आदि हवि का होम किया जाता है, वह—

ओषधि, जल, सूर्य का तेज, वायु और विद्युत् का शोधन करके ।

ऐश्वर्य की वृद्धि, प्राण अपान एवं प्रजा की रक्षा और श्रेष्ठों के सत्कार का निमित्त होता है ।

किञ्चिदपि द्रव्यं स्वरूपतो नष्टं न भवति, किन्तु अवस्थान्तरं प्राप्य सर्वत्रैव परिणतं जायते। अत एव—

सुगन्धमिष्टपुष्टिरोगनाशकगुणैर्युक्तानि द्रव्याण्यग्नौ प्रक्षिप्यौषध्यादिशुद्धिद्वारा जगदारोग्यं सम्पादनीयम् ॥ २२ । ६ ॥

कोई भी द्रव्य स्वरूप से नष्ट नहीं होता किन्तु अवस्थान्तर को प्राप्त करके सर्वत्र ही परिणत हो जाता है। इसलिए ही—

सुगन्ध, मिष्ट, पुष्टिकारक और रोगनाशक गुणों से युक्त द्रव्यों को अग्नि में होम करके ओषधि आदि की शुद्धि से जगत् को नीरोग बनावें ॥ २२ । ६ ॥

भा० पदार्थः—सवित्रे=सूर्यतेजःशोधनाय। वायवे=वायुशोधनाय। विष्णवे=विद्युत्शोधनाय। इन्द्राय=ऐश्वर्यवर्द्धनाय। बृहस्पतये=प्राणापानप्रजारक्षणाय। वरुणाय=श्रेष्ठसत्काराय। स्वाहा=संस्कृतं घृतादिकं हविर्हूयते।

भाष्यसार—मनुष्य कैसे वर्त्तें—यदि मनुष्य अग्नि, ओषधि-गण की शुद्धि, जलों का आनन्द, सूर्य, वायु, विद्युत्, जीव, बड़ों के पालक बृहस्पति (विद्वान्), मित्र और श्रेष्ठ जनों की उत्तमत्ता के लिए स्वाहा=श्रेष्ठ क्रिया (यज्ञ) करें तो सब सुखों को प्राप्त कर सकते हैं क्योंकि जो अग्नि में सुगन्धित घृत आदि का होम किया जाता है वह ओषधि, जल, सूर्य वायु और विद्युत् का शोधन करता है, प्राण, अपान और प्रजा की रक्षा करता है, श्रेष्ठ-जनों के सत्कार का निमित्त होता है।

कोई भी द्रव्य स्वरूप से नष्ट नहीं होता किन्तु अवस्था में परिवर्तन होता है। अतः सब मनुष्य सुगन्ध, मिष्ट, पुष्टिकारक और रोगनाशक इन चार प्रकार के द्रव्यों का होम करके ओषधि आदि की शुद्धि से जगत् को नीरोग करें ॥ २२ । ६ ॥

प्रजापतिः। **प्राणाद्यः**=स्पष्टम्। अत्यष्टिः। गान्धारः॥

पुनर्मनुष्यैर्जगत् कथं शोधनीयमित्याह ॥

मनुष्यों को जगत् कैसे शुद्ध करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया जाता है॥

हिङ्काराय स्वाहा हिङ्कृताय स्वाहा क्रन्दते स्वाहाऽवक्रन्दाय स्वाहा प्रोथते स्वाहा प्रप्रोथाय स्वाहा गन्धाय स्वाहा घ्राताय स्वाहा निविष्टाय स्वाहोपविष्टाय स्वाहा सन्दिताय स्वाहा वल्गते स्वाहासीनाय स्वाहा शयानाय स्वाहा स्वपते स्वाहा जाग्रते स्वाहा कूजते स्वाहा प्रबुद्धाय स्वाहा विजृम्भमाणाय स्वाहा विचृताय स्वाहा सꣳहानाय स्वाहोपस्थिताय स्वाहाऽयनाय स्वाहा प्रायणाय स्वाहा ॥ ७ ॥

पदार्थः—**(हिंकाराय)** यो हिं करोति तस्मै **(स्वाहा)** **(हिंकृताय)** हिं कृतं येन तस्मै **(स्वाहा)** **(क्रन्दते)** आह्वानं रोदनं वा कुर्वते **(स्वाहा)** **(अवक्रन्दाय)** नीचैः कृताह्वानाय **(स्वाहा)** **(प्रोथते)** पर्याप्ताय **(स्वाहा)** **(प्रप्रोथाय)** अत्यन्तं पर्याप्ताय **(स्वाहा)** **(गन्धाय)** **(स्वाहा)** **(घ्राताय)** योऽघ्रायि तस्मै **(स्वाहा)** **(निविष्टाय)** यो निविशते तस्मै **(स्वाहा)** **(उपविष्टाय)** य उपविशति तस्मै **(स्वाहा)** **(संदिताय)** यः सम्यग् दीयते=खण्डयते तस्मै **(स्वाहा)** **(वलगते)** गच्छते **(स्वाहा)** **(आसीनाय)** स्थिताय **(स्वाहा)** **(शयानाय)** शेते तस्मै **(स्वाहा)** **(स्वपते)** प्राप्तसुषुप्तये **(स्वाहा)** **(जाग्रते)** **(स्वाहा)** **(कूजते)** अप्रकटशब्दोच्चारकाय **(स्वाहा)** **(प्रबुद्धाय)** प्रकृष्टज्ञानवते **(स्वाहा)** **(विजृम्भमाणाय)** विशेषेणांगविनामकाय **(स्वाहा)** **(विचृताय)** ग्रन्थकाय **(स्वाहा)** **(संहानाय)** संहन्यते यस्मिंस्तस्मै

(**स्वाहा**) (**उपस्थिताय**) प्राप्तसमीपत्वाय (**स्वाहा**) (**अयनाय**) समन्ताद् विज्ञानाय (**स्वाहा**) (**प्रायणाय**) (**स्वाहा**) ॥ ७ ॥

अन्वयः—यैर्मनुष्यैर्हिंकाराय स्वाहा हिंकृताय स्वाहा क्रन्दते स्वाहाऽवक्रन्दाय स्वाहा प्रोथते स्वाहा प्रप्रोथाय स्वाहा गन्धाय स्वाहा घ्राताय स्वाहा निविष्टाय स्वाहोपविष्टाय स्वाहा संदिताय स्वाहा वल्गते स्वाहाऽऽसीनाय स्वाहा शयानाय स्वाहा स्वपते स्वाहा जाग्रते स्वाहा कूजते स्वाहा प्रबुद्धाय स्वाहा विजृम्भमाणाय स्वाहा विचृताय स्वाहा संहानाय स्वाहोपस्थिताय स्वाहाऽयनाय स्वाहा प्रायणाय स्वाहा क्रियन्ते तैर्दुःखानि वियोज्य सुखानि लभ्यन्ते ॥ ७ ॥

सपदार्थान्वयः-- **यैर्मनुष्यैर्हिंकाराय** यो हिं करोति तस्मै **स्वाहा**, **हिंकृताय** हिं कृतं येन तस्मै **स्वाहा**, **क्रन्दते** आह्वानं रोदनं वा कुर्वते **स्वाहा**, **अवक्रन्दाय** नीचैः कृताह्वानाय **स्वाहा**, **प्रोथते** पर्याप्ताय **स्वाहा**, **प्रप्रोथाय** अत्यन्तं पर्याप्ताय **स्वाहा**, **गन्धाय स्वाहा**, **घ्राताय** योऽघ्रायि तस्मै **स्वाहा**, **निविष्टाय** यो निविशते तस्मै **स्वाहा**, **उपविष्टाय** य उपविशति तस्मै **स्वाहा**, **सन्दिताय** यः सम्यग् दीयते=खण्डयते तस्मै **स्वाहा**, **वल्गते** गच्छते **स्वाहा**, **आसीनाय** स्थिताय **स्वाहा**, **शयानाय** शेते तस्मै **स्वाहा**, **स्वपते** प्राप्तसुषुप्तये **स्वाहा**, **जाग्रते स्वाहा**, **कूजते** अप्रकटशब्दोच्चारकाय **स्वाहा**, **प्रबुद्धाय** प्रकृष्टज्ञानवते **स्वाहा**, **विजृम्भमाणाय** विशेषेणाङ्गविनामकाय **स्वाहा**, **विचृताय** ग्रन्थकाय **स्वाहा**, **संहानाय** संहन्यते यस्मिंस्तस्मै **स्वाहा**, **उपस्थिताय** प्राप्तसमीपत्वाय **स्वाहा**, **अयनाय** समन्ताद् विज्ञानाय **स्वाहा**, **प्रायणाय स्वाहा**; **क्रियन्ते तैर्दुःखानि वियोज्य सुखानि लभ्यन्ते** ॥ २२ । ७ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य—(हिंकाराय) 'हिं' शब्द करने वाले के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (हिंकृताय) 'हिं' शब्द किये हुए के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (क्रन्दते) बुलाने वा रोने वाले के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (अवक्रन्दाय) नीचे स्वर से आह्वान करने वाले के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (प्रोथते) पर्याप्त के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (प्रप्रोथाय) अत्यन्त पर्याप्त के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (गन्धाय) गन्ध के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (घ्राताय) सूँघे हुए के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (निविष्टाय) प्रवेश करने वाले के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (उपविष्टाय) बैठने वाले के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (सन्दिताय) खण्डित होने वाले के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (वल्गते) जाने वाले के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (आसीनाय) बैठने वाले के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (शयनाय) सोने वाले के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (स्वपते) सुषुप्ति का प्राप्त के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (जाग्रते) जागने वाले के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (कूजते) अप्रकट शब्द उच्चारण करने वाले के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (प्रबुद्धाय) प्रकृष्ट ज्ञान वाले के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (विजृम्भमाणाय) जंभाई लेने वाले के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (विचृताय) ग्रन्थि लगाने वाले [गांठने वाले] के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (संहानाय) संघात के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (उपस्थिताय) उपस्थित के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (अयनाय) सब ओर से विज्ञान के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (प्रायणाय) प्रकृष्ट विज्ञान

के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया करते हैं, वे दुःखों से वियुक्त होकर सुखों को प्राप्त करते हैं ॥ २२।७॥

भावार्थः—मनुष्यैरग्निहोत्रादियज्ञे यावद्-धूयते तावत् सर्वं प्राणिनां सुखकारकं भवति ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्य अग्निहोत्र आदि यज्ञ में जो होम करते हैं वह सब प्राणियों के लिए सुख-कारक होता है ॥ २२ । ७ ॥

भाष्यसार—मनुष्य जगत् को कैसे शुद्ध करें—'हिं' शब्द करने वाले प्राणी, आह्वान वा रोने वाले, नीचे शब्द से आह्वान करने वाले, पर्याप्त पदार्थों की प्राप्ति, सुगन्ध, प्रविष्ट, उपविष्ट, खण्डित, गति करने वाले, स्थित, शयन करने वाले, सुप्त, जागरित, कूजन=चहचहाने वाले प्राणी, उत्तम ज्ञान वाले विद्वान्, अंगड़ाई लेने वाले, ग्रन्थि लगाने वाले, संघात, उपस्थित, विज्ञान की प्राप्ति—इन सब के लिए अग्निहोत्र आदि यज्ञ में जो होम किया जाता है वह सुखकारक होता है। अतः मनुष्य होम के द्वारा जगत् को शुद्ध करें ॥ २२ । ७ ॥

प्रजापतिः । **प्रयत्नवन्तो जीवादयः**=स्पष्टम् । निचृदतिधृतिः । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को जगत् कैसे शुद्ध करना चाहिए, इसका फिर उपदेश किया है ॥

यते स्वाहा धावते स्वाहोद्द्रावाय स्वाहोद्द्रुताय स्वाहा शूकाराय स्वाहा शूकृताय स्वाहा निषण्णाय स्वाहोत्थिताय स्वाहा जवाय स्वाहा बलाय स्वाहा विवर्त्तमानाय स्वाहा विवृत्ताय स्वाहा विधून्वानाय स्वाहा विधूताय स्वाहा शुश्रूषमाणाय स्वाहा शृण्वते स्वाहेक्षमाणाय स्वाहेक्षिताय स्वाहा वीक्षिताय स्वाहा निमेषाय स्वाहा यदत्ति तस्मै स्वाहा यत् पिबति तस्मै स्वाहा यन्मूत्रं करोति तस्मै स्वाहा कुर्वते स्वाहा कृताय स्वाहा ॥ ८ ॥

पदार्थः—(**यते**) प्रयतमानाय (**स्वाहा**) सत्क्रिया (**धावते**) (**स्वाहा**) (**उद्द्रावाय**) ऊर्ध्वं गताय द्रवीभूताय (**स्वाहा**) (**उद्द्रुताय**) उत्कर्षं गताय (**स्वाहा**) (**शूकाराय**) क्षिप्रकारिणे (**स्वाहा**) (**शूकृताय**) क्षिप्रंकृताय (**स्वाहा**) (**निषण्णाय**) निश्चयेन स्थिताय (**स्वाहा**) (**उत्थिताय**) कृतोत्थानाय (**स्वाहा**) (**जवाय**) वेगाय (**स्वाहा**) (**बलाय**) (**स्वाहा**) (**विवर्त्तमानाय**) विशेषेण वर्त्तमानाय (**स्वाहा**) (**विवृत्ताय**) विविधतया कृतवर्त्तमानाय (**स्वाहा**) (**विधून्वानाय**) यो विविधं धुनोति तस्मै (**स्वाहा**) (**विधूताय**) येन विविधं धूतं=कंपितं तस्मै (**स्वाहा**) (**शुश्रूषमाणाय**) श्रोतुमिच्छते (**स्वाहा**) (**शृण्वते**) यः शृणोति तस्मै (**स्वाहा**) (**ईक्षमाणाय**) दर्शकाय (**स्वाहा**) (**ईक्षिताय**) अन्येन दृष्टाय (**स्वाहा**) (**वीक्षिताय**) विशेषेण कृतदर्शनाय (**स्वाहा**) (**निमेषाय**) (**स्वाहा**) (**यत्**) (**अत्ति**) भक्षयति (**तस्मै**) (**स्वाहा**) (**यत्**) (**पिबति**) (**तस्मै**) (**स्वाहा**) (**यत्**) (**मूत्रम्**) (**करोति**) (**तस्मै**) (**स्वाहा**) (**कुर्वते**) (**स्वाहा**) (**कृताय**) (**स्वाहा**) ॥ ८ ॥

अन्वयः—ये मनुष्या यते स्वाहा धावते स्वाहोद्द्रावाय स्वाहोद्द्रुताय स्वाहा शूकाराय स्वाहा शूकृताय स्वाहा निषण्णाय स्वाहोत्थिताय स्वाहा जवाय स्वाहा बलाय स्वाहा विवर्त्तमानाय स्वाहा विवृत्ताय स्वाहा विधून्वानाय स्वाहा विधूताय स्वाहा शुश्रूषमाणाय स्वाहा शृण्वते स्वाहेक्षमाणाय स्वाहेक्षिताय स्वाहा वीक्षिताय स्वाहा निमेषाय स्वाहा यदत्ति तस्मै स्वाहा यत् पिबति तस्मै स्वाहा यन्मूत्रं करोति तस्मै स्वाहा कुर्वते स्वाहा कृताय स्वाहा कुर्वन्ति ते सर्वाणि सुखानि लभन्ते ॥ ८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्या ! यते** प्रयतमानाय **स्वाहा** सत्क्रिया, **धावते स्वाहा, उद्द्रावाय** ऊर्ध्वंगताय द्रवीभूताय **स्वाहा, उद्द्रुताय** उत्कर्षं गताय **स्वाहा, शूकाराय** क्षिप्रकारिणे **स्वाहा, शूकृताय** क्षिप्रं कृताय **स्वाहा, निषण्णाय** निश्चयेन स्थिताय **स्वाहा, उत्थिताय** कृतोत्थानाय **स्वाहा, जवाय** वेगाय **स्वाहा, बलाय स्वाहा, विवर्त्तमानाय** विशेषेण वर्त्तमानाय **स्वाहा, विवृत्ताय** विविधतया कृतवर्त्तमानाय **स्वाहा, विधून्वानाय** यो विविधं धुनोति तस्मै **स्वाहा, विधूताय** येन विविधं धूतं=कम्पितं तस्मै **स्वाहा, शुश्रूषमाणाय** श्रोतुमिच्छते **स्वाहा, शृण्वते** यः शृणोति तस्मै **स्वाहा, ईक्षमाणाय** दर्शकाय **स्वाहा, ईक्षिताय** अन्येन दृष्टाय **स्वाहा, वीक्षिताय** विशेषेण कृतदर्शनाय **स्वाहा, निमेषाय स्वाहा, यदत्ति** भक्षयति **तस्मै स्वाहा, यत् पिबति तस्मै स्वाहा, यन्मूत्रं करोति तस्मै स्वाहा कुर्वते स्वाहा, कृताय स्वाहा कुर्वन्ति ते सर्वाणि सुखानि लभन्ते** ॥ २२ । ८ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो—(यते) प्रयत्न करने वाले के लिए (स्वाहा) सत्कार, (धावते) दौड़ने वाले के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (उद्द्रावाय) ऊपर को गये हुए द्रव पदार्थ के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (उद्द्रुताय) उत्कर्ष को प्राप्त हुए के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (शूकाराय) शीघ्रकारी के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (निषण्णाय) निश्चय से स्थित के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (उत्थिताय) उत्थान को प्राप्त के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (जवाय) वेग के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (बलाय) बल के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया (विवर्त्तमानाय) विशेषता से वर्त्तमान के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया (विवृत्ताय) विविधता से वर्त्तमान के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (विधून्वानाय) विविध कम्पन वाले के लिए(स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (विधूताय) विविध कम्प को प्राप्त के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया (शुश्रूषमाणाय) सुनने के इच्छुक=जिज्ञासु के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (शृण्वते) सुनने वाले के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (ईक्षमाणाय) दर्शक के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (ईक्षिताय) अन्य द्वारा दृष्ट के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया (वीक्षिताय) विशेषता से दर्शन को प्राप्त के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (निमेषाय) निमेष=आँखों को बन्द करने के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (यत्) जिसे (अत्ति) खाता है (तस्मै) उसके लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (यत्) जिसे (पिबति) पीता है (तस्मै) उसके लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (यत्) जिसे (मूत्रं, करोति) मूतता है (तस्मै) उसके लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (कुर्वते) कार्य करने वाले के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया, (कृताय) किये हुए कार्य के लिए (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया करते हैं; सब सुखों को प्राप्त करते हैं ॥ २२ । ८ ॥

भावार्थः—ये प्रयत्नधावनादीनां साधकानि सुगन्ध्यादिहोमप्रभृतीनि च कर्माणि कुर्वन्ति ते सर्वाणीष्टानि वस्तूनि प्राप्नुवन्ति ॥ २२ । ८ ॥

भावार्थ—जो प्रयत्न, दौड़ आदि के साधक और सुगन्धि आदि का होम आदि कर्म करते हैं वे सब इष्ट वस्तुओं को प्राप्त करते हैं ॥ २२ । ८ ॥

भाष्यसार—**मनुष्य जगत् को कैसे शुद्ध करें**—प्रयत्नशील, दौड़ने वाला, ऊपर गया हुआ

द्रव पदार्थ, उत्कर्ष को प्राप्त, शीघ्रकारी, निश्चय से स्थित, उत्थित, वेग, बल, विशेषता और विविधता से वर्तमान, कम्पमान, कम्पित, सुनने के इच्छुक, श्रोता, दर्शक, दृष्ट, कृतदर्शन, निमेष, भक्ष्य, पेय, मूत्र, कर्त्ता, कृत—इन सबकी शुद्धि के लिए सुगन्धि आदि कारक चार प्रकार के पदार्थों का होम करके सब इष्ट वस्तुओं को प्राप्त करें। यज्ञ से जगत् को शुद्ध करें ॥ २२ । ८ ॥

विश्वामित्रः । **सविता**=ईश्वरः । निचृद्गायत्री । षड्जः ॥

अथेश्वरविषयमाह ॥

अब ईश्वर के विषय में उपदेश किया जाता है ॥

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ ९ ॥

पदार्थः—(**तत्**) (**सवितुः**) सकलजगदुत्पादकस्य (**वरेण्यम्**) वरेण्यं=वर्त्तुमर्हमत्युत्तमम् (**भर्गः**) सर्वदोषप्रदाहकं तेजोमयं शुद्धम् (**देवस्य**) स्वप्रकाशस्वरूपस्य, सर्वैः कमनीयस्य, सर्वसुखप्रदस्य (**धीमहि**) दधीमहि (**धियः**) प्रज्ञाः (**यः**) परमात्मा (**नः**) अस्माकम् (**प्रचोदयात्**) ॥ ९ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! सवितुर्देवस्य यद्वरेण्यं भर्गो वयं धीमहि तदेव यूयं धरत यो नः सर्वेषां धियः प्रचोदयात् सोऽन्तर्यामी सर्वैरुपासनीयः ॥ ९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः! **सवितुः** सकलजगदुत्पादकस्य **देवस्य** स्वप्रकाशस्वरूपस्य, सर्वैः कमनीयस्य, सर्वसुखप्रदस्य **यद् वरेण्यं** वरेण्यं=वर्त्तुमर्हमत्युत्तमं **भर्गः** सर्वदोषप्रदाहकं तेजोमयं शुद्धं **वयं धीमहि** दधीमहि **तदेव यूयं धरत**।

यः परमात्मा **नः** अस्माकं **सर्वेषां धियः** प्रज्ञाः **प्रचोदयात् सोऽन्तर्यामी सर्वैरुपासनीयः** ॥ २२ । ९ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! (सवितुः) सकल जगत् के उत्पादक, (देवस्य) स्वप्रकाश स्वरूप, सब को कामना करने योग्य, सब सुखों के दाता परमात्मा का जो (वरेण्यम्) वरण करने योग्य अत्युत्तम (भर्गः) सब दोषों को दहन करने वाला तेजोमय शुद्ध स्वरूप है उसको हम (धीमहि) धारण करते हैं; उसे ही तुम धारण करो।

(यः) जो परमात्मा (नः) हम सबकी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) धर्माचरण में प्रेरित करता है वह अन्तर्यामी सबका उपास्य है ॥२२।९॥

भावार्थः—सर्वैर्मनुष्यैः सच्चिदानन्दस्वरूपं नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावं सर्वान्तर्यामिणं परमात्मानं विहायैतस्य स्थानेऽन्यस्य कस्यचित् पदार्थस्योपासना स्थापनं कदाचिन्नैव कार्यम्। कस्मै प्रयोजनाय ?

योऽस्माभिरुपासितः सन्नस्माकं बुद्धीरधर्माचरणान्निवर्त्य धर्माचरणे प्रेरयेत्, येन शुद्धाः सन्तो वयं तं परमात्मानं प्राप्यैहिकपारमार्थिके सुखे भुञ्जीमहीत्यस्मै ॥ २२ । ९ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य—सच्चिदानन्दस्वरूप, नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव, सर्वान्तर्यामी परमात्मा को छोड़कर इसके स्थान में अन्य किसी पदार्थ की उपासना एवं स्थापना कभी न करें। किस प्रयोजन के लिए ?

जिससे वह हमसे उपासना किया हुआ हमारी बुद्धियों को अधर्माचरण से निवृत्त करके धर्माचरण में प्रेरित करे, जिससे शुद्ध हुए हम लोग उस परमात्मा को प्राप्त करके ऐहिक और पारमार्थिक सुख को भोगें; इस प्रयोजन के लिए ॥ २२ । ९ ॥

भा० पदार्थः—धियः=बुद्धीः । प्रचोदयात्=अधर्माचरणान्निवर्त्य धर्माचरणे प्रेरयेत् । धीमहि=परमात्मानं विहायैतस्य स्थानेऽन्यस्य कस्यचित् पदार्थस्योपासनास्थापनं कदाचिन्नैव कार्यम्/ भर्गः=नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावम् ।

अन्यत्र व्याख्यात—(क) (सवितुः) "यः सुनोत्युत्पादयति सर्वं जगत् स सविता तस्य" जो सब जगत् का उत्पादक और ऐश्वर्य का दाता है (देवस्य) "यो दीव्यति दीव्यते वा स देवः" जो सर्व सुखों का देनेहारा और जिसकी प्राप्ति की कामना सब करते हैं उस परमात्मा का जो (वरेण्यम्) "वर्त्तुमर्हम्" स्वीकार करने योग्य अति श्रेष्ठ (भर्गः) "शुद्धस्वरूपम्" शुद्ध स्वरूप और पवित्र करने वाला चेतन ब्रह्म-स्वरूप है (तत्) उसी परमात्मा के स्वरूप को हम लोग (धीमहि) "धरेमहि" धारण करें। किस प्रयोजन के लिए कि (यः) "जगदीश्वरः" जो सविता देव परमात्मा (नः) "अस्माकम्" हमारी (धियः) "बुद्धीः" बुद्धियों को (प्रचोदयात्) "प्रेरयेत्" प्रेरणा करे अर्थात् बुरे कामों से छुड़ाकर अच्छे कामों में प्रवृत्त करे।

"हे परमेश्वर! हे सच्चिदानन्दस्वरूप! हे नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव! हे अज निरञ्जन निर्विकार! हे सर्वान्तर्यामिन्! हे सर्वाधार जगत्पते! सकलजगदुत्पादक! हे अनादे विश्वम्भर सर्वव्यापिन्! हे करुणामृतवारिधे! सवितुर्देवस्य तव यदों भूर्भुवः स्वर्वरेण्यं भर्गोऽस्ति तद्वयं धीमहि दधीमहि धरेमहि ध्यायेम वा कस्मै प्रयोजनायेत्यत्राह—हे भगवन्! यः सविता देवः परमेश्वरो भवन्नस्माकं धियः प्रचोदयात् स एवास्माकं पूज्य उपासनीय इष्टदेवो भवतु नातोऽन्यं भवत्तुल्यं भवतोऽधिकं च कञ्चित् कदाचिन्मन्यामहे" हे मनुष्यो! जो सब समर्थों में समर्थ सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप, नित्य शुद्ध, नित्य बुद्ध, नित्य मुक्त स्वभाव वाला, कृपासागर, ठीक-ठीक न्याय का करने हारा, जन्ममरणादि क्लेशरहित, आकाररहित, सबके घट-घट का जानने वाला, सब का धर्त्ता, पिता, उत्पादक, अन्नादि से विश्व का पोषण करने हारा, सकल ऐश्वर्य-युक्त जगत् का निर्माता, शुद्ध स्वरूप और जो प्राप्ति की कामना करने योग्य है उस परमात्मा का जो शुद्ध चेतनस्वरूप है उसी को हम धारण करें। इस प्रयोजन के लिए कि वह परमेश्वर हमारे आत्मा और बुद्धियों का अन्तर्यामीस्वरूप हमको दुष्टाचार अधर्म्मयुक्त मार्ग से हटा के श्रेष्ठाचार सत्य मार्ग में चलावे, उसको छोड़कर दूसरे किसी वस्तु का ध्यान हम लोग नहीं करें। क्योंकि न कोई उसके तुल्य और न अधिक है वही हमारा पिता राजा न्यायाधीश और सब सुखों का देनेहारा है।

(सत्यार्थप्रकाश तृतीय समु०)

(ख) (सवितुः) सब जगत् की उत्पत्ति करने वाले, सूर्यादि प्रकाशकों के भी प्रकाशक, समग्र ऐश्वर्य के दाता, (देवस्य) कामना करने योग्य, सर्वत्र विजय करानेहारे परमात्मा का जो (वरेण्यम्) अति-श्रेष्ठ ग्रहण और ध्यान करने योग्य (भर्गः) सब क्लेशों को भस्म करने हारा, पवित्र शुद्ध स्वरूप है (तत्) उसको हम लोग (धीमहि) धारण करें; (यः) यह जो परमात्मा (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को उत्तम गुण, कर्म, स्वभावों में (प्रचोदयात्) प्रेरणा करे। **(संस्कारविधि वेदारम्भ०)**

(ग) पंचमहायज्ञविधि में भी इस मन्त्र की विस्तृत व्याख्या की है, सो वहाँ से देख लेना ॥ २२ । ६ ॥

भाष्यसार—**ईश्वर-उपासना**—सकल जगत् के उत्पादक, स्वप्रकाश स्वरूप, सब से कामना करने योग्य, सब सुखों के दाता, वरण करने योग्य अत्युत्तम, सब दोषों को दग्ध करने वाले तेजोमय शुद्ध स्वरूप, सच्चिदानन्द स्वरूप, नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वभाव, सर्वान्तर्यामी परमात्मा को छोड़कर इसके स्थान में अन्य किसी पदार्थ की उपासना एवं स्थापना कभी न करें अपितु ईश्वर के ही गुणों का धारण करें, उसी का ध्यान करें? ईश्वर की उपासना क्यों करें? ईश्वर की उपासना इसलिए करें कि वह उपासना करने से हमारी बुद्धियों को अधर्माचरण से हटाकर धर्माचरण में प्रवृत्त करता है, जिससे शुद्ध होकर हम उस परमात्मा को प्राप्त करके इस लोक और परलोक के सुखों को भोगते हैं ॥ २२ । ९ ॥ ●

मेधातिथिः । **सविता**=ईश्वरः । गायत्री । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

ईश्वर विषय का फिर उपदेश किया है ॥

हिर॑ण्यपाणिमू॒तये॑ सवि॒तार॒मुप॑ ह्वये । स चेत्ता॑ दे॒वता॑ प॒दम् ॥ १० ॥

पदार्थः—(**हिरण्यपाणिम्**) हिरण्यानि=सूर्य्यादीनि तेजांसि पाणौ=स्तवने यस्य तम् (**ऊतये**) रक्षणाद्याय (**सवितारम्**) सकलैश्वर्यप्रापकम् (**उप**) (**ह्वये**) ध्यानयोगेनाह्वये (**सः**) (**चेत्ता**) सम्यग्ज्ञानस्वरूपत्वेन सत्याऽसत्यज्ञापकः (**देवता**) उपासनीय इष्टदेव एव (**पदम्**) प्राप्तुमर्हम् ॥ १० ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यमहमूतये हिरण्यपाणिं पदं सवितारमुपह्वये स चेत्ता देवतास्तीति यूयं विजानीत ॥ १० ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यमहमूतये** रक्षणाद्याय **हिरण्यपाणिं** हिरण्यानि=सूर्य्यादीनि तेजांसि पाणौ=स्तवने यस्य तं, **पदं** प्राप्तुमर्हं, **सवितारं** सकलैश्वर्य्यप्रापकम् **उपह्वये** ध्यानयोगेनाह्वये, **स चेत्ता** सम्यग्ज्ञानस्वरूपत्वेन सत्याऽसत्यज्ञापकः **देवता** उपासनीय इष्टदेव एव **अस्तीति यूयं विजानीत** ॥ २२ । १० ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! मैं—(ऊतये) रक्षा आदि के लिए (हिरण्यपाणिम्) हिरण्य=सूर्य आदि तेजोमय पदार्थ जिसकी पाणि=स्तुति में हैं जो (पदम्) प्राप्त करने योग्य (सवितारम्) सकल ऐश्वर्य के प्रापक परमात्मा को (उपह्वये) ध्यान-योग से बुलाता हूँ । (सः) वह (चेत्ता) सम्यक् ज्ञानस्वरूप होने से सत्य और असत्य का ज्ञापक (देवता) उपासनीय इष्ट देव है; ऐसा तुम जानो ॥ २२ । १० ॥

भावार्थः — मनुष्यैरितः पूर्वमन्त्रार्थस्य विवरणं वेदितव्यम् ।

चेतनस्य रूपस्य परमात्मन उपासनां विहाय कस्याप्यन्यस्य जडस्योपासना कदापि नैव कार्या, नहि जडमुपासितं सद्धानिलाभकारकं रक्षकं च भवति, तस्माच्चेतनैः सर्वैर्जीवैश्चेतनो जगदीश्वर एवोपासनीयो; नेतरो जडत्वादिगुणयुक्तः पदार्थः ॥ २२ । १० ॥

भावार्थ—मनुष्य यहाँ से पूर्व मन्त्र के अर्थ का विवरण समझें ।

चेतनस्वरूप परमात्मा की उपासना को छोड़ कर किसी भी अन्य जड़ पदार्थ की उपासना कभी न करें, उपासना किया हुआ जड़ पदार्थ हानि-लाभ-कारक और रक्षक नहीं होता, अतः सब चेतन जीवों को चेतन जगदीश्वर की ही उपासना करनी चाहिए; अन्य जड़ता आदि गुण से युक्त पदार्थ की नहीं ॥ २२ । १० ॥

भा० पदार्थः—चेत्ता=चेतनस्वरूपः परमात्मा ॥

भाष्यसार—**ईश्वर-उपासना**—सब मनुष्य सूर्य आदि तेजस्वी पदार्थ जिसकी पाणि=स्तुति कर रहे हैं, जो प्राप्त करने योग्य, सकल ऐश्वर्य का प्रापक, ज्ञान स्वरूप होने से सत्य और असत्य का ज्ञापक, उपासना के योग्य इष्ट देव (देवता) है । अपनी रक्षा आदि के लिए उस परमात्मा की सब मनुष्य ध्यान-योग से उपासना करें । चेतन-स्वरूप परमात्मा की उपासना को छोड़कर किसी अन्य जड़ पदार्थ की उपासना कभी न करें; क्योंकि जड़ की उपासना से कोई लाभ नहीं, वह रक्षा नहीं कर सकता, अतः सब चेतन जीव चेतन जगदीश्वर की ही उपासना करें; जड़ की नहीं ॥ २२ । १० ॥

प्रजापतिः । **सविता**=ईश्वरः । गायत्री । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

ईश्वर विषय का फिर उपदेश किया है ॥

दे॒वस्य॒ चेत॑तो म॒हीं प्र स॑वि॒तुर्ह॑वामहे । सु॒म॒तिᳬं स॒त्यरा॑धसम् ॥ ११ ॥

पदार्थः—(**देवस्य**) स्तोतुमर्हस्य (**चेततः**) चेतनस्वरूपस्य (**महीम्**) महतीम् (**प्र**) (**सवितुः**) सर्वसंसारोत्पादकस्य (**हवामहे**) आदद्याम (**सुमतिम्**) शोभनां प्रज्ञाम् (**सत्यराधसम्**) सत्यं राध्नोति यया ताम् ॥ ११ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा वयं सवितश्चेततो देवस्येश्वरस्योपासनां कृत्वा महीं सत्यराधसं सुमतिं प्रहवामहे तथैतमुपास्यैतां यूयं प्राप्नुत ॥ ११ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **यथा वयं सवितुः** सर्वसंसारोत्पादकस्य, **चेततः** चेतन-स्वरूपस्य, **देवस्य**=**ईश्वरस्य** स्तोतुमर्हस्य, **उपासनां कृत्वा महीं** महतीं **सत्यराधसं** सत्यं राध्नोति यया तां **सुमतिं** शोभनां प्रज्ञां, **प्रहवामहे** आदद्याम; **तथैतमुपास्यैतां यूयं प्राप्नुत** ॥ २२ । ११ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम—(सवितुः) सब संसार के उत्पादक, (चेततः) चेतन स्वरूप, (देवस्य) स्तुति के योग्य ईश्वर की उपासना करके (महीम्) महान् (सत्यराधसम्) सत्य को सिद्ध करने वाली (सुमतिम्) उत्तम बुद्धि को (प्रहवामहे) ग्रहण करते हैं; वैसे इसकी उपासना करके इसे तुम प्राप्त करो ॥ २२ । ११ ॥

भावार्थः—हे मनुष्याः ! येन चेतनस्वरूपेण जगदीश्वरेणाखिलं जगदुत्पादितं तस्यैवाराधनेन सत्यविद्यायुक्तां प्रज्ञां यूयं प्राप्तुं शक्नुथ; नेतरस्य जडस्याराधनेन ॥ २२ । ११ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस चेतन स्वरूप जगदीश्वर ने सब जगत् को उत्पन्न किया है, उसके आराधन से सत्य-विद्या से युक्त बुद्धि को तुम प्राप्त कर सकते हो; अन्य जड़ के आराधन से नहीं ॥ २२ । ११ ॥

भा० पदार्थः—सत्यराधसम्=सत्यविद्यायुक्ताम् । प्रहवामहे=प्राप्तुं शक्नुमः ॥

भाष्यसार—**ईश्वर-उपासना**—सब मनुष्य सकल संसार के उत्पादक, चेतनस्वरूप, स्तुति के योग्य जगदीश्वर की उपासना करके सत्य को सिद्ध करने वाली अर्थात् सत्य-विद्या से युक्त, महान्, सुमति=उत्तम बुद्धि को प्राप्त करें । ईश्वर से भिन्न जड़ पदार्थ की आराधना न करें ॥ २२ । ११ ॥ ●

प्रजापतिः । **सविता**=ईश्वरः । गायत्री । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

ईश्वर विषय का फिर उपदेश किया है ॥

सु॒ष्टु॒तिᳬं सु॒म॒ती॒वृधो॑ रा॒तिᳬं स॑वि॒तुरी॑महे । प्र दे॒वाय॑ मती॒विदे॑ ॥ १२ ॥

पदार्थः—(**सुष्टुतिम्**) शोभनां स्तुतिम् (**सुमतीवृधः**) यः सुमतिं वर्द्धयति तस्य । संहितायां दीर्घः (**रातिम्**) दानम् (**सवितुः**) सर्वोत्पादकस्य (**ईमहे**) याचामहे (**प्र**) (**देवाय**) विद्यां कामयमानाय (**मतीविदे**) यो मतिं=ज्ञानं विन्दति तस्मै । अत्र संहितायामिति दीर्घः ॥ १२ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा वयं सुमतीवृधः सवितुरीश्वरस्य सुष्टुतिं कृत्वैतस्मान्मतीविदे देवाय रातिं प्रेमहे तथैतामस्माद्यूयमपि याचध्वम् ॥ १२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! **यथा वयं सुमतीवृधः** यः सुमतिं वर्द्धयति तस्य **सवितुः**=**ईश्वरस्य** सर्वोत्पादकस्य, **सुष्टुतिं** शोभनां स्तुतिं **कृत्वैतस्मात् मतीविदे** यो मतिं=ज्ञानं विन्दति तस्मै **देवाय** विद्यां कामयमानाय, **रातिं** दानं **प्रेमहे** याचामहे, **तथैतामस्माद्यूयमपि याचध्वम्** ॥ २२ । १२ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम—(समुतीवृधः) सुमति को बढ़ाने वाले, (सवितुः) सब के उत्पादक ईश्वर की (सुष्टुतिम्) उत्तम स्तुति करके इससे (मतीविदे) मति=ज्ञान को प्राप्त करने वाले एवं (देवाय) विद्या की कामना वाले के लिए (रातिम्) दान (प्रेमहे) मांगते हैं; वैसे इस दान को परमात्मा से तुम भी मांगो ॥ २२ । १२ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ यदा यदा परमेश्वरस्य प्रार्थना कार्या तदा तदा स्वार्था परार्था वा सर्वशास्त्रविज्ञानयुक्ता प्रज्ञैव याचनीया; यस्यां प्राप्तायां जीवाः सर्वाणि सुखसाधनानि प्राप्नुवन्ति ॥ २२ । १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है ॥ जब-जब परमेश्वर से प्रार्थना करें तब तब अपने वा दूसरों के लिए सब शास्त्रों के विज्ञान से युक्त बुद्धि की ही याचना करें; जिसके प्राप्त होने पर जीव सब सुख-साधनों को प्राप्त करते हैं ॥ २२ । १२ ॥

भा० पदार्थः—रातिम्=सर्वशास्त्रविज्ञानयुक्तां प्रज्ञाम् ॥

भाष्यसार—**१. ईश्वर-प्रार्थना**—सब मनुष्य सुमति को बढ़ाने वाले, सब के उत्पादक जगदीश्वर की उत्तम स्तुति करके इससे ज्ञान को प्राप्त करने वाले एवं विद्या की कामना करने वाले के लिए बुद्धि-दान की याचना करें। अभिप्राय यह है कि जब-जब परमेश्वर से प्रार्थना करें तब-तब अपने तथा अन्यों के लिए सब शास्त्रों के विज्ञान से युक्त प्रज्ञा=बुद्धि की ही याचना करें, जिसके प्राप्त होने पर मनुष्य सब सुख-साधनों को प्राप्त कर सकते हैं ॥

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि विद्वानों के समान सब मनुष्य परमेश्वर से बुद्धि की प्रार्थना=याचना करें ॥ २२ । १२ ॥ ●

प्रजापतिः । **सविता**=**ईश्वरः** । निचृद्गायत्री । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

ईश्वर विषय का फिर उपदेश किया है ॥

रातिꣳ सत्पतिं महे सवितारमुप ह्वये । आसवं देववीतये ॥ १३ ॥

पदार्थः—(**रातिम्**) दातारम् (**सत्पतिम्**) सतां=जीवानां पदार्थानां वा पालकम् (**महे**) महत्यै (**सवितारम्**) सकलजगदुत्पादकम् (**उप**) (**ह्वये**) उपस्तुयाम् (**आसवम्**) समन्तादैश्वर्ययुक्तम् (**देववीतये**) दिव्यानां गुणानां विदुषां वा प्राप्तये ॥ १३ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथाऽहं महे देववीतये रातिमासवं सत्पतिं सवितारमुपह्वये तथा यूयमप्येनं प्रशंसत ॥ १३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः ! यथा**ऽहं **महे** महत्यै **देववीतये** दिव्यानां गुणानां विदुषां वा प्राप्तये, **रातिं** दातारम्, **आसवं** समन्तादैश्वर्य-युक्तं, **सत्पतिं** सतां=जीवानां पदार्थानां वा पालकं, **सवितारं** सकलजगदुत्पादकम् **उपह्वये** उपस्तुयां; **तथा यूयमप्येनं प्रशंसत** ॥ २२ । १३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जैसे मैं–(महे) महान् (देववीतये) दिव्य गुणों वा विद्वानों की प्राप्ति के लिए (रातिम्) दाता, (आसवम्) सब ओर से ऐश्वर्य-युक्त, (सत्पतिम्) सत्=जीवों वा पदार्थों के पालक (सवितारम्) सकल जगत् के उत्पादक ईश्वर की (उपह्वये) स्तुति करता हूँ; वैसे तुम भी इसकी प्रशंसा करो ॥ २२ । १३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यदि मनुष्या धर्मार्थकामसिद्धिं कामयेरँस्तर्हि परमात्मानमेवोपास्य तदाऽऽज्ञायां वर्त्तेरन् ॥२२।१३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है ॥ यदि मनुष्य धर्म, अर्थ, काम की सिद्धि चाहें तो परमात्मा की ही उपासना करके उसकी आज्ञा में रहें ॥ २२ । १३ ॥

भा० पदार्थः—देववीतये=धर्मार्थकामसिद्धये । उपह्वये=परमात्मानमुपास्य तदाऽऽज्ञायां वर्त्तेय ॥

भाष्यसार—१. **ईश्वर-उपासना**—धर्म, अर्थ और काम की महान् प्राप्ति एवं दिव्य गुणों वा विद्वानों की प्राप्ति के लिए दाता, सब ओर से ऐश्वर्य-सम्पन्न, जीवों वा पदार्थों के पालक, सकल जगत् के उत्पादक परमात्मा की ही स्तुति करें, उसी की उपासना करें, उसी की आज्ञा में रहें ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है, अतः वाचकलुप्तोपमा अलंकार है । उपमा यह है कि विद्वान् के समान सब ईश्वर की स्तुति और उपासना करें; ईश्वर की आज्ञा में रहें ॥ २२ । १३ ॥

प्रजापतिः । **सविता**=ईश्वरः । पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

ईश्वर विषय का फिर उपदेश किया है ॥

दे॒वस्य॑ सवि॒तुर्म॒तिमा॑स॒वं वि॒श्वदे॑व्यम् । धि॒या भगं॑ मनामहे ॥ १४ ॥

पदार्थः—(**देवस्य**) सकलसुखप्रदातुः (**सवितुः**) सकलैश्वर्य्यप्रदातुः (**मतिम्**) प्रज्ञाम् (**आसवम्**) सकलैश्वर्य्यहेतुम् (**विश्वदेव्यम्**) विश्वेभ्यो देवेभ्यो हितम् (**धिया**) प्रज्ञया (**भगम्**) उत्तमैश्वर्य्यम् (**मनामहे**) याचामहे ॥ १४ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा वयं सवितुर्देवस्य परमात्मनः सकाशान्मतिमासवं च प्राप्य तया धिया सर्वं विश्वदेव्यं भगं मनामहे तथा यूयमपि कुरुत ॥ १४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः ! यथा वयं सवितुः** सकलैश्वर्यप्रदातुः **देवस्य**=**परमात्मनः** सकलसुखप्रदातुः **सकाशान्मतिं** प्रज्ञाम्, **आसवम्** सकलैश्वर्यहेतुं **च प्राप्य तया धिया** प्रज्ञया **सर्वं विश्वदेव्यं** विश्वेभ्यो देवेभ्यो हितं **भगम्** उत्तमैश्वर्यं **मनामहे** याचामहे **तथा यूयमपि कुरुत** ॥ २२ । १४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम–(सवितुः) सकल ऐश्वर्य के दाता, (देवस्य) सकल सुखदायक परमात्मा से (मतिम्) बुद्धि और (आसवम्) सकल ऐश्वर्य के हेतु को प्राप्त करके, उस (धिया) बुद्धि से (विश्वदेव्यम्) सब देवों=विद्वानों के लिए हितकारी (भगम्) उत्तम ऐश्वर्य को (मनामहे) मांगते हैं; वैसे तुम भी करो ॥ २२ । १४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ सर्वैर्मनुष्यैः परमेश्वरोपासनया प्रज्ञां प्राप्य, एतया पूर्णमैश्वर्यं विधाय, सर्वप्राणिहितं संसाधनीयम् ॥ २२ । १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ सब मनुष्य परमेश्वर की उपासना से बुद्धि को प्राप्त करके, इससे पूर्ण ऐश्वर्य को सिद्ध करके, सब प्राणियों के हित को सिद्ध करें ॥ १४ ॥

भा० पदार्थः—विश्वदेव्यम्=सर्वप्राणिहितम् । भगम्=पूर्णमैश्वर्यम् ॥

भाष्यसार—१. **ईश्वर-उपासना**—विद्वान्—सकल ऐश्वर्य को प्रदान करने वाले, सकल सुखदायक परमेश्वर की उपासना से बुद्धि को प्राप्त करें; बुद्धि से पूर्ण ऐश्वर्य को सिद्ध करें और उससे सब प्राणियों का हित करें ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है । अतः वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि सब मनुष्य विद्वानों के समान परमेश्वर की उपासना से बुद्धि और पूर्ण ऐश्वर्य को प्राप्त करके सबका हित करें ॥ २२ । १४ ॥

सुतम्भरः । **अग्निः**=भौतिकः । निचृद्गायत्री । षड्जः ॥

अथ यज्ञकर्मविषयमाह ॥

अब यज्ञकर्मविषय का उपदेश किया जाता है ॥

अ॒ग्निꣳ स्तोमे॑न बोधय समिधा॒नो ऽ अम॑र्त्यम् । ह॒व्या दे॒वेषु॑ नो दधत् ॥ १५ ॥

पदार्थः—(**अग्निम्**) पावकम् (**स्तोमेन**) इन्धनसमूहेन (**बोधय**) (**समिधानः**) प्रदीप्यमानः (**अमर्त्यम्**) कारणरूपेण मरणधर्मरहितम् (**हव्या**) आदातुं दातुमर्हाणि (**देवेषु**) दिव्येषु वाय्वादिषु (**नः**) अस्मभ्यम् (**दधत्**) दधाति ॥ १५ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! यः समिधानोऽग्निं देवेषु हव्या नो दधत् तममर्त्यमग्निं स्तोमेन बोधय प्रदीपय ॥ १५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! यः **समिधानः** प्रदीप्यमानः **अग्निं** पावकं **देवेषु** दिव्येषु वाय्वादिषु **हव्या** आदातुं दातुमर्हाणि **नः** अस्मभ्यं **दधत्** दधाति, **तममर्त्यं** कारणरूपेण मरणधर्मरहितम् **अग्निं** पावकं **स्तोमेन** इन्धनसमूहेन **बोधय=प्रदीपय** ॥ २२ । १५ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् ! जो (समिधानः) प्रदीप्त किया हुआ (अग्निम्) अग्नि—(देवेषु) दिव्य गुणों से युक्त वायु आदि में (हव्या) लेने-देने योग्य पदार्थों को (नः) हमारे लिए (दधत्) धारण करता है; उस (अमर्त्यम्) कारण रूप से मरण-धर्म रहित (अग्निम्) अग्नि को (स्तोमेन) इन्धन-समूह से (बोधय) प्रदीप्त कर ॥ २२ । १५ ॥

भावार्थः—यद्यग्नौ समिधः प्रक्षिप्य सुगन्ध्यादिद्रव्यं जुहुयुस्तर्ह्ययं तद् वाय्वादिषु विस्तार्य, सर्वान् प्राणिनः सुखयति ॥ २२ । १५ ॥

भावार्थ—यदि अग्नि में समिधाओं को डालकर सुगन्धि आदि द्रव्य का होम करें तो यह अग्नि उसे वायु आदि में फैला कर सब प्राणियों को सुख देती है ॥ २२ । १५ ॥

भा० पदार्थः—दधत्=सर्वान् प्राणिनः सुखयति ।

भाष्यसार—**यज्ञ कर्म**—विद्वान् कारण रूप से नित्य अग्नि में समिधाएँ डालकर उसे प्रदीप्त करें । प्रदीप्त अग्नि में सुगन्धि आदि चार प्रकार के द्रव्यों का होम करें । अग्नि में

हव्य=होम किये हुए पदार्थ, दिव्य गुणों से युक्त वायु आदि में विस्तृत होकर सब प्राणियों का धारण-पोषण करते हैं, सब को सुख प्रदान करते हैं ॥ २२ । १५ ॥

प्रजापतिः । **अग्निः**=**भौतिकः** । निचृद् गायत्री । षड्जः ॥

पुनरग्निः कीदृशोऽस्तीत्याह ॥

अग्नि कैसा है, इस विषय का उपदेश किया है ॥

स ह॒व्य॒वाडम॑र्त्य ऽ उ॒शिग्दू॒तश्चनो॑हितः । अ॒ग्निर्धि॒या समृ॑ण्वति ॥ १६ ॥

पदार्थः—(**सः**) (**हव्यवाट्**) यो हव्यं वहति=देशान्तरं प्रापयति सः (**अमर्त्यः**) मृत्युधर्मरहितः (**उशिक्**) कान्तिमान् (**दूतः**) दूत इव वर्त्तमानः (**चनोहितः**) यश्चनांसि=अन्नानि हिनोति=प्रापयति **सः** (**अग्निः**) पावकः (**धिया**) कर्मणा (**सम्**) (**ऋण्वति**) प्राप्नोति ॥ १६ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! योऽमर्त्यो हव्यवाडुशिग्दूतश्चनोहितोऽग्निरस्ति स धिया समृण्वति ॥ १६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **योऽमर्त्यः** मृत्युधर्मरहितः, **हव्यवाड्** यो हव्यं वहति=देशान्तरं प्रापयति सः, **उशिक्** कान्तिमान्, **दूतः** दूत इव वर्त्तमानः, **चनोहितः** यश्चनांसि=अन्नानि हिनोति=प्रापयति सः, **अग्निः** पावकः **अस्ति; स धिया** कर्मणा **समृण्वति** प्राप्नोति ॥ २२ । १६ ॥

भावार्थः—यथा कार्यार्थं प्रेषितो दूतः कार्यसाधको भवति, तथा सम्प्रयोजितोऽग्निः सुख-कार्यसिद्धिकरो भवति ॥ २२ । १६ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो (अमर्त्यः) मृत्यु धर्म से रहित, (हव्यवाट्) हव्य=होम-द्रव्य को देशान्तर में पहुँचाने वाला, (उशिक्) कान्तिमान्, (दूतः) दूत के समान वर्त्ताव करने वाला, (चनोहितः) चन=अन्नों को प्राप्त कराने वाला (अग्निः) अग्नि है; वह (धिया) कर्म से (समृण्वति) प्राप्त होता है ॥ २२ । १६ ॥

भावार्थ—जैसे कार्य के लिए भेजा हुआ दूत कार्य-साधक होता है, वैसे ठीक प्रयोग की हुई अग्नि सुख के कार्यों को सिद्ध करने वाली होती है ॥ २२ । १६ ॥

भा० पदार्थः—समृण्वति=सुखकार्यसिद्धिं करोति ॥

भाष्यसार—**भौतिक अग्नि**—यह भौतिक अग्नि कारण रूप में मृत्यु धर्म से रहित अर्थात् नित्य है; हव्य अर्थात् जो पदार्थ इस में होम किए जाते हैं उन्हें देशान्तर में पहुँचाने वाला है; यह कान्तिमान् है; जैसे कार्य के लिए भेजा हुआ दूत कार्य-साधक होता है वैसे यह कार्यों में प्रयुक्त किया हुआ सुखद कार्यों को सिद्ध करने वाला है; अन्नों को प्राप्त कराने वाला है, यह कर्म=पुरुषार्थ से प्राप्त होता है ॥ २२ । १६ ॥

विश्वरूपः । **अग्निः**=**भौतिकः** । निचृद्गायत्री । षड्जः ॥

अथाग्निगुणा उच्यन्ते ॥

अब अग्नि के गुणों का उपदेश किया जाता है ॥

अ॒ग्निं दू॒तं पु॒रो द॑धे हव्य॒वाह॒मुप॑ ब्रुवे । दे॒वाँ२ ऽ आ सा॑दयादि॒ह ॥ १७ ॥

पदार्थः—(**अग्निम्**) वह्निम् (**दूतम्**) दूतवत्कार्यसाधकम् (**पुरः**) अग्रतः (**दधे**) धरामि (**हव्यवाहम्**) यो हव्यानि=अत्तुमर्हाणि वहति=प्रापयति तम् (**उप**) (**ब्रुवे**) उपदिशामि (**देवान्**) दिव्यान् भोगान् (**आ**) समन्तात् (**सादयात्**) सादयेत्=प्रापयेत् (**इह**) अस्मिन् संसारे ॥ १७ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! य इह देवानासदयात्तं हव्यवाहं दूतमग्निं पुरोदधे युष्मान् प्रत्युपब्रुवे यूयमप्येवं कुरुतेति ॥ १७ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! य इह** अस्मिन् संसारे **देवान्** दिव्यान् भोगान् **आ-सादयात्** समन्तात्सादयेत्=प्रापयेत्, **तं हव्यवाहं** यो हव्यानि=अत्तुमर्हाणि वहति=प्रापयति तं, **दूतं** दूतवत् कार्यसाधकम्, **अग्निं** वह्निं **पुरः** अग्रतः **दधे** धरामि; **युष्मान् प्रत्युपब्रुवे** उपदिशामि; **यूयमप्येवं कुरुतेति** ॥ २२ । १७ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो—(इह) इस संसार में (देवान्) दिव्य भोगों को (आ-सादयात्) सब ओर से प्राप्त कराता है, उस (हव्यवाहम्) हव्य=भक्ष्य पदार्थों को प्राप्त कराने वाले (दूतम्) दूत के समान कार्य-साधक (अग्निम्) अग्नि को (पुरः) प्रथम (दधे) धारण करता हूँ; तुम्हारे लिए उसका (उपब्रुवे) उपदेश करता हूँ, तुम भी ऐसा करो ॥ २२ । १७ ॥

भावार्थः—हे मनुष्याः ! यथाऽग्निर्दिव्यसुखप्रदोऽस्ति तथा वाय्वादयोऽपि वर्तन्त इति वेद्यम् ॥ २२ । १७ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे अग्नि दिव्य सुखदायक है वैसे वायु आदि भी हैं; ऐसा समझो ॥ २२ । १७ ॥

भाष्यसार—**अग्नि के गुण**—इस संसार में अग्नि दिव्य भोगों को प्राप्त कराने वाली है, भोज्य पदार्थों को प्राप्त कराती है, दूत के समान कार्य-साधक है । विद्वान् उसे प्रथम धारण करें, उसका सब मनुष्यों को उपदेश करें । अग्नि के समान वायु आदि भी सुखदायक हैं ॥ २२ । १७ ॥

अरुणत्रसदस्यू । **पवमानः=अग्निवत् पवित्रकारकजनः** । पिपीलिकामध्या विराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनः सूर्यरूपोऽग्निः कीदृश इत्याह ॥

सूर्य रूप अग्नि कैसा है, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः । गोजीरया रंहमाणः पुरन्ध्या ॥१८॥

पदार्थः—(**अजीजनः**) जनयति (**हि**) खलु (**पवमान**) पवित्रकारक (**सूर्यम्**) सवितृमण्डलम् (**विधारे**) धारयामि (**शक्मना**) कर्मणा । **शक्मेति कर्मनाम ॥ निघं० २ । १ ॥** (**पयः**) उदकम् (**गोजीरया**) गवां जीरया=जीवनक्रियया (**रंहमाणः**) गच्छन् (**पुरन्ध्या**) यया पुरं दधाति तया ॥ १८ ॥

प्रमाणार्थ—(**शक्मना**) कर्मणा । यह पद निघं० (२ । १) में कर्म-नामों में पठित है ॥

अन्वयः—हे पवमानाग्निवत्पवित्र जन ! योऽग्निः पुरन्ध्या रंहमाणः सूर्यमजीजनस्तं शक्मना गोजीरया पयश्चाऽहं विधारे हि ॥ १८ ॥

सपदार्थान्वयः — **हे पवमान**=**अग्निवत्पवित्रजन** ! पवित्रकारक ! **योऽग्निः पुरन्ध्या** यया पुरं दधाति तया **रंहमाणः** गच्छन् **सूर्यं** सवितृमण्डलम् **अजीजनः** जनयति, **तं शक्मना**

भाषार्थ—हे (पवमान) पवित्र करने वाले एवं अग्नि के समान पवित्र मनुष्य ! जो अग्नि (पुरन्ध्या) पुर को धारण करने वाली विद्युत् से (रंहमाणः) जाता हुआ (सूर्यम्) सूर्य मण्डल को

कर्मणा **गोजीरया** गवां जीरया=जीवनक्रियया **पयः** उदकं **चाऽहं विधारे** धारयामि **हि** खलु ॥ २२ । १८॥

(अजीजनः) उत्पन्न करता है; उस अग्नि को और (शक्मना) कर्म एवं (गोजीरया) गौ आदि पशुओं के जीवन के निमित्त (पयः) जल को मैं (विधारे) धारण करता हूँ (हि) निश्चय से ॥ २२ । १८ ॥

भावार्थः—यदि विद्युत् सूर्यस्य कारणं न स्यात्तर्हि सूर्योत्पत्तिः कथं स्यात् ? यदि सूर्यो न स्यात्तर्हि भूगोलधृतिर्वृष्ट्या गवादिपशुजीवनं च कथं स्यात् ? ॥ २२ । १८ ॥

भावार्थ—यदि विद्युत् सूर्य का कारण न हो तो सूर्य की उत्पत्ति कैसे हो ? यदि सूर्य न हो तो भूगोल का धारण और वर्षा से गौ आदि पशुओं का जीवन कैसे हो ? ॥ २२ । १८ ॥

भा० पदार्थः—पुरन्ध्या=पयः=वृष्टिः । गोजीरया=गवादिपशुजीवनेन ॥

भाष्यसार—**सूर्यरूप अग्नि**—पुर (जगत्) को धारण करने वाली विद्युत् रूप से गति करता हुआ अग्नि सूर्य-मण्डल को उत्पन्न करता है । सूर्य का कारण विद्युत् है । विद्युत् से ही सूर्य रूप अग्नि की उत्पत्ति होती है । सूर्य से भूगोल का धारण होता है । सूर्य से ही वर्षा होती है जिससे गौ आदि पशु जीवित रहते हैं ॥ २२ । १८ ॥ ●

प्रजापतिः । **अग्निः=भौतिकः** । भुरिग्विकृतिः । मध्यमः ।

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

सूर्य रूप अग्नि कैसा है, इसका फिर उपदेश किया है ॥

विभूर्मात्रा प्रभूः पित्राश्वोऽसि हयोऽस्यत्योऽसि मयोऽस्यर्वासि सप्तिरसि वाज्यसि वृषासि नृमणा ऽ असि । ययुर्नामासि शिशुर्नामास्यादित्यानां पत्वान्विहि देवा ऽ आशापाला ऽ एतं देवेभ्योऽश्वं मेधाय प्रोक्षितꣳ रक्षतेह रन्तिरिह रमतामिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा ॥१९॥

पदार्थः—(**विभूः**) व्यापकः (**मात्रा**) जननीवद् वर्त्तमानया पृथिव्या (**प्रभूः**) समर्थः (**पित्रा**) वायुना (**अश्वः**) योऽश्नुते=व्याप्नोति मार्गान्सः (**असि**) अस्ति । अत्र सर्वत्र व्यत्ययः (**हयः**) हय इव शीघ्रगामी (**असि**) (**अत्यः**) योऽतति=सततं गच्छति सः (**असि**) (**मयः**) सुखकारी (**अर्वा**) यः सर्वानृच्छति सः (**असि**) (**सप्तिः**) मूर्त्तद्रव्यसम्बन्धी (**असि**) (**वाजी**) वेगवान् (**असि**) (**वृषा**) वृष्टिकर्त्ता (**असि**) (**नृमणाः**) यो नृषु=नेतृषु पदार्थेषु मन इव सद्योगामी (**असि**) (**ययुः**) यो याति सः (**नाम**) अभ्यसनीयः (**असि**) (**शिशुः**) यः श्यति=तनूकरोति सः (**नाम**) वाग् । नामेति वाङ्नाम० ॥ निघं० १ । ११ ॥ (**असि**) (**आदित्यानाम्**) मासानाम् (**पत्वा**) योऽधः पतति सः (**अनु**) (**इहि**) एति (**देवाः**) विद्वांसः (**आशापालाः**) य आशा=दिशः पालयन्ति (**एतम्**) वह्निम् (**देवेभ्यः**) दिव्यभोगेभ्यः (**अश्वम्**) व्याप्तिशीलम् (**मेधाय**) संगमाय बुद्धिप्रापणाय दुष्टहिंसनाय वा (**प्रोक्षितम्**) जलेन सिक्तम् (**रक्षत**) (**इह**) (**रन्तिः**) रमणम् (**इह**) (**रमताम्**) क्रीडतु (**इह**) (**धृतिः**) धैर्य्यम् (**इह**) (**स्वधृतिः**) स्वेषां धारणम् (**स्वाहा**) सत्यया क्रियया ॥ १९ ॥

प्रमाणार्थ—(असि) अस्ति । यहाँ सर्वत्र व्यत्यय है । (नाम) वाग् । यह पद निघं० (१।११) में वाक्-नामों में पठित है ।

अन्वयः—हे आशापाला देवाः ! यूयं यो मात्रा विभूः पित्रा प्रभूरश्वोऽसि हयोऽस्यत्योऽसि मयोऽस्यर्वाऽसि सप्तिरसि वाज्यसि वृषाऽसि नृमणा असि ययुर्नामाऽसि शिशुर्नामास्यादित्यानां पत्वाऽन्विहि एतमश्वं स्वाहा देवेभ्यो मेधाय प्रोक्षितं रक्षत येनेह रन्तिरिह रमतामिह धृतिरिह स्वधृतिः स्यात् ॥ १९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **आशापालाः** य आशा=दिशः पालयन्ति **देवाः** ! विद्वांसः ! **यूयं**—**यो मात्रा** जननीवद् वर्त्तमानया पृथिव्या **विभूः** व्यापकः **पित्रा** वायुना **प्रभूः** समर्थः **अश्वः** योऽश्नुते=व्याप्नोति मार्गान्सः **असि** अस्ति **हयः** हय इव शीघ्रगामी **असि** अस्ति, **अत्यः** योऽतति=सततं गच्छति सः **असि** अस्ति, **मयः** सुखकारी **असि** अस्ति, **अर्वा** यः सर्वानृच्छति सः **असि** अस्ति, **सप्तिः** मूर्त्तद्रव्यसम्बन्धी **असि** अस्ति, **वाजी** वेगवान् **असि** अस्ति, **वृषा** वृष्टिकर्त्ता **असि** अस्ति, **नृमणाः** यो नृषु=नेतृषु पदार्थेषु मन इव सद्योगामी **असि** अस्ति, **ययुः** यो याति स **नाम** अभ्यसनीयः **असि** अस्ति, **शिशुः** यः श्यति=तनूकरोति सः **नाम** वाग् **असि** अस्ति, **आदित्यानां** मासानां **पत्वा** योऽधः पतति सः **अन्विहि** एति, **एतं** वह्निम् **अश्वं** व्याप्तिशीलं **स्वाहा** सत्यया क्रियया **देवेभ्यः** दिव्यभोगेभ्यः **मेधाय** सङ्गमाय बुद्धिप्रापणाय दुष्टहिंसनाय वा **प्रोक्षितं** जलेन सिक्तं **रक्षत**; **येनेह रन्तिः** रमणम् **इह रमतां** क्रीडतु, **इह धृतिः** धैर्य्यम् **इह स्वधृतिः** स्वेषां धारणं **स्यात्** ॥ २२ । १९ ॥

भाषार्थ—हे (आशापालाः) दिशाओं के पालक (देवाः) विद्वानो ! तुम—जो (मात्रा) जननी=माता के तुल्य पृथिवी के समान (विभूः) व्यापक, (पित्रा) वायु के समान (प्रभूः) समर्थ (अश्वः) मार्गों को व्याप्त करने वाला अग्नि (असि) है, (हयः) घोड़े के समान शीघ्रगामी (असि है, (अत्यः) सतत गमनशील (असि) है, (मयः) सुखकारी (असि) है, (अर्वा) सब को प्राप्त करने वाला (असि) है, (सप्तिः) मूर्त्त द्रव्यों से सम्बद्ध (असि) है, (वाजी) वेगवान् (असि) है, (वृषा) वृष्टिकर्त्ता (असि) है, (नृमणाः) पदार्थों में मन के समान तत्कालगामी (असि) है, (ययुः) गति करने वाला एवं (नाम) अभ्यास के योग्य (असि) है, (शिशुः) सूक्ष्म करने वाला एवं (नाम) वाणी (असि) है, (आदित्यानाम्) मासों को (पत्वा) गिराने वाला होकर (अन्विहि) प्राप्त हो रहा है; (एतम्) इस (अश्वम्) व्यापक अग्नि को (स्वाहा) सत्य क्रिया से (देवेभ्यः) दिव्य भोग और (मेधाय) संगम, बुद्धि की प्राप्ति वा दुष्टों की हिंसा के लिए (प्रोक्षितम्) जल से सिक्त करके (रक्षत) रखो; जिससे (रन्तिः) रमण=सुख (इह) यहाँ (रमताम्) रमण करे, (इह) यहाँ (धृतिः) धैर्य एवं (इह) यहाँ (स्वधृतिः) अपने पुरुषों का धारण हो ॥ २२ । १९ ॥

भावार्थः—ये मनुष्याः पृथिव्यादिषु व्यापकं, सर्वेभ्यो वेगवद्भ्योऽतिशयेन वेगवन्तं वह्निं गुणकर्मस्वभावतो विजानन्ति, ते सुखेनेह क्रीडन्ति ॥ २२ । १९ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य पृथिवी आदि में व्यापक, सब वेगवानों से अत्यन्त वेगवान् अग्नि को गुण, कर्म, स्वभाव से जानते हैं, वे सुख से यहाँ विहार करते हैं ॥ २२ । १९ ॥

भा० पदार्थः—अश्वः=सर्वेभ्यो वेगवद्भ्योऽतिशयेन वेगवान् वह्निः ॥ स्वाहा=गुणकर्मस्वभावतो ज्ञानेन ॥ रन्तिः=सुखेन ॥

भाष्यसार—**भौतिक अग्नि**—दिशाओं के पालक विद्वान्—पृथिवी के समान व्यापक, वायु के समान समर्थ, मार्ग को व्याप्त करने वाला, घोड़े के समान शीघ्रगामी, निरन्तर गतिशील, सुखकारी, सब पदार्थों को प्राप्त, मूर्त्त-द्रव्यों से सम्बद्ध, वेगवान्, वृष्टिकारक, नेता, पदार्थों में मन के समान तत्कालगामी, जाने वाला, अभ्यास से प्राप्त करने योग्य, पदार्थों को सूक्ष्म करने वाला, वाणी रूप, मासों को नीचे गिराने वाला अर्थात् सूर्य रूप में विद्यमान होकर सृष्टि के मासों को कम करने वाला, और व्याप्तिशील अग्नि को गुण, कर्म स्वभाव से जानें। इसे सत्य-क्रिया अर्थात् यज्ञ-कर्म से दिव्य-भोग,

सङ्गम, बुद्धि की प्राप्ति और दुष्टों की हिंसा के लिए जल से सींचे अर्थात् अग्नि और जल का यथायोग्य मेल करें। और उससे इस संसार में सुख से रमण करें तथा सब को धारण करें ॥ २२ । १९ ॥

प्रजापतिः । **प्राजापत्यादयः**=स्पष्टम् । आद्यस्य विराडतिधृतिः,
उत्तरस्य निचृदतिधृतिः । षड्जः ॥

अथ कस्मै प्रयोजनाय होमः कर्त्तव्य इत्याह ॥

अब किस प्रयोजन के लिए होम करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

काय स्वाहा कस्मै स्वाहा कतमस्मै स्वाहा स्वाहाधिमाधीताय स्वाहा मनः प्रजापतये स्वाहा चित्तं विज्ञातायादित्यै स्वाहादित्यै मह्यै स्वाहादित्यै सुमृडीकायै स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा सरस्वत्यै पावकायै स्वाहा सरस्वत्यै बृहत्यै स्वाहा पूष्णे स्वाहा पूष्णे प्रपथ्याय स्वाहा पूष्णे नरन्धिषाय स्वाहा त्वष्ट्रे स्वाहा त्वष्ट्रे तुरीपाय स्वाहा त्वष्ट्रे पुरुरूपाय स्वाहा विष्णवे स्वाहा विष्णवे निभूयपाय स्वाहा विष्णवे शिपिविष्टाय स्वाहा ॥ २० ॥

पदार्थः—(**काय**) सुखसाधकाय विदुषे (**स्वाहा**) सत्य क्रिया (**कस्मै**) सुखस्वरूपाय (**स्वाहा**) (**कतमस्मै**) बहूनां मध्ये वर्त्तमानाय (**स्वाहा**) (**स्वाहा**) (**आधिम्**) यः समन्ताद्दधाति तम् (**आधीताय**) समन्ताद्विद्यावृद्धये (**स्वाहा**) (**मनः**) (**प्रजापतये**) (**स्वाहा**) सत्या क्रिया (**चित्तम्**) स्मृतिसाधकम् (**विज्ञाताय**) (**अदित्यै**) पृथिव्यै । अदितिरिति पृथिवीना० निघं० ॥ १ । १ ॥ (**स्वाहा**) (**अदित्यै**) नाशरहितायै (**मह्यै**) महत्यै वाचे (**स्वाहा**) (**अदित्यै**) जनन्यै (**सुमृडीकायै**) सुष्ठु सुखकारिकायै (**स्वाहा**) (**सरस्वत्यै**) नद्यै (**स्वाहा**) (**सरस्वत्यै**) विद्यायुक्तायै वाचे (**पावकायै**) पवित्रकर्त्र्यै (**स्वाहा**) (**सरस्वत्यै**) विदुषां वाचे (**बृहत्यै**) महत्यै (**स्वाहा**) (**पूष्णे**) पुष्टिकर्त्रे (**स्वाहा**) (**पूष्णे**) पुष्टाय (**प्रपथ्याय**) प्रकर्षेण पथ्यकरणाय (**स्वाहा**) (**पूष्णे**) पोषकाय (**नरन्धिषाय**) यो नरान् दिधेष्टध्युपदिशति तस्मै (**स्वाहा**) (**त्वष्ट्रे**) प्रकाशाय । त्विष इतोऽत्वम् ॥ उणादौ पा० २ । ९५ ॥ अनेनायं सिद्धः (**स्वाहा**) (**त्वष्ट्रे**) विद्याप्रकाशकाय (**तुरीपाय**) नौकानां पालकाय (**स्वाहा**) (**त्वष्ट्रे**) प्रकाशकाय (**पुरुरूपाय**) बहुरूपाय (**स्वाहा**) (**विष्णवे**) व्यापकाय (**स्वाहा**) (**विष्णवे**) (**निभूयपाय**) यो नितरां रक्षितो भूत्वाऽन्यान् पालयति तस्मै (**स्वाहा**) (**विष्णवे**) (**शिपिविष्टाय**) शिपिष्वाक्रोशत्सु प्राणिषु व्याप्त्या प्रविष्टाय (**स्वाहा**) ॥ २० ॥

प्रमाणार्थ—(**अदित्यै**) पृथिव्यै । यह पद निघं० (१ । १) में पृथिवीनामों में पठित है । (**त्वष्ट्रे**) यह पद 'त्विष इतोऽत्वम्' (उणा० २ । ९५) इस सूत्र से सिद्ध होता है ॥

अन्वयः—यैर्मनुष्यैः काय स्वाहा कमस्मै स्वाहा कतस्मै स्वाहाऽऽधिं प्राप्य स्वाहाऽऽधीताय स्वाहा प्रजापतये मनः स्वाहा विज्ञाताय चित्तमदित्यै स्वाहा मह्याऽअदित्यै स्वाहा सुमृडीकाय अदित्यै स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा पावकायै सरस्वत्यै स्वाहा बृहत्यै सरस्वत्यै स्वाहा पूष्णे स्वाहा प्रपथ्याय पूष्णे स्वाहा नरन्धिषाय पूष्णे स्वाहा त्वष्ट्रे स्वाहा तुरीपाय त्वष्ट्रे स्वाहा पुरुरूपाय त्वष्ट्रे स्वाहा विष्णवे स्वाहा निभूयपाय विष्णवे स्वाहा शिपिविष्टाय विष्णवे स्वाहा कृतास्ते कथं न सुखिनः स्युः ॥ २० ॥

सपदार्थान्वयः— **यैर्मनुष्यैः काय** सुखसाधकाय विदुषे **स्वाहा** सत्यक्रिया, **कस्मै** सुखस्वरूपाय **स्वाहा** सत्यक्रिया, **कतमस्मै** बहूनां मध्ये-

भाषार्थ—जो मनुष्य—(काय) सुखों के साधक विद्वान् के लिए (स्वाहा) सत्य क्रिया, (कस्मै) सुख स्वरूप के लिए (स्वाहा) सत्य क्रिया,

वर्त्तमानाय **स्वाहा** सत्यक्रिया, **आधिं** य समन्ताद्धाति तं **प्राप्य स्वाहा** सत्यक्रिया, **आधीताय** समन्ताद्विद्या-वृद्धये **स्वाहा** सत्यक्रिया, **प्रजापतये मनः स्वाहा** सत्या क्रिया, **विज्ञाताय चित्तं** स्मृतिसाधकम् **अदित्यै** पृथिव्यै **स्वाहा** सत्या क्रिया, **मह्यै** महत्यै वाचे **अदित्यै** नाशरहितायै **स्वाहा** सत्य क्रिया, **सुमृडीकायै** सुष्ठुसुखकारिकायै **अदित्यै** जनन्यै **स्वाहा** सत्या क्रिया, **सरस्वत्यै** नद्यै **स्वाहा** सत्या क्रिया, **पावकायै** पवित्रकर्त्र्यै **सरस्वत्यै** विद्यायुक्तायै वाचे **स्वाहा** सत्या क्रिया, **बृहत्यै** महत्यै **सरस्वत्यै** विदुषां वाचे **पूष्णे** पुष्टिकर्त्रे **स्वाहा** सत्या क्रिया, **प्रपथ्याय** प्रकर्षेण पथ्यकरणाय **पूष्णे** पुष्टाय **स्वाहा** सत्या क्रिया, **नरन्धिषाय** यो नरान् दिधेष्टयुपदिशति तस्मै **पूष्णे** पोषकाय **स्वाहा** सत्या क्रिया, **त्वष्ट्रे** प्रकाशाय **स्वाहा** सत्या क्रिया, **तुरीपाय** नौकानां पालकाय **त्वष्ट्रे** विद्याप्रकाशकाय **स्वाहा** सत्या क्रिया, **पुरुरूपाय** बहुरूपाय **त्वष्ट्रे** प्रकाशकाय **स्वाहा** सत्या क्रिया, **विष्णवे** व्यापकाय **स्वाहा** सत्या क्रिया, **निभूयपाय** यो नितरां रक्षितो भूत्वाऽन्यान् पालयति तस्मै **विष्णवे** व्यापकाय **स्वाहा** सत्या क्रिया, **शिपिविष्टाय** शिपिष्वाक्रोशत्सु प्राणिषु व्याप्त्या प्रविष्टाय **विष्णवे** व्यापकाय **स्वाहा** सत्या क्रिया, **कृतास्ते कथं न सुखिनः स्युः** ।। २२ । २० ।।

भावार्थः—ये विद्वत्सुखाध्ययनान्तःकरण-विज्ञानवाग्वाय्वादिशुद्धये यज्ञक्रियाः कुर्वन्ति; ते सुखिनो भवन्ति ।। २२ । २० ।।

(कतमस्मै) बहुतों के मध्य में वर्तमान मनुष्य के के लिए (स्वाहा) सत्य क्रिया, (आधिम्) सब ओर से धारण करने वाले विद्वान् को प्राप्त करके (स्वाहा) सत्य क्रिया, (आधीताय) सब ओर से विद्या की वृद्धि के लिए (स्वाहा) सत्य क्रिया, (प्रजापतये) प्रजापालक के लिए (मनः) मनन रूप (स्वाहा) सत्य क्रिया, (विज्ञाताय) विज्ञान के लिए (चित्तम्) स्मृति-साधक चित्त एवं (अदित्यै) पृथिवी के लिए (स्वाहा) सत्य क्रिया, (मह्यै) महान् (अदित्यै) नाशरहित वाणी के लिए (स्वाहा) सत्य क्रिया, (सुमृडीकायै) उत्तम सुखकारक (अदित्यै) जननी=माता के लिए (स्वाहा) सत्य क्रिया, (सरस्वत्यै) नदी के लिए (स्वाहा) सत्य क्रिया, (पावकायै) पवित्रकारक (सरस्वत्यै) विद्या-युक्त वाणी के लिए (स्वाहा) सत्य क्रिया, (बृहत्यै) महान् (सरस्वत्यै) विद्वानों की वाणी एवं (पूष्णे) पुष्टिकर्त्ता वायु के लिए (स्वाहा) सत्य क्रिया, (प्रपथ्याय) अत्यन्त पथ्य करने के लिए (पूष्णे) पुष्ट पुरुष के लिए (स्वाहा) सत्य क्रिया, (नरन्धिषाय) नरों को उपदेश करने वाले (पूष्णे) पोषक विद्वान् के लिए (स्वाहा) सत्य क्रिया, (त्वष्ट्रे) प्रकाश के लिए (स्वाहा) सत्य क्रिया, (तुरीपाय) नौकाओं के पालक (त्वष्ट्रे) विद्या के प्रकाशक के लिए (स्वाहा) सत्य क्रिया, (पुरुरूपाय) बहुत रूप वाले (त्वष्ट्रे) प्रकाशक सूर्य के लिए (स्वाहा) सत्य क्रिया, (विष्णवे) व्यापक अग्नि के लिए (स्वाहा) सत्य क्रिया, (निभूयपाय) स्वयं रक्षित होकर अन्यों का पालन करने वाले (विष्णवे) व्यापक अग्नि के लिए (स्वाहा) सत्य क्रिया, (शिपिविष्टाय) आक्रोश करने वाले प्राणियों में व्याप्ति से प्रविष्ट (विष्णवे) व्यापक अग्नि के लिए (स्वाहा) यज्ञ रूप सत्य क्रिया करते हैं वे सुखी कैसे न हों ? ।। २२ । २० ।।

भावार्थ—जो मनुष्य विद्वानों का सुख, अध्ययन, अन्तःकरण, विज्ञान, वाणी और वायु आदि की शुद्धि के लिए यज्ञ-कर्म करते हैं, वे सुखी होते हैं ।। २२ । २० ।।

आ० पदार्थः—आधीताय=अध्ययनाय। मनः=अन्तःकरणम्। विज्ञाताय=विज्ञानाय। पूष्णे=वायवे॥

विनियोग—स्थालीपाक बनाकर और उस पर घृत सेचन कर निम्नलिखित मन्त्रों से आहुति देवे—'काय स्वाहा' इत्यादि॥ **(संस्कारविधि वानप्रस्थ०)**

भाष्यसार—**होम का प्रयोजन**—सब मनुष्य सुख-साधक विद्वान्, सुखस्वरूप ईश्वर, बहुतों के मध्य में वर्त्तमान विशिष्ट पुरुष, सब ओर से धारण करने वाले विद्वान् की प्राप्ति, सब ओर से विद्या की वृद्धि, प्रजापति, मन, विज्ञान, चित्त, पृथिवी, नाश रहित महान् वेदवाणी, उत्तम सुखकारक जननी, नदी, पवित्र करने वाली विद्या-युक्त वाणी, विद्वानों की महान् वाणी, पुष्टिकर्त्ता वायु, अत्यन्त पथ्य आचरण करने वाले पुष्ट मनुष्य, नरों को उपदेश करने वाले पोषक विद्वान्, प्रकाश, नौकाओं के पालक विद्या-प्रकाशक विद्वान्, बहुरूप प्रकाशक सूर्य, व्यापक अग्नि, स्वयं रक्षित होकर अन्यों के पालक अग्नि, आक्रोश करने वाले प्राणियों में व्याप्ति से प्रविष्ट अग्नि की यथायोग्य शुद्धि के लिए स्वाहा=सत्य क्रिया अर्थात् यज्ञ-कर्म करें। जो उक्त महिमा से युक्त यज्ञ-कर्म करते हैं वे सुखी कैसे न हों?॥ २२। २०॥ ●

स्वस्त्यात्रेयः। **विद्वान्=स्पष्टम्**। आर्ष्यनुष्टुप्। गान्धारः॥

पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह॥

मनुष्यों को क्या करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है॥

विश्वो॑ दे॒वस्य॑ ने॒तुर्मर्त्तो॑ वुरीत स॒ख्यम्। विश्वो॑ रा॒यऽइ॑षुध्यति द्यु॒म्नं वृ॑णीत पु॒ष्यसे॒ स्वाहा॑॥ २१॥

पदार्थः—(**विश्वः**) सर्वः (**देवस्य**) विदुषः (**नेतुः**) नायकस्य (**मर्त्तः**) मनुष्यः (**वुरीत**) वृणुयात्। अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदं 'बहुलं छन्दसीति' शपो लुक्, लिङ्प्रयोगोऽयम् (**सख्यम्**) मित्रत्वम् (**विश्वः**) (**राये**) धनाय (**इषुध्यति**) याचते शरान् धरति वा (**द्युम्नम्**) धनं यशो वा (**वृणीत**) (**पुष्यसे**) पुष्ट्यै (**स्वाहा**)॥ २१॥

अन्वयः—यथा विश्वो मर्तो नेतुर्देवस्य सख्यं वुरीत यथा वा विश्वो मर्त्यो राय इषुध्यति तथा स्वाहा पुष्यसे द्युम्नं वृणीत॥ २१॥

सपदार्थान्वयः—**यथा विश्वः** सर्वः **मर्त्तः** मनुष्यः **नेतुः** नायकस्य **देवस्य** विदुषः **सख्यं** मित्रत्वं **वुरीत** वृणुयात्, **यथा वा विश्वः** सर्वः **मर्त्यो राये** धनाय **इषुध्यति** याचते शरान् धरति वा; **तथा स्वाहा पुष्यसे** पुष्ट्यै **द्युम्नं** धनं यशो वा **वृणीत**॥ २२। २१॥

भाषार्थ—जैसे (विश्वः) सब (मर्त्तः) मनुष्य—(नेतुः) नायक (देवस्य) विद्वान् की (सख्यम्) मित्रता का (वुरीत) वरण करते हैं; अथवा जैसे (विश्वः) सब (मर्त्यः) मनुष्य (राये) धन के लिए (इषुध्यति) याचना करते हैं वा शरों को धारण करते हैं, वैसे (स्वाहा) सत्य क्रिया से (पुष्यसे) पुष्टि के लिए (द्युम्नम्) धन वा यश का (वृणीत) वरण करें॥ २२। २१॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। सर्वे मनुष्या विद्वद्भिः सह सुहृदो भूत्वा, विद्यां

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है॥ सब मनुष्य विद्वानों के साथ मित्र

यशश्च गृहीत्वा श्रीमन्तो भूत्वा, सुपथ्येन पुष्टाः सन्तु ॥ २२ । २१ ॥

होकर, विद्या और यश को ग्रहण करके, श्रीमान् होकर, सुपथ्य आचरण से पुष्ट हों ॥ २२ । २१ ॥

भा० पदार्थः—द्युम्नं=विद्यां यशश्च । स्वाहा=सुपथ्येन ॥

भाष्यसार—१. **मनुष्यों का कर्त्तव्य**—सब मनुष्य नायक विद्वान् की मित्रता को स्वीकार करें, उससे विद्या और यश को ग्रहण करें, धन की कामना करके श्रीमान् बनें, बाणों को धारण करें अर्थात् बाण-विद्या को सीखें, सुपथ्य के सेवन से पुष्टि को प्राप्त करें ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि सब मनुष्य बुद्धिमान् मनुष्य के समान विद्वानों के साथ मित्रता करें ॥ २२ । २१ ॥ ●

प्रजापतिः । **लिङ्गोक्ताः**=ब्राह्मणादयः । स्वराडुत्कृतिः । षड्जः ॥

पुनर्मनुष्यैः किमेष्टव्यमित्याह ॥

मनुष्यों को किसकी इच्छा करनी चाहिए, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर ऽ इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ऽ ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥ २२ ॥

पदार्थः—(**आ**) समन्तात् (**ब्रह्मन्**) विद्यादिना सर्वेभ्यो महन् परमात्मन् (**ब्राह्मणः**) वेदेश्वरवित् (**ब्रह्मवर्चसी**) वेदविद्याप्रदीप्तः (**जायताम्**) उत्पद्यताम् (**आ**) (**राष्ट्रे**) राज्ये (**राजन्यः**) राजपुत्रः (**शूरः**) निर्भय (**इषव्यः**) इषुषु साधुः (**अतिव्याधी**) अतिशयेन व्यद्धुं=शत्रूँस्ताडयितुं शीलं यस्य सः (**महारथः**) महान्तो रथा वीरा वा यस्य सः (**जायताम्**) (**दोग्ध्री**) प्रपूरिका (**धेनुः**) गौः (**वोढा**) वाहकः (**अनड्वान्**) वृषभः (**आशुः**) शीघ्रगामी (**सप्तिः**) अश्वः (**पुरन्धिः**) या पुरून्=बहून् दधाति सा (**योषा**) (**जिष्णुः**) जयशीलः (**रथेष्ठाः**) यो रथे तिष्ठति सः (**सभेयः**) सभायां साधुः (**युवा**) प्राप्तयौवनः (**आ**) (**अस्य**) (**यजमानस्य**) यो यजते=देवान्=विदुषः सत्करोति, संगच्छते, सुखानि ददाति वा तस्य (**वीरः**) विज्ञानवान् शत्रूणां प्रक्षेप्ता (**जायताम्**) (**निकामे निकामे**) निश्चितं प्रत्येककामनायाम् (**नः**) अस्माकम् (**पर्जन्यः**) मेघः (**वर्षतु**) (**फलवत्यः**) बहूतमफलाः (**नः**) अस्मभ्यम् (**ओषधयः**) यवादयः (**पच्यन्ताम्**) परिपक्वा भवन्तु (**योगक्षेमः**) अप्राप्तस्य प्राप्तिलक्षणो योगस्तस्य रक्षणं क्षेमः (**नः**) अस्मभ्यम् (**कल्पताम्**) समर्थो भवतु ॥ २२ ॥

अन्वयः—हे ब्रह्मन् ! यथा नो राष्ट्रे ब्रह्मवर्चसी ब्राह्मण आजायतामिषव्योऽतिव्याधी महारथः शूरो राजन्य आजायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा रथेष्ठा जिष्णुः सभेयो युवाऽऽजायतामस्य यजमानस्य राष्ट्रे वीरो जायतां नो निकामे निकामे पर्जन्यो वर्षत्वौषधयः फलवत्यो नः पच्यन्तां नो योगक्षेमः कल्पतां तथा विधेहि ॥ २२ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे ब्रह्मन्** ! विद्यादिना सर्वेभ्यो महान् परमात्मन् ! **यथा नः** अस्माकं

भाषार्थ—हे (ब्रह्मन्) विद्या आदि के कारण सबसे महान् परमात्मन् ! जैसे (नः) हमारे

राष्ट्रे राज्ये **ब्रह्मवर्चसी** वेदविद्याप्रदीप्तः **ब्राह्मणः** वेदेश्वरवित्, **आ-जायताम्** समन्ताद् उत्पद्यताम्; **इषव्यः** इषुषु साधुः **अतिव्याधी** अतिशयेन व्यद्धुं=शत्रूँस्ताडयितुं शीलं यस्य सः, **महारथः** महान्तो रथा वीरा वा यस्य सः, **शूरः** निर्भयः **राजन्यः** राजपुत्रः **आजायतां** समन्तादुत्पद्यताम्;

(राष्ट्रे) राज्य में (ब्रह्मवर्चसी) वेद-विद्या से प्रदीप्त (ब्राह्मणः) वेद और ईश्वर का ज्ञाता विद्वान् (आ-जायताम्) उत्पन्न हो; (इषव्यः) बाण चलाने में कुशल, (अतिव्याधी) शत्रुओं का अत्यन्त ताड़न करने वाला, (महारथः) महान् रथ वा वीरों वाला, (शूरः) निर्भय (राजन्यः) राजपुत्र=क्षत्रिय (आ-जायताम्) उत्पन्न हो;

दोग्ध्री प्रपूरिका **धेनुः** गौः, **वोढा** वाहकः **अनड्वान्** वृषभः, **आशुः** शीघ्रगामी **सप्तिः** अश्वः, **पुरन्धिः** या पुरून्=बहून् दधाति सा **योषा, रथेष्ठा** यो रथे तिष्ठति सः **जिष्णुः** जयशीलः **सभेयः** सभायां साधुः **युवा** प्राप्तयौवनः **आजायतां** समन्तादुत्पद्यताम्;

(दोग्ध्री) दुधारु (धेनुः) गौ, (वोढा) भार वहन करने वाला (अनड्वान्) बैल, (आशुः) शीघ्रगामी (सप्तिः) घोड़ा, (पुरन्धिः) बहुतों को धारण करने वाली (योषा) स्त्री, (रथेष्ठाः) रथ में बैठने वाला (जिष्णुः) विजेता (सभेयः) सभ्य (युवा) यौवन को प्राप्त युवक (आ-जायताम्) उत्पन्न हो।

अस्य यजमानस्य यो यजते=देवान्=विदुषः सत्करोति, सङ्गच्छते, सुखानि ददाति वा तस्य **राष्ट्रे** राज्ये **वीरः** विज्ञानवान् शत्रूणां प्रक्षेप्ता **जायताम्** उत्पद्यताम्;

(अस्य) इस (यजमानस्य) विद्वानों का सत्कार और संग करने वाले वा उन्हें सुख देने वाले पुरुष के (राष्ट्रे) राज्य में (वीरः) विज्ञानवान्, शत्रुओं को फैंकने वाला वीर (जायताम्) उत्पन्न हो।

नः अस्मभ्यं **निकामे निकामे** निश्चितं प्रत्येककामनायाम् **पर्जन्यः** मेघः **वर्षतु, ओषधयः** यवादयः **फलवत्यः** बहूत्तमफलाः **नः** अस्मभ्यं **पच्यन्तां** परिपक्वा भवन्तु, **नः** अस्मभ्यं **योगक्षेमः** अप्राप्तस्य प्राप्तिलक्षणो योगस्तस्य रक्षणं क्षेमः **कल्पतां** समर्थो भवतु; **तथा विधेहि** ॥ २२ । २२ ॥

(नः) हमारे लिए (निकामे, निकामे) निश्चित रूप से प्रत्येक कामना में (पर्जन्यः) बादल (वर्षतु) बरसे, (ओषधयः) यव=जौ आदि ओषधियाँ (फलवत्यः) बहुत उत्तम फल वाली (नः) हमारे लिए (पच्यन्ताम्) पकें; (नः) हमारे लिए (योगक्षेमः) योग=अप्राप्त की प्राप्ति, क्षेम=प्राप्त की रक्षा (कल्पताम्) सिद्ध हो; वैसा कर ॥२२ । २२॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। विद्वद्भिरीश्वरप्रार्थनया सहैवमनुष्ठेयं यतः पूर्णविद्याः शूरवीरा मनुष्याः स्त्रियश्च, सुखप्रदा पशवः, सभ्या मनुष्या, इष्टा वृष्टिः, मधुरफलयुक्ता अन्नौषधयो भवन्तु; कामश्च पूर्णः स्यादिति ॥२२।२२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है॥ विद्वान् ईश्वर-प्रार्थना के साथ ऐसा अनुष्ठान करें जिससे—पूर्ण विद्या वाले शूरवीर मनुष्य और स्त्रियाँ, सुखदायक पशु, सभ्य मनुष्य, अभीष्ट वर्षा, मधुर फलों से युक्त अन्न एवं ओषधियाँ हों; और कामना पूर्ण हो॥ २२ । २२ ॥

भा० पदार्थः—ब्राह्मणः=पूर्णविद्यः । राजन्यः=वीरः । सभेयः=सभ्यः । पर्जन्यः=इष्टा वृष्टिः । ओषधयः=अन्नौषधयः । फलवत्यः=मधुरफलयुक्ताः । कल्पताम्=पूर्णः स्यात् ॥ २२ । २२ ॥

भाष्यसार—**१. मनुष्यों की कामना**—हे विद्यादि गुणों के कारण सबसे महान् परमात्मन्! हमारे राज्य में वेद-विद्या से प्रकाशमान, वेद और ईश्वर के ज्ञाता ब्राह्मण उत्पन्न हों।

इषु=बाण-विद्या में श्रेष्ठ, शत्रुओं का अत्यन्त ताड़न करने वाले, महारथी, महावीर, निर्भय क्षत्रिय उत्पन्न हों। दुधारु गौ, भार-वाहक बैल, शीघ्रगामी घोड़े, धारण-पोषण करने वाली स्त्री; रथ में बैठने वाले, विजेता, सभ्य युवक उत्पन्न हों। विद्वानों का सत्कार, संगति और सुख प्रदान करने वाले यजमान राजा के राज्य में विज्ञानवान्, शत्रुओं को दूर भगाने वाले वीर उत्पन्न हों। जब-जब कामना करें तब-तब निश्चित रूप से बादल बरसें। यव=जौ आदि ओषधियाँ बहुत उत्तम फल वाली होकर पकें। योग=अप्राप्त की प्राप्ति, और क्षेम=प्राप्त की रक्षा सिद्ध हो।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है। अतः वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि विद्वानों के समान सब मनुष्य मन्त्रोक्त कामना करें ॥ २२ । २२ ॥

प्रजापतिः । **प्राणादयः**=स्पष्टम् । स्वराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनः किमर्थो होमो विधेय इत्याह ॥

होम किसलिए करना चाहिए, इसका उपदेश किया जाता है ॥

प्राणाय स्वाहापानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा वाचे स्वाहा मनसे स्वाहा ॥ २३ ॥

पदार्थः—(**प्राणाय**) य आभ्यन्तराद्बहिर्निःसरति तस्मै (**स्वाहा**) योगयुक्ता क्रिया (**अपानाय**) यो बहिर्देशादाभ्यन्तरं गच्छति तस्मै (**स्वाहा**) (**व्यानाय**) यो विविधेष्वङ्गेष्वनिति=व्याप्नोति तस्मै (**स्वाहा**) वैद्यकविद्यायुक्ता वाक् (**चक्षुषे**) चष्टे=पश्यति येन तस्मै (**स्वाहा**) प्रत्यक्षप्रमाणयुक्ता वाणी (**श्रोत्राय**) शृणोति येन तस्मै (**स्वाहा**) आप्तोपदेशयुक्ता गीः (**वाचे**) वक्ति यया तस्यै (**स्वाहा**) सत्यभाषणादियुक्ता भारती (**मनसे**) मनननिमित्ताय=संकल्पविकल्पात्मने (**स्वाहा**) विचारयुक्ता वाणी ॥२३॥

अन्वयः—यैर्मनुष्यैः प्राणाय स्वाहाऽपानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा वाचे स्वाहा मनसे स्वाहा च प्रयुज्यते ते विद्वांसो जायन्ते ॥ २३ ॥

सपदार्थान्वयः—यैर्मनुष्यैः **प्राणाय** य आभ्यन्तराद् बहिर्निःसरति तस्मै **स्वाहा** योगयुक्ता क्रिया, **अपानाय** यो बहिर्देशादाभ्यन्तरं गच्छति तस्मै **स्वाहा, व्यानाय** यो विविधेष्वङ्गेष्वनिति=व्याप्नोति तस्मै **स्वाहा** वैद्यकविद्यायुक्ता वाक्, **चक्षुषे** चष्टे=पश्यति येन तस्मै **स्वाहा** प्रत्यक्षप्रमाणयुक्ता वाणी, **श्रोत्राय** शृणोति येन तस्मै **स्वाहा** आप्तोपदेशयुक्ता गीः, **वाचे** वक्ति यया तस्यै **स्वाहा** सत्यभाषणादियुक्ता भारती, **मनसे** मनन-निमित्ताय=संकल्पविकल्पात्मने **स्वाहा** विचारयुक्ता वाणी **च प्रयुज्यते; ते विद्वांसो जायन्ते** ॥ २२ । २३ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य—(प्राणाय) अन्दर से बाहर निकलने वाले प्राण के लिए (स्वाहा) योग-युक्त क्रिया, (अपानाय) बाहर से अन्दर जाने वाले अपान के लिए (स्वाहा) योग-युक्त क्रिया, (व्यानाय) विविध अङ्गों में व्यापक व्यान के लिए (स्वाहा) वैद्यक विद्या से युक्त वाणी, (चक्षुषे) चक्षु=नेत्र के लिए (स्वाहा) प्रत्यक्ष प्रमाण से युक्त वाणी, (श्रोत्राय) श्रोत्र=कान के लिए (स्वाहा) आप्त के उपदेश से युक्त वाणी, (वाचे) वाक् के लिए (स्वाहा) सत्य भाषण आदि से युक्त वाणी और (मनसे) मनन के निमित्त एवं संकल्प विकल्प आत्मक मन के लिए (स्वाहा) विचार-युक्त वाणी का प्रयोग करते हैं; वे विद्वान् बनते हैं ॥ २२ । २३ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या यज्ञेन शोधितानि जलौषधिवाय्वन्नपत्रपुष्पफलरसकन्दादीन्यश्नन्ति तेऽरोगा भूत्वा प्रज्ञाबलारोग्यायुष्मन्तो जायन्ते ॥२३॥

भावार्थ—जो मनुष्य-यज्ञ से शुद्ध किये हुए जल, ओषधि, वायु, अन्न, पत्र, पुष्प, फल, रस और कन्द आदि खाते हैं वे नीरोग होकर बुद्धिमान्, बलवान्, आरोग्यवान् और आयुष्मान् होते हैं ॥ २२ । २३ ॥

भाष्यसार—**होम किसलिए करें**—मनुष्य यज्ञ से शुद्ध हुए जल, ओषधि, वायु, अन्न, पत्र, पुष्प, फल, रस और कन्द आदि का सेवन करें जिससे वे प्राण और अपान के लिए योग, व्यान के लिए वैद्यक विद्या, चक्षु के लिए प्रत्यक्ष प्रमाण, श्रोत्र के लिए आप्त-उपदेश, वाणी के लिए सत्यभाषण, मन के लिए विचार का प्रयोग करने में समर्थ हों, विद्वान् हो सकें तथा नीरोग होकर बुद्धिमान्, बलवान् और आयुष्मान् हों ॥ २२ । २३ ॥

प्रजापतिः । **दिशः=स्पष्टम्** ॥ निचृदतिधृतिः । षड्जः ॥

पुनः किमर्थो होमः कर्त्तव्य इत्याह ॥

किसलिए होम करना चाहिए, इस विषय का फिर उपदेश किया है ॥

प्राच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा दक्षिणायै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा प्रतीच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहोदीच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहोर्ध्वायै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहावाच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा ॥ २४ ॥

पदार्थः—(**प्राच्यै**) या प्राञ्चति प्रथमादित्यसंयोगात् तस्यै (**दिशे**) (**स्वाहा**) ज्योतिःशास्त्रविद्यायुक्ता वाक् (**अर्वाच्यै**) यावगिधोञ्चति तस्यै (**दिशे**) (**स्वाहा**) (**दक्षिणायै**) या पूर्वमुखस्य पुरुषस्य दक्षिणबाहुसन्निधौ वर्त्तते तस्यै (**दिशे**) (**स्वाहा**) (**अर्वाच्यै**) अधस्ताद्वर्त्तमानायै (**दिशे**) (**स्वाहा**) (**प्रतीच्यै**) या प्रत्यक् अञ्चति पूर्वमुखस्थितपुरुषस्य पृष्ठभागा तस्यै (**दिशे**) (**स्वाहा**) (**अर्वाच्यै**) (**दिशे**) (**स्वाहा**) (**उदीच्यै**) योदक् पूर्वाभिमुखस्य जनस्य वामभागमञ्चति तस्यै (**दिशे**) (**स्वाहा**) (**अर्वाच्यै**) (**दिशे**) (**स्वाहा**) (**ऊर्ध्वायै**) ऊर्ध्ववर्त्तमानायै (**दिशे**) (**स्वाहा**) (**अर्वाच्यै**) या अवविरुद्धमञ्चति तस्यै उपदिशे (**दिशे**) (**स्वाहा**) (**अवाच्यै**) (**दिशे**) (**स्वाहा**) (**अर्वाच्यै**) (**दिशे**) (**स्वाहा**) ॥ २४ ॥

अन्वयः—यैर्विद्वद्भिः प्राच्यै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे स्वाहा दक्षिणायै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे स्वाहा प्रतीच्यै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे स्वाहोदीच्यै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे स्वाहोर्ध्वायै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे स्वाहाऽवाच्यै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे स्वाहा च विधीयते ते सर्वतः कुशलिनो भवन्ति ॥ २४ ॥

सपदार्थान्वयः—यैर्विद्वद्भिः **प्राच्यै** या प्राञ्चति प्रथमादित्यसंयोगात् तस्यै **दिशे स्वाहा** ज्योतिःशास्त्रविद्यायुक्ता वाक् **अर्वाच्यै** यावगिधोऽञ्चति तस्यै **दिशे स्वाहा**, **दक्षिणायै** या पूर्वमुखस्य पुरुषस्य दक्षिणबाहुसन्निधौ वर्त्तते तस्यै **दिशे स्वाहा**, **ऽर्वाच्यै** अधस्ताद् वर्त्तमानायै **दिशे स्वाहा**, **प्रतीच्यै**

भाषार्थ—जो विद्वान्—(प्राच्यै) प्रथम आदित्य=सूर्य के संयोग से प्राप्त होने वाली प्राची=पूर्व (दिशे) दिशा के लिए (स्वाहा) ज्योतिः शास्त्र की विद्या से युक्त वाणी, (**अर्वाच्यै**) नीचे प्राप्त होने वाली अर्थात् नीचे की (दिशे) दिशा के लिए (स्वाहा) उक्त वाणी, (दक्षिणायै)

या प्रत्यक् अञ्चति पूर्वमुखस्थितपुरुषस्य पृष्ठभागा तस्यै **दिशे स्वाहा, ऽर्वाच्यै दिशे स्वाहोदीच्यै** योदक् पूर्वाभिमुखस्य जनस्य वामभागमञ्चति तस्यै **दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहोर्ध्वायै** ऊर्ध्ववर्त्तमानायै **दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै** या अव विरुद्धमञ्चति तस्यै उपदिशे **दिशे स्वाहाऽवाच्यै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे स्वाहा च विधीयते ते सर्वतः कुशलिनो भवन्ति** ॥ २२ । २४ ॥

पूर्वाभिमुख पुरुष के दक्षिण बाहु की ओर वर्त्तमान दक्षिण (दिशे) दिशा के लिए (स्वाहा) उक्त वाणी, (अर्वाच्यै) नीचे वर्त्तमान अर्थात् नीचे की (दिशे) दिशा के लिए (स्वाहा) उक्त वाणी, (प्रतीच्यै) पूर्वाभिमुख पुरुष के पृष्ठभाग वाली प्रतीची=पश्चिम (दिशे) दिशा के लिए (स्वाहा) उक्त वाणी, (अर्वाच्यै) नीचे की (दिशे) दिशा के लिए (स्वाहा) उक्त वाणी, (उदीच्यै) पूर्वाभिमुख पुरुष के वाम भाग वाली (दिशे) दिशा के लिए (स्वाहा) उक्त वाणी, (अर्वाच्यै) नीचे की दिशा के लिए (स्वाहा) उक्त वाणी, (ऊर्ध्वायै) ऊपर की (दिशे) दिशा के लिए (स्वाहा) उक्त वाणी, (अर्वाच्यै) विरुद्ध प्राप्त होने वाली (दिशे) उपदिशा के लिए (स्वाहा) उक्त वाणी, (अवाच्यै) नीचे की दिशा के लिए (स्वाहा) उक्त वाणी, और (अर्वाच्यै) उपदिशाओं के नीचे की दिशा के लिए (स्वाहा) उक्त वाणी का उपदेश करते हैं वे सब ओर से कुशलता युक्त होते हैं ॥ २२ । २४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्याश्चतस्रो मुख्या दिशः सन्ति, तथा चतस्र उपदिशोऽपि वर्त्तन्त, एवमूर्ध्वाऽर्वाची च दिशौ वर्त्तेते, ता मिलित्वा दश जायन्त इति वेद्यम् ।

अनवस्थिता इमा विभ्व्यश्च सन्ति, यत्र स्वयं स्थितो भवेत्, तद्देशमारभ्य सर्वासां कल्पना भवतीति विजानीत ॥ २२ । २४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! चार मुख्य दिशाएँ हैं, तथा चार उपदिशाएँ भी हैं, इस प्रकार ऊपर नीचे की दो दिशाएँ हैं, वे सब मिलकर दस दिशाएँ होती हैं; ऐसा समझें ।

ये दिशाएँ अनवस्थित और विभु हैं, जहाँ मनुष्य स्वयं स्थित हो उस देश से लेकर सब दिशाओं की कल्पना होती है; ऐसा जानो ॥२२ । २४ ॥

भाष्यसार—होम किसलिए करें—प्राची (पूर्व), दक्षिणा (दक्षिण), प्रतीची (पश्चिम), उदीची (उत्तर) ये चार मुख्य दिशाएँ हैं। आग्नेयी (पूर्व-दक्षिण के बीच की दिशा), नैर्ऋति (दक्षिण-पश्चिम के बीच की दिशा), वायवी (पश्चिम-उत्तर के बीच की दिशा), ऐशानी (उत्तर-पूर्व के बीच की दिशा), ये चार उपदिशाएँ हैं। ऊर्ध्वा (ऊपर की दिशा), अर्वाची (नीचे की दिशा) ये दो दिशाएँ और हैं। सब मिलकर दश दिशाएँ होती हैं। ये दिशाएँ अनवस्थित=अस्थिर और विभु=व्यापक हैं। उपासक जिस ओर मुख करके उपासना करने लगता है उसी देश एवं दिशा को लेकर पूर्व आदि सब दिशाओं की कल्पना हो जाती है। विद्वान् लोग इन दस दिशाओं की शुद्धि के लिए होम का अनुष्ठान करें। ज्योतिः शास्त्र की विद्या से इन दिशाओं को ठीक-ठीक समझें। जो ऐसा अनुष्ठान करते हैं वे सब दिशाओं में कुशल रहते हैं ॥ २२ । २४ ॥

प्रजापतिः । **जलादयः**=स्पष्टम् । अष्टिः । मध्यमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

होम किसलिए करना चाहिए, इसका फिर उपदेश किया है ॥

अद्भ्यः स्वाहा वार्भ्यः स्वाहोदकाय स्वाहा तिष्ठन्तीभ्यः स्वाहा स्रवन्तीभ्यः स्वाहा स्यन्दमानाभ्यः स्वाहा कूप्याभ्यः स्वाहा सूद्याभ्यः स्वाहा धार्याभ्यः स्वाहार्णवाय स्वाहा समुद्राय स्वाहा सरिराय स्वाहा ॥ २५ ॥

पदार्थः—(**अद्भ्यः**) जलेभ्यः (**स्वाहा**) शुद्धिकारिका क्रिया (**वार्भ्यः**) वरणीयेभ्यः (**स्वाहा**) (**उदकाय**) आर्द्रीकारकाय (**स्वाहा**) (**तिष्ठन्तीभ्यः**) स्थिराभ्यः (**स्वाहा**) (**स्रवन्तीभ्यः**) सद्योगामिनीभ्यः (**स्वाहा**) (**स्यन्दमानाभ्यः**) प्रस्रुताभ्यः (**स्वाहा**) (**कूप्याभ्यः**) कूपेषु भवाभ्यः (**स्वाहा**) (**सूद्याभ्यः**) सुष्ठुक्लेदिकाभ्यः (**स्वाहा**) (**धार्याभ्यः**) धर्त्तुं योग्याभ्यः (**स्वाहा**) (**अर्णवाय**) बहून्यर्णांसि विद्यन्ते यस्मिँस्तस्मै (**स्वाहा**) (**समुद्राय**) समुद्द्रवन्त्यापो यस्मिंस्तस्मै (**स्वाहा**) (**सरिराय**) कमनीयाय (**स्वाहा**) ॥ २५ ॥

अन्वयः—यैर्मनुष्यैर्यज्ञेषु सुगन्ध्यादिद्रव्यहवनायाऽद्भ्यः स्वाहा वार्भ्यः स्वाहोदकाय स्वाहा तिष्ठन्तीभ्यः स्रवन्तीभ्यः स्वाहा स्यन्दमानाभ्यः स्वाहा कूप्याभ्यः स्वाहा सूद्याभ्यः स्वाहा धार्याभ्यः स्वाहाऽर्णवाय समुद्राय स्वाहा सरिराय स्वाहा च विधीयते ते सर्वेषां सुखप्रदा जायन्ते ॥ २५ ॥

सपदार्थान्वयः — **यैर्मनुष्यैर्यज्ञेषु सुगन्ध्यादिद्रव्यहवनायाऽद्भ्यः** जलेभ्यः **स्वाहा** शुद्धिकारिका क्रिया, **वार्भ्यः** वरणीयेभ्यः **स्वाहा, उदकाय** आर्द्रीकारकाय **स्वाहा, तिष्ठन्तीभ्यः** स्थिराभ्यः **स्वाहा, स्रवन्तीभ्यः** सद्योगामिनीभ्यः **स्वाहा, स्यन्दमानाभ्यः** प्रस्रुताभ्यः **स्वाहा, कूप्याभ्यः** कूपेषु भवाभ्यः **स्वाहा, सूद्याभ्यः** सुष्ठुक्लेदिकाभ्यः **स्वाहा, धार्याभ्यः** धर्त्तुं योग्याभ्यः **स्वाहा, अर्णवाय** बहून्यर्णांसि विद्यन्ते यस्मिँस्तस्मै **स्वाहा, समुद्राय** समुद्द्रवन्त्यापो यस्मिँस्तस्मै **स्वाहा, सरिराय** कमनीयाय **स्वाहा च विधीयते ते, सर्वेषां सुखप्रदा जायन्ते** ॥ २२ । २५ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य यज्ञों में सुगन्धि आदि द्रव्यों का हवन करने के लिए (अद्भ्यः) जलों के लिए (स्वाहा) शुद्धिकारक क्रिया, (वार्भ्यः) वरण करने योग्य जलों के लिए (स्वाहा) उक्त क्रिया, (उदकाय) आर्द्र करने वाले जलों के लिए (स्वाहा) उक्त क्रिया, (तिष्ठन्तीभ्यः) स्थिर जलों के लिए (स्वाहा) उक्त क्रिया, (स्रवन्तीभ्यः) शीघ्र-गामी जलों के लिए (स्वाहा) उक्त क्रिया, (स्यन्दमानाय) बहने वाले जलों के लिए (स्वाहा) उक्त क्रिया, (कूप्याभ्यः) कूए के जलों के लिए (स्वाहा) उक्त क्रिया, (सूद्याभ्यः) अच्छे प्रकार गीला करने वाले वर्षा आदि के जलों के लिए (स्वाहा) उक्त क्रिया, (धार्याभ्यः) धारण करने योग्य जलों के लिए (स्वाहा) उक्त क्रिया, (अर्ण-वाय) जिन में बहुत जल हैं उस आकाश-सागर के लिए (स्वाहा) उक्त क्रिया, (समुद्राय) जिसमें सब नदियाँ गिरती हैं उस पृथिवीस्थ समुद्र के लिए (स्वाहा) उक्त क्रिया और (सरिराय) कामना करने योग्य सुन्दर जलों के लिए (स्वाहा) उक्त

वाणी का उपदेश करते हैं वे सबके लिए सुखदायक होते हैं॥ २२ । २५ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या अग्नौ सुगन्ध्यादिद्रव्याणि जुहुयुस्ते जलादिशुद्धिकारका भूत्वा पुण्यात्मानो जायन्ते ।

जलशुद्ध्यैव सर्वेषां शुद्धिर्भवतीति वेद्यम् ॥२५॥

भावार्थ—जो मनुष्य अग्नि में सुगन्धि आदि द्रव्यों का होम करते हैं वे जल आदि की शुद्धि करने वाले होकर पुण्यात्मा होते हैं ।

जल की शुद्धि से ही सब की शुद्धि होती है; ऐसा समझें ॥ २२ । २५ ॥

भाष्यसार—**होम किसलिए करें**—सब मनुष्य सुगन्धित, मिष्ट, पुष्टिकारक और रोगनाशक द्रव्यों का अग्नि में होम करें जिससे जलों की शुद्धि हो । जो जल आदि की शुद्धि करते हैं वे पुण्यात्मा होते हैं । जल की शुद्धि से ही सब की शुद्धि होती है ।

मन्त्र में अनेक प्रकार के जलों का वर्णन है—आपः=साधारण जल । वार्=सुन्दर जल । उदक=आर्द्रकारक जल । तिष्ठन्ती=स्थिर जल । स्रवन्ती=शीघ्रगामी जल । स्यन्दमान=बहने वाले जल । कूप्य=कूए के जल । सूद्य=अच्छे प्रकार गीला करने वाले वर्षा-जल । धार्य=धारण करने योग्य जल । अर्णव=आकाश-समुद्र के जल । समुद्र=पृथिवी-समुद्र के जल । सरिर=स्वच्छ जल । जो मनुष्य इन सब जलों को होम से शुद्ध करते हैं वे सबके लिए सुखदायक होते हैं॥ २२ । २५ ॥

प्रजापतिः । **वातादयः**=स्पष्टम् ॥ विराडभिकृतिः । ऋषभः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

होम किसलिए करना चाहिए, इसका फिर उपदेश किया है ॥

वाताय स्वाहा धूमाय स्वाहाभ्राय स्वाहा मेघाय स्वाहा विद्योतमानाय स्वाहा स्तनयते स्वाहावस्फूर्जते स्वाहा वर्षते स्वाहाववर्षते स्वाहोग्रं वर्षते स्वाहा शीघ्रं वर्षते स्वाहोद्गृह्णते स्वाहोद्गृहीताय स्वाहा प्रुष्णते स्वाहा शीकायते स्वाहा प्रुष्वाभ्यः स्वाहा ह्रादुनीभ्यः स्वाहा नीहाराय स्वाहा ॥ २६ ॥

पदार्थः—(वाताय) यो वाति तस्मै **(स्वाहा)** **(धूमाय)** **(स्वाहा)** **(अभ्राय)** मेघनिमित्ताय **(स्वाहा)** **(मेघाय)** यो मेहति=सिञ्चति तस्मै **(स्वाहा)** **(विद्योतमानाय)** विद्युतः प्रवर्त्तकाय **(स्वाहा)** **(स्तनयते)** दिव्यं शब्दं कुर्वते **(स्वाहा)** **(अवस्फूर्जते)** अधो वज्रवद् घातं कुर्वते **(स्वाहा)** **(वर्षते)** यो वर्षति तस्मै **(स्वाहा)** **(अववर्षते)** **(स्वाहा)** **(उग्रम्)** तीव्रम् **(वर्षते)** **(स्वाहा)** **(शीघ्रम्)** तूर्णम् **(वर्षते)** **(स्वाहा)** **(उद्गृह्णते)** य उर्ध्वं गृह्णाति तस्मै **(स्वाहा)** **(उद्गृहीताय)** ऊर्ध्वं गृहीतं जलं येन तस्मै **(स्वाहा)** **(प्रुष्णते)** पुष्टिं पूरयते **(स्वाहा)** **(शीकायते)** यः शीकं=सेचनं करोति तस्मै **(स्वाहा)** **(प्रुष्वाभ्यः)** पूर्णाभ्यः **(स्वाहा)** **(ह्रादुनीभ्यः)** अव्यक्तं शब्दं कुर्वतीभ्यः **(स्वाहा)** **(नीहाराय)** कुहकाय **(स्वाहा)** ॥ २६ ॥

अन्वयः—यैर्मनुष्यैर्वाताय स्वाहा धूमाय स्वाहाऽभ्राय स्वाहा मेघाय स्वाहा विद्योतमानाय स्वाहा स्तनयते स्वाहाऽवस्फूर्जते स्वाहा वर्षते स्वाहाऽववर्षते स्वाहोग्रं वर्षते स्वाहा शीघ्रं वर्षते स्वाहोद्-

गृह्णते स्वाहोद्गृहीताय स्वाहा प्रुष्णते स्वाहा शीकायते स्याहा प्रुष्वाभ्यः स्वाहा ह्लादुनीभ्यः स्वाहा नीहाराय स्वाहा च प्रयुज्यते ते प्राणप्रिया जायन्ते ॥ २६ ॥

सपदार्थान्वयः—**यैर्मनुष्यैर्वाताय** यो वाति तस्मै **स्वाहा, धूमाय स्वाहा, अभ्राय** मेघ-निमित्ताय **स्वाहा, मेघाय** यो मेहति=सिञ्चति तस्मै **स्वाहा विद्योतमानाय** विद्युतः प्रवर्त्तकाय **स्वाहा, स्तनयते** दिव्यं शब्दं कुर्वते **स्वाहा, अवस्फूर्जते** अधो वज्रवद् घातं कुर्वते **स्वाहा, वर्षते** यो वर्षति तस्मै **स्वाहा, अववर्षते स्वाहा, उग्रं** तीव्रं **वर्षते** यो वर्षति तस्मै **स्वाहा, शीघ्रं** तूर्णं **वर्षते** यो वर्षति तस्मै **स्वाहा, उद्गृह्णते** य ऊर्ध्वं गृह्णाति तस्मै **स्वाहा, उद्गृहीताय** ऊर्ध्वं गृहीतं जलं येन तस्मै **स्वाहा, प्रुष्णते** पुष्टिपूरयते **स्वाहा, शीकायते** यः शीकं=सेचनं करोति तस्मै **स्वाहा, प्रुष्वाभ्यः** पूर्णाभ्यः **स्वाहा, ह्लादुनीभ्यः** अव्यक्तं शब्दं कुर्वतीभ्यः **स्वाहा, नीहाराय** कुहकाय **स्वाहा च प्रयुज्यते ते प्राणप्रिया जायन्ते** ॥ २२ । २६ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य—(वाताय) वायु के लिए (स्वाहा) शुद्धिकारक यज्ञ क्रिया, (धूमाय) धूम के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (अभ्राय) मेघ के निमित्त के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (मेघाय) मेघ के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (विद्योतमानाय) विद्युत् के प्रवर्त्तक मेघ के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (स्तनयते) दिव्य शब्द करने वाले मेघ के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (अवस्फूर्जते) नीचे वज्र के समान घात करने वाली विद्युद् के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (वर्षते) बरसने वाले मेघ के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (अववर्षते) नीचे होकर बरसने वाले मेघ के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (उग्रम्) तीव्र=तेज (वर्षते) बरसने वाले मेघ के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (शीघ्रम्) शीघ्र (वर्षते) बरसने वाले मेघ के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (उद्गृह्णते) ऊपर जल को ग्रहण करने वाले मेघ के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (उद्गृहीताय) ऊपर जल को ग्रहण किये हुए मेघ के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (प्रुष्णते) पुष्टि को पूरण करने वाले मेघ के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (शीकायते) सेचन करने वाले मेघ के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (प्रुष्वाभ्यः) पूर्ण वर्षा के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (ह्लादुनीभ्यः) अव्यक्त शब्द करने वाली वर्षा के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया और (नीहाराय) कुहरे के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया का प्रयोग करते हैं वे प्राणों के समान प्रिय होते हैं ॥ २२ । २६ ॥

भावार्थः—ये यथाविध्यग्निहोत्रादीन् कुर्वन्ति, ते वाय्वादिशोधका भूत्वा सर्वेषां हितकरा भवन्ति ॥ २२ । २६ ॥

भावार्थ—जो यथाविधि अग्निहोत्र आदि यज्ञ करते हैं वे वायु आदि के शोधक होकर सब के हितकारी होते हैं ॥ २२ । २६ ॥

भाष्यसार—होम किसलिए करें—सब मनुष्य यथाविधि अग्निहोत्र करें क्योंकि होम से वात=वायु, धूम और मन्त्रोक्त सब प्रकार के मेघों एवं विद्युत् की शुद्धि होती है। जो होम से वायु आदि की शुद्धि करते हैं वे प्राणों के समान प्रिय एवं सब के हितकारी होते हैं ॥ २२ । २६ ॥

प्रजापतिः । **अग्न्यादयः**=स्पष्टम् । जगती । निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

होम किस लिए करना चाहिए, इसका फिर उपदेश किया है ॥

अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहेन्द्राय स्वाहा पृथिव्यै स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा दिग्भ्यः स्वाहाशाभ्यः स्वाहोर्व्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा ॥ २७ ॥

पदार्थः—(**अग्नये**) जाठराग्नये (**स्वाहा**) (**सोमाय**) उत्तमाय रसाय (**स्वाहा**) (**इन्द्राय**) जीवाय विद्युते परमैश्वर्याय वा (**स्वाहा**) (**पृथिव्यै**) (**स्वाहा**) (**अन्तरिक्षाय**) आकाशाय (**स्वाहा**) (**दिवे**) प्रकाशाय (**स्वाहा**) (**दिग्भ्यः**) (**स्वाहा**) (**आशाभ्यः**) व्यापिकाभ्यः (**स्वाहा**) (**उर्व्यै**) बहुरूपायै (**दिशे**) (**स्वाहा**) (**अर्वाच्यै**) निम्नायै (**दिशे**) (**स्वाहा**) ॥ २७ ॥

अन्वयः—मनुष्यैरग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहेन्द्राय स्वाहा पृथिव्यै स्वाहाऽन्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा दिग्भ्यः स्वाहाऽशाभ्यः स्वाहोर्व्यै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे स्वाहा चाऽवश्यं विधेयाः ॥ २७ ॥

सपदार्थान्वयः-**मनुष्यैरग्नये** जाठराऽग्नये **स्वाहा, सोमाय** उत्तमाय रसाय **स्वाहा, इन्द्राय** जीवाय विद्युते परमैश्वर्याय वा **स्वाहा, पृथिव्यै स्वाहा, अन्तरिक्षाय** आकाशाय **स्वाहा, दिवे** प्रकाशाय **स्वाहा, दिग्भ्यः स्वाहा आशाभ्यः** व्यापिकाभ्यः **स्वाहा, उर्व्यै** बहुरूपायै **दिशे स्वाहा, अर्वाच्यै** निम्नायै **दिशे स्वाहा चाऽवश्यं विधेयाः** ॥ २२ । २७ ॥

भाषार्थ—मनुष्य—(अग्नये) जाठर अग्नि के लिए (स्वाहा) यज्ञ क्रिया, (सोमाय) उत्तम रस के लिए (स्वाहा) यज्ञ क्रिया, (इन्द्राय) जीव, विद्युत् वा परमेश्वर के लिए (स्वाहा) यज्ञ क्रिया, (पृथिव्यै) पृथिवी के लिए (स्वाहा) यज्ञ क्रिया, (अन्तरिक्षाय) आकाश के लिए (स्वाहा) यज्ञ क्रिया, (दिवे) प्रकाश के लिए (स्वाहा) यज्ञ क्रिया, (दिग्भ्यः) दिशाओं के लिए (स्वाहा) यज्ञ क्रिया, (आशाभ्यः) व्यापक दिशाओं के लिए (स्वाहा) यज्ञ क्रिया, (उर्व्यै) बहुत रूप वाली (दिशे) दिशा के लिए (स्वाहा) यज्ञ क्रिया और (अर्वाच्यै) नीचे की (दिशे) दिशा के लिए (स्वाहा) यज्ञ क्रिया अवश्य करें ॥ २२ । २७ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या अग्निद्वारा ओषध्यादिषु सुगन्ध्यादिद्रव्यं विस्तारयेयुस्ते जगद्धितकराः स्युः ॥ २२ । २७ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अग्नि के द्वारा ओषधि आदि में सुगन्धि आदि चार द्रव्यों का विस्तार करते हैं वे जगत् के हितकारी होते है ॥ २२ । २७ ॥

भाष्यसार—**होम किसलिए करें**—सब मनुष्य जठराग्नि, उत्तम रस, जीव, विद्युत् वा परम ऐश्वर्य, आकाश, प्रकाश और दिशाओं की शुद्धि के लिए होम अवश्य करें। होम के द्वारा सुगन्धि आदि चार प्रकार का द्रव्य ओषधि आदि में फैल जाता है और ओषधि आदि पदार्थों को शुद्ध करता है। जो मनुष्य होम से ओषधि आदि पदार्थों को शुद्ध करते हैं वे जगत् के हितकारी हैं ॥ २२ । २७ ॥ ●

प्रजापतिः । **नक्षत्रादयः**=स्पष्टम् । भुरिगष्टिः । मध्यमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

होम किसलिए करना चाहिए, इसका फिर उपदेश किया है ॥

नक्षत्रेभ्यः स्वाहा नक्षत्रियेभ्यः स्वाहाहोरात्रेभ्यः स्वाहार्धमासेभ्यः स्वाहा मासेभ्यः स्वाहऽऋतुभ्यः स्वाहार्त्तवेभ्यः स्वाहा संवत्सराय स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याᳪं स्वाहा चन्द्राय स्वाहा सूर्याय स्वाहा रश्मिभ्यः स्वाहा वसुभ्यः स्वाहा रुद्रेभ्यः स्वाहादित्येभ्यः स्वाहा मरुद्भ्यः स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा मूलेभ्यः स्वाहा शाखाभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा पुष्पेभ्यः स्वाहा फलेभ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा ॥ २८ ॥

पदार्थः—(**नक्षत्रेभ्यः**) अक्षीणेभ्यः (**स्वाहा**) (**नक्षत्रियेभ्यः**) नक्षत्राणां समूहेभ्यः (**स्वाहा**) (**अहोरात्रेभ्यः**) अहर्निशेभ्यः (**स्वाहा**) (**अर्द्धमासेभ्यः**) (**स्वाहा**) (**मासेभ्यः**) (**स्वाहा**) (**ऋतुभ्यः**) (**स्वाहा**) (**आर्त्तवेभ्यः**) ऋतुजातेभ्यः (**स्वाहा**) (**संवत्सराय**) (**स्वाहा**) (**द्यावापृथिवीभ्याम्**) भूमिप्रकाशाभ्याम् (**स्वाहा**) (**चन्द्राय**) (**स्वाहा**) (**सूर्याय**) (**स्वाहा**) (**रश्मिभ्यः**) किरणेभ्यः (**स्वाहा**) (**वसुभ्यः**) पृथिव्यादिभ्यः (**स्वाहा**) (**रुद्रेभ्यः**) प्राणजीवेभ्यः (**स्वाहा**) (**आदित्येभ्यः**) अविनाशिभ्यः कालावयवेभ्यः (**स्वाहा**) (**मरुद्भ्यः**) (**स्वाहा**) (**विश्वेभ्यः**) सर्वेभ्यः (**देवेभ्यः**) दिव्यगुणेभ्यः (**स्वाहा**) (**मूलेभ्यः**) (**स्वाहा**) (**शाखाभ्यः**) (**स्वाहा**) (**वनस्पतिभ्यः**) (**स्वाहा**) (**पुष्पेभ्यः**) (**स्वाहा**) (**फलेभ्यः**) (**स्वाहा**) (**ओषधीभ्यः**) (**स्वाहा**) ॥ २८ ॥

अन्वयः—मनुष्यैर्नक्षत्रेभ्यः स्वाहा नक्षत्रियेभ्यः स्वाहाऽहोरात्रेभ्यः स्वाहाऽर्द्धमासेभ्यः स्वाहा मासेभ्यः स्वाहार्त्तुभ्यः स्वाहाऽऽर्त्तवेभ्यः स्वाहा संवत्सराय स्वाहा द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा चन्द्राय स्वाहा सूर्याय स्वाहा रश्मिभ्यः स्वाहा वसुभ्यः स्वाहा रुद्रेभ्यः स्वाहाऽऽदित्येभ्यः स्वाहा मरुद्भ्यः स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा मूलेभ्यः स्वाहा शाखाभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा पुष्पेभ्यः स्वाहा फलेभ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा चावश्यमनुष्ठेयाः ॥ २८ ॥

सपदार्थान्वयः -- **मनुष्यैर्नक्षत्रेभ्यः** अक्षीणेभ्यः **स्वाहा, नक्षत्रियेभ्यः** नक्षत्राणां समूहेभ्यः **स्वाहा, अहोरात्रेभ्यः** अहर्निशेभ्यः **स्वाहा, अर्द्धमासेभ्यः स्वाहा, मासेभ्यः स्वाहा, ऋतुभ्यः स्वाहा, आर्त्तवेभ्यः** ऋतुजातेभ्यः **स्वाहा, संवत्सराय स्वाहा, द्यावापृथिवीभ्यां** भूमिप्रकाशाभ्यां **स्वाहा, चन्द्राय स्वाहा, सूर्याय स्वाहा, रश्मिभ्यः** किरणेभ्यः **स्वाहा, वसुभ्यः** पृथिव्यादिभ्यः **स्वाहा, रुद्रेभ्यः** प्राणजीवेभ्यः **स्वाहा, आदित्येभ्यः** अविनाशिभ्यः कालावयवेभ्यः **स्वाहा, मरुद्भ्यः स्वाहा, विश्वेभ्यः** सर्वेभ्यः **देवेभ्यः** दिव्यगुणेभ्यः **स्वाहा, मूलेभ्यः स्वाहा, शाखाभ्यः स्वाहा, वनस्पतिभ्यः स्वाहा,**

भाषार्थ—मनुष्य—(नक्षत्रेभ्यः) क्षीण न होने वाले नक्षत्रों के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (नक्षत्रियेभ्यः) नक्षत्र-समूह के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (अहोरात्रेभ्यः) दिन-रातों के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (अर्द्धमासेभ्यः) अर्द्ध-मास पक्षों के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (मासेभ्यः) मासों के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (ऋतुभ्यः) ऋतुओं के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (आर्त्तवेभ्यः) ऋतुओं में उत्पन्न पदार्थों के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (संवत्सराय) वर्ष के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (द्यावा भूमिभ्याम्) भूमि और प्रकाश के लिए (स्वाहा) यज्ञ क्रिया, (चन्द्राय) चन्द्र के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया,

पुष्पेभ्यः स्वाहा, फलेभ्यः स्वाहा, ओषधीभ्यः स्वाहा चावश्यमनुष्ठेयाः ॥ २२ । २८ ॥

(सूर्याय) सूर्य के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (रश्मिभ्यः) किरणों के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (वसुभ्यः) पृथिवी आदि वसुओं के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (रुद्रेभ्यः) प्राणधारी जीवों के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (आदित्येभ्यः) अविनाशी काल के अवयवों के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (मरुद्भ्यः) पवनों के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (विश्वेभ्यः) सब (देवेभ्यः) दिव्य गुण युक्त पदार्थों के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (मूलेभ्यः) मूलों के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (शाखाभ्यः) शाखाओं के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (वनस्पतिभ्यः) वनस्पतियों के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (पुष्पेभ्यः) फूलों के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (फलेभ्यः) फलों के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, और (ओषधीभ्यः) ओषधियों के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया का अवश्य अनुष्ठान करें ॥ २२ । २८ ॥

भावार्थः—मनुष्या नित्यं सुगन्ध्यादिद्रव्यमग्नौ प्रक्षिप्य तद्वायुरश्मिद्वारा वनस्पत्योषधिमूल-शाखा-पुष्प-फलादिषु प्रवेश्य सर्वेषां पदार्थानां शुद्धिं कृत्वाऽऽरोग्यं सम्पादयन्तु ॥ २२ । २८ ॥

भावार्थ—मनुष्य—प्रतिदिन सुगन्धि आदि द्रव्य को अग्नि में होम कर, उसे वायु और सूर्य-किरणों के द्वारा वनस्पति और ओषधियों के मूल, शाखा, पुष्प और फल आदि में प्रविष्ट कर, सब पदार्थों की शुद्धि करके आरोग्य को सिद्ध करें ॥ २२ । २८ ॥

भाष्यसार—**होम किस लिए करें**—सब मनुष्य—नक्षत्र, नक्षत्रसमूह, दिन-रात, पक्ष, मास, ऋतु, ऋतुओं में उत्पन्न पदार्थ, वर्ष, भूमि और प्रकाश, चन्द्र, सूर्य, किरण, पृथिवी आदि वसु, प्राणधारी जीव, काल के अवयव, वायु, सब दिव्य गुण-युक्त पदार्थ, मूल, शाखा, वनस्पति, पुष्प, फल और औषधियों की शुद्धि के लिए होम अवश्य करें। होम करने से सुगन्धि आदि द्रव्य वायु और सूर्य-रश्मियों के द्वारा वनस्पति और औषधियों के मूल तथा शाखा आदि में प्रविष्ट होकर सब पदार्थों को शुद्ध करता है, जिससे आरोग्य की सिद्धि होती है ॥ २२ । २८ ॥ ●

प्रजापतिः । **लिङ्गोक्ताः**=पृथिव्यादयः । निचृदत्यष्टिः । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

होम किसलिए करना चाहिए, इसका फिर उपदेश किया है ॥

पृथिव्यै स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा सूर्यीय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहाद्भ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा परिप्लवेभ्यः स्वाहा चराचरेभ्यः स्वाहा सरीसृपेभ्यः स्वाहा ॥ २९ ॥

पदार्थः—(**पृथिव्यै**) विस्तृतायै धरित्र्यै (**स्वाहा**) उत्तमयज्ञक्रिया (**अन्तरिक्षाय**) आकाशाय (**स्वाहा**) उक्ता क्रिया (**दिवे**) विद्युतः शुद्धये (**स्वाहा**) यज्ञक्रिया (**सूर्याय**) आदित्यमण्डलाय (**स्वाहा**) तदनुरूपा क्रिया (**चन्द्राय**) चन्द्रमण्डलाय (**स्वाहा**) उत्तमक्रिया (**नक्षत्रेभ्यः**) तारकेभ्यः (**स्वाहा**) (**अद्भ्यः**) (**स्वाहा**) (**ओषधीभ्यः**) (**स्वाहा**) (**वनस्पतिभ्यः**) (**स्वाहा**) (**परिप्लवेभ्यः**) तारकेभ्यः (**स्वाहा**) (**चराचरेभ्यः**) स्थावरजंगमेभ्यः (**स्वाहा**) (**सरीसृपेभ्यः**) सर्प्पादिभ्यः (**स्वाहा**) ।। २६ ।।

अन्वयः—यदि मनुष्याः पृथिव्यै स्वाहाऽन्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा सूर्य्याय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहाऽद्भ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा परिप्लवेभ्यः स्वाहा चराचरेभ्यः स्वाहा सरीसृपेभ्यः स्वाहा प्रयुञ्जीरँस्तर्हि सर्वं शुद्धं कर्त्तुं प्रभवेयुः ।। २६ ।।

सपदार्थान्वयः—**यदि मनुष्याः पृथिव्यै** विस्तृतायै धरित्र्यै **स्वाहा** उत्तमयज्ञक्रिया, **अन्तरिक्षाय** आकाशाय **स्वाहा** उक्ता क्रिया, **दिवे** विद्युतः शुद्धये **स्वाहा** यज्ञक्रिया, **सूर्याय** आदित्यमण्डलाय **स्वाहा** तदनुरूपा क्रिया, **चन्द्राय** चन्द्रमण्डलाय **स्वाहा** उत्तमक्रिया, **नक्षत्रेभ्यः** तारकेभ्यः **स्वाहा, अद्भ्यः स्वाहा, ओषधीभ्यः स्वाहा, वनस्पतिभ्यः स्वाहा, परिप्लवेभ्यः** तारकेभ्यः **स्वाहा, चराचरेभ्यः** स्थावर-जङ्गमेभ्यः **स्वाहा, सरीसृपेभ्यः** सर्प्पादिभ्यः **स्वाहा प्रयुञ्जीरँस्तर्हि सर्वं शुद्धं कर्त्तुं प्रभवेयुः** ।। २२।२६ ।।

भाषार्थ—यदि मनुष्य—(पृथिव्यै) विस्तृत धरती के लिए (स्वाहा) उत्तम यज्ञक्रिया (अन्तरिक्षाय) आकाश के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (दिवे) विद्युत् की शुद्धि के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (सूर्याय) सूर्य-मण्डल के लिए (स्वाहा) तदनुरूप यज्ञ-क्रिया, (चन्द्राय) चन्द्र-मण्डल के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (नक्षत्रेभ्यः) तारात्रों के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (अद्भ्यः) जलों के लिए (स्वाहा)यज्ञ-क्रिया, (ओषधीभ्यः) ओषधियों के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (वनस्पतिभ्यः) वनस्पतियों के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (परिप्लवेभ्यः) गतिशील ताराओं के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (चराचरेभ्यः) चर जङ्गम और अचर स्थावर पदार्थों के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (सरीसृपेभ्यः) सर्प आदि के लिए (स्वाहा) उत्तम यज्ञ-क्रिया का प्रयोग करें तो सब को शुद्ध करने में समर्थ होवें ।।२२।२६।।

भावार्थः—ये सुगन्ध्यादिद्रव्यं पृथिव्यादिष्वग्निद्वारा विस्तार्य्य वायुजलद्वारा ओषधीषु प्रवेश्य सर्वं संशोध्याऽऽरोग्यं सम्पादयन्ति त आयुर्वर्द्धका भवन्ति ।। २२ । २६ ।।

भावार्थ—जो मनुष्य—सुगन्धि आदि द्रव्य को पृथिवी आदि में अग्नि के द्वारा फैला कर, वायु और जल के द्वारा ओषधियों में प्रविष्ट कर, सब को शुद्ध करके आरोग्य को सिद्ध करते हैं वे आयु को बढ़ाने वाले होते हैं ।। २२ । २६ ।।

भाष्यसार—**होम किसलिए करें**—सब मनुष्य—पृथिवी, आकाश, विद्युत्, सूर्य-मण्डल, चन्द्र-मण्डल, नक्षत्र, जल, ओषधि, वनस्पति, गतिशील तारा-गण, स्थावर और जङ्गम पदार्थ और सर्प आदि सरीसृप प्राणियों की शुद्धि के लिए होम करें। होम से सुगन्धि आदि द्रव्य पृथिवी आदि में फैल कर वायु और जल के द्वारा ओषधियों में प्रविष्ट होकर सब को शुद्ध करके आरोग्य को उत्पन्न करता है। इससे आयु की वृद्धि होती है ।। २२ । २६ ।।

प्रजापतिः । **वस्वादयः**=प्राणादयः । कृतिः । निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

होम किसलिए करना चाहिए, इसका फिर उपदेश किया है ॥

असवे स्वाहा वसवे स्वाहा विभुवे स्वाहा विवस्वते स्वाहा गणश्रिये स्वाहा गणपतये स्वाहाभिभुवे स्वाहाधिपतये स्वाहा शूषाय स्वाहा सꣳसर्पाय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा ज्योतिषे स्वाहा मलिम्लुचाय स्वाहा दिवा पतये स्वाहा ॥ ३० ॥

पदार्थः—(**असवे**) प्राणाय (**स्वाहा**) (**वसवे**) योऽस्मिन् शरीरे वसति तस्मै जीवाय (**स्वाहा**) (**विभुवे**) व्यापकाय वायवे (**स्वाहा**) (**विवस्वते**) सूर्याय (**स्वाहा**) (**गणश्रिये**) या गणानां=समूहानां श्रीः=शोभा तस्यै विद्युते (**स्वाहा**) (**गणपतये**) समूहानां पालकाय वायवे (**स्वाहा**) (**अभिभुवे**) अभिमुखं भावुकाय (**स्वाहा**) (**अधिपतये**) सर्वस्वामिने राज्ञे (**स्वाहा**) (**शूषाय**) बलाय=सैन्याय (**स्वाहा**) (**संसर्पाय**) यः सम्यक् सर्पति=गच्छति तस्मै (**स्वाहा**) (**चन्द्राय**) सुवर्णाय । **चन्द्रमिति हिरण्यनाम० ॥ निघं० १ । २ ॥** (**स्वाहा**) (**ज्योतिषे**) प्रदीपनाय (**स्वाहा**) (**मलिम्लुचाय**) स्तेनाय । **मलिम्लुच इति स्तेननाम० ॥ निघं० ३ । २४ ॥** (**स्वाहा**) (**दिवा, पतये**) दिनस्य पालकाय सूर्याय (**स्वाहा**) ॥ ३० ॥

प्रमाणार्थ—(चन्द्राय) सुवर्णाय । 'चन्द्र' यह पद निघं० (१ । २) में हिरण्य-नामों में पठित है । (मलिम्लुचाय) स्तेनाय । 'मलिम्लुच' यह पद निघं (३ । २४) में स्तेन (चोर) नामों में पठित है ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यूयमसवे स्वाहा वसवे स्वाहा विभुवे स्वाहा विवस्वते स्वाहा गणश्रिये स्वाहा गणपतये स्वाहाऽभिभुवे स्वाहाऽधिपतये स्वाहा शूषाय स्वाहा संसर्पाय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा ज्योतिषे स्वाहा मलिम्लुचाय स्वाहा दिवापतये स्वाहा च प्रयुङ्ध्वम् ॥ ३० ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! **यूयमसवे** प्राणाय **स्वाहा, वसवे** योऽस्मिन् शरीरे वसति तस्मै जीवाय **स्वाहा, विभुवे** व्यापकाय वायवे **स्वाहा, विवस्वते** सूर्याय **स्वाहा, गणश्रिये** या गणानां=समूहानां श्रीः=शोभा तस्यै विद्युते **स्वाहा, गणपतये** समूहानां पालकाय वायवे **स्वाहा, अभिभुवे** अभिमुखं भावुकाय **स्वाहा, अधिपतये** सर्वस्वामिने राज्ञे **स्वाहा, शूषाय** बलाय=सैन्याय **स्वाहा, संसर्पाय** यः सम्यक् सर्पति=गच्छति तस्मै **स्वाहा, चन्द्राय** सुवर्णाय **स्वाहा, ज्योतिषे** प्रदीपनाय **स्वाहा, मलिम्लुचाय** स्तेनाय **स्वाहा, दिवापतये** दिनस्य पालकाय सूर्याय **स्वाहा च प्रयुङ्ध्वम्** ॥ २२ । ३० ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—(असवे) प्राण के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (वसवे) इस संसार में बसने वाले जीव के लिए (स्वाहा) यज्ञ क्रिया, (विभुवे) व्यापक वायु के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (विवस्वते) सूर्य के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (गणश्रिये) गणों=समूहों की श्री=शोभा रूप विद्युत् के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (गणपतये) गणों=समूहों के पालक वायु के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (अभिभुवे) अभिमुख रहने वाले अग्नि के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (अधिपतये) सब के स्वामी राजा के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (शूषाय) बल=सेना के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (संसर्पाय) संसर्पण=रींग कर चलने वाले प्राणी के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (चन्द्राय) सोने के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (ज्योतिषे) प्रकाश के

लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (मलिम्लुचाय) स्तेन=चोर के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, और (दिवापतये) दिन के पालक सूर्य के लिए (स्वाहा) उत्तम यज्ञ-क्रिया का प्रयोग करो ॥ २२ । ३० ॥

भावार्थः—मनुष्यैः प्राणादिशुद्धयेऽग्नौ पुष्टिकरादिद्रव्यं होतव्यम् ॥ २२ । ३० ॥

भावार्थ—मनुष्य प्राण आदि की शुद्धि के लिए अग्नि में, पुष्टिकारक आदि द्रव्यों का होम करें ॥ २२ । ३० ॥

भाष्यसार—**होम किसलिए करें**—सब मनुष्य—प्राण, जीव, व्यापक वायु, सूर्य, विद्युत्, गणपालक वायु, अभिमुख रहने वाले अग्नि, सब के स्वामी राजा, सेना, सर्पणशील प्राणी, सुवर्ण, ज्योति, चोर, दिनपति सूर्य की शुद्धि के लिए पुष्टिकारक आदि द्रव्यों का अग्नि में होम करें ॥ २२ । ३० ॥ ●

प्रजापतिः । **भास्त्राः=स्पष्टम्** । भुरिगत्यष्टिः । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

होम किसलिए करना चाहिए, इसका फिर उपदेश किया है ॥

मधवे स्वाहा माधवाय स्वाहा शुक्राय स्वाहा शुचये स्वाहा नभसे स्वाहा नभस्याय स्वाहेषाय स्वाहोर्जाय स्वाहा सहसे स्वाहा सहस्याय स्वाहा तपसे स्वाहा तपस्याय स्वाहांᳫ्हसस्पतये स्वाहा ॥ ३१ ॥

पदार्थः—(**मधवे**) मधुरादिगुणोत्पादकाय चैत्राय (**स्वाहा**) (**माधवाय**) वैशाखाय (**स्वाहा**) (**शुक्राय**) शुद्धिकराय ज्यैष्ठाय (**स्वाहा**) (**शुचये**) पवित्रकरायाऽऽषाढाय (**स्वाहा**) (**नभसे**) जलवर्षकाय श्रावणाय (**स्वाहा**) (**नभस्याय**) नभसि भवाय भाद्राय (**स्वाहा**) (**इषाय**) अन्नोत्पादकायाऽऽश्विनाय (**स्वाहा**) (**ऊर्जाय**) बलान्नोत्पादकाय कार्त्तिकाय (**स्वाहा**) (**सहसे**) बलप्रदाय मार्गशीर्षाय (**स्वाहा**) (**सहस्याय**) सहसि साधवे पौषाय (**स्वाहा**) (**तपसे**) तप उत्पादकाय माघाय (**स्वाहा**) (**तपस्याय**) तपसि साधवे फाल्गुनाय (**स्वाहा**) (**अंहसः**) श्लिष्टस्य (**पतये**) पालकाय (**स्वाहा**) ॥ ३१ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः भवन्तो मधवे स्वाहा माधवाय स्वाहा शुक्राय स्वाहा शुचये स्वाहा नभसे स्वाहा नभस्याय स्वाहेषाय स्वाहोर्जाय स्वाहा सहसे स्वाहा सहस्याय स्वाहा तपसे स्वाहा तपस्याय स्वाहांऽहसस्पतये स्वाहा चानुतिष्ठन्तु ॥ ३१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! **भवन्तो मधवे** मधुरादिगुणोत्पादकाय चैत्राय **स्वाहा**, **माधवाय** वैशाखाय **स्वाहा**, **शुक्राय** शुद्धिकराय ज्यैष्ठाय **स्वाहा**, **शुचये** पवित्रकरायाऽऽषाढाय **स्वाहा**, **नभसे** जलवर्षकाय श्रावणाय **स्वाहा**, **नभस्याय** नभसि भवाय भाद्राय, **स्वाहा**, **इषाय** अन्नोत्पादाकायाऽऽश्विनाय **स्वाहा**, **ऊर्जाय** बलान्नोत्पादकाय कार्त्तिकाय **स्वाहा**, **सहसे** बलप्रदाय मार्गशीर्षाय

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! आप—(मधवे) मधुर आदि गुणों के उत्पादक चैत्र मास के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (माधवाय) वैशाख मास के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (शुक्राय) शुद्धि करने वाले ज्येष्ठ मास के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (शुचये) पवित्र करने वाले आषाढ मास के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया (नभसे) जल बरसाने वाले श्रावण मास के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया,

स्वाहा, सहस्याय सहसि साधवे पौषाय **स्वाहा, तपसे** तप-उत्पादकाय माघाय **स्वाहा, तपस्याय** तपसि साधवे फाल्गुनाय **स्वाहा, अंहसस्पतये** श्लिष्टस्य पालकाय **स्वाहा चानुतिष्ठन्तु** ॥२२।३१॥

(नभस्याय) नभ में विद्यमान भाद्रपद के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (इषाय) अन्न के उत्पादक आश्विन मास के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (ऊर्जाय) बल और अन्न के उत्पादक कार्तिक मास के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (सहसे) बलदायक मार्गशीर्ष मास के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (सहस्याय) बल में श्रेष्ठ पौष मास के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (तपसे) तप के उत्पादक माघ मास के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (तपस्याय) तप में श्रेष्ठ फाल्गुन मास के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया और (अंहसस्पतये) महीनों में श्लिष्ट, पालक मलमास के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया का अनुष्ठान करो ॥ २२ । ३१ ॥

भावार्थः—ये प्रतिदिनमग्निहोत्रादियज्ञं, युक्ताहारविहारं च कुर्वन्ति, तेऽरोगा भूत्वा दीर्घायुषो भवन्ति ॥ २२ । ३१ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य प्रतिदिन अग्निहोत्र आदि यज्ञ और युक्त आहार-विहार करते हैं वे नीरोग होकर दीर्घायु होते हैं ॥ २२ । ३१ ॥

भाष्यसार—होम किसलिए करें—सब मनुष्य—चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन और मलमास (अधिक मास) की शुद्धि के लिए अग्निहोत्र आदि यज्ञ का अनुष्ठान करें। उक्त मासों में ऋतु अनुकूल युक्त आहार-विहार से नीरोग होकर दीर्घ आयु को प्राप्त करें ॥ २२ । ३१ ॥ ●

प्रजापतिः । **वाजादयः**=अन्नादयः । अत्यष्टिः । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

होम किसलिए करना चाहिए, इसका फिर उपदेश किया है ॥

वाजा॑य॒ स्वाहा॑ प्रस॒वाय॒ स्वाहा॑पि॒जाय॒ स्वाहा॒ क्रत॑वे॒ स्वाहा॒ स्व॒: स्वाहा॑ मू॒र्ध्ने स्वाहा॑ व्यश्नु॒विने॒ स्वाहान्त्या॑य॒ स्वाहान्त्या॑य भौव॒नाय॒ स्वाहा॒ भुव॑नस्य॒ पत॑ये॒ स्वाहाधिपतये॒ स्वाहा॑ प्र॒जाप॑तये॒ स्वाहा॑ ॥ ३२ ॥

पदार्थः—(**वाजाय**) अन्नाय (**स्वाहा**) (**प्रसवाय**) उत्पादकाय (**स्वाहा**) (**अपिजाय**) उत्पन्नाय (**स्वाहा**) (**क्रतवे**) प्रज्ञायै कर्मणे वा (**स्वाहा**) (**स्वः**) सुखाय (**स्वाहा**) (**मूर्ध्ने**) मस्तकशुद्धये (**स्वाहा**) (**व्यश्नुविने**) व्यापिने वीर्य्याय (**स्वाहा**) (**आन्त्याय**) (**स्वाहा**) (**आन्त्याय**) अन्ते भवाय (**भौवनाय**) भुवने भवाय (**स्वाहा**) (**भुवनस्य, पतये**) सर्वजगत्स्वामिने (**स्वाहा**) (**अधिपतये**) सर्वाधिष्ठात्रे (**स्वाहा**) (**प्रजापतये**) सर्वप्रजापालकाय (**स्वाहा**) ॥ ३२ ॥

अन्वयः—भो मनुष्याः ! यूयं वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहाऽपिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा स्वः स्वाहा मूर्ध्ने स्वाहा व्यश्नुविने स्वाहाऽऽन्त्याय स्वाहाऽऽन्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाऽधिपतये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा च सदा प्रयुञ्जीध्वम् ॥ ३२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! यूयं **वाजाय** अन्नाय **स्वाहा**, **प्रसवाय** उत्पादकाय **स्वाहा**, **अपिजाय** उत्पन्नाय **स्वाहा**, **क्रतवे** प्रज्ञायै कर्मणे वा **स्वाहा**, **स्वः** सुखाय **स्वाहा**, **मूर्ध्ने** मस्तकशुद्धये **स्वाहा**, **व्यश्नुविने** व्यापिने वीर्य्याय **स्वाहा** **आन्त्याय** अन्ते भवाय **स्वाहा**, **आन्त्याय** अन्ते भवाय **भौवनाय** भुवने भवाय **स्वाहा**, **भुवनस्य पतये** सर्व-जगत्स्वामिने **स्वाहा**, **अधिपतये** सर्वाधिष्ठात्रे **स्वाहा**, **प्रजापतये** सर्वप्रजापालकाय **स्वाहा च सदा प्रयुञ्जी-ध्वम्** ॥ २२ । ३२ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—(वाजाय) अन्न के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (प्रसवाय) उत्पादक पुरुष के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (अपिजाय) उत्पन्न सन्तान के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (क्रतवे) प्रज्ञा वा कर्म के लिए (स्वाहा) यज्ञ क्रिया, (स्वः) सुख के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (मूर्ध्ने) मस्तक की शुद्धि के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (व्यश्नुविने) व्यापक वीर्य के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (आन्त्याय) अन्त में विद्यमान ईश्वर के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (आन्त्याय) अन्त में विद्यमान, (भौवनाय) भुवन=लोक रूप में विद्यमान प्रकृति के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (भुवनस्य, पतये) सब जगत् के स्वामी ईश्वर के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, (अधिपतये) सब के अधिष्ठाता ईश्वर के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया, और (प्रजापतये) सब प्रजा के पालक पुरुष के लिए (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया का सदा प्रयोग करें ॥ २२ । ३२ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या अन्न-अपत्य-गृह-प्रज्ञा-मूर्द्धादिशोधनेन सुखवर्द्धनाय सत्यां क्रियां कुर्वन्ति ते परमात्मानमुपास्य प्रजाऽधिपतयो भवन्ति ॥ २२ । ३२ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अन्न, सन्तान, घर, बुद्धि और मस्तक आदि के शोधन से सुख-वृद्धि के लिए सत्य क्रिया करते हैं, वे परमात्मा की उपासना करके प्रजा के अधिपति बनते हैं ॥ २२ । ३२ ॥

भा० पदार्थः—वाजाय=अन्नशोधनाय । प्रसवाय=अपत्यशोधनाय । अपिजाय=गृह-शोधनाय । क्रतवे=प्रज्ञाशोधनाय । मूर्ध्ने=मूर्द्धशोधनाय । स्वाहा=सत्या क्रिया । स्वः=सुख-वर्द्धनाय ।

भाष्यसार—**होम किसलिए करें**—सब मनुष्य—अन्न, उत्पादक युवक, उत्पन्न सन्तान, बुद्धि, कर्म, सुख, मस्तक, शरीर में व्यापक वीर्य की शुद्धि से सुखों की वृद्धि के लिए होम करें। अन्त्य अर्थात् सृष्टि के पश्चात् प्रलय समय में विद्यमान रहने वाले ईश्वर, जीव और प्रकृति के विज्ञान के लिए सब जगत् के स्वामी, सब के अधिष्ठाता परमात्मा के लिए यज्ञ (होम) करें अर्थात् परमात्मा की उपासना करें। यज्ञ (होम) से प्रजा के पालक बनें ॥ २२ । ३२ ॥ ●

प्रजापतिः । **आयुराद्यः**=स्पष्टम् । प्रकृतिः । धैवतः ॥

मनुष्यैः स्वकीयं सर्वस्वं कस्यानुष्ठानाय समर्प्पणीयमित्याह ॥

मनुष्यों को अपना सर्वस्व किसके अनुष्ठान के लिए समर्पण करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

आयु॑र्य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ᳪ स्वाहा॑ प्रा॒णो य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ᳪ स्वाहा॑पा॒नो य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ᳪ स्वाहा॑ व्या॒नो य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ᳪ स्वाहो॑दा॒नो य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ᳪ स्वाहा॑ स॒मा॒नो य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ᳪ स्वाहा॒ चक्षु॑र्य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ᳪ स्वाहा॒ श्रोत्रं॑ य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ᳪ स्वाहा॒ वाग्य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ᳪ स्वाहा॒ मनो॑ य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ᳪ स्वाहा॒त्मा य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ᳪ स्वाहा॑ ब्र॒ह्मा य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ᳪ स्वाहा॒ ज्योति॑र्य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ᳪ स्वाहा॒ स्व॒र्य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ᳪ स्वाहा॑ पृ॒ष्ठं य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ᳪ स्वाहा॑ य॒ज्ञो य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ᳪ स्वाहा॑ ॥ ३३ ॥

पदार्थः—(**आयुः**) एति जीवनं येन तत् (**यज्ञेन**) परमेश्वरस्य विदुषां च सत्करणेन, संगतेन कर्मणा, विद्यादिदानेन सह (**कल्पताम्**) समर्प्पयतु (**स्वाहा**) सत्क्रियया (**प्राणः**) जीवनमूलो वायुः (**यज्ञेन**) योगाभ्यासादिना (**कल्पताम्**) (**स्वाहा**) (**अपानः**) अपानयति दुःखं येन सः (**यज्ञेन**) (**कल्पताम्**) (**स्वाहा**) (**व्यानः**) सर्वसंधिषु व्याप्तश्चेष्टानिमित्तः (**यज्ञेन**) (**कल्पताम्**) (**स्वाहा**) (**उदानः**) उदानिति=बलयति येन सः (**यज्ञेन**) (**कल्पताम्**) (**स्वाहा**) (**समानः**) समानयति रसं येन सः (**यज्ञेन**) (**कल्पताम्**) (**स्वाहा**) (**चक्षुः**) नेत्रम् (**यज्ञेन**) (**कल्पताम्**) (**स्वाहा**) (**श्रोत्रम्**) ज्ञानेन्द्रियाणामुपलक्षणम् (**यज्ञेन**) (**कल्पताम्**) (**स्वाहा**) (**वाक्**) कर्मेन्द्रियाणामुपलक्षणम् (**यज्ञेन**) (**कल्पताम्**) (**स्वाहा**) (**मनः**) अन्तःकरणम् (**यज्ञेन**) (**कल्पताम्**) (**स्वाहा**) (**आत्मा**) जीवः (**यज्ञेन**) (**कल्पताम्**) (**स्वाहा**) (**ब्रह्मा**) चतुर्वेदवित् (**यज्ञेन**) (**कल्पताम्**) (**स्वाहा**) (**ज्योतिः**) ज्ञानप्रकाशः (**यज्ञेन**) (**कल्पताम्**) (**स्वाहा**) (**स्वः**) सुखम् (**यज्ञेन**) (**कल्पताम्**) (**स्वाहा**) (**पृष्ठम्**) प्रश्नं शिष्टं च (**यज्ञेन**) (**कल्पताम्**) (**स्वाहा**) (**यज्ञः**) व्यापकः परमेश्वरः। **"यज्ञो वै विष्णुः" इति शतपथे** (**यज्ञेन**) परमात्मना (**कल्पताम्**) (**स्वाहा**) ॥ ३३ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः! युष्माभिरेवमेषितव्यमस्माकमायुः स्वाहा यज्ञेन सह कल्पतां प्राणः स्वाहा यज्ञेन सह कल्पतामपानः स्वाहा यज्ञेन सह कल्पतां व्यानः स्वाहा यज्ञेन सह कल्पतामुदानः स्वाहा यज्ञेन सह कल्पतां समानस्स्वाहा यज्ञेन सह कल्पतां चक्षुः स्वाहा यज्ञेन सह कल्पतां श्रोत्रं स्वाहा यज्ञेन सह कल्पतां वाक्स्वाहा यज्ञेन सह कल्पतां मनः स्वाहा यज्ञेन साकं कल्पतामात्मा स्वाहा यज्ञेन सह कल्पतां ब्रह्मा स्वाहा यज्ञेन सह कल्पतां ज्योतिस्स्वाहा यज्ञेन सह कल्पतां स्वः स्वाहा यज्ञेन सह कल्पतां पृष्ठं स्वाहा यज्ञेन सह कल्पतां यज्ञः स्वाहा यज्ञेन सह कल्पतामिति ॥ ३३ ॥

सपदार्थान्वयः — हे **मनुष्याः! युष्माभिरेवमेषितव्यमस्माकमायुः** एति जीवनं येन तत् **स्वाहा** सत्क्रियया **यज्ञेन** परमेश्वरस्य विदुषां च सत्करणेन, सङ्गतेन कर्मणा विद्यादिदानेन **सह कल्पतां** समर्प्पयतु; **प्राणः** जीवनमूलो वायुः **स्वाहा** सत्क्रियया **यज्ञेन** योगाभ्यासादिना **सह कल्पतां** समर्प्पयतु; **अपानः** अपानयति दुःखं येन सः **स्वाहा** सत्क्रियया **यज्ञेन** योगाऽभ्यासादिना **सह कल्पतां** समर्प्पयतु; **व्यानः** सर्वसन्धिषु व्याप्तश्चेष्टानिमित्तः **स्वाहा** सत्क्रियया **यज्ञेन** योगाभ्यासादिना **सह कल्पतां** समर्पयतु; **उदानः** उदानिति=बलयति येन सः

भावार्थ—हे मनुष्यो! तुम ऐसी कामना करो कि हमारी (आयुः) आयु (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया=यज्ञ एवं (यज्ञेन) परमेश्वर और विद्वानों का सत्कार, संगत कर्म और विद्या आदि के दान के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो, (प्राणः) जीवन का मूल प्राण वायु (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया एवं (यज्ञेन) योगाभ्यास आदि के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो; (अपानः) दुःख को हटाने वाला अपान (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया एवं (यज्ञेन) योगाभ्यास आदि के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो, (व्यानः) सब सन्धियों में व्याप्त चेष्टा का निमित्त व्यान

स्वाहा सत्क्रियया **यज्ञेन** योगाभ्यासादिना **सह कल्पतां** समर्प्पयतु; **समानः** समानयति रसं येन सः **स्वाहा** सत्क्रियया **यज्ञेन** योगाभ्यासादिना **सह कल्पतां** समर्प्पयतु। **चक्षुः** नेत्रं **स्वाहा** सत्क्रियया **यज्ञेन** योगाभ्यासादिना **सह कल्पतां** समर्प्पयतु। **श्रोत्रं** ज्ञानेन्द्रियाणामुपलक्षणं **स्वाहा** सत्क्रियया **यज्ञेन** योगाभ्यासादिना **सह कल्पतां** समर्प्पयतु। **वाक्** कर्मेन्द्रियाणामुपलक्षणं **स्वाहा** सत्क्रियया **यज्ञेन** योगाभ्यासादिना **सह कल्पतां** समर्प्पयतु। **मनः** अन्तःकरणं **स्वाहा** सत्क्रियया **यज्ञेन** योगाभ्यासादिना **साकं कल्पतां** समर्प्पयतु।

(स्वाहा) यज्ञ-क्रिया एवं (यज्ञेन) योगाभ्यास आदि के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो, (उदानः) बल देने वाला उदान (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया एवं (यज्ञेन) योगाभ्यास आदि के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो; (समानः) रस को समान करने वाला समान (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया एवं (यज्ञेन) योगाभ्यास आदि के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो, (चक्षुः) नेत्र (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया एवं (यज्ञेन) योगाभ्यास आदि के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो, (श्रोत्रम्) ज्ञान-इन्द्रियों का उपलक्षण श्रोत्र=कान (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया एवं (यज्ञेन) योगाभ्यास आदि के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो, (वाक्) कर्म-इन्द्रियों की उपलक्षण वाणी (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया एवं (यज्ञेन) योगाभ्यास आदि के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो, (मनः) अन्तःकरण (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया एवं (यज्ञेन) योगाभ्यास आदि के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो;

आत्मा जीवः **स्वाहा** सत्क्रियया **यज्ञेन** योगाभ्यासादिना **सह कल्पतां** समर्प्पयतु।

(आत्मा) जीव (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया एवं (यज्ञेन) योगाभ्यास आदि के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो।

ब्रह्मा चतुर्वेदवित् **स्वाहा** सत्क्रियया **यज्ञेन** योगाभ्यासादिना **सह कल्पतां** समर्प्पयतु।

(ब्रह्मा) चारों वेदों का ज्ञाता ब्रह्मा (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया एवं (यज्ञेन) योगाभ्यास आदि के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो।

ज्योतिः ज्ञानप्रकाशः **स्वाहा** सत्क्रियया **यज्ञेन** योगाभ्यासादिना **सह कल्पतां** समर्प्पयतु।

(ज्योतिः) ज्ञान-प्रकाश (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया एवं (यज्ञेन) योगाभ्यास आदि के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो।

स्वः सुखं **स्वाहा** सत्क्रियया **यज्ञेन** योगाभ्यासादिना **सह कल्पतां** समर्प्पयतु।

(स्वः) सुख (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया एवं (यज्ञेन) योगाभ्यास आदि के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो।

पृष्ठं प्रश्नं शिष्टं च **स्वाहा** सत्क्रियया **यज्ञेन** योगाभ्यासादिना **सह कल्पतां** समर्प्पयतु।

(पृष्ठम्) प्रश्न=जिज्ञासा और जो शेष है वह (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया एवं (यज्ञेन) योगाभ्यास आदि के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो।

यज्ञः व्यापकः परमेश्वरः **स्वाहा** सत्क्रियया **यज्ञेन** योगाभ्यासादिना **सह कल्पतां** समर्प्पयतु **इति** ॥ २२ । ३३ ॥

(यज्ञः) व्यापक परमेश्वर (स्वाहा) यज्ञ-क्रिया एवं (यज्ञेन) योगाभ्यास आदि के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो; ऐसी कामना है ॥ २२ । ३३ ॥

भावार्थः—मनुष्यैर्यावज्जीवनं, शरीरं, प्राणाः अन्तःकरणमिन्द्रियाणि, सर्वोत्तमा सामग्री च यज्ञाय विधेया। येन निष्पापाः कृतकृत्या भूत्वा

भावार्थ—मनुष्य सारी आयु, शरीर, प्राण, अन्तःकरण, इन्द्रियाँ और सर्वोत्तम सामग्री को यज्ञ के लिए समर्पित करें, जिससे पाप-रहित

परमात्मानं प्राप्येहाऽमुत्र सुखं प्राप्नुयुः ॥२२।३३॥

एवं कृत-कृत्य होकर परमात्मा को प्राप्त करके इस लोक और परलोक में सुख को प्राप्त करें ॥ २२ । ३३ ॥

भाष्यसार—**मनुष्य अपना सर्वस्व किस के लिए समर्पण करें**—सब मनुष्य अपनी आयु को होम, परमेश्वर और विद्वानों का सत्कार, संगत कर्म और विद्या आदि के दान में समर्पित करें। प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, चक्षु, श्रोत्र, वाणी, मन, आत्मा, ब्रह्मा, ज्योति=ज्ञानप्रकाश, सुख, प्रश्न=जिज्ञासु और अवशिष्ट सब पदार्थों को यज्ञ और योगाभ्यास आदि में समर्पित करें। जिससे पाप-रहित होकर कृत-कृत्य होवें। परमात्मा को प्राप्त करके इह-लोक और परलोक में सुख को प्राप्त करें ॥ २२ । ३३ ॥ ●

प्रजापतिः । **यज्ञः**=**स्पष्टम्** ॥ भुरिगुष्णिक् । धैवतः ॥

पुनः किमर्थो यज्ञोऽनुष्ठातव्य इत्याह ॥

यज्ञ का अनुष्ठान किसलिए करना चाहिए, इस विषय का फिर उपदेश किया है ॥

एकस्मै स्वाहा द्वाभ्याᳪं स्वाहा शताय स्वाहैकशताय स्वाहा व्युष्ट्यै स्वाहा स्वर्गाय स्वाहा ॥३४॥

पदार्थः—(**एकस्मै**) अद्वितीयाय परमात्मने (**स्वाहा**) सत्या क्रिया (**द्वाभ्याम्**) कार्यकारणाभ्याम् (**स्वाहा**) (**शताय**) असंख्याताय पदार्थाय (**स्वाहा**) (**एकशताय**) एकाधिकाय शताय (**स्वाहा**) (**व्युष्टचै**) प्रदीप्तायै दाहक्रियायै (**स्वाहा**) (**स्वर्गाय**) सुखगमकाय पुरुषार्थाय (**स्वाहा**) ॥ ३४ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! युष्माभिरेकस्मै स्वाहा द्वाभ्यां स्वाहा शताय स्वाहैकशताय स्वाहा व्युष्टयै स्वाहा स्वर्गाय स्वाहा च संप्रयोज्या ॥ ३४ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! युष्माभिरेकस्मै** अद्वितीयाय परमात्मने **स्वाहा** सत्या क्रिया, **द्वाभ्यां** कार्यकारणाभ्यां **स्वाहा** सत्या क्रिया, **शताय** असंख्याताय पदार्थाय **स्वाहा** सत्या क्रिया, **एकशताय** एकाधिकाय शताय **स्वाहा** सत्या क्रिया, **व्युष्टचै** प्रदीप्तायै दाहक्रियायै **स्वाहा** सत्या क्रिया, **स्वर्गाय** सुखगमकाय पुरुषर्थाय **स्वाहा** सत्या क्रिया **च संप्रयोज्या** ॥ २२ । ३४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—(एकस्मै) एक=अद्वितीय परमात्मा के लिए (स्वाहा) सत्य क्रिया, (द्वाभ्याम्) कार्य और कारण के लिए (स्वाहा) सत्य क्रिया, (शताय) असंख्य पदार्थों के लिए (स्वाहा) सत्य क्रिया, (एकशताय) एक सौ एक पदार्थों के लिए (स्वाहा) सत्य क्रिया, (व्युष्टचै) प्रदीप्त दाह-क्रिया के लिए (स्वाहा) सत्य क्रिया और (स्वर्गाय) सुख-प्रापक पुरुषार्थ के लिए (स्वाहा) सत्य क्रिया का प्रयोग करो ॥ २२ । ३४ ॥

भावार्थः— मनुष्यैर्भक्तिविशेषेणाऽद्वितीय ईश्वरः प्रेम-पुरुषार्थाभ्यामसंख्याता जीवाश्च प्रसन्नाः कार्याः, येनाऽऽभ्युदयनैःश्रेयसिके सुखे प्राप्येतामिति ॥ २२ । ३४ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य—भक्ति-विशेष से अद्वितीय ईश्वर को प्रेम और पुरुषार्थ से असंख्य जीवों को प्रसन्न करें। जिससे आभ्युदयिक=इस लोक और नैःश्रेयसिक=परलोक का सुख प्राप्त हो ॥ २२ । ३४ ॥

भा० पदार्थः—द्वाभ्याम्=प्रेम-पुरुषार्थाभ्याम् । शताय=असंख्यातजीवेभ्यः । स्वाहा=प्रसन्नः कार्यः । स्वर्गाय=आभ्युदयनैःश्रेयसिकसुखप्राप्तये ॥

भाष्यसार—**यज्ञ किसलिए करें**—सब मनुष्य—अद्वितीय परमात्मा की प्राप्ति के लिए सत्याचरण रूप यज्ञ का अनुष्ठान करें अर्थात् परमात्मा की भक्ति-विशेष करें। कार्य-कारण के लिए सत्य-विज्ञान रूप यज्ञ का अनुष्ठान करें। असंख्य प्राणियों को प्रसन्न करने के लिए प्रेम और पुरुषार्थ रूप यज्ञ का अनुष्ठान करें। अग्नि को प्रदीप्त करने एवं सुगन्धि आदि द्रव्यों का दाह करने के लिए यज्ञ का अनुष्ठान करें। आभ्युदयिक=ऐहलौकिक और नैःश्रेयसिक=पारलौकिक सुख की प्राप्ति रूप पुरुषार्थ की सिद्धि के लिए यज्ञ का अनुष्ठान करें ॥ २२ । ३४ ॥ ●

[पूर्वापराध्यायार्थसंगतिमाह—]

अत्र वरुणाग्निविद्वद्राजप्रजाशिल्पवाग्गृहाश्व्यृतु-होत्रादिगुणवर्णनादेतदध्यायोक्तार्थस्य पूर्वाध्यायोक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति वेद्यम् ॥ २२ ॥

इस अध्याय में—वरुण (६), अग्नि (१६), विद्वान् (२१), राजा-प्रजा (२२), शिल्प (१६), वाणी (२०), घर (३२), अश्वी (१), ऋतु (३१), होता (३३) आदि के गुणों के वर्णन से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति है, ऐसा समझें ॥ २२ ॥

इति श्रीयुतपण्डितसुदर्शनदेवाचार्यकृते दयानन्द-यजुर्वेदभाष्य-भास्करे द्वाविंशोऽध्यायः सम्पूर्णः ।

॥ ओ३म् ॥

अथ त्रयोविंशाऽध्यायारम्भः

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दु॒रि॒ता॒नि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ॥ १ ॥

य० ३० । ३ ॥

प्रजापतिः । **परमेश्वरः**=स्पष्टम् । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथेश्वरः किं करोतीत्याह ॥

अब तेईसवें अध्याय का आरम्भ है। इसके प्रथम मन्त्र में ईश्वर क्या करता है, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

हि॒र॒ण्य॒ग॒र्भः सम॑वर्त्त॒ताग्रे॑ भू॒तस्य॑ जा॒तः पति॒रेक॑ ऽ आसीत् ।
स दा॑धार पृथि॒वीं द्यामु॒तेमां कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥ १ ॥

पदार्थः—(**हिरण्यगर्भः**) हिरण्यानि=सूर्य्यादीनि ज्योतींषि गर्भे यस्य कारणरूपस्य सः (**सम्**) सम्यक् (**अवर्त्तत**) (**अग्रे**) सृष्टेः प्राक् (**भूतस्य**) उत्पन्नस्य कार्य्यरूपस्य (**जातः**) प्रादुर्भूतः (**पतिः**) स्वामी (**एकः**) असहायोऽद्वितीयेश्वरः (**आसीत्**) (**सः**) (**दाधार**) धृतवान् धरति धरिष्यति वा । अत्र "**तुजादीना**"-मित्यभ्यासदैर्घ्यम् (**पृथिवीम्**) विस्तीर्णां भूमिम् (**द्याम्**) सूर्य्यादिकां सृष्टिम् (**उत**) (**इमाम्**) प्रत्यक्षाम् (**कस्मै**) सुखस्वरूपाय (**देवाय**) सर्वसुखप्रदात्रे परमात्मने (हविषा) आत्मादिसर्वस्वदानेन (**विधेम**) परिचरेम=सेवेमहि । **विधेमेति परिचरणकर्मा० ॥ निघं० ३ । ४ ॥ १ ॥**

प्रमाणार्थ—(दाधार) यहाँ 'तुजादीनां दीर्घोऽभ्यासस्य' (६ । १ । ७) से अभ्यास को दीर्घ है ॥ (विधेम) परिचरेम । 'विधेम' यह पद निघं० (३ । ४) में परिचरण-अर्थक पदों में पठित है ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यो भूतस्य जगतोऽग्रे हिरण्यगर्भः समवर्त्तताऽस्य सर्वस्यैको जातः पतिरासीत्स इमां पृथिवीमुत द्यां दाधार तस्मै कस्मै देवाय यथा वयं हविषा विधेम तथा यूयमपि विधत्त ॥ १ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! यो **भूतस्य**=**जगतः** उत्पन्नस्य कार्यरूपस्य **अग्रे** सृष्टेः

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो (भूतस्य) उत्पन्न कार्य रूप जगत् का (अग्रे) सृष्टि से पूर्व

प्राक् **हिरण्यगर्भः** हिरण्यानि=सूर्यादीनि ज्योतींषि गर्भे यस्य कारणरूपस्य सः **समवर्त्तत** सम्यक् (अवर्त्तत); **अस्य सर्वस्यैकः** असहायोऽद्वितीयेश्वरः **जातः** प्रादुर्भूतः **पतिः** स्वामी **आसीत्, स इमां** प्रत्यक्षां **पृथिवीं** विस्तीर्णां भूमिम् **उत द्यां** सूर्य्यादिकां सृष्टिं **दाधार** धृतवान्, धरति धरिष्यति वा, **तस्मै कस्मै** सुखस्वरूपाय **देवाय** सर्वसुखप्रदात्रे परमात्मने **यथा वयं हविषा** आत्मादिसर्वस्वदानेन **विधेम** परिचरेम=सेवेमहि; **तथा यूयमपि विधत्त** ॥ २३ । १ ॥

(हिरण्यगर्भः) हिरण्य=सूर्य आदि ज्योतियों को गर्भ में धारण करने वाला (समवर्त्तत) है; और इस सब जगत् का (एकः) एक=अद्वितीय ईश्वर (जातः) प्रसिद्ध (पतिः) स्वामी (आसीत्) है; (सः) वह (इमाम्) इस (पृथिवीम्) विस्तीर्ण भूमि (उत) और (द्याम्) सूर्य आदि सृष्टि को (दाधार) तीनों कालों में धारण करता है; उस (कस्मै) सुख स्वरूप (देवाय) सब सुखों के दाता परमात्मा के लिए जैसे हम (हविषा) आत्मा आदि सर्वस्वदान से (विधेम) सेवा करते हैं, वैसे तुम भी करो ॥२३।१॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ यदा सृष्टिः प्रलयं गत्वा प्रकृतिस्था भवति, पुनरुत्पद्यते, तस्या अग्रे य एकः परमात्मा जाग्रत् सत् भवति, तदानीं सर्वे जीवा मूर्छिता इव भवन्ति, स कल्पान्ते प्रकाशरहितां पृथिव्यादिरूपां प्रकाशसहितां सूर्यादिलोकप्रभृतिं सृष्टिं विधाय धृत्वा, सर्वेषां कर्मानुकूलतया जन्मानि दत्त्वा सर्वेषां निर्वाहाय सर्वान् पदार्थान् विधत्ते, स एव सर्वैरुपासनीयो देवोऽस्तीति बोध्यम् ॥ २३ । १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है ॥ जब सृष्टि प्रलय को प्राप्त होकर प्रकृति में स्थित होती है तथा फिर उत्पन्न होती है, उससे पहले जो एक परमात्मा जाग रहा होता है, उस समय सब जीव मूर्च्छित से होते हैं, वह कल्प के अन्त में प्रकाश रहित पृथिवी आदि रूप और प्रकाश सहित सूर्य आदि लोकों की सृष्टि कर तथा उसे धारण करके, सबको कर्मानुसार जन्म देकर, सबके निर्वाह के लिए सब पदार्थों को बनाता है, वही सब का उपास्यदेव है; ऐसा समझें ॥ २३ । १ ॥

भा० पदार्थः—पृथिवीम्=प्रकाशरहितां पृथिव्यादिरूपां सृष्टिम् । द्याम्=प्रकाशसहितां सूर्यादिलोकप्रभृतिं सृष्टिम् । अग्रे=यदा सृष्टिः प्रलयं गत्वा प्रकृतिस्था भवति, पुनरुत्पद्यते तस्या अग्रे ।

भाष्यसार—१. **ईश्वर क्या करता है**—जब सृष्टि प्रलय को प्राप्त होकर प्रकृतिस्थ हो जाती है और तत्पश्चात् पुनः उत्पन्न होती है । जो उस उत्पन्न कार्यरूप जगत् अर्थात् सृष्टि से पूर्व सूर्य आदि ज्योतियों को गर्भ में धारण करने वाला है, जो इस सब जगत् का एक ही प्रसिद्ध स्वामी है, वह इस भूमि और सूर्य आदि को तीनों कालों में धारण करता है । अर्थात् कल्प के अन्त में प्रकाश रहित पृथिवी आदि और प्रकाश सहित सूर्य आदि सृष्टि को बनाकर, सब के कर्मों के अनुसार जन्म देकर, सब के निर्वाह के लिए सब पदार्थों की रचना करता है, उस सुखस्वरूप, सब सुखों के दाता परमात्मा की आत्मा आदि सर्वस्व दान से सेवा=भक्ति करें ।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचकलुप्तोपमा अलंकार है । उपमा यह है कि विद्वानों के समान सब मनुष्य मन्त्रोक्त परमात्मा की उपासना करें ॥ २३ । १ ॥

प्रजापतिः । **परमेश्वरः=स्पष्टम्** ॥ निचृदाकृतिः । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

ईश्वर विषय का फिर उपदेश किया है ॥

उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिः सूर्य्यस्ते महिमा । यस्तेऽहन्त्संवत्सरे महिमा सम्बभूव यस्ते वायावन्तरिक्षे महिमा सम्बभूव यस्ते दिवि सूर्य्ये महिमा सम्बभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये स्वाहा देवेभ्यः ॥ २ ॥

पदार्थः—(**उपयामगृहीतः**) यो यामैर्यमसवन्धिभिः कर्मभिरुपसमीपे गृहीतः=साक्षात्कृतः (**असि**) (**प्रजापतये**) प्रजापालकाय राज्ञे (**त्वा**) त्वाम् (**जुष्टम्**) प्रीतं सेवितं वा (**गृह्णामि**) (**एषः**) (**ते**) तव (**योनिः**) जगत्कारणं प्रकृतिः (**सूर्यः**) सवितृमण्डलम् (**ते**) तव (**महिमा**) माहात्म्यम् (**यः**) (**ते**) तव (**अहन्**) दिने (**संवत्सरे**) वर्षे (**महिमा**) (**सम्बभूव**) सम्भूतोऽस्ति (**यः**) (**ते**) (**वायौ**) (**अन्तरिक्षे**) (**महिमा**) (**सम्बभूव**) (**यः**) (**ते**) (**दिवि**) विद्युति सूर्यप्रकाशे वा (**सूर्ये**) (**महिमा**) (**सम्बभूव**) (**तस्मै**) (**ते**) तुभ्यम् (**महिम्ने**) महतो भावाय (**प्रजापतये**) प्रजापालकाय (**स्वाहा**) सद्विद्यायुक्ता प्रज्ञा (**देवेभ्यः**) विद्वद्भ्यः ॥ २ ॥

अन्वयः—हे भगवन् जगदीश्वर ! यस्त्वमुपयामगृहीतोऽसि तं जुष्टं त्वा प्रजापतयेऽहं गृह्णामि यस्य ते एष योनिरस्ति यस्ते सूर्यो महिमा यस्तेऽहन् संवत्सरे महिमा सम्बभूव तस्मै महिम्ने प्रजापतये ते देवेभ्यश्च स्वाहा सर्वैः संग्राह्या ॥ २ ॥

सपदार्थान्वयः—हे भगवन् जगदीश्वर ! **यस्त्वमुपयामगृहीतः** यो यामैर्यमसम्बन्धिभिः कर्मभिरुपसमीपे गृहीतः=साक्षात्कृतः **असि, तं जुष्टं** प्रीतं सेवितं वा **त्वा** त्वां **प्रजापतये** प्रजापालकाय राज्ञे **अहं गृह्णामि ।**

यस्य ते तव **एषः योनिः** जगत्कारणं प्रकृतिः **अस्ति, यस्ते** तव **सूर्यः** सवितृमण्डलं **महिमा** माहात्म्यं, **यस्ते** तव **अहन्** दिने **संवत्सरे** वर्षे **महिमा** माहात्म्यं **सम्बभूव** सम्भूतोऽस्ति, **यस्ते वायावन्तरिक्षे महिमा सम्बभूव यस्ते दिवि** विद्युति सूर्यप्रकाशे वा **सूर्ये महिमा सम्बभूव, तस्मै महिम्ने** महतो भावाय **प्रजापतये** प्रजापालकाय **ते** तुभ्यं **देवेभ्यचः** विद्वद्भ्यः **च स्वाहा** सद्विद्यायुक्ता प्रज्ञा **सर्वैः संग्राह्या** ॥ २३ । २ ॥

भावार्थः—हे मनुष्याः ! यस्य परमेश्वरस्येदं सर्वं जगन्महिमानं प्रकाशयति, तस्योपासनां

भाषार्थ—हे भगवन् ! जगदीश्वर ! जो तू—(उपयामगृहीतः) यम-सम्बन्धी कर्मों के द्वारा साक्षात् किया हुआ (असि) है, सो (जुष्टम्) प्रीति वा सेवापूर्वक (त्वा) तुझे (प्रजापतये) प्रजा के पालक राजा के लिए मैं (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ ।

जो (ते) तेरी (एषः) यह (योनिः) जगत् का कारण=प्रकृति है, जो (ते) तेरी (सूर्यः) सूर्य-मण्डल (महिमा) महिमा है, जो (ते) तेरी (अहन्) दिन और (संवत्सरे) वर्ष में (महिमा) महिमा (सम्बभूव) है; जो (ते) तेरी (वायौ) वायु और (अन्तरिक्षे) आकाश में (महिमा) महिमा (संबभूव) है, जो (ते) तेरी (दिवि) विद्युत् वा सूर्य-प्रकाश एवं (सूर्ये) सूर्य में (महिमा) महिमा (सम्बभूव) है, सो (तस्मै) उस (महिम्ने) महिमा तथा (प्रजापतये) प्रजापालक (ते) आप के लिए और (देवेभ्यः) विद्वानों के लिए (स्वाहा) उत्तम विद्या से युक्त बुद्धि को सब ग्रहण करें ॥ २३ । २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस परमेश्वर की यह सब जगत् महिमा को प्रकाशित कर रहा

विहायान्यस्य कस्यचित्तस्य स्थाने चोपासना नैव कार्या;

यः कश्चिद् ब्रूयात् परमेश्वरस्य सत्त्वे किं प्रमाणमिति=तं प्रति—यदिदं जगद् वर्त्तते तत् सर्वं परमेश्वरं प्रमाणयतीत्युत्तरं देयम् ॥ २३ । २ ॥

है, उसकी उपासना को छोड़ कर अन्य किसी की उसके स्थान में उपासना मत करो;

जो कोई कहे कि परमेश्वर के होने में क्या प्रमाण है—उसको यह उत्तर देवें कि जो यह जगत् है वह सब परमेश्वर को प्रमाणित कर रहा है ॥ २३ । २ ॥

भाष्यसार—**परमेश्वर**—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह इन यम-सम्बन्धी कर्मों से ईश्वर का साक्षात् होता है। उपासक परमेश्वर की सेवा=उपासना करे उससे अत्यन्त प्रीति करे, और उसे प्रजापति=प्रजा-पालक माने। परमेश्वर की उपासना को छोड़ कर उसके स्थान में अन्य की उपासना कभी न करे। जो कोई परमेश्वर की सत्ता में प्रमाण पूछे उसे यह उत्तर देवे कि यह सब जगत् परमेश्वर को प्रमाणित कर रहा है। अर्थात् जगत् का कारण प्रकृति, सूर्यमण्डल, दिन, संवत्सर=वर्ष वायु, आकाश, विद्युत् आदि सब परमेश्वर की महिमा गा रहे हैं। सब मनुष्य परमेश्वर—विषयक बुद्धि=ज्ञान विद्वानों से ग्रहण करें ॥ २३ । २ ॥

प्रजापतिः । **परमेश्वरः**=स्पष्टम् । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

ईश्वर विषय का फिर उपदेश किया है ॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक ऽ इद्राजा जगतो बभूव ।
य ऽ ईशे ऽ अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ३ ॥

पदार्थः—(**यः**) परमात्मा (**प्राणतः**) प्राणिनः (**निमिषतः**) नेत्रादिना चेष्टां कुर्वतः (**महित्वा**) स्वमहिम्ना (**एकः**) अद्वितीयोऽसहायः (**इत्**) एव (**राजा**) अधिष्ठाता (**जगतः**) संसारस्य (**बभूव**) (**यः**) (**ईशे**) ईष्टे (**अस्य**) (**द्विपदः**) मनुष्यादेः (**चतुष्पदः**) गवादेः (**कस्मै**) आनन्दरूपाय (**देवाय**) कमनीयाय (**हविषा**) भक्तिविशेषेण (**विधेम**) परिचरेम ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा वयं य एक इन्महित्वा निमिषतः प्राणतो द्विपदश्चतुष्पदोऽस्य जगतो राजा बभूव योऽस्येशे तस्मै कस्मै देवाय हविषा विधेम तथाऽस्य भक्तिविशेषो भवद्भिर्विधेयः ॥ ३ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यथा वयं**—**यः** परमात्मा **एकः** अद्वितीयोऽसहायः **इद्** एव **महित्वा** स्वमहिम्ना **निमिषतः** नेत्रादिना चेष्टां कुर्वतः **प्राणतः** प्राणिनः, **द्विपदः** मनुष्यादेः **चतुष्पदः** गवादेः **अस्य जगतः** संसारस्य **राजा** अधिष्ठाता **बभूव; योऽस्येशे** ईष्टे, **तस्मै कस्मै** आनन्दरूपाय **देवाय** कमनीयाय **हविषा** भक्तिविशेषेण **विधेम** परिचरेम; **तथाऽस्य भक्तिविशेषो भवद्भिर्विधेयः** ॥ २३ । ३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम—(यः) जो परमात्मा (एकः) एक=अद्वितीय, अन्य के सहाय विना (इत्) ही (महित्वा) अपनी महिमा से (निमिषतः) नेत्र आदि से चेष्टा करने वाले (प्राणतः) प्राणी, (द्विपदः) मनुष्य आदि और (चतुष्पदः) गौ आदि (अस्य) इस (जगतः) संसार का (राजा) अधिष्ठाता (बभूव) है; (यः) जो (अस्य) इसका (ईशे) स्वामी है; उस (कस्मै) आनन्द रूप (देवाय) कामना करने योग्य ईश्वर की (हविषा) भक्ति

विशेष से (विधेम) सेवा करते हैं; वैसे इसकी भक्ति विशेष आप भी करो ।। २३ । ३ ।।

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ।। य एक एव सर्वस्य जगतो महाराजाधिराजो, अखिलजगन्निर्माता सकलैश्वर्ययुक्तो महात्मा न्यायाधीशोऽस्ति, तस्यैवोपासनेन धर्मार्थकाममोक्षफलानि प्राप्य सर्वे भवन्तः सन्तुष्यन्तु ।। २३ । ३ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। जो एक ही सब जगत् का महाराजाधिराज, सब जगत् का निर्माता, सकल ऐश्वर्य से युक्त, महात्मा और न्यायाधीश है, उसकी ही उपासना से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप फलों को प्राप्त करके आप सब सन्तुष्ट रहें। २३। ३।।

भा० पदार्थः—राजा=महाराजाधिराजः । ईशे=अखिलजगन्निर्माता सकलैश्वर्ययुक्तो महात्मा न्यायाधीशोऽस्ति ।

अन्यत्र व्याख्यात—(यः) जो (प्राणतः) प्राण वाले और (निमिषतः) अप्राणिरूप (जगतः) जगत् का (महित्वा) अपने अनन्त महिमा से (एक इत्) एक ही (राजा) विराजमान राजा (बभूव) है (यः) जो (अस्य) इस (द्विपदः) मनुष्यादि और (चतुष्पदः) गौ आदि प्राणियों के शरीर की (ईशे) रचना करता है; हम लोग उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) सकलैश्वर्य्य के देनेहारे परमात्मा के लिए (हविषा) अपनी सकल उत्तम सामग्री से (विधेम) विशेष भक्ति करें ।।

(संस्कारविधि, ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासना)

भाष्यसार—**१. परमेश्वर**—परमात्मा एक अर्थात् अद्वितीय है उसके तुल्य दूसरा कोई नहीं एवं उसे अपने कार्यों में किसी अन्य के सहाय की आवश्यकता नहीं। वह अपनी महिमा से मनुष्य आदि और गौ आदि प्राणियों के इस जगत् का राजा है। वही महाराजाधिराज है। सब जगत् का निर्माता है। सकल ऐश्वर्य से युक्त है। आनन्दस्वरूप और कामना करने के योग्य है। उसकी भक्ति-विशेष= उपासना से ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप फलों को प्राप्त करके सब सन्तुष्ट रहें।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि विद्वानों के समान सब मनुष्य मन्त्र में प्रतिपादित परमेश्वर की उपासना करें ।। २३ । ३ ।।

प्रजापतिः । **परमेश्वरः**=स्पष्टम् । विकृतिः । मध्यमः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

ईश्वर विषय का फिर उपदेश किया है ।।

उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिश्चन्द्रमास्ते महिमा । यस्ते रात्रौ संवत्सरे महिमा सम्बभूव यस्ते पृथिव्यामग्नौ महिमा सम्बभूव यस्ते नक्षत्रेषु चन्द्रमसि महिमा सम्बभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये देवेभ्यः स्वाहा ।। ४ ।।

पदार्थः—(**उपयामगृहीतः**) उपयामेन=सत्कर्मणा योगाभ्यासेन गृहीतः=स्वीकृतः (**असि**) (**प्रजापतये**) प्रजापालकाय (**त्वा**) त्वाम् (**जुष्टम्**) सेवितम् (**गृह्णामि**) (**एषः**) (**ते**) तव सृष्टौ (**योनिः**) जलम् । योनिरित्युदकना० ।। निघं० १ । १२ ।। (**चन्द्रमाः**) चन्द्रलोकः (**ते**) तव (**महिमा**) (**यः**) (**ते**) तव

(रात्रौ) (संवत्सरे) (महिमा) (सम्बभूव) (यः) (ते) तव (पृथिव्याम्) अन्तरिक्षे भूमौ वा (अग्नौ) विद्युति (महिमा) (सम्बभूव) (यः) (ते) तव (नक्षत्रेषु) कारणरूपेण नाशरहितेषु लोकान्तरेषु (चन्द्रमसि) चन्द्रलोके (महिमा) (सम्बभूव) (तस्मै) (ते) तव (महिम्ने) (प्रजापतये) (देवेभ्यः) (स्वाहा) सत्याचरणयुक्ता क्रिया ॥ ४ ॥

प्रमाणार्थ—(योनिः) जलम् । 'योनि' यह पद निघं० (१ । १२) में उदक-नामों में पठित है । उदक=जल ॥

अन्वयः—हे जगदीश्वर ! यस्त्वमुपयामगृहीतोऽसि तं त्वा जुष्टं प्रजापतयेऽहं गृह्णामि यस्य ते सृष्टावेष योनिर्जलं यस्य ते सृष्टौ चन्द्रमा महिमा यस्य ते यो रात्रौ संवत्सरे महिमा च सम्बभूव यस्ते सृष्टौ पृथिव्यामग्नौ महिमा सम्बभूव यस्य ते सृष्टौ यो नक्षत्रेषु चन्द्रमसि च महिमा सम्बभूव तस्य ते तस्मै महिम्ने प्रजापतये देवेभ्यश्च स्वाहाऽस्माभिरनुष्ठेया ॥ ४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **जगदीश्वर !** **यस्त्वमुपयामगृहीतः** उपयामेन=सत्कर्मणा योगाभ्यासेन गृहीतः=स्वीकृतः **असि, तं त्वा** त्वां **जुष्टं** सेवितं **प्रजापतये** प्रजापालकाय अहं **गृह्णामि ।**

यस्य ते तव **सृष्टावेष योनिः=जलं यस्य ते** तव **सृष्टौ चन्द्रमाः** चन्द्रलोकः **महिमा, यस्य ते** तव **यो रात्रौ संवत्सरे महिमा च सम्बभूव, यस्ते** तव **सृष्टौ पृथिव्याम्** अन्तरिक्षे भूमौ वा **अग्नौ** विद्युति **महिमा सम्बभूव, यस्य ते** तव **सृष्टौ यो नक्षत्रेषु** कारणरूपेण नाशरहितेषु लोकान्तरेषु **चन्द्रमसि** चन्द्रलोके **च महिमा सम्बभूव, तस्य ते** तव **तस्मै महिम्ने प्रजापतये देवेभ्यश्च स्वाहा** सत्याचरणयुक्ता क्रिया **अस्माभिरनुष्ठेया** ॥ २३ । ४ ॥

भाषार्थ—हे जगदीश्वर ! जो तू—(उपयामगृहीतः) उपयाम=शुभ कर्म रूप योगाभ्यास से स्वीकृत (असि) है, सो (त्वा) तुझे (जुष्टम्) सेवापूर्वक (प्रजापतये) प्रजापालक के लिए मैं (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ ।

जो (ते) तेरी सृष्टि में (एषः) यह (योनिः) जल है, जो (ते) तेरी सृष्टि में (चन्द्रमाः) चन्द्रलोक रूप (महिमा) महिमा है, और जो (ते) तेरी (रात्रौ) रात्रि=प्रलय में एवं (संवत्सरे) वर्ष में (महिमा) महिमा (सम्बभूव) है; जो (ते) तेरी सृष्टि में (पृथिव्याम्) आकाश वा भूमि में एवं (अग्नौ) विद्युत् में (महिमा) महिमा (सम्बभूव) है; जो (ते) तेरी सृष्टि में (यः) जो (नक्षत्रेषु) कारण रूप से नाश-रहित लोकान्तरों में और (चन्द्रमसि) चन्द्रलोक में (महिमा) महिमा (सम्बभूव) है, सो (ते) तेरी (तस्मै) उस (महिम्ने) महिमा, (प्रजापतये) प्रजापालक और (देवेभ्यः) देवों के लिए (स्वाहा) सत्य आचरण युक्त यज्ञ-क्रिया का हम अनुष्ठान करें । २३ । ४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्याः ! यस्य महिम्ना सामर्थ्येन सर्वं जगद् विराजते, यस्यानन्तो महिमाऽस्ति, यस्य सिद्धौ रचनाविशिष्टं सर्वं जगद् दृष्टान्तमस्ति, तमेव सर्वे मनुष्या उपासीरन् ॥ २३ । ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिसकी महिमा रूप सामर्थ्य से सब जगत् विराजमान है, जिसकी अनन्त महिमा है, जिसकी सिद्धि में रचना-विशिष्ट सब जगत् दृष्टान्त है, उस ईश्वर की ही सब मनुष्य उपासना करें ॥ २३ । ४ ॥

भा० पदार्थः—महिमा=सामर्थ्यम् ॥

भाष्यसार—**परमेश्वर**—योगाभ्यास रूप शुभ कर्म से परमात्मा का ग्रहण होता है, उसका साक्षात्कार होता है। उपासक परमेश्वर की सेवा=उपासना करे, उससे अत्यन्त प्रीति करे और उसे प्रजापति=प्रजापालक माने। परमेश्वर की ही यह सब सृष्टि है जिसमें जल, चन्द्रमा, रात्रि, वर्ष, आकाश, भूमि, नक्षत्र आदि पदार्थ परमेश्वर की महिमा गा रहे हैं। उसके महिमा रूप सामर्थ्य से ही सब जगत् विराजमान है। उसकी महिमा अनन्त है। परमेश्वर की सिद्धि में यह रचना-विशिष्ट सब जगत् दृष्टान्त है। अतः सब मनुष्य परमेश्वर की ही उपासना करें ॥ २३। ४॥ ●

प्रजापतिः। **परमेश्वरः**=स्रष्टम्। गायत्री। षड्जः॥

पुनरीश्वरः कीदृशोऽस्तीत्याह ॥

ईश्वर कैसा है, इस विषय का फिर उपदेश किया है॥

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः। रोचन्ते रोचना दिवि ॥ ५ ॥

पदार्थः—(**युञ्जन्ति**) युक्तं कुर्वन्ति (**ब्रध्नम्**) महान्तम् (**अरुषम्**) अरुःषु=मर्मसु सीदन्तम् (**चरन्तम्**) प्राप्नुवन्तम् (**परि**) सर्वतः (**तस्थुषः**) स्थावरान् (**रोचन्ते**) प्रकाशन्ते (**रोचनाः**) दीप्तयः (**दिवि**) ॥ ५ ॥

अन्वयः—ये परितस्थुषश्चरन्तं विद्युतमिव वर्त्तमानमरुषं ब्रध्नम्परमात्मानमात्मना सह युञ्जन्ति ते दिवि सूर्ये रोचनाः किरणा इव रोचन्ते ॥ ५ ॥

सपदार्थान्वयः—ये परि सर्वतः **तस्थुषः** स्थावरान् **चरन्तं**=**विद्युतमिव वर्त्तमानं** प्राप्नुवन्तम्, **अरुषम्** अरुषुः=मर्मसु सीदन्तं **ब्रध्नं**=**परमात्मानं** महान्तम् **आत्मना सह युञ्जन्ति** युक्तं कुर्वन्ति **ते दिवि**=**सूर्ये रोचनाः**=**किरणा** दीप्तयः; **इव रोचन्ते** प्रकाशन्ते ॥ २३। ५॥

भावार्थः—हे मनुष्याः! यथा प्रतिब्रह्माण्डे सूर्यः प्रकाशते तथा सर्वस्मिन् जगति परमात्मा प्रकाशते।

यो योगाभ्यासेनाऽन्तर्यामिणं परमात्मानं स्वात्मना युञ्जते, ते सर्वतः प्रकाशिता जायन्ते ॥ २३। ५॥

भाषार्थ—जो (परि) सब ओर (तस्थुषः) स्थावर पदार्थों में (चरन्तम्) विद्युत् के समान विद्यमान एवं प्राप्त, (अरुषम्) मर्म-स्थलों में स्थित (ब्रध्नम्) महान् परमात्मा को आत्मा के साथ (युञ्जन्ति) युक्त करते हैं, वे (दिवि) सूर्य में विद्यमान (रोचनाः) किरण एवं दीप्तियों के समान (रोचन्ते) प्रकाशित होते हैं॥ २३। ५॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! जैसे प्रत्येक ब्रह्माण्ड में सूर्य प्रकाश करता है वैसे सब जगत् में परमात्मा प्रकाशित है।

जो योगाभ्यास से अन्तर्यामी परमात्मा को अपनी आत्मा के साथ युक्त करते हैं वे सब ओर से प्रकाशित हो जाते हैं॥ २३। ५॥

भा० पदार्थः—ब्रध्नम्=अन्तर्यामिणं परमात्मानम्। रोचन्ते=सर्वतः प्रकाशिता जायन्ते॥

भाष्यसार—**ईश्वर कैसा है**—परमेश्वर स्थावर पदार्थों में विद्युत् के समान विद्यमान है। मर्म=सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थों में स्थित है। वह महान् है। जैसे प्रत्येक ब्रह्माण्ड में सूर्य प्रकाश करता है वसे सब जगत् में परमात्मा प्रकाशमान है।

जो मनुष्य योगाभ्यास से अन्तर्यामी परमात्मा को अपने आत्मा के साथ संयुक्त करते हैं वे सूर्य-किरणों के समान सब ओर से प्रकाशित होते हैं ।। २३ । ५ ।।

प्रजापतिः । **सूर्यः=ईश्वरः** । विराड्गायत्री । षड्जः ।।

अथ केनेश्वरः प्राप्तव्य इत्याह ।।

कौन ईश्वर को प्राप्त कर सकता है, इसका उपदेश किया है ।।

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ।। ६ ।।

पदार्थः—(**युञ्जन्ति**) (**अस्य**) जीवस्य (**काम्या**) कमनीयौ (**हरी**) हरणशीलौ (**विपक्षसा**) विविधैः परिगृहीतौ (**रथे**) याने (**शोणा**) रक्तगुणविशिष्टौ (**धृष्णू**) दृढौ (**नृवाहसा**) नृणां वाहकौ ।। ६ ।।

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा शिक्षकाः काम्या हरी विपक्षसा शोणा धृष्णू नृवाहसा रथे युञ्जन्ति तथा योगिनोऽस्य परमेश्वरस्य मध्य इन्द्रियाणि मनः प्राणाँश्च युञ्जन्ति ।। ६ ।।

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यथा शिक्षकाः काम्या** कमनीयौ **हरी** हरणशीलौ **विपक्षसा** विविधैः परिगृहीतौ **शोणा** रक्तगुणविशिष्टौ **धृष्णू** दृढौ **नृवाहसा** नृणां वाहकौ **रथे** याने **युञ्जन्ति तथा योगिनोऽस्य=परमेश्वरस्य** जीवस्य **मध्ये इन्द्रियाणि मनः प्राणांश्च युञ्जन्ति** ।। २३ । ६ ।।

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे—शिक्षक लोग—(काम्या) कामना करने योग्य, (हरी) हरणशील (विपक्षसा) विविध जनों से परिगृहीत, (शोणा) रक्त गुण से युक्त (धृष्णू) दृढ़ (नृवाहसा) नरों के वाहक दो घोड़ों को (रथे) यान में (युञ्जन्ति) जोड़ते हैं; वैसे योगी लोग (अस्य) इस परमेश्वर वा जीव के मध्य में इन्द्रियाँ, मन और प्राणों को युक्त करते हैं ।। २३ । ६ ।।

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ।। यथा मनुष्याः सुशिक्षितैर्हयैर्युक्तेन यानेन स्थानान्तरं सद्यः प्राप्नुवन्ति, तथैव विद्यासत्सङ्गयोगाभ्यासैः परमात्मानं क्षिप्रं प्राप्नुवन्ति ।। २३ । ६ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है । जैसे मनुष्य सुशिक्षित घोड़ों से युक्त यान से दूसरे स्थान को शीघ्र प्राप्त करते हैं, वैसे ही विद्या, सत्सङ्ग और योगाभ्यास से परमात्मा को शीघ्र प्राप्त करते हैं ।। २३ । ६ ।।

भाष्यसार—१. **ईश्वर को कौन प्राप्त कर सकता है**—जैसे शिक्षक लोग—कमनीय= सुन्दर हरणशील=रथ को देशान्तर में ले जाने वाले, विविध जनों से स्वीकृत, लाल रंग वाले, दृढ़, नरों के वाहक सुशिक्षित घोड़ों को रथ में जोड़ते हैं और उस रथ से देशान्तर को शीघ्र प्राप्त कराते हैं वैसे जो योगी लोग विद्या, सत्संग और योगाभ्यास से परमेश्वर एवं आत्मा में अपनी इन्द्रियाँ, मन और प्राणों को युक्त करते हैं वे परमात्मा को शीघ्र प्राप्त करते हैं ।। २३ । ६ ।।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचकलुप्तोपमा अलंकार है । उपमा यह है कि जैसे मनुष्य घोड़ों को रथ में जोड़ते हैं वैसे योगी लोग इन्द्रिय आदि को परमेश्वर एवं आत्मा में युक्त करें ।। २३ । ६ ।।

प्रजापतिः । **इन्द्रः=विद्युत्** । निचृद्बृहती । मध्यमः ।।

पुनर्मनुष्यः कस्य सङ्गं कुर्य्यादित्याह ।।

फिर मनुष्य किसका संग करे, इस विषय का उपदेश किया है ।।

यद्वातो॑ऽ अ॒पो ऽ अग॑नीगन्प्रि॒यामिन्द्र॑स्य त॒न्व᳖म् ।
ए॒तᳬ स्तो॑तर॒नेन॑ प॒था पुन॒रश्व॒मावर्त्तयासि नः ॥ ७ ॥

पदार्थः—(**यत्**) यं कलायन्त्राश्वम् (**वातः**) वायुः (**अपः**) जलानि (**अगनीगन्**) प्राप्नुवन्ति (**प्रियाम्**) कमनीयम् (**इन्द्रस्य**) विद्युतः (**तन्वम्**) विस्तृतं शरीरम् (**एतम्**) (**स्तोतः**) स्तावक (**अनेन**) (**पथा**) मार्गेण (**पुनः**) (**अश्वम्**) आशुगामिनम् (**आ**) (**वर्त्तयासि**) वर्त्तयेः (**नः**) अस्मान् ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे स्तोतर्यथा शिल्पिजना इन्द्रस्य प्रियां तन्वं वात इव प्राप्य यद्यमपोऽगनीगँस्त-थैतमश्वमनेन पथा त्वं प्राप्नोषि पुनर्नोस्मानावर्त्तयासि तं भवन्तं वयं सत्कुर्याम ॥ ७ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे स्तोतः** ! स्तावक ! **यथा शिल्पिजना इन्द्रस्य** विद्युतः **प्रियां** कमनीयं **तन्वं** विस्तृतं शरीरं **वातः** वायुः **इव प्राप्य यद्**=**यं** कलायन्त्राश्वम् **अपः** जलानि **अगनीगन्** प्राप्नुवन्ति; **तथैतमश्वम्** आशुगामिनम् **अनेन पथा** मार्गेण **त्वं प्राप्नोषि; पुनर्नो**=ऽ**स्मान् आ**+**वर्त्तयासि** वर्त्तयेः; **तं भवन्तं वयं सत्कुर्याम** ॥ २३ । ७ ॥

भाषार्थ—हे (स्तोतः) स्तुति करने वाले विद्वान्—जैसे शिल्पी लोग (इन्द्रस्य) विद्युत् के (प्रियाम्) कमनीय=सुन्दर (तन्वम्) विस्तृत शरीर को (वातः) वायु के समान प्राप्त करके (यत्) जिस कला-यन्त्र से युक्त घोड़े एवं (अपः) जलों को (अगनीगन्) प्राप्त करते हैं, वैसे (एतम्) इस (अश्वम्) शीघ्रगामी घोड़े को इस (पथा) मार्ग से तू प्राप्त करता है, (पुनः) फिर (नः) हमें (आ+वर्त्तयासि) भ्रमण कराता है, सो आपका हम सत्कार करते हैं ॥ २३ । ७ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ हे मनुष्याः ! ये युष्मान् सुमार्गेण गमयन्ति, तत्सङ्गेन यूयं वायुविद्युदादिविद्यां प्राप्नुत ॥२३।७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ हे मनुष्यो ! जो तुम्हें सुमार्ग से ले जाते हैं उनके संग से तुम वायु और विद्युत् आदि की विद्या को प्राप्त करो ॥ २३ । ७ ॥

भा० पदार्थः—पथा=सुमार्गेण । इन्द्रस्य=विद्युद्विद्या । वातः=वायुविद्या ॥

भाष्यसार—१. मनुष्य किसका संग करे—स्तोता मनुष्य—श्रेष्ठ मार्ग पर चलाने वाले विद्वानों का संग करे और उनके संग से विद्युत् के सुन्दर शरीर को प्राप्त करे अर्थात् विद्युत्-विद्या को सीखे । वायु-विद्या को भी प्राप्त करे । कला यन्त्र से युक्त घोड़ों को बनावे । जलों को प्राप्त करे । कला-यन्त्र से युक्त घोड़े को प्राप्त करके उससे यात्रा करे । उससे विद्वानों के पास जावे । उसका सब विद्वान् सत्कार करें ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है । अतः वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि विद्वान् शिल्पी लोगों के समान सब मनुष्य विद्युत् आदि की विद्या को उनके संग से प्राप्त करें ॥ २३ । ७ ॥ ●

प्रजापतिः । **वाय्वादयः** =वायु-आदयः ॥ अत्यष्टिः । गान्धारः ॥

पुनर्विद्वांसः किं कुर्वन्तीत्याह ॥

विद्वान् लोग क्या करते हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

वसवस्त्वाञ्जन्तु गायत्रेण छन्दसा रुद्रास्त्वाञ्जन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसादित्यास्त्वाञ्जन्तु जागतेन छन्दसा। भूर्भुवः स्वर्लाजी३ञ्छाची३न्यव्ये गव्यऽ एतदन्नमत्त देवा ऽ एतदन्नमद्धि प्रजापते ॥ ८ ॥

पदार्थः—(**वसवः**) प्रथमकल्पा विद्वांसः (**त्वा**) त्वाम् (**अञ्जन्तु**) कामयन्ताम् (**गायत्रेण**) गायत्रीछन्दोवाच्येन (**छन्दसा**) अर्थेन (**रुद्राः**) मध्यमकल्पा विद्वांसः (**त्वा**) त्वाम् (**अञ्जन्तु**) (**त्रैष्टुभेन**) त्रिष्टुप्प्रकाशितेनाऽर्थेन (**छन्दसा**) (**आदित्याः**) उत्तमा विद्वांसः (**त्वा**) (**अञ्जन्तु**) (**जागतेन**) जगतीछन्दःप्रकाशितेनाऽर्थेन (**छन्दसा**) स्वच्छन्देन (**भूः**) इमं लोकम् (**भुवः**) अन्तरिक्षस्थान् (**स्वः**) प्रकाशस्थांल्लोकान् (**लाजीन्**) स्वस्वकक्षायां चलितान् (**शाचीन्**) व्यक्तान् (**यव्ये**) यवानां भवने क्षेत्रे जातम् (**गव्ये**) गोर्विकारे (**एतत्**) (**अन्नम्**) (**अत्त**) भक्षयत (**देवाः**) विद्वांसः (**एतत्**) (**अन्नम्**) (**अद्धि**) भुङ्क्ष्व (**प्रजापते**) प्रजारक्षक। ८॥

अन्वयः—हे प्रजापते! वसवो गायत्रेण छन्दसा यन्त्वाऽञ्जन्तु रुद्रास्त्रैष्टुभेन छन्दसा यन्त्वाऽञ्जन्त्वादित्या जागतेन छन्दसा यन्त्वाऽञ्जन्तु स त्वमेतदन्नमद्धि। हे देवाः! यूयं यव्ये गव्य एतदन्नमत्त लाजीन् शाचीन् भूर्भुवः स्वर्लोकान् प्राप्नुत च ॥ ८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **प्रजापते**! प्रजा-रक्षक! **वसवः** प्रथमकल्पा विद्वांसः **गायत्रेण** गायत्रीछन्दोवाच्येन **छन्दसा** अर्थेन **यन्त्वा** त्वाम् **अञ्जन्तु** कामयन्ताम्, **रुद्रा** मध्यमकल्पा विद्वांसः **त्रैष्टुभेन** त्रिष्टुप्प्रकाशितेनाऽर्थेन **छन्दसा** अर्थेन **यन्त्वा** त्वाम् **अञ्जन्तु** कामयन्ताम्, **आदित्याः** उत्तमा विद्वांसः **जागतेन** जगतीछन्दःप्रकाशितेनार्थेन **छन्दसा** स्वच्छन्देन **यन्त्वा** त्वाम् **अञ्जन्तु** कामयन्तां; **स त्वमेतदन्नमद्धि** भुङ्क्ष्व।

हे **देवाः** विद्वांसः! **यूयं यव्ये** यवानां भवने क्षेत्रे जातं **गव्ये** गोर्विकारे **एतदन्नमत्त** भक्षयत, **लाजीन्** स्वस्वकक्षायां चलितान् **शाचीन्** व्यक्तान् **भूः** इमं लोकं **भुवः** अन्तरिक्षस्थान् **स्वः** प्रकाशस्थान् **लोकान् प्राप्नुत च** ॥ २३। ८॥

भाषार्थ—हे (प्रजापते) प्रजा के रक्षक राजन्! (वसवः) प्रथम कोटि के विद्वान् (गायत्रेण) गायत्री (छन्दसा) छन्द से प्रतिपादित अर्थ के द्वारा (त्वा) तेरी (अञ्जन्तु) कामना करें; (रुद्राः) मध्यम कोटि के विद्वान्—(त्रैष्टुभेन) त्रिष्टुप् (छन्दसा) छन्द से प्रकाशित अर्थ द्वारा (त्वा) तेरी (अञ्जन्तु) कामना करें; (आदित्याः) उत्तम कोटि के विद्वान्—(जागतेन) जगती (छन्दसा) छन्द से प्रकाशित स्वच्छन्द अर्थ के द्वारा (त्वा) तेरी (अञ्जन्तु) कामना करें; सो तू (एतत्) इस (अन्नम्) अन्न को (अद्धि) खा।

हे (देवाः) विद्वानो! तुम—(यव्ये) यव=जौ के क्षेत्र में उत्पन्न अन्न एवं (गव्ये) गौ के विकार दूध, दही आदि में मिलाकर (एतत्) इस अन्न को (अत्त) खाओ; (लाजीन्) अपनी-अपनी कक्षाओं में चलने वाले, (शाचीन्) व्यक्त=प्रकट (भूः) इस भूलोक, (भुवः) अन्तरिक्षस्थ और (स्वः) प्रकाशयुक्त लोकों को प्रकाशित करो ॥ २३। ८॥

भावार्थः—ये विद्वांसः साङ्गोपाङ्गान् वेदान् मनुष्यानध्यापयन्ति, ते धन्यवादार्हा भवन्ति ॥ २३। ८॥

भावार्थ—जो विद्वान्—साङ्गोपाङ्ग वेदों को मनुष्यों को पढ़ाते हैं, वे धन्यवाद के योग्य होते हैं ॥ २३। ८॥

भाष्यसार—**विद्वान् क्या करते हैं**—चौबीस अक्षर वाले गायत्री छन्द के समान चौबीस वर्ष पर्यन्त वेद का अध्ययन करने वाले 'वसु' नामक प्रथम कोटि के विद्वान् प्रजा-रक्षक राजा की कामना करते हैं। छत्तीस अक्षर वाले त्रिष्टुप् छन्द के समान छत्तीस वर्ष पर्यन्त वेद का अध्ययन करने वाले 'रुद्र' नामक मध्यम कोटि के विद्वान् प्रजा-रक्षक राजा की कामना करते हैं। अड़तालीस अक्षर वाले जगती छन्द के समान अड़तालीस वर्ष पर्यन्त वेद का अध्ययन करने वाले विद्वान् प्रजा-रक्षक राजा की कामना करते हैं।

ये विद्वान् सब मनुष्यों को साङ्गोपाङ्ग वेद पढ़ावें। मनुष्य इन विद्वानों का अन्न, दूध, घृत आदि से सत्कार करें। ये विद्वान् पृथिवी, अन्तरिक्ष में स्थित सब प्रकाशमय लोकों को प्राप्त करें॥ २३। ८॥

प्रजापतिः। **जिज्ञासुः**=**स्पष्टम्**। निचृदत्यष्टिः। गान्धारः॥

अथ विद्वांसः किं किं प्रष्टव्या इत्याह॥

अब विद्वान् जनों से क्या-क्या पूछना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया जाता है॥

कः स्विदेकाकी चरति कऽउं स्विज्जायते पुनः। किश्ंस्विद्धिमस्य भेषजं किम्वावपनं महत्॥९॥

पदार्थः—(**कः**) (**स्वित्**) प्रश्ने (**एकाकी**) असहायः (**चरति**) गच्छति (**कः**) (**उ**) वितर्के (**स्वित्**) (**जायते**) (**पुनः**) (**किम्**) (**स्वित्**) (**हिमस्य**) शीतस्य (**भेषजम्**) औषधम् (**किम्**) (**उ**) (**आवपनम्**) समन्ताद्वपति यस्मिंस्तत् (**महत्**) विस्तीर्णम्॥ ९॥

अन्वयः—हे विद्वांसो वयं युष्मान् कः स्विदेकाकी चरति क उ स्वित् पुनः पुनर्जायते किं स्विद्धिमस्य भेषजं किमु महदावपनमस्तीति पृच्छामः॥ ९॥

सपदार्थान्वयः—हे **विद्वांसः! वयं युष्मान् कः स्वित्** प्रश्ने **एकाकी** असहायः **चरति** गच्छति?; **कः उ** वितर्कपूर्वकं **स्वित्** प्रश्ने **पुनः पुनर्जायते**?; **किं स्वित्** प्रश्ने **हिमस्य** शीतस्य **भेषजम्** औषधं?; **किमु महद्** विस्तीर्णम् **आवपनं** समन्ताद्वपति यस्मिंस्तद् **अस्तीति पृच्छामः**॥ २३। ९॥

भाषार्थ—हे विद्वानो! हम तुम से—(कः स्वित्) कौन (एकाकी) अकेला (चरति) विचरता है? (कः, उ, स्वित्) और कौन (पुनः) बार-बार (जायते) उत्पन्न होता है? (किंस्वित्) और क्या (हिमस्य) शीत=ठंड की (भेषजम्) औषध है? (किमु) और कौन (महत्) महान्=विस्तृत (आवपनम्) बीज बोने का क्षेत्र है? यह पूछते हैं॥ २३। ९॥

भावार्थः—एतेषां प्रश्नानामुत्तरस्मिन् मन्त्र उत्तराणि कथितानीति वेद्यम्।

मनुष्या ईदृशानेव प्रश्नान् कुर्युः॥ २३। ९॥

भावार्थ—इन प्रश्नों के अगले मन्त्र में उत्तर कहे हैं, ऐसा समझें।

मनुष्य ऐसे ही प्रश्न किया करें॥ २३। ९॥

अन्यत्र व्याख्यात—(कः स्वि०) इस मन्त्र में चार प्रश्न हैं, उनके बीच में से पहला प्रश्न—कौन एकाकी अर्थात् अकेला विचरता है और अपने प्रकाश से प्रकाश वाला है? दूसरा—कौन दूसरे के प्रकाश से प्रकाशित होता है? तीसरा—शीत का औषध क्या है? और चौथा—कौन बड़ा क्षेत्र अर्थात् स्थूल पदार्थ रखने का स्थान है? (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, प्रकाश्यप्रकाशक विषय)॥ २३। ९॥

भाष्यसार—**विद्वानों से क्या-क्या पूछें**—मनुष्य विद्वानों से इस प्रकार के प्रश्न पूछें—अकेला कौन चलता है ? पुनः (पश्चात्) कौन उत्पन्न होता है ? शीत (ठंड) की औषध क्या है ? बीज बोने का महान् क्षेत्र कौन सा है ?

इन प्रश्नों का उत्तर अगले मन्त्र में है ॥ २३ । ९ ॥ ●

प्रजापतिः । **सूर्य्यः**=**स्पष्टम्** । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

अथ पूर्वोक्तप्रश्नानामुत्तराण्याह ॥

अब पिछले मन्त्र में कहे प्रश्नों के उत्तरों का उपदेश किया है ॥

सूर्यँऽ एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः । अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ॥ १० ॥

पदार्थः—(**सूर्य्यः**) सविता (**एकाकी**) (**चरति**) (**चन्द्रमाः**) चन्द्रलोकः (**जायते**) (**पुनः**) (**अग्निः**) पावकः (**हिमस्य**) (**भेषजम्**) (**भूमिः**) (**आवपनम्**) (**महत्**) ॥ १० ॥

अन्वयः—हे जिज्ञासवो मनुष्याः ! सूर्य्य एकाकी चरति पुनश्चन्द्रमाः प्रकाशितो जायते । अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिर्महदावपनमस्तीति यूयं वित्त ॥ १० ॥

सपदार्थान्वयः—हे जिज्ञासवो मनुष्याः! **सूर्य्यः** सविता **एकाकी चरति, पुनश्चन्द्रमाः** चन्द्रलोकः **प्रकाशितो जायते** । **अग्निः** पावकः **हिमस्य भेषजं, भूमिर्महदावपनमस्तीति यूयं वित्त** ॥ २३ । १० ॥

भाषार्थ—हे जिज्ञासु मनुष्यो ! (सूर्यः) सूर्य (एकाकी) अकेला (चरति) चलता है; (पुनः) फिर (चन्द्रमाः) चन्द्रलोक प्रकाशित (जायते) होता है, (अग्निः) अग्नि (हिमस्य) शीत=ठंड की (भेषजम्) औषध है, (भूमिः) भूमि (महत्) महान् (आवपनम्) बीज बोने का क्षेत्र है, ऐसा तुम जानो ॥ २३ । १० ॥

भावार्थः—अस्मिन् संसारे सूर्यः स्वाकर्षणेन स्वस्यैव कक्षायां वर्तते, तस्यैव प्रकाशेन चन्द्रादयो लोकाः प्रकाशिता भवन्ति । अग्निना तुल्यं शीतनिवारकं वस्तु, पृथिव्या तुल्यं महत् क्षेत्रं किमपि नास्तीति मनुष्यैर्वेदितव्यम् ॥ २३ । १० ॥

भावार्थ—इस संसार में सूर्य अपने आकर्षण से अपनी ही कक्षा में रहता है, उसी के प्रकाश से चन्द्र आदि लोक प्रकाशित होते हैं, अग्नि के तुल्य शीतनिवारक वस्तु और पृथिवी के तुल्य महान् क्षेत्र कोई नहीं है, ऐसा सब मनुष्य जानें ॥ २३ । १० ॥

भा० पदार्थः—आवपनम्=क्षेत्रम् ।

अन्यत्र व्याख्यात—(१) (सूर्य एकाकी०) इस संसार में सूर्य ही एकाकी अर्थात् अकेला विचरता है और अपनी ही कीली पर घूमता है तथा प्रकाशस्वरूप होकर सब लोकों का प्रकाश करने वाला है। (२) उसी सूर्य के प्रकाश से चन्द्रमा प्रकाशित होता है। (३) शीत का औषध अग्नि है, और चौथा यह है—पृथिवी साकार चीजों के रखने का स्थान तथा सब बीज बोने का बड़ा खेत है (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, प्रकाश्यप्रकाशकविषय) ॥ २३ । १० ॥

भाष्यसार—**पूर्वोक्त प्रश्नों का उत्तर**—इस संसार में सूर्य अपने आकर्षण से अकेला अपनी कक्षा में चलता है, घूमता है। पुनः=तत्पश्चात् चन्द्रमा उत्पन्न होता है अर्थात् सूर्य के प्रकाश से ही चन्द्र आदि लोक प्रकाशित होते हैं। हिम (ठंड) की औषध अग्नि है अर्थात् अग्नि के तुल्य अन्य

शीत-निवारक वस्तु नहीं है। बीज बोने का महान् क्षेत्र भूमि है अर्थात् भूमि के तुल्य महान् क्षेत्र कोई नहीं ॥ २३ । १० ॥

प्रजापतिः । **जिज्ञासुः**=स्पष्टम् । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनः प्रश्नानाह ॥

इस मन्त्र में प्रश्नों का फिर उपदेश किया है ॥

का स्विदासीत्पूर्वचित्तिः किथ्ं स्विदासीद् बृहद्वयः ।
का स्विदासीत्पिलिप्पिला का स्विदासीत्पिशङ्गिला ॥ ११ ॥

पदार्थः—(**का**) (**स्वित्**) (**आसीत्**) अस्ति (**पूर्वचित्तिः**) पूर्वा चासौ चित्तिः=प्रथमा स्मृतिविषया (**किम्**) (**स्वित्**) (**आसीत्**) (**बृहत्**) महत् (**वयः**) यो वेति=गच्छति स पक्षी (**का**) (**स्वित्**) (**आसीत्**) (**पिलिप्पिला**) आर्द्रीभूता=चिक्करणा शोभना । **श्रीवैं पिलिप्पिला ॥ श० १३ । २ । ६ । १६ ॥** (**का**) (**स्वित्**) (**आसीत्**) (**पिशङ्गिला**) या पिशं=प्रकाशरूपं गिलति सा । पिशमिति रूपनाम ॥ ११ ॥

प्रमाणार्थ—(**पिलिप्पिला**) शतपथ ब्राह्मण (१३ । २ । ६ । १६) के 'श्रीवैं पिलिप्पिला' इस प्रमाण से 'पिलिप्पिला' पद का अर्थ 'श्री' है । श्री=शोभन (**सुन्दर**) ॥

अन्वयः—हे विद्वांसः ! वयं युष्मान् प्रति का स्वित्पूर्वचित्तिरासीत्किंस्विद्बृहद्वय आसीत्का स्वित्पिलिप्पिलाऽऽसीत्का स्वित्पिशङ्गिलाऽऽसीदिति पृच्छामः ॥ ११ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **विद्वांसः ! वयं युष्मान् प्रति—का स्वित्पूर्वचित्तिः** पूर्वा चासौ चित्तिः=प्रथमा स्मृतिविषया **आसीद्** अस्ति?; **किं स्विद् बृहद्** महत् **वयः** यो वेति=गच्छति स पक्षी **आसीत्** अस्ति?; **का स्वित्पिलिप्पिला** आर्द्रीभूता=चिक्करणा शोभना **आसीद्** अस्ति ? **का स्वित्पिशङ्गिला** या पिशं=प्रकाशरूपं गिलति सा **आसीद्** अस्ति ?; **इति पृच्छामः** ॥ २३ । ११ ॥

भाषार्थ—हे विद्वानो ! हम तुमसे—(कास्वित्) क्या (पूर्वचित्तिः) प्रथम स्मृति का विषय (आसीत्) है ? (किंस्वित्) और कौन (बृहत्) महान् (वयः) पक्षी (आसीत्) है ? (का स्वित्) क्या (पिलिप्पिला) आर्द्र, चिक्करण एवं शोभन वस्तु (आसीत्) है ? (कास्वित्) क्या (पिशङ्गिला) पिश=प्रकाश को निगलने वाली (आसीत्) है ? —यह पूछते हैं ॥ २३ । ११ ॥

भावार्थः—एतेषामुत्तराण्युत्तरत्र मन्त्रे सन्ति । यदि विदुषः प्रति प्रश्नान् न कुर्युस्तर्हि विद्वांसोऽपि न भवेयुः ॥ २३ । ११ ॥

भावार्थ—इन मन्त्रों के उत्तर अगले मन्त्र में हैं । यदि विद्वानों से प्रश्न न पूछें तो विद्वान् भी न बनें ॥ २३ । ११ ॥

भाष्यसार—मनुष्य कैसे प्रश्न करें—सब मनुष्य विद्वानों से इस प्रकार के प्रश्न करें—प्रथम स्मृति=स्मरण करने का विषय क्या है ? महान् गतिशील पक्षी कौन है ? आर्द्र होने वाली चिक्करण एवं सुन्दर वस्तु क्या है ? प्रकाश को निगलने वाला कौन है ?

यदि मनुष्य विद्वानों से प्रश्न न करें तो वे विद्वान् नहीं हो सकते अतः मनुष्य विद्वानों से अवश्य प्रश्न किया करें । इन प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में हैं ॥ २३ । ११ ॥

प्रजापतिः। **विद्वांसः**=स्पष्टम्। निचृदनुष्टुप्। गान्धारः॥

अथ प्राक्प्रश्नोत्तराण्याह॥

अब पिछले प्रश्नों के उत्तरों को कहते हैं॥

द्यौरा॑सीत्पू॒र्वचि॑त्ति॒रश्व॑ऽआसीद् बृ॒हद्वयः॑। अवि॑रासीत्पिलिप्पि॒ला रात्रि॑रासीत्पिशङ्गि॒ला॥ १२॥

पदार्थः—(**द्यौः**) दिव्यगुणप्रदा वृष्टिः। **द्यौर्वै वृष्टिः॥ शत० कां० १३। २। ६। १६॥** (**आसीत्**) अस्ति (**पूर्वचित्तिः**) प्रथमस्मृतिविषया (**अश्वः**) योऽश्नुते मार्गान् सोऽग्निः (**आसीत्**) (**बृहत्**) महत् (**वयः**) यो वेति=गच्छति सः (**अविः**) रक्षणादिकर्त्री पृथिवी (**आसीत्**) (**पिलिप्पिला**) (**रात्रिः**) (**आसीत्**) (**पिशङ्गिला**)॥ १२॥

प्रमाणार्थ—(**द्यौः**) शतपथ ब्राह्मण (१३। २। ६। १६) के 'द्यौर्वै वृष्टिः' इस प्रमाण से 'द्यौः' पद का अर्थ वृष्टि है। वृष्टि=वर्षा॥

अन्वयः—हे जिज्ञासवः! पूर्वचित्तिर्द्यौरासीद् बृहद्वयोऽश्व आसीत् पिलिप्पिलाऽविरासीत्पिशङ्गिला रात्रिरासीदिति यूयं बुध्यध्वम्॥ १२॥

सपदार्थान्वयः— हे **जिज्ञासवः! पूर्वचित्तिः** प्रथमस्मृतिविषया **द्यौः** दिव्यगुणप्रदा वृष्टिः **आसीद्** अस्ति; **बृहद्** महत् **वयः** यो वेति=गच्छति सः **अश्वः** योऽश्नुते मार्गान् सोऽग्निः **आसीद्** अस्ति; **पिलिप्पिलाऽविः** रक्षणादिकर्त्री पृथिवी **आसीद्** अस्ति, **पिशङ्गिला रात्रिरासीदिति यूयं बुध्यध्वम्**॥ २३। १२॥

भाषार्थ—हे जिज्ञासु लोगो! (पूर्वचित्तिः) प्रथम स्मृति का विषय (द्यौः) दिव्य गुण प्रदान करने वाली वर्षा (आसीत्) है; (बृहत्) महान् (वयः) गति करने वाला (अश्वः) एवं मार्गों को व्याप्त करने वाला अग्नि (आसीत्) है; (पिलिप्पिला) आर्द्र, चिक्कण एवं शोभन वस्तु (अविः) रक्षा आदि करने वाली (पृथिवी) (आसीत्) है, (पिशङ्गिला) पिश=प्रकाश को निगलने वाली (रात्रिः) रात्रि (आसीत्) है; ऐसा तुम जानो॥ २३। १२॥

भावार्थः—हवन सूर्यरूपाद्यग्नितापेन सर्वगुणसम्पन्नाऽन्नादिना संसारस्थितिनिमित्ता वृष्टिर्जायते, ततः सर्वरत्नाढ्या भूर्भवति, सूर्याग्निनिमित्तेनैव प्राणिनां शयनाय रात्रिर्जायते॥ २३। १२॥

भावार्थ—हवन और सूर्य आदि की अग्नि के ताप से सब गुणों से सम्पन्न, अन्न आदि से संसार की स्थिति की निमित्त वर्षा होती है, उससे सब रत्नों से भरपूर भूमि होती है, सूर्य-अग्नि के निमित्त से ही प्राणियों के शयन के लिए रात्रि बनती है॥ २३। १२॥

भा० पदार्थः—द्यौः=सर्वगुणसम्पन्नाऽन्नादिना संसारस्थितिनिमित्ता वृष्टिः। पिलिप्पिला=सर्वरत्नाढ्या। अविः=भूः। पिशङ्गिला=प्राणिनां शयनाय [रात्रिः]॥

भाष्यसार—**पूर्वोक्त प्रश्नों के उत्तर**—जिज्ञासु मनुष्यों के लिए प्रथम स्मरण का विषय दिव्य गुण प्रदान करने वाली वृष्टि=वर्षा है। हवन और सूर्य रूप आदि अग्नि के ताप से सब गुणों से सम्पन्न वर्षा होती है जो अन्न आदि की उत्पत्ति से संसार की स्थिति का हेतु है। उसी से भूमि सब रत्नों से भरपूर होती है। महान् गतिशील पक्षी अग्नि है जो मार्गों को व्याप्त करता है। आर्द्र होने वाली,

चिक्करण एवं सुन्दर वस्तु पृथिवी है जो रक्षा आदि करने वाली है। प्रकाश को निगलने वाली रात्रि है जो सूर्य-अग्नि के निमित्त से प्राणियों के शयन के लिए उत्पन्न होती है ॥ २३ । १२ ॥

प्रजापतिः । **ऋष्यादयः**=चतुर्वेदविदादयः । भुरिगतिजगती । निषादः ॥

अथ विद्वद्भिर्मनुष्याः क्व योजनीया इत्याह ॥

अब विद्वान् मनुष्यों को कहाँ लगावें, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

वायुष्ट्वा पचतैरवत्वसितग्रीवश्छागैर्न्यग्रोधश्चमसैः शल्मलिर्वृद्ध्या ।
एष स्य राथ्यो वृषा पड्भिश्चतुर्भिरेदगन्ब्रह्मा कृष्णश्च नोऽवतु नमोऽग्नये ॥ १३ ॥

पदार्थः—(**वायुः**) आदिमः स्थूलः कार्य्यरूपः (**त्वा**) त्वाम् (**पचतैः**) परिपाकपरिणामैः (**अवतु**) रक्षतु (**असितग्रीवः**) असिता=कृष्णा ग्रीवा=शिखा यस्य सः (**छागैः**) छेदनैः (**न्यग्रोधः**) वटः (**चमसैः**) मेघैः (**शल्मलिः**) वृक्षविशेषः (**वृद्ध्या**) वर्द्धनेन (**एषः**) (**स्यः**) सः (**राथ्यः**) रथेषु हिता रथ्यास्तासु कुशलः (**वृषा**) वर्षकः (**पड्भिः**) पादैः । अत्र वर्णव्यत्ययेन दस्य डः (**चतुर्भिः**) (**आ**) (**इत्**) एव (**अगन्**) गच्छति (**ब्रह्मा**) चतुर्वेदवित् (**अकृष्णः**) अविद्यान्धकाररहितः (**च**) (**नः**) अस्मान् (**अवतु**) प्रवेशयतु (**नमः**) अन्नम् (**अग्नये**) प्रकाशमानाय विदुषे ॥ १३ ॥

प्रमाणार्थ—(**पड्भिः**) पादैः । यहाँ वर्ण-व्यत्यय से 'द' के स्थान में 'ड' है ॥

अन्वयः—हे विद्यार्थिन् ! पचतैर्वायुश्छागैरसितग्रीवश्चमसैर्न्यग्रोधो वृद्ध्या शल्मलिस्त्वावतु य एष राथ्यो वृषा स्य चतुर्भिः पड्भिरित्त्वाऽगन् योऽकृष्णो ब्रह्मा च नोऽस्मानवतु तस्मा अग्नये विद्यया प्रकाशमानाय नमो देयम् ॥ १३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **विद्यार्थिन्** ! **पचतैः** परिपाकपरिणामैः **वायुः** आदिमः स्थूलः कार्य्यरूपः, **छागैः** छेदनैः **असितग्रीवः** असिता=कृष्णा ग्रीवा=शिखा यस्य सः, **चमसैः** मेघैः **न्यग्रोधः** वटः, **वृद्ध्या** वर्द्धनेन **शल्मलिः** वृक्षविशेषः **त्वा** त्वाम् **अवतु** रक्षतु । **य एष राथ्यः** रथेषु हिता रथ्यास्तासु कुशलः **वृषा** वर्षकः **स्यः** सः **चतुर्भिः पड्भिः** पादैः **इद्** एव **त्वा** त्वाम् **आ+अगन्** गच्छति ।

योऽकृष्णः अविद्यान्धकाररहितः **ब्रह्मा** चतुर्वेदवित् **च नो**=ऽस्मान**वतु** प्रवेशयतु, **तस्मा अग्नये**=**विद्यया प्रकाशमानाय** प्रकाशमानाय विदुषे **नमः** अन्नं **देयम्** ॥ २३ । १३ ॥

भावार्थः—हे मनुष्याः ! वायुः प्राणेन,

भाषार्थ—हे विद्यार्थिन् ! (पचतैः) परिपाक रूप परिणामों से (वायुः) आदिम, स्थूल कार्य-रूप वायु; (छागैः) छेदन-क्रियाओं से (असितग्रीवः) असित=काली ग्रीवा=चोटी वाला अग्नि, (चमसैः) मेघों से (न्यग्रोधः) वट वृक्ष, (वृद्ध्या) वृद्धि से (शल्मलिः) शल्मलि=सेंमर नामक वृक्ष विशेष (त्वा) तेरी (अवतु) रक्षा करे; जो (एषः) यह (राथ्यः) मार्गों में चलने में कुशल (वृषा) वीर्य-सेचन करने वाला=बलवान् अश्व है (स्यः) वह (चतुर्भिः) चार (पड्भिः) पैरों से (इत्) ही (त्वा) तुझे (आ+अगन्) प्राप्त हो।

और जो (अकृष्णः) अविद्या-अन्धकार से रहित (ब्रह्मा) चारों वेदों का ज्ञाता ब्रह्मा है वह (नः) हमें (अवतु) प्रविष्ट करे, उस (अग्नये) विद्या से प्रकाशमान विद्वान् के लिए (नमः) अन्न दे ॥१३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! वायु प्राण से,

अग्निः पाचनेन, सूर्यो वृष्ट्या, वृक्षाः फलादिभिः, अश्वादयो गत्या, विद्वांसः शिक्षया युष्मान् रक्षन्ति। तान् यूयं विजानीत, विदुषस्सत्कुरुत च ॥२३।१३॥

अग्नि पाक से, सूर्य वर्षा से, वृक्ष फल आदि से, घोड़े आदि गति से और विद्वान् शिक्षा से तुम्हारी रक्षा करते हैं; उन्हें तुम जानो और विद्वानों का सत्कार करो ॥ २३ । १३ ॥

भा० पदार्थः—पचतैः=प्राणेन । छागैः=पाचनेन । असितग्रीवः=अग्निः । चमसैः=वृष्ट्या । न्यग्रोधः=सूर्यः । शल्मलिः=वृक्षः । वृद्धचा=फलादिभिः । वृषा=अश्वादयः । पड्भिः=गत्या । ब्रह्मा=विद्वान् । नमः=सत्कुरुत ॥

भाष्यसार—**विद्वान् मनुष्यों को कहाँ लगावें**—विद्वान् लोग विद्यार्थियों को उपदेश करें कि हे विद्यार्थियो ! वायु परिपाक रूप परिणाम एवं प्राण से, अग्नि छेदन एवं पाचन से, वट आदि वृक्ष और सूर्य मेघ अर्थात् वर्षा से, शल्मलि (सेमर) वृक्ष वृद्धि से तुम्हारी रक्षा करता है। रथों के लिए हितकारी मार्गों में चलने में चतुर घोड़े तुम्हें प्राप्त हों। अविद्या अन्धकार से रहित, चारों वेदों का ज्ञाता विद्वान् (ब्रह्मा) तुम्हें अपने विद्यालय में प्रविष्ट करे। विद्या से प्रकाशमान उस विद्वान् का तुम अन्न आदि से सत्कार करो ॥ २३ । १३ ॥

प्रजापतिः । **ब्रह्मा**=**महान् योगी विद्वान्** । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनर्विद्वांसः किं कुर्युरित्याह ॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

सꣳशितो रश्मिना रथः सꣳशितो रश्मिना हयः ।
सꣳशितो अप्स्वप्सुजा ब्रह्मा सोमपुरोगवः ॥ १४ ॥

पदार्थः—(**संशितः**) सम्यक् सूक्ष्मीकृतः (**रश्मिना**) किरणसमूहेन (**रथः**) रमणसाधनः (**संशितः**) (**रश्मिना**) (**हयः**) अश्वः (**संशितः**) स्तुतः (**अप्सु**) प्राणेषु (**अप्सुजाः**) प्राणेषु जायमानः (**ब्रह्मा**) महान्योगी विद्वान् (**सोमपुरोगवः**) सोम=ओषधिगणबोध ऐश्वर्ययोगो वा पुरोगामी यस्य सः ॥ १४ ॥

अन्वयः—यदि मनुष्यै रश्मिना रथः संशितो रश्मिना हयः संशितोऽप्स्वप्सुजाः सोमपुरोगवो ब्रह्मा संशितः क्रियेत तर्हि किं किं सुखं न लभ्येत ॥ १४ ॥

सपदार्थान्वयः—**यदि मनुष्यै रश्मिना** किरणसमूहेन **रथः** रमणसाधनः **संशितः** सम्यक् सूक्ष्मीकृतः, **रश्मिना हयः** अश्वः **संशितः** स्तुतः, **अप्सु** प्राणेषु **अप्सुजाः** प्राणेषु जायमानः **सोमपुरोगवः** सोम=ओषधिगणबोध ऐश्वर्ययोगो वा पुरोगामी यस्य सः; **ब्रह्मा** महान् योगी विद्वान् **संशितः** स्तुतः **क्रियेत तर्हि किं किं सुखं न लभ्येत** ॥ २३ । १४ ॥

भावार्थ—यदि मनुष्य—(रश्मिना) किरण-समूह से (रथः) रमण के साधन रथ को (संशितः) अच्छे प्रकार सूक्ष्म करें, (रश्मिना) रश्मि=लगाम से (हयः) घोड़े को (संशितः) प्रशंसित करें, (अप्सु) प्राणों में विद्यमान एवं (अप्सुजाः) प्राणों में उत्पन्न (सोमपुरोगवः) सोम=ओषधि-गण के बोध वा ऐश्वर्य के योग में अग्रगामी (ब्रह्मा) महान् योगी विद्वान् की (संशितः) स्तुति करें तो क्या-क्या सुख प्राप्त न हो ॥ २३ । १४ ॥

भावार्थः—ये मनुष्याः पदार्थविज्ञानेन विद्वांसो भवन्ति, तेऽन्यान् कारयित्वा प्रशंसां प्राप्नुवन्तु ॥ २३ । १४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य पदार्थ-विज्ञान से विद्वान् बनते हैं वे अन्यों को विद्वान् बनाकर प्रशंसा को प्राप्त करते हैं ॥ २३ । १४ ॥

भा० पदार्थः—सोमपुरोगवः=पदार्थविज्ञाता ॥

भाष्यसार—**विद्वान् क्या करें**—विद्वान् लोग किरणों की सहायता से रमण के साधन रथों को सूक्ष्म बनावें। रश्मि=लगाम की सहायता से घोड़ों को प्रशंसनीय बनावें। प्राणों में उत्पन्न अर्थात् प्राण-विद्या का ज्ञाता, ओषधियों के बोध वा ऐश्वर्य के योग से सब का अग्रगामी, महान् योगी विद्वान् (ब्रह्मा) की स्तुति करें। मनुष्य पदार्थ-विज्ञान से स्वयं विद्वान् बनें तथा अन्यों को भी विद्वान् बनाकर प्रशंसा को प्राप्त करें ॥ २३ । १४ ॥

प्रजापतिः । **विद्वान्**=स्पष्टम् । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

अथ जिज्ञासवः कीदृशा भवेयुरित्याह ॥

अब जिज्ञासु जन कैसे हों, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

स्वयं वाजिँस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व । महिमा तेऽन्येन न सन्नशे ॥ १५ ॥

पदार्थः—(**स्वयम्**) (**वाजिन्**) जिज्ञासो (**तन्वम्**) शरीरम् (**कल्पयस्व**) समर्थयस्व (**स्वयम्**) (**यजस्व**) संगच्छस्व (**स्वयम्**) (**जुषस्व**) सेवस्व (**महिमा**) प्रतापः (**ते**) तव (**अन्येन**) (**न**) (**सन्नशे**) सम्यक् नश्येत् ॥ १५ ॥

अन्वयः—हे वाजिंस्त्वं स्वयं तन्वं कल्पयस्व स्वयं विदुषो यजस्व स्वयं जुषस्व **च** यतस्ते महिमाऽन्येन सह न संनशे ॥ १५ ॥

सपदार्थान्वयः— हे वाजिन् ! जिज्ञासो ! **त्वं स्वयं तन्वं** शरीरं **कल्पयस्व** समर्थयस्व, **स्वयं विदुषो यजस्व**, सङ्गच्छस्व **स्वयं, जुषस्व** सेवस्व **च** । **यतस्ते** तव **महिमा** प्रतापः **अन्येन सह न संनशे** सम्यक् नश्येत् ॥ २३ । १५ ॥

भाषार्थ—हे (वाजिन्) जिज्ञासु ! तू—(स्वयम्) स्वयं (तन्वम्) शरीर को (कल्पयस्व) समर्थ बना, (स्वयम्) स्वयं विद्वानों का (यजस्व) संग कर, और (स्वयम्) स्वयं (जुषस्व) सेवा कर। जिससे (ते) तेरी (महिमा) महिमा=प्रताप (अन्येन) अन्यों के साथ (न) न (सन्नशे) नष्ट हो ॥ २३ । १५ ॥

भावार्थः—यथाग्निः स्वयंप्रकाशः, स्वयं-सङ्गतः, स्वयंसेवमानोऽस्ति, तथा ये जिज्ञासवः स्वयं पुरुषार्थयुक्ता भवन्ति, तेषां महिमा कदाचिन्न नश्यति ॥ २३ । १५ ॥

भावार्थ—जैसे अग्नि स्वयं प्रकाश रूप, संगत और सेवा करने वाली है, वैसे जो जिज्ञासु स्वयं पुरुषार्थ-युक्त होते हैं उनकी महिमा कभी नष्ट नहीं होती ॥ २३ । १५ ॥

भा० पदार्थः—संनशे=नश्यति ॥

भाष्यसार—**जिज्ञासु कैसे हों**—जैसे अग्नि स्वयं प्रकाश स्वरूप है, स्वयं संगत है, स्वयं सेवा करने वाली है वैसे जिज्ञासु लोग स्वयं शरीर को समर्थ बनावें, स्वयं विद्वानों का संग करें, स्वयं

सेवा करें अर्थात् स्वयं पुरुषार्थ से युक्त हों जिससे जिज्ञासु जनों की महिमा (प्रताप) कभी नष्ट न हो ॥ २३ । १५ ॥

प्रजापतिः । **सविता=परमेश्वरः**। विराड्जगती । निषादः ॥

अथ मनुष्याः कीदृशा भवेयुरित्याह ॥

अब मनुष्य कैसे हों, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

न वा ऽ उं ऽ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ२ऽइदेषि पथिभिः सुगेभिः ।
यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥ १६ ॥

पदार्थः—(न) निषेधे (वै) निश्चयेन (उ) वितर्के (एतत्) (म्रियसे) (न) (रिष्यसि) हिन्धि (देवान्) दिव्यान् गुणान् विदुषो वा (इत्) एव (एषि) प्राप्नोषि (पथिभिः) मार्गैः (सुगेभिः) सुखेन गन्तुं योग्यैः (यत्र) (आसते) उपविशन्ति (सुकृतः) धर्मात्मानः (यत्र) (ते) योगिनो विद्वांसः (ययुः) यान्ति (तत्र) (त्वा) त्वाम् (देवः) स्वप्रकाशः (सविता) सकलजगदुत्पादकः परमेश्वरः (दधातु) धरतु ॥ १६ ॥

अन्वयः—हे विद्यार्थिन् ! यत्र ते सुकृत आसते सुखं ययुर्यत्र सुगेभिः पथिभिस्त्वं देवानेषि यत्रैतदु वर्त्तते स्थितस्त्वं न म्रियसे न वै रिष्यसि तत्रेत् त्वा सविता देवो दधातु ॥ १६ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे विद्यार्थिन् ! यत्र ते** योगिनो विद्वांसः **सुकृतः** धर्मात्मानः **आसते** उपविशन्ति, **सुखं ययुः** यान्ति; **यत्र सुगेभिः** सुखेन गन्तुं योग्यैः **पथिभिः** मार्गैः **त्वं देवान्** दिव्यान् गुणान् विदुषो वा **एषि** प्राप्नोषि, **यत्रैतदु** सवितर्कं **वर्त्तते, स्थितस्त्वं न म्रियसे, न वै** निश्चयेन **रिष्यसि** हिन्धि **तत्रेद्** एव **त्वा** त्वां **सविता** सकलजगदुत्पादकः परमेश्वरः **देवः** स्वप्रकाशः **दधातु** धरतु ॥ २३ । १६ ॥

भाषार्थ—हे विद्यार्थिन् ! (यत्र) जहाँ (ते) वे योगी विद्वान् (सुकृतः) धर्मात्मा (आसते) बैठते हैं, और सुख को (ययुः) प्राप्त करते हैं; (यत्र) जहाँ (सुगेभिः) सुगम (पथिभिः) मार्गों से तू (देवान्) दिव्य गुणों वा विद्वानों को (एषि) प्राप्त करता है; (यत्र) जहाँ (एतद्, उ) यह सब है, एवं जहाँ स्थित होकर तू (न) नहीं (म्रियसे) मरता है और (न, वै) न ही (रिष्यसि) हिंसा करता है, (तत्र) वहाँ (इत्) ही (त्वा) तुझे (सविता) सकल जगत् का उत्पादक (देवः) स्वप्रकाशस्वरूप परमेश्वर (दधातु) धारण करे ॥ २३ । १६ ॥

भावार्थः—यदि मनुष्याः स्वस्वरूपं जानीयुस्तर्हि तेऽविनाशित्वं विद्युः । यदि धर्म्येण मार्गेण गच्छेयुस्तर्हि सुकृतामानन्दं प्राप्नुयुः । यदि परमात्मानं सेवेरंस्तर्हि सत्ये मार्गे जीवान् दध्युः ॥ २३ । १६ ॥

भावार्थ—यदि मनुष्य अपने स्वरूप को जानें तो वे अविनाशिता को समझें। यदि धर्म-युक्त मार्ग से चलें तो धर्मात्माओं के आनन्द को प्राप्त करें। यदि परमात्मा की सेवा=उपासना करें तो सत्य मार्ग में जीवों को रखें ॥ २३ । १६ ॥

भा० पदार्थः—सुगेभिः=धर्म्येण मार्गेण ।

भाष्यसार—**मनुष्य कैसे हों**—जहाँ योगी, धर्मात्मा विद्वान् लोग बैठते हैं, और सुख को प्राप्त करते हैं, विद्यार्थी लोग भी वहाँ बैठें तथा सुख को प्राप्त करें। विद्यार्थी लोग जहाँ सुगम

धर्मयुक्त मार्गों से चलकर दिव्य गुणों वा विद्वानों को प्राप्त करते हैं, अपने स्वरूप को जानकर अविनाशित्व को समझते हैं, धर्मयुक्त मार्ग से चलकर धर्मात्माओं के आनन्द को प्राप्त करते हैं, किसी की हिंसा नहीं करते, सकल जगत् का उत्पादक, स्वप्रकाशस्वरूप परमेश्वर उक्त सत्य मार्ग में उन्हें स्थापित करे ॥ २३ । १६ ॥ ●

प्रजापतिः । **अग्न्यादयः**=अग्नि—आदयः । अतिशक्वर्य्यौ । पञ्चमः ॥

अथ के पशव इत्याह ॥

अब पशु कौन हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

अ॒ग्निः प॒शुरा॑सी॒त्तेना॑यजन्त॒ स ऽ ए॒तं लो॒कम॑जय॒द्यस्मि॑न्न॒ग्निः स तें लो॒को भ॑विष्यति॒ तं जे॑ष्यसि॒ पिबै॒ता ऽ अ॒पः । वा॒युः प॒शुरा॑सी॒त्तेना॑यजन्त॒ स ऽ ए॒तं लो॒कम॑जय॒द्यस्मि॑न्वा॒युः स तें लो॒को भ॑विष्यति॒ तं जे॑ष्यसि॒ पिबै॒ता ऽ अ॒पः । सूर्य्यः॑ प॒शुरा॑सी॒त्तेना॑यजन्त॒ स ऽ ए॒तं लो॒कम॑जय॒द्यस्मि॒न्त्सूर्य्यः॒ स तें लो॒को भ॑विष्यति॒ तं जे॑ष्यसि॒ पिबै॒ताऽअ॒पः ॥१७॥

पदार्थः—(**अग्निः**) वह्निः (**पशुः**) दृश्यः (**आसीत्**) अस्ति (**तेन**) (**अयजन्त**) यजन्तु (**सः**) (**एतम्**) (**लोकम्**) द्रष्टव्यम् (**अजयत्**) जयति (**यस्मिन्**) लोके (**अग्निः**) (**सः**) (**ते**) तव (**लोकः**) (**भविष्यति**) (**तम्**) (**जेष्यसि**) (**पिब**) (**एताः**) (**अपः**) जलानि (**वायुः**) (**पशुः**) द्रष्टव्यः (**आसीत्**) (**तेन**) (**अयजन्त**) (**सः**) (**एतम्**) वाय्वधिष्ठातृकम् (**लोकम्**) (**अजयत्**) जयति (**यस्मिन्**) (**वायुः**) (**सः**) (**ते**) (**लोकः**) (**भविष्यति**) (**तम्**) (**जेष्यसि**) उत्कर्षयसि (**पिब**) (**एताः**) (**अपः**) प्राणान् (**सूर्यः**) (**पशुः**) दृश्यः (**आसीत्**) (**तेन**) (**अयजन्त**) (**सः**) (**एतम्**) सूर्याधिष्ठितम् (**लोकम्**) (**अजयत्**) जयति (**यस्मिन्**) (**सूर्यः**) (**सः**) (**ते**) (**लोकः**) (**भविष्यति**) (**तम्**) (**जेष्यसि**) (**पिब**) (**एताः**) (**अपः**) व्याप्तान् प्रकाशान् ॥ १७ ॥

अन्वयः—हे जिज्ञासो ! यस्मिन् सोऽग्निः पशुरासीत्तेनाऽयजन्त तेन त्वं यज यथा स विद्वांस्तेनैतं लोकमजयत्तथैतं जय तं चेज्जेष्यसि तर्हि सोऽग्निस्ते लोको भविष्यति, अतस्त्वमेता यज्ञेन शोधिता अपः पिब । यस्मिन् स वायुः पशुरासीद्येन यजमाना अयजन्त तेन त्वं यज यथा स एतं लोकमजयत्तथा त्वं जय यदि तं जेष्यसि तर्हि स वायुस्ते लोको भविष्यति, अतस्त्वमेता अपः पिब । यस्मिन्स सूर्यः पशुरासीत्तेनायजन्त यथा स एतं लोकमजयत्तथा त्वं जय यदि त्वं तं जेष्यसि तर्हि स सूर्यस्ते लोको भविष्यति तस्मात्त्वमेता अपः पिब ॥ १७ ॥

सपदार्थान्वयः — हे **जिज्ञासो** ! **यस्मिन्** लोके **सोऽग्निः** वह्निः **पशुः** दृश्यः **आसीत्** अस्ति, **तेनाऽयजन्त** यजन्तु **तेन त्वं यज**। **यथा स विद्वांस्तेनैतं लोकं** द्रष्टव्यम् **अजयत्** जयति **तथैतं जय । तं चेज्जेष्यसि तर्हि सोऽग्निः** वह्निः **ते** तव **लोको भविष्यति, अतस्त्वमेता यज्ञेन शोधिता अपः** जलानि **पिब ।**

भावार्थ—हे जिज्ञासु ! (यस्मिन्) जिस लोक में (सः) वह (अग्निः) अग्नि (पशुः) देखने योग्य (आसीत्) है (तेन) उससे यजमान (अयजन्त) यज्ञ करते हैं उससे तू यज्ञ कर । जैसे वह विद्वान् उससे (एतम्) इस (लोकम्) दर्शनीय लोक को (अजयत्) जीतता है वैसे इसे तू जीत । यदि (तम्) उसे (जेष्यसि) जीत लेगा तो (सः) वह (अग्निः) अग्नि (ते) तेरा (लोकः) दर्शनीय लोक (भविष्यति)

बन जायेगा इस लिए तू (एताः) इन यज्ञ से शोधित (अपः) जलों का (पिब) पान कर।

यस्मिन् लोके **स वायुः पशुः** द्रष्टव्यः **आसीद्** अस्ति, **येन यजमाना अयजन्त, तेन त्वं यज, यथा स** एतं वाय्वधिष्ठातृकं **लोकं** द्रष्टव्यम् **अजयत्** जयति, **तथा त्वं जय; यदि तं जेष्यसि** उत्कर्षयसि **तर्हि स वायुस्ते** तव **लोको भविष्यति, अतस्त्वमेता अपः** प्राणान् **पिब**।

(यस्मिन्) जिस लोक में (सः) वह (वायुः) वायु (पशुः) देखने योग्य (आसीत्) है, जिससे यजमान (अयजन्त) यज्ञ करते हैं (तेन) उससे तू यज्ञ कर जैसे वह (एतम्) इस वायु-अधिष्ठातृक (लोकम्) दर्शनीय लोक को (अजयत्) जीतता है, वैसे तू जीत। यदि (तम्) उसे (जेष्यसि) जीत लेगा तो (सः) वह (वायुः) वायु (ते) तेरा (लोकः) लोक (भविष्यति) बन जायेगा, इसलिए तू (एताः) इन (अपः) प्राणों का (पिब) पान कर।

यस्मिन् लोके स **सूर्य्यः पशुः** दृश्यः **आसीद्** अस्ति, **तेनायजन्त, यथा स** एतं सूर्याधिष्ठितं **लोकमजयत्** जयति, **तथा त्वं जय। यदि त्वं तं जेष्यसि तर्हि स सूर्यस्ते** तव **लोको भविष्यति, तस्मात्त्वमेता अपः** व्याप्तान् प्रकाशान् **पिब** ॥ २३ । १७ ॥

(यस्मिन्) जिस लोक में (सः) वह (सूर्यः) (पशुः) दर्शनीय पशु (आसीत्) है (तेन) उससे यजमान (अयजन्त) यज्ञ करते हैं, जैसे (सः) वह (एतम्) इस सूर्य-अधिष्ठित (लोकम्) दर्शनीय लोक को (अजयत्) जीतता है, वैसे तू जीत। यदि तू (तम्) उसे (जेष्यसि) जीत लेगा तो (सः) वह (सूर्यः) सूर्य (ते) तेरा (लोकः) लोक (भविष्यति) बन जायेगा, इसलिए तू (एताः) इन (अपः) व्याप्त प्रकाशों का (पिब) पान कर ॥ २३ । १७ ॥

भावार्थः—हे मनुष्याः! सर्वेषु यज्ञेष्वग्न्यादीनेव पशून् जानन्तु। नैव प्राणिनोऽत्र हिंसनीया होतव्या वा सन्ति; य एवं विदित्वा सुगन्ध्यादिद्रव्याणि सुसंस्कृत्याग्नौ जुह्वति—तानि वायुं सूर्यं च प्राप्य वृष्टिद्वारा निवर्त्य; ओषधीः; प्राणान्, शरीरं, बुद्धिं च क्रमेण प्राप्य सर्वान् प्राणिन आह्लादयन्ति। एतत्कर्त्तारः पुण्यस्य महत्त्वेन परमात्मानं प्राप्य महीयन्ते ॥ २३ । १७ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! सब यज्ञों में अग्नि आदिकों को ही पशु जानो। यज्ञों में प्राणी हिंसनीय वा होतव्य नहीं होते। जो ऐसे जानकर सुगन्धि आदि द्रव्यों को शुद्ध करके अग्नि में होम करते हैं, वे द्रव्य वायु और सूर्य में पहुँच कर, वर्षा के द्वारा लौट कर; ओषधि, प्राण, शरीर और बुद्धि को क्रमशः प्राप्त होकर सब प्राणियों को आह्लादित करते हैं। इस यज्ञ के करने वाले लोग पुण्य के महत्त्व से परमात्मा को प्राप्त करके पूज्य होते हैं ॥ २३ । १७ ॥

भाष्यसार—पशु कौन हैं—जिस यज्ञ में अग्नि पशु है, उससे यजमान लोग यज्ञ करते हैं, जिज्ञासु भी उसी से यज्ञ करे। जैसे विद्वान् यज्ञ से, इस अग्नि-लोक को जीतता है वैसे जिज्ञासु भी इसे जीते। यदि जिज्ञासु इस लोक को जीत लेगा तो अग्नि-लोक उसके लिए सुखदायक बन जायेगा और जिज्ञासु यज्ञ से शुद्ध हुए जलों का पान करेगा।

जिस यज्ञ में वायु पशु है, उससे यजमान लोग यज्ञ करते हैं, जिज्ञासु भी उसी से यज्ञ करे। जैसे वह यजमान वायु-अधिष्ठातृक लोक को जीतता है, वैसे जिज्ञासु भी इसे जीते। यदि जिज्ञासु इस

लोक को जीत लेगा तो वह वायु-लोक उसके लिए सुखदायक बन जायेगा और जिज्ञासु यज्ञ से बलवान् हुए प्राणों का पान करेगा।

जिस यज्ञ में सूर्य पशु है, उससे यजमान लोग यज्ञ करते हैं, जिज्ञासु भी उसी से यज्ञ करे। जैसे वह यजमान सूर्य-अधिष्ठातृक लोक को जीतता है वैसे जिज्ञासु भी इसे जीते। यदि जिज्ञासु इस लोक को जीत लेगा तो वह सूर्य-लोक उसके लिए सुखदायक बन जायेगा और जिज्ञासु यज्ञ से शुद्ध हुए प्रकाशों का पान करेगा।

तात्पर्य यह है कि सब यज्ञों में अग्नि, वायु और सूर्य को ही पशु समझें। यज्ञ में प्राणियों की हिंसा न करें। सुगन्धि आदि द्रव्यों को शुद्ध करके होम करें क्योंकि वे वायु और सूर्य को प्राप्त होते हैं, वर्षा द्वारा वापस आते हैं। औषधि, प्राण, शरीर और बुद्धि को क्रमशः प्राप्त होते हैं तथा सब प्राणियों को प्रसन्न करते हैं। यज्ञ करने वाले लोग मन्त्रोक्त पुण्य की महिमा से परमात्मा को प्राप्त करके सबके पूज्य होते हैं ॥ २३ । १७ ॥ ●

प्रजापतिः । **प्राणाद्यः**=स्पष्टम् । विराड्जगती । निषादः ॥

पुनर्मनुष्यैः किं किं विज्ञेयमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को क्या-क्या जानना चाहिये, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

प्राणाय स्वाहापानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा अम्बे ऽ अम्बिकेऽम्बालिके
न मा नयति कश्चन । ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम् ॥ १८ ॥

पदार्थः—(**प्राणाय**) प्राणपोषणाय (**स्वाहा**) सत्या वाक् (**अपानाय**) (**स्वाहा**) (**व्यानाय**) (**स्वाहा**) (**अम्बे**) मातः (**अम्बिके**) पितामहि (**अम्बालिके**) प्रपितामहि (**न**) निषेधे (**मा**) माम् (**नयति**) वशे स्थापयति (**कः**) (**चन**) कोऽपि (**ससस्ति**) स्वपिति (**अश्वकः**) अश्व इव गन्ता जनः (**सुभद्रिकाम्**) सुष्ठु कल्याणकारिकाम् (**कांपीलवासिनीम्**) कं=मुखं पीलति=बध्नाति गृह्णातीति कंपीलः स्वार्थेऽण् तं वासयितुं शीलमस्यास्तां लक्ष्मीम् ॥ १८ ॥

अन्वयः—हे अम्बेऽम्बिकेऽम्बालिके कश्चनाश्वको यां कांपीलवासिनीं सुभद्रिकामादाय ससस्ति न मा नयति अतोऽहं प्राणाय स्वाहाऽपानायै स्वाहा व्यानाय स्वाहा च करोमि ॥ १८ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे अम्बे !** मातः ! **अम्बिके !** पितामहि ! **अम्बालिके !** प्रपितामहि ! **कश्चन** कोऽपि **अश्वकः** अश्व इव गन्ता जनः **यां काम्पीलवासिनीं** कं=सुखं पीलति=बध्नाति गृह्णातीति कम्पीलस्तं वासयितुं शीलमस्यास्तां लक्ष्मीं, **सुभद्रिकां** सुष्ठु कल्याणकारिकाम् **आदाय ससस्ति** स्वपिति; **न मा** मां **नयति** वशे स्थापयति, **अतोऽहं प्राणाय** प्राणपोषणाय **स्वाहा** सत्यावाक्, **अपानाय स्वाहा** सत्या वाक्, **व्यानाय स्वाहा** सत्या वाक् **च करोमि** ॥ २३ । १८ ॥

भाषार्थ—हे (अम्बे) माता ! (अम्बिके) दादी ! (अम्बालिके) परदादी ! (कश्चन) कोई (अश्वकः) घोड़े के समान शीघ्रगामी मनुष्य—जिस (काम्पीलवासिनीम्) सुख को प्राप्त करने वाले मनुष्य को बसाने वाली (सुभद्रिकाम्) अत्यन्त कल्याणकारी लक्ष्मी को ग्रहण करके (ससस्ति) सोता है; आलसी हो जाता है, वह (मा) मुझे (न) नहीं (नयति) वश में रखता है; इसलिए मैं—(प्राणाय) प्राण-पोषण के लिए (स्वाहा) सत्य-वाणी, (अपानाय) अपान के लिए (स्वाहा) सत्य

वाणी और (व्यानाय) व्यान के लिए (स्वाहा) सत्य भाषण करता हूँ ॥ २३ । १८ ॥

भावार्थः—हे मनुष्याः ! यथा माता, पितामही, प्रपितामह्यऽपत्यानि सुशिक्षां नयति, तथा युष्माभिरपि स्वसन्तानाः शिक्षणीयाः । धनस्य स्वभावोऽस्ति—यत्रेदं संचीयते तान् निद्रालूनलसान् कर्महीनान् करोति । अतो धनं प्राप्यापि पुरुषार्थ एव कर्त्तव्यः ॥ २३ । १८ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे माता, दादी और परदादी अपने सन्तानों को उत्तम शिक्षा करती हैं वैसे तुम भी अपने सन्तानों को शिक्षा करो । धन का स्वभाव यह है कि जहाँ यह संचित (इकट्ठा) होता है उन लोगों को निद्रालू, आलसी और कर्महीन बना देता है; अतः धन को प्राप्त करके भी पुरुषार्थ ही करना चाहिए ॥ २३ । १८ ॥

भा० पदार्थः—काम्पीलवासिनीम्=धनम् । ससस्ति=निद्रालूनलसान् कर्महीनान् करोति ॥

भाष्यसार—**मनुष्य क्या-क्या जानें**—जैसे माता, दादी और परदादी अपने सन्तानों को उत्तम शिक्षा करती हैं वैसे सब मनुष्य अपने सन्तानों को उत्तम शिक्षा करें ।

घोड़े के समान शीघ्रगामी (चंचल) मनुष्य—जो लक्ष्मी सुखाभिलाषी मनुष्य को बसाने वाली तथा अत्यन्त कल्याणकारी है, उस लक्ष्मी को प्राप्त करके सो जाता है, अर्थात् आलसी और कर्महीन हो जाता है । मनुष्य लक्ष्मी के इस स्वभाव को जाने । लक्ष्मी को प्राप्त करके आलसी कभी न हो । लक्ष्मी के वश में न रहे अपितु प्राण, अपान और व्यान के पोषण के लिए पुरुषार्थी होकर सत्यभाषण आदि शुभ कर्मों का अनुष्ठान करता रहे ॥ २३ । १८ ॥

प्रजापतिः । **गणपतिः=परमात्मा** । शक्वरी । धैवतः ॥

पुनर्मनुष्यैः कीदृशः परमात्मोपासनीय इत्याह ॥

फिर मनुष्य को कैसे परमात्मा की उपासना करनी चाहिए, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे वसो मम । आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् ॥ १९ ॥

पदार्थः—(**गणानाम्**) समूहानाम् (**त्वा**) त्वाम् (**गणपतिम्**) समूहपालकम् (**हवामहे**) स्वीकुर्महे (**प्रियाणाम्**) कमनीयानाम् (**त्वा**) (**प्रियपतिम्**) कमनीयं पालकम् (**हवामहे**) (**निधीनाम्**) विद्यादिपदार्थपोषकाणाम् (**त्वा**) (**निधिपतिम्**) निधीनां पालकम् (**हवामहे**) (**वसो**) वसन्ति भूतानि यस्मिन्त्स वसुस्तत्सम्बुद्धौ (**मम**) (**आ**) (**अहम्**) (**अजानि**) जानीयाम् (**गर्भधाम्**) यो गर्भं दधाति तम् (**आ**) (**त्वम्**) (**अजासि**) प्राप्नुयाः (**गर्भधम्**) प्रकृतिम् ॥ १९ ॥

अन्वयः—हे जगदीश्वर ! वयं गणानां गणपतिं त्वा हवामहे प्रियाणां प्रियपतिं त्वा हवामहे । निधीनां निधिपतिं त्वा हवामहे । हे वसो ! मम न्यायाधीशो भूयाः । यं गर्भधं त्वमाजासि तं गर्भधमहमाजानि ॥ १९ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे जगदीश्वर ! वयं गणानां** समूहानां **गणपतिं** समूहपालकं **त्वा** त्वां

भाषार्थ—हे जगदीश्वर ! हम (गणानाम्) गणों का (गणपतिम्) गणपति (त्वा) तुझे (हवा-

हवामहे स्वीकुर्महे । **प्रियाणां** कमनीयानां **प्रियपतिं** कमनीयं पालकं **त्वा** त्वां **हवामहे** स्वीकुर्महे। **निधीनां** विद्यादिपदार्थपोषकाणां **निधिपतिं** निधीनां पालकं **त्वा त्वां हवामहे** स्वीकुर्महे ।

हे वसो ! वसन्ति भूतानि यस्मिन्त्स वसुस्तत्सम्बुद्धौ ! **मम न्यायधीशो भूयाः** । **यं गर्भधं** यो गर्भं दधाति तं **त्वमाजासि** प्राप्नुयाः, **तं गर्भधं** प्रकृतिम् **अहमाजानि** जानीयाम् ॥ २३ । १९ ॥

भावार्थः—हे मनुष्याः ! यः सर्वस्य जगतो रक्षकः, इष्टानां विधाता, ऐश्वर्याणां प्रदाता, प्रकृतेः पतिः, सर्वेषां बीजानि विदधाति, तमेव जगदीश्वरं सर्व उपासीरन् ॥ २३ । १९ ॥

महे) स्वीकार करते हैं । (प्रियाणाम्) प्रियजनों का (प्रियपतिम्) प्रिय पति (त्वा) तुझे (हवामहे) स्वीकार करते हैं, (निधीनाम्) विद्या आदि पदार्थों के पोषकों का (निधिपतिम्) निधि-पालक (त्वा) तुझे (हवामहे) स्वीकार करते हैं ।

हे (वसो) सब भूतों के वास-स्थान परमात्मन् ! तू (मम) मेरा न्यायाधीश बन । जिस—(गर्भधम्) गर्भ रूप में धारण करने वाली प्रकृति को (त्वम्) तू (आजासि) प्राप्त करता है उस (गर्भधम्) प्रकृति को मैं (आजानि) जानूं ॥ २३ । १९ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यों ! जो सब जगत् का रक्षक, अभीष्ट पदार्थों का कर्त्ता, ऐश्वर्य का प्रदाता, प्रकृति का पति और सब बीजों का विधाता है, उस जगदीश्वर की ही सब उपासना करें ॥ २३ । १९ ॥

भा० पदार्थः—गणानां=सर्वस्य जगतः । गणपतिम्=रक्षकम् । प्रियाणाम्=इष्टानाम् । प्रियपतिम्=विधातारम् । निधीनाम्=ऐश्वर्याणाम् । निधिपतिम्=ऐश्वर्यस्य प्रदातारम् । गर्भधम्=प्रकृतेः पतिं, यः सर्वेषां बीजानि विदधाति तम् ॥

अन्यत्र व्याख्यात—(क) महीधर का अर्थ—(गणानां०) इस मन्त्र में महीधर ने कहा है कि गणपति शब्द से घोड़े का ग्रहण है सो देखो महीधर का उलटा अर्थ कि सब ऋत्विजों के सामने यजमान की स्त्री घोड़े के पास सोवे और सोती हुई घोड़े से कहे कि अश्व जिससे गर्भ धारण होता है, ऐसा जो तेरा वीर्य है, उसको मैं खेंच के अपनी योनि में डालूँ, तथा तू उस वीर्य को मुझ में स्थापन करने वाला है ।

(ख) (गणानां त्वा०) एतरेय ब्राह्मण में गणपति शब्द की ऐसी व्याख्या की है कि यह मन्त्र ईश्वरार्थ का प्रतिपादन करता है । जैसे ब्रह्म का नाम बृहस्पति, ईश्वर तथा वेद का नाम भी ब्रह्म है, जैसे अच्छा वैद्य रोगी को औषध देके दुःखों से अलग कर देता है, वैसे ही परमेश्वर भी वेदोपदेश करके मनुष्य को विज्ञान रूप ओषधि देके—अविद्या रूप दुःखों से छुड़ा देता है, जो कि 'प्रथ' अर्थात् विस्तृत सब में व्याप्त और 'सप्रथ' अर्थात् आकाश आदि विस्तृत पदार्थों के साथ भी व्यापक हो रहा है । इसी प्रकार से यह मन्त्र ईश्वर के नामों का यथावत् प्रतिपादन कर रहा है ।

ऐसे ही शतपथ ब्राह्मण में राज्यपालन का नाम अश्वमेध, राजा का नाम अश्व, और प्रजा का नाम घोड़े से भिन्न पशु रखा है । राज्य की शोभा धन है और ज्योति का नाम हिरण्य है, तथा अश्व नाम परमेश्वर का भी है, क्योंकि कोई मनुष्य स्वर्ग-लोक को अपने सहज सामर्थ्य से नहीं जान सकता किन्तु अश्व अर्थात् जो ईश्वर है वही उनके लिए स्वर्ग सुख को जनाता और जो मनुष्य प्रेमी, धर्मात्मा हैं उनको सब स्वर्ग सुख देता है, तथा—(राष्ट्रमश्वमेधः) राज्य के प्रकाश का धारण करना सभा ही का काम और उसी सभा का नाम राजा है । वही अपनी ओर से प्रजा पर कर लगाती है, क्योंकि राजा ही से राज्य और प्रजा ही से प्रजा की वृद्धि होती है ।

(गणनां त्वा०) स्त्री लोग भी राज्यपालन के लिए विद्या की शिक्षा सन्तानों को करती रहें । जो इस यज्ञ को प्राप्त होके भी सन्तानोत्पत्ति आदि कर्म में मिथ्याचरण करती हैं उनके इस कर्म को विद्वान्

लोग प्रसन्न [पसन्द] नहीं करते। और जो पुरुष सन्तानादि की शिक्षा में आलस्य करते हैं, अन्य लोग उनको बांध कर ताड़ना देते हैं। इस प्रकार तीन, छः, वा नव बार इसकी रक्षा से आत्मा, शरीर और बल को सिद्ध करें। जो मनुष्य परमेश्वर की उपासना करते हैं, उनके बलादि गुण कभी नष्ट नहीं होते।

(आहमजानि०) प्रजा के कारण का नाम गर्भ है। उसके समतुल्य वह सभा—प्रजा और प्रजा के पशुओं को अपने आत्मा में धारण करे अर्थात् जिस प्रकार अपना सुख चाहे वैसा ही प्रजा और उसके पशुओं का भी सुख चाहे।

(गणानां त्वा०) जो परमात्मा गणनीय पदार्थों का पति अर्थात् पालन करने हारा है (त्वा) उसको (हवामहे) हम लोग पूज्य बुद्धि से ग्रहण करते हैं। (प्रियाणां) जो कि हमारे इष्ट मित्र और मोक्ष-सुखादि का प्रियपति तथा हमको आनन्द में रखकर सदा पालन करने वाला है उसी को हम लोग अपना उपास्य देव जान के ग्रहण करते हैं। (निधीनां त्वा०) जोकि विद्या और सुखादि का निधि अर्थात् हमारे कोशों का पति है, उसी सर्वशक्तिमान् परमेश्वर को हम अपना राजा और स्वामी मानते हैं, तथा जो कि व्यापक होके सब जगत् में और सब जगत् उसमें बस रहा है, इस कारण से उसको 'वसु' कहते हैं। हे वसु परमेश्वर ! जो आप अपने सामर्थ्य से जगत् के अनादि कारण में गर्भ धारण करते हैं अर्थात् सब मूर्तिमान् द्रव्यों को आप ही रचते हैं, इसी हेतु से आपका नाम 'गर्भध' है। (आहमजानि) मैं ऐसे गुण सहित आपको जानूं। (आ त्व०) जैसे आप सब प्रकार से सबको जानते हैं, वैसे ही मुझको भी सब प्रकार से ज्ञानयुक्त कीजिए। (गर्भधं०) दूसरी बेर 'गर्भध' शब्द का पाठ इसलिए है कि जो-जो प्रकृति और परमाणु आदि कार्य द्रव्यों के गर्भ रूप हैं, उनमें भी सब जगत् के गर्भ रूप बीज को धारण करने वाले ईश्वर से भिन्न दूसरा कार्य जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय करने वाला कोई भी नहीं है। यही अर्थ ऐतरेय शतपथ ब्राह्मण में कहा है।

विचारना चाहिए कि सत्य अर्थ के गुप्त होने और मिथ्या नवीन अर्थों के प्रचार होने से मनुष्यों को भ्रान्त करके वेदों का कितना अपमान कराया है। जैसे यह दोष खण्डित हुआ वैसे इस भाष्य की प्रवृत्ति से इन सब मिथ्या दोषों की निवृत्ति हो जायेगी। (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, भाष्यकरण शङ्का-समाधानादि विषय)॥

(ग) (**प्रश्न**)—"नमस्ते रुद्रमन्यवे"। "वैष्णवमसि"। "वामनाय च"। **"गणानान्त्वा गणपतिꣳहवामहे"**। "भगवती भूयाः"। "सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च" इत्यादि वेद प्रमाणों से शैवादि मत सिद्ध होते हैं, पुनः क्यों खण्डन करते हो ?

(**उत्तर**)—इन वचनों से शैवादि सम्प्रदाय सिद्ध नहीं होते क्योंकि "रुद्र" परमेश्वर, प्राणादि वायु, जीव, अग्नि आदि का नाम है। जो क्रोध करता रुद्र अर्थात् दुष्टों को रुलाने वाले परमात्मा को नमस्कार करना। प्राण और जाठराग्नि को अन्न देना। (नम इति अन्ननाम निघं० २। ७) जो मङ्गलकारी सब संसार का अत्यन्त कल्याण करने वाला है उस परमात्मा को नमस्कार करना चाहिए। "शिवस्य परमेश्वरस्यायं भक्तः शैवः"। "विष्णोः परमात्मनोऽयं भक्तः वैष्णवः"। **"गणपतेः सकलजगत्स्वामिनोऽयं सेवको गाणपतः"**। "भगवत्या=वाण्या अयं सेवकः भागवतः"। सूर्यस्य चराचरात्मनोऽयं सेवकः सौरः" ये सब रुद्र, शिव, विष्णु, गणपति, सूर्यादि परमेश्वर के और भगवती सत्य भाषणयुक्त वाणी का नाम है। (सत्यार्थप्रकाश, एकादशसमुल्लास)

(घ) हे समूहाधिपते ! आप मेरे सब समूहों के पति होने से आपको गणपति नाम से ग्रहण करता हूँ तथा मेरे प्रिय कर्मकारी और जनों के पालक भी आप ही हैं। इससे आप को प्रियपति

मैं अवश्य जानूं। इसी प्रकार मेरी सब निधियों के पति होने से आप को मैं निश्चित निधिपति जानूं।

हे "वसो" सब जगत् को जिस सामर्थ्य से उत्पन्न किया है, उस अपने सामर्थ्य का धारण और पोषण करने वाला आप को ही मैं जानूं। सबका कारण आपका सामर्थ्य है, यही सब जगत् का धारण और पोषण करता है। यह जीवादि जगत् तो जन्मता और मरता है परन्तु आप सदैव अजन्मा और अमृत-स्वरूप हैं। आपकी कृपा से अधर्म, अविद्या, दुष्टभावादि को "अजानि" दूर फेंकूं तथा हम सब लोग आप की ही "हवामहे" अत्यन्त स्पर्धा (प्राप्ति की इच्छा) करते हैं। सो आप अब शीघ्र हमको प्राप्त होओ जो प्राप्त होने में आप थोड़ा भी विलम्ब करेंगे तो हमारा कुछ भी ठिकाना न लगेगा॥

(आर्याभिविनय २। ४६) ॥ २३। १९॥

भाष्यसार—१. **मनुष्य कैसे परमात्मा की उपासना करें**—जो जगदीश्वर गणों का पालक है अर्थात् सब जगत् का रक्षक है, प्रियजनों का पालक है अर्थात् प्रियजनों के अभीष्ट कार्यों को सिद्ध करने वाला है, विद्या आदि ऐश्वर्य के पोषक जनों का पालक है अर्थात् विद्या आदि ऐश्वर्यों का दाता है, मनुष्य उस परमात्मा की उपासना करें।

२. **प्रार्थना**--हे सब भूतों के वास-स्थान परमात्मन्! तू मेरा न्यायाधीश बन। जो प्रकृति सब जगत् को गर्भ रूप में धारण करने वाली है उसका तू पति है, उस प्रकृति में तू सबके बीजों का विधान करता है उस प्रकृति को मैं जानूं॥ २३। १९॥

प्रजापतिः। **राजप्रजे=राजा प्रजा च**। स्वराडनुष्टुप्। गान्धारः॥

अथ राजप्रजाजनाः परस्परं कथं वर्त्तेरन्नित्याह॥

अब राजा और प्रजाजन परस्पर कैसे वर्त्तें, इस विषय का उपदेश किया जाता है॥

ता ऽ उभौ चतुरः पदः संप्रसारयाव स्वर्गे लोके प्रोर्णुवाथां वृषा वाजी रेतोधा रेतो दधातु ॥२०॥

पदार्थः—(तौ) प्रजाराजानौ (**उभौ**) (**चतुरः**) धर्मार्थकाममोक्षान् (**पदः**) प्राप्तव्यान् (**संप्रसारयाव**) विस्तारयावः (**स्वर्गे**) सुखमये (**लोके**) द्रष्टव्ये (**प्र**) (**ऊर्णुवाथाम्**) प्राप्नुयाथाम् (**वृषा**) दुष्टानां शक्तिबन्धकः (**वाजी**) विज्ञानवान् (**रेतोधाः**) यो रेतः=श्लेषमालिङ्गनं दधाति सः (**रेतः**) वीर्यं=पराक्रमम् (**दधातु**)॥ २०॥

अन्वयः—हे राजप्रजे! युवां उभौ तौ यथा स्वर्गे लोके चतुरः पदः प्रोर्णुवाथां तथैताना-वामध्यापकोपदेशकौ संप्रसारयाव यथा रेतोधा वृषा वाजी राजा प्रजासु रेतो वीर्यं दध्यात्तथा प्रजापि दधातु॥ २०॥

सपदार्थान्वयः—हे राजाप्रजे! **युवां—उभौ तौ** प्रजाराजानौ **यथा स्वर्गे** सुखमये **लोके** द्रष्टव्ये **चतुरः** धर्मार्थकाममोक्षान् **पदः** प्राप्त-व्यान् **प्रोर्णुवाथां** प्राप्नुयाथां **तथैतानावामध्यापको-पदेशकौ संप्रसारयाव** विस्तारयावः। **यथा रेतोधाः** यो रेतः=श्लेषमालिङ्गनं दधाति सः **वृषा** दुष्टानां शक्तिबन्धकः **वाजी=राजा** विज्ञानवान् **प्रजासु**

भाषार्थ—हे राजा और प्रजा! तुम अर्थात् (उभौ) दोनों (तौ) राजा और प्रजा—जैसे (स्वर्गे) सुखमय (लोके) लोक में (चतुरः) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार (पदः) प्राप्त करने योग्य पदार्थों को (प्रोर्णुवाथाम्) प्राप्त करें वैसे इनका हम अध्यापक और उपदेशक लोग (सम्प्रसार-याव) विस्तार करें। जैसे (रेतोधाः) बल=

रेतो=वीर्यं वीर्य=पराक्रमं **दध्यात्तथा प्रजापि दधातु** ॥ २३ । २० ॥

पराक्रम को धारण करने वाला, (वृषा) दुष्टों की शक्ति का बन्धक, (वाजी) विज्ञानवान् राजा, प्रजा में (रेत:) बल=पराक्रम को स्थापित करे, वैसे प्रजा भी राजा में बल को (दधातु) स्थापित करे ॥ २३ । २० ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यदि राजप्रजे पितापुत्रवद्वर्त्तेयातां, तर्हि धर्मार्थकाममोक्षफलसिद्धिं यथावत् प्राप्नुयाताम्, यथा राजा प्रजासुखबले वर्द्धयेत् तथा प्रजा अपि राज्ञः सुखबले उन्नयेत् ॥ २३ । २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। यदि राजा और प्रजा पिता और पुत्र के समान वर्त्ताव करें तो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप फलों की सिद्धि को यथावत् प्राप्त हों। जैसे राजा प्रजा के सुख और बल को बढ़ावे वैसे प्रजा भी राजा के सुख और बल को उन्नत करे ॥ २३ । २० ॥

अन्यत्र व्याख्यात—(क) (ता उभौ०)—राजा और प्रजा हम दोनों मिल के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि के प्रचार करने में सदा प्रवृत्त रहें; किस प्रयोजन के लिए कि दोनों की अत्यन्त सुखरूप स्वर्ग लोक में प्रिय आनन्द की स्थिति के लिए। जिससे हम दोनों परस्पर तथा सब प्राणियों को सुख से परिपूर्ण कर देवें। जिस राज्य में मनुष्य लोग अच्छी प्रकार ईश्वर को जानते हैं वही देश सुखयुक्त होता है। इस से राजा और प्रजा परस्पर सुख के लिए सद्गुणों के उदेशक पुरुष की सदा सेवा करें और विद्या तथा बल को सदा बढ़ावें। इस अर्थ का कहने वाला (ता उभौ०) यह मंत्र है इस अर्थ से महीधर का अर्थ अत्यन्त विरुद्ध है ॥

(ख) महीधर का मिथ्या अर्थ—यजमान की स्त्री घोड़े के लिंग को पकड़ कर आप ही अपनी योनि में डाल देवे ॥ (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, भाष्यकरणशंकासमाधानादिविषय) ॥ २३ । २० ॥

भाष्यसार—१. राजा और प्रजा का परस्पर वर्त्ताव—राजा और प्रजा स्वर्ग अर्थात् सुखमय लोक में रहते हुए पिता-पुत्र के समान वर्ताव करके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त करे। अध्यापक और उपदेशक लोग धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की विद्या का प्रसार करें। राजा—प्रजा में पराक्रम को स्थापित करने वाला हो, दुष्टों की शक्ति को बाँध कर रखने वाला हो, विज्ञानवान् हो। जैसे राजा प्रजा के सुख और बल को बढ़ावे वैसे प्रजा भी राजा के सुख और बल को उन्नत करे।

२. अलंकार—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि राजा और प्रजा के समान अध्यापक और उपदेशक लोग धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध करें और राजा के समान प्रजा भी सुख, बल आदि को बढ़ावें ॥ २३ । २० ॥

प्रजापतिः । **न्यायाधीशः=राजा** । भुरिग्गायत्री । षड्जः ॥

पुना राज्ञा दुष्टाचाराः सम्यग्दण्डनीया इत्याह ॥

राजा को दुष्टाचारी जनों को भलीभाँति दण्ड देना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

उत्सक्थ्या ऽ अव गुदं धेहि समञ्जिं चारया वृषन् । य स्त्रीणां जीवभोजनः ॥ २१ ॥

पदार्थः—(**उत्सक्थ्या**) ऊर्ध्वं सक्थिनी यस्यास्तस्याः प्रजायाः (**अव**) (**गुदम्**) क्रीडाम् (**धेहि**) (**सम्**) (**अञ्जिम्**) प्रसिद्धन्यायम् (**चारय**) प्रापय । अत्र संहितायामिति दीर्घः (**वृषन्**) शक्तिमन् (**यः**) (**स्त्रीणाम्**) (**जीवभोजनः**) जीवा भोजनं=भक्षणं यस्य सः ॥ २१ ॥

प्रमाणार्थ—(चारय) प्राप्त करा । यहाँ "संहितायाम्" अधिकार से दीर्घ है ।

अन्वयः—हे वृषन् ! यः स्त्रीणां जीवभोजनो व्यभिचारी व्यभिचारिणी वा स्त्री वर्त्तेत, तं तां च निगृह्योत्सक्थ्यास्ताडय स्वप्रजायां च गुदमव धेह्यञ्जि संचारय ॥ २१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **वृषन्** शक्तिमन् ! **यः स्त्रीणां जीवभोजनः** जीवा भोजनं=भक्षणं यस्य सः, **व्यभिचारी व्यभिचारिणी वा स्त्री वर्त्तेत; तं तां च निगृह्योत्सक्थ्याः** ऊर्ध्वं सक्थिनी यस्यास्तस्याः प्रजायाः **ताडय; स्वप्रजायां च गुदं** क्रीडाम् **अवधेहि, अञ्जिं** प्रसिद्धन्यायं **सम्+चारय** प्रापय ॥ २३ । २१ ॥

भाषार्थ—हे (वृषन्) शक्तिमान् राजन् ! (यः) जो (स्त्रीणाम्) स्त्रियों के (जीवभोजनः) प्राणों का भक्षण करने वाला अर्थात् व्यभिचारी पुरुष वा व्यभिचारिणी स्त्री है; उस पुरुष और स्त्री को पकड़ कर एवं (उत्सक्थ्याः) उस प्रजा के ऊपर को पग करके ताड़न कर, और अपनी प्रजा में (गुदम्) विषय-क्रीडा को (अव, धेहि) समाप्त कर; तथा (अञ्जिम्) प्रसिद्ध न्याय का (सम+चारय) संचार कर ॥ २३ । २१ ॥

भावार्थः—हे राजन् ! ये विषयसेवायां क्रीडन्तो जनाः क्रीडन्त्यः स्त्रियो वा व्यभिचारं वर्द्धयेयुस्ते ताश्च तीव्रेण दण्डेन शासनीयाः ॥ २३ । २१ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जो विषय-सेवा में खेलने वाला पुरुष वा स्त्रियाँ व्यभिचार को बढ़ाती हैं उन पुरुषों और स्त्रियों का तीव्र दण्ड से शासन कर ॥ २३ । २१ ॥

अन्यत्र व्याख्यात— (क)—**महीधर का मिथ्या अर्थ**—इस मन्त्र पर महीधर ने टीका की है कि यजमान घोड़े से कहता है; हे वीर्य के सेचन करने वाले अश्व ! तू—मेरी स्त्री की जंघा ऊपर को करके उसकी गुदा के ऊपर वीर्य डाल दे अर्थात् उसकी योनि में लिंग चला दे। वह लिंग किस प्रकार का है कि जिस समय योनि में जाता है उस समय उसी लिंग से स्त्रियों का जीवन होता है; और उसी से वे भोग को प्राप्त होती हैं; इससे तू उस लिंग को मेरी स्त्री की योनि में डाल दे ।

(ख) **सत्य अर्थ**—(उत्सक्थ्या०) परमेश्वर कहता है कि हे कामना की वृष्टि करने वाले और उसको प्राप्त कराने वाले सभाध्यक्ष सहित विद्वान् लोगों ! तुम सब एक सम्मति होकर इस प्रजा में ज्ञान को बढ़ा के न्यायपूर्वक सबको सुख दिया करो तथा जो कोई दुष्ट (जीव भोजनः) स्त्रियों में व्यभिचार करने वाला, चोरों में चोर, ठगों में ठग; डाकुओं में डाकू प्रसिद्ध, दूसरों को बुरे काम सिखाने वाला इत्यादि दोषयुक्त पुरुष तथा व्यभिचार आदि दोषयुक्त स्त्री को ऊपर पग और नीचे शिर करके उसको टांग देना इत्यादि अत्यन्त दुर्दशा करके मार डालना चाहिए क्योंकि इससे अत्यन्त सुख का लाभ प्रजा में होगा ॥ (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, भाष्यकरण शंकासमाधानादि विषय)

भाष्यसार—**राजा दुष्टाचारियों को दण्ड दे**—शक्तिमान् राजा को उचित है कि वह जो व्यभिचारी पुरुष वा व्यभिचारिणी स्त्री हो उसे पकड़ कर उसके पग ऊपर करके कठोर ताड़न करे । अपनी प्रजा में विषय-क्रीडा को समाप्त करे और न्याय का संचार करे ॥ २३ । २१ ॥

प्रजापतिः । **राजप्रजे=राजा प्रजा च** । विराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजा और प्रजा के कर्त्तव्य का फिर उपदेश किया है ॥

यकासकौ शकुन्तिकाहलगिति वञ्चति । आहन्ति गभे पसो निगल्गलीति धारका ॥ २२ ॥

पदार्थः—(**यका**) या (**असकौ**) असौ प्रजा (**शकुन्तिका**) अल्पा पक्षिणीव निर्बला (**आहलक्**) समन्ताद्धलं=विलेखनमञ्चति सः (**इति**) अनेन प्रकारेण (**वञ्चति**) प्रलम्भते (**आ**) (**हन्ति**) (**गभे**) प्रजायाम् (**पसः**) राष्ट्रम् (**निगल्गलीति**) भृशं निगलतीव वर्त्तते (**धारका**) सुखस्य धर्त्री ॥ २२ ॥

अन्वयः—यस्यां गभे राजा पसो राष्ट्रमाहन्ति सा धारका प्रजा निगल्गलीति यतो यकाऽसकौ शकुन्तिका शकुन्तिकेव वर्त्तते तस्मादिमामाहलग्राजा वञ्चतीति ॥ २२ ॥

सपदार्थान्वयः—**यस्यां गभे** प्रजायां **राजा पसो=राष्ट्रमाहन्ति, सा धारका प्रजा** सुखस्य धर्त्री **निगल्गलीति** भृशं निगलतीव वर्त्तते; **यतो यका** या **असकौ** असौ प्रजा **शकुन्तिका=शकुन्तिकेव** अल्पा पक्षिणीव निर्बला **वर्त्तते, तस्मादिमामाहलक्** समन्ताद्धलं=विलेखनमञ्चति सः **राजा वञ्चति** प्रलम्भते **इति** अनेन प्रकारेण ॥ २३ । २२ ॥

भाषार्थ—जिस (गभे) प्रजा में राजा (पसः) राष्ट्र की रक्षा नहीं करता है, वह (धारका) सुख को धारण करने वाली प्रजा (निगल्गलीति) अत्यन्त क्षीण हो जाती है; क्योंकि (यका) जो (असकौ) वह प्रजा (शकुन्तिका) छोटी चिड़िया के समान निर्बल हो जाती है, अतः इस प्रजा को (आहलक्) सब ओर कृषि की हुई भूमि से कर लेने वाला राजा—(इति) इस प्रकार (वञ्चति) ठगता है ॥ २३ । २२ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यदि राजा न्यायेन प्रजाया रक्षणं न कुर्यादकृत्वा करं गृह्णीयात् तर्हि प्रजाः क्रमशः क्षीणा भवन्ति, तथा राजापि नष्टो भवति । यदि विद्या-विनयाभ्यां प्रजाः संरक्षेत् तर्हि राजप्रजे सर्वतो वर्द्धेताम् ॥ २३ । २२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है । यदि राजा न्याय से प्रजा की रक्षा न करे, रक्षा न करके कर लेवे तो प्रजा क्रमशः क्षीण होती जाती है, तथा राजा भी नष्ट हो जाता है । यदि राजा विद्या और विनय से प्रजा का संरक्षण करे तो राजा और प्रजा सब ओर से वृद्धि को प्राप्त हों ॥ २३ । २२ ॥

भा० पदार्थः—शकुन्तिका=क्षीणा ।

अन्यत्र व्याख्यात—(क) **महीधर का मिथ्या अर्थ**—यज्ञशाला में अध्वर्यु आदि ऋत्विज कुमारी और स्त्रियों के साथ उपहासपूर्वक संवाद करते हैं । इस प्रकार से अंगुली से योनि को दिखला के हंसते हैं (आहलगिति०) कि जब स्त्री लोग जल्दी-जल्दी चलतीं हैं, तब उनकी योनि में हलहला शब्द और जब भग लिंग का संयोग होता है, तब भी हलहला शब्द होता है और योनि और लिंग से वीर्य्य झरता है (यकासकौ०) कुमारी अध्वर्यु का उपहास करती है कि जो यह छिद्र सहित तेरे लिंग का अग्र भाग है सो तेरे मुख के समान दीख पड़ता है ॥

(ख) **सत्य अर्थ**—(यकासकौ०) प्रजा का नाम शकुन्तिका है कि जैसे बाज के सामने छोटी-छोटी चिड़ियाओं की दुर्दशा होती है; वैसे राजा के सामने प्रजा की (आहलगिति०) जहाँ एक मनुष्य राजा

होता है वहाँ प्रजा ठगी जाती है, (आहन्ति गभे पसो०) तथा प्रजा का नाम 'गभ' और राज्य का नाम 'पस' है। जहाँ एक मनुष्य राजा होता है वहाँ वह अपने लोभ से प्रजा के पदार्थों की हानि ही करता चला जाता है; इसलिए राजा को प्रजा का घातुक अर्थात् हनन करने वाला भी कहते हैं। इस कारण से एक को राजा कभी नहीं मानना चाहिए; किन्तु धार्मिक विद्वानों की सभा के अधीन ही राज्य प्रबन्ध होना चाहिए।

(यकासकौ०) इत्यादि मन्त्रों के शतपथ प्रतिपादित अर्थों से महीधर आदि अल्पज्ञ लोगों के बनाए हुए अर्थों का अत्यन्त विरोध है। (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, भाष्यकरण शङ्कासमानाधादि विषय) ॥ २३ । २२ ॥

भाष्यसार—१. **राजा और प्रजा का कर्त्तव्य**—यदि राजा राष्ट्र का हनन करे अर्थात् न्याय प्रजा की रक्षा न करे और कर लेवे, तब प्रजा क्रमशः अत्यन्त क्षीण हो जाती है; छोटी चिड़िया के समान निर्बल हो जाती है। ऐसी अवस्था में राजा यदि हल चलाने वाले किसान लोगों से कर प्राप्त करता है तो वह प्रजा को ठगता है तथा कालान्तर में स्वयं भी नष्ट हो जाता है, अतः विद्या और विनय से प्रजा की रक्षा करे जिससे राजा और प्रजा दोनों वृद्धि को प्राप्त हों ॥

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि राष्ट्र-घातक राजा की प्रजा चिड़िया के समान निर्बल हो जाती है ॥ २३ । २२ ॥

प्रजापतिः । **राजप्रजे=राजा प्रजा च** । बृहती । मध्यमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजा और प्रजा के कर्त्तव्य का फिर उपदेश किया है ॥

यकोऽसकौ शकुन्तकऽआहलगिति वञ्चति ।
विवक्षतऽइव ते मुखमध्वर्यो मा नस्त्वमभि भाषथाः ॥ २३ ॥

पदार्थः—(**यकः**) यः (**असकौ**) असौ राजा (**शकुन्तकः**) निर्बलः पक्षीव (**आहलक्**) समन्ताद्विलिखितं यथा स्यात्तथा (**इति**) (**वञ्चति**) वञ्चितो भवति (**विवक्षत इव**) वक्तुमिच्छोरिव (**ते**) तव (**मुखम्**) आस्यम् (**अध्वर्यो**) योऽध्वरमिवाचरति तत्सम्बुद्धौ (**मा**) (**नः**) अस्मान् (**त्वम्**) (**अभि**) (**भाषथाः**) वदेः ॥ २३ ॥

अन्वयः—हे अध्वर्यो ! त्वं नो माभिभाषथा मिथ्याभाषणं विवक्षत इव ते मुखं मा भवतु यद्येवं यकोऽसकौ करिष्यति तर्हि शकुन्तक इव राजाऽऽहलगिति न वञ्चति ॥ २३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अध्वर्यो** ! योऽध्वरमिवाचरति तत्सम्बुद्धौ ! **त्वं नः** अस्मान् **माभिभाषथाः** वदेः; **मिथ्याभाषणं विवक्षत** वक्तुमिच्छोः **इव ते** तव **मुखम्** आस्यं **मा भवतु, यद्येवं यकः** यः **असकौ** असौ राजा **करिष्यति; तर्हि शकुन्तकः** निर्बल पक्षी **इव राजाऽऽहलक्**

भावार्थ—हे (अध्वर्यो) अध्वर=यज्ञ के समान श्रेष्ठ आचरण करने वाले राजन् ! तू—(नः) हम लोगों के प्रति (मा, अभिभाषथाः) झूठ मत बोल। (विवक्षतः) मिथ्याभाषण करने के इच्छुक पुरुष के समान (ते) तेरा (मुखम्) मुख (मा) न हो। यदि इस प्रकार (यकः) जो (असकौ)

समन्ताद् विलिखितं यथा स्यात्तथा **इति न वञ्चति** वञ्चितो भवति ॥ २३ । २३ ॥

वह राजा करेगा तो (शकुन्तकः) निर्बल पक्षी के समान वह राजा—(आहलक्) सब ओर हल चलाये हुए खेत के (इति) तुल्य (न, वञ्चति) प्रजा से वञ्चित नहीं होता ॥ २३ । २३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। राजा कदाचिन्मिथ्याप्रतिज्ञः परुषवादी न स्यात्, न कञ्चिद् वञ्चयेत् यद्ययमन्यायं कुर्यात्तर्हि स्वयमपि प्रजाभिर्वञ्चितः स्यात् ॥ २३ । २३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। राजा कभी मिथ्या प्रतिज्ञा करने वाला और कठोर भाषण करने वाला न हो तथा न किसी को ठगे। यदि यह राजा अन्याय करे तो स्वयं भी प्रजा से वञ्चित हो, ठगा जाए ॥ २३ । २३ ॥

भाष्यसार—१. **राजा और प्रजा का कर्त्तव्य**—यज्ञ के समान श्रेष्ठ आचरण करने वाला राजा प्रजा से कभी मिथ्या प्रतिज्ञा न करे तथा कठोर भाषण न करे। जो राजा प्रजा से मिथ्या व्यवहार करेगा वह पक्षी के समान निर्बल हो जाएगा अतः राजा किसी को न ठगे। जो राजा अन्याय करता है वह स्वयं भी प्रजा से वंचित हो जाता है ॥

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि मिथ्या भाषी राजा पक्षी (चिड़ा) के समान निर्बल हो जाता है ॥ २३ । २३ ॥ ●

प्रजापतिः। **भूमिसूर्यौ**=मातापितरौ। निचृदनुष्टुप्। गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजा और प्रजा के कर्त्तव्य का फिर उपदेश किया है ॥

माता च ते पिता च तेऽग्रं वृक्षस्य रोहतः।
प्रतिलामीति ते पिता गभे मुष्टिमतंसयत् ॥ २४ ॥

पदार्थः—(**माता**) पृथिवीव वर्त्तमाना माता (**च**) (**ते**) तव (**पिता**) सूर्य्य इव वर्त्तमानः पिता (**च**) (**ते**) तव (**अग्रम्**) मुख्यश्रियम् (**वृक्षस्य**) व्रश्चितुं=छेत्तुं योग्यस्य संसाराख्यस्य राज्यस्य (**रोहतः**) (**प्रतिलामि**) स्निह्यामि (**इति**) (**ते**) तव (**पिता**) (**गभे**) प्रजायाम् (**मुष्टिम्**) मुष्ट्या धनग्राहकं राज्यम् (**अतंसयत्**) तंसयत्यलङ्करोति ॥ २४ ॥ **इयं वै माताऽसौ पिता ताभ्यामेवैनं स्वर्गं लोकं गमयत्यग्रं वृक्षस्य रोहत इति। श्रीर्वै राष्ट्रस्याग्रꣳ श्रियमेवैनꣳ राष्ट्रस्याग्रं गमयति प्रतिलामिति ते पिता गभे मुष्टिमतꣳसयदिति। विड्वै गभो राष्ट्रं मुष्टी राष्ट्रमेवाविश्याहन्ति तस्माद् राष्ट्री विशं घातुकः ॥ श० कां० १२। अ० २। ब्राह्म० ३। कं ७ ॥**

प्रमाणार्थ—'इयं वै माता०' यह श्री ही माता और पिता है। इन्हीं से मनुष्य स्वर्ग लोक को प्राप्त करता है। 'अग्रं वृक्षस्य०' श्री ही राष्ट्र की मुख्य वस्तु है। वही राष्ट्र को उन्नत करती है। 'प्रतिलामीति०' प्रजा का नाम 'गभ' है और राष्ट्र का नाम ही मुष्टि है क्योंकि अकेला राजा मुष्टि के तुल्य बल से राष्ट्र का घात करता है। अतः अकेला राजा प्रजा का घातक है ॥

अन्वयः—हे राजन्! यदि ते पृथिवीव माता च सूर्य्य इव ते पिता च वृक्षस्याग्रं रोहतः। यदि ते पिता गभे मुष्टिमतंसयत्तर्हि प्रजाजनोऽहम्प्रतिलामीति ॥ २४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे राजन् ! **यदि ते** तव **पृथिवीव माता** पृथिवीव वर्तमाना माता **च**, **सूर्य इव ते** तव **पिता** सूर्य्य इव वर्त्तमानः पिता **च**, **वृक्षस्य** व्रश्चितुं=छेत्तुं योग्यस्य संसाराख्यस्य राज्यस्य **अग्रं** मुख्यश्रियं **रोहतः**; **यदि ते पिता गभे** प्रजायां **मुष्टिं** मुष्टया धनग्राहकं राज्यम् **अतंसयत्** तंसयत्यलङ्करोति, **तर्हि प्रजाजनोऽहम्प्रतिलामि** स्निह्यामि **इति** ॥ २३ । २४ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! यदि (ते) तेरी (माता) पृथिवी के समान धैर्य-युक्त माता, और (ते) तेरा (पिता) सूर्य के समान विद्या से प्रकाशित पिता—(वृक्षस्य) छेदन योग्य=विनाशी संसार रूप राज्य की (अग्रम्) मुख्य श्री को (रोहतः) प्राप्त करें, और यदि (ते) तेरा (पिता) पिता (गभे) प्रजा में (मुष्टिम्) मुट्ठी से धन को ग्रहण करने वाले राज्य को (अतंसयत्) अलंकृत करे तो मैं प्रजा-जन भी उससे (प्रतिलामि) स्नेह करूँ (इति) ऐसा समझ ॥ २३ । २४ ॥

भावार्थः—यौ मातापितरौ पृथिवीसूर्यवद्-धैर्यविद्याप्रकाशितौ न्यायेन राज्यं पालयित्वा, अग्र्यां श्रियं प्राप्य, प्रजा भूषयित्वा, स्वस्य पुत्रं राजनीत्या युक्तं कुर्यातां, तौ राज्यं कर्त्तुमर्हेताम् ॥ २३ । २४ ॥

भावार्थ—जो माता-पिता पृथिवी और सूर्य के समान धैर्य और विद्या से प्रकाशित होकर, न्याय से राज्य का पालन कर, मुख्य श्री को प्राप्त कर, प्रजा को भूषित करके अपने पुत्र को राजनीति से युक्त करते हैं वे राज्य कर सकते हैं ॥ २३।२४ ॥

भा० पदार्थः—अग्रम्=अग्र्यां श्रियम् । अतंसयत्=भूषयति । माता=पृथिवीवद् धैर्यप्रकाशिता माता । पिता=सूर्यवद् विद्याप्रकाशितः पिता ।

अन्यत्र व्याख्यात—(क) **महीधर का मिथ्या अर्थ**—अब ब्रह्मा हास करता हुआ यजमान की स्त्री से कहता है कि जब तेरी माता और पिता पलंग के ऊपर चढ़ के तेरे पिता ने मुष्टितुल्य लिङ्ग को तेरी माता के भग में डाला, तब तेरी उत्पत्ति हुई; उसने ब्रह्मा से कहा कि तेरी भी उत्पत्ति ऐसे ही हुई है; इससे दोनों की उत्पत्ति तुल्य है ।

(ख) **सत्य अर्थ**—(माता च ते०) सब प्राणियों की पृथिवी और विद्या माता के समान सब प्रकार के मान्य कराने वाली, और सूर्य लोक, विद्वान् तथा परमेश्वर पिता के समान हैं; क्योंकि सूर्य-लोक पृथिवी के पदार्थों का प्रकाशक और विज्ञान दान से पण्डित तथा परमात्मा सबके पालन करने वाला है । इन्हीं दोनों कारणों से विद्वान् लोग जीवों को नाना प्रकार का सुख प्राप्त करा देते हैं (अग्रं वृक्षस्य०) श्री जो लक्ष्मी है सो ही राज्य का अग्र भाग अर्थात् शिर के समान है; क्योंकि विद्या और धन ये दोनों मिल के ही जीव को शोभा और राज्य के सुख को प्राप्त करा देते हैं। (प्रतिलामीति०) फिर प्रजा का नाम 'गभ' अर्थात् ऐश्वर्य को देने वाली, और राज्य का नाम 'मुष्टि' है; क्योंकि राजा अपनी प्रजा के पदार्थों को मुष्टि से ऐसे हर लेता है कि जैसे कोई बल करके किसी दूसरे के पदार्थ को अपना बना लेवे । वैसे ही जहाँ अकेला मनुष्य राजा होता है; वहाँ वह पक्षपात से अपने सुख के लिए जो-जो प्रजा की श्रेष्ठ सुख देने वाली लक्ष्मी को ले लेता है; अर्थात् राजा अपने राज-कर्म में प्रवृत्त होके प्रजा को पीड़ा देने वाला होता है; इसलिए एक को राजा कभी न मानना चाहिए; किन्तु सब लोगों को उचित है कि अध्यक्ष सहित सभा की आज्ञा में ही रहना चाहिए । इस अर्थ से भी महीधर का अर्थ अत्यन्त विरुद्ध है ॥ (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, भाष्यकरण शङ्कासमाधानादि विषय) ॥ २३ । २४ ॥

भाष्यसार—**राजा और प्रजा का कर्त्तव्य**—जिस राजा की माता पृथिवी के समान धैर्य वाली और पिता सूर्य के समान विद्या से प्रकाशित होकर राज्य-लक्ष्मी को प्राप्त करते हैं और पिता

प्रजा में अपने राज्य को भूषित करता है और अपने सन्तान को भी राजनीति सिखलाता है तो वह माता और पिता सफलतापूर्वक राज्य कर सकते हैं। उक्त राजा में प्रजा भी स्नेह रखती है ॥ २३ । २४ ॥

प्रजापतिः । **भूमिसूर्य्यौ**=मातापितरौ । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनर्मातापितरौ कीदृशौ भवेतामित्याह ॥

फिर माता पिता कैसे हों, इस विषय का उपदेश किया है ॥

माता च॑ ते पि॒ता च॒ तेऽग्रे॑ वृ॒क्षस्य॑ क्रीडतः ।
विव॑क्षतऽइव ते॒ मुख॒ं ब्रह्म॒न्मा त्वं व॑दो ब॒हु ॥ २५ ॥

पदार्थः—(**माता**) पृथिवीवज्जननी (**च**) (**ते**) (**पिता**) सूर्यवद्वर्त्तमानः (**च**) (**ते**) (**अग्रे**) विद्याराजलक्ष्म्यां (**वृक्षस्य**) राज्यस्य मध्ये (**क्रीडतः**) (**विवक्षत इव**) (**ते**) तव मुखम् (**ब्रह्मन्**) चतुर्वेदवित् (**मा**) (**त्वम्**) (**वदः**) वदेः (**बहु**) ॥ २५ ॥

अन्वयः—हे ब्रह्मन् ! यस्य ते माता च यस्य ते पिता च वृक्षस्याग्रे क्रीडतस्तस्य ते विवक्षत इव यन्मुखं तेन त्वं बहु मा वदः ॥ २५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **ब्रह्मन्** चतुर्वेदवित् ! **यस्य ते माता** पृथिवीवज्जननी **च, यस्य ते पिता** सूर्यवद्वर्त्तमानः **च वृक्षस्य** राज्यस्य मध्ये **अग्रे** विद्याराजलक्ष्म्यां **क्रीडतः, तस्य ते** तव **विवक्षत इव यन्मुखं तेन त्वं बहु मा वदः** वदेः ॥ २३ । २५ ॥

भाषार्थ—हे (ब्रह्मन्) चारों वेदों के ज्ञाता ब्रह्मन् ! (ते) तेरी (माता) पृथिवी के समान माता और (ते) तेरा (पिता) सूर्य के समान पिता (वृक्षस्य) राज्य के मध्य में (अग्रे) विद्या और राज्यलक्ष्मी में (क्रीडतः) विहार करते हैं; सो (ते) तेरा (विवक्षतः) बोलने के इच्छुक पुरुष के (इव) समान जो (मुखम्) मुख है, उससे (बहु) बहुत (मा) मत (वदः) बोल ॥ २३ । २५ ॥

भावार्थः—यौ मातापितरौ सुशीलौ धर्मात्मानौ श्रीमन्तौ कुलीनौ भवेतां, ताभ्यां शिक्षित एव पुत्रो मितभाषी भूत्वा कीर्त्तिमाप्नोति ॥२३।२५॥

भावार्थ—जो माता-पिता सुशील, धर्मात्मा, श्रीमान् और कुलीन होते हैं, उनसे शिक्षित ही पुत्र मितभाषी होकर कीर्ति को प्राप्त करता है ॥ २३ । २५ ॥

भा० पदार्थः—ब्रह्मन्=शिक्षितः पुत्रः ॥

भाष्यसार—**माता-पिता कैसे हों**—चारों वेदों के ज्ञाता ब्रह्मा की माता पृथिवी के समान धैर्य वाली और पिता सूर्य के समान विद्या से प्रकाशमान हो, अर्थात् माता और पिता दोनों सुशील, धर्मात्मा, श्रीमान् तथा कुलीन हों। वे राज्य में विद्या और राजलक्ष्मी में खेलें। उक्त मात-पिता से शिक्षित पुत्र ही मितभाषी होता है तथा कीर्ति को प्राप्त करता है ॥ २३ । २५ ॥

प्रजापतिः । **श्रीः**=**राज्यश्रीः** । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुना राजपुरुषाः कामुत्कृष्टां कुर्युरित्याह ॥

राजपुरुष किस की उन्नति करें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

ऊर्ध्वामेनामुच्छ्रापय गिरौ भारꣳहरन्निव । अथास्यै मध्यमेधताꣳ शीते वाते पुनन्निव ॥२६॥

पदार्थः—(**ऊर्ध्वाम्**) उत्कृष्टाम् (**एनाम्**) राज्यश्रिया युक्तां प्रजाम् (**उत्**) (**आपय**) ऊर्ध्वं नय (**गिरौ**) पर्वते (**भारम्**) (**हरन्निव**) (**अथ**) (**अस्यै**) अस्याः (**मध्यम्**) (**एधताम्**) वर्द्धताम् (**शीते**) (**वाते**) वायौ (**पुनन्निव**) पृथक् कुर्वन्निव ॥ २६ ॥ ऊर्ध्वामेनामुच्छ्रापयेति । श्रीर्वै राष्ट्रमश्वमेधः श्रियमेवास्मै राष्ट्रमूर्ध्वमुच्छ्रयति गिरौ भारꣳहरन्निवेति । श्रीर्वै राष्ट्रस्य भारः श्रियमेवास्मै राष्ट्रꣳसंनह्यत्यथो श्रियमेवास्मिन् राष्ट्रमधिनिदधाति । अथास्यै मध्यमेधतामिति श्रीर्वै राष्ट्रस्य मध्यꣳश्रियमेव राष्ट्रे मध्यतोऽन्नाद्यं ददाति शीते वाते पुनन्निवेति क्षेमो वै राष्ट्रस्य शीतं क्षेममेवास्मै करोति ॥ श० का० ३ । ब्रा० ३ । कं० १ । २ । ३ । ४ ॥

प्रमाणार्थ—ऊर्ध्वामेनामुच्छ्रापयेति । श्रीर्वै राष्ट्रमश्वमेधः० । इत्यादि प्रमाण का महर्षि-कृत अर्थ इसी मन्त्र के अन्यत्र व्याख्यात संदर्भ में देख लेवें ॥

अन्वयः—हे राजन् ! त्वं गिरौ भारं हरन्निवैनामूर्ध्वामुच्छ्रापय । अथास्यै मध्यं प्राप्य शीते वाते पुनन्निव भवानेधताम् ॥ २६ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे राजन् ! त्वं गिरौ** पर्वते **भारंहरन्निवैनां** राज्यश्रिया युक्तां प्रजाम् **ऊर्ध्वाम्** उत्कृष्टाम् **उच्छ्रापय** ऊर्ध्वं नय । **अथास्यै** अस्याः **मध्यं प्राप्य शीते वाते** वायौ **पुनन्निव** पृथक् कुर्वन्निव **भवानेधतां** वर्द्धताम् ॥ २३ । २६ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! तू—(गिरौ) पर्वत पर (भारम्) भार को (हरन्) पहुँचाने वाले पुरुष के (इव) समान (एनाम्) इस राज्यश्री से युक्त प्रजा को (ऊर्ध्वाम्) उन्नति के (उच्छ्रापय) शिखर पर पहुँचा। (अथ) और (अस्यै) इसके मध्य में रहकर (शीते) शीतल (वायौ) वायु में (पुनन्) बुस से अन्न को पृथक् करने वाले किसान के (इव) समान आप (एधताम्) बढ़ो ॥ २३ । २६ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः । यथा कश्चिद् भारवाट् शिरसि पृष्ठे वा भारमुत्थाप्य गिरिमारुह्योपरि स्थापयेत् तथा राजा श्रियमुन्नतिभावं नयेत् । यथा वा कृषीवला बुसादिभ्योऽन्नं पृथक्कृत्य भुक्त्वा वर्द्धन्ते, तथा सत्यन्यायेन सत्यासत्ये पृथक्-कृत्य न्यायकारी राजा नित्यं वर्द्धते ॥ २३ । २६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है । जैसे कोई भार-वाहक शिर वा पीठ पर भार को उठा कर, पहाड़ पर चढ़ कर उसे ऊपर पहुँचाता है, वैसे राजा श्री=लक्ष्मी को उन्नत करे । अथवा जैसे किसान लोग बुस (भूसा) आदि से अन्न को पृथक् करके एवं उसे खा कर बढ़ते हैं, वैसे सत्य-न्याय के द्वारा सत्य और असत्य को पृथक् करके न्यायकारी राजा नित्य बढ़ता है ॥ २३ । २६ ॥

भा० पदार्थः—उच्छ्रापय=उन्नतिभावं नय । पुनन्निव=पृथक्कृत्य ॥

अन्यत्र व्याख्यात—(क) **महीधर का मिथ्या अर्थ**—पुरुष लोग स्त्री की योनि को दोनों हाथों से खैंच के बढ़ा लेवें ॥ २३ । २६ ॥

(यदस्या अँहु०) परिव्रता अर्थात् जिस स्त्री का वीर्य्य निकल जाता है; जब छोटा व बड़ा लिङ्ग उसकी योनि में डाला जाता है तब योनि के ऊपर दोनों अण्डकोश नाचा करते हैं, क्योंकि योनि छोटी और लिङ्ग बड़ा होता है । इसमें महीधर दृष्टान्त देता है कि जैसे गाय के खुर के बने हुए गढ़े के जल में दो मच्छी नाचें तथा जैसे खेती करने वाला मनुष्य अन्न और भुस अलग-अलग करने के लिए

चलते वायु में एक पात्र में भर के ऊपर को उठा के कंपाया करता है वैसे ही योनि के ऊपर अण्डकोश नाचा करते हैं ॥ २३ । २६ ॥

(ख) **सत्य अर्थ**—श्री नाम विद्या और धन का, तथा राष्ट्रपालन का नाम अश्वमेध है। ये ही श्री और राज्य की उन्नति कराते हैं। (गिरौ भारं हरन्निव) राज्य का भार श्री है; क्योंकि इसी से राज्य की वृद्धि होती है; इसलिये राज्य में विद्या और धन की अच्छी प्रकार वृद्धि होने के अर्थ उसका भार अर्थात् प्रबन्ध श्रेष्ठ पुरुषों की सभा के ऊपर धरना चाहिए कि (अथास्यै०) श्री राज्य का आधार और वही राज्य में शोभा को धारण करके उत्तम पदार्थों को प्राप्त कराती है। इसमें दृष्टान्त यह है कि (शीते वाते०) अर्थात् राज्य की रक्षा करने का नाम शीत है; क्योंकि जब सभा से राज्य की रक्षा होती है, तभी उसकी उन्नति होती हैं।

(प्र०)—राज्य का भार कौन है ? (उ०)—(श्रीर्वै राष्ट्रस्य भारः) श्री क्योंकि वही धन के भार से युक्त करके राज्य को उत्तमता को पहुँचाती है। (अथो) इसके अनन्तर उक्त प्रकार से राज्य करते हुए पुरुष, देश अथवा संसार में श्रीयुक्त राज्य के प्रबन्ध को सब में स्थापन कर देते हैं। (अथास्यै०) (प्र०)—उस राज्य का मध्य क्या है ? (उ०)—प्रजा की ठीक-ठीक रक्षा अर्थात् उसका नियमपूर्वक पालन करना यही उसकी रक्षा में मध्यस्थ है (गिरौ भारं हरन्निव) जैसे कोई मनुष्य बोझ उठा के पर्वत पर ले जाता है, वैसे ही सभा भी राज्य को उत्तम सुख को प्राप्त कराती है (ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका, भाष्यकरण शंकासमाधानादि विषय) ॥ २३ । २६ ॥

भाष्यसार—**१. राजपुरुष किसे उत्कृष्ट बनावें**—जैसे भार-वाहक शिर वा पीठ पर भार को उठाकर पर्वत पर चढ़ जाता है और उस भार को ऊपर पहुँचा देता है वैसे राजा भी राज्यश्री से युक्त प्रजा को तथा श्री को उन्नत करे। अथवा जैसे किसान लोग शीतल वायु में बुस=भूसा आदि से अन्न को पृथक् करके उत्कृष्ट अन्न का सेवन करते हैं और वृद्धि को प्राप्त होते हैं वैसे न्याय-कारी राजा भी सत्य-न्याय के द्वारा सत्य और असत्य के विवेचन से नित्य वृद्धि को प्राप्त होता है ॥

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' पद है अतः उपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि पर्वत पर भार को पहुँचाने वाले भारवाहक के समान राजा राज्यश्री को उन्नत करे और भूसा आदि से अन्न को पृथक् करने वाले किसान के समान सत्य और असत्य का विवेचन करके न्यायकारी राजा नित्य वृद्धि को प्राप्त हो ॥ २३ । २६ ॥

प्रजापतिः । **श्रीः**=**लक्ष्मीः** । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

प्रजा किसे उन्नत करे, इसका उपदेश किया है ॥

ऊर्ध्वमेनमुच्छ्रयताद् गिरौ भारꣳ हरन्निव ।
अथास्य मध्यमेजतु शीते वाते पुनन्निव ॥ २७ ॥

पदार्थः—(**ऊर्ध्वम्**) अग्रगामिनम् (**एनम्**) राजानम् (**उच्छ्रयतात्**) उच्छ्रितं कुर्यात् (**गिरौ**) पर्वते (**भारम्**) (**हरन्निव**) (**अथ**) (**अस्य**) राष्ट्रस्य (**मध्यम्**) (**एजतु**) सत्कर्मसु चेष्टताम् (**शीते**) (**वाते**) (**पुनन्निव**) ॥ २७ ॥

अन्वयः—हे प्रजास्थ विद्वन् ! भवान् गिरौ भारं हरन्निवैनं राजानमूर्ध्वमुच्छ्रयतात् । अथास्य मध्यं प्राप्य शीते वाते पुनन्निवैजतु ॥ २७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे प्रजास्थ विद्वन् ! भवान् गिरौ पर्वते भारं हरन्निवैनं राजानम् ऊर्ध्वम् अग्रगामिनम् उच्छ्रयतात् उच्छ्रितं कुर्यात् । अथास्य राष्ट्रस्य मध्यं प्राप्य शीते वाते पुनन्निवैजतु सत्कर्मसु चेष्टताम् ।। २३ । २७ ।।

भाषार्थ—हे प्रजा में रहने वाले विद्वान् ! आप—(गिरौ) पहाड़ पर (भारम्) भार को (हरन्) ढोने वाले पुरुष के (इव) समान (एनम्) इस राजा को (ऊर्ध्वम्) अग्रगामी बनाकर (उच्छ्रयतात्) ऊंचा उठाइये । (अथ) और (अस्य) इस राष्ट्र के मध्य में रहकर, (शीते) शीतल (वाते) वायु में (पुनन्) बुस आदि से अन्न को पृथक् करने वाले किसान के (इव) समान (एजतु) शुभ कर्मों में प्रयत्न कीजिये ।। २३ । २७ ।।

भावार्थः—अत्रोपमालंकारः । यथा सूर्यो मेघमण्डले जलभारं नीत्वा, वर्षयित्वा, सर्वानुन्नयति, तथैव प्रजा राजपुरुषानुन्नयेदधर्माचरणाद् बिभीयाच्च ।। २३ । २७ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलंकार है । जैसे सूर्य मेघ-मण्डल में जल-भार को ले जाकर, वर्षा करके, सबको उन्नत करता है; वैसे प्रजा वैसे प्रजा राजपुरुषों की उन्नत करे, और अधर्माचरण से डरती रहे ।। २३ । २७ ।।

भा० पदार्थः—गिरौ=मेघमण्डले । भारम्=जलभारम् । हरन्=नयन् । एजतु= अधर्माचरणाद् बिभीयात् ।।

भाष्यसार—**१. प्रजा किसे उन्नत करे**—पर्वत पर भार को पहुँचाने वाले भार-वाहक के समान, प्रजास्थ विद्वान् लोग राजा को उन्नत करें, अथवा जैसे सूर्य मेघ-मण्डल में जल-भार को पहुँचा कर, उसकी वर्षा करके सबको उन्नत करता है वैसे प्रजा राज-पुरुषों को उन्नत करे । विद्वान् लोग राष्ट्र के मध्य में रहकर शीतल वायु में बुस=भूसा आदि से अन्न को पृथक् करने वाले किसान के समान सत्य-असत्य का निर्णय करें, शुभ कर्मों में चेष्टा (प्रयत्न) करें, अधर्माचरण से डरते रहें ।।

२. अलंकार—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' पद है अतः उपमा अलंकार है । उपमा यह है कि विद्वान् लोग पर्वत पर भार को पहुँचाने वाले भारवाहक के समान राजा को उन्नत करें; और भूसा आदि से अन्न को पृथक् करने वाले किसान के समान सत्य-असत्य का निर्णय करें ।। २३ । २७ ।।

प्रजापतिः । **प्रजापतिः**=राजा । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

राजा और राजपुरुष के कर्त्तव्य का फिर उपदेश किया है ।।

यद॑स्या ऽ अ॑ꣳहुभेद्या॑ः कृधु स्थूलमुपात॑सत् ।
मुष्काविद॑स्या ऽ एजतो गोशफे श॑कुलावि॑व ॥ २८ ॥

पदार्थः—(**यत्**) यः (**अस्याः**) प्रजायाः (**अंहुभेद्या**) अंहुमपराधं या भिनत्ति तस्याः (**कृधु**) ह्रस्वम् । कृध्विति ह्रस्वनाम० निघं० ।। ३ । २ ।। (**स्थूलम्**) महत् कर्म (**उपातसत्**) उपभूषयेत् (**मुष्कौ**) मूषकौ (**इत्**) एव (**अस्याः**) (**एजतः**) कम्पयतः (**गोशफे**) गोखुरचिह्ने (**शकुलाविव**) ह्रस्वौ मत्स्याविव ।। २८ ।।

प्रमाणार्थ—(कृधु) ह्रस्वम् । 'कृधु' यह पद निघं० (२ । ३) में ह्रस्व-नामों में पठित है । ह्रस्व=छोटा ।।

अन्वयः—यद्यो राजा राजपुरुषश्चास्या अंहुभेद्याः क्रधु स्थूलं कर्मोपातसत्तावस्या एजतो गोशफे शकुलाविव मुष्काविदेजतः ॥ २८ ॥

सपदार्थान्वयः—यद्=यो राजा राजपुरुषश्चास्याः प्रजायाः **अंहुभेद्याः** अंहुमपराधं वा भिनत्ति तस्याः **क्रधु** ह्रस्वं **स्थूलं** महत् **कर्मोपातसत्** उपभूषयेत् **तावस्या एजतः** कम्पयतः; **गोशफे** गोखुरचिह्ने **शकुलाविव** ह्रस्वौ मत्स्याविव **मुषकौ** मूषकौ **इद्** एव **एजतः** कम्पयतः ॥२३।२८॥

भाषार्थ—(यत्) जो राजा और राजपुरुष (अस्याः) इस (अंहुभेद्याः) पाप व अपराध का भेदन करने वाली प्रजा के (क्रधु) अल्प एवं (स्थूलम्) महान् उत्तम कर्म की (उपातसत्) प्रशंसा करते हैं; वे दोनों (अस्याः) इसके सहाय से (एजतः) गतिशील होते हैं; और (गोशफे) गोखुर के चिह्न के तुल्य छोटे जलाशय में (शकुलौ) प्रसन्न छोटी मछलियों के (इव) समान एवं (मुष्कौ) चूहों के समान (इत्) ही (एजतः) गतिशील होते हैं ॥ २३ । २८ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः । यथा प्रीतिमन्तौ मत्स्यावल्पेऽपिजलाशये निवसतस्तथा राजराजपुरुषावल्पेऽपि करलाभे न्यायेन प्रीत्या वर्त्तेयातां, यदि दुःखच्छेदिकायाः प्रजायाः स्वल्पमहदुत्तमं कर्म प्रशंसेयातां तर्हि—तौ प्रजा उपरक्तताः कृत्वा स्वविषये प्रीतिं कारयेताम् ॥ २३ । २८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलंकार है। जैसे प्रीतिमान् दो मछलियाँ छोटे जलाशय में भी निवास करती हैं वैसे राजा और राजपुरुष थोड़ा कर मिलने पर भी न्यायपूर्वक प्रीति से वर्त्ताव करें। यदि दुःख-छेदक प्रजा के अल्प और महान् उत्तम कर्म की प्रशंसा करें तो वे प्रजा को उपरक्त करके उसे अपने में प्रीतिमान् बनावें ॥ २३ । २८ ॥

भा० पदार्थः—गोशफे=अल्पे जलाशये। अंहुभेद्याः=दुःखछेदिकायाः प्रजायाः । क्रधु=स्वल्पं कर्म । स्थूलम्=उत्तमं कर्म । शकुलाविव=यथा प्रीतिमन्तौ मत्स्यौ ।

भाष्यसार—१. **राजा और राजपुरुष का कर्त्तव्य**—राजा और राजपुरुषों को उचित है कि दुःख-छेदक प्रजा के अल्प (थोड़ा) और महान् (अधिक) उत्तम कर्म की सदा प्रशंसा किया करें। प्रजा के उत्तम कर्मों की प्रशंसा से राजा और राजपुरुष प्रजा को अपने में उपरक्त करें अपने प्रति प्रीति उत्पन्न करावें। जैसे प्रीतिमान् दो छोटी मछलियाँ गोखुर के तुल्य छोटे जलाशय में निवास करती हैं वैसे राजा और राजपुरुष थोड़ा कर मिलने पर भी न्यायपूर्वक प्रीति से प्रजा के साथ वर्त्ताव करें ॥

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' पद है अतः उपमा अलंकार है। उपमा यह है कि छोटे जलाशय में निवास करने वाली मछलियों के समान राजा और पुरुष थोड़ा कर मिलने पर भी प्रजा के प्रति न्याय और प्रीति से व्यवहार करें ॥ २३ । २८ ॥ ●

प्रजापतिः । **विद्वांसः**=**स्पष्टम्** । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजा और प्रजा के कर्त्तव्य का फिर उपदेश किया है ॥

यद्देवासो ललामगुं प्रविष्टीमिनमाविषुः ।
सक्थ्ना देदिश्यते नारी सत्यस्याक्षिभुवो यथा ॥ २९ ॥

पदार्थः—(**यत्**) यम् (**देवासः**) विद्वांसः (**ललामगुम्**) येन न्यायेनेप्सां गच्छन्ति=प्राप्नुवन्ति तम् (**प्र**) (**विष्टीमिनम्**) विशिष्टा=बहवः ष्टीमा=आर्द्रीभूताः पदार्था विद्यन्ते यस्मिँस्तम् (**आविषुः**) व्याप्नुयुः (**सक्थ्ना**) शरीरावयवेन (**देदिश्यते**) भृशमुपदिश्येत (**नारी**) नरस्य स्त्री (**सत्यस्य**) (**अक्षिभुवः**) यदक्षिणि भवति प्रत्यक्षं तस्य (**यथा**) ॥ २९ ॥

अन्वयः—हे राजन्! यथा सत्यस्याक्षिभुवो मध्ये वर्त्तमाना देवासः सक्थ्ना नारीव यद्विष्टीमिनं ललामगुं न्यायं प्राविषुर्यथा चाऽऽप्तेन सत्यमेव देदिश्यते तथा त्वमाचर ॥ २९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **राजन्**! **यथा सत्यस्याक्षिभुवः** यदक्षिणि भवति प्रत्यक्षं तस्य **मध्ये वर्त्तमाना देवासः** विद्वांसः **सक्थ्ना** शरीरावयवेन **नारी** नरस्य स्त्री **इव यद्** यं **विष्टीमिनं** विशिष्टा=बहवः ष्टीमा=आर्द्रीभूताः पदार्था विद्यन्ते यस्मिँस्तं **ललामगुं** येन न्यायेनेप्सां गच्छन्ति=प्राप्नुवन्ति तं **न्यायं प्राविषुः** व्याप्नुयुः; **यथा चाऽऽप्तेन सत्यमेव देदिश्यते** भृशमुपदिश्येत **तथा त्वमाचर** ॥ २३ । २९ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालंकारः । यथा शरीराङ्गैः स्त्रीपुरुषौ लक्ष्येते तथा प्रत्यक्षादि प्रमाणैः सत्यं लक्ष्यते । तेन सत्येन विद्वांसो यथा प्राप्तव्यमार्द्रीभावं प्राप्नुयुस्तथेतरे राजप्रजास्थाः स्त्रीपुरुषा विद्यया विनयं प्राप्य सुखमन्विच्छन्तु ॥ २३ । २९ ॥

भाषार्थ—हे राजन्! (यथा) जैसे (सत्यस्य) सत्य (अक्षिभुवः) प्रत्यक्ष के मध्य में वर्त्तमान (देवासः) विद्वान् लोग—(सक्थ्ना) जंघा से (नारी) नारी के (इव) समान (यत्) जिस (विष्टीमिनम्) विशेष आर्द्र=कोमल पदार्थों वाले (लालामगुम्) इच्छा को प्राप्त कराने वाले न्याय को (प्राविषुः) प्राप्त करते हैं; और जैसे आप्त विद्वान् सत्य का ही (देदिश्यते) बार-बार उपदेश करें, वैसा तू आचरण कर ॥ २३ । २९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलंकार है। जैसे—शरीर के अंगों से स्त्री और पुरुष लक्षित होते हैं वैसे प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से सत्य, लक्षित होता है। उस सत्य से विद्वान् लोग जैसे प्राप्त करने योग्य कोमल स्वभाव को प्राप्त करते हैं वैसे अन्य राजा और प्रजा सम्बन्धी स्त्री पुरुष विद्या से विनय को प्राप्त करके सुख की इच्छा करें ॥ २३ । २९ ॥

भा० पदार्थः—सक्थ्ना=शरीराङ्गेन । अक्षिभुवः=प्रत्यक्षादि प्रमाणस्य । विष्टीमिनम्=प्राप्तव्यमार्द्रीभावम् । प्राविषुः=प्राप्नुयुः ।

अन्यत्र व्याख्यात—(क) **महीधर का मिथ्या अर्थ**—(यद्देवासो०) जब तक यज्ञशाला ऋत्विज लोग ऐसा हंसते और अण्डकोश नाचा करते हैं; तब तक घोड़े का लिंग महिषी की योनि में काम करता है और उन ऋत्विजों के भी लिंग स्त्रियों की योनियों में प्रवेश करते हैं; और जब लिंग खड़ा होता है तब कमल के समान हो जाता है। जब स्त्री पुरुष का समागम होता है तब पुरुष ऊपर और स्त्री पुरुष के नीचे होने से थक जाती है ॥

(ख) **सत्य अर्थ**—जैसे विद्वान् लोग प्रत्यक्ष ज्ञान को प्राप्त होके जिस शुभ गुण युक्त, सुखदायक विद्या के आनन्द में प्रवेश करते हैं; वैसे ही उसी आनन्द से प्रजा को भी युक्त करते हैं। विद्वान् लोगों को चाहिए कि जैसे स्त्री अपने जंघा आदि अंगों को वस्त्रों से सदा ढांप रखती है; इसी प्रकार अपने सत्योपदेश, विद्या, धर्म और सुखों से प्रजा को सदा आच्छादित करें। (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, भाष्यकरणशंकासमाधानादिविषय) ॥ २३ । २९ ॥

भाष्यसार—१. **राजा और प्रजा का कर्त्तव्य**—जैसे शरीर के जंघा आदि अंगों से स्त्री और पुरुष लक्षित होते हैं वैसे प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से सत्य लक्षित होता है। जैसे विद्वान् लोग प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से सिद्ध सत्य में वर्त्तमान होकर, सुन्दर एवं कोमल पदार्थों वाले, इच्छा को पूर्ण करने वाले सत्य न्याय को प्राप्त करते हैं; और जैसे आप्त विद्वान् लोग सत्य का ही उपदेश करते हैं वैसे राजा और प्रजाजन विद्या से विनय को प्राप्त करके सुख की इच्छा करें।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'यथा' पद है अतः उपमा अलंकार है। उपमा यह है कि जैसे विद्वान् लोग प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से सिद्ध सत्य में वर्तमान होकर न्याय करते हैं वैसे राजा लोग न्याय आचरण करें। जैसे आप्त विद्वान् सत्य का उपदेश करते हैं वैसे राजा लोग सत्य का ही आचरण करें ॥ २३ । २९ ॥

प्रजापतिः । **राजा**=स्पष्टम् । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनः स राजा कथमाचरेदित्याह ॥

फिर वह राजा कैसे आचरण करे, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं पशु मन्यते । शूद्रा यदर्यजारा न पोषाय धनायति ॥ ३० ॥

पदार्थः—(यत्) यः (हरिणः) पशुः (**यवम्**) (**अत्ति**) (**न**) (**पुष्टम्**) (**पशु**) पशुम् (**मन्यये**) (**शूद्रा**) शूद्रस्य स्त्री (**यत्**) या (**अर्य्यजारा**) अर्य्यौ=स्वामिवैश्यौ जारयति=वयसा हन्ति सा (**न**) निषेधे (**पोषाय**) पुष्टये (**धनायति**) आत्मनो धनमिच्छति ॥ ३० ॥

अन्वयः—यत् यो राजा हरिणो यवमत्तीव पुष्टं पशु न मन्यते स यद्यर्य्यजारा शूद्रेव पोषाय न धनायति ॥ ३० ॥

सपदार्थान्वयः—**यत्=यो राजा** हरिणः पशुः **यवमत्तीव, पुष्टं पशु** पशुं **न मन्यते, स यद्** या **अर्य्यजारा** अर्य्यौ=स्वामीवैश्यौ जारयति=वयसा हन्ति सा **शूद्रा** शूद्रस्य स्त्री **इव पोषाय** पुष्टये **न धनायति** आत्मनो धनमिच्छति ॥ २३ । ३० ॥

भाषार्थ—(यत्) जो राजा—(हरिणः) पशु के समान (यवम्) यव=जौ को खाता है, (पुष्टम्) पुष्ट (पशु) प्रजा को (न) नहीं (मन्यते) मानता अर्थात् प्रजा को पुष्ट नहीं करता, वह—(यत्) जो (अर्य्यजारा) अर्य=स्वामी और वैश्य को जीर्ण करने वाली (शूद्रा) शूद्र की स्त्री (इव) के समान (पोषाय) पुष्टि के लिए (न, धनायति) कभी धनवान् नहीं होता ॥ २३ । ३० ॥

भावार्थः—यो राजा पशुवद् व्यभिचारे वर्त्तमानः प्रजापुष्टिं न करोति स धनाढ्या शूद्रा जारा दासीव सद्यो रोगी भूत्वा पुष्टिं विनाश्य धनहीनतया दरिद्रः सन् म्रियते; तस्माद् राजा कदाचिदीर्ष्यां व्यभिचारं च नाचरेत् ॥ २३ । ३० ॥

भावार्थ—जो राजा पशु के समान व्यभिचार में वर्त्तमान होकर प्रजा का पोषण नहीं करता वह धनाढ्य, शूद्र, जार वा दासी के समान शीघ्र रोगी होकर, पुष्टि को नष्ट करके धन-हीन होने से दरिद्र होकर मर जाता है; इसलिए राजा कभी ईर्ष्या और व्यभिचार न करे ॥ २३ । ३० ॥

भा० पदार्थः—अर्यजारा=धनाढ्या जारा । शूद्रा=दासी ॥

अन्यत्र व्याख्यात—(क) **महीधर का मिथ्या अर्थ**—(यद्धरिणो०) क्षत्ता सेवक पुरुष शूद्र दासी से कहता है कि जब शूद्र की स्त्री के साथ वैश्य व्यभिचार कर लेता है, तब वह इस बात को तो

नहीं विचारता कि मेरी स्त्री वैश्य के साथ व्यभिचार कराने से पुष्ट हो गई; किन्तु वह इस बात को विचार के दुःख मानता है कि मेरी स्त्री व्यभिचारिणी हो गई। (यद्धरिणो०) अब वह दासी क्षत्ता को उत्तर देती है कि जब शूद्र वैश्य की स्त्री के साथ व्यभिचार कर लेता है, तब वैश्य भी इस बात का अनुमान नहीं करता कि मेरी स्त्री पुष्ट हो गई; किन्तु नीच ने समागम कर लिया इस बात को विचार के क्लेश मानता है ॥

(ख) **सत्य अर्थ**—(यद्धरिणो०) यहाँ प्रजा का यव और राष्ट्र का नाम हरिण है; क्योंकि जैसे मृग पशु पराये खेत में यवों को खाकर आनन्दित होते हैं वैसे ही स्वतन्त्र एक पुरुष राजा होने से प्रजा के उत्तम पदार्थों को ग्रहण कर लेता है; अथवा (न पुष्टं पशु मन्यते०) जैसे मांसाहारी मनुष्य पुष्ट पशु को मार के उसका मांस खा जाता है; वैसे ही एक मनुष्य राजा होके प्रजा का नाश करने हारा होता है; क्योंकि वह सदा अपनी ही उन्नति चाहता रहता है; और शूद्र तथा वैश्य का अभिषेक करने से व्यभिचार और प्रजा का धन-हरण अधिक होता है; इसलिए किसी एक मूर्ख वा लोभी को भी सभाध्यक्ष आदि उत्तम अधिकार न देना चाहिये।

इस सत्य अर्थ से महीधर उलटा ही चला है। (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, भाष्यकरणशंका-समाधानादिविषय) ॥ २३ । ३० ॥

भाष्यसार—**राजा कैसा आचरण करे**—जो राजा हरिण आदि पशुओं के समान खान-पान में ही मग्न रहता है एवं व्यभिचार में ही रत रहता है, प्रजा की पुष्टि=पालन का कोई ध्यान नहीं रखता वह स्वामी और वैश्य को जीर्ण करने वाली धनाढ्य, शूद्रा, जार वा दासी के समान शीघ्र रोगी होकर पुष्टि का विनाश कर लेता है। धन-हीनता के कारण दरिद्र होकर मर जाता है। अतः राजा कभी भी पशुओं के समान ईर्ष्या और व्यभिचार न करे ॥ २३ । ३० । ●

प्रजापतिः । **राजप्रजे=राजा प्रजा च** । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनः स राजा केन हेतुना नश्यतीत्याह ॥

फिर वह राजा किस हेतु से नष्ट होता है, इस विषय का उपदेश किया है ॥

यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं बहु मन्यते । शूद्रो यदर्यायै जारो न पोषमनु मन्यते ॥ ३१ ॥

पदार्थः—(**यत्**) यः (**हरिणः**) (**यवम्**) (**अत्ति**) भक्षयति (**न**) (**पुष्टम्**) प्रजाजनम् (**बहु**) अधिकम् (**मन्यते**) जानाति (**शूद्रः**) मूर्खकुलोत्पन्नः (**यत्**) यः (**अर्य्यायै**) अर्य्यायाः=स्वामिनो वैश्यस्य वा स्त्रियाः (**जारः**) व्यभिचारेण वयोहन्ता (**न**) निषेधे (**पोषम्**) पुष्टिम् (**अनु**) (**मन्यते**) ॥ ३१ ॥

अन्वयः—यद्यः शूद्रोऽर्यायै जारो भवति स यथा पोषं नाऽनुमन्यते यद् यो राजा हरिणो यवमत्तीव पुष्टं प्रजाजनं बहु न मन्यते स सर्वतः क्षीणो जायते ॥ ३१ ॥

सपदार्थान्वयः—**यद्**=यः **शूद्रः** मूर्ख-कुलोत्पन्नः **अर्य्यायै** अर्यायाः=स्वामिनो वैश्यस्य वा स्त्रियाः **जारः** व्यभिचारेण वयोहन्ता **भवति, स यथा पोषं** पुष्टिं **नाऽनुमन्यते** जानाति; **यद्=यो राजा हरिणो यवमत्ति** भक्षयति **इव, पुष्टं प्रजाजनं बहु**

भाषार्थ—(यत्) जो (शूद्रः) मूर्खकुल में उत्पन्न मनुष्य—(अर्य्यायै) अर्या=स्वामी वा वैश्य की स्त्री का (जारः) जार अर्थात् व्यभिचार से आयु को नष्ट करने वाला है, वह जैसे (पोषम्) पुष्टि को (न) नहीं (अनु+मन्यते) मानता; और (यत्)

अधिकं **न मन्यते** जानाति, **स सर्वतः क्षीणो जायते** ॥ २३ । ३१ ॥

जो राजा—(हरिणः) पशु के समान (यवम्) यव=जौ आदि अन्न को (अत्ति) खाता है तथा (पुष्टम्) पुष्ट प्रजाजन को (बहु) बहुत (न) नहीं (मन्यते) मानता है, वह सब ओर से क्षीण हो जाता है ॥ २३ । ३१ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यदि राजा राजपुरुषाश्च परस्त्रीवेश्यागमनाय पशुवद् वर्त्तन्ते, तान् सर्वे विद्वांसः शूद्रानिव जानन्ति, यथा शूद्र आर्यकुले जारो भूत्वा सर्वान् संकरयति तथा ब्राह्मणक्षत्रियवैश्याः शूद्रकुले व्यभिचारं कृत्वा वर्णसंकरनिमित्ता भूत्वा नश्यन्ति ॥ २३ । ३१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। यदि राजा और राजपुरुष पर-स्त्रीगमन एवं वेश्यागमन के लिए पशु के समान वर्त्ताव करते हैं, उन्हें सब विद्वान् शूद्र के समान समझते हैं। जैसे शूद्र आर्यकुल में जार होकर सबको वर्णसंकर बना देता है, वैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य शूद्र कुल में व्यभिचार करके वर्णसंकर के निमित्त होकर नष्ट हो जाते हैं ॥ २३ । ३१ ॥

भाष्यसार—**१. राजा किस कारण से नष्ट होता है**—जैसे शूद्र (मूर्ख कुल में उत्पन्न) स्वामी वा वैश्य की स्त्री के साथ व्यभिचार करके जार हो जाता है अर्थात् अपनी आयु को नष्ट कर लेता है, शारीरिक पुष्टि को कुछ नहीं समझता और सब को वर्णसंकर बना देता है वैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य लोग शूद्र-कुल में व्यभिचार करके वर्णसंकर के निमित्त बनकर नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार जो राजा और राजपुरुष पशुओं के तुल्य आचरण अर्थात् पर-स्त्रीगमन और वेश्यागमन करते हैं, प्रजा-जनों के पोषण=पालन को कुछ नहीं समझते वे सब ओर से नष्ट हो जाते हैं। ऐसे राजा और राजपुरुषों को विद्वान् लोग शूद्र समझते हैं।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि जो राजा शूद्र जार पुरुष के समान तथा पशुओं के तुल्य आचरण करता है वह सब ओर से क्षीण हो जाता है ॥ २३ । ३१ ॥ ●

प्रजापतिः। **राजा=स्पष्टम्**। अनुष्टुप्। गान्धारः ॥

पुनः स राजा कस्येव किं वर्द्धयेदित्याह ॥

फिर वह राजा किस के समान क्या बढ़ावे, इस विषय का उपदेश किया है ॥

दधिक्राव्णो॑ऽ अकारिषं जि॒ष्णोरश्व॑स्य वा॒जिनः॑।
सु॒र॒भि नो॒ मुखा॑ कर॒त्प्र ण॒ऽआयू॑ᳬषि तारिषत् ॥ ३२ ॥

पदार्थः—(**दधिक्राव्णः**) यो दधीन्=पोषकान्धारकान् वा क्राम्यति तस्य (**अकारिषम्**) कुर्य्याम् (**जिष्णोः**) जयशीलस्य (**अश्वस्य**) आशुगामिनः (**वाजिनः**) बहुवेगवतः (**सुरभि**) प्रशस्तसुगन्धियुतानि (**नः**) अस्माकम् (**मुखा**) मुखानि (**करत्**) कुर्य्यात् (**प्र**) (**नः**) अस्माकम् (**आयूँषि**) (**तारिषत्**) सन्तारयेत् ॥ ३२ ॥

अन्वयः—हे राजन्! यथाऽहं दधिक्राव्णो वाजिनो जिष्णोरश्वस्येव वीर्यमकारिषं तथा भवान् नः सुरभि मुखेव वीर्यं प्रकरन्न आयूंषि तारिषत् ॥ ३२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे राजन् ! यथाऽहं **दधिक्राव्णः** यो दधीन्=पोषकान् धारकान् वा क्राम्यति तस्य **वाजिनः** बहुवेगवतः **जिष्णोः** जयशीलस्य **अश्वस्य** आशुगामिनः **इव वीर्यमकारिषं** कुर्याम्, **तथा भवान् नः** अस्माकं **सुरभि** प्रशस्तसुगन्धियुतानि **मुखा** मुखानि **इव वीर्यं प्रकरत्** कुर्य्यात्, **नः** अस्माकम् **आयूंषि तारिषत्** सन्तारयेत् ॥ २३ । ३२ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जैसे मैं—(दधिक्राव्णः) पोषक वा धारक लोगों को देशान्तर में ले जाने वाले, (वाजिनः) बहुत वेगवान् (जिष्णोः) जयशील, (अश्वस्य) शीघ्रगामी घोड़े के (इव) समान वीर्य की रक्षा (अकारिषम्) करता हूँ, वैसे आप (नः) हमारे (सुरभि) प्रशस्त सुगन्धि से युक्त (मुखा) मुखों के समान वीर्य की रक्षा (प्रकरत्) करो, तथा (नः) हमारी (आयूंषि) आयुओं को (तारिषत्) पार करो ॥ २३ । ३२ ॥

भावार्थः—यथाऽश्वशिक्षका अश्वान् वीर्यरक्षणनियमेन बलिष्ठान्, संग्रामे विजयनिमित्तान् कुर्वन्ति तथैवाध्यापकोपदेशकाः कुमारान् कुमारींश्च पूर्णेन ब्रह्मचर्यसेवनेन विद्यायुक्तान् विदुषीश्च कृत्वा, शरीरात्मबलाय प्रवर्त्त्य दीर्घायुषो युद्धशालीनान् सम्पादयेयुः ॥ २३ । ३२ ॥

भावार्थ—जैसे घोड़ों के शिक्षक लोग घोड़ों को वीर्य-रक्षा के नियम से बलिष्ठ एवं संग्राम में विजय के हेतु बनाते हैं, वैसे ही अध्यापक और उपदेशक लोग कुमारों और कुमारियों को पूर्ण ब्रह्मचर्य के सेवन से विद्वान् और विदुषी बनाकर, शरीर और आत्मा के बल के लिए, प्रवृत्त करके दीर्घायु एवं युद्ध-शालीन बनावें ॥ २३ । ३२ ॥

भाष्यसार—**राजा किसको बढ़ावे**—जैसे घोड़ों के शिक्षक लोग--धारक और पोषक लोगों को देशान्तर में पहुँचाने वाले, बहुत वेगवान्, संग्राम में विजय के निमित्त, शीघ्रगामी घोड़ों को वीर्य-रक्षा के नियम से बलिष्ठ बनाते हैं, वैसे राजा, अध्यापक और उपदेशक लोग कुमार और कुमारियों को पूर्ण ब्रह्मचर्य के सेवन से विद्वान् और विदुषी बनावें; शरीर और आत्मा की बल-वृद्धि के लिए प्रवृत्त करके उन्हें दीर्घायु और युद्धकुशल करें ॥ २३ । ३२ ॥ ●

प्रजापतिः । **विद्वांसः**=स्पष्टम् । उष्णिक् । ऋषभः ।

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वान् किसके समान क्या करे, यह उपदेश किया है ॥

गायत्री त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुप्पङ्क्त्या सह । बृहत्युष्णिहा ककुप्सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३३ ॥

पदार्थः—(**गायत्री**) गायन्तं त्रायमाणा (**त्रिष्टुप्**) याऽऽध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविकानि त्रीणि सुखानि स्तोभते=स्तभ्नाति सा (**जगती**) जगद्वद्विस्तीर्णा (**अनुष्टुप्**) ययाऽनुष्टोभते सा (**पङ्क्त्या**) विस्तृतया क्रियया (**सह**) (**बृहती**) महदर्था (**उष्णिहा**) यया उषः स्निह्यति तया (**ककुप्**) लालित्ययुक्ता (**सूचीभिः**) सीवनसाधिकाभिः (**शम्यन्तु**) (**त्वा**) त्वाम् ॥ ३३ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! ये विद्वांसः पङ्क्त्या सह गायत्री त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुबुष्णिहा सह बृहतीककुप्सूचीभिरिव त्वा त्वां शम्यन्तु तांस्त्वं सेवस्व ॥ ३३ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे विद्वन् ! ये विद्वांसः पङ्क्त्या** विस्तृतया क्रियया **सह गायत्री** गायन्तं त्रायमाणा, **त्रिष्टुप्** याऽऽध्यात्मिकाधि-

भाषार्थ—हे विद्वान् मनुष्य ! जो विद्वान् (पंक्त्या) विस्तृत क्रिया रूप पंक्ति छन्द के साथ (गायत्री) गायक की रक्षा करने वाली गायत्री,

भौतिकाधिदैविकानि त्रीणि सुखानि स्तोभते=स्तभ्नाति सा, **जगती** जगद्वद्विस्तीर्णा, **अनुष्टुप्** ययाऽनुष्टोभते सा; **उष्णिहा** यया उषः स्निह्यति तया सह **बृहती** महदर्था **ककुप्** लालित्ययुक्ता **सूचीभिः** सीवनसाधिकाभिः **इव त्वा**=त्वां **शम्यन्तु**; **तांस्त्वं सेवस्व** ॥ २३ । ३३ ॥

(त्रिष्टुप्) आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक तीन सुखों को स्थिर करने वाली त्रिष्टुप् (जगती) जगत् के समान विस्तीर्ण (अनुष्टुप्) दुःखों को रोकने वाली अनुष्टुप्; (उष्णिहा) उषाओं से स्नेह करने वाली उष्णिक् के साथ (बृहती) महान् अर्थ वाली एवं (ककुप्) लालित्य से युक्त ककुप् ऋचा से (सूचीभिः) सूईयों के समान (त्वा) तुझे (शम्यन्तु) सीमते हैं; उनकी तू सेवा कर ॥२३।३३॥

भावार्थः—ये विद्वांसो गायत्र्यादिछन्दोऽर्थविज्ञापनेन मनुष्यान् विदुषः कुर्वन्ति, सूच्या छिन्नं वस्त्रमिव भिन्नमतान्यनुसंदधत्यैकमत्ये स्थापयन्ति, ते जगत्कल्याणकारका भवन्ति ॥२३।३३॥

भावार्थ—जो विद्वान् गायत्री आदि छन्दों के अर्थ बतला कर मनुष्यों को विद्वान् बनाते हैं; तथा सूई से फटे वस्त्र के समान भिन्न मतों को जोड़ते हैं अर्थात् एकमत में स्थापित करते हैं वे जगत् का कल्याण करने वाले होते हैं ॥ २३।३३ ॥

भा० पदार्थः—शम्यन्तु=भिन्नमतान्यनुसंदधतु=ऐकमत्ये स्थापयन्तु ॥

भाष्यसार—**विद्वान् क्या करें**— विद्वान् लोग पंक्ति, गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप्, उष्णिक्, बृहती और ककुप् छन्दों का अर्थ बतला कर मनुष्यों को विद्वान् बनावें। जैसे फटे वस्त्रों को सूई से सीम कर एक करते हैं वैसे भिन्न मतों को शिक्षा से एक मत में स्थापित करें। ऐसे विद्वानों को सब जगत् के कल्याणकारी समझें और उनकी सेवा करें ॥ २३ । ३३ ॥

प्रजापतिः । **मन्त्रः**=स्पष्टम् । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनर्विद्वांसः किं कुर्युरित्याह ॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

द्विपदा याश्चतुष्पदास्त्रिपदा याश्च षट्पदाः ।
विच्छन्दा याश्च सच्छन्दाः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३४ ॥

पदार्थः—(**द्विपदाः**) द्वे पदे यासु ताः (**याः**) (**चतुष्पदाः**) चत्वारि पदानि यासु ताः (**त्रिपदाः**) त्रीणि पदानि यासु ताः (**याः**) (**च**) (**षट्पदाः**) षट् पदानि यासु ताः (**विच्छन्दाः**) विविधानि छन्दांस्यूर्जनानि यासु ताः (**याः**) (**च**) (**सच्छन्दाः**) समानानि छन्दांसि यासु ताः (**सूचीभिः**) अनुसंधानसाधिकाभिः क्रियाभिः (**शम्यन्तु**) (**त्वा**) ॥ ३४ ॥

अन्वयः—ये विद्वांसः सूचीभिर्या द्विपदा याश्चतुष्पदा यास्त्रिपदा याश्च षट्पदा या विच्छन्दा याश्च सच्छन्दास्त्वां ग्राहयित्वा शम्यन्तु शमं प्रापयन्तु तान् नित्यं सेवस्व ॥ ३४ ॥

सपदार्थान्वयः—**ये विद्वांसः सूचीभिः** अनुसन्धानसाधिकाभिः क्रियाभिः **या द्विपदाः** द्वे पदे यासु ताः, **याश्चतुष्पदाः** चत्वारि पदानि यासु ताः, **यास्त्रिपदाः** त्रीणि पदानि यासु ताः, **याश्च षट्पदाः**

भाषार्थ—जो विद्वान्—(सूचीभिः) मेल को सिद्ध करने वाले आचरणों से (याः) जो (द्विपदाः) दो चरणों वाली, (याः) जो (चतुष्पदाः) चार चरणों वाली, (याः) जो (त्रिपदाः) तीन

षट् पदानि यासु ताः, **या विच्छन्दाः** विविधानि छन्दांस्यूर्जनानि यासु ताः, **याश्च सच्छन्दाः** समानानि छन्दांसि यासु ताः, **[त्वा]=त्वां ग्राहयित्वा शम्यन्तु=शमं प्रापयन्तु; तान् नित्यं सेवस्व** ॥ ३४ ॥

चरणों वाली (याः, च) और जो (षट्पदाः) छः चरणों वाली (याः) जो (विच्छन्दाः) विविध छन्दों वाली (याः, च) और जो (सच्छन्दाः) समान छन्दों वाली ऋचाओं को [त्वा] तुझे ग्रहण करा कर (शम्यन्तु) शान्ति पहुँचायें, उनकी नित्य सेवा कर ॥ २३ । ३४ ॥

भावार्थः—ये विद्वांसो मनुष्यान् ब्रह्मचर्यनियमेन वीर्यवृद्धिं प्रापय्यारोगान् जितेन्द्रियान् विषयासक्तिविरहान् कृत्वा धर्म्ये व्यवहारे चालयन्ति, ते सर्वेषां पूज्या भवन्ति ॥ २३ । ३४ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् मनुष्यों को ब्रह्मचर्य के नियम से वीर्यवृद्धि को प्राप्त कराकर; नीरोग, जितेन्द्रिय और विषयासक्ति से रहित करके धर्मयुक्त व्यवहार में चलाते हैं; वे सबके पूज्य होते हैं ॥ २३ । ३४ ॥

भा० पदार्थः—सूचीभिः=ब्रह्मचर्यनियमैः । शम्यन्तु=धर्म्ये व्यवहारे चालयन्तु ॥

भाष्यसार—**विद्वान् क्या करें**—विद्वान् लोग दो, चार, तीन और छः चरणों वाले एवं विविध; और समान छन्दों वाले मन्त्रों को पढ़ाकर शान्ति प्राप्त करावें अर्थात् ब्रह्मचर्य के नियम से वीर्यवृद्धि को प्राप्त कराकर नीरोग, जितेन्द्रिय और विषयासक्ति से रहित करके सबको धर्म-युक्त व्यवहार में चलावें । ऐसे पूज्य विद्वानों की सब सेवा करें ॥ २३ । ३४ ॥

प्रजापतिः । **प्रज्ञाः=स्पष्टम्** । भुरिगुष्णिक् । ऋषभः ॥

पुनर्विद्वांसः कीदृशा भवेयुरित्याह ॥

फिर विद्वान् कैसे हों, इस विषय का उपदेश किया है ॥

महानाम्न्यो रेवत्यो विश्वा आशाः प्रभूवरीः ।
मैघीर्विद्युतो वाचः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३५ ॥

पदार्थः—(**महानाम्न्यः**) महन्नाम यासां ताः (**रेवत्यः**) बहुधनयुक्ताः (**विश्वाः**) अखिलाः (**आशाः**) दिशः (**प्रभूवरीः**) प्रभुत्वयुक्ताः (**मैघीः**) मेघानामिमाः (**विद्युतः**) (**वाचः**) (**सूचीभिः**) (**शम्यन्तु**) (**त्वा**) त्वाम् ॥ ३५ ॥

अन्वयः—हे जिज्ञासो ! सूचीभिर्या महानाम्न्यो रेवत्यः प्रभूवरीर्विश्वा आशा इव मैघीर्विद्युत इव च वाचस्त्वा शम्यन्तु तास्त्वं गृहाण ॥ ३५ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे जिज्ञासो ! सूचीभिर्या महानाम्न्यः** महन्नाम यासां ताः **रेवत्यः** बहुधनयुक्ताः **प्रभूवरीः** प्रभुत्वयुक्ताः **विश्वाः** अखिलाः **आशाः** दिशः **इव मैघीः** मेघानामिमाः **विद्युत इव च वाचस्त्वा** त्वां **शम्यन्तु तास्त्वं गृहाण** ॥ २३ । ३५ ॥

भाषार्थ—हे जिज्ञासु ! (सूचीभिः) मेल के साधक आचरणों से (याः) जो—(महानाम्न्यः) महान् नाम=कीर्ति वाली, (रेवत्यः) बहुत धन से युक्त, (प्रभूवरीः) प्रभुत्व से युक्त, (विश्वाः) सब (आशाः) दिशाओं के समान और (मैघीः) मेघ-सम्बन्धी (विद्युतः) विद्युतों के समान (वाचः) वाणियाँ (त्वा) तुझे (शम्यन्तु) शान्ति पहुँचाती हैं; उन्हें तू ग्रहण कर ॥ २३ । ३५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। येषां वाचो दिग्वत् सर्वासु विद्यासु व्यापिका, मेघस्था विद्युदिव सर्वार्थप्रकाशिकाः सन्ति ते शान्त्या जितेन्द्रियत्वं प्राप्य महाकीर्त्तयो जायन्ते ॥ २३ । ३५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। जिनकी वाणियाँ दिशाओं के समान सब विद्याओं में व्यापक, मेघस्थ विद्युत् के समान सब अर्थों की प्रकाशक हैं, वे शान्ति से जितेन्द्रियता को प्राप्त करके महान् कीर्ति वाले होते हैं ॥२३।३५॥

भा० पदार्थः—आशाः=दिग्वत् सर्वासु विद्यासु व्यापिकाः। मैघीः=मेघस्थाः। विद्युतः=विद्युदिव सर्वार्थप्रकाशिकाः। शम्यन्तु=शान्त्या जितेन्द्रियत्वं प्रापयन्तु। महानाम्न्यः=महाकीर्त्तयः ॥

भाष्यसार—१. **विद्वान् कैसे हों**—विद्वानों की वाणी, महान् कीर्ति वाली, बहुत धन प्रदान करने वाली, प्रभुता से युक्त, सब दिशाओं के समान सब विद्याओं में व्यापक, मेघस्थ विद्युत् के समान सब अर्थों की प्रकाशक होती है। विद्वान् लोग उक्त वाणी से जिज्ञासु लोगों को शान्त अर्थात् जितेन्द्रिय बनावें और स्वयं महान् कीर्ति को प्राप्त करें।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि विद्वानों की वाणी दिशाओं के समान सब विद्याओं में व्यापक तथा मेघस्थ विद्युत् के समान सब अर्थों की प्रकाशक होती है ॥ २३ । ३५ ॥

प्रजापतिः। **स्त्रियः=स्पष्टम्**। भुरिगुष्णिक्। ऋषभः ॥

अथ कन्याः कियद्ब्रह्मचर्यं कुर्युरित्याह ॥

अब कन्या कितना ब्रह्मचर्य करें, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

नार्य्यस्ते पत्न्यो लोम विचिन्वन्तु मनीषया।
देवानां पत्न्यो दिशः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३६ ॥

पदार्थः—(**नार्य्यः**) नराणां स्त्रियः (**ते**) तव (**पत्न्यः**) स्त्रियः (**लोम**) अनुकूलं वचनम् (**वि**) (**चिन्वन्तु**) सञ्चितं कुर्वन्तु (**मनीषया**) मनस ईषणकर्त्र्या प्रज्ञया (**देवानाम्**) विदुषाम् (**पत्न्यः**) स्त्रियः (**दिशः**) (**सूचीभिः**) अनुसंधानक्रियाभिः (**शम्यन्तु**) (**त्वा**) त्वाम् ॥ ३६ ॥

अन्वयः—हे विदुष्यध्यापिके ! याः कुमार्य्यो मनीषया ते लोम विचिन्वन्तु ता देवानां नार्य्यः पत्न्यो भवन्तु। हे कुमारि ! या देवानां पत्न्यो भूत्वा सूचीभिः दिश इव शुद्धा विदुष्यः सन्ति तास्त्वा त्वां शम्यन्तु ॥ ३६ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे विदुष्यध्यापिके ! याः कुमार्य्यो मनीषया** मनस ईषणकर्त्र्या प्रज्ञया **ते** तव **लोम** अनुकूलं वचनं **वि+चिन्वन्तु** सञ्चितं कुर्वन्तु; **ता देवानां** विदुषां **नार्य्यः** नराणां स्त्रियः **पत्न्यः** स्त्रियः **भवन्तु। हे कुमारि ! या देवानां** विदुषां **पत्न्यः** स्त्रियः **भूत्वा सूचीभिः** अनुसन्धानक्रियाभिः **दिश इव शुद्धा विदुष्यः सन्ति तास्त्वा**=**त्वां शम्यन्तु** ॥ २३ । ३६ ॥

भाषार्थ—हे विदुषी अध्यापिके ! जो कुमारियाँ—(मनीषया) बुद्धि से (ते) तेरे (लोम) अनुकूल वचन को (वि+चिन्वन्तु) संचित करती हैं; वे (देवानाम्) विद्वानों की (नार्य्यः) नारी एवं (पत्न्यः) पत्नियाँ बनें। हे कुमारी ! जो (देवानाम्) विद्वानों की (पत्न्यः) पत्नियाँ होकर (सूचीभिः) मेल कराने वाले आचरणों से (दिशः) दिशाओं के समान शुद्ध विदुषियाँ होती हैं वे (त्वा) तुझे (शम्यन्तु) शान्ति पहुँचायें ॥ २३ । ३६ ॥

भावार्थः—याः कन्या आद्ये वयसि आषोडशादाचतुर्विंशतिवर्षब्रह्मचर्येण विद्यासुशिक्षाः प्राप्य स्वसदृशानां पत्न्यः स्युस्ताः दिश इव सुप्रकाशितकीर्त्तयो भवन्ति ॥ २३ । ३६ ॥

भावार्थ—जो कन्यायें आयु के प्रथम भाग में सोलह वर्ष से लेकर चौबीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य पूर्वक विद्या और सुशिक्षाओं को प्राप्त करके अपने सदृश विद्वानों की पत्नियाँ बनती हैं; वे दिशाओं के समान सुप्रकाशित कीर्त्ति वाली होती हैं ॥२३।३६॥

भा० पदार्थः—मनीषया=आषोडशादाचतुर्विंशद्वर्षब्रह्मचर्येण । लोम=विद्यासुशिक्षाः । विचिन्वन्तु=प्राप्नुवन्तु । दिशः=दिश इव सुप्रकाशितकीर्त्तयः ॥

भाष्यसार—**कन्यायें कितना ब्रह्मचर्य करें**—कन्यायें आयु के प्रथम भाग में सोलह वर्ष से लेकर चौबीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य का सेवन करें। ब्रह्मचर्य का सेवन करती हुई विदुषी अध्यापिकाओं के अनुकूल वचनों का मनीषा=बुद्धि से संचय करें अर्थात् उनसे विद्या और सुशिक्षा को प्राप्त करें; तत्पश्चात् विद्वानों की नारियाँ (पत्नियाँ) बनें अर्थात् अपने सदृश पतियों के साथ विवाह करें।

विद्वानों की पत्नियाँ जो सूई के तुल्य मेल का व्यवहार सिखलाने वाली एवं दिशाओं के समान शुद्ध विदुषी एवं सुप्रकाशित कीर्त्ति वाली हैं वे कन्याओं को शान्त करें अर्थात् जितेन्द्रियता की शिक्षा दें ॥ २३ । ३६ ॥ ●

प्रजापतिः । **स्त्रियः=स्पष्टम्** । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्ताः कीदृशो भवेयुरित्याह ॥

फिर वे स्त्रियाँ कैसी हों, इस विषय का उपदेश किया है ॥

रजता हरिणीः सीसा युजो युज्यन्ते कर्मभिः ।
अश्वस्य वाजिनस्त्वचि सिमाः शम्यन्तु शम्यन्तीः ॥ ३७ ॥

पदार्थः—(**रजताः**) अनुरक्ताः (**हरिणीः**) प्रशस्तो हरणं विद्यते यासां ताः (**सीसाः**) प्रेमबन्धिकाः । अत्र 'षिञ्‌ बन्धने' इत्यस्मादौणादिकः क्सः प्रत्ययोऽन्येषामपीति दीर्घः (**युजः**) समाहिताः (**युज्यन्ते**) (**कर्मभिः**) धर्म्याभिः क्रियाभिः (**अश्वस्य**) व्याप्तुं शीलस्य (**वाजिनः**) प्रशस्तबलवतः (**त्वचि**) संवरणे (**सिमाः**) प्रेम्णा बद्धाः (**शम्यन्तु**) आनन्दन्तु (**शम्यन्तीः**) शमं प्राप्नुवतीः प्रापयन्त्यो वा ॥ ३७ ॥

प्रमाणार्थ—(**सीसाः**) प्रेमबन्धिकाः । यहाँ 'षिञ्‌ बन्धने' इस धातु से औणादिक 'क्स' प्रत्यय तथा 'अन्येषामपि दृश्यते' (६ । ३ । १३७) से दीर्घ है ॥

अन्वयः—यथा स्वयंवरा वाजिनोऽश्वस्य त्वचि संयुज्यन्ते तथा कर्मभी रजता हरिणीः सीसा युजः शम्यन्तीः सिमा हृद्यान् पतीन् प्राप्य शम्यन्तु ॥ ३७ ॥

सपदार्थान्वयः—**यथा स्वयंवरा वाजिनः** प्रशस्तबलवतः **अश्वस्य** व्याप्तुं शीलस्य **त्वचि** संवरणे **संयुज्यन्ते, तथा कर्मभिः** धर्म्याभिः क्रियाभिः **रजता** अनुरक्ताः, **हरिणीः** प्रशस्तो हरणं विद्यते यासां ताः, **सीसाः** प्रेमबन्धिकाः, **युजः** समाहिताः, **शम्यन्तीः** शमं प्राप्नुवतीः प्रापयन्त्यो

भाषार्थ—जैसे स्वयंवर करने वाली स्त्रियाँ (वाजिनः) प्रशस्त बल वाले (अश्वस्य) उत्तम गुणों में व्याप्त पति की (त्वचि) त्वचा में संयुक्त होती हैं; वैसे (कर्मभिः) धर्म-युक्त आचरणों से (रजताः) अनुरक्त, (हरिणीः) मन का प्रशस्त हरण करने वाली, (सीसाः) प्रेम से बाँधने वाली

वा, **सिमाः** प्रेम्णा बद्धाः **हृद्यान् पतीन् प्राप्य शम्यन्तु** आनन्दन्तु ॥ २३ । ३७ ॥

(युजः) समाहित=स्थिर चित्त वाली, (शम्यन्तीः) शान्ति को प्राप्त करने वा कराने वाली (सिमाः) प्रेम से बंधी हुई कन्यायें प्रिय पतियों को प्राप्त करके (शम्यन्तु) आनन्द करें ॥ २३ । ३७ ॥

भावार्थः—हे मनुष्याः ! ये सुशिक्षिताः स्वयंवरा भूत्वा स्त्रीपुरुषाः स्वेच्छया परस्परस्मिन् प्रीता विवाहं कुर्वन्ति ते—भद्रान् लावण्यगुण-स्वभावयुक्तान् सन्तानानुत्पाद्य सदाऽऽनन्दन्ति ॥ २३ । ३७ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यों ! जो सुशिक्षित तथा स्वयं वरण करने वाले होकर स्त्री और पुरुष अपनी इच्छा से परस्पर प्रसन्न होकर विवाह करते हैं; वे श्रेष्ठ, सुन्दर गुण एवं स्वभाव से युक्त सन्तानों को उत्पन्न करके सदा आनन्दित रहते हैं ॥२३।३७॥

भा० पदार्थः—रजताः=परस्परस्मिन् प्रीताः ।

भाष्यसार—स्त्रियाँ कैसी हों—पति का स्वयं वरण करने वाली स्त्रियाँ प्रशस्त बल वाले एवं शुभ गुणों में व्याप्त पति की त्वचा=शरीर से संयुक्त हो । धर्म-युक्त आचरण से स्त्री पति में अनुरक्त रहें, मन को हरण करने वाली, प्रेम में बाँधने वाली, समाहित=स्थिर चित्त वाली, स्वयं शान्ति को प्राप्त करने वाली तथा अन्यों को भी शान्ति प्रदान करने वाली और पति के प्रेम में बंधी रहने वाली हों । ऐसी स्त्रियाँ श्रेष्ठ एवं सुन्दर गुण, स्वभाव वाले सन्तानों को उत्पन्न करके सदा आनन्द में रहती हैं ॥ २३ । ३७ ॥ ●

प्रजापतिः । **सभासदः=अध्यापकाध्येतारः** । निचृत्पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

अथाऽध्यापकाऽध्येतारः कीदृशः स्युरित्याह ॥

अब अध्यापक और छात्र कैसे हों, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

कुविदङ्ग यवमन्तो यवञ्चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय ।
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नम ऽ उक्तिं यजन्ति ॥ ३८ ॥

पदार्थः—(**कुवित्**) बहुविज्ञानयुक्तः (**अङ्ग**) मित्र (**यवमन्तः**) बहुयवादिधान्ययुक्ताः (**यवम्**) धान्यसमूहम् (**चित्**) अपि (**यथा**) (**दान्ति**) छिन्दन्ति (**अनुपूर्वम्**) आनुकूल्यमनतिक्रम्य (**वियूय**) वियोज्य संमिश्रय च (**इहेह**) अस्मिन्नस्मिन्व्यवहारे (**एषाम्**) जनानाम् (**कृणुहि**) कुरु (**भोजनानि**) पालनार्थान्यन्नानि (**ये**) (**बर्हिषः**) जलस्य (**नम उक्तिम्**) नमसोऽन्नस्य वचनम् (**यजन्ति**) सङ्गच्छन्ते ॥ ३८ ॥

अन्वयः—हे अङ्ग ! कुवित्त्वमिहेहैषां यथा यवमन्तो कृषीवला यवं वियूय चिदप्यनुपूर्वं दान्ति ये च बर्हिषो नम उक्तिं यजन्ति तेषां भोजनानि कृणुहि ॥ ३८ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे अङ्ग** मित्र ! **कुवित्** बहुविज्ञानयुक्तः **त्वमिहेह** अस्मिन्नस्मिन्व्यवहारे **एषां** जनानां **यथा यवमन्तः=कृषीवला** बहुयवादिधान्ययुक्ताः **यवं** धान्यसमूहं **वियूय** वियोज्य संमिश्रय च **चिद्=अपि अनुपूर्वम्** आनुकूल्यमनतिक्रम्य **दान्ति** छिन्दन्ति **ये च बर्हिषः** जलस्य **नम उक्तिं** नमसोऽन्नस्य वचनं **यजन्ति**

भाषार्थ—हे (अङ्ग) मित्र ! (कुवित्) बहुत विज्ञान से युक्त तू—(इहेह) इस विद्या व्यवहार में (एषाम्) इन अध्यापक लोगों का जो (यवमन्तः) बहुत यव=जौ आदि धान्य से युक्त किसान (यवम्) धान्य समूह को (वियूय) पृथक् करके और मिलाकर (चित्) भी (अनुपूर्वम्) अनुकूलतापूर्वक (दान्ति) काटते हैं; और (ये) जो

सङ्गच्छन्ते; **तेषां भोजनानि** पालनार्थान्यन्नानि **कृणुहि** कुरु ॥ २३ । ३८ ॥

अध्यापक लोग (बर्हिषः) जल एवं (नम उक्तिम्) अन्न=भोजन के वचन को (यजन्ति) स्वीकार करते हैं, उनका (भोजनानि) भोजन आदि से (कृणुहि) सत्कार कर ॥ २३ । ३८ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः । हे अध्यापकाध्येतारः ! यूयं यथा कृषीवलाः परस्परस्य क्षेत्राणि पर्यायेण लुनन्ति; बुसादिभ्योऽन्नानि पृथक्कृत्य, अन्यान् भोजयित्वा स्वयं भुञ्जते, तथैवेह विद्याव्यवहारे निष्कपटतया विद्यार्थिभिरध्यापकानां सेवामध्यापकैर्विद्यार्थिनां विद्यावृद्धिं च कृत्वा, परस्परान् भोजनादिना सत्कृत्य सर्व आनन्दन्तु ॥ २३ । ३८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलंकार है। हे अध्यापक और छात्रों ! तुम—जैसे किसान लोग परस्पर के खेतों को पर्याय=बारी-बारी से काटते हैं, बुस=भूसा आदि से अन्नों को पृथक् करके, अन्यों को खिला कर स्वयं खाते हैं; वैसे इस विद्या-व्यवहार में कपट-रहित होकर विद्यार्थी लोग अध्यापकों की सेवा करें और अध्यापक लोग विद्यार्थियों की विद्या-वृद्धि करके परस्पर भोजन आदि से सत्कार करके सब आनन्द में रहें ॥ २३ । ३८ ॥

भा० पदार्थः—अनुपूर्वम्=पर्यायेण । दान्ति=लुनन्ति । वियूय=बुसादिभ्योऽन्नानि पृथक्कृत्य । यजन्ति=सत्कृत्य सर्व आनन्दन्तु ।

भाष्यसार—**१. अध्यापक और छात्र कैसे हों**—जैसे बहुत यव=जौ आदि धान्य से युक्त किसान लोग धान्य समूह को एवं परस्पर के खेतों को पृथक् करके वा मिलाकर अनुकूलतापूर्वक पर्याय से काटते हैं, बुस आदि से अन्नों को पृथक् करके स्वयं भोजन करते हैं, तथा अन्यों को भी खिलाते हैं; वैसे अध्यापक लोग इस विद्या-व्यवहार में निष्कपट भाव से विद्यार्थियों की विद्या-वृद्धि करें तथा छात्र लोग अध्यापकों की जल, अन्न आदि से सेवा करें। इस प्रकार परस्पर सत्कार से सब आनन्दित रहें।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में 'यथा' पद उपमा वाचक है अतः उपमा अलंकार है। उपमा यह है कि किसानों के समान अध्यापक और छात्र परस्पर मिलकर पठन-पाठन करें ॥ २३ । ३८ ॥ ●

प्रजापतिः । **अध्यापकः**=स्पष्टम् । भुरिग्गायत्री । षड्जः ॥

पुनरध्यापका विद्यार्थिनां कीदृशीं परीक्षां गृह्णीयुरित्याह ॥

फिर अध्यापक विद्यार्थियों की कैसी परीक्षा लेवें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

कस्त्वाछ्यति कस्त्वा विशास्ति कस्ते गात्राणि शम्यति । क ऽ उ ते शमिता कविः ॥ ३९ ॥

पदार्थः—(**कः**) (**त्वा**) त्वाम् (**आछ्यति**) समन्ताच्छिनत्ति (**कः**) (**त्वा**) त्वाम् (**वि**) (**शास्ति**) विशेषेणोपदिशति (**कः**) (**ते**) तव (**गात्राणि**) अङ्गानि (**शम्यति**) शाम्यति=शमं प्रापयति । अत्र 'वा छन्दसी' ति दीर्घत्वाभावः (**कः**) (**उ**) वितर्के (**ते**) तव (**शमिता**) यज्ञस्य कर्त्ता (**कविः**) सर्वशास्त्रवित् ॥ ३९ ॥

प्रमाणार्थ—(**शम्यति**) शाम्यति । यहाँ 'वा छन्दसि' इस सूत्र से दीर्घत्व का अभाव है ॥

अन्वयः—हे अध्येतस्त्वा त्वां क आछ्यति कस्त्वा विशास्ति कस्ते गात्राणि शम्यति क उ ते शमिता कविरध्यापकोऽस्ति ॥ ३९ ॥

सङ्गच्छन्ते; **तेषां भोजनानि** पालनार्थान्यन्नानि **कृणुहि** कुरु ॥ २३ । ३८ ॥

अध्यापक लोग (बर्हिषः) जल एवं (नम उक्तिम्) अन्न=भोजन के वचन को (यजन्ति) स्वीकार करते हैं, उनका (भोजनानि) भोजन आदि से (कृणुहि) सत्कार कर ॥ २३ । ३८ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः। हे अध्यापकाध्येतारः ! यूयं यथा कृषीवलाः परस्परस्य क्षेत्राणि पर्यायेण लुनन्ति; बुसादिभ्योऽन्नानि पृथक्कृत्य, अन्यान् भोजयित्वा स्वयं भुञ्जते, तथैवेह विद्याव्यवहारे निष्कपटतया विद्यार्थिभिरध्यापकानां सेवामध्यापकैर्विद्यार्थिनां विद्यावृद्धिं च कृत्वा, परस्परान् भोजनादिना सत्कृत्य सर्व आनन्दन्तु ॥ २३ । ३८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलंकार है। हे अध्यापक और छात्रों ! तुम—जैसे किसान लोग परस्पर के खेतों को पर्याय=बारी-बारी से काटते हैं, बुस=भूसा आदि से अन्नों को पृथक् करके, अन्यों को खिला कर स्वयं खाते हैं; वैसे इस विद्या-व्यवहार में कपट-रहित होकर विद्यार्थी लोग अध्यापकों की सेवा करें और अध्यापक लोग विद्यार्थियों की विद्या-वृद्धि करके परस्पर भोजन आदि से सत्कार करके सब आनन्द में रहें ॥ २३ । ३८ ॥

भा० पदार्थः—अनुपूर्वम्=पर्यायेण। दान्ति=लुनन्ति। वियूय=बुसादिभ्योऽन्नानि पृथक्कृत्य। यजन्ति=सत्कृत्य सर्व आनन्दन्तु।

भाष्यसार—१. **अध्यापक और छात्र कैसे हों**—जैसे बहुत यव=जौ आदि धान्य से युक्त किसान लोग धान्य समूह को एवं परस्पर के खेतों को पृथक् करके वा मिलाकर अनुकूलतापूर्वक पर्याय से काटते हैं, बुस आदि से अन्नों को पृथक् करके स्वयं भोजन करते हैं, तथा अन्यों को भी खिलाते हैं; वैसे अध्यापक लोग इस विद्या-व्यवहार में निष्कपट भाव से विद्यार्थियों की विद्या-वृद्धि करें तथा छात्र लोग अध्यापकों की जल, अन्न आदि से सेवा करें। इस प्रकार परस्पर सत्कार से सब आनन्दित रहें।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में 'यथा' पद उपमा वाचक है अतः उपमा अलंकार है। उपमा यह है कि किसानों के समान अध्यापक और छात्र परस्पर मिलकर पठन-पाठन करें ॥ २३ । ३८ ॥

प्रजापतिः। **अध्यापकः**=स्पष्टम्। भुरिग्गायत्री। षड्जः॥

पुनरध्यापका विद्यार्थिनां कीदृशीं परीक्षां गृह्णीयुरित्याह ॥

फिर अध्यापक विद्यार्थियों की कैसी परीक्षा लेवें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

कस्त्वाछ्यति कस्त्वा विशास्ति कस्ते गात्राणि शम्यति। कऽउं ते शमिता कविः ॥ ३९ ॥

पदार्थः—(**कः**) (**त्वा**) त्वाम् (**आछ्यति**) समन्ताच्छिनत्ति (**कः**) (**त्वा**) त्वाम् (**वि**) (**शास्ति**) विशेषेणोपदिशति (**कः**) (**ते**) तव (**गात्राणि**) अङ्गानि (**शम्यति**) शाम्यति=शमं प्रापयति। अत्र 'वा छन्दसी' ति दीर्घत्वाभावः (**कः**) (**उ**) वितर्के (**ते**) तव (**शमिता**) यज्ञस्य कर्त्ता (**कविः**) सर्वशास्त्रवित् ॥ ३९ ॥

प्रमाणार्थ—(**शम्यति**) शाम्यति। यहाँ 'वा छन्दसि' इस सूत्र से दीर्घत्व का अभाव है ॥

अन्वयः—हे अध्येतस्त्वा त्वां क आछ्यति कस्त्वा विशास्ति कस्ते गात्राणि शम्यति क उ ते शमिता कविरध्यापकोऽस्ति ॥ ३९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे अध्येतः ! त्वा=त्वां **कः आछ्यति** समन्ताच्छिनत्ति ? **कस्त्वा** त्वां **वि+शास्ति** विशेषेणोपदिशति ? **कस्ते** तव **गात्राणि** अङ्गानि **शम्यति** शाम्यति=शमं प्रापयति ? **क उ** वितर्कपूर्वकं **ते** तव **शमिता** यज्ञस्य कर्त्ता **कविः**=**अध्यापकः** सर्वशास्त्रविद् **अस्ति** ? ॥ २३ । ३९ ॥

भाषार्थ—हे अध्येता छात्र ! (त्वा) तुझे (कः) कौन (आछ्यति) काटता है ? (कः) कौन (त्वा) तुझे (वि+शास्ति) विशेष उपदेश करता है ? (कः) कौन (ते) तेरे (गात्राणि) अङ्गों को (शम्यति) शान्त करता है ? (कः) कौन (उ) विचारपूर्वक (ते) तेरे (शमिता) अध्ययन यज्ञ का कर्त्ता (कविः) सब शास्त्रों का ज्ञाता अध्यापक है ? ॥ २३ । ३९ ॥

भावार्थः—अध्यापका अध्येतॄन् प्रत्येवं परीक्षायां पृच्छेयुः के युष्माकमध्ययनं छिन्दन्ति ? के युष्मानध्ययनायोपदिशन्ति के ऽङ्गानां शुद्धिं, योग्यां चेष्टां श ज्ञापयन्ति ? कोऽध्यापकोऽस्ति ? किमधीतम् ? किमध्येतव्यमस्तीत्यादि पृष्ट्वां सुपरीक्ष्योत्तमानुत्साह्याधमान् धिक्कृत्वा विद्यामुन्नयेयुः ॥ २३ । ३९ ॥

भावार्थ—अध्यापक लोग छात्रों से इस प्रकार परीक्षा में प्रश्न पूछें—कौन तुम्हारे अध्ययन को काटते हैं ? कौन तुम्हें अध्ययन के लिए उपदेश करते हैं ? कौन अङ्गों की शुद्धि और योग्य चेष्टा को उपदेश करते हैं ? कौन अध्यापक है ? क्या पढ़ा है ? क्या पढ़ना है ? इत्यादि प्रश्न पूछ कर, उत्तम रीति से परीक्षा करके, उत्तम छात्रों को उत्साहित करके तथा अधम छात्रों को धिक्कार कर विद्या को बढ़ावें ॥ २३ । ३९ ॥

भा० पदार्थः—विशास्ति=अध्ययनायोपदिशति । गात्राणि=अङ्गानां शुद्धिं, योग्यां चेष्टां च । शम्यति=ज्ञापयति ॥

भाष्यसार—अध्यापक छात्रों की कैसी परीक्षा लें—अध्यापक लोग छात्रों से परीक्षा में इस प्रकार प्रश्न पूछें कि हे छात्रों ! तुम्हारा अध्ययन का कौन छेदन करता है ? कौन तुम्हें अध्ययन के लिए उपदेश करता है ? कौन तुम्हें अङ्गों की शुद्धि और योग्य चेष्टाओं को बतलाता है, अर्थात् अङ्गों की शान्ति (जितेन्द्रियता) का उपदेश करता है ? कौन तुम्हारा यज्ञ-कर्त्ता एवं सब शास्त्रों का ज्ञाता अध्यापक है ? क्या पढ़ा है ? क्या और पढ़ना है ? परीक्षक अध्यापक लोग छात्रों से इत्यादि प्रश्न पूछकर उनकी सुपरीक्षा करके उत्तम छात्रों को उत्साहित करें। अधम=निकृष्ट छात्रों को धिक्कारें। परीक्षक व अध्यापक इस प्रकार विद्या को बढ़ावें ॥ २३ । ३९ ॥

प्रजापतिः । **प्रजाः=स्पष्टम्** । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनः स्त्रीपुरुषाः कथं वर्त्तेरन्नित्याह ॥

फिर स्त्री परुष कैसे वर्त्ताव करें, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

ऋ॒तव॑स्त ऽ ऋतु॒था पर्वं॑ शमि॒तारो॒ वि शा॑सतु । सं॒व॒त्स॒रस्य॒ तेज॑सा श॒मीभिः॑ शम्यन्तु त्वा ॥४०॥

पदार्थः—(**ऋतवः**) वसन्ताद्याः (**ते**) तव (**ऋतुथा**) ऋतुभ्यः (**पर्व**) पालनम् (**शमितारः**) अध्ययनाध्यापनाख्ये यज्ञे शमादिगुणानां प्रापकाः (**वि, शासतु**) विशेषेणोपदिशन्तु (**संवत्सरस्य**) (**तेजसा**) जलेन । **तेज इत्युदकना० ॥ निघं० १ । १२।** (**शमीभिः**) कर्मभिः (**शम्यन्तु**) (**त्वा**) त्वाम् ॥ ४० ॥

प्रमाणार्थ—(**तेजसा**) जलेन । 'तेज' यह पद निघं० (१ । १२) में उदक-नामों में पठित है । उदक=जल ॥

अन्वयः—हे विद्यार्थिन् ! यथा ते ऋतव ऋतुथा पर्वेव शमितारोऽध्येतारं विशासतु संवत्सरस्य तेजसा शमीभिस्त्वा त्वां शम्यन्तु तांस्त्वं सदैव सेवस्व ॥ ४० ॥

सपदार्थान्वयः—**हे विद्यार्थिन् ! यथा ते** तव **ऋतवः** वसन्ताद्याः **ऋतुथा** ऋतुभ्यः **पर्व** पालनम् **इव शमितारः** अध्ययनाध्यापनाख्ये यज्ञे शमादिगुणानां प्रापकाः **अध्येतारं विशासतु** विशेषेणोपदिशन्तु **संवत्सरस्य तेजसा** जलेन **शमीभिः** कर्मभिः **त्वा** = **त्वां शम्यन्तु; तांस्त्वं सदैव सेवस्व** ॥ २३ । ४० ॥

भाषार्थ—हे विद्यार्थिन् ! जैसे—(ते) (ऋतवः) वसन्त आदि ऋतु (ऋतुथा) ऋतुअनुसार (पर्व) तेरा पालन करती हैं, वैसे (शमितारः) अध्ययन-अध्यापन नामक यज्ञ में शान्ति आदि गुणों को प्राप्त कराने वाले अध्यापक लोग छात्र को (विशासतु) विशेष उपदेश करें; (संवत्सरस्य) वर्ष के (तेजसा) जल से एवं (शमीभिः) शान्तिदायक कर्मों से (त्वा) तुझे (शम्यन्तु) शान्ति प्रदान करते हैं, उनकी तू सदैव सेवा कर ॥ २३ । ४० ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यथा ऋतवः पर्यायेण स्वानि स्वानि लिङ्गान्यभिपद्यन्ते, तथैव स्त्रीपुरुषाः पर्यायेण ब्रह्मचर्य-गृहस्थ-वानप्रस्थ-संन्यासाश्रमान् कृत्वा ब्राह्मणा ब्राह्मण्यश्चाऽध्यापयेयुः, क्षत्रियाः प्रजा रक्षन्तु, वैश्याः कृष्यादिकमुन्नयन्तु, शूद्राश्चैतान् सेवन्तामिति ॥ २३ । ४० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है । जैसे ऋतुएँ पर्याय=बारी-बारी से अपने-अपने लक्षणों को प्रकट करती हैं वैसे ही स्त्री-पुरुष पर्याय से ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमों को धारण करके—ब्राह्मण और ब्राह्मणियाँ पढ़ावें, क्षत्रिय प्रजा की रक्षा करें, वैश्य कृषि आदि को बढ़ावें और शूद्र इनकी सेवा करें ॥ २३ । ४० ॥

भा० पदार्थः—शमितारः=ब्राह्मणाः, क्षत्रियाः, वैश्याः, शूद्राः । विशासतु=अध्यापयेयुः, प्रजा रक्षन्तु, कृष्यादिकमुन्नयन्तु, सेवन्ताम् ॥

भाष्यसार—**१. स्त्री और पुरुष कैसे व्यवहार करें**—जैसे वसन्त आदि ऋतु पर्याय=बारी-बारी से अपने-अपने लक्षणों को प्राप्त होती हुई प्रजा का पालन करती हैं वैसे स्त्री और पुरुष पर्याय से ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमों का सेवन करें । अध्ययन-अध्यापन नामक यज्ञ में शान्ति आदि गुणों के प्रापक ब्राह्मण और ब्राह्मणियाँ कुमार और कुमारियों को विशेष उपदेश करें, उन्हें पढ़ावें । क्षत्रिय लोग प्रजा की रक्षा करें । वैश्य लोग कृषि आदि को बढ़ावें । शूद्र इनकी सेवा करें । उक्त विद्वान् वर्ष भर के जल आदि पदार्थों एवं कर्त्तव्य कर्मों से विद्यार्थियों को शान्ति प्रदान करें । तथा विद्यार्थी लोग इन विद्वानों की सेवा किया करें ।

२. अलंकार—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचकलुप्तोपमा अलंकार है । उपमा यह है कि जैसे ऋतु पर्याय से अपने-अपने लक्षणों को प्राप्त होती है वैसे स्त्री और पुरुष पर्याय से ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों का सेवन करें ॥ २३ । ४० ॥ ●

प्रजापतिः । **प्रज्ञाः**=**बालकाः** । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

अथ बालकेषु मात्रादयः कथं वर्त्तेरन्नित्याह ॥

अब बालकों में माता आदि कैसे वर्त्तें, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

अ॒र्द्ध॒मा॒साः परू॑ᳬषि ते॒ मा॒सा॒ ऽ आ च्छ्य॑न्तु॒ शम्य॑न्तः ।
अ॒हो॒रा॒त्राणि॑ म॒रुतो॒ विलि॑ष्टᳬ सूदयन्तु ते ॥ ४१ ॥

पदार्थः—(**अर्द्धमासाः**) कृष्णशुक्लपक्षाः (**परूंषि**) कठोराणि वचनानि (**ते**) तव (**मासाः**) चैत्रादयः (**आ**) समन्तात् (**छ्यन्तु**) छिन्दन्तु (**शम्यन्तः**) शान्ति प्रापयन्तः (**अहोरात्राणि**) (**मरुतः**) मनुष्याः (**विलिष्टम्**) विरुद्धमल्पमपि व्यसनम् (**सूदयन्तु**) दूरीकारयन्तु (**ते**) तव ॥ ४१ ॥

अन्वयः—हे विद्यार्थिन्नहोरात्राण्यर्द्धमासा मासाश्चायूंषीव ते तव परूंषि शम्यन्तो मरुतो दुर्व्यसनान्याच्छ्यन्तु ते तव विलिष्टं सूदयन्तु ॥ ४१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्यार्थिन् ! **अहोरात्राण्यर्द्धमासाः** कृष्णशुक्लपक्षाः **मासाः** चत्रादयः **चायूंषीव ते** तव **परूंषि** कठोराणि वचनानि **शम्यन्तः** शान्ति प्रापयन्तः **मरुतः** मनुष्याः **दुर्व्यसनान्याच्छ्यन्तु** समन्ताच्छिन्दन्तु; **ते**=**तव विलिष्टं** विरुद्धमल्पमपि व्यसनं **सूदयन्तु** दूरीकारयन्तु ॥ २३ । ४१ ॥

भाषार्थ—हे विद्यार्थिन् ! जैसे—(अहोरात्राणि) दिन-रात, (अर्द्धमासाः) शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष तथा (मासाः) चैत्र आदि मास आयु का छेदन करते हैं; वैसे (ते) तेरे (परूंषि) कठोर वचनों को (शम्यन्तः) शान्त करने वाले (मरुतः) मनुष्य—दुर्व्यसनों का (आ+च्छ्यन्तु) सब ओर से छेदन करें; तथा (ते) तेरे (विलिष्टम्) विरुद्ध आचरण एवं लेशमात्र दुर्व्यसन का भी (सूदयन्तु) दूर करें ॥ २३ । ४१ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालंकारः । यदि मातापित्रध्यापकोपदेशकातिथयो बालानां दुर्गुणान् न निवर्त्तेयुस्तर्हि ते शिष्टाः कदाचिन्न भवेयुः ॥ २३ । ४१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है । यदि माता, पिता, अध्यापक, उपदेशक और अतिथि लोग बच्चों के दुर्गुणों को दूर न करें तो वे शिष्ट कभी नहीं हो सकते ॥ २३ । ४१ ॥

भा० पदार्थः—मरुतः=मातापित्रध्यापकोपदेशकातिथयः । आच्छ्यन्तु=निवर्त्तेयुः ॥

भाष्यसार—१. **बालकों में माता आदि कैसे वर्त्ताव करें**—जैसे दिन-रात, कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष तथा चैत्र आदि मास आयु को समाप्त करते हैं, वैसे माता-पिता, अध्यापक, उपदेशक और अतिथि लोग विद्यार्थी एवं बालकों के कठोर वचन आदि दुर्गुणों को शान्त करें अर्थात् उन्हें निवृत्त करें । उनके विरुद्ध आचरण और लेश मात्र दुर्व्यसन को भी दूर करें ।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा वाचक इव आदि पद लुप्त है अतः वाचकलुप्तोपमा अलंकार है । उपमा यह है कि जैसे दिन-रात आदि आयु को समाप्त करते हैं वैसे माता-पिता आदि बालकों के दुर्गुणों एवं दुर्व्यसनों को दूर करें ॥ २३ । ४१ ॥

प्रजापतिः । **अध्यापकः**=**स्पष्टम्** । भुरिगुष्णिक् । ऋषभः ॥

अथाध्यापकादयः कथं वर्त्तेरन्नित्याह ॥

अब अध्यापक आदि कैसे वर्त्ताव करें, इस विषय का उपदेश किया जाता है ।

दैव्या॑ ऽ अध्व॒र्य्यव॒स्त्वाच्छ्य॑न्तु॒ वि च॑ शासतु ।
गात्रा॑णि पर्व॒शस्ते॒ सिमाः॑ कृ॒ण्वन्तु॒ शम्य॑न्तीः ॥ ४२ ॥

पदार्थः—(**दैव्याः**) देवेषु=विद्वत्सु कुशलाः (**अध्वर्यवः**) आत्मनोऽहिंसाख्ययज्ञमिच्छन्तः (**त्वा**) त्वाम् (**आ**) (**छ्यन्तु**) छिन्दन्तु (**वि**) (**च**) (**शासतु**) उपदिशन्तु (**गात्राणि**) अङ्गानि (**पर्वशः**) सन्धितः (**ते**) तव (**सिमाः**) प्रेमबद्धाः (**कृण्वन्तु**) (**शम्यन्तीः**) दुष्टस्वभावं निवारयन्त्यः ॥ ४२ ॥

अन्वयः—हे विद्यार्थिन् विद्यार्थिनि वा ! दैव्या अध्वर्य्यवस्त्वा विशासतु च ते तव दोषानाच्छ्यन्तु पर्वशो गात्राणि परीक्षन्तां सिमाः शम्यन्तीः सत्यो मातरोऽप्येवं शिक्षां कृण्वन्तु ॥ ४२ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे विद्यार्थिन् विद्यार्थिनि वा ! दैव्याः** देवेषु=विद्वत्सु कुशलाः **अध्वर्यवः** आत्मनोऽहिंसाख्ययज्ञमिच्छन्तः **त्वा** त्वां **वि+शासतु** उपदिशन्तु; **च ते=तव दोषान् आ+छ्यन्तु** छिन्दन्तु; **पर्वशः** सन्धितः **गात्राणि** अङ्गानि **परीक्षन्तां; सिमाः** प्रेमबद्धाः **शम्यन्तीः** दुष्टस्वभावं निवारयन्त्यः **सत्यो मातरोऽप्येवं शिक्षां कृण्वन्तु** ॥ २३ । ४२ ॥

भाषार्थ—हे विद्यार्थी व विद्यार्थिनी ! (दैव्याः) विद्वानों में कुशल (अध्वर्यवः) अपने अहिंसा नामक यज्ञ के इच्छुक अध्यापक आदि लोग—(त्वा) तुझे (वि+शासतु) विशेष उपदेश करें; (च) और (ते) तेरे दोषों को (आ+च्छ्यन्तु) सब ओर से छेदन करें; (पर्वशः) प्रत्येक सन्धि एवं (गात्राणि) अङ्गों की परीक्षा करें; तथा (सिमाः) प्रेम से बंधी हुई (शम्यन्तीः) दुष्ट स्वभाव का निवारण करने वाली माताएँ भी इसी प्रकार से शिक्षा करें ॥ २३ । ४२ ॥

भावार्थः—अध्यापकोपदेशकातिथयो यदा बालकान् शिक्षयेयुस्तदा दुर्गुणान् विनाश्य विद्यां प्रापयेयुः । एवम्—अध्यापिकोपदेशिका विदुष्यः स्त्रियोऽपि कन्याः प्रति आचरेयुः । वैद्यकशास्त्र-रीत्या शरीरावयवान् सम्यक् परीक्ष्यौषधान्यपि प्रदद्युः ॥ २३ । ४२ ॥

भावार्थ—अध्यापक, उपदेशक और अतिथि लोग—जब बालकों को शिक्षा करें तब दुर्गुणों का विनाश करके विद्या प्रदान करें । इसी प्रकार अध्यापिका, उपदेशिका विदुषी स्त्रियाँ भी कन्याओं के प्रति आचरण करें । वैद्यक-शास्त्र की रीति से शरीर के अवयवों की ठीक परीक्षा करके औषध भी प्रदान करें ॥ २३ । ४२ ॥

भा० पदार्थः—दैव्याः=अध्यापकोपदेशकातिथयः । शम्यन्तीः=अध्यापकोपदेशिका विदुष्यः स्त्रियः ॥

भाष्यसार—**अध्यापक आदि कैसे वर्त्ताव करें**—विद्वानों में कुशल, अपने अहिंसात्मक यज्ञ की कामना करने वाले अध्यापक, उपदेशक और अतिथि लोग बालकों एवं विद्यार्थियों को उपदेश करें । उनके दुर्गुणों का विनाश करके उन्हें विद्या प्राप्त करावें । वैद्यक-शास्त्र की रीति से शरीर के सन्धि आदि सब अवयवों की ठीक-ठीक परीक्षा करके उन्हें औषध प्रदान करें । प्रेम में आबद्ध, बालकों के दुष्ट स्वभाव को निवारण करने वाली माता, अध्यापिका, उपदेशिका, विदुषी स्त्रियाँ भी कन्याओं के प्रति ऐसा ही आचरण करें ॥ २३ । ४२ ॥

प्रजापतिः । **राज्ञा**=स्पष्टम् । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनरध्यापकादयः कीदृशा भवेयुरित्याह ॥

फिर अध्यापक आदि कैसे हों, इस विषय का उपदेश किया है ॥

द्यौस्ते॑ पृ॒थि॒व्य॒न्तरि॑क्षं वा॒युश्छि॒द्रं पृ॑णातु ते ।
सूर्य॑स्ते॒ नक्ष॑त्रैः स॒ह लो॒कं कृ॑णोतु साधु॒या ॥ ४३ ॥

पदार्थः—(**द्यौः**) प्रकाशरूपा विद्युत् (**ते**) तव (**पृथिवी**) भूमिः (**अन्तरिक्षम्**) आकाशम् (**वायुः**) पवनः (**छिद्रम्**) इन्द्रियम् (**पृणातु**) सुखयतु (**ते**) तव (**सूर्य्यः**) सविता (**ते**) तव (**नक्षत्रैः**) (**सह**) (**लोकम्**) दर्शनीयम् (**कृणोतु**) (**साधुया**) साधु=सत्यम् ॥ ४३ ॥

अन्वयः—हे शिष्येऽध्यापिके वा ! यथा द्यौः पृथिव्यन्तरिक्षं वायुः सूर्य्यो नक्षत्रैः सह चन्द्रश्च ते छिद्रं पृणातु ते तव व्यवहारं साध्नोतु तथा ते तव साधुया लोकं कृणोतु ॥ ४३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **शिष्येऽध्यापिके वा ! यथा द्यौः** प्रकाशरूपा विद्युत्, **पृथिवी** भूमिः, **अन्तरिक्षम्** आकाशं, **वायुः** पवनः, **सूर्य्यः** सविता, **नक्षत्रैः सह चन्द्रश्च, ते** तव **छिद्रम्** इन्द्रियं **पृणातु** सुखयतु; **ते तव**=**व्यवहारं साध्नोतु; तथा ते**=**तव साधुया** साधु=सत्यं **लोकं** दर्शनीयं **कृणोतु** ॥ २३ । ४३ ॥

भाषार्थ—हे शिष्या वा अध्यापिके ! (द्यौः) प्रकाश रूप विद्युत्, (पृथिवी) भूमि, (अन्तरिक्षम्) आकाश, (वायुः) पवन, (सूर्यः) सूर्य और (नक्षत्रैः) नक्षत्रों के साथ चन्द्रमा (ते) तेरी (छिद्रम्) इन्द्रियों को (पृणातु) सुख देवे; और (ते) तेरे व्यवहार को सिद्ध करें; तथा (ते) तेरे (साधुया) सत्य (लोकम्) दर्शनीय विद्याप्रकाश को (कृणोतु) सिद्ध करे ॥ २३ । ४३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालंकारः । यथा पृथिव्यादयः सुखप्रदाः, सूर्यादयः प्रकाशकाः पदार्थाः सन्ति, तथैवाध्यापका उपदेशकाश्च, अध्यापिका अप्युपदेशिकाश्च सर्वान् सन्मार्गस्थान् कृत्वा विद्याप्रकाशं जनयन्तु ॥ २३ । ४३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। जैसे पृथिवी आदि सुखप्रद एवं सूर्य आदि प्रकाशक पदार्थ हैं; वैसे ही अध्यापक और उपदेशक तथा अध्यापिका और उपदेशिका भी सबको सन्मार्ग में स्थित करके विद्याप्रकाश को उत्पन्न करें ॥ २३ । ४३ ॥

भा० पदार्थः—साधुया=सर्वान् सन्मार्गस्थान् कृत्वा । लोकम्=विद्याप्रकाशम् ।

भाष्यसार—१. **अध्यापक कैसे हों**—जैसे पृथिवी, वायु, आकाश, सुखदायक हैं; विद्युत, सूर्य, नक्षत्र और चन्द्रमा प्रकाशक पदार्थ हैं; वैसे अध्यापक, उपदेशक तथा अध्यापिका और उपदेशिका विदुषी स्त्रियाँ अपने शिष्य और शिष्याओं को सन्मार्ग में स्थित करें। उनकी इन्द्रियों को सुख प्रदान करें। उनके व्यवहारों को सिद्ध करें। उनके विद्या-प्रकाश को उत्पन्न करें।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि जैसे पृथिवी आदि पदार्थ सुखदायक हैं, वैसे अध्यापक आदि लोग शिष्यों को सुख प्रदान करें ॥ २३ । ४३ ॥

प्रजापतिः । **राजा**=**स्पष्टम्** । उष्णिक् । ऋषभः ॥

पुनर्मात्रादिभिः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

फिर माता आदि को क्या करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

शं ते परेभ्यो गात्रेभ्यः शमस्त्ववरेभ्यः ।
शमस्थभ्यों मज्जभ्यः शम्वस्तु तन्वै तव ॥ ४४ ॥

पदार्थः—(**शम्**) सुखम् (**ते**) तुभ्यम् (**परेभ्यः**) उत्कृष्टेभ्यः (**गात्रेभ्यः**) (**शम्**) (**अस्तु**) (**अवरेभ्यः**) मध्यस्थेभ्यो निकृष्टेभ्यो वा (**शम्**) (**अस्थभ्यः**) '**छन्दस्यपि दृश्यते**' इत्यनेन हलादावप्यनङ् (**मज्जभ्यः**) (**शम्**) (**उ**) (**अस्तु**) (**तन्वै**) शरीराय (**तव**) ॥ ४४ ॥

अन्वयः—हे विद्यामिच्छो ! यथा पृथिव्यादितत्त्वं तव तन्वै शमस्तु परेभ्यो गात्रेभ्यः शमवरेभ्यो गात्रेभ्यः शमस्तु । अस्थभ्यो मज्जभ्यः शमस्तु तथा स्वकीयैरुत्तमगुणकर्मस्वभावैरध्यापकास्ते शंकरा भवन्तु ॥ ४४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **विद्यामिच्छो !** **यथा पृथिव्यादितत्त्वं तव तन्वै** शरीराय शं सुखम् **अस्तु; परेभ्यः** उत्कृष्टेभ्यः **गात्रेभ्यः शं** सुखम्, **अवरेभ्यः** मध्यस्थेभ्यो निकृष्टेभ्यो वा **गात्रेभ्यः शं** सुखम् **अस्तु; अस्थभ्यो मज्जभ्यः शमस्तु; तथा स्वकीयैरुत्तमगुणकर्मस्वभावैरध्यापकास्ते** तुभ्यं **शंकरा भवन्तु** ॥ २३ । ४४ ॥

भाषार्थ—हे विद्या के इच्छुक ! जैसे पृथिवी आदि तत्त्व (तव) तेरे (तन्वै) शरीर के लिए (शम्) सुखदायक (अस्तु) हो; (परेभ्यः) उत्तम (गात्रेभ्यः) शरीर-अङ्गों के लिए (शम्) सुखदायक हो; (अवरेभ्यः) मध्यस्थ वा निकृष्ट (गात्रेभ्यः) शरीर-अङ्गों के लिए (शम्) सुखदायक (अस्तु) हो; (अस्थभ्यः) हड्डी और (मज्जभ्यः) मज्जा=चर्बी के लिए (शम्) सुखदायक (अस्तु) हो; वैसे अपने उत्तम गुण, कर्म, स्वभाव से अध्यापक लोग (ते) तेरे लिए सुखकारी हों ॥ २३ । ४४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यथा मातापित्रध्यापकोपदेशकैः सन्तानानां दृढाङ्गानि दृढा धातवश्च स्युः, यैः कल्याणं कर्त्तुमर्हेयुस्तथाऽध्यापनीयमुपदेष्टव्यं च ॥ २३ । ४४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। जैसे सन्तानों के दृढ़ अङ्ग और दृढ़ धातु हों, जिससे कल्याण कर सकें वैसे माता, पिता, अध्यापक और उपदेशक लोग उन्हें पढ़ावें और उपदेश करें ॥ २३ । ४४ ॥

भाष्यसार—**१. माता आदि क्या करें**—जैसे पृथिवी आदि तत्त्व शरीर के उत्तम, मध्यम और निकृष्ट अवयवों के लिए तथा अस्थि=हड्डी, मज्जा=चर्बी आदि के लिए सुखदायक हैं; वैसे माता, पिता, अध्यापक और उपदेशक लोग सन्तानों के अंगों और धातुओं को दृढ़ बनावें। जिस से वे जगत् का कल्याण कर सकें। माता-पिता आदि उन्हें पढ़ावें और उपदेश भी करें।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि जैसे पृथिवी आदि तत्त्व सुखदायक हैं वैसे माता-पिता आदि सन्तानों को शिक्षा से सुख प्रदान करें ॥ २३ । ४४ ॥

प्रजापतिः । **जिज्ञासुः**=**स्पष्टम्** । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

अथ विदुषः प्रति प्रश्ना एवं कर्त्तव्या इत्याह ॥

अब विद्वानों से प्रश्न ऐसे करने चाहियें, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

कः स्विदेकाकी चरति कऽउ स्विज्जायते पुनः ।
किथंस्विद्धिमस्य भेषजं किम्वावपनं महत् ॥ ४५ ॥

पदार्थः—(**कः**) (**स्वित्**) (**एकाकी**) असहायोऽद्वितीयः (**चरति**) प्राप्नोति (**कः**) (**उ**) (**स्वित्**) अपि (**जायते**) (**पुनः**) (**किम्**) (**स्वित्**) (**हिमस्य**) शीतस्य (**भेषजम्**) औषधम् (**किम्**) (**उ**) (**आवपनम्**) समन्तात्सर्वाधारम् (**महत्**) ॥ ४५ ॥

अन्वयः—हे विद्वन्! अस्मिन् संसारे कः स्विदेकाकी चरति क उ स्वित्पुनर्जायते किं स्विद्धिमस्य भेषजं किमु महदावपनमस्तीति वदस्व ॥ ४५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन्! **अस्मिन् संसारे कः स्विदेकाकी** असहायोऽद्वितीयः **चरति** प्राप्नोति? **क उ स्विद्** अपि **पुनर्जायते? किं स्विद्धिमस्य** शीतस्य **भेषजम्** औषधम्? **किमु महदावपनं** समन्तात् सर्वाधारम् **अस्तीति? वदस्व** ॥ २३ । ४५ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान्! इस संसार में (कः स्वित्) कौन (एकाकी) अकेला (चरति) प्राप्त होता है एवं भ्रमण करता है? (क उ स्वित्) और कौन (पुनः) फिर (जायते) उत्पन्न होता है? (किं स्वित्) क्या (हिमस्य) शीत=ठंड की (भेषजम्) औषध है? (किमु) और कौन (महत्) महान् (आवपनम्) सर्वाधार है? यह बतलाइये ॥२३।४५॥

भावार्थः—असहायः को भ्रमति? शीत-निवारकः कः? कः पुनः पुनरुत्पद्यते? महदुत्पत्ति-स्थानं किमस्तीत्येतेषां प्रश्नानामुत्तरेण मन्त्रेण समाधानानि वेदितव्यानि ॥ २३ । ४५ ॥

भावार्थ—अकेला कौन भ्रमण करता है? शीत=ठंड का निवारक कौन है? बार-बार कौन उत्पन्न होता है? महान् उत्पत्ति-स्थान क्या है? इन प्रश्नों के समाधान अगले मन्त्र से समझें ॥४५॥

भाष्यसार—**विद्वानों से ऐसे प्रश्न करें**—इस संसार में **अकेला कौन भ्रमण करता है?** तत्पश्चात् कौन उत्पन्न होता है? शीत का निवारक औषध क्या है? **कौन** सर्वाधार एवं महान् उत्पत्ति-स्थान है? इन प्रश्नों का समाधान अगले मन्त्र में है ॥ २३ । ४५ ॥ ●

प्रजापतिः । **सूर्यादयः**=स्पष्टम् । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनः पूर्वोक्तप्रश्नोत्तराण्याह ॥

अब पूर्वोक्त प्रश्नों के उत्तरों का उपदेश किया है ॥

सूर्य्यं ऽ एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः ।
अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ॥ ४६ ॥

पदार्थः—(**सूर्य्यः**) सूर्य्यलोकः (**एकाकी**) असहायः (**चरति**) (**चन्द्रमाः**) आह्लादकरश्चन्द्रः (**जायते**) प्रकाशितो भवति (**पुनः**) पश्चात् (**अग्निः**) पावकः (**हिमस्य**) शीतस्य (**भेषजम्**) औषधम् (**भूमिः**) भवन्ति भूतानि यस्यां सा पृथिवी (**आवपनम्**) समन्ताद्वपन्ति यस्मिंस्तत् (**महत्**) विस्तीर्णम् ॥४६॥

अन्वयः—हे जिज्ञासो! सूर्य्य एकाकी चरति चन्द्रमाः पुनर्जायतेऽग्निर्हिमस्य भेषजं महदावपनं भूमिरस्तीति ॥ ४६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे जिज्ञासो! **सूर्य्यः** सूर्यलोकः **एकाकी** असहायः **चरति, चन्द्रमाः** आह्लादकरश्चन्द्रः **पुनः** पश्चात् **जायते** प्रकाशितो भवति, **अग्निः** पावकः **हिमस्य** शीतस्य **भेषजम्** औषधं, **महद्** विस्तीर्णम् **आवपनं** समन्ताद्वपन्ति यस्मिँस्तत् **भूमिः** भवन्ति भूतानि यस्यां सा पृथिवी **अस्तीति** ॥ २३ । ४६ ॥

भाषार्थ—हे जिज्ञासु! (सूर्य्यः) सूर्य लोक (एकाकी) अकेला (चरति) भ्रमण करता है। (चन्द्रमाः) आह्लादकारी चन्द्रः (पुनः) फिर (जायते) प्रकाशित होता है। (अग्निः) अग्नि (हिमस्य) शीत=ठंड की (भेषजम्) औषध है। (महत्) विस्तृत् (आवपनम्) बीज बोने का क्षेत्र (भूमिः) पृथिवी है; ऐसा समझ ॥ २३ । ४६ ॥

भावार्थः—हे विद्वांसः! सूर्यः स्वस्यैव परिधौ भ्रमति; न कस्यचिल्लोकस्य परितः। चन्द्रादिलोकास्तेनैव प्रकाशिता भवन्ति। अग्निरेव शीतविनाशकः। सर्वबीजवपनार्थं महत् क्षेत्रं भूमिरेवास्तीति यूयं विजानीत ॥ २३। ४६॥

भावार्थ—हे विद्वानो! सूर्य अपनी ही परिधि में भ्रमण करता है; किसी लोक के चारों ओर नहीं घूमता। चन्द्र आदि लोक उसी से प्रकाशित हैं। अग्नि ही शीत=ठंड का निवारक है। सब बीज बोने के लिए महान् क्षेत्र भूमि ही है; ऐसा तुम समझो ॥ २३। ४६॥

भा० पदार्थः—एकाकी=स्वस्यैव परिधौ। आवपनम्=सर्वबीजवपनार्थं क्षेत्रम्॥

भाष्यसार--**पूर्व मन्त्र में उक्त प्रश्नों के उत्तर**—विद्वान् उत्तर देता है कि हे जिज्ञासु! सूर्य अपनी ही परिधि में अकेला भ्रमण करता है। वह किसी लोक के चारों ओर नहीं घूमता। तत्पश्चात् चन्द्रमा उत्पन्न होता है अर्थात् चन्द्र आदि लोक सूर्य से ही प्रकाशित होते हैं। अग्नि ही शीत का निवारक औषध है। सब बीज बोने के लिए महान् क्षेत्र भूमि ही है ॥ २३। ४६॥

प्रजापतिः। **जिज्ञासुः**=स्पष्टम्। अनुष्टुप्। गान्धारः॥

पुनः प्रश्नानाह॥

विद्वानों से इस प्रकार प्रश्न करें, यह उपदेश किया है॥

कि॑ᳬ स्वि॒त्सूर्य॑समं॒ ज्योति॒ः कि॑ᳬ स॑मु॒द्रस॑म॒ᳬ सर॑ः।

कि॑ᳬ स्वि॑त्पृथि॒व्यै॒ वर्षी॑यः॒ कस्य॒ मात्रा॒ न वि॑द्यते ॥ ४७ ॥

पदार्थः—(**किम्**) (**स्वित्**) (**सूर्यसमम्**) सूर्येण तुल्यम् (**ज्योतिः**) प्रकाशस्वरूपम् (**किम्**) (**समुद्रसमम्**) (**सरः**) सरन्ति जलानि यस्मिन् तडागे तत् (**किम्**) (**स्वित्**) (**पृथिव्यै**) पृथिव्याः। अत्र पञ्चम्यर्थे चतुर्थी (**वर्षीयः**) वृद्धम् (**कस्य**) (**मात्रा**) मीयते यया सा (**न**) (**विद्यते**) भवति ॥ ४७॥

अन्वयः—हे विद्वन्! किं स्वित्सूर्यसमं ज्योतिः किं समुद्रसमं सरः किं स्वित् पृथिव्यै वर्षीयः कस्य मात्रा न विद्यत इति ॥ ४७॥

सपदार्थान्वयः—हे **विद्वन्! किं स्वित्सूर्यसमं** सूर्येण तुल्यं **ज्योतिः** प्रकाशस्वरूपं? **किं समुद्रसमं सरः** सरन्ति जलानि यस्मिन् तडागे तत्? **किं स्वित् पृथिव्यै** पृथिव्याः **वर्षीयः** वृद्धं? **कस्य मात्रा** मीयते यया सा **न विद्यते** भवति? **इति** ॥ २३। ४७॥

भाषार्थ--हे विद्वान्! (किं स्वित्) कौन (सूर्यसमम्) सूर्य के तुल्य (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप है? (किम्) कौन (समुद्रसमम्) समुद्र के तुल्य (सरः) तालाब है? (किं स्वित्) और (पृथिव्यै) पृथिवी से (वर्षीयः) अधिक है? (कस्य) किसका (मात्रा) परिमाण (न) नहीं (विद्यते) है? यह बतलाइए ॥ २३। ४७॥

भावार्थः—आदित्यवत्तेजस्वि, समुद्रवदुदधिः, भूमेरधिकं च किं, कस्य च परिमाणं नास्ति? इत्येतेषां प्रश्नानामुत्तराणि परस्मिन् मन्त्रे वेदितव्यानि ॥ २३। ४७॥

भावार्थ—सूर्य के समान तेजस्वी, समुद्र के समान तालाब और भूमि से अधिक कौन है? और किसका परिमाण नहीं है? इन प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में समझें ॥ २३। ४७॥

भाष्यसार--**विद्वानों से इस प्रकार प्रश्न करें**—सूर्य के समान प्रकाश स्वरूप एवं तेजस्वी कौन है? समुद्र के समान तालाब कौन है? पृथिवी से बड़ा एवं अधिक कौन है? किस की मात्रा अर्थात् परिमाण नहीं है? इन प्रश्नों का उत्तर अगले मन्त्र में है ॥ २३। ४७॥

प्रजापतिः । **ब्रह्मादयः**=स्पष्टम् । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

अथैतेषामुत्तराण्याह ॥

अब उक्त प्रश्नों के उत्तरों का उपदेश किया है ॥

ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिर्द्यौः समुद्रसमᳪ सरः ।
इन्द्रः पृथिव्यै वर्षीयान् गोस्तु मात्रा न विद्यते ॥ ४८ ॥

पदार्थः—(**ब्रह्म**) बृहत्=सर्वेभ्यो महदनन्तम् (**सूर्य्यसमम्**) (**ज्योतिः**) प्रकाशकम् (**द्यौः**) अन्तरिक्षम् (**समुद्रसमम्**) समुद्रेण समानः (**सरः**) (**इन्द्रः**) सूर्य्यः (**पृथिव्यै**) पृथिव्याः (**वर्षीयान्**) अतिशयेन वृद्धो=महान् (**गोः**) वाचः (**तु**) (**मात्रा**) (**न**) (**विद्यते**) भवति ॥ ४८ ॥

अन्वयः—हे जिज्ञासो ! त्वं, सूर्य्यसमं ज्योतिर्ब्रह्म समुद्रसमं सरो द्यौः पृथिव्यै वर्षीयानिन्द्रो गोस्तु मात्रा न विद्यत इति विजानीहि ॥ ४८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे जिज्ञासो ! त्वं—**सूर्य्यसमं ज्योतिः** प्रकाशकं **ब्रह्म** बृहत्=सर्वेभ्यो महदनन्तं, **समुद्रसमं** समुद्रेण समानः **सरो द्यौः** अन्तरिक्षम्, **पृथिव्यै** पृथिव्याः **वर्षीयान्** अतिशयेन वृद्धो=महान् **इन्द्रः** सूर्य्यः, **गोः** वाचः **तु मात्रा न विद्यते** भवति; इति **विजानीहि** ॥ २३ । ४८ ॥

भाषार्थ—हे जिज्ञासु ! तू—(सूर्य्यसमम्) सूर्य के तुल्य (ज्योतिः) प्रकाशक (ब्रह्म) सब से महान् अनन्त ब्रह्म, (समुद्रसमम्) समुद्र के तुल्य (सरः) तालाब (द्यौः) अन्तरिक्ष, (पृथिव्यै) पृथिवी से (वर्षीयान्) बड़ा (इन्द्रः) सूर्य, (गोः) वाणी की (तु) तो (मात्रा) मात्रा परिमाण (न) नहीं (विद्यते) है; ऐसा जान ॥ २३ । ४८ ॥

भावार्थः—न किंचित् स्वप्रकाशेन ब्रह्मणा समं ज्योतिर्विद्यते, सूर्यप्रकाशेन युक्तेन मेघेन तुल्यो जलाशयः; सूर्येण तुल्यो लोकेशो, वाचा तुल्यं व्यवहारसाधकं किंचिदपि वस्तु न भवतीति सर्वे निश्चिन्वन्तु ॥ २३ । ४८ ॥

भावार्थ—ब्रह्म के तुल्य अपने प्रकाश से प्रकाशमान ज्योति कोई नहीं है। सूर्य-प्रकाश से युक्त मेघ=बादल के तुल्य कोई जलाशय=तालाब नहीं है। सूर्य के तुल्य कोई लोकों का स्वामी नहीं है। वाणी के तुल्य व्यवहार-साधक कोई वस्तु नहीं है; ऐसा सब निश्चय करें ॥ २३ । ४८ ॥

भाष्यसार—**पूर्व मन्त्र में उक्त प्रश्नों के उत्तर**—विद्वान् उत्तर देता है कि हे जिज्ञासु ! अपने प्रकाश से प्रकाशमान, सबसे महान्, अनन्त ब्रह्म के समान कोई ज्योति नहीं है। समुद्र अर्थात् सूर्य के प्रकाश से युक्त मेघ के समान कोई जलाशय=तालाब नहीं है। आकाश पृथिवी से बड़ा है और सूर्य सब लोकों का स्वामी है। वाणी की मात्रा=परिमाण नहीं है एवं वाणी के तुल्य व्यवहार-साधक कोई वस्तु नहीं है ॥ २३ । ४८ ॥ ●

प्रजापतिः । **प्रष्टृसमाधातारौ**=**जिज्ञासुर्विद्वांश्च** । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनः प्रश्नानाह ॥

फिर प्रश्नों को कहते हैं ॥

पृच्छामि त्वा चितये देवसख यदि त्वमत्र मनसा जगन्थ ।
येषु विष्णुस्त्रिषु पदेष्वेष्टस्तेषु विश्वं भुवनमाविवेशाँ३ ॥ ४९ ॥

पदार्थः—(**पृच्छामि**) (**त्वा**) त्वाम् (**चितये**) चेतनाय (**देवसख**) देवानां=विदुषां सुहृद् (**यदि**) (**त्वम्**) (**अत्र**) (**मनसा**) अन्तःकरणेन (**जगन्थ**) (**येषु**) (**विष्णुः**) व्यापकेश्वरः (**त्रिषु**) त्रिविधेषु (**पदेषु**) नामस्थानजन्माख्येषु (**एष्टः**) (**तेषु**) (**विश्वम्**) (**भुवनम्**) (**आ**) (**विवेश**) आविष्टो=व्याप्तोऽस्ति ॥ ४६ ॥

अन्वयः—हे देवसख ! यदि त्वमत्र मनसा जगन्थ तर्हि त्वा चितये पृच्छामि यो विष्णुर्येषु त्रिषु पदेष्वेष्टोऽस्ति तेषु व्याप्तः सन् विश्वं भुवनमाविवेश तं च पृच्छामि ॥ ४६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे देवसख ! देवानां=विदुषां सुहृद् ! **यदि त्वमत्र मनसा** अन्तःकरणेन **जगन्थ, तर्हि त्वा** त्वां **चितये** चेतनाय **पृच्छामि**; **यो विष्णुः** व्यापकेश्वरः **येषु त्रिषु** त्रिविधेषु **पदेषु** नामस्थानजन्माख्येषु **एष्टोऽस्ति, तेषु व्याप्तः सन् विश्वं भुवनम् आ+विवेश** आविष्टो=व्याप्तोऽस्ति, **तं च पृच्छामि** ॥ २३ । ४६ ॥

भाषार्थ—हे (देवसख) विद्वानों के मित्र ! (यदि) यदि (त्वम्) तू (अत्र) यहाँ (मनसा) अन्तःकरण से (जगन्थ) जानता है तो (त्वा) तुझे (चितये) चेतन के विषय में (पृच्छामि) पूछता हूँ । और जो (विष्णुः) व्यापक ईश्वर (येषु) जिन (त्रिषु) तीन (पदेषु) नाम, स्थान और जन्म नामक धामों में (एष्टः) पूज्य है, उनमें व्याप्त होकर (विश्वम्) सब (भुवनम्) लोकों में (आविवेश) व्यापक हो रहा है; उसके विषय में पूछता हूँ ॥ २३ । ४६ ॥

भावार्थः—हे विद्वन् ! यश्चेतनः, सर्वव्यापी, पूजितुं योग्यः परमेश्वरोऽस्ति तं मह्यमुपदिश ॥ २३ । ४६ ॥

भावार्थ—हे विद्वान् ! जो चेतन, सर्वव्यापक, पूजा के योग्य परमेश्वर है; उसका मेरे लिए उपदेश कर ॥ २३ । ४६ ॥

भाष्यसार—**जिज्ञासु का प्रश्न**—हे विद्वानों के मित्र विद्वान् ! यदि आप मन=अन्तःकरण से जानते हो तो मुझे जो चेतन, सर्वव्यापक अर्थात् सब लोकों में प्रविष्ट, नाम, स्थान, जन्म नामक तीनों धामों में पूजा के योग्य परमेश्वर है उसका उपदेश कीजिए ॥ २३ । ४६ ॥ ●

प्रजापतिः । **ईश्वरः**=**स्पष्टम्** । निचृत्त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथैतेषामुत्तराण्याह ॥

अब उक्त प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अपि तेषु त्रिषु पदेष्वस्मि येषु विश्वं भुवनमा विवेश ।
सद्यः पर्य्येमि पृथिवीमुत द्यामेकेनाङ्गेन दिवो ऽ अस्य पृष्ठम् ॥ ५० ॥

पदार्थः—(**अपि**) (**तेषु**) पूर्वोक्तेषु (**त्रिषु**) (**पदेषु**) प्राप्तुं योग्येषु नामस्थानजन्माख्येषु (**अस्मि**) (**येषु**) (**विश्वम्**) अखिलम् (**भुवनम्**) जगत् (**आविवेश**) समन्ताद्विष्टमस्ति (**सद्यः**) (**परि**) सर्वतः (**एमि**) प्राप्तोऽस्मि (**पृथिवीम्**) भूमिमन्तरिक्षं वा (**उत**) (**द्याम्**) सर्वप्रकाशम् (**एकेन**) (**अंगेन**) कमनीयेन (**दिवः**) प्रकाशमानस्य सूर्य्यादिलोकस्य (**अस्य**) (**पृष्ठम्**) आधारम् ॥ ५० ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यो जगत्स्रष्टेश्वरोऽहं येषु त्रिषु पदेषु विश्वं भुवनमाविवेश तेष्वप्यहं व्याप्तोऽस्मि । अस्य दिवः पृष्ठं पृथिवीमुत द्याञ्चैकेनाङ्गेन सद्यः पर्य्येमि तं मां सर्वे यूयमुपाध्वम् ॥ ५० ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! **यो** जगत्स्रष्टेश्वरोऽहं **येषु त्रिषु पदेषु** प्राप्तुं योग्येषु नामस्थानजन्माख्येषु **विश्वम्** अखिलं **भुवनं** जगत् **आविवेश** समन्ताद् विष्टमस्ति, **तेषु** पूर्वोक्तेषु **अप्यहं व्याप्तोऽस्मि । अस्य दिवः** प्रकाशमानस्य सूर्यादि-लोकस्य **पृष्ठम्** आधारं, **पृथिवीं** भूमिमन्तरिक्षं वा, **उत—द्यां** सर्वप्रकाशं **चैकेनाङ्गेन** कमनीयेन **सद्यः परि+एमि** सर्वतः प्राप्तोऽस्मि, **तं मां सर्वे यूयमुपा-ध्वम्** ॥ २३ । ५० ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो जगत् का स्रष्टा मैं ईश्वर—(येषु) जिन (त्रिषु) तीन (पदेषु) प्राप्त करने योग्य नाम, स्थान और जन्म नामक धामों में (विश्वम्) सब (भुवनम्) जगत् (आविवेश) प्रविष्ट हो रहा है, (तेषु) उन पूर्वोक्त धामों में भी मैं व्याप्त हूँ । (अस्य) इस (दिवः) प्रकाशमान सूर्य आदि लोक के (पृष्ठम्) आधार, (पृथिवीम्) भूमि वा अन्तरिक्ष (उत) और (द्याम्) सब के प्रकाशक द्युलोक को (एकेन) एक (अङ्गेन) कमनीय अङ्ग से (सद्यः) तत्काल (परि+एमि) सब ओर से प्राप्त हूँ; सो तुम सब मेरी उपासना करो ॥२३।५०॥

भावार्थः—यथा सर्वाञ्जीवान् प्रतीश्वर उपदिशति—अहं कार्यकारणात्मके जगति व्याप्तो-ऽस्मि, मया विनैकः परमाणुरप्यव्याप्तो नास्ति, सोऽहं यत्र जगन्नास्ति तत्राप्यनन्तस्वरूपेण पूर्णो-ऽस्मि । यदिदं जगदति विस्तीर्णं भवन्तः पश्यन्ति, तदिदं मत्सन्निधावेकाणुमात्रमपि नास्तीति—तथैव विद्वान् विज्ञापयेत् ॥ २३ । ५० ॥

भावार्थ—जैसे सब जीवों को ईश्वर उपदेश करता है—मैं कार्य-कारणात्मक जगत् में व्याप्त हूँ; मेरे विना एक परमाणु भी अव्याप्त नहीं है; सो मैं जहाँ जगत् नहीं है वहाँ भी अनन्त स्वरूप से पूर्ण हूँ । जो इस अति विस्तीर्ण जगत् को आप देख रहे हैं; सो यह मेरे सामने एक अणु मात्र भी नहीं है; वैसे ही विद्वान् सबको समझावे ॥२३।५०॥

भाष्यसार—**पूर्व प्रश्न का उत्तर**—सब जीवों को ईश्वर उपदेश करता है कि मैं जो नाम, स्थान, जन्म नामक धामों में सब जगत् प्रविष्ट है उस कार्य-कारणात्मक सब जगत् में व्यापक हूँ । इस प्रकाशमान सूर्य आदि लोक का आधार हूँ । एक परमाणु भी मेरी व्याप्ति के विना नहीं है । पृथिवी और सब के प्रकाशक द्युलोक को एक अंग से शीघ्र=तत्काल प्राप्त कर रहा हूँ अर्थात् जो यह विस्तृत जगत् आप लोग देख रहे हैं वह मेरे सामने एक अणु के तुल्य भी नहीं है ।

जैसे ईश्वर सबको उपदेश करता है वैसे विद्वान् लोग इस विद्या का सब मनुष्यों को उपदेश करें ॥ २३ । ५० ॥

प्रजापतिः । **पुरुषेश्वरः=स्पष्टम्** । पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

अथेश्वरविषये प्रश्नावाह ॥

अब ईश्वर-विषय में दो प्रश्न कहते हैं ॥

केष्वन्तः पुरुष ऽ आ विवेश कान्यन्तः पुरुषेऽअर्पितानि ।
एतद् ब्रह्मन्नुप वल्हामसि त्वा किꣳस्विन्नः प्रति वोचास्यत्र ॥ ५१ ॥

पदार्थः—(**केषु**) (**अन्तः**) मध्ये (**पुरुषः**) सर्वत्र पूर्णः (**आ**) (**विवेश**) प्रविष्टोऽस्ति (**कानि**) (**अन्तः**) मध्ये (**पुरुषे**) (**अर्पितानि**) स्थापितानि (**एतत्**) (**ब्रह्मन्**) ब्रह्मविद्विद्वन् (**उप**) (**वल्हामसि**) प्रधाना भवामः (**त्वा**) त्वाम् (**किम्**) (**स्वित्**) (**नः**) अस्मान् (**प्रति**) (**वोचासि**) उच्याः । अत्र लेटि मध्यमैकवचने 'वा छन्दसि सर्वे विधयो भवन्ती' त्युमागमः (**अत्र**) ॥ ५१ ॥

अन्वयः—हे ब्रह्मन् ! केषु पुरुषोऽन्तराविवेश कानि पुरुषेऽन्तरर्पितानि येन वयमुपवल्हामसि । एतत्त्वा त्वां पृच्छामस्तत्किंस्विदस्त्यत्र नः प्रतिवोचासि ॥ ५१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **ब्रह्मन्** ! ब्रह्म-विद्विद्वन् ! **केषु पुरुषः** सर्वत्र पूर्णः **अन्तः** मध्ये **आ+विवेश** प्रविष्टोऽस्ति ? **कानि पुरुषेऽन्तः** मध्ये **अर्पितानि** स्थापितानि ? **येन वयमुपवल्हामसि** प्रधाना भवामः ! **एतत्त्वा**=त्वां पृच्छामस्तत् **किंस्विदस्त्यत्र नः** अस्मान् **प्रति वोचासि** उच्याः ॥ २३ । ५१ ॥

भाषार्थ—हे (ब्रह्मन्) ब्रह्म के ज्ञाता विद्वान् ! (केषु) किनके (अन्तः) मध्य में (पुरुषः) सर्वत्र पूर्ण परमेश्वर (आ+विवेश) प्रविष्ट हो रहा है ? (कानि) कौन (पुरुषे) परमेश्वर के (अन्तः) मध्य में (अर्पितानि) स्थापित हैं ? जिस से हम (उपवल्हामसि) प्रधान पुरुष बनें । (एतत्) यह (त्वा) तुझसे पूछते हैं, वह (किंस्वित्) क्या है ? (अत्र) इस विषय में (नः, प्रति) हमें (वोचासि) बतलाइये ॥ २३ । ५१ ॥

भावार्थः—चतुर्वेदविद् विद्वानितरैर्जनैरेवं प्रष्टव्यः हे वेदविद्विद्वन् ! पूर्णः परमेश्वरः केषु प्रविष्टोऽस्ति ? कानि च तदन्तर्गतानि सन्ति ? एतत् पृष्टो भवान् याथार्थ्येन ब्रवीतु, येन वयं प्रधानपुरुषा भवेम ॥ २३ । ५१ ॥

भावार्थ—चारों वेदों के ज्ञाता विद्वान् (ब्रह्मा) से अन्य जन इस प्रकार पूछें—हे वेदों के ज्ञाता विद्वान् ! पूर्ण परमेश्वर किन में प्रविष्ट है ? और कौन उसके अन्तर्गत है ? यह बात आपसे पूछी है; सो यथार्थता से बतलाइए; जिससे हम प्रधान पुरुष बनें ॥ २३ । ५१ ॥

भा० पदार्थः—पुरुषः=पूर्णः परमेश्वरः ॥ २३ । ५१ ॥

भाष्यसार—**जिज्ञासु का प्रश्न**—हे चतुर्वेदविद् विद्वान् हमें उपदेश कीजिए कि पूर्ण परमेश्वर किन में प्रविष्ट है ? और उस (पूर्ण) पुरुष (प्रभु) में कौन-कौन स्थित है ? कृपया यह हमें यथार्थ रूप से बताइए । जिससे इसे जान कर हम समर्थ प्रधान पुरुष बनें ॥ २३ । ५१ ॥ ●

प्रजापतिः । **परमेश्वरः**=स्पष्टम् । विराट्त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पूर्वमन्त्रोक्तप्रश्नयोरुत्तरमाह ॥

पूर्व मन्त्र में कहे दो प्रश्नों के उत्तर कहते हैं ॥

पञ्चस्वन्तः पुरुष ऽ आ विवेश तान्यन्तः पुरुषे ऽ अर्पितानि ।
एतत्त्वात्र प्रतिमन्वानो ऽ अस्मि न मायया भवस्युत्तरो मत् ॥ ५२ ॥

पदार्थः—(**पञ्चसु**) भूतेषु तन्मात्रासु वा (**अन्तः**) (**पुरुषः**) पूर्णः परमात्मा (**आ**) (**विवेश**) स्वव्याप्त्याऽऽविष्टोऽस्ति (**तानि**) भूतानि तन्मात्राणि वा (**अन्तः**) मध्ये (**पुरुषे**) पूर्णे परमात्मनि (**अर्पितानि**) स्थापितानि (**एतत्**) (**त्वा**) त्वाम् (**अत्र**) (**प्रतिमन्वानः**) प्रत्यक्षेण विजानन् (**अस्मि**) (**न**) (**मायया**) प्रज्ञया । मायेति प्रज्ञाना० ॥ निघं० ३ । २ ॥ (**भवसि**) (**उत्तरः**) उत्कृष्टं तारयति=समादधाति सः (**मत्**) मम सकाशात् ॥ ५२ ॥

प्रमाणार्थ—(**मायया**) माया यह प्रज्ञा नामों में पढ़ा है । निघं० ३ । २ ॥

अन्वयः—हे जिज्ञासो ! पञ्चस्वन्तः पुरुष आ विवेश तानि पुरुषेऽन्तरर्पितानि । एतदत्र त्वा प्रतिमन्वानोऽहं समाधाताऽस्मि यदि मायया युक्तस्त्वं भवसि तर्हि मदुत्तरः समाधाता कश्चिन्नास्तीति विजानीहि ॥ ५२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **जिज्ञासो! पञ्चसु** भूतेषु तन्मात्रासु वा **अन्तः पुरुषः** पूर्णः परमात्मा **आ+विवेश** स्वव्याप्त्याऽऽविष्टोऽस्ति, **तानि** भूतानि तन्मात्राणि वा **पुरुषे** पूर्णे परमात्मनि **अन्तः** मध्ये **अर्पितानि** स्थापितानि, **एतदत्र त्वा** त्वां **प्रतिमन्वानः** प्रत्यक्षेण विजानन् **अहं समाधाताऽस्मि ।**

यदि मायया प्रज्ञया **युक्तस्त्वं भवसि तर्हि मत्** मम सकाशात् **उत्तरः** उत्कृष्टं तारयति=समादधाति सः **समाधाता कश्चिन्नास्तीति विजानीहि** ।।२३।५२।।

भाषार्थ—हे जिज्ञासु ! (पञ्चसु) पाँच भूतों वा तन्मात्राओं के (अन्तः) मध्य में (पुरुषः) पूर्ण परमात्मा (आ+विवेश) अपनी व्याप्ति से प्रविष्ट हो रहा है; (तानि) वे पाँच भूत वा तन्मात्राएँ (पुरुषे) पूर्ण परमात्मा के (अन्तः) मध्य में (अर्पितानि) स्थापित हैं; (एतत्) यह (अत्र) इस विषय में (त्वा) तुझे (प्रतिमन्वानः) समझाने वाला मैं समाधाता=शंका का समाधान करने वाला हूँ ।

यदि (मायया) प्रज्ञा=बुद्धि से युक्त तू है, तो (मत्) मुझसे (उत्तरः) उत्कृष्ट समाधान करने वाला कोई नहीं है; ऐसा जान ।। २३ । ५२ ।।

भावार्थः — परमेश्वर उपदिशति — हे मनुष्याः ! मदुत्तरः कोऽपि नास्ति। अहमेव सर्वेषामाधारः सर्वमभिव्याप्य धरामि, मयि व्याप्ते सर्वाणि वस्तूनि स्वस्वनियमे स्थितानि सन्ति। हे सर्वोत्तमा योगिनो विद्वांसः ! भवन्तो ममेदं विज्ञानं विज्ञापयत ।। २३ । ५२ ।।

भावार्थ—परमेश्वर उपदेश करता है—हे मनुष्यो ! मुझ से बढ़कर कोई नहीं है । मैं ही सबका आधार हूँ और सबको व्याप्त करके धारण करता हूँ। मेरे व्याप्त होने से सब वस्तुएँ अपने-अपने नियम में स्थित हैं। हे सर्वोत्तम योगी विद्वानो ! आप मेरे इस विज्ञान को सब मनुष्यों को बतलाओ ।। २३ । ५२ ।।

भा० पदार्थः—अर्पितानि=सर्वाणि वस्तूनि स्वस्वनियमे स्थितानि ।।

भाष्यसार—**पूर्व मन्त्र में उक्त प्रश्न का उत्तर**—परमेश्वर उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! पाँच भूतों एवं तन्मात्राओं में मैं अपनी व्याप्ति से प्रविष्ट हूँ। पाँच भूत एवं तन्मात्राएँ मुझ में स्थापित हैं। तात्पर्य यह है कि मैं सबका आधार हूँ। मेरी व्याप्ति से ही सब वस्तुएँ अपने-अपने नियम में स्थित हैं। इस लोक में तुम्हें प्रत्यक्ष समझाने वाला एवं शंका का समाधान करने वाला मैं हूँ। यदि जिज्ञासु बुद्धि से युक्त होकर मुझ से समाधान चाहता है तो मुझ से उत्तम समाधान करने वाला कोई नहीं।

सब योगी विद्वान् लोग परमेश्वर के इस विज्ञान का सब मनुष्यों को उपदेश करें ।।२३।५२।। ●

प्रजापतिः । **प्रष्टा=जिज्ञासुः** । अनुष्टुप् । गान्धारः ।।

पुनः प्रश्नानाह ।।

विद्वानों से इस प्रकार प्रश्न करें, यह उपदेश किया है ।।

का स्विदासीत्पूर्वचित्तिः किᳯंस्विदासीद् बृहद्वयः ।
का स्विदासीत्पिलिप्पिला का स्विदासीत्पिशङ्गिला ।। ५३ ।।

पदार्थः—(का) (स्वित्) (आसीत्) (पूर्वचित्तिः) पूर्वस्मिन्ननादौ सञ्चयनाख्या (किम्)

(**स्वित्**) (**आसीत्**) (**बृहत्**) महत् (**वयः**) प्रजननात्मकम् (**का**) (**स्वित्**) (**आसीत्**) (**पिलिप्पिला**) आर्द्रीभूता (**का**) (**स्वित्**) (**आसीत्**) (**पिशङ्गिला**) अवयवान्तःकर्त्री ॥ ५३ ॥

अन्वयः—हे विद्वन्नत्र जगति का स्वित्पूर्वचित्तिरासीत् किं स्विद् बृहद्वय आसीत्का स्वित् पिलिप्पिला आसीत्का स्वित् पिशङ्गिला आसीदिति भवन्तं पृच्छामि ॥ ५३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **विद्वन्** ! **अत्र जगति कास्वित्पूर्वचित्तिः** पूर्वस्मिन्ननादौ सञ्चयनाख्या **आसीत्** ? **किंस्विद् बृहत्** महद् **वयः** प्रजननात्मकम् **आसीत्** ? **कास्वित् पिलिप्पिला** आर्द्रीभूता **आसीत्** ? **का स्वित् पिशङ्गिला** अवयवान्तःकर्त्री **आसीदिति भवन्तं पृच्छामि** ॥ २३ । ५३ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् ! इस जगत् में (का स्वित्) कौन (पूर्वचित्तिः) अनादि समय में संचित होने वाली (आसीत्) है ? (किंस्वित्) कौन (बृहत्) महान् (वयः) प्रजनन रूप वस्तु (आसीत्) है ? (का स्वित्) कौन वस्तु (पिलिप्पिला) आर्द्र=पिलपिली (आसीत्) है ? (का स्वित्) कौन (पिशङ्गिला) अवयवों को अन्दर करने वाली वस्तु (आसीत्) है ? यह आपसे पूछता हूँ ॥ २३ । ५३ ॥

भावार्थः—अत्र चत्वारः प्रश्नाः, तेषां समाधानानि परस्मिन् मन्त्रे द्रष्टव्यानि ॥ २३ । ५३ ॥

भावार्थ—यहाँ चार प्रश्न हैं, उनके समाधान=उत्तर अगले मन्त्र में देखें ॥ २३ । ५३ ॥

भाष्यसार—**विद्वानों से इस प्रकार प्रश्न करें**—हे विद्वान् इस जगत् में प्रथम=अनादि संचित वस्तु क्या है ? महान् प्रजननात्मक वस्तु क्या है ? आर्द्र अर्थात् पिलपिली वस्तु क्या है ? अवयवों को अन्दर करने वाली अर्थात् निगलने वाली वस्तु क्या है ? इस मन्त्र में ये चार प्रश्न हैं । इसका समाधान अगले मन्त्र में है ॥ २३ । ५३ ॥ ●

प्रजापतिः । **समाधाता=विद्वान्** । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पूर्वप्रश्नानामुत्तराण्याह ॥

पूर्व मन्त्र के प्रश्नों के उत्तरों का उपदेश किया जाता है ॥

द्यौरा॑सीत्पूर्वचि॑त्तिरश्व॑ऽ आसीद् बृहद्वयः॑ ।
अवि॑रासीत्पिलिप्पि॒ला रात्रि॑रासीत्पिशङ्गि॒ला ॥ ५४ ॥

पदार्थः—(**द्यौः**) विद्युत् (**आसीत्**) (**पूर्वचित्तिः**) प्रथमं चयनम् (**अश्वः**) महत्तत्त्वम् (**आसीत्**) (**बृहत्**) महत् (**वयः**) प्रजननात्मकम् (**अविः**) रक्षिका प्रकृतिः (**आसीत्**) (**पिलिप्पिला**) (**रात्रिः**) रात्रिवद्वर्त्तमानः प्रलयः (**आसीत्**) (**पिशङ्गिला**) सर्वेषामवयवानां निगलिका ॥ ५४ ॥

अन्वयः—हे जिज्ञासो ! द्यौः पूर्वचित्तिरासीदश्वो बृहद्वय आसीदविः पिलिप्पिलाऽऽसीद्रात्रिः पिशङ्गिलाऽऽसीदिति त्वं विजानीहि ॥ ५४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **जिज्ञासो** ! **द्यौः** विद्युत् **पूर्वचित्तिः** प्रथमं चयनम् **आसीत्, अश्वः** महत्तत्त्वं **बृहद्** महद् **वयः** प्रजननात्मकम् **आसीद्, अविः** रक्षिका प्रकृतिः **पिलिप्पिलाऽऽसीद्, रात्रिः** रात्रिवद्वर्त्तमानः प्रलयः **पिशङ्गिला** सर्वेषामवयवानां

भाषार्थ—हे जिज्ञासु ! (द्यौः) विद्युत् (पूर्वचित्तिः) प्रथम संचित वस्तु है; (अश्वः) महत् तत्त्व (बृहत्) महान् (वयः) प्रजनन आत्मक (आसीत्) है; (अविः) रक्षक प्रकृति (पिलिप्पिला) आर्द्र भूत वस्तु (आसीत्) है, (रात्रिः) रात्रि के

निगलिका **आसीदिति त्वं विजानीहि** ॥ २३ । ५४ ॥

समान प्रलय (पिशङ्गिला) सब अवयवों को निगलने वाली (आसीत्) है; ऐसा तू जान ॥२३।५४॥

भावार्थः—हे मनुष्याः ! याऽतीवसूक्ष्मा विद्युत् सा प्रथमा परिणतिः, महदाख्यं द्वितीया परिणतिः; प्रकृतिर्मूलकारणपरिणतिः, प्रलयः सर्वस्थूलविनाशकोऽस्तीति विजानीत ॥ २३ । ५४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो अति सूक्ष्म विद्युत् है वह प्रथम परिणाम है। महत् नामक द्वितीय परिणाम है। प्रकृति मूल कारण रूप परिणाम है; और प्रलय सब स्थूल पदार्थों का विनाशक है; ऐसा समझो ॥ २३ । ५४ ॥

भा० पदार्थः—द्यौः=अतीवसूक्ष्मा विद्युत्। पूर्वचित्तिः=प्रथमा परिणतिः। बृहद्=महदाख्यम्। पिलिप्पिला=मूलकारणपरिणतिः। पिशङ्गिला=सर्वस्थूलविनाशकः ॥

भाष्यसार—**पूर्व प्रश्नों का उत्तर**—विद्वान् उत्तर देता है कि हे जिज्ञासु ! विद्युत् प्रथम संचित वस्तु है; अर्थात् अति सूक्ष्म विद्युत् प्रकृति का पहला परिणाम है। महत्-तत्त्व महान् प्रजनन आत्मक वस्तु है जो प्रकृति का दूसरा परिणाम है। रक्षक प्रकृति आर्द्रभूत=पिलपिली वस्तु है जो मूल कारण रूप परिणाम है। रात्रि के समान प्रलय सब के अवयवों को निगलने वाला है अर्थात् सब स्थूल पदार्थों का विनाशक है ॥ २३ । ५४ ॥

प्रजापतिः । **प्रष्टा=जिज्ञासुः** । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनः प्रश्नानाह ॥

विद्वानों से इस प्रकार प्रश्न करें, यह उपदेश किया है ॥

का ऽ ईमरे पिशङ्गिला काऽईं कुरु पिशङ्गिला ।
कऽईमास्कन्दमर्षति कऽईं पन्थां वि सर्पति ॥ ५५ ॥

पदार्थः—(का) (**ईम्**) समुच्चये (**अरे**) नीचसंबोधने (**पिशङ्गिला**) रूपावरणकारिणी (**का**) (**ईम्**) (**कुरुपिशङ्गिला**) (**कः**) (**ईम्**) (**आस्कन्दम्**) (**अर्षति**) प्राप्नोति (**कः**) (**ईम्**) उदकस्य (**पन्थाम्**) मार्गम् (**वि**) **सर्पति** ॥ ५५ ॥

अन्वयः—अरे स्त्रि ! का ईं पिशङ्गिला का ईं कुरुपिशङ्गिला क ईमास्कन्दमर्षति क ईं पन्थां विसर्पतीति समाधेहि ॥ ५५ ॥

सपदार्थान्वयः—**अरे स्त्रि ! का ईं पिशङ्गिला** रूपावरणकारिणी ? **का ईं कुरुपिशङ्गिला** ? **क ईम् आस्कन्दमर्षति** प्राप्नोति ? **क ईम्** उदकस्य **पन्थां** मार्गं **विसर्पतीति समाधेहि** ॥ २३ । ५५ ॥

भाषार्थ—(अरे) अरे स्त्रि ! (ईम्) (का) कौन (पिशङ्गिला) रूप को आवृत करने वाली है ? (ईम्) और (का) कौन (कुरुपिशङ्गिला) कृषि आदि के अवयवों को नष्ट करने वाली है ? (ईम्) और (कः) कौन (आस्कन्दम्) शीघ्र (अर्षति) पहुँचता है ? कः कौन (ईम्) जल के (पन्थाम्) मार्ग में (विसर्पति) गति करता है ? इन प्रश्नों का समाधान कर ॥ २३ । ५५ ॥

भावार्थः—केन रूपमाव्रियते ? केन कृष्यादि नश्यते ? कः शीघ्रं धावति ? कश्च मार्गे प्रसर-

भावार्थ—कौन रूप को आवृत करता है ? कौन कृषि आदि को नष्ट करता है ? कौन शीघ्र

तीति चत्वारः प्रश्नाः, तेषामुत्तराणि परस्मिन् मन्त्रे वेदितव्यानि ॥ २३ । ५५ ॥

दौड़ता है ? कौन मार्ग में चलता है ? ये चार प्रश्न हैं। इनके उत्तर अगले मन्त्र में समझें ॥२३।५५॥

भा० पदार्थः—कुरुपिशङ्गिला=कृष्यादिनाशिनी । आस्कन्दम्=शीघ्रम् । अर्षति=धावति। पन्याम्=मार्गे । विसर्पति=प्रसरति ॥

भाष्यसार—**विद्वानों से इस प्रकार प्रश्न करें**—अरे विदुषी स्त्रि रूप को आवृत करने वाली क्या वस्तु है ? कृषि आदि का विनाश करने वाली क्या वस्तु है ? कौन शीघ्र दौड़ता है ? जल के मार्ग में कौन गति करता है ? इस मन्त्र में चार प्रश्न हैं; उनका समाधान अगले मन्त्र में है ॥ २३ । ५५ ॥ ●

प्रजापतिः । **समाधाता**=**विद्वान्** । स्वराडुष्णिक् । ऋषभः ॥

पूर्वप्रश्नानामुत्तराण्याह ॥

पूर्व मन्त्र में कहे प्रश्नों के उत्तरों का उपदेश किया है ॥

अजारे पिशङ्गिला श्वावित्कुरुपिशङ्गिला ।
शश ऽ आस्कन्दमर्षत्यहिः पन्थां वि सर्पति ॥ ५६ ॥

पदार्थः—(**अजा**) जन्मरहिता प्रकृतिः (**अरे**) सम्बोधने (**पिशङ्गिला**) (**श्वावित्**) पशुविशेष इव (**कुरुपिशङ्गिला**) कुरोः=कृतस्य कृष्यादेः पिशान्यङ्गानि गिलति सा (**शशः**) पशुविशेष इव वायुः (**आस्कन्दम्**) समन्तादुत्प्लुत्य गमनम् (**अर्षति**) प्राप्नोति (**अहिः**) मेघः (**पन्थाम्**) पन्थानम् (**वि, सर्पति**) विविधतया गच्छति ॥ ५६ ॥

अन्वयः—अरे मनुष्याः ! अजा पिशङ्गिला श्वावित्कुरुपिशङ्गिलाऽस्ति शश आस्कन्दमर्षत्यहिः पन्थां विसर्पतीति विजानीत ॥ ५६ ॥

सपदार्थान्वयः—**अरे मनुष्याः !** **अजा** जन्मरहिता प्रकृतिः **पिशङ्गिला, श्वावित्** पशुविशेष इव **कुरुपिशङ्गिला** कुरोः=कृतस्य कृष्यादेः पिशान्यङ्गानि गिलति सा **अस्ति शशः** पशुविशेष इव वायुः **आस्कन्दं** समन्तादुत्प्लुत्य गमनम् **अर्षति** प्राप्नोति । **अहिः** मेघः **पन्थां** पन्थानं **वि+सर्पति** विविधतया गच्छति; **इति विजानीत** ॥ २३ । ५६ ॥

भाषार्थ—(अरे) अरे मनुष्यो ! (अजा) जन्मरहित प्रकृति (पिशङ्गिला) रूप को आवृत करने वाली है एवं (श्वावित्) सेंह [पशु विशेष] के समान कृषि आदि के अङ्गों को नष्ट करने वाली है। (शशः) खरगोश के समान वायु (आस्कन्दम्) सब ओर उछल कर (अर्षति) पहुँचता है। (अहिः) मेघ=बादल (पन्थाम्) मार्ग में (वि+सर्पति) विविध गति करता है; ऐसा जानो ॥ २३ । ५६ ॥

भावार्थः—हे मनुष्याः ! याऽजा प्रकृतिः सर्वकार्यप्रलयाधिकारिणी कार्यकारणाख्या स्वकार्यं स्वस्मिन् प्रलापयति; या सेधा कृष्यादिकं विनाशयति; यो वायुः शश इव गच्छन् सर्वं शोषयति; यो मेघः सर्प इव गच्छति, तान् विजानीत ॥ ५६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो अज=अजन्मा प्रकृति है वह सब कार्य जगत् का प्रलय करने वाली, कार्य कारण रूप, अपने कार्य को अपने में लीन कर लेती है; जो सेंह कृषि आदि का विनाश करती है, जो वायु शश=खरगोश के समान चलता हुआ सब को सुखाता है; जो बादल सर्प के समान गति करता है, उन्हें जानो ॥ २३ । ५६ ॥

भा० पदार्थः—पिशङ्गिला=सर्वकार्यप्रलयाधिकारिणी कार्यकारणाख्या स्वकार्यं स्वस्मिन् प्रलापयति सा [प्रकृतिः] । श्वावित्=सेधा [सेंह इति भाषा] । कुरुपिशङ्गिला=या कृष्यादिकं विनाशयति सा [सेधा] । शशः=वायुः । विसर्पति=गच्छति ॥

भाष्यसार—पूर्व प्रश्नों का उत्तर—विद्वान् उत्तर देता है कि हे मनुष्यो ! जो अज=अजन्मा प्रकृति है वह सब कार्य जगत् का प्रलय करने वाली, कार्य-कारण आत्मक, और अपने कार्य को अपने में लीन करने वाली है । जो सेधा=सेंह (पशु-विशेष) है वह कृषि आदि का विनाश करने वाली है । जो वायु है वह शशक=खरगोश के समान सब ओर उछल कर पहुँचता है एवं सब को सुखाता है । जो मेघ=बादल है वह जल-मार्ग में विविध गति करता है एवं सर्प के समान चलता है । तुम लोग इन प्रकृति आदि पदार्थों को जानो ॥ २३ । ५६ ॥

प्रजापतिः । **प्रष्टा=जिज्ञासुः** । निचृत्त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनः प्रश्नानाह ॥

विद्वानों से इस प्रकार प्रश्न करें, यह उपदेश किया है ॥

कत्यस्य विष्ठाः कत्यक्षराणि कति होमासः कतिधा समिद्धः ।
यज्ञस्य त्वा विदथा पृच्छमत्र कति होतारऽऋतुशो यजन्ति ॥ ५७ ॥

पदार्थः—(**कति**) (**अस्य**) (**विष्ठाः**) विशेषेण तिष्ठति यज्ञो यासु ताः (**कति**) (**अक्षराणि**) उदकानि । **अक्षरमित्युदकना० ॥ निघं० १ । १२ ॥** (**कति**) (**होमासः**) दानाऽऽदानानि (**कतिधा**) कतिप्रकारैः (**समिद्धः**) ज्ञानादिप्रकाशकाः समिद्रूपाः । अत्र छान्दसो वर्णागमस्तेन धस्य द्वित्वं सम्पन्नम् (**यज्ञस्य**) संयोगादुत्पन्नस्य जगतः (**त्वा**) त्वाम् (**विदथा**) विज्ञानानि (**पृच्छम्**) पृच्छामि (**अत्र**) (**कति**) (**होतारः**) (**ऋतुशः**) ऋतुमृतुं प्रति (**यजन्ति**) संगच्छन्ते ॥ ५७ ॥

प्रमाणार्थ—(**अक्षराणि**) अक्षरम् यह उदक नामों में पढ़ा है । निघं० १ । १२ ॥

अन्वयः—हे विद्वन्नस्य यज्ञस्य कति विष्ठाः कत्यक्षराणि कति होमासः कतिधा समिद्धः कति होतार ऋतुशो यजन्तीत्यत्र विषये विदथा त्वाऽहं पृच्छम् ॥ ५७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **विद्वन्** ! **अस्य यज्ञस्य** संयोगादुत्पन्नस्य जगतः **कति विष्ठाः** विशेषेण तिष्ठति यज्ञो यासु ताः ? **कत्यक्षराणि** उदकानि ? **कति होमासः** दानाऽऽदानानि? **कतिधा** कतिप्रकारैः **समिद्धः** ज्ञानादिप्रकाशकाः समिद्रूपाः ? **कति होतारः ऋतुशः** ऋतुमृतुं प्रति **यजन्ति** संगच्छन्ते ? **इत्यत्र विषये विदथा** विज्ञानानि **त्वा** त्वाम् **अहं पृच्छं** पृच्छामि ॥ २३ । ५७ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् ! इस (यज्ञस्य) संयोग से उत्पन्न जगत् के (कति) कितने (विष्ठाः) विशिष्ट स्थिति के आधार हैं ? (कति) कितने (अक्षराणि) जल आदि निर्माण के साधन हैं ? (कति) कितने (होमासः) देन-लेन अर्थात् व्यापार हैं ? (कतिधा) कितने प्रकार के (समिद्धः) समिधा के तुल्य ज्ञान आदि के प्रकाशक हैं ? (कति) कितने (होतारः) व्यवहार करने वाले (ऋतुशः) प्रत्येक ऋतु में (यजन्ति) संग करते हैं ? यह (अत्र) इस विषय में (विदथा) विज्ञान को (त्वा) तुझसे मैं (पृच्छम्) पूछता हूँ ॥ २३ । ५७ ॥

भावार्थः—इदं जगत् क्व तिष्ठति ? कत्यस्य निर्माणसाधनानि ? कति व्यापारयोग्यानि ? कतिविधं ज्ञानादिप्रकाशकम् ? कति व्यवहर्त्तारः ? इति पञ्च प्रश्नाः; तेषामुत्तराण्युत्तरत्र वेद्यानि ॥२३।५७॥

भावार्थ—यह जगत् किस में स्थित है ? कितने इसके निर्माण के साधन हैं ? कितने व्यापार के योग्य वस्तु हैं ? कितने ज्ञान आदि के प्रकाशक हैं ? और कितने व्यवहार करने वाले हैं ? ये पाँच प्रश्न हैं इनके उत्तर अगले मन्त्र में समझें ॥२३।५७॥

भा० पदार्थः—अक्षराणि=निर्माणसाधनानि । होमासः=व्यापारयोग्यानि [साधनानि] । समिद्धः=ज्ञानादिप्रकाशकम् । होतारः=व्यवहर्त्तारः । कतिधा=कतिविधम् । ऋतुशः=ऋतुमृतुं प्रति ।

भाष्यसार—**विद्वानों से इस प्रकार प्रश्न करें**—हे विद्वान् ! यह यज्ञ=जगत् किसमें स्थित है ? इसके जल आदि कितने निर्माण के साधन हैं ? देन-लेन=व्यापार के योग्य कितने पदार्थ हैं ? ज्ञान आदि के प्रकाशक कितने प्रकार के हैं ? प्रत्येक ऋतु में यज्ञ=संग करने वाले होता कितने हैं अर्थात् ऋतु अनुसार व्यवहार करने वाले कितने हैं ? ये पाँच प्रश्न हैं। इन प्रश्नों का उत्तर अगले मन्त्र में है ॥ २३ । ५७ ॥ ●

प्रजापतिः । **समिधा**=ज्ञानप्रकाशः । निचृत्त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पूर्वप्रश्नानामुत्तराण्याह ॥

पूर्व मन्त्र में उक्त प्रश्नों के उत्तरों का उपदेश किया है ॥

षडस्य विष्ठाः शतमक्षराण्यशीतिर्होमाः समिधो ह तिस्रः ।
यज्ञस्य ते विदथा प्र ब्रवीमि सप्त होतारऽऋतुशो यजन्ति ॥ ५८ ॥

पदार्थः—(**षट्**) ऋतवः (**अस्य**) (**विष्ठाः**) (**शतम्**) (**अक्षराणि**) उदकानि (**अशीतिः**) उपलक्षणमेतदसंख्यस्य (**होमाः**) (**समिधः**) समिध्यते=प्रदीप्यते ज्ञानं याभिस्ताः (**ह**) किल (**तिस्रः**) (**यज्ञस्य**) (**ते**) तुभ्यम् (**विदथा**) विज्ञानानि (**प्र**) प्रकर्षेण (**ब्रवीमि**) (**सप्त**) पञ्च प्राणा मन आत्मा च (**होतारः**) दातार आदातारः (**ऋतुशः**) (**यजन्ति**) ॥ ५८ ॥

अन्वयः—हे जिज्ञासवोऽस्य यज्ञस्य षट् विष्ठाः शतमक्षराण्यशीतिर्होमास्तिस्रो ह समिधः सप्त होतार ऋतुशो यजन्ति तस्य विदथा तेऽहं प्रब्रवीमि ॥ ५८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **जिज्ञासवः** ! **अस्य यज्ञस्य षट्** ऋतवः **विष्ठाः**; **शतमक्षराणि** उदकानि; **अशीतिः** उपलक्षणमेतदसंख्यस्य **होमाः**, **तिस्रो ह** किल **समिधः** समिध्यते=प्रदीप्यते ज्ञानं याभिस्ताः, **सप्त** पञ्च प्राणा मन आत्मा च **होतारः** दातार आदातारः **ऋतुशः यजन्ति, तस्य विदथा** विज्ञानानि **ते** तुभ्यम् **अहं प्र+ब्रवीमि** ॥ २३ । ५८ ॥

भावार्थ—हे जिज्ञासु लोगो ! (अस्य) इस (यज्ञस्य) जगत् की (षट्) छः ऋतुएँ (विष्ठाः) स्थिति का आधार हैं; (शतम्) असंख्य (अक्षराणि) जल आदि वस्तुएँ हैं; (अशीतिः) अस्सी अर्थात् उपलक्षण से असंख्य (होमाः) देन-लेन के व्यवहार हैं; (तिस्रः) तीन विद्याएँ (ह) निश्चय से (समिधः) ज्ञान आदि की प्रकाशक हैं; (सप्त) पाँच प्राण, मन और आत्मा ये सात (होतारः) देने-लेने वाले होता लोग (ऋतुशः) प्रत्येक ऋतु में (यजन्ते) संग करते हैं; उस यज्ञ=जगत् के (विदथा) विज्ञानों का (ते) तेरे लिए मैं (प्र+ब्रवीमि) उपदेश करता हूँ ॥ २३ । ५८ ॥

भावार्थः—हे ज्ञानमीप्सवो जनाः! यस्मिन् यज्ञे षड् ऋतवः स्थितिसाधकाः; असंख्यानि जलादीनि वस्तूनि व्यवहारसाधकानि; बहवो व्यवहारयोग्याः पदार्थाः, सर्वे प्राण्यप्राणिनो होत्रादयः संगच्छन्ते, यत्र च ज्ञानादिप्रकाशिका त्रिविधा विद्याः सन्ति; तं यज्ञं यूयं विजानीत ॥ २३ । ५८ ॥

भावार्थ—हे जिज्ञासु लोगो! जिस यज्ञ में छः ऋतुएँ स्थिति की साधक हैं; असंख्य जल आदि वस्तुएँ व्यवहार की साधक हैं; बहुत से व्यवहार के योग्य पदार्थ हैं; सब प्राणी और अप्राणी एवं होता आदि लोग संग करते हैं; और जहाँ ज्ञान आदि की प्रकाशक तीन प्रकार की विद्याएँ हैं; उस यज्ञ को तुम जानो ॥ २३ । ५८ ॥

भा० पदार्थः—विष्ठाः=स्थितिसाधकाः । अक्षराणि=जलादीनि वस्तूनि व्यवहारसाधकानि । अशीतिः=बहवः । होमाः=व्यवहारयोग्याः पदार्थाः । होतारः=प्राण्यप्राणिनो होत्रादयः । यजन्ति=संगच्छन्ते । तिस्रः=त्रिविधाः । समिधः=ज्ञानादिप्रकाशिका विद्याः ॥

भाष्यसार—**पूर्व प्रश्नों का उत्तर**—विद्वान् उत्तर देता है कि हे जिज्ञासु! इस यज्ञ=जगत् में छः ऋतु स्थिति की साधक हैं। शत=असंख्य जल आदि वस्तुएँ व्यवहार की साधक हैं। अस्सी=बहुत से पदार्थ व्यवहार के योग्य हैं। सब प्राणी अप्राणी एवं होता आदि लोग यज्ञ=संग करते हैं। ज्ञान आदि की प्रकाशक विविध विद्याएँ हैं। जिज्ञासु लोग इस यज्ञ रूप जगत् को जानें ॥ २३ । ५८ ॥

प्रजापतिः । **प्रष्टा=जिज्ञासुः** । निचृत्त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनः प्रश्नानाह ॥

विद्वानों से इस प्रकार प्रश्न करें, यह उपदेश किया है ॥

को ऽ अस्य वेद भुवनस्य नाभिं को द्यावापृथिवी ऽ अन्तरिक्षम् ।
कः सूर्य्यस्य वेद बृहतो जनित्रं को वेद चन्द्रमसं यतोजाः ॥ ५९ ॥

पदार्थः—(कः) (**अस्य**) (**वेद**) जानाति (**भुवनस्य**) सर्वाधिकरणस्य संसारस्य (**नाभिम्**) मध्यमाङ्गं बन्धनस्थानम् (**कः**) (**द्यावापृथिवी**) सूर्य्यभूमी (**अन्तरिक्षम्**) आकाशम् (**कः**) (**सूर्यस्य**) सवितृमण्डलस्य (**वेद**) जानाति (**बृहतः**) महतः (**जनित्रम्**) कारणं जनकं वा (**कः**) (**वेद**) (**चन्द्रमसम्**) चन्द्रलोकम् (**यतोजाः**) यस्माज्जातः ॥ ५९ ॥

अन्वयः—हे विद्वन्नस्य भुवनस्य नाभिं को वेद को द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं वेद को बृहतः सूर्य्यस्य जनित्रं वेद यो यतोजास्तं चन्द्रमसं च को वेदेति समाधेहि ॥ ५९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **विद्वन्! अस्य भुवनस्य** सर्वाधिकरणस्य संसारस्य **नाभिं** मध्यमाङ्गं बन्धनस्थानं **को वेद** जानाति? **को द्यावापृथिवी** सूर्य्यभूमी **अन्तरिक्षम्** आकाशं **वेद** जानाति? **को बृहतः** महतः **सूर्यस्य** सवितृमण्डलस्य **जनित्रं** कारणं जनकं वा **वेद** जानाति? **यतोजाः** यस्माज्जातः **तं चन्द्रमसं** चन्द्रलोकं **च को वेद** जानाति? **इति समाधेहि** ॥ २३ । ५९ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान्! (अस्य) इस (भुवनस्य) सबके आधार संसार की (नाभिम्) नाभि अर्थात् मध्यम अङ्ग एवं बन्धन-स्थान को (कः) कौन (वेद) जानता है? (कः) कौन (द्यावा-पृथिवी) सूर्य, भूमि और (अन्तरिक्षम्) आकाश को (वेद) जानता है? (कः) कौन (बृहतः) महान् (सूर्यस्य) सूर्य-मण्डल के (जनित्रम्) कारण वा जनक को (वेद) जानता है? और (यतोजाः) जिससे

उत्पन्न होने वाले उस (चन्द्रमसम्) चन्द्र लोक को (कः) कौन (वेद) जानता है ? इसका समाधान कर ॥ २३ । ५९ ॥

भावार्थः—अस्य जगतो धारकं बन्धनं, भूमिसूर्यान्तरिक्षाणि, महतः सूर्यस्य कारणम्, यस्मादुत्पन्नश्चन्द्रस्तं च को वेद? इति चतुर्णां प्रश्नानामुत्तराणि परस्मिन् मन्त्रे सन्तीति वेदितव्यम् ॥ २३ । ५९ ॥

भावार्थ—इस जगत् का धारण करने वाले बन्धन, भूमि, सूर्य, अन्तरिक्ष, महान् सूर्य के कारण और उससे उत्पन्न चन्द्र को कौन जानता है ? इन चार प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में हैं, ऐसा समझें ॥ २३ । ५९ ॥

भा० पदार्थः—भुवनस्य=जगतः । नाभिम्=धारकं बन्धनम् ।

भाष्यसार—**विद्वानों से इस प्रकार प्रश्न करें**—हे विद्वान् ! इस सबके आधार संसार की नाभि=मध्यम अंग एवं बन्धन स्थान कौन है। सूर्य, पृथिवी और आकाश को कौन जानता है ? महान् सूर्य-मण्डल के कारण वा जनक को कौन जानता है ? सूर्य से उत्पन्न चन्द्र-लोक को कौन जानता है ? ये चार प्रश्न हैं । इनका उत्तर अगले मन्त्र में है ॥ २३ । ५९ ॥

प्रजापतिः । **समाधाता**=**विद्वान्** । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पूर्वप्रश्नानामुत्तराण्याह ॥

पूर्व मन्त्र में कहे प्रश्नों के उत्तरों का उपदेश किया है ॥

वेदाहमस्य भुवनस्य नाभिं वेद द्यावापृथिवी ऽ अन्तरिक्षम् ।
वेद सूर्यस्य बृहतो जनित्रमथो वेद चन्द्रमसं यतोजाः ॥ ६० ॥

पदार्थः—(**वेद**) (**अहम्**) (**अस्य**) (**भुवनस्य**) (**नाभिम्**) बन्धनम् । (**वेद**) (**द्यावापृथिवी**) प्रकाशाप्रकाशौ लोकसमूहौ (**अन्तरिक्षम्**) आकाशम् (**वेद**) (**सूर्यस्य**) (**बृहतः**) महत्परिमाणयुक्तस्य (**जनित्रम्**) (**अथो**) (**वेद**) (**चन्द्रमसम्**) (**यतोजाः**) ॥ ६० ॥

अन्वयः—हे जिज्ञासोऽस्य भुवनस्य नाभिमहं वेद द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं वेद बृहतः सूर्य्यस्य जनित्रं वेद । अथो यतोजास्तं चन्द्रमसञ्चाहं वेद ॥ ६० ॥

सपदार्थान्वयः—**हे जिज्ञासो ! अस्य भुवनस्य नाभिं** बन्धनम् **अहं वेद; द्यावापृथिवी** प्रकाशाप्रकाशौ लोकसमूहौ **अन्तरिक्षम्** आकाशं **वेद; बृहतः** महत्परिमाणयुक्तस्य **सूर्यस्य जनित्रं वेद; अथो यतोजास्तं चन्द्रमसं चाहं वेद** ॥ २३ । ६० ॥

भाषार्थ—हे जिज्ञासु ! (अस्य) इस (भुवनस्य) संसार की (नाभिम्) नाभि अर्थात् बन्धन को (अहम्) मैं (वेद) जानता हूँ; (द्यावापृथिवी) प्रकाश और अप्रकाश रूप लोकों तथा (अन्तरिक्षम्) आकाश को और (बृहतः) महत्परिमाण वाले (सूर्यस्य) सूर्य के (जनित्रम्) कारण वा जनक को (वेद) जानता हूँ; (अथो) और (यतोजाः) जिस सूर्य से उत्पन्न होने वाले उस (चन्द्रमसम्) चन्द्र को (अहम्) मैं (वेद) जानता हूँ ॥ २३ । ६०॥

भावार्थः—विद्वान् ब्रूयात्—हे जिज्ञासो ! अस्य जगतो बन्धनस्थितिकारणं, लोकत्रयस्य कारणं, सूर्याचन्द्रमसोश्चोपादाननिमित्ते—एतत्सर्वमहं जानामि ।

ब्रह्मैवास्य सर्वस्य निमित्तं कारणं प्रकृतिश्चोपादानमिति ॥ २३ । ६० ॥

भावार्थ—विद्वान् उत्तर देवे—हे जिज्ञासु ! इस जगत् के बन्धन एवं स्थिति के कारण, तीनों लोकों के कारण, सूर्य और चन्द्रमा के उपादान कारण इन सब को मैं जानता हूँ ।

ब्रह्म ही इस सब का निमित्त कारण है और प्रकृति उपादान कारण है, ऐसा समझें ॥ २३ । ६० ॥

भाष्यसार—**पूर्व प्रश्नों के उत्तर**—विद्वान् उत्तर देता है कि हे जिज्ञासु ! इस जगत् की नाभि=बन्धन एवं स्थिति कारण को मैं जानता हूँ । द्युलोक, पृथिवी लोक, आकाश लोक इन तीनों लोकों के कारण को मैं जानता हूँ । सूर्य और चन्द्रमा के उपादान कारण एवं निमित्त कारण को भी मैं जानता हूँ । इन सब का ब्रह्म ही निमित्तकारण और प्रकृति उपादान कारण है ॥ २३ । ६० ॥

प्रजापतिः । **प्रष्टा=जिज्ञासुः** । निचृत्त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनः प्रश्नानाह ॥

विद्वानों से इस प्रकार प्रश्न करें, यह उपदेश किया है ॥

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः ।
पृच्छामि त्वा वृष्णो ऽ अश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥ ६१ ॥

पदार्थः—(**पृच्छामि**) (**त्वा**) त्वाम् (**परम्**) परभागस्थम् (**अन्तम्**) सीमानम् (**पृथिव्याः**) (**पृच्छामि**) (**यत्र**) (**भुवनस्य**) (**नाभिः**) मध्याकर्षणेन बन्धकम् (**पृच्छामि**) (**त्वा**) त्वाम् (**वृष्णः**) सेचकस्य (**अश्वस्य**) बलवतः (**रेतः**) वीर्य्यम् (**पृच्छामि**) (**वाचः**) वाण्याः (**परमम्**) प्रकृष्टम् (**व्योम**) आकाशरूपं स्थानम् ॥ ६१ ॥

अन्वयः—हे विद्वन्नहं त्वा त्वां पृथिव्या अन्तं परं पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिरस्ति तं पृच्छामि यद् वृष्णोऽश्वस्य रेतोऽस्ति तत्पृच्छामि वाचः परमं व्योम त्वा पृच्छामीति वदोत्तराणि ॥ ६१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! **अहं त्वा**=त्वां **पृथिव्या अन्तं** सीमानं **परं** परभागस्थं **पृच्छामि । यत्र भुवनस्य नाभिः** मध्याकर्षणेन बन्धकम् **अस्ति तं पृच्छामि । यद् वृष्णः** सेचकस्य **अश्वस्य** बलवतः **रेतः** वीर्य्यम् **अस्ति तत्पृच्छामि । वाचः** वाण्याः **परमं** प्रकृष्टं **व्योम** आकाशरूपं स्थानं **त्वा** त्वां **पृच्छामीति वदोत्तराणि** ॥ २३ । ६१ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् ! मैं (त्वा) तुझसे (पृथिव्याः) पृथिवी की (परम्) परभागीय (अन्तम्) सीमा (पृच्छामि) पूछता हूँ । (यत्र) जहाँ (भुवनस्य) संसार की (नाभिः) नाभि अर्थात् मध्य-आकर्षण से बाँधने वाली वस्तु है उसे (पृच्छामि) पूछता हूँ । जो (वृष्णः) सेचन करने वाले (अश्वस्य) बलवान् पुरुष का (रेतः) वीर्य है उसे (पृच्छामि) पूछता हूँ । (वाचः) वाणी का (परमम्) उत्तम (व्योम) आकाश रूप स्थान (त्वा) तुझसे (पृच्छामि) पूछता हूँ । इनके उत्तर बतलाइए ॥ २३ । ६१ ॥

भावार्थः—पृथिव्याः सीमा, लोकस्याकर्षणेन बन्धनं बलिनो जनस्य पराक्रमः, वाक्-

भावार्थ—पृथिवी की सीमा, लोक को आकर्षण से बाँधना, बलवान् पुरुष का पराक्रम

परागश्च कोऽस्ति? इत्येतेषां प्रश्नानामुत्तराणि परस्मिन् मन्त्रे वेदितव्यानि ॥ २३ । ६१ ॥

और वाणी का पारंगत कौन है? इन प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में समझें ॥ २३ । ६१ ॥

भा० पदार्थः—भुवनस्य=लोकस्य। अश्वस्य=बलिनो जनस्य। रेतः=पराक्रमः। व्योम=पारगः।

भाष्यसार—**विद्वानों से इस प्रकार प्रश्न करें**—हे विद्वान्! मैं आप से पृथिवी की परभागीय सीमा पूछता हूँ। लोकों की नाभि=मध्य आकर्षण से बन्धन करने वाली वस्तु के विषय में पूछता हूँ। वीर्य-सेचन में समर्थ बलवान् पुरुष के बल एवं पराक्रम के विषय में पूछता हूँ। वाणी का उत्तम स्थान अर्थात् पारंगत कौन यह पूछता हूँ। इन प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में हैं ॥ २३ । ६१ ॥

प्रजापतिः। **समाधाता=विद्वान्**। विराट्त्रिष्टुप्। धैवतः।

पूर्वप्रश्नानामुत्तराण्याह ॥

पूर्व मन्त्र में कहे प्रश्नों के उत्तरों का उपदेश किया है ॥

इयं वेदिः परो ऽ अन्तः पृथिव्या ऽ अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः।
अयꣳ सोमो वृष्णो ऽ अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥ ६२ ॥

पदार्थः—(**इयम्**) (**वेदिः**) मध्यरेखा (**परः**) (**अन्तः**) (**पृथिव्याः**) भूमेः (**अयम्**) (**यज्ञः**) सर्वैः पूजनीयो जगदीश्वरः (**भुवनस्य**) संसारस्य (**नाभिः**) (**अयं**) (**सोमः**) ओषधिराजः (**वृष्णः**) वीर्यकरस्य (**अश्वस्य**) बलेन युक्तस्य जनस्य (**रेतः**) (**ब्रह्मा**) चतुर्वेदवित् (**अयम्**) (**वाचः**) वाण्याः (**परमम्**) (**व्योम**) स्थानम् ॥ ६२ ॥

अन्वयः—हे जिज्ञासो! इयं वेदिः पृथिव्याः परोऽन्तोऽयं यज्ञो भुवनस्य नाभिरयं सोमो वृष्णोऽश्वस्य रेतोऽयं ब्रह्मा वाचः परमं व्योमास्तीति विद्धि ॥ ६२ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे जिज्ञासो! इयं वेदिः** मध्यरेखा **पृथिव्याः** भूमेः **परोऽन्तः, अयं यज्ञः** सर्वैः पूजनीयो जगदीश्वरः **भुवनस्य** संसारस्य **नाभिः, अयं सोमः** ओषधिराजः **वृष्णः** वीर्य्यकरस्य **अश्वस्य** बलेन युक्तस्य जनस्य **रेतः, अयं ब्रह्मा** चतुर्वेदवित् **वाचः** वाण्याः **परमं व्योम** स्थानम् **अस्तीति विद्धि** ॥ २३ । ६२ ॥

भाषार्थ—हे जिज्ञासु! (इयम्) यह (वेदिः) मध्य रेखा (पृथिव्याः) भूमि का (परः) परभागीय (अन्तः) सीमा है; (अयं) यह (यज्ञः) सबका पूज्य जगदीश्वर (भुवनस्य) संसार की (नाभिः) नाभि है; (अयम्) यह (सोमः) ओषधियों का राजा सोम (वृष्णः) वीर्य-सेचक (अश्वस्य) बलवान् पुरुष का (रेतः) वीर्य है; (अयम्) यह (ब्रह्मा) चारों वेदों का ज्ञाता ब्रह्मा (वाचः) वाणी का (परमम्) उत्तम (व्योम) स्थान है; यह जानें ॥ २३ । ६२ ॥

भावार्थः—हे मनुष्याः यदि—अस्य भूगोलस्य मध्यस्था रेखा क्रियेत तर्हि सा उपरिष्टाद् भूमेरन्तं प्राप्नुवती सती व्याससंज्ञां लभते। अयमेव भूमेरन्तोऽस्ति। सर्वेषां मध्याकर्षणं जगदीश्वरः,

भावार्थ—हे मनुष्यो! यदि—इस भूगोल की मध्यस्थ रेखा खैंची जाए तो वह ऊपर से भूमि के अन्त=सीमा को प्राप्त करती हुई व्यास संज्ञा को प्राप्त करती है। यही भूमि का अन्त=सीमा

सर्वेषां प्राणिनां वीर्यकर ओषधिराजः सोमो, वेदपारगो वाक्पारगोऽस्तीति यूयं विजानीत ॥ २३ । ६२ ॥

है । सबका मध्य-आकर्षण (नाभि) जगदीश्वर है । सब प्राणियों को बलवान् करने वाला ओषधियों का राजा सोम है; और वेद का पारंगत ब्रह्मा वाणी का पारंगत है; ऐसा तुम जानो ॥२३।६२॥

भा० पदार्थः—वेदिः=मध्यस्था रेखा । पृथिव्याः=अस्य भूगोलस्य । अन्तः=व्यासः । नाभिः=मध्याकर्षणम् । अश्वस्य=सर्वेषां प्राणिनाम् । रेतः=वीर्यकरः । ब्रह्मा=वेदपारगः ॥

अन्यत्र व्याख्यात—(इयं वेदिः) अभिप्रा० इन मन्त्रों में रेखागणित का प्रकाश किया है । क्योंकि वेदी की रचना में रेखागणित का भी उपदेश है जैसे तिकोन चौकोन श्येन पक्षी के आकार और गोल आदि जो वेदी का आकार किया जाता है । सो आर्य्यों ने रेखागणित ही का दृष्टान्त माना था क्योंकि (परो अन्तः पृ०) पृथिवी का जो चारों ओर घेरा है उसको परिधि और ऊपर से अन्त तक जो पृथिवी की रेखा है, उसको व्यास कहते हैं इसी प्रकार से इन मन्त्रों में आदि, मध्य और अन्त आदि रेखाओं को भी जानना चाहिए और इसी रीति से तिर्यक्, विषुवत् रेखा आदि भी निकलती हैं ॥

(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, प्रार्थनायाचनासमर्पणविषयः)

भाष्यसार—**पूर्व प्रश्नों का उत्तर**—विद्वान् उत्तर देता है कि हे जिज्ञासु ! यह वेदि=मध्यरेखा पृथिवी की परभागीय सीमा है । यदि इस भूगोल की मध्यस्थ रेखा खैंची जाए तो वह ऊपर से भूमि की सीमा को प्राप्त करती हुई व्यास संज्ञा को प्राप्त होती है । यही भूमि का अन्त=सीमा है । यह यज्ञ=सब का पूज्य जगदीश्वर इस संसार का नाभि=मध्य-आकर्षण है । यह ओषधियों का राजा सोम वीर्य सेचन में समर्थ बलवान् पुरुष का बल एवं पराक्रम है । यह चारों वेदों का ज्ञाता ब्रह्मा वाणी का उत्कृष्ट स्थान है अर्थात् वेद का पारंगत ही वाणी का पारंगत है ॥ २३ । ६२ ॥

प्रजापतिः । **समाधाता=विद्वान्** । विराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

ईश्वरः कीदृश इत्याह ॥

ईश्वर कैसा है, इस विषय का उपदेश किया है ॥

सुभूः स्वयम्भू प्रथमोऽन्तर्महत्यर्णवे । दधे ह गर्भमृत्वियं यतो जातः प्रजापतिः ॥ ६३ ॥

पदार्थः—(**सुभूः**) यः सुष्ठु भवतीति (**स्वयम्भूः**) यः स्वयम्भवत्युत्पत्तिनाशरहितः (**प्रथमः**) आदिमः (**अन्तः**) मध्ये (**महति**) (**अर्णवे**) यत्रार्णांस्युदकानि संबद्धानि सन्ति तस्मिन् संसारे (**दधे**) दधाति (**ह**) किल (**गर्भम्**) बीजम् (**ऋत्वियम्**) ऋतुः सम्प्राप्तोऽस्य तम् (**यतः**) यस्मात् (**जातः**) (**प्रजापतिः**) प्रजापालकः सूर्यः ॥ ६३ ॥

अन्वयः—हे जिज्ञासो ! यतः प्रजापतिर्जातो यश्च सुभूः स्वयम्भूः प्रथमो जगदीश्वरो महत्यर्णवेऽन्तर्ऋत्वियं गर्भं दधे तं ह सर्वे जना उपासीरन् ॥ ६३ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे जिज्ञासो ! यतः** यस्मात् **प्रजापतिः** प्रजापालकः सूर्यः **जातः**, **यश्च सुभूः** यः सुष्ठु भवतीति, **स्वयम्भूः** यः स्वयम्भवत्युत्पत्तिनाशरहितः, **प्रथमः** आदिमः **जगदीश्वरो**, **महत्यर्णवे** यत्रार्णांस्युदकानि सम्बद्धानि सन्ति

भाषार्थ—हे जिज्ञासु ! (यतः) जिससे (प्रजापतिः) प्रजा का पालक सूर्य (जातः) उत्पन्न हुआ है; और जो (सुभूः) उत्तम सत्ता वाला, (स्वयम्भूः) स्वयं सत्ता वाला अर्थात् उत्पत्ति और नाश से रहित, (प्रथमः) आदिम जगदीश्वर

तस्मिन्संसारे **अन्तः** मध्ये **ऋत्वियम्** ऋतुः सम्प्राप्तोऽस्य तं **गर्भं** बीजं **दधे** दधाति; **तं ह** किल **सर्वे जना उपासीरन्** ॥ २३ । ६३ ॥

(महति) महान् (अर्णवे) जल आदि पदार्थों से सम्बद्ध संसार के (अन्तः) मध्य में (ऋत्वियम्) ऋतु-अनुकूल (गर्भम्) बीज को (दधे) धारण करता है; उसकी (ह) ही सब लोग उपासना करें ॥ २३ । ६३ ॥

भावार्थः—यदि मनुष्याः सूर्यादीनां परं कारणं प्रकृतिं, तत्र बीजधारकं परमात्मानं च विजानीयुस्तर्हि—तेऽस्मिन् संसारे विस्तीर्णसुखा भवेयुः ॥ २३ । ६३ ॥

भावार्थ—यदि मनुष्य सूर्य आदि के परम कारण प्रकृति और उसमें बीज को धारण करने वाले परमात्मा को जानें तो इस संसार में विस्तृत सुख वाले हों ॥ २३ । ६३ ॥

भा० पदार्थः—गर्भम्=सूर्यादीनां परं कारणं प्रकृतिं तत्र बीजधारकं परमात्मानं च।

भाष्यसार—**ईश्वर कैसा है**—जिससे प्रजा का पालक सूर्य उत्पन्न हुआ है, जो उत्तम सत्ता वाला, स्वयम्भू अर्थात् उत्पत्ति और विनाश से रहित, प्रथम=आदिम जगदीश्वर है वह इस महान् संसार में ऋतु—अनुसार गर्भ=बीजों को धारण करता है अर्थात् सूर्य आदि का पर=अन्तिम कारण प्रकृति है। उस प्रकृति में परमात्मा सब बीजों धारण करता है। जो मनुष्य उस परमात्मा को जानते हैं वे विस्तृत सुख वाले होते हैं ॥ २३ । ६३ ॥ ●

प्रजापतिः । **ईश्वरः**=**स्पष्टम्** । विराडुष्णिक् । ऋषभः ॥

ईश्वरः कथमुपास्य इत्याह ॥

ईश्वर की उपासना कैसे करनी चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

होता यक्षत्प्रजापतिꣳ सोमस्य महिम्नः । जुषतां पिबतु सोमꣳ होतर्यज ॥ ६४ ॥

पदार्थः—(**होता**) आदाता (**यक्षत्**) यजेत्पूजयेत् (**प्रजापतिम्**) विश्वस्य पालकं=स्वामिनम् (**सोमस्य**) सकलैश्वर्य्ययुक्तस्य (**महिम्नः**) महतो भावस्य सकाशात् (**जुषताम्**) (**पिबतु**) (**सोमम्**) सर्वौषधिरसम् (**होतः**) दातः (**यज**) पूजय ॥ ६४ ॥

अन्वयः—हे होतर्यथा होता सोमस्य महिम्नः प्रजापतिं यक्षज्जुषतां च सोमं च पिबतु तथा त्वं यज पिब च ॥ ६४ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे होतः**! दातः! **यथा**—**होता** आदाता **सोमस्य** सकलैश्वर्ययुक्तस्य **महिम्नः** महतो भावस्य सकाशात् **प्रजापतिं** विश्वस्य पालकं=स्वामिनं **यक्षत्** यजेत=पूजयेत् **जुषतां, सोमं** सर्वौषधिरसं **च पिबतु, तथा त्वं यज** पूजय **पिब च** ॥ २३ । ६४ ॥

भाषार्थ—हे (होतः) दाता पुरुष! जैसे (होता) शुभ गुणों को ग्रहण करने वाला विद्वान् (सोमस्य) सकल ऐश्वर्य से युक्त परमात्मा की (महिम्नः) महिमा से (प्रजापतिम्) विश्व के पालक ईश्वर की (यक्षत्) पूजा करता है, (जुषताम्) प्रीति सेवा करता है और (सोमम्) सब ओषधियों के रस का (पिबतु) पान करता है; वैसे तू (यज) पूजा कर और पान कर ॥ २३ । ६४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालंकारः। हे मनुष्याः! यथा विद्वांसोऽस्मिञ्जगति रचनादि-

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। हे मनुष्यो! जैसे विद्वान् लोग इस

विशेषैः परमात्मनो महिमानं विदित्वैनमुपासते, तथैतं यूयमप्युपाध्वम् ।

जगत् में रचना आदि विशेष कारणों से परमात्मा की महिमा को जानकर इसकी उपासना करते हैं; वैसे इसकी तुम भी उपासना करो ।

यथेमे युक्त्यौषधानि सेवित्वाऽरोगा जायन्ते तथा भवन्तोऽपि भवन्तु ॥ २३ । ६४ ॥

जैसे ये विद्वान् लोग औषधों का सेवन करके नीरोग हो जाते हैं वैसे आप भी हों ॥ २३ । ६४ ॥

भा० पदार्थः—होता=विद्वान् । सोमस्य=परमात्मनः । सोमम्=औषधम् ।

भाष्यसार—**१. ईश्वर की उपासना कैसे करें**—जैसे शुभ गुणों को ग्रहण करने वाला विद्वान् इस जगत् में सकल ऐश्वर्य से युक्त परमात्मा की रचनादि को देखकर उसकी महिमा को समझता है और सब जगत् के पालक परमात्मा की पूजा करता है, उससे प्रीति करता है एवं उसकी सेवा=उपासना करता है, वैसे सब मनुष्य परमात्मा की उपासना करें ।

जैसे विद्वान् लोग सोम=सब औषधियों के रस का युक्ति से पान करके नीरोग रहते हैं, वैसे सब लोग आचरण करें ।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । उपमा यह है कि विद्वानों के समान सब मनुष्य परमात्मा की उपासना करें तथा युक्ति से औषध-सेवन करके नीरोग रहें ॥ २३ । ६४ ॥ ●

प्रजापतिः । **ईश्वरः**=स्पष्टम् । विराट्त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

ईश्वर की उपासना कैसे करनी चाहिए, इसका फिर उपदेश किया है ॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परि ता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो ऽ अस्तु वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ६५ ॥

पदार्थः—(**प्रजापते**) सर्वस्याः प्रजायाः पालक=स्वामिन्नीश्वर ! (**न**) (**त्वत्**) तव सकाशात् (**एतानि**) पृथिव्यादीनि भूतानि (**अन्यः**) भिन्नः (**विश्वा**) सर्वाणि (**रूपाणि**) स्वरूपयुक्तानि (**परि**) (**ता**) तानि (**बभूव**) भवति (**यत्कामाः**) यः पदार्थः कामो येषां (**ते**) तव (**जुहुमः**) प्रशंसामः (**तत्**) कमनीयं वस्तु (**नः**) अस्मभ्यम् (**अस्तु**) भवतु (**वयम्**) (**स्याम**) भवेम (**पतयः**) स्वामिनः पालकाः (**रयीणाम्**) विद्यासुवर्णादिधनानाम् ॥ ६५ ॥

अन्वयः—हे प्रजापते परमात्मन्कश्चित्त्वदन्यस्ता तान्येतानि विश्वा रूपाणि वस्तूनि न परि बभूव । यत्कामा वयं त्वां जुहुमस्तन्नोऽस्तु ते कृपया वयं रयीणां पतयः स्याम ॥ ६५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **प्रजापते**=**परमात्मन्** ! सर्वस्याः प्रजायाः पालक=स्वामिन्नीश्वर ! **कश्चित् त्वत्** तव सकाशाद् **अन्यः** भिन्नः **ता**=**तानि एतानि** पृथिव्यादीनि भूतानि **विश्वा** सर्वाणि **रूपाणि** स्वरूपयुक्तानि **वस्तूनि न परि+बभूव** भवति ।

भाषार्थ—हे (प्रजापते) सब प्रजा के स्वामी परमात्मन् ! कोई (त्वत्) तुझ से (अन्यः) भिन्न (ता) उन (एता) इन पृथिवी आदि भूतों एवं (विश्वा) सब (रूपाणि) रूप-युक्त वस्तुओं को (न) नहीं (परि+बभूव) दबाता है ।

यत्कामाः यः पदार्थः कामो येषां, **वयं त्वां जुहुमः** प्रशंसामः, **तत्** कमनीयं वस्तु **नः** अस्मभ्यम् **अस्तु** भवतु । **ते** तव **कृपया वयं रयीणां** विद्या-सुवर्णादिधनानां **पतयः** स्वामिनः पालकाः **स्याम** भवेम ॥ २३ । ६५ ॥

(यत्कामाः) जिस पदार्थ की कामना वाले हम लोग तेरी (जुहुमः) प्रशंसा करें (तत्) वह कमनीय वस्तु (नः) हमारे लिए (अस्तु) प्राप्त हो। (ते) तेरी कृपा से (वयम्) हम (रयीणाम्) विद्या, सुवर्ण आदि धनों के (पतयः) स्वामी, पालक (स्याम) होवें ॥ २३ । ६५ ॥

भावार्थः—यदि परमेश्वरादुत्तमं बृहदैश्वर्ययुक्तं सर्वशक्तिमद् वस्तु किंचिदपि नास्ति; तर्हि तुल्यमपि न । यो विश्वात्मा विश्वस्रष्टाऽखिलैश्वर्यप्रद ईश्वरोऽस्ति तस्यैव भक्तिविशेषेण पुरुषार्थेनैहिकमैश्वर्यं, योगाभ्यासेन पारमार्थिकं सामर्थ्यं प्राप्नुयाम ॥ २३ । ६५ ॥

भावार्थ—यदि परमेश्वर से उत्तम, बड़ी, ऐश्वर्य-युक्त, सर्वशक्तिमान् वस्तु कोई नहीं है और न ही उसके तुल्य है। जो विश्व का आत्मा, विश्व का स्रष्टा, अखिल ऐश्वर्य का दाता ईश्वर है उसकी ही भक्ति विशेष से एवं पुरुषार्थ से इह-लोक के ऐश्वर्य को; योगाभ्यास से पारमार्थिक सामर्थ्य को प्राप्त करें ॥ २३ । ६५ ॥

अन्यत्र व्याख्यात—हे (प्रजापते) सब प्रजा के स्वामी परमात्मा ! (त्वत्) आपसे (अन्यः) भिन्न दूसरा कोई (ता) उन (एतानि) इन (विश्वा) सब (जातानि) उत्पन्न हुए जड़, चेतन आदिकों को (न) नहीं (परि, बभूव) तिरस्कार करता है अर्थात् आप सर्वोपरि हैं। (यत्कामाः) जिस-जिस पदार्थ की कामना वाले हम लोग (ते) आपका (जुहुमः) आश्रय लेवें और वांछा करें (तत्) उस-उस की कामना (नः) हमारी सिद्ध (अस्तु) होवे; जिससे हम लोग (रयीणाम्) धनैश्वर्यों के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें ॥ (संस्कारविधि, ईश्वरप्रार्थनोपासनाप्रकरणम्)।

भाष्यसार—**ईश्वर की उपासना**—हे सब प्रजा के पालक=स्वामी परमात्मन् ! आप से भिन्न दूसरा कोई इन पृथिवी आदि भूतों के रूपों का परिभव नहीं कर सकता अर्थात् आप से उत्तम, बड़ा, ऐश्वर्यशाली, सर्वशक्तिमान् कोई नहीं है। आपके तुल्य भी कोई नहीं है। जिस-जिस पदार्थ की कामना वाले हम लोग आपकी प्रशंसा करें वह-वह कमनीय वस्तु हमें प्राप्त हो। आपकी कृपा से हम लोग विद्या और सुवर्ण आदि धनों के स्वामी एवं पालक बनें।

जो विश्व का आत्मा एवं स्रष्टा अखिल ऐश्वर्य प्रदान करने वाला ईश्वर है उसकी उपासना से एवं पुरुषार्थ से इह-लोक का ऐश्वर्य प्राप्त होता है और योगाभ्यास से पारमार्थिक सामर्थ्य उपलब्ध होता है ॥ २३ । ६५ ॥

[पूर्वापराध्यायार्थसंगतिमाह—]

अत्र परमात्ममहिमा, सृष्टिगुणवर्णनं, योग-प्रशंसा, प्रश्नोत्तराणि, सृष्टिपदार्थप्रशंसनं राजप्रजा-गुणवर्णनं, शास्त्राद्युपदेशोऽध्ययनमध्यापनं, स्त्री-पुरुषगुणवर्णनं, पुनः प्रश्नोत्तराणि, परमेश्वरगुण-वर्णनं, यज्ञव्याख्या, रेखागणितादि चोक्तमत

इस अध्याय में—परमात्मा की महिमा (१-३), सृष्टि के गुणों का वर्णन (४), योग की प्रशंसा (५,६), प्रश्न और उत्तर (९-१२), सृष्टि के पदार्थों की प्रशंसा (१४), राजा और प्रजा के गुणों का वर्णन (२०-२३), शास्त्र आदि का उपदेश एवं

एतदर्थस्य पूर्वाऽध्यायोक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम् ॥ २३ ॥

(२५, २९), पठन-पाठन (३२,३३), स्त्री-पुरुष के गुणों का वर्णन (३६, ३७), पुनः प्रश्न और उत्तर (४५-६२), परमेश्वर के गुणों का वर्णन (६४, ६५), यज्ञ की व्याख्या (५७, ५८), रेखागणित (६२) आदि का उपदेश किया है, अतः इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय में प्रतिपादित अर्थ के साथ संगति है; ऐसा समझें ॥ २३ ॥

इति श्रीयुतपण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते दयानन्दयजुर्वेदभाष्य-भास्करे त्रयोविंशोऽध्यायः सम्पूर्णः ॥

॥ ओ३म् ॥

* अथ चतुर्विंशाऽध्यायारम्भः *

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ॥ १ ॥

य० ३० । ३ ॥

प्रजापतिः । **प्रजापतिः**=सूर्यादिगुणयुक्ताः पशवः । भुरिक्संकृतिः । गान्धारः ॥

अथ मनुष्यैः पशुभ्यः कीदृश उपकारो ग्राह्य इत्याह ॥

अब चौबीसवें अध्याय का आरम्भ है । इसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को पशुओं से कैसा उपकार लेना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

अश्व॑स्तूप॒रो गो॑मृ॒गस्ते प्रा॑जाप॒त्याः कृ॒ष्णग्री॑व ऽ आग्ने॒यो र॒राटे॑ पु॒रस्ता॑त्सारस्व॒ती मे॒ष्य॒धस्ता॒द्धन्वो॑राश्वि॒नाव॒धोरा॑मौ बा॒ह्वोः सौ॑मापौ॒ष्णः श्या॒मो नाभ्या॑ᳬ सौर्य॒या॒मौ श्वे॒तश्च॑ कृ॒ष्णश्च॑ पा॒र्श्वयो॑स्त्वा॒ष्ट्रौ लो॑म॒शस॑क्थौ स॒क्थ्योर्वा॑य॒व्यः॒ श्वे॒तः पुच्छ॒ ऽ इन्द्रा॑य स्वप॒स्या॒य वे॒हद्वै॑ष्ण॒वो वा॑म॒नः ॥ १ ॥

पदार्थः—(**अश्वः**) आशुगामी तुरङ्गः (**तूपरः**) हिंसकः (**गोमृगः**) गौरिव वर्त्तमानो गवयः (**ते**) (**प्राजापत्याः**) प्रजापतिः=सूर्य्यो देवता येषान्ते (**कृष्णग्रीवः**) कृष्णा ग्रीवा यस्य सः (**आग्नेयः**) अग्निदेवताकः (**रराटे**) ललाटे (**पुरस्तात्**) आदितः (**सारस्वती**) सरस्वती देवता यस्याः सा (**मेषी**) शब्दकर्त्री मेषस्य स्त्री (**अधस्तात्**) (**हन्वोः**) मुखाऽवयवयोः (**आश्विनौ**) अश्विदेवताकौ (**अधोरामौ**) अधो रमणं ययोस्तौ (**बाह्वोः**) (**सौमापौष्णः**) सोमपूषदेवताकः (**श्यामः**) कृष्णवर्णः (**नाभ्याम्**) मध्ये (**सौर्ययामौ**) सूर्ययमसम्बन्धिनौ (**श्वेतः**) श्वेतवर्णः (**च**) (**कृष्णः**) (**च**) (**पार्श्वयोः**) वामदक्षिणभागयोः (**त्वाष्ट्रौ**) त्वष्टृदेवताकौ (**लोमशसक्थौ**) लोमानि विद्यन्ते यस्य तल्लोमशं सक्थि ययोस्तौ (**सक्थ्योः**) पादावयवयोः (**वायव्यः**) वायुदेवताकः (**श्वेतः**) श्वेतवर्णः (**पुच्छे**) (**इन्द्राय**) ऐश्वर्ययुक्ताय (**स्वपस्याय**) शोभनान्यपांसि=कर्माणि यस्य तस्मै (**वेहत्**) अकाले वृषभोपगमनेन गर्भघातिनी (**वैष्णवः**) विष्णुदेवताकः (**वामनः**) वक्राङ्गः ॥ १ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यूयमश्वस्तूपरो गोमृगस्ते प्राजापत्याः कृष्णग्रीव आग्नेयः पुरस्ताद्रराटे मेषी सारस्वती, अधस्ताद्धन्वोर्बाह्वोरधोरामावाश्विनौ, सौमापौष्णः श्यामो नाभ्यां, पार्श्वयोः श्वेतश्च

कृष्णश्च सौर्ययामौ, सक्थ्योर्लोमशसक्थौ त्वाष्ट्रौ, पुच्छे श्वेतो वायव्यो, वेहद्वैष्णवो वामनश्च स्वपस्या-येन्द्राय संयोजयत ॥ १ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः! यूयम्—अश्वः** आशुगामी तुरङ्गः, **तूपरः** हिंसकः, **गोमृगः** गौरिव वर्त्तमानो गवयः, ते **प्राजापत्याः** प्रजापतिः= सूर्यो देवता येषान्ते; **कृष्णग्रीवः** कृष्णा ग्रीवा यस्य सः, **आग्नेयः** अग्निदेवताकः; **पुरस्ताद्** आदितः **रराटे** ललाटे **मेषी** शब्दकर्त्री मेषस्य स्त्री **सारस्वती** सरस्वती देवता यस्याः सा; **अधस्ताद्धन्वोः** मुखाऽवयवयोः, **बाह्वोरधोरामौ** अधो रमणं ययोस्तौ **आश्विनौ** अश्विदेवताकौ; **सोमापौष्णः** सोमपूष—देवताकः **श्यामः** कृष्णवर्णः **नाभ्यां** मध्ये; **पार्श्वयोः** वामदक्षिणभागयोः **श्वेतः** श्वेतवर्णः **च कृष्णश्च सौर्ययामौ** सूर्ययमसम्बन्धिनौ; **सक्थ्योः** पादावयवयोः **लोमशसक्थौ** लोमानि विद्यन्ते यस्य तल्लोमशं सक्थि ययोस्तौ **त्वाष्ट्रौ** त्वष्टृदेवताकौ, **पुच्छे श्वेतः** श्वेतवर्णः **वायव्यः** वायुदेवताकः, **वेहद्** अकाले वृषभोपगमनेन गर्भघातिनी **वैष्णवः** विष्णुदेवताकः, **वामनः** वक्राङ्गः **च स्वपस्याय** शोभनान्यपांसि= कर्माणि यस्य तस्मै **इन्द्राय** ऐश्वर्ययुक्ताय **संयोजयत** ॥ २४ । १ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—(अश्वः) शीघ्रगामी घोड़ा, (तूपरः) हिंसक पशु, (गोमृगः) गौ के समान गवय, (ते) वे (प्राजापत्याः) सूर्य देवता वाले पशु, (कृष्णग्रीवः) काली गर्दन वाला पशु, (आग्नेयः) अग्नि देवता वाला पशु, (पुरस्तात्) आदि में (रराटे) ललाट के निमित्त (मेषी) शब्द करने वाली मेष की स्त्री एवं (सारस्वती) सरस्वती देवता वाली पशु स्त्री, (अधस्तात्) नीचे को (हन्वोः) हनु=ठोड़ी (बाह्वोः) भुजाओं से (अधोरामौ) नीचे रमण करने वाले (आश्विनौ) अश्वी देवता वाले दो पशु, (सोमापौष्णः) सोम और पूषा देवता वाले (श्यामः) कृष्ण=काले रंग वाला पशु (नाभ्याम्) नाभि के निमित्त, (पार्श्वयोः) वाम और दक्षिण भाग के निमित्त (श्वेतश्च) सफेद और (कृष्णश्च) काले रंग वाले (सौर्ययामौ) सूर्य और यम से सम्बन्धित पशु, (सक्थ्योः) सक्थि= जंघा के निमित्त (लोमसशक्थौ) रोम-युक्त सक्थि= जंघा वाले (त्वाष्ट्रौ) त्वष्टा देवता वाले पशु, (पुच्छे) पूँछ के निमित्त (श्वेतः) सफेद (वायव्यः) वायु देवता वाला पशु, (वेहद्) असमय में सांड के संग से गर्भ-घात करने वाली गौ, (वैष्णवः) विष्णु देवता वाला पशु और (वामनः) वक्र=टेढ़े अङ्गों वाला पशु है उसे (स्वपस्याय) उत्तम कर्मों वाले (इन्द्राय) ऐश्वर्य-युक्त पुरुष के लिए संयुक्त करो ॥ २४ । १ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या अश्वादिभ्यः कार्याणि संसाध्यैश्वर्यमुन्नीय धर्म्याणि कर्माणि कुर्युस्ते सौभाग्यवन्तो भवेयुः ।

अत्र सर्वत्र देवतापदेन तत्तद्गुणयोगात् पशवो वेदितव्याः ॥ २४ । १ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य घोड़े आदि पशुओं से कार्यों को सिद्ध करके, ऐश्वर्य को उन्नत करके धर्म-युक्त कर्म करते हैं, वे सौभाग्यशाली होते हैं ।

यहाँ सर्वत्र देवता पद से उस-उस गुण से युक्त पशु समझें ॥ २४ । १ ॥

भा० पदार्थः—स्वपस्याय=धर्म्यकर्मकरणाय । इन्द्राय=ऐश्वर्य-उन्नतये ॥

भाष्यसार—मनुष्य पशुओं से कैसा उपकार ग्रहण करें—घोड़ा, हिंसक पशु, गवय= नील गाय, ये पशु सूर्य देवता वाले हैं अर्थात् सूर्य के गुणों से युक्त हैं। काली गर्दन वाले पशु अग्नि के गुणों से युक्त हैं । भेड़ सरस्वती के गुणों से युक्त है । नीचे ठोड़ी वाले एवं भुजाओं से नीचे रमण करने

वाले पशु अश्विनौ (सूर्य, चन्द्र) के गुणों से युक्त हैं। नाभि में श्याम वर्ण वाले पशु सोम=चन्द्र और पूषा=वायु के गुणों से युक्त हैं। वाम और दक्षिण भाग में श्वेत और कृष्ण वर्ण वाले पशु सूर्य और यम=वायु के गुणों से युक्त हैं। लोमश जंघा (सक्थि) वाले पशु (त्वष्टा) सूर्य देवता के गुणों से युक्त हैं। सफेद पूंछ वाले पशु वायु के गुणों से युक्त हैं। असमय में सांड के समागम से गर्भपातिनी गौ विष्णु देवता के गुणों से युक्त है।

सब मनुष्यों को उचित है कि इन घोड़ा आदि पशुओं से कार्य सिद्ध करें, ऐश्वर्य को उन्नत करें, धर्म-युक्त कर्मों का आचरण करके सौभाग्यशाली बनें ॥ २४ । १ ॥

प्रजापतिः । **सोमादयः**=चन्द्रादिगुणयुक्ताः पशवः । निचृत्संकृतिः । गान्धारः ॥

पुनः के पशवः कीदृशगुणा इत्याह ॥

फिर कौन पशु कैसे गुण वाले हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

रोहितो धूम्ररोहितः कर्कन्धुरोहितस्ते सौम्या बभ्रुररुणबभ्रुः शुकबभ्रुस्ते वारुणाः शितिरन्ध्रोऽन्यतः शितिरन्ध्रः समन्तशितिरन्ध्रस्ते सावित्राः शितिबाहुरन्यतः शितिबाहुः समन्तशितिबाहुस्ते बार्हस्पत्याः पृषती क्षुद्रपृषती स्थूलपृषती ता मैत्रावरुण्यः ॥ २ ॥

पदार्थः—(**रोहितः**) रक्तवर्णः (**धूम्ररोहितः**) धूम्ररक्तवर्णः (**कर्कन्धुरोहितः**) कर्कन्धुर्बदरीफलमिव रोहितः (**ते**) (**सौम्याः**) सोमदेवताकाः (**बभ्रुः**) नकुलसदृशवर्णः (**अरुणबभ्रुः**) अरुणेन युक्तो बभ्रुर्वर्णो यस्य सः (**शुकबभ्रुः**) शुकस्येव बभ्रुर्वर्णो यस्य सः (**ते**) (**वारुणाः**) वरुणदेवताकाः (**शितिरन्ध्रः**) शितिः=श्वेतता रन्ध्रे यस्य सः (**अन्यतः शितिरन्ध्रः**) अन्यतोऽन्यस्मिन् रन्ध्राणीव शितयो यस्य सः (**समन्तशितिरन्ध्रः**) समन्ततो रन्ध्राणीव शितयः=श्वेतचिह्नानि यस्य सः (**ते**) (**सावित्राः**) सवितृदेवताकाः (**शितिबाहुः**) शितयो बाह्वोर्यस्य सः (**अन्यतः शितिबाहुः**) अन्यतः शितयो बाह्वोर्यस्य सः (**समन्तशितिबाहुः**) समन्ताच्छितयो बाह्वोर्भुजस्थानयोर्यस्य सः (**ते**) (**बार्हस्पत्याः**) बृहस्पतिदेवताकाः (**पृषती**) अङ्गैः सुसिक्ता (**क्षुद्रपृषती**) क्षुद्राणि पृषन्ति यस्याः सा (**स्थूलपृषती**) स्थूलानि पृषन्ति यस्याः सा (**ताः**) (**मैत्रावरुण्यः**) प्राणोदानदेवताकाः ॥ २ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या युष्माभिर्ये रोहितो धूम्ररोहितः कर्कन्धुरोहितश्च सन्ति ते सौम्याः । ये बभ्ररुणबभ्रुः शुकबभ्रुश्च सन्ति ते वारुणाः । ये शितिरन्ध्रोऽन्यतश्शितिरन्ध्रः समन्तशितिरन्ध्रश्च सन्ति ते सावित्राः । ये शितिबाहुरन्यतः शितिबाहुः समन्तशितिबाहुश्च सन्ति ते बार्हस्पत्याः । याः पृषती क्षुद्रपृषती स्थूलपृषती च सन्ति ता मैत्रावरुण्यो भवन्तीति बोध्यम् ॥ २ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! युष्माभिर्ये—**रोहितः** रक्तवर्णः, **धूम्ररोहितः** धूम्ररक्तवर्णः, **कर्कन्धुरोहितः** कर्कन्धुर्बदरीफलमिव रोहितः **च सन्ति, ते सौम्याः** सोमदेवताकाः; **ये—बभ्रुः** नकुलसदृशवर्णः, **अरुणबभ्रुः** अरुणेन युक्तो बभ्रुर्वर्णो यस्य सः, **शुकबभ्रुः** शुकस्येव बभ्रुर्वर्णो यस्य सः, **च सन्ति, ते वारुणाः** वरुण-

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम— (ये) (रोहितः) लाल रंग वाले (धूम्ररोहितः) धूम के समान लाल रंग वाले और (कर्कन्धुरोहितः) बेर के समान लाल रंग वाले पशु हैं (ते) वे (सौम्याः) सोम चन्द्र देवता वाले; (ये) जो (बभ्रुः) नकुल=नेवले के समान रंग वाले, (अरुणबभ्रुः) अरुण=लाल रंग से युक्त बभ्रु=भूरे रंग वाले,

देवताकाः; **ये—शितिरन्ध्रः** शितिः=श्वेतता रन्ध्रे यस्य सः; **अन्यतश्शितिरन्ध्रः** अन्यतोऽन्यस्मिन् रन्ध्राणीव शितयो यस्य सः, **समन्तशितिरन्ध्रः** समन्ततो रन्ध्राणीव शितयः=श्वेतचिह्नानि यस्य सः **च सन्ति, ते सावित्राः** सवितृदेवताकाः; **ये—शितिबाहुः** शितयो बाह्वोर्यस्य सः, **अन्यतः शितिबाहुः** अन्यतः शितयो बाह्वोर्यस्य सः, **समन्तशितिबाहुः** समन्ताच्छितयो बाह्वोर्भुजस्थानयोर्यस्य सः **च सन्ति, ते बार्हस्पत्याः** बृहस्पतिदेवताकाः; **याः—पृषती** अङ्गैः सुसिक्ता, **क्षुद्रपृषती** क्षुद्राणि पृषन्ति यस्याः सा, **स्थूलपृषती** स्थूलानि पृषन्ति यस्याः सा **च सन्ति, ता मैत्रावरुण्यः** प्राणोदानदेवताकाः **भवन्तीति बोध्यम्** ॥ २४ । २ ॥

(शुकबभ्रुः) शुक=तोते के समान बभ्रु=भूरे रंग वाले पशु हैं (ते) वे (वारुणाः) वरुण देवता वाले; जो (शितिरन्ध्रः) रन्ध्र=छिद्रों में सफेद रंग वाले, (अन्यतश्शितिरन्ध्रः) एक ओर उक्त छिद्रों के तुल्य सफेद चिह्न वाले, (समन्तशितिरन्ध्रः) सब ओर उक्त छिद्रों के तुल्य सफेद चिह्न वाले पशु हैं (ते) वे (सावित्राः) सूर्य देवता वाले; जो (शितिबाहुः) बाहुओं में सफेद चिह्न वाले, (अन्यतः शितिबाहुः) एक ओर बाहुओं में सफेद चिह्न वाले, और (समन्तशितिबाहुः) सब ओर बाहुओं में सफेद चिह्न वाले पशु हैं (ते) वे (बार्हस्पत्याः) बृहस्पति देवता वाले, होते हैं; और जो (पृषती) अङ्गों में बिन्दु वाली, (क्षुद्रपृषती) छोटे बिन्दु वाली और (स्थूलपृषती) मोटे बिन्दु वाली गौ हैं वे (मैत्रावरुण्यः) मित्र=प्राण और वरुण=उदान देवता वाली होती है; ऐसा समझें ॥ २४ । २ ॥

भावार्थः—ये चन्द्रादिगुणयुक्ताः पशवः सन्ति तैस्तत्तत् कार्यं मनुष्यैः साध्यम् ॥ २४ । २ ॥

भावार्थ—जो पशु चन्द्र आदि के गुणों से युक्त हैं उनसे उस-उस कार्य को मनुष्य सिद्ध करें ॥ २४ । २ ॥

भा० पदार्थः—सौम्याः=चन्द्रगुणयुक्ताः पशवः ॥

भाष्यसार—कौन पशु कैसे गुण वाले हैं—लाल, धूम के समान लाल रंग, बेर के समान लाल रंग वाले पशु सोम=चन्द्र के गुणों से युक्त हैं। नेवले के समान रंग वाले, एवं अरुणिमा=लालिमा से युक्त उक्त भूरे रंग वाले और तोते के समान रंग वाले पशु वरुण देवता के गुणों से युक्त हैं। छिद्रों में सफेद रंग वाले, एक ओर छिद्र के तुल्य सफेद रंग वाले, सब ओर छिद्र के तुल्य सफेद चिह्न वाले पशु सविता (सूर्य) देवता के गुणों से युक्त हैं। भुजाओं में सफेद चिह्न वाले, भुजाओं में एक ओर सफेद चिह्न वाले, भुजाओं में सब ओर सफेद चिह्न वाले पशु बृहस्पति के गुणों से युक्त हैं। अंगों में छोटे और मोटे बिन्दु के तुल्य चिह्नों वाले पशु प्राण और उदान के गुणों से युक्त हैं।

इन चन्द्र आदि गुणों से युक्त पशुओं से मनुष्य अभीष्ट कार्य को सिद्ध करें ॥ २४ । २ ॥ ●

प्रजापतिः । **अश्व्यादयः**=**सूर्यचन्द्रादिगुणयुक्ताः पशवः** । निचृदतिजगती । निषादः ॥

पुनः कीदृशगुणाः पशव इत्याह ॥

फिर कैसे गुण वाले पशु हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

शुद्धवालः सर्वशुद्धवालो मणिवालस्त ऽ आश्विनाः श्येतः श्येताक्षोऽरुणस्ते रुद्राय पशुपतये कर्णा यामा ऽ अवलिप्ता रौद्रा नभोरूपाः पार्जन्याः ॥ ३ ॥

पदार्थः—(**शुद्धवालः**) शुद्धा वाला यस्य सः (**सर्वशुद्धवालः**) सर्वे शुद्धा वाला यस्य सः (**मणिवालः**) मणिरिव वाला यस्य सः (**ते**) (**आश्विनाः**) सूर्य्यचन्द्रदेवताकाः (**श्येतः**) श्वेतवर्णः (**श्येताक्षः**) श्येते अक्षिणी यस्य सः (**अरुणः**) रक्तवर्णः (**ते**) (**रुद्राय**) दुष्टानां रोदकाय (**पशुपतये**) पशूनां पालकाय (**कर्णाः**) यैः कार्याणि कुर्वन्ति ते (**यामाः**) वायुदेवताकाः (**अवलिप्ताः**) अवलिप्तान्युपचितान्यङ्गानि येषान्ते (**रौद्राः**) प्राणादिदेवताकाः (**नभोरूपाः**) नभ इव रूपं येषान्ते (**पार्जन्याः**) मेघदेवताकाः ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या युष्माभिर्ये शुद्धवालः सर्वशुद्धवालो मणिवालश्च सन्ति ते आश्विनाः। ये श्येतः श्येताक्षोऽरुणश्च सन्ति ते पशुपतये रुद्राय। ये कर्णाः सन्ति ते यामाः। येऽवलिप्ताः सन्ति ते रौद्राः। ये नभोरूपाः सन्ति ते पार्जन्याश्च वेदितव्याः ॥ ३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः! युष्माभिर्ये—**शुद्धवालः** शुद्धा वाला यस्य सः, **सर्वशुद्धवालः** सर्वे शुद्धा वाला यस्य सः, **मणिवालः** मणिरिव वाला यस्य सः **च सन्ति; ते आश्विनाः** सूर्य्यचन्द्रदेवताकाः; **ये—श्येतः** श्वेतवर्णः, **श्येताक्षः** श्येते अक्षिणी यस्य सः, **अरुणः** रक्तवर्णः **च सन्ति, ते पशुपतये** पशूनां पालकाय **रुद्राय** दुष्टानां रोदकाय; **ये—कर्णाः** यैः कार्याणि कुर्वन्ति ते **सन्ति, ते यामाः** वायुदेवताकाः **येऽवलिप्ताः** अवलिप्तान्युपचितान्यङ्गानि येषान्ते **सन्ति, ते रौद्राः** प्राणादिदेवताकाः; **ये नभोरूपाः** नभ इव रूपं येषान्ते **सन्ति, ते पार्जन्याः** मेघदेवताकाः **च वेदितव्याः** ॥ २४। ३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो! तुम—जो (शुद्धवालः) शुद्ध बालों वाले, (सर्वशुद्धवालः) सब शुद्ध बालों वाले, (मणिवालः) मणि के समान स्वच्छ एवं कोमल बालों वाले, पशु हैं (ते) वे (आश्विनाः) सूर्य और चन्द्र देवता वाले; जो (श्वेतः) सफेद रंग वाले, (श्वेताक्षः) सफेद आँखों वाले, और (अरुणः) लाल रंग वाले हैं; (ते) वे (पशुपतये) पशुओं के पालक (रुद्राय) दुष्टों को रुलाने वाले रुद्र के लिए हैं; जो (कर्णाः) विशेष कार्य-साधक हैं (ते) वे (यामाः) वायु देवता वाले; जो (अवलिप्ताः) अवलिप्त=दृढ़ अंगों वाले हैं वे (रौद्राः) प्राण आदि देवता वाले; जो (नभोरूपाः) आकाश के समान नीले रूप वाले हैं वे (पार्जन्याः) मेघ=बादल देवता वाले हैं; ऐसा समझो ॥ ३ ॥

भावार्थः—या यस्य पशोर्देवताऽस्ति स तद्गुणोऽस्तीति वेद्यम् ॥ २४। ३ ॥

भावार्थ—जो जिस पशु का देवता है वह उसके गुणों से युक्त है; ऐसा समझें ॥ २४। ३ ॥

भाष्यसार—**पशु कैसे गुणों वाले हैं**—शुद्ध बालों वाले, सब शुद्ध बालों वाले, और मणि के समान शुद्ध बालों वाले पशु अश्विनौ=सूर्य और चन्द्रमा के गुणों से युक्त हैं। श्वेत वर्ण वाले, श्वेत आँखों वाले और रक्त=लाल वर्ण वाले पशु पशुपालक रुद्र अर्थात् दुष्टों को रुलाने वाले पुरुष के गुणों से युक्त हैं। जिन पशुओं से मनुष्य कार्य सिद्ध करते हैं वे पशु वायु के गुणों से युक्त हैं। दृढ़ अंगों वाले पशु प्राण आदि के गुणों से युक्त हैं। आकाश के समान नीले वर्ण वाले पशु मेघ के गुणों से युक्त हैं ॥ २४। ३ ॥

प्रजापतिः। **मारुतादयः=वायु-आदिगुणाः पशवः पक्षिणश्च**। विराडतिधृतिः। षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

पशु कैसे गुणों वाले हैं, इसका फिर उपदेश किया है ॥

पृश्निस्तिरश्चीनपृश्निरूर्ध्वपृश्निस्ते मारुताः फल्गूर्लोहितोर्णी पलक्षी ताः
सारस्वत्यः प्लीहाकर्णः शुण्ठाकर्णोऽध्यालोहकर्णस्ते त्वाष्ट्राः कृष्णग्रीवः
शितिकक्षोऽञ्जिसक्थस्त ऽ ऐन्द्राग्नाः कृष्णाञ्जिरल्पाञ्जिर्महाञ्जिस्त ऽ उषस्याः ॥ ४ ॥

पदार्थः—(पृश्निः) स्पर्ष्टव्यः (तिरश्चीनपृश्निः) तिरश्चीनः पृश्निः=स्पर्शो यस्य सः (ऊर्ध्वपृश्निः) ऊर्ध्वं=उत्कृष्टः पृश्निः=स्पर्शो यस्य सः (ते) (मारुताः) मरुद्देवताकाः (फल्गूः) या फलानि गच्छति=प्राप्नोति सा (लोहितोर्णी) लोहिता ऊर्णा यस्याः सा (पलक्षी) पले=चञ्चले अक्षिणी यस्याः सा (ताः) (सारस्वत्यः) सरस्वतीदेवताकाः (प्लीहाकर्णः) प्लीहेव कर्णो यस्य सः (शुण्ठाकर्णः) शुण्ठौ=शुष्कौ कर्णौ यस्य सः (अध्यालोहकर्णः) अधिगतं च तल्लोहं च सुवर्णं तद्वत्कर्णौ यस्य सः। **लोहमिति हिरण्यना० ।। निघं० १ । २ ।।** (ते) (त्वाष्ट्राः) त्वष्टृदेवताकाः (कृष्णग्रीवः) कृष्णा ग्रीवा यस्य सः (शितिकक्षः) शिती=श्वेतौ कक्षौ=पार्श्वौ यस्य सः (अञ्जिसक्थः) अञ्जीनि=प्रसिद्धानि सक्थीनि यस्य सः (ते) (ऐन्द्राग्नाः) वायुविद्युद्देवताकाः (कृष्णाञ्जिः) कृष्णा=विलिखिता अञ्जिर्गतिर्यस्य सः (अल्पाञ्जिः) अल्पगतिः (महाञ्जिः) महागतिः (ते) उषस्याः) उषोदेवताकाः ।। ४ ।।

प्रमाणार्थ—(अध्यालोहकर्णः) 'लोह' पद निघं० (१ । २) में हिरण्य-नामों में पठित है। हिरण्य=सुवर्ण ।।

अन्वयः—हे मनुष्या ये पृश्निस्तिरश्चीनपृश्निरूर्ध्वपृश्निश्च सन्ति ते मारुताः। याः फल्गूर्लोहितोर्णी पलक्षी च सन्ति ताः सारस्वत्यः। ये प्लीहाकर्णः शुण्ठाकर्णोऽध्यालोहकर्णश्च सन्ति ते त्वाष्ट्राः। ये कृष्णग्रीवः शितिकक्षोऽञ्जिसक्थश्च सन्ति त ऐन्द्राग्नाः। ये कृष्णाञ्जिरल्पाञ्जिर्महाञ्जिश्च सन्ति त उषस्याश्च भवन्तीति वेद्यम् ।। ४ ।।

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः! ये—पृश्निः** स्पर्ष्टव्यः, **तिरश्चीनपृश्निः** तिरश्चीनः पृश्निः=स्पर्शो यस्य सः, **ऊर्ध्वपृश्निः** ऊर्ध्वं=उत्कृष्टः पृश्निः=स्पर्शो यस्य सः **च, ते—मारुताः** मरुद्देवताकाः; **याः—फल्गूः** या फलानि गच्छति=प्राप्नोति सा, **लोहितोर्णी** लोहिता ऊर्णा यस्याः सा, **पलक्षी** पले=चञ्चले अक्षिणी यस्याः सा **च सन्ति, ताः—सारस्वत्यः** सरस्वतीदेवताकाः; **ये—प्लीहाकर्णः** प्लीहेव कर्णो यस्य सः, **शुण्ठाकर्णः** शुण्ठौ=शुष्कौ कर्णौ यस्य सः, **अध्यालोहकर्णः** अधिगतं च तल्लोहं च सुवर्णं तद्वत् कर्णौ यस्य सः **च सन्ति, ते—त्वाष्ट्राः** त्वष्टृदेवताकाः; **ये—कृष्णग्रीवः** कृष्णा ग्रीवा यस्य सः, **शितिकक्षः** शिती=श्वेतौ कक्षौ=पार्श्वौ यस्य सः, **अञ्जिसक्थः** अञ्जीनि=प्रसिद्धानि सक्थीनि यस्य सः **च सन्ति, त—ऐन्द्राग्ना** वायु-विद्युद्देवताकाः; **ये—कृष्णाञ्जिः** कृष्णा=विलिखिता अञ्जिर्गतिर्यस्य सः, **अल्पाञ्जिः** अल्पगतिः,

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो (पृश्निः) स्पर्श वाले, (तिरश्चीनपृश्निः) निकृष्ट स्पर्श वाले, (ऊर्ध्व-पृश्निः) उत्कृष्ट स्पर्श वाले पशु हैं (ते) वे (मारुताः) मरुत्=वायु देवता वाले; जो (फल्गूः) फलों को प्राप्त करने वाली, (लोहितोर्णी) लाल रंग वाली, और (पलक्षी) चंचल आँखों वाली गौ हैं वे (सारस्वत्यः) सरस्वती देवता वाली; जो (प्लीहा-कर्णः) प्लीहा=तिल्ली के समान कानों वाला, (शुण्ठा-कर्णः) सूखे कानों वाला और (अध्यालोहकर्णः) उत्तम सोने के तुल्य कानों वाले हैं (ते) वे (त्वाष्ट्राः) त्वष्टा देवता वाले; जो (कृष्णग्रीवः) काली ग्रीवा गर्दन वाले, (शितिकक्षः) सफेद शिति=सफेद कक्ष=पार्श्व वाले और (अञ्जिसक्थः) प्रसिद्ध जंघा वाले पशु हैं वे (ऐन्द्राग्नाः) इन्द्र=वायु और अग्नि=विद्युत् देवता वाले; जो (कृष्णाञ्जिः) साधारण गति वाले, (अल्पाञ्जिः) अल्प गति वाले और (महाञ्जिः) महान् गति वाले पशु हैं

महाज्जिः महागतिः **च सन्ति, त—उषस्या** उषो-- देवताका **च भवन्तीति वेद्यम्** ॥ २४ । ४ ॥

भावार्थः—ये पशवः पक्षिणश्च वायुगुणा, ये नदीगुणा, ये सूर्यगुणा, ये वायुविद्युद्गुणा, ये चोषोगुणाः सन्ति; तैस्तदनुकूलानि कार्याणि साधनीयानि ॥ २४ । ४ ॥

वे (उषस्याः) उषा देवता वाले होते हैं; ऐसा समझें ॥ २४ । ४ ॥

भावार्थ—जो पशु और पक्षी वायु गुण वाले, जो नदी गुण वाले, जो सूर्य गुण वाले, जो वायु और विद्युत् गुण वाले और जो उषा के गुण वाले हैं उनसे उनके अनुकूल कार्यों को सिद्ध करें ॥ २४ । ४ ॥

भा० पदार्थः—मारुताः=वायुगुणाः । सारस्वत्यः=नदीगुणाः । त्वाष्ट्राः=सूर्यगुणाः । ऐन्द्राग्नाः=वायुविद्युद्गुणाः । उषस्यः=उषोगुणाः ॥

भाष्यसार—पशु कैसे गुणों वाले हैं—साधारण स्पर्श, निकृष्ट स्पर्श और उत्कृष्ट स्पर्श वाले पशु वायु के गुणों से युक्त हैं। फलों को प्राप्त करने वाले, लाल ऊन वाले और चंचल आँखों वाले पशु सरस्वती=नदी के गुणों से युक्त हैं। प्लीहा=तिल्ली के समान कानों वाले, सूखे कानों वाले, सुवर्ण के समान कानों वाले पशु त्वष्टा=सूर्य के गुणों से युक्त हैं। काली गर्दन वाले, श्वेत पार्श्वों (पासु) वाले, और प्रसिद्ध जंघा (सक्थि) वाले पशु वायु और विद्युत् के गुणों से युक्त हैं। साधारण गति वाले, अल्प गति वाले और महान् गति वाले पशु उषा के गुणों से युक्त हैं।

जो पशु जिन गुणों से युक्त हैं मनुष्य उनसे तदनुकूल कार्यों को सिद्ध करें ॥ २४ । ४ ॥

प्रजापतिः । **विश्वेदेवाः**=सर्वे विद्वांसः । निचृद्बृहती । मध्यमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

पशु कैसे गुणों वाले हैं, इसका फिर उपदेश किया है ॥

शिल्पा वैश्वदेव्यो रोहिण्यस्त्र्यवयो वाचेऽविज्ञाता ऽ अदित्यै सरूपा धात्रे वत्सतर्यो देवानां पत्नीभ्यः ॥ ५ ॥

पदार्थः—(**शिल्पाः**) सुरूपाः=शिल्पकार्यसाधिकाः (**वैश्वदेव्यः**) विश्वदेवदेवताकाः (**रोहिण्यः**) आरोढुमर्हाः (**त्र्यवयः**) त्रिविधाश्च ता अवयश्च ताः (**वाचे**) (**अविज्ञाताः**) विशेषेणाज्ञाताः (**अदित्यै**) पृथिव्यै (**सरूपाः**) समानं रूपं यासां ताः (**धात्रे**) धारकाय (**वत्सतर्यः**) अतिशयेन वत्सा= अल्पवयसः (**देवानाम्**) दिव्यगुणानां विदुषाम् (**पत्नीभ्यः**) भार्य्याभ्यः ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या युष्माभिर्याः शिल्पा वैश्वदेव्यो वाचे, रोहिण्यस्त्र्यवयोऽदित्या अविज्ञाताः धात्रे, सरूपा देवानां पत्नीभ्यो वत्सतर्यश्च, ता विज्ञेयाः ॥ ५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! युष्माभिर्याः शिल्पाः सुरूपाः=शिल्पकार्यसाधिकाः **वैश्वदेव्यः** विश्वदेवदेवताकाः **वाचे; रोहिण्यः** आरोढुमर्हाः **त्र्यवयः** त्रिविधाश्च ता अवयश्च ताः, **अदित्यै** पृथिव्यै; **अविज्ञाताः** विशेषेणाज्ञाताः **धात्रे** धारकाय; **सरूपाः** समानं रूपं यासां ताः, **देवानां**

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—जो (शिल्पाः) शिल्प कार्य को सिद्ध करने वाली (वैश्वदेव्यः) विश्वदेव देवता वाली विद्याएँ (वाचे) वाणी के लिए; (रोहिण्यः) पर्वत आदि पर चढ़ने वाली (त्र्यवयः) तीन प्रकार की भेड़ें (अदित्यै) पृथिवी के लिए; (अविज्ञाताः) विशेष रूप से अज्ञात पशु

दिव्यगुणानां विदुषां **पत्निभ्यः** भार्याभ्यः **वत्सतर्यः** अतिशयेन वत्सा=अल्पवयसः **च, ता—विज्ञेयाः** ॥ २४ । ५ ॥

(धात्रे) धारक वायु के लिए, (सरूपाः) समान रूप वाले पशु (देवानाम्) दिव्यगुणों वाले विद्वानों की (पत्निभ्यः) पत्नियों के लिए और (वत्सतर्यः) अल्प आयु वाली गौ; वत्सतरी=बछड़ी हैं; उन्हें जानो ॥ २४ । ५ ॥

भावार्थः—ये सर्वे विद्वांसः शिल्पविद्यया ऽनेकानि यानादीनि रचयेयुः, पशूनां च पालनं कृत्वोपयोगं गृह्णीयुस्ते श्रीमन्तः स्युः ॥ २४ । ५ ॥

भावार्थ—जो सब विद्वान् शिल्प-विद्या से अनेक यानों को रचते हैं, और पशुओं का पालन करके उपयोग ग्रहण करते हैं; वे श्रीमान् होते हैं ॥ २४ । ५ ॥

भाष्यसार—पशु कैसे गुणों वाले हैं—शिल्प कार्यों को सिद्ध करने वाले पशु विश्वदेव= सब विद्वानों के गुणों से युक्त हैं एवं वाणी के लिए उपयोगी हैं। पर्वत आदि पर आरोहण करने वाली तीन प्रकार की भेड़ें पृथिवी के लिए उपयोगी हैं अर्थात् पृथिवी को उपजाऊ बनाती हैं। विशेष रूप से अज्ञात पशु धारक वायु के लिए उपयोगी हैं अर्थात् वायु को शुद्ध करती हैं। रूपवान् पशु विद्वानों की पत्नियों के लिए उपयोगी हैं अर्थात् रूप को बढ़ाते हैं। वत्सतरी (बछड़ी) अर्थात् अल्प आयु वाली गौवें भी उपयोगी हैं।

विद्वान् लोग शिल्पविद्या से अनेक यानों की रचना करें। मन्त्रोक्त पशुओं का पालन करके उनसे उपयोग ग्रहण करें तथा श्रीमान् बनें ॥ २४ । ५ ॥ ●

प्रजापतिः । **अग्न्यादयः=अग्नि-पृथिवी-वायु-सूर्य-मेघाः** । विराडुष्णिक् । ऋषभः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

पशु कैसे गुणों वाले हैं, इसका फिर उपदेश किया है ॥

कृष्णग्रीवा ऽ आग्नेयाः शितिभ्रवो वसूनाᳬं रोहिता रुद्राणाᳬं श्वेता ऽ अवरोकिणऽ आदित्यानां नभोरूपाः पार्जन्याः ॥ ६ ॥

पदार्थः—(**कृष्णग्रीवाः**) कृष्णा=कर्षिका ग्रीवा=निगरणं येषान्ते (**आग्नेयाः**) अग्निदेवताकाः (**शितिभ्रव;**) शितिश्श्वेताः भ्रूर्भ्रुकुटिर्यासां ताः (**वसूनाम्**) पृथिव्यादीनाम् (**रोहिताः**) रक्तवर्णाः (**रुद्राणाम्**) प्राणादीनाम् (**श्वेताः**) श्वेतवर्णाः (**अवरोकिणः**) अवरोधकाः (**आदित्यानाम्**) सूर्यसम्बन्धिनां मासानाम् (**नभोरूपाः**) नभ=उदकमिव रूपं येषां ते (**पार्जन्याः**) मेघदेवताकाः ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या ये कृष्णग्रीवास्त आग्नेयाः। ये शितिभ्रवस्ते वसूनां ये रोहितास्ते रुद्राणां ये श्वेता अवरोकिणस्त आदित्यानां ये नभोरूपास्ते च पार्जन्याः बोध्याः ॥ ६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः! ये कृष्णग्रीवाः** कृष्णा=कर्षिका ग्रीवा=निगरणं येषान्ते, **त आग्नेयाः** अग्निदेवताकाः, **ये शितिभ्रवः** शितिश्श्वेताः भ्रूर्भ्रुकुटिर्यासां ताः, **ते वसूनां** पृथिव्यादीनां; **ये रोहिताः** रक्तवर्णाः **ते रुद्राणां** प्राणादीनां, **ये श्वेताः** श्वेतवर्णाः **अवरोकिणः**

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो (कृष्णग्रीवाः) गर्दन से खैंचने वाले पशु हैं (ते) वे (आग्नेयाः) अग्नि देवता वाले हैं; जो (शितिभ्रवः) सफेद भ्रुकुटि वाले हैं वे (वसूनाम्) पृथिवी आदि की धारण क्रिया वाले हैं; जो (रोहिताः) लाल रंग वाले हैं वे (रुद्राणाम्) वायुओं की प्ररोहण=

अवरोधका: **त आदित्यानां** सूर्यसम्बन्धिनां मासानां, **ये नभोरूपा:** नभ=उदकमिव रूपं येषां ते, **ते च पार्जन्या:** मेघदेवताका: **बोध्या:** ।। २४ । ६ ।।

ऊँचा चढ़ने वाली क्रिया वाले हैं; जो (श्वेता:) सफेद रंग वाले (अवरोकिण:) अवरोधक हैं (ते) वे (आदित्यानाम्) सूर्य सम्बन्धी मासों की अवरोधक क्रिया वाले हैं; जो (नभोरूपा:) नभ=जल के समान रूप वाले हैं उन्हें (पार्जन्या:) मेघ देवता वाले समझें ।। २४ । ६ ।।

भावार्थ:— मनुष्यैरग्नेराकर्षणक्रिया, पृथिव्यादीनां धारणक्रिया, वायूनां प्ररोहणक्रिया, आदित्यानामवरोधिका, मेघानां च जलवर्षिका: क्रिया विदित्वा कार्येषूपयोज्या: ।। २४ । ६ ।।

भावार्थ—मनुष्य अग्नि की आकर्षण-क्रिया, पृथिवी आदि की धारण-क्रिया, वायुओं की प्ररोहण क्रिया, आदित्य=मासों की अवरोधक क्रिया और मेघों की जलवर्षक क्रिया को जानकर उनका कार्यों में उपयोग करें ।। २४ । ६ ।।

भाष्यसार—**पशु कैसे गुणों वाले हैं**—गर्दन से हल आदि को खेंचने वाले एवं भोज्य पदार्थों को निगलने वाले पशु अग्नि के गुणों से युक्त हैं। अग्नि आकर्षण गुण से युक्त हैं, मनुष्य इसकी आकर्षण-क्रिया को जानें। सफेद भ्रुकुटि वाले पशु वसु अर्थात् पृथिवी आदि के धारण गुण से युक्त हैं। वसु धारण गुण से युक्त हैं। मनुष्य वसुओं के धारण क्रिया को जानें। लाल रंग वाले पशु प्राण आदि के गुणों से युक्त हैं। मनुष्य प्राण आदि वायुओं की प्ररोहण=ऊँचा उठने की क्रिया को जानें। सफेद रंग वाले एवं मार्ग आदि के अवरोधक=रोकने वाले पशु आदित्य अर्थात् सूर्य सम्बन्धी मासों के गुणों से युक्त हैं। मनुष्य मासों की अवरोधक क्रिया को जानें। जल के समान रूप वाले पशु मेघ के गुणों से युक्त हैं। मनुष्य मेघों की जलवर्षक क्रिया को जानें। मनुष्य अग्नि आदि की उक्त क्रियाओं को जान कर उनका कार्यों में उपयोग करें ।। २४ । ६ ।। ●

प्रजापति: । **इन्द्रादय:=विद्युदादय:** । अतिजगती । निषाद: ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

पशु कैसे गुणों वाले हैं, इसका फिर उपदेश किया है ।।

उन्नत ऽ ऋषभो वामनस्त ऽ ऐन्द्रावैष्णवा ऽ उन्नतः शितिबाहुः शितिपृष्ठस्त ऐन्द्राबार्हस्पत्याः शुकरूपा वाजिनाः कल्माषा ऽ आग्निमारुताः श्यामाः पौष्णाः ।। ७ ।।

पदार्थ:—(**उन्नत:**) उच्छ्रित: (**ऋषभ:**) श्रेष्ठ: (**वामन:**) वक्राङ्ग: (**ते**) (**ऐन्द्रावैष्णवा:**) विद्युद्वायुदेवताका: (**उन्नत:**) (**शितिबाहु:**) शिती=तनूकर्त्तारौ बाहू इव बलं यस्य स: (**शितिपृष्ठ:**) शितिस्तनूकरणं पृष्ठं यस्य स: (**ते**) (**ऐन्द्राबार्हस्पत्या:**) वायुसूर्यदेवताका: (**शुकरूपा:**) शुकस्य रूपमिव रूपं येषान्ते (**वाजिना:**) वेगवन्त: (**कल्माषा:**) श्वेतकृष्णवर्णा: [(**आग्निमारुता:**) अग्निवायुदेवताका: (**श्यामा:**) श्यामवर्णा: (**पौष्णा:**) पुष्टिनिमित्तमेघदेवताका: ।। ७ ।।

अन्वय:—हे मनुष्या भवद्भिर्य उन्नत ऋषभो वामनश्च सन्ति । त ऐन्द्रवैष्णवा: य उन्नत: शितिबाहु: शितिपृष्ठश्च सन्ति त ऐन्द्राबार्हस्पत्या: । ये शुकरूपा वाजिना: कल्माषा: सन्ति त आग्निमारुता: । ये श्यामा: सन्ति ते च पौष्णा: विज्ञेया: ।। ७ ।।

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! भवद्भिर्ये—**उन्नतः** उच्छ्रितः, **ऋषभः** श्रेष्ठः, **वामनः** वक्राङ्गः **सन्ति ते ऐन्द्रावैष्णवाः** विद्युद्वायुदेवताकाः, **य—उन्नतः** उच्छ्रितः, **शितिबाहुः** शिती=तनूकर्त्तारौ बाहू इव बलं यस्य सः, **शितिपृष्ठः** शितिस्तनूकरणं पृष्ठं यस्य सः **च सन्ति; त ऐन्द्राबार्हस्पत्याः** वायुसूर्यदेवताकाः; **ये—शुकरूपाः** शुकस्य रूपमिव रूपं येषान्ते, **वाजिनाः** वेगवन्तः, **कल्माषाः** श्वेतकृष्णवर्णाः **सन्ति, त—आग्निमारुताः** अग्निवायुदेवताकाः; **ये श्यामाः** श्यामवर्णाः **सन्ति, ते च पौष्णाः** पुष्टिनिमित्तमेघदेवताकाः **विज्ञेयाः** ॥ २४ । ७ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! आप—जो (उन्नतः) ऊँचे, (ऋषभः) श्रेष्ठ और (वामनः) टेढ़े अंगों वाले पशु हैं वे (ऐन्द्रावैष्णवाः) विद्युत् और वायु देवता वाले हैं; जो (उन्नतः) ऊँचे (शितिबाहुः) पदार्थों को सूक्ष्म करने वाले भुजाओं के समान बल वाले और (शितिपृष्ठः) सूक्ष्म पीठ वाले हैं (ते) वे (ऐन्द्राबार्हस्पत्याः) वायु और सूर्य देवता वाले हैं; जो (शुकरूपाः) शुक=तोते के समान रूप वाले, (वाजिनाः) वेगवान्, (कल्माषाः) सफेद एवं काले रंग वाले पशु हैं (ते) वे (आग्निमारुताः) अग्नि और वायु देवता वाले हैं; जो (श्यामाः) श्याम रंग वाले हैं वे (पौष्णाः) पुष्टि के हेतु मेघ=बादल देवता वाले हैं; ऐसा समझो ॥ २४ । ७ ॥

भावार्थः—ये मनुष्याः पशूनामुन्नतिं पुष्टिं च कुर्वन्ति ते नानाविधानि सुखानि लभन्ते ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य पशुओं की वृद्धि और पोषण करते हैं वे नाना प्रकार के सुखों को प्राप्त करते हैं ॥ २४ । ७ ॥

भाष्यसार—**पशु कैसे गुणों वाले हैं**—ऊँचे, श्रेष्ठ बैल और वक्राङ्ग=टेढ़े अंगों वाले पशु विद्युत् और वायु के गुणों से युक्त हैं । ऊँचे, सूक्ष्म भुजाओं वाले और सूक्ष्म पीठ वाले पशु वायु और सूर्य के गुणों से युक्त हैं । शुक=तोते के समान रूप वाले, वेगवान्, श्वेत—कृष्ण (सफेद और काला) वर्ण वाले पशु अग्नि और वायु के गुणों से युक्त हैं । श्याम (सांवला) वर्ण वाले पशु पुष्टिकारक मेघ के गुणों से युक्त हैं । जो मनुष्य मन्त्रोक्त पशुओं की वृद्धि और पोषण करते हैं वे नाना प्रकार के सुखों को प्राप्त करते हैं ॥ २४ । ७ ॥

प्रजापतिः । **इन्द्राग्न्यादयः**=**वायु-अग्नि-आदिगुणाः पशवः** । विराड्बृहती । मध्यमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

पशु कैसे गुणों वाले हैं, उसका फिर उपदेश किया है ॥

एताऽऐन्द्राग्ना द्विरूपाऽअग्नीषोमीया वामनाऽअनड्वाहऽआग्नावैष्णवा वशा मैत्रावरुण्योऽन्यतऽएन्योऽमैत्र्यः ॥ ८ ॥

पदार्थः—(**एताः**) पूर्वोक्ताः (**ऐन्द्राग्नाः**) वायुविद्युत्सङ्गिनः (**द्विरूपाः**) द्वे रूपे यासां ताः (**अग्नीषोमीयाः**) सोमाग्निदेवताकाः (**वामनाः**) वक्रावयवाः (**अनड्वाहः**) वृषभाः (**आग्नावैष्णवाः**) अग्निवायुदेवताकाः (**वशाः**) वन्ध्या गावः (**मैत्रावरुण्यः**) प्राणोदानदेवताकाः (**अन्यतएन्यः**) या अन्यतो यन्ति=प्राप्नुवन्ति ताः (**मैत्र्यः**) मित्रस्य प्रिये वर्तमानाः ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या युष्माभिर्या एता द्विरूपाः सन्ति ता ऐन्द्राग्नाः । ये वामना अनड्वाहः सन्ति तेऽग्नीषोमीया आग्नावैष्णवाश्च । या वशाः सन्ति ता मैत्रावरुण्यः । या अन्यतएन्यः सन्ति ताश्च मैत्र्यो विज्ञेयाः ॥ ८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः! युष्माभिर्या—**एताः** पूर्वोक्ताः **द्विरूपाः** द्वे रूपे यासां ताः **सन्ति, ता ऐन्द्राग्नाः** वायुविद्युत्सङ्गिनः; **ये वामनाः** वक्रावयवाः **अनड्वाहः** वृषभाः **सन्ति, तेऽग्नीषोमीयाः** सोमाग्निदेवताकाः, **आग्नावैष्णवाः** अग्निवायुदेवताकाः **च; या वशाः** वन्ध्या गावः **सन्ति, ता मैत्रावरुण्यः** प्राणोदानदेवताकाः; **या अन्यत एन्यः** या अन्यतो यन्ति=प्राप्नुवन्ति ताः **सन्ति, ताश्च मैत्र्यः** मित्रस्य प्रिये वर्त्तमानाः **विज्ञेयाः** ॥ २४।८ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—जो (एताः) ये पूर्वोक्त (द्विरूपाः) दो रूपों वाले हैं वे (ऐन्द्राग्नाः) वायु और विद्युत् के संगी हैं; जो (वामनाः) टेढ़े अङ्गों वाले (अनड्वाहः) वृषभ=बैल हैं वे (अग्नीषोमीयाः) अग्नि और सोम देवता वाले तथा (आग्नावैष्णवाः) अग्नि और वायु देवता वाले हैं; जो (वशाः) वन्ध्या गौ हैं वे (मैत्रावरुण्यः) प्राण और उदान देवता वाले, जो (अन्यत एन्यः) अन्यत्र प्राप्त होने वाले हैं वे (मैत्र्यः) मित्र का प्रिय आचरण करते हैं; ऐसा समझो ॥ २४ । ८ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या वाय्वग्न्यादिगुणान् पशून् पालयन्ति ते सर्वोपकारका भवन्ति ॥ २४।८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य वायु और अग्नि आदि गुणों वाले पशुओं का पालन करते हैं वे सबके उपकारक होते हैं ॥ २४ । ८ ॥

भा० पदार्थः—ऐन्द्राग्नाः=वाय्वग्न्यादिगुणाः पशवः । मैत्र्यः=सर्वोपकारकाः ॥

भाष्यसार—पशु कैसे गुणों वाले हैं—जो पूर्वोक्त दो (श्वेत-कृष्ण) रूप वाले पशु हैं वे वायु और विद्युत् के गुणों से युक्त हैं । जो टेढ़े अङ्गों वाले बैल हैं वे सोम (चन्द्र), अग्नि और वायु के गुणों से युक्त हैं । जो बन्ध्या (बाँझ) गौवें हैं वे प्राण और उदान के गुणों से युक्त हैं । अन्यत्र जाने वाले पशु मित्र के गुणों से युक्त हैं । अतएव जो मनुष्य इन वायु आदि के गुणों से युक्त पशुओं का पालन करते हैं वे सबके उपकारक हैं ॥ २४ । ८ ॥ ●

प्रजापतिः । **अग्न्यादयः=अग्नि-आदिगुणाः पशवः** । निचृत्पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

पशु कैसे गुणों वाले हैं, इसका फिर उपदेश किया है ॥

कृष्णग्रींवा ऽ आग्नेया बभ्रवः सौम्याः श्वेता वायव्या ऽ अविज्ञाता ऽ अदित्यै सरूपा धात्रे वत्सतर्यो देवानां पत्नीभ्यः ॥ ९ ॥

पदार्थः—(**कृष्णग्रीवाः**) कृष्णकण्ठाः (**आग्नेयाः**) अग्निदेवताकाः (**बभ्रवः**) नकुलवर्णवद्वर्णयुक्ताः (**सौम्याः**) सोमदेवताकाः (**श्वेताः**) (**वायव्याः**) वायुदेवताकाः (**अविज्ञाताः**) न विशेषेण ज्ञाता=विदिताः (**अदित्यै**) अखण्डितायै जनित्वक्रियायै । अदितिर्जनित्वमिति मन्त्रप्रामाण्यादत्रादितिशब्देन गृह्यते (**सरूपाः**) समानं रूपं यासां ताः (**धात्रे**) धारकाय वायवे (**वत्सतर्य्यः**) अतिशयेन वत्साः (**देवानाम्**) सूर्यादीनाम् (**पत्नीभ्यः**) पालिकाभ्यः क्रियाभ्यः ॥ ९ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या युष्माभिर्ये कृष्णग्रीवास्त आग्नेयाः । ये बभ्रवस्ते सौम्याः । ये श्वेतास्ते वायव्याः । येऽविज्ञातास्तेऽदित्यै ये सरूपास्ते धात्रे । या वत्सतर्यस्ताश्च देवानां पत्नीभ्यो विज्ञेयाः ॥ ९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः!युष्माभिर्ये **कृष्णग्रीवाः** कृष्णकण्ठाः **त आग्नेयाः** अग्नि-

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—जो (कृष्णग्रीवाः) काले कण्ठ वाले पशु हैं वे (आग्नेयाः)

देवताकाः, **ये बभ्रवः** नकुलवर्णवद्वर्णयुक्ताः **ते सौम्याः** सोमदेवताकाः, **ये श्वेतास्ते वायव्याः** वायुदेवताकाः, **येऽविज्ञाताः** न विशेषेण ज्ञाता=विदिताः **तेऽदित्यै** अखण्डितायै जनित्वक्रियायै, **ये सरूपाः** समानं रूपं यासां ताः **ते धात्रे** धारकाय वायवे, **या वत्सतर्य्यः** अतिशयेन वत्साः **ताश्च देवानां** सूर्यादीनां **पत्नीभ्यः** पालिकाभ्यः क्रियाभ्यः **विज्ञेयाः** ॥ २४ । ६ ॥

अग्नि देवता वाले हैं; जो (बभ्रवः) नकुल=नेवले के वर्ण के समान वर्ण वाले पशु हैं वे (सौम्याः) सोम देवता वाले हैं; जो (श्वेताः) सफेद रंग वाले पशु हैं वे (वायव्याः) वायु देवता वाले हैं; जो (अविज्ञाताः) अविदित हैं वे (अदित्यै) अखण्डित प्रजनन क्रिया के लिए हैं; जो (सरूपाः) समान रूप वाले हैं वे (धात्रे) धारक वायु के लिए हैं; जो (वत्सतर्य्यः) अत्यन्त वत्सा=अल्प आयु की बछड़ियाँ हैं वे (देवानाम्) सूर्य आदि की (पत्नीभ्यः) पालक क्रियाओं के लिए हैं, ऐसा समझो ॥ २४ । ६ ॥

भावार्थः—ये पशवः कर्षका, निगलका अग्निवद्वर्तमानाः, य ओषधिवद्धारकाः, य आवरकास्ते वायुवद् वर्त्तमानाः, ये अविज्ञातास्ते प्रजननाय, ये धातृगुणास्ते धारणाय, ये सूर्य-किरणवद्वर्त्तमानाः पदार्थाः सन्ति, ते व्यवहार-साधने प्रयोज्याः ॥ २४ । ६ ॥

भावार्थ—जो पशु खेंचने एवं निगलने वाले हैं वे अग्नि के समान, जो धारक हैं वे ओषधि के समान, जो आवरक=आच्छादित करने वाले हैं वे वायु के समान, जो अविज्ञात हैं वे प्रजनन क्रिया के लिए, जो धारक-गुण वाले हैं वे धारण क्रिया के लिए, और जो सूर्य की किरणों के समान पदार्थ हैं उन्हें व्यवहार-सिद्धि में प्रयुक्त करें ॥ २४ । ६ ॥

भा० पदार्थः—कृष्णग्रीवाः=कर्षका निगलकाः [पशवः] । आग्नेयाः=अग्निवद्-वर्त्तमानाः [पशवः]। बभ्रवः=धारकाः । सौम्याः=औषधिवद्वर्त्तमानाः । श्वेताः=आवरकाः । वायव्याः=वायुवद्वर्त्तमानाः । अदित्यै=प्रजननाय ।

भाष्यसार—पशु कैसे गुणों वाले हैं—काले कण्ठ वाले हल आदि को खेंचने वाले और भोज्य पदार्थों को निगलने वाले पशु अग्नि के गुणों से युक्त हैं । नकुल (नेवला) के समान भूरे रंग वाले पशु सोम (ओषधि विशेष) के गुणों से युक्त हैं । सफेद रंग वाले पशु वायु के गुणों से युक्त हैं । विशेष रूप से अज्ञात पशु हैं वे प्रजनन क्रिया के लिए हैं अर्थात् प्रजनन क्रिया अविज्ञात=अप्रकट रूप में उचित है । समान रूप वाले पशु धारक वायु के गुणों से युक्त हैं । वत्सतरी (बछड़ी) अर्थात् अल्प आयु वाली गौवें सूर्य-किरणों एवं सूर्य आदि की पालक क्रियाओं से युक्त हैं ॥ २४ । ६ ॥

प्रजापतिः । **अन्तरिक्षादयः**=**आकाशादयः** । विराड्गायत्री । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

पशु कैसे गुणों वाले हैं, इसका फिर उपदेश किया है ॥

कृष्णा भौमा धूम्रा ऽ आन्तरिक्षा बृहन्तो दिव्याः शबला वैद्युताः सिध्मास्तारकाः ॥ १० ॥

पदार्थः—(**कृष्णाः**) कृष्णवर्णा विलेखननिमित्ता वा (**भौमाः**) भूमिदेवताकाः (**धूम्राः**) धूम्रवर्णाः (**आन्तरिक्षाः**) अन्तरिक्षदेवताकाः (**बृहन्तः**) वर्धकाः (**दिव्याः**) दिव्यगुणकर्मस्वभावाः

(**शबलाः**) किंचिच्छ्वेताः (**वैद्युताः**) विद्युद्देवताकाः (**सिध्माः**) मङ्गलकारिणः (**तारकाः**) दुःखस्य पारे कारिणः ॥ १० ॥

अन्वयः—हे मनुष्या युष्माभिर्ये कृष्णास्ते भौमाः । ये धूम्रास्त आन्तरिक्षाः । ये दिव्या बृहन्तः शबलास्ते वैद्युताः । ये सिध्मास्ते च तारका विज्ञेयाः ॥ १० ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! **युष्माभिर्ये कृष्णाः** कृष्णवर्णा विलेखननिमित्ता वा **ते भौमाः** भूमिदेवताकाः, **ये धूम्राः** धूम्रवर्णाः **ते आन्तरिक्षाः** अन्तरिक्षदेवताकाः, **ये दिव्याः** दिव्यगुणकर्मस्वभावाः **बृहन्तः** वर्धकाः **शबलाः** किंचिच्छ्वेताः **ते वैद्युताः** विद्युद्देवताकाः, **ये सिध्माः** मङ्गलकारिणः **ते च तारकाः** दुःखस्य पारे कारिणः **विज्ञेयाः** ॥ २४ । १० ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जो—(कृष्णाः) काले रंग वाले अथवा विलेखन=खोदने के हेतु हैं (ते) वे पशु (भौमाः) भूमि देवता वाले हैं; जो (धूम्राः) धूम रंग वाले पशु हैं वे (आन्तरिक्षाः) अन्तरिक्ष=आकाश देवता वाले हैं, जो (दिव्याः) दिव्य गुण, कर्म, स्वभाव वाले (बृहन्तः) बड़े, (शबलाः) कुछ सफेद रंग वाले पशु हैं, वे (वैद्युताः) विद्युत् देवता वाले हैं; और जो (सिध्माः) मंगलकारी हैं वे (तारकाः) दुःख से पार करने वाले हैं; ऐसा समझो ॥ २४ । १० ॥

भावार्थः—यदि मनुष्याः कर्षणादिकार्यसाधकान् पश्वादिपदार्थान् भूम्यादिषु संयोजयेयुस्तर्हि ते मङ्गलमाप्नुयुः ॥ २४ । १० ॥

भावार्थ—यदि मनुष्य कर्षण=हल चलाना आदि कार्यों के साधक पशु आदि पदार्थों को भूमि आदि में संयुक्त करें तो वे मंगल को प्राप्त होवें ॥ २४ । १० ॥

भा० पदार्थः—कृष्णाः=कर्षणकार्यसाधकाः [पशवः] ।

भाष्यसार—**पशु कैसे गुणों वाले हैं**—काले रंग वाले एवं हल आदि से भूमि का विलेखन (खोदना) करने वाले पशु भूमि के गुणों से युक्त हैं । धूम रंग वाले पशु आकाश के गुणों से युक्त हैं । दिव्य गुण, कर्म, स्वभाव वाले, बड़े, शबल=कुछ सफेद रंग वाले पशु विद्युत् के गुणों से युक्त हैं । और जो मंगलकारी पशु हैं वे दुःख से पार करने वाले हैं ।

जो मनुष्य इन मन्त्रोक्त पशुओं को भूमि आदि के कार्यों में संयुक्त करते हैं वे मङ्गल=सुख को प्राप्त करते हैं ॥ २४ । १० ॥ ●

प्रजापतिः । **वसन्तादयः**=स्पष्टम् । विराड्बृहती । मध्यमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

पशु कैसे गुणों वाले हैं, इसका फिर उपदेश किया है ॥

धूम्रान् वसन्तायालंभते श्वेतान् ग्रीष्माय कृष्णान् वर्षाभ्योऽरुणाञ्छरदे पृषतो हेमन्ताय पिशङ्गाञ्छिशिराय ॥ ११ ॥

पदार्थः—(**धूम्रान्**) धूम्रवर्णान् पदार्थान् (**वसन्ताय**) वसन्तर्त्तौ सुखाय (**आ**) समन्तात् (**लभते**) प्राप्नोति (**श्वेतान्**) श्वेतवर्णान् (**ग्रीष्माय**) ग्रीष्मर्त्तौ सुखाय (**कृष्णान्**) कृष्णवर्णान् कृषिसाधकान् वा (**वर्षाभ्यः**) वर्षर्त्तौ कार्यसाधनाय (**अरुणान्**) आरक्तान् (**शरदे**) शरदृतौ सुखाय (**पृषतः**)

स्थूलान् (**हेमन्ताय**) हेमन्तर्त्तौ कार्यसाधनाय (**पिशङ्गान्**) रक्तपीतवर्णान् (**शिशिराय**) शिशिरर्त्तौ व्यवहारसाधनाय ॥ ११ ॥

अन्वयः—यो मनुष्यो वसन्ताय धूम्रान् ग्रीष्माय श्वेतान् वर्षाभ्यः कृष्णान् शरदेऽरुणान् हेमन्ताय पृषतः शिशिराय पिशङ्गानालभते स सततं सुखी भवति ॥ ११ ॥

सपदार्थान्वयः—**यो मनुष्यो वसन्ताय** वसन्तर्त्तौ सुखाय **धूम्रान्** धूम्रवर्णान् पदार्थान्, **ग्रीष्माय** ग्रीष्मर्त्तौ सुखाय **श्वेतान्** श्वेतवर्णान्, **वर्षाभ्यः** वर्षर्त्तौ कार्यसाधनाय **कृष्णान्** कृष्णवर्णान् कृषिसाधकान् वा, **शरदे** शरदृतौ सुखाय **अरुणान्** आरक्तान्, **हेमन्ताय** हेमन्तर्त्तौ कार्यसाधनाय **पृषतः** स्थूलान्, **शिशिराय** शिशिरर्त्तौ व्यवहारसाधनाय **पिशङ्गान्** रक्तपीतवर्णान् **आ+लभते** समन्तात् प्राप्नोति; **स सततं सुखी भवति** ॥ २४ । ११ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य—(वसन्ताय) वसन्त ऋतु के सुख के लिए (धूम्रान्) धूम रंग के पदार्थों एवं पशुओं को, (ग्रीष्माय) ग्रीष्म ऋतु के सुख के लिए (श्वेतान्) सफेद रंग के; (वर्षाभ्यः) वर्षा ऋतु में कार्य-सिद्धि के लिए (कृष्णान्) काले रंग वाले वा कृषि के साधकों को, (शरदे) शरद् ऋतु के सुख के लिए (अरुणान्) थोड़े लाल रंग के; (हेमन्ताय) हेमन्त ऋतु में कार्य सिद्धि के लिए (पृषतः) स्थूल=मोटे, (शिशिराय) शिशिर ऋतु में व्यवहार सिद्धि के लिए (पिशङ्गान्) लाल-पीले रंग के पदार्थों एवं पशुओं को (आ+लभते) सब ओर से प्राप्त करता है; वह सदा सुखी होता है ॥ २४ । ११ ॥

भावार्थः—मनुष्यैर्यस्मिन्नृतौ ये पदार्थाः संचयनीयाः सेवनीयाश्च स्युस्तान् संचित्य, संसेव्याऽरोगा भूत्वा धर्मार्थकाममोक्षसाधनान्यनुष्ठातव्यानि ॥ २४ । ११ ॥

भावार्थ—मनुष्य—जिस ऋतु में जो पदार्थ संचय और सेवन करने योग्य हों उनका संचय और सेवन करके, नीरोग होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के साधनों का अनुष्ठान करें ॥ २४ । ११ ॥

भाष्यसार—**पशु कैसे गुणों वाले हैं**—वसन्त सुख के लिए धूम रंग वाले, ग्रीष्म सुख के लिए सफेद रंग वाले, वर्षा सुख के लिए काले रंग वाले वा कृषि को सिद्ध करने वाले, शरत् सुख के लिए अरुण=कुछ लाल रंग वाले, हेमन्त सुख के लिए स्थूल=मोटे, शिशिर सुख के लिए पिशङ्ग=लाल-पीले रंग वाले पदार्थों को प्राप्त करें। ऋतु के अनुकूल पदार्थों का संचय और सेवन करके नीरोग रहें तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के साधनों का अनुष्ठान करें ॥ २४ । ११ ॥

प्रजापतिः । **अन्याद्यः**=**स्पष्टम्** । विराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

पशु कैसे गुणों वाले हैं, इसका फिर उपदेश किया है ॥

त्र्यवयो गायत्र्यै पञ्चावयस्त्रिष्टुभे दित्यवाहो जगत्यै त्रिवत्सा ऽ अनुष्टुभे तुर्यवाह ऽ उष्णिहे ॥१२॥

पदार्थः—(**त्र्यवयः**) तिस्रोऽवयो येषां ते (**गायत्र्यै**) गायतो रक्षिकायै (**पञ्चावयः**) पञ्च अवयो येषान्ते (**त्रिष्टुभे**) त्रयाणां शारीरवाचिकमानसानां सुखानां स्तम्भनाय=स्थिरीकरणाय (**दित्यवाहः**) दितौ=खण्डने भवा दित्यास्तान् ये वहन्ति=प्रापयन्ति ते दित्यवाहः (**जगत्यै**) जगद्रक्षणायै क्रियायै (**त्रिवत्साः**) त्रयो वत्सास्त्रिषु वा निवासो येषान्ते (**अनुष्टुभे**) अनुस्तम्भाय (**तुर्यवाहः**) ये तुर्यं=चतुर्थं वहन्ति ते (**उष्णिहे**) उत्कृष्टतया स्निह्यति यया तस्यै क्रियायै ॥ १२ ॥

अन्वयः—ये त्र्यवयो गायत्र्यै पञ्चावयस्त्रिष्टुभे दित्यवाहो जगत्यै त्रिवत्सा अनुष्टुभे तुर्यवाह उष्णिहे च प्रयतेरँस्ते सुखिनः स्युः ॥ १२ ॥

सपदार्थान्वयः—**ये त्र्यवयः** तिस्रोऽवयो येषां ते, **गायत्र्यै** गायतो रक्षिकायै; **पञ्चावयः** पञ्च अवयो येषान्ते **त्रिष्टुभे** त्रयाणां शारीरवाचिक-मानसानां सुखानां स्तम्भनाय=स्थिरीकरणाय; **दित्यवाहः** दितौ=खण्डने भवा दित्यास्तान् ये वहन्ति=प्रापयन्ति ते दित्यवाहः **जगत्यै** जगद्-रक्षणायै क्रियायै, **त्रिवत्साः** त्रयो वत्सास्त्रिषु वा निवासो येषान्ते, **अनुष्टुभे** अनुस्तम्भाय, **तुर्यवाहः** ये तुर्यं=चतुर्थं वहन्ति ते **उष्णिहे** उत्कृष्टतया स्निह्यति यया तस्यै क्रियायै **च प्रयतेरँस्ते सुखिनः स्युः** ॥ २४ । १२ ॥

भाषार्थ—जो (त्र्यवयः) तीन भेड़ों वाले हैं वे (गायत्र्यै) गायक की रक्षा के लिए; जो (पञ्चावयः) पाँच भेड़ों वाले हैं वे (त्रिष्टुभे) शारीरिक, वाचिक और मानसिक तीन सुखों को स्थिर करने के लिए; जो (दित्यवाहः) भूमि आदि को खोदने वाले बैलों को प्राप्त करने वाले हैं वे (जगत्यै) जगत् की रक्षा के लिए; जो (त्रिवत्साः) तीन बछड़ों वाले वा नाम, स्थान, जन्म तीनों में निवास करने वाले हैं वे (अनुष्टुभे) अनुकूलता पूर्वक सुखों को स्थिर करने के लिए; जो (तुर्यवाहः) तुर्य अवस्था को प्राप्त करने वाले हैं वे (उष्णिहे) उत्तम स्नेह के लिए प्रयत्न करें तो सुखी रहें ॥१२॥

भावार्थः—यथा विद्वांसो ऽधीतैर्गायत्र्यादि-छन्दोऽर्थैः सुखानि वर्धयन्ते, तथा पशुपालका घृतादीनि वर्द्धयेयुः ॥ २४ । १२ ॥

भावार्थ—जैसे विद्वान् लोग पढ़े हुए गायत्री आदि छन्दों के अर्थों से सुखों को बढ़ाते हैं वैसे पशुपालक लोग घृत आदि पदार्थों को बढ़ावें ॥ २४ । १२ ॥

भाष्यसार—पशु कैसे गुणों वाले हैं—तीन भेड़ों वाले मनुष्य गायक की रक्षा के लिए प्रयत्न करें। पाँच भेड़ों वाले मनुष्य शारीरिक, वाचिक और मानसिक तीन सुखों को स्थिर रखने के लिए प्रयत्न करें। हल से भूमि का खण्डन (खनन) करने वाले बैलों को प्राप्त करने वाले मनुष्य जगत् की रक्षा के लिए प्रयत्न करें। तीन बछड़ों वाले अथवा नाम, जन्म, स्थान तीन धामों में निवास करने वाले मनुष्य अनुकूलतापूर्वक सुखों को स्थिर रखने के लिए प्रयत्न करें। तुर्य अवस्था को प्राप्त करने वाले मनुष्य सबसे स्नेह के लिए प्रयत्न करें।

जैसे विद्वान् लोग पढ़े हुए गायत्री आदि छन्दों के अर्थों से सुखों को बढ़ाते हैं वैसे भेड़ आदि पशुओं के पालक मनुष्य घृत आदि पदार्थों को बढ़ावें ॥ २४ । १२ ॥ ●

प्रजापतिः । **विराजादयः**=स्पष्टम् । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

पशु कैसे गुणों वाले हैं, इसका फिर उपदेश किया है ॥

पष्ठवाहो विराज ऽ उक्षाणो बृहत्या ऽ ऋषभाः ककुभेऽनड्वाहः पङ्क्त्यै धेनवोऽतिच्छन्दसे ॥१३॥

पदार्थः—(**पष्ठवाहः**) ये पष्ठेन=पृष्ठेन वहन्ति ते (**विराजे**) विराट्छन्दसे (**उक्षाणः**) वीर्य-सेचनसमर्थाः (**बृहत्यै**) बृहतीछन्दोऽर्थाय (**ऋषभाः**) बलिष्ठाः (**ककुभे**) ककुबुष्णिक्छन्दोऽर्थाय (**अनड्वाहः**) शकटवहनसमर्थाः (**पङ्क्त्यै**) पङ्क्तिच्छन्दोऽर्थाय (**धेनवः**) दुग्धदात्र्यः (**अतिछन्दसे**) अतिजगत्यादि-च्छन्दोऽर्थाय ॥ १३ ॥

अन्वयः—यैर्मनुष्यैर्विराजे पष्ठवाहो बृहत्या उक्षाणः ककुभे ऋषभाः पङ्क्त्या अनड्वाहोऽतिच्छन्दसे धेनवः स्वीक्रियन्ते तेऽतिसुखं लभन्ते ॥ १३ ॥

सपदार्थान्वयः — **यैर्मनुष्यैर्विराजे** विराट्छन्दसे **पष्ठवाहः** ये पष्ठेन=पृष्ठेन वहन्ति ते, **बृहत्यै** बृहतीछन्दोऽर्थाय **उक्षाणः** वीर्यसेचनसमर्थाः, **ककुभे** ककुबुष्णिक्छन्दोऽर्थाय **ऋषभाः** बलिष्ठाः, **पङ्क्त्यै** पङ्क्तिच्छन्दोऽर्थाय **अनड्वाहः** शकटवहनसमर्थाः, **अतिछन्दसे** अतिजगत्यादिच्छन्दोऽर्थाय **धेनवः** दुग्धदात्र्यः **स्वीक्रियन्ते**; **तेऽतिसुखं लभन्ते** ॥२४।१३॥

भाषार्थ—जो मनुष्य—(विराजे) विराट् छन्द के अर्थ के लिए (पष्ठवाहः) पीठ से भार वहन करने वाले; (बृहत्यै) बृहती छन्द के अर्थ के (उक्षाणः) वीर्य सेचन में समर्थ सांड, (ककुभे) ककुप् उष्णिक् छन्द के अर्थ के लिए (ऋषभः) बलिष्ठ बैल, (पंक्त्यै) पंक्ति छन्द के अर्थ के लिए (अनड्वाहः) शकट=छकड़े को ले जाने में समर्थ बैल, (अतिछन्दसे) अति जगती आदि छन्द के अर्थ के लिए (धेनवः) दुधारू गौवों को स्वीकार करते हैं वे अति सुख को प्राप्त होते हैं ॥ २४।१३॥

भावार्थः—यथा विद्वांसो विराडादिच्छन्दोभ्यो बहूनि विद्याकार्याणि साध्नुवन्ति, तथोष्ट्रादिभ्यः पशुभ्यो गृहस्था अखिलानि कार्याणि साध्नुयुः ॥ २४ । १३ ॥

भावार्थ—जैसे विद्वान् लोग विराट् आदि छन्दों से बहुत विद्या-कार्यों को सिद्ध करते हैं, वैसे ऊँट आदि पशुओं से गृहस्थ लोग सब कार्यों को सिद्ध करें ॥ २४ । १३ ॥

भा० पदार्थः—पष्ठवाहः=उष्ट्रादयः पशवः ॥

भाष्यसार—**पशु कैसे गुणों वाले हैं**—जैसे विद्वान् लोग विराट्, बृहती, ककुप्, पंक्ति, अतिछन्द इन छन्दों से अनेक विद्या-कार्यों को सिद्ध करते हैं वैसे गृहस्थ लोग पीठ से भार को वहन करने वाले ऊँट, वीर्य सेचन में समर्थ सांड, बलिष्ठ बैल, शकट=छकड़े आदि को ले जाने में समर्थ बैल आदि तथा दुधारू गौओं को स्वीकार करें, उनका पालन करें तथा उनसे सब कार्यों को सिद्ध करें ॥ २४ । १३ ॥ ●

प्रजापतिः । **अग्न्यादयः**=**अग्नि-सोम-सवितृ-सरस्वती-पूष-मरुत्-विश्वेदेवाः ।**

भुरिगतिजगती । निषादः ।

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

पशु कैसे गुणों वाले हैं, इसका फिर उपदेश किया है ॥

कृष्णग्रींवा ऽ आग्नेया बभ्रवः सौम्या ऽ उपध्वस्ताः सावित्रा वत्सतर्यः सारस्वत्यः श्यामाः पौष्णाः पृश्नयो मारुता बहुरूपा वैश्वदेवा वशा द्यावापृथिवीयाः ॥ १४ ॥

पदार्थः—(**कृष्णग्रीवाः**) कृष्णकण्ठाः (**आग्नेयाः**) अग्निदेवताकाः (**बभ्रवः**) सर्वस्य धारकाः पोषका वा (**सौम्याः**) सोमदेवताकाः (**उपध्वस्ताः**) उपाधः=पतिताः (**सावित्राः**) सवितृदेवताकाः (**वत्सतर्य्यः**) ह्रस्वा वत्सा यासां ताः (**सारस्वत्यः**) वाग्देवताकाः (**श्यामाः**) श्यामवर्णाः (**पौष्णाः**) पुष्टिकरमेघदेवताकाः (**पृश्नयः**) प्रष्टव्याः (**मारुताः**) मनुष्यदेवताकाः (**बहुरूपाः**) बहूनि रूपाणि येषान्ते (**वैश्वदेवाः**) विश्वेदेवदेवताकाः (**वशाः**) देदीप्यमानाः (**द्यावापृथिवीयाः**) द्यावापृथिवीदेवताकाः ॥ १४ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या युष्माभिर्ये कृष्णग्रीवास्त आग्नेयाः । ये बभ्रवस्ते सौम्याः । ये उपध्व-

स्तास्ते सावित्राः । या वत्सतर्यस्ताः सारस्वत्यः । ये श्यामास्ते पौष्णाः । ये पृश्नयस्ते मारुताः । ये बहुरूपास्ते वैश्वदेवाः । ये वशास्ते च द्यावापृथिवीया विज्ञेयाः ।। १४ ।।

सपदार्थान्वयः — हे मनुष्याः ! युष्माभिर्ये **कृष्णग्रीवाः** कृष्णकण्ठाः **त आग्नेयाः** अग्निदेवताकाः, **ये बभ्रवः** सर्वस्य धारकाः पोषका वा **ते सौम्याः** सोमदेवताकाः, **य उपध्वस्ताः** उपाधः=पतिताः **ते सावित्राः** सवितृदेवताकाः, **या वत्सतर्यः** ह्रस्वा वत्सा यासां ताः **ताः सारस्वत्यः** वाग्देवताकाः, **ये श्यामाः** श्यामवर्णाः **ते पौष्णाः** पुष्टिकरमेघदेवताकाः, **ये पृश्नयः** प्रष्टव्याः **ते मारुताः** मनुष्यदेवताकाः, **ये बहुरूपाः** बहूनि रूपाणि येषान्ते **ते वैश्वदेवाः** विश्वेदेवदेवताकाः, **ये वशाः** देदीप्यमानाः **ते च द्यावापृथिवीयाः** द्यावापृथिवीदेवताकाः **विज्ञेयाः** ।। २४ । १४ ।।

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—जो (कृष्णग्रीवाः) काले कंठ वाले पशु हैं वे (आग्नेयाः) अग्नि देवता वाले; जो (बभ्रवः) सब के धारक वा पोषक पशु हैं वे (सौम्याः) सोम देवता वाले; जो (उपध्वस्ताः) नीचे गिरने वाले पशु हैं वे (सावित्राः) सविता=सूर्य देवता वाले हैं; जो (वत्सतर्यः) छोटे बछड़ों वाली गौ हैं वे (सारस्वताः) वाणी देवता वाली हैं; जो (श्यामाः) श्याम वर्ण वाले हैं वे (पौष्णाः) पुष्टिकर मेघ देवता वाले हैं; जो (पृश्नयः) जो पूछने योग्य=अज्ञात हैं वे (मारुताः) मनुष्य देवता वाले हैं; जो (बहुरूपाः) बहुत रूप वाले हैं वो (वैश्वदेवाः) विश्वदेव देवता वाले हैं; जो (वशाः) देदीप्यमान=प्रकाशमान हैं वे (द्यावापृथिवीयाः) द्यावा-पृथिवी देवता वाले हैं; ऐसा समझो ।। १४ ।।

भावार्थः—यथा शिल्पिनोऽग्न्यादिभ्यः पदार्थेभ्योऽनेकानि कार्याणि साध्नुवन्ति, तथा कृषीवलाः पशुभिर्बहूनि कार्याणि साध्नुयुः ।। २४ । १४ ।।

भावार्थ—जैसे शिल्पी लोग अग्नि आदि पदार्थों से अनेक कार्य सिद्ध करते हैं, वैसे किसान लोग पशुओं से बहुत कार्य सिद्ध करें ।। २४ । १४ ।।

भाष्यसार—**पशु कैसे गुणों वाले हैं**—काले कण्ठ वाले पशु अग्नि के गुणों से युक्त हैं। सबका धारण-पोषण करने वाले पशु सोम (ओषधि विशेष) के गुणों से युक्त हैं। नीचे गिरने वाले पशु सूर्य के गुणों से युक्त हैं। छोटे बछड़ों वाली गौवें सरस्वती (वाणी) के गुणों से युक्त हैं। श्याम (सांवला) वर्ण वाले पशु पुष्टिकारक मेघ के गुणों से युक्त हैं। प्रष्टव्य अर्थात् ज्ञातव्य पशु हैं वे मनुष्य के गुणों से युक्त हैं । बहुत रूपों वाले पशु विश्वदेव (सब विद्वान्) के गुणों से युक्त हैं। प्रकाशमान (चमकीले) पशु द्युलोक और भूलोक के गुणों से युक्त हैं। जैसे शिल्पी लोग अग्नि, सोम, सविता, सरस्वती, मेघ, मनुष्य, विश्वदेव और द्यावापृथिवी से अनेक कार्यों को सिद्ध करते हैं वैसे किसान लोग मन्त्रोक्त पशुओं से अनेक कार्यों को सिद्ध करें ।। २४ । १४ ।। ●

प्रजापतिः । **इन्द्रादयः**=**वायु-आदयः** । विराडुष्णिक् । ऋषभः ।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

पशु कैसे गुणों वाले हैं, इसका फिर उपदेश किया है ।।

उ॒क्ताः स॑ञ्च॒रा ऽ ए॒ता ऽ ऐ॑न्द्रा॒ग्नाः कृ॒ष्णा वा॑रु॒णाः पृश्न॑यो मारु॒ताः का॒यास्तू॑प॒राः ॥ १५ ॥

पदार्थः—(**उक्ताः**) कथिताः (**सञ्चराः**) ये सम्यक् चरन्ति ते (एताः) (ऐन्द्राग्नाः) इन्द्राग्निदेवताकाः (**कृष्णाः**) कर्षकाः (**वारुणाः**) वरुणदेवताकाः (**पृश्नयः**) विचित्रचिह्नाः (**मारुताः**) (**कायाः**) प्रजापतिदेवताकाः (**तूपराः**) हिंसकाः ।। १५ ।।

अन्वयः—हे मनुष्या युष्माभिरेता उक्ताः संचरा ऐन्द्राग्नाः कृष्णाः वारुणाः पृश्नयो मारुतास्तूपराः कायाश्च सन्तीति बोध्यम् ॥ १५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! **युष्माभिरेता उक्ताः** कथिताः **सञ्चराः** ये सम्यक् चरन्ति ते **ऐन्द्राग्नाः** इन्द्राग्निदेवताकाः, **कृष्णाः** कर्षकाः **वारुणाः** वरुणदेवताकाः, **पृश्नयः** विचित्र-चिह्नाः **मारुताः तूपराः** हिंसकाः **कायाः** प्रजापति-देवताकाः **च सन्तीति बोध्यम्** ॥ २४ । १५ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—(एताः) इन (उक्ताः) उक्त (संचराः) घूमने वाले पशुओं को (ऐन्द्राग्नाः) इन्द्र और अग्नि देवता वाले; जो (कृष्णाः) हल आदि का कर्षण करने वाले हैं वे (वारुणाः) वरुण देवता वाले; जो (पृश्नयः) विचित्र चिह्न वाले हैं वे (मारुताः) मनुष्य देवता वाले; और जो (तूपराः) हिंसक हैं वे (कायाः) प्रजापति देवता वाले हैं; ऐसा समझो ॥२४।१५॥

भावार्थः—ये नानादेशसंचारिणः प्राणिन-स्सन्ति, तैर्मनुष्या यथायोग्यानुपकारान् गृह्णीयुः ॥ २४ । १५ ॥

भावार्थ—जो नाना देशों में संचार=घूमने वाले प्राणी हैं उनसे मनुष्य यथायोग्य उपकार ग्रहण करें ॥ २४ । १५ ॥

भा० पदार्थः—संचराः=नानादेशसंचारिणः प्राणिनः ॥

भाष्यसार—**पशु कैसे गुणों वाले हैं**—नाना देशों में घूमने वाले पशु इन्द्र=वायु और अग्नि के गुणों से युक्त हैं। हल आदि को खैंचने वाले पशु हैं वे वरुण=जल के गुणों से युक्त हैं। हिंसक पशु प्रजापति के गुणों से युक्त हैं। इन पशुओं से मनुष्य यथायोग्य उपकार ग्रहण करें ॥ २४ ।१५ ॥

प्रजापतिः । **अग्न्यादयः=सेनापत्यादयः** । शक्वरी । धैवतः ॥

पुनः कस्मै के रक्षणीया इत्याह ॥

फिर किसके लिए कौन रक्षा करने योग्य हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

अग्नयेऽनीकवते प्रथमजानालभते मरुद्भ्यः सान्तपनेभ्यः सवात्यान् मरुद्भ्यो गृहमेधिभ्यो बष्किहान् मरुद्भ्यः क्रीडिभ्यः सꣳसृष्टान् मरुद्भ्यः स्वतवद्भ्योऽनुसृष्टान् ॥ १६ ॥

पदार्थः—(**अग्नये**) पावक इव वर्त्तमानाय सेनापतये (**अनीकवते**) प्रशंसितसेनाय (**प्रथमजान्**) प्रथमाद्विस्तीर्णात्कारणादुत्पन्नान् (**आ**) (**लभते**) (**मरुद्भ्यः**) वायुवद्वर्त्तमानेभ्यो मनुष्येभ्यः (**सान्तपनेभ्यः**) सम्यक् तपनं=ब्रह्मचर्य्याद्याचरणं येषान्तेभ्यः (**सवात्यान्**) समानवाते भवान् (**मरुद्भ्यः**) प्राण इव प्रियेभ्यः (**गृहमेधिभ्यः**) गृहस्थेभ्यः (**बष्किहान्**) चिरप्रसूतान् (**मरुद्भ्यः**) (**क्रीडिभ्यः**) प्रशंसितक्रीडेभ्यः (**संसृष्टान्**) सम्यग्गुणयुक्तान् (**मरुद्भ्यः**) मनुष्येभ्यः (**स्वतवद्भ्यः**) स्वतो=वासो येषान्तेभ्यः (**अनुसृष्टान्**) अनुषङ्गिणः ॥ १६ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा विद्वांसोऽनीकवतेऽग्नये प्रथमजान् सान्तपनेभ्यो मरुद्भ्यः सवात्यान् गृहमेधिभ्यो मरुद्भ्यो बष्किहान् क्रीडिभ्यो मरुद्भ्यः संसृष्टान् स्वतवद्भ्यो मरुद्भ्योऽनुसृष्टाना-लभते तथैव यूयमेतानालभध्वम् ॥ १६ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यथा विद्वान्—अनीकवते** प्रशंसितसेनाय **अग्नये** पावक

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् (अनीकवते) प्रशंसित सेना वाले (अग्नये) अग्नि

इव वर्त्तमानाय सेनापतये **प्रथमजान्** प्रथमाद्विस्तीर्णात्कारणादुत्पन्नान्, **सान्तपनेभ्यः** सम्यक् तपनं=ब्रह्मचर्याद्याचरणं येषान्तेभ्यः **मरुद्भ्यः** वायुवद् वर्त्तमानेभ्यो मनुष्येभ्यः **सवात्यान्** समानवाते भवान्. **गृहमेधिभ्यः** गृहस्थेभ्यः **मरुद्भ्यः** प्राण इव प्रियेभ्यः **बष्किहान्** चिरप्रसूतान्, **क्रीडिभ्यः** प्रशंसितक्रीडेभ्यः **मरुद्भ्यः संसृष्टान्** सम्यग्गुणयुक्तान्, **स्वतवद्भ्यः** स्वतो=वासो येषान्तेभ्यः **मरुद्भ्यः** मनुष्येभ्यः **अनुसृष्टान्** अनुषङ्गिणः **आ+लभते; तथैव यूयमेतानालभध्वम्** ॥ २४ । १६ ॥

के तुल्य सेनापति के लिए (प्रथमजान्) प्रथम=मुख्य कारण से उत्पन्न वीरों को; (सान्तपनेभ्यः) उत्तम तप अर्थात् ब्रह्मचर्य आदि का आचरण करने वाले (मरुद्भ्यः) वायु के तुल्य बलवान् मनुष्यों के लिए (सवात्यान्) अनुकूल वायु में रहने वाले पशुओं को; (गृहमेधिभ्यः) गृहस्थ (मरुद्भ्यः) प्राणों के समान प्रिय मनुष्यों के लिए (बष्किहान्) चिर प्रसूत=उत्पन्न पशुओं को, (क्रीडिभ्यः) प्रशंसित क्रीडा=खेल वाले (मरुद्भ्यः) मनुष्यों के लिए (संसृष्टान्) उत्तम गुण युक्त पशुओं को; (स्वतवद्भ्यः) स्वत=निवास वाले (मरुद्भ्यः) मनुष्यों के लिए (अनुसृष्टान्) अनुषङ्गी=साथ रहने वाले पशुओं को (आलभते) प्राप्त करता है; वैसे ही तुम इन्हें प्राप्त करो ॥ २४ । १६ ॥

भावार्थः—यथा विद्वद्भिर्विद्यार्थिनः पशवश्च पाल्यन्ते, तथैवेतरैर्मनुष्यैः पालनीयाः ॥ २४ । १६ ॥

भावार्थ—जैसे विद्वान् लोग विद्यार्थियों और पशुओं का पालन करते हैं; वैसे अन्य मनुष्य भी उनका पालन करें ॥ २४ । १६ ॥

भा० पदार्थः—सान्तपनेभ्यः=विद्यार्थिभ्यः । बष्किहान्=पशून् ॥

भाष्यसार—किसके लिए किन की रक्षा करें—विद्वान् लोग प्रशंसित सेना वाले, अग्नि के समान तेजस्वी सेनापति के लिए प्रधान कारण से उत्पन्न वीरों की रक्षा करें। उत्तम तप अर्थात् ब्रह्मचर्य आदि का आचरण करने वाले, वायु के समान बलवान् मनुष्यों के लिए अनुकूल वायु में रहने वाले पशुओं की रक्षा करें। प्राण के समान प्रिय गृहस्थ लोगों के लिए चिर प्रसूत गौ आदि पशुओं की रक्षा करें। प्रशंसित क्रीडा वाले मनुष्यों के लिए उत्तम गुण से युक्त पशुओं की रक्षा करें। जैसे विद्वान् लोग विद्यार्थियों और पशुओं का पालन करते हैं वैसे सब मनुष्य इनका पालन करें ॥ २४ । १६ ॥ ●

प्रजापतिः । **इन्द्राग्न्यादयः=वायुविद्युदादयः** । भुरिग्गायत्री । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

किस के लिए कौन रक्षणीय है, इसका फिर उपदेश किया है ॥

उ॒क्ताः स॑ञ्च॒रा ऽ ए॒ता ऽ ऐ॑न्द्रा॒ग्नाः प्रा॑शृ॒ङ्गा मा॑हे॒न्द्रा ब॑हुरू॒पा वैश्वकर्म॒णाः ॥ १७ ॥

पदार्थः—(**उक्ताः**) निरूपिताः (**सञ्चराः**) संचरन्ति येषु ते मार्गाः (**एताः**) (**ऐन्द्राग्नाः**) वायुविद्युद्देवताकाः (**प्राशृङ्गाः**) प्रकृष्टानि शृङ्गाणि येषान्ते (**माहेन्द्राः**) महेन्द्रदेवताकाः (**बहुरूपाः**) बहुवर्णयुक्ताः (**वैश्वकर्मणाः**) विश्वकर्मदेवताकाः ॥ १७ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या युष्माभिर्य एता ऐन्द्राग्नाः प्राशृङ्गा माहेन्द्रा बहुरूपा वैश्वकर्मणाः सञ्चरा उक्तास्तेषु गन्तव्यम् ॥ १७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः! युष्माभिर्य एता ऐन्द्राग्नाः वायुविद्युद्देवताकाः, **प्राशृङ्गाः** प्रकृष्टानि शृङ्गाणि येषान्ते **माहेन्द्राः** महेन्द्रदेवताकाः, **बहुरूपाः** बहुवर्णयुक्ताः **वैश्वकर्मणाः** विश्वकर्मदेवताकाः, **सञ्चराः** सञ्चरन्ति येषु ते मार्गाः **उक्ताः** निरूपिताः **तेषु गन्तव्यम्** ॥ २४ । १७ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—जो (एताः) ये (ऐन्द्राग्नाः) वायु और विद्युत् देवता वाले, (प्राशृङ्गाः) उत्तम शृङ्ग=सींगों वाले, (माहेन्द्राः) महेन्द्र देवता वाले, (बहुरूपाः) बहुत वर्ण=रंगों वाले, (वैश्वकर्माणः) विश्वकर्मा देवता वाले पशु एवं (संचाराः) उनके पालन के मार्ग (उक्ताः) बतलाये हैं; उन मार्गों में चलो ॥ २४ । १७ ॥

भावार्थः—यथा विद्वद्भिः पश्वादिपालनमार्गा उक्तास्तथैव वेदे प्रतिपादिताः सन्ति ॥ १७ ॥

भावार्थ—जैसे विद्वानों ने पशु आदि के पालन करने के मार्ग बतलाये हैं, वैसे ही वेद में प्रतिपादित हैं ॥ २४ । १७ ॥

भाष्यसार—**किस के लिए किन की रक्षा करें**—विद्वान् लोग सब मनुष्यों के लिए वायु और विद्युत् के गुणों से युक्त, उत्तम शृङ्ग=सींगों वाले, महेन्द्र के गुणों से युक्त, बहुत रूपवान्, विश्वकर्मा के गुणों से युक्त, पशुओं की रक्षा करें। इनकी रक्षा के जो मार्ग वेद में प्रतिपादित किए हैं उनका आचरण करें ॥ २४ । १७ ॥

प्रजापतिः । **पितरः=जनकाः** । भुरिगतिजगती । निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

किस के लिए कौन रक्षणीय है, इसका फिर उपदेश किया है ॥

धूम्रा ब॒भ्रुनी॑काशाः पि॒तॄ॒णाᳩ सोम॑वतां ब॒भ्रवो॑ धू॒म्रनी॑काशाः पि॒तॄ॒णां ब॑र्हि॒षदां॑ कृ॒ष्णा ब॒भ्रुनी॑काशाः पि॒तॄ॒णाम॑ग्निष्वा॒त्तानां॑ कृ॒ष्णाः पृष॑न्तस्त्रै॒यम्ब॒काः ॥ १८ ॥

पदार्थः—(**धूम्राः**) धूम्रवर्णाः (**बभ्रुनीकाशाः**) नकुलसदृशाः (**पितृणाम्**) जनकजननीनाम् (**सोमवताम्**) सोमगुणयुक्तानाम् (**बभ्रवः**) पुष्टिकर्त्तारः (**धूम्रनीकाशाः**) (**पितृणाम्**) (**बर्हिषदाम्**) ये बर्हिषि=सभायां सीदन्ति तेषां (**कृष्णाः**) कृष्णवर्णाः (**बभ्रुनीकाशाः**) पालकसदृशाः (**पितृणाम्**) (**अग्निष्वात्तानाम्**) गृहीताग्निविद्यानाम् (**कृष्णाः**) कृष्णवर्णाः (**पृषन्तः**) स्थूलाङ्गाः (**त्रैयम्बकाः**) त्रिष्वधिकारेष्वम्बकं=लक्षणं येषान्ते ॥ १८ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या युष्माभिः सोमवतां पितृणां बभ्रुनीकाशाः धूम्रा, बर्हिषदां पितृणां कृष्णा धूम्रनीकाशाः, बभ्रवो, ऽग्निष्वात्तानां पितृणां बभ्रुनीकाशाः कृष्णाः, पृषन्तस्त्रैयम्बकाश्च सन्तीति विज्ञेयाः ॥ १८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! युष्माभिः **सोमवतां** सोमगुणयुक्तानां **पितृणां** जनकजननीनां **बभ्रुनीकाशाः** नकुलसदृशाः **धूम्राः** धूम्रवर्णाः, **बर्हिषदां** ये बर्हिषि=सभायां सीदन्ति तेषां **पितृणां कृष्णाः** कृष्णवर्णाः **धूम्रनीकाशा बभ्रवः** पुष्टिकर्त्तारः, **अग्निष्वात्तानां** गृहीताग्नि-

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—(सोमवताम्) सोम गुण से युक्त (पितृणाम्) माता और पिता के लिए (बभ्रुनीकाशाः) नेवले के समान (धूम्राः) धूम रंग वाले पशु, (बर्हिषदाम्) सभासद् (पितृणाम्) पितर लोगों के लिए (कृष्णाः) काले, (धूम्रनीकाशाः) धूम के सदृश, (बभ्रवः) पुष्टि

विद्यानां **पितृणां बभ्रुनीकाशाः** पालकसदृशाः **कृष्णाः** कृष्णवर्णाः **पृषन्तः** स्थूलाङ्गाः **त्रैयम्बकाः** त्रिष्वधिकारेष्वम्बकं=लक्षणं येषान्ते **च सन्तीति विज्ञेयाः** ॥ २४ । १८ ॥

करने वाले पशु; (अग्निष्वात्तानाम्) अग्नि-विद्या के ज्ञाता (पितृणाम्) पितरों के लिए (बभ्रुनीकाशाः) पालक, (कृष्णाः) काले, (पृषन्तः) स्थूल अंगों वाले (त्रैयम्बकाः) तीन स्थानों में विशेष चिह्न वाले पशु हैं; ऐसा समझो ॥ २४ । १८ ॥

भावार्थः—ये जनका विद्याजन्मदातारश्च सन्ति, तेषां घृतादिभिर्गवादिदानैश्च यथायोग्यं सत्कारः कर्त्तव्यः ॥ २४ । १८ ॥

भावार्थ—जो माता-पिता और विद्या-जन्म के दाता पितर लोग हैं उनका घृत आदि पदार्थों और गौ आदि पशुओं के दान से यथायोग्य सत्कार करें ॥ २४ । १८ ॥

भाष्यसार—**किसके लिए किन की रक्षा करें**—सौम्य गुणों वाले माता-पिता के लिए नकुल=नेवले तथा धूम के समान वर्ण वाले पशुओं की रक्षा करें। सभासद् पितर जनों के लिए काले तथा धूम रंग वाले और पुष्टिकारक पशुओं की रक्षा करें। अग्नि विद्या के ज्ञाता पितर जनों के लिए पालक, काले रंग वाले, स्थूल अंगों वाले तीन लोकों में रक्षा करने वाले पशुओं की रक्षा करें। माता-पिता और विद्या-जन्म के दाता पितर लोगों का घृत आदि पदार्थों तथा गौ आदि पशुओं के दान से यथायोग्य सत्कार करें ॥ २४ । १८ ॥

प्रजापतिः । **वायुः=वायुवद्दिव्यगुणः पशुः** । त्रिपाद्गायत्री । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

किस के लिए कौन रक्षणीय है, इसका फिर उपदेश किया है ॥

उक्ताः संञ्चराऽएताः शुनासीरीयाः श्वेता वायव्याः श्वेताः सौर्य्याः ॥ १९ ॥

पदार्थः—(उक्ताः) (संचराः) (एताः) (शुनासीरीयाः) शुनासीरदेवताकाः कृषिसाधकाः (श्वेताः) श्वेतवर्णाः (वायव्याः) वायुवद्दिव्यगुणाः (श्वेताः) (सौर्य्याः) सूर्यवत्प्रकाशमानाः ॥ १९ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यूयं य एताः शुनासीरीयाः संचरा वायव्याः श्वेताः सौर्य्याः श्वेताश्चोक्तास्तान् कार्येषु सम्प्रयुङ्ध्वम् ॥ १९ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यूयं य एताः शुनासीरीयाः** शुनासीरदेवताकाः कृषिसाधकाः, **सञ्चरा वायव्याः** वायुवद्दिव्यगुणाः, **श्वेताः** श्वेतवर्णाः **सौर्य्याः** सूर्यवत्प्रकाशमानाः, **श्वेताः** श्वेतवर्णाः **चोक्तास्तान् कार्येषु सम्प्रयुङ्ध्वम्** ॥ २४ । १९ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—जो (एताः) (शुनासीरीयाः) शुनासीर देवता वाले, कृषि के साधक, (संचराः) घूमने वाले, (वायव्याः) वायु के समान दिव्य गुणों वाले, (श्वेताः) सफेद रंग वाले (सौर्य्याः) सूर्य के समान प्रकाशमान, और (श्वेताः) सफेद रंग वाले पशु बतलाए हैं, उन्हें कार्यों में प्रयुक्त करो ॥ २४ । १९ ॥

भावार्थः—या यस्य पशोर्देवता उक्ता स तद्गुणो ग्राह्यः ॥ २४ । १९ ॥

भावार्थ—जो जिस पशु का देवता बतलाया है वह पशु उस गुण वाला है, ऐसा समझें ॥१९॥

भाष्यसार—**किसके लिए किन की रक्षा करें**—विद्वान् लोग सब मनुष्यों के लिए कृषि साधक बैल आदि, नाना देशों में घूमने वाले, वायु के समान दिव्य गुणों वाले, सूर्य के समान प्रकाशमान

(चमकीले) और श्वेत रंग वाले पशुओं की रक्षा करें; और उन्हें कार्यों में प्रयुक्त करें। यहाँ जिस पशु का जो देवता बतलाया है उसका अभिप्राय यह है कि वह पशु उसके गुणों से युक्त है ।। २४ । १९ ।।

प्रजापतिः । **वसन्तादयः**=स्पष्टम् । विराड्जगती । निषादः ।।

पुनः कस्मै के समाश्रयितव्या इत्याह ।।

फिर किसके लिए कौन अच्छे प्रकार आश्रय करने योग्य हैं, इस विषय का उपदेश किया है ।।

वसन्ताय कपिञ्जलानालभते ग्रीष्माय कलविङ्कान् वर्षाभ्यस्तित्तिरीञ्छरदे वर्त्तिका हेमन्ताय ककराञ्छिशिराय विककरान् ।। २० ।।

पदार्थः—(**वसन्ताय**) (**कपिञ्जलान्**) पक्षिविशेषान् (**आ**) (**लभते**) (**ग्रीष्माय**) (**कलविङ्कान्**) चटकान् (**वर्षाभ्यः**) (**तित्तिरीन्**) (**शरदे**) (**वर्त्तिकाः**) पक्षिविशेषाः (**हेमन्ताय**) (**ककरान्**) पक्षिविशेषान् (**शिशिराय**) (**विककरान्**) विकिरकान् पक्षिविशेषान् ।। २० ।।

अन्वयः—हे मनुष्याः पक्षिविज्जनो वसन्ताय यान् कपिञ्जलान् ग्रीष्माय कलविङ्कान् वर्षाभ्यस्तित्तिरीञ्छरदे वर्त्तिका हेमन्ताय ककराञ्छिशिराय विककरानालभते तान् यूयं विजानीत ।। २० ।।

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! **पक्षीविज्जनो वसन्ताय यान् कपिञ्जलान्** पक्षिविशेषान्, **ग्रीष्माय कलविङ्कान्** चटकान्, **वर्षाभ्यस्तित्तिरीन्, शरदे वर्तिकाः** पक्षिविशेषाः, **हेमन्ताय ककरान्** पक्षिविशेषान्, **शिशिराय विककरान्** विकिरकान् पक्षिविशेषान् **आ+लभते; तान् यूयं विजानीत** ।। २४ । २० ।।

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! पक्षियों का ज्ञाता मनुष्य—(वसन्ताय) वसन्त ऋतु के लिए (कपिञ्जलान्) पपीहा, टटीहरी पक्षी विशेषों को; (ग्रीष्माय) ग्रीष्म ऋतु के लिए (कलविंकान्) चिड़ों को, (वर्षाभ्यः) वर्षा ऋतु के लिए (तित्तिरीन्) तीतरों को, (शरदे) शरद् ऋतु के लिए (वर्त्तिकाः) बटेर, लवा पक्षी विशेषों को, (हेमन्ताय) हेमन्त ऋतु के लिए (ककरान्) ककर नामक पक्षी विशेषों को, (शिशिराय) शिशिर ऋतु के लिए (विककरान्) विककर नामक पक्षी विशेषों को (आ+लभते) प्राप्त करता है; उन्हें तुम जानो ।। २४ । २० ।।

भावार्थः—यस्मिन् यस्मिन्नृतौ ये ये पक्षिणः प्रमुदिता भवन्ति, ते ते तद्गुणा विज्ञेयाः ।।२४।२०।।

भावार्थ—जिस-जिस ऋतु में जो-जो पक्षी प्रमुदित=प्रसन्न होते हैं, वे-वे उस गुण वाले हैं; ऐसा समझें ।। २४ । २० ।।

भाष्यसार—किसके लिए किन्हें प्राप्त करें—सब मनुष्य वसन्त ऋतु के लिए कपिंजल=पपीहा को प्राप्त करें; ग्रीष्म ऋतु के लिए कलविंक=चिड़ों को प्राप्त करें; वर्षा ऋतु के लिए तित्तिरों को प्राप्त करें; शरद् ऋतु के लिए बत्तकों को प्राप्त करें; हेमन्त ऋतु के लिए ककर नामक पक्षी विशेषों को प्राप्त करें; शिशिर ऋतु के लिए विककर नामक पक्षी विशेषों को प्राप्त करें। जो पक्षी जिस ऋतु में प्रसन्न होते हैं वे उस ऋतु के गुणों से युक्त होते हैं ।। २४ । २० ।।

प्रजापतिः । **वरुणः**=**जलम्** । विराट् । मध्यमः ॥

पुनः के किमर्थाः सेवनीया इत्याह ॥

किन पशुओं की किसलिए सेवा करें, यह उपदेश किया है ॥

समुद्राय शिशुमारानालभते पर्जन्याय मण्डूकानुद्भ्यो मत्स्यान् मित्राय कुलीपयान् वरुणाय नाक्रान् ॥ २१ ॥

पदार्थः—(**समुद्राय**) महाजलाशयाय (**शिशुमारान्**) ये स्वशिशून् मारयन्ति तान् (**आ**) (**लभते**) (**पर्जन्याय**) मेघाय (**मण्डूकान्**) (**अद्भ्यः**) (**मत्स्यान्**) (**मित्राय**) (**कुलीपयान्**) (**वरुणाय**) (**नाक्रान्**) ॥ २१ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा जलजन्तुपालनवित् समुद्राय शिशुमारान् पर्जन्याय माण्डूकानद्भ्यो मत्स्यान् मित्राय कुलीपयान् वरुणाय नाक्रानालभते तथा यूयमप्यालभध्वम् ॥ २१ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यथा जलजन्तुपालनवित् समुद्राय** महाजलाशयाय **शिशुमारान्** ये स्वशिशून् मारयन्ति तान्, **पर्जन्याय** मेघाय **मण्डूकान्**, **अद्भ्यो मत्स्यान्, मित्राय कुलीपयान्, वरुणाय नाक्रानालभते; तथा यूयमप्यालभध्वम्** ॥ २४ । २१ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे जल-जन्तुओं के पालन को जानने वाला (समुद्राय) समुद्र के लिए (शिशूमारान्) अपने बच्चों को मारने वाले जलचरों को, (पर्जन्याय) मेघ=बादल के लिए (मण्डूकान्) मेढकों को; (अद्भ्यः) जलों के लिए (मत्स्यान्) मछलियों को, (मित्राय) वायु के लिए (कुलीपयान्) कुलीपय नामक जलज जन्तुओं को, (वरुणाय) जल के लिए (नाक्रान्) नाकों को (आ+लभते) प्राप्त करता है; वैसे तुम भी प्राप्त करो ॥२४।२१॥

भावार्थः—यथा जलचरजन्तुगुणविदस्तान् वर्धयितुं निग्रहीतुं वा शक्नुवन्ति, तथाऽन्येऽप्याचरन्तु ॥ २४ । २१ ॥

भावार्थ—जैसे जलचर जन्तुओं के गुणों के ज्ञाता उन्हें बढ़ा सकते हैं वा पकड़ सकते हैं; वैसे अन्य भी आचरण करें ॥ २४ । २१ ॥

भाष्यसार—**किन पशुओं की किसलिए सेवा करें**—जल-जन्तुओं के पालन को जानने वाले लोग समुद्र के गुणों के लिए शिशुमारों की, मेघ के गुणों के लिए मेढकों की, जल के गुणों के लिए मछलियों की, वायु के गुणों के लिए 'कुलीपय' नामक जल जन्तुओं की, जल के गुणों के लिए नाकों की सेवा करें। जैसे जलचर जन्तुओं के गुणों को जानने वाले लोग उन्हें बढ़ा सकते हैं अथवा पकड़ सकते हैं वैसे अन्य मनुष्य भी आचरण करें ॥ २४ । २१ ॥ ●

प्रजापतिः । **सोमादयः**=**सोम-वायु-इन्द्राग्नि-मित्र-वरुणाः** । विराड्बृहती । मध्यमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

किन पशुओं की किसलिए सेवा करें, यह उपदेश किया है ॥

सोमाय हंसानालभते वायवे बलाकाऽइन्द्राग्निभ्यां क्रुञ्चान् मित्राय मद्गून् वरुणाय चक्रवाकान् ॥ २२ ॥

पदार्थः—(**सोमाय**) चन्द्रायौषधिराजाय वा (**हंसान्**) पक्षिविशेषान् (**आ-लभते**) (**वायवे**) (**बलाकाः**) बलाकानां स्त्रियः (**इन्द्राग्निभ्याम्**) (**क्रुञ्चान्**) सारसान् (**मित्राय**) (**मद्गून्**) जलकाकान् (**वरुणाय**) (**चक्रवाकान्**) ॥ २२ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा पक्षिगुणविज्ञानी जनः सोमाय हंसान् वायवे बलाका इन्द्राग्निभ्यां क्रुञ्चान् मित्राय मद्गून् वरुणाय चक्रवाकानालभते तथा यूयमप्यालभध्वम् ॥ २२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः! यथा पक्षिगुणविज्ञानी जनः सोमाय** चन्द्रायौषधिराजाय वा **हंसान्** पक्षिविशेषान्, **वायवे बलाकाः** बलाकानां स्त्रियः; **इन्द्राग्निभ्यां क्रुञ्चान्** सारसान्, **मित्राय मद्गून्** जलकाकान्, **वरुणाय चक्रवाकानालभते तथा यूयमप्यालभध्वम्** ॥ २४ । २२ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जैसे पक्षियों के गुणों का ज्ञाता पुरुष—(सोमाय) चन्द्र वा ओषधियों के राजा के लिए (हंसान्) हंसों को, (वायवे) वायु के लिए (बलाकाः) बगुलों की स्त्रियों को, (इन्द्राग्निभ्याम्) वायु और विद्युत् के लिए (क्रुञ्चान्) सारसों को, (मित्राय) वायु के लिए (मद्गून्) जल-काकों को, (वरुणाय) जल के लिए (चक्रवाकान्) चकवों को (आलभते) प्राप्त करता है; वैसे तुम भी प्राप्त करो ॥ २४ । २२ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्य उत्तमाः पक्षिणः सन्ति, ते ते प्रयत्नेन संपाल्य वर्द्धनीयाः ॥ २४ । २२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। मनुष्य—जो उत्तम पक्षी हैं उन-उन को प्रयत्न से पाल कर बढ़ावें ॥ २४ । २२ ॥

भाष्यसार—**किन पशुओं की किसलिए सेवा करें**—पक्षियों के गुणों को जानने वाला मनुष्य सोम अर्थात् चन्द्र और ओषधिराज के गुणों के लिए हंसों की, वायु के गुणों के लिए बगुलियों की, वायु और विद्युत् के गुणों के लिए सारसों की, वायु के लिए जल-काकों की, जल के गुणों के लिए चकवों की सेवा करें। मनुष्य उत्तम पक्षियों का प्रयत्न से पालन करके उन्हें बढ़ावें ॥ २४ । २२ ॥ ●

प्रजापतिः। **अग्न्यादयः**=**अग्नि-वनस्पति-अग्नीषोम-अश्वि-मित्रावरुणाः।**
पङ्क्तिः। पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

किन पशुओं की किसलिए सेवा करें, यह उपदेश किया है ॥

अग्नये कुटरूनालभते वनस्पतिभ्य ऽ उलूकानग्नीषोमाभ्यां चाषानश्विभ्यां मयूरान् मित्रावरुणाभ्यां कपोतान् ॥ २३ ॥

पदार्थः—(**अग्नये**) पावकाय (**कुटरून्**) कुक्कुटान् (**आ**) (**लभते**) (**वनस्पतिभ्यः**) (**उलूकान्**) (**अग्नीषोमाभ्याम्**) (**चाषान्**) (**अश्विभ्याम्**) (**मयूरान्**) (**मित्रावरुणाभ्याम्**) (**कपोतान्**) ॥२३॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा पक्षिगुणविज्जनोऽग्नये कुटरून् वनस्पतिभ्य उलूकानग्नीषोमाभ्यां चाषानश्विभ्यां मयूरान् मित्रावरुणाभ्यां कपोतानालभते तथैतान् यूयमप्यालभध्वम् ॥ २३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः! यथा पक्षिगुणविज्जनोऽग्नये** पावकाय **कुटरून्** कुक्कुटान्,

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जैसे पक्षियों के गुणों का ज्ञाता पुरुष—(अग्नये) अग्नि के लिए

वनस्पतिभ्य उलूकान्, अग्नीषोमाभ्यां चाषान्, अश्विभ्यां मयूरान्, मित्रावरुणाभ्यां कपोतानालभते; तथैतान् यूयमप्यालभध्वम् ॥ २४ । २३ ॥

(कुटरून्) कुक्कुट=मुर्गों को, (वनस्पतिभ्यः) वनस्पतियों के लिए (उलूकान्) उल्लुओं को, (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्नि=और सोम के लिए (चाषान्) नीलकण्ठों को, (अश्विभ्याम्) सूर्य और चन्द्र के लिए (कपोतान्) कबूतरों को, (आलभते) प्राप्त करता है, वैसे इन्हें तुम भी प्राप्त करो ॥ २४ । २३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये कुक्कुटादीनां पक्षिणां गुणान् जानन्ति, ते सदैतान् वर्धयन्ति ॥ २४ । २३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। जो कुक्कुट=मुर्गे आदि पक्षियों के गुणों को जानते हैं वे सदा इन्हें बढ़ाते हैं ॥२४।२३॥

भाष्यसार—किन पशुओं की किसलिए सेवा करें—अग्नि के गुणों को जानने के लिए कुक्कुट=मुर्गों की, वनस्पतियों के गुणों को जानने के लिए उल्लुओं की, अग्नि और सोम के गुणों को जानने के लिए नीलकण्ठों की, सूर्य और चन्द्र के गुणों को जानने के लिए मोरों की, वायु और जल के गुणों के लिए कबूतरों की सेवा करें। इन कुक्कुट आदि पक्षियों के गुणों को जानकर सदा इन्हें बढ़ावें ॥ २४ । २३ ॥

प्रजापतिः। **सोमादयः=सोम-त्वष्टृ-देवपत्नी-देवजामि-गृहपतयः**। भुरिक्पङ्क्तिः। पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

किन पशुओं की किसलिए सेवा करें, यह उपदेश किया है ॥

सोमाय लवानालभते त्वष्ट्रे कौलीकान् गोषादीर्देवानां पत्नीभ्यः कुलीका देवजामिभ्योऽग्नये गृहपतये पारुष्णान् ॥ २४ ॥

पदार्थः—(**सोमाय**) ऐश्वर्याय (**लबान्**) (**आ**) (**लभते**) (**त्वष्ट्रे**) प्रकाशकाय (**कौलीकान्**) पक्षिविशेषान् (**गोसादीः**) या गाः सादयन्ति=हिंसन्ति ताः पक्षिणीः (**देवानाम्**) विदुषाम् (**पत्नीभ्यः**) स्त्रीभ्यः (**कुलीकाः**) पक्षिणीविशेषाः (**देवजामिभ्यः**) विदुषां भगिनीभ्यः (**अग्नये**) अग्निरिव वर्त्तमानाय (**गृहपतये**) गृहपालकाय (**पारुष्णान्**) पक्षिविशेषान् ॥ २४ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा पक्षिकर्मविज्जनः सोमाय लबाँस्त्वष्ट्रे कौलीकान् देवानां पत्नीभ्यो गोसादीर्देवजामिभ्यः कुलीका अग्नये गृहपतये पारुष्णानालभते तथा यूयमप्यालभध्वम् ॥ २४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **यथा पक्षिकर्मविज्जनः सोमाय** ऐश्वर्याय **लबान्, त्वष्ट्रे** प्रकाशकाय **कौलीकान्** पक्षिविशेषान्, **देवानां** विदुषां **पत्नीभ्यः** स्त्रीभ्यः **गोसादीः** या गाः सादयन्ति=हिंसन्ति ताः पक्षिणीः, **देवजामिभ्यः** विदुषां भगिनीभ्यः **कुलिकाः** पक्षिणीविशेषाः, **अग्नये** अग्निरिव वर्त्तमानाय **गृहपतये** गृहपालकाय

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे पक्षियों के कर्मों का ज्ञाता पुरुष—(सोमाय) ऐश्वर्य के लिए (लबान्) बटेरों को, (त्वष्ट्रे) प्रकाशक सूर्य के लिए (कौलीकान्) कौलीक नामक पक्षियों को, (देवानाम्) विद्वानों की (पत्नीभ्यः) पत्नियों के लिए (गोसादीः) गौओं की हिंसा करने वाली पक्षिणियों को, (देवजामिभ्यः) विद्वानों की बहनों के

पारुष्णान् पक्षिविशेषान् **आलभते; तथा यूयमप्यालभध्वम्** ॥ २४ । २४ ॥

लिए (कुलिकाः) कुलिका नामक पक्षिणियों को, (अग्नये) अग्नि के तुल्य (गृहपतये) गृहपति के लिए (पारुष्णान्) पारुष्ण नामक पक्षियों को (आ लभते) प्राप्त करता है, वैसे तुम भी प्राप्त करो ॥ २४ । २४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्याः पक्षिणां स्वभावजानि कर्माणि विदित्वा तदनुकरणं कुर्वन्ति, ते बहुश्रुतवद् भवन्ति ॥२४।२४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। जो मनुष्य पक्षियों के स्वाभाविक कर्मों को जान कर उनका अनुकरण करते हैं वे बहुश्रुत के तुल्य होते हैं ॥ २४ । २४ ॥

भाष्यसार—१. किन पशुओं की किसके लिए सेवा करें—ऐश्वर्य के लिए बटेरों की, प्रकाशक सूर्य के गुणों के लिए कौलीक नामक पक्षियों की, विद्वानों की पत्नियों के गुणों के लिए गौओं को पीड़ा देने वाली 'गोसादी' नामक पक्षिणियों की, विद्वानों की बहनों के गुणों के लिए 'कुलिका' नामक पक्षिणियों की, अग्नि के तुल्य गृहपति के गुणों के लिए 'पारुष्ण' नामक पक्षी विशेषों की सेवा करें। जो मनुष्य पक्षियों के स्वाभाविक कर्मों को जानकर उनका अनुकरण करते हैं वे बहुश्रुत के तुल्य होते हैं।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि जैसे मन्त्रोक्त पक्षियों के कर्म का ज्ञाता मनुष्य उक्त पक्षियों को प्राप्त करता है, उनकी सेवा करता है, उनके स्वाभाविक कर्मों को जानता है वैसे अन्य मनुष्य भी जानें ॥ २४ । २४ ॥ ●

प्रजापतिः । **कालावयवाः=अहः-रात्रि-अहोरात्रसन्धि-मास--संवत्सराः** ।
विराट्पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

किन पशुओं की किसलिए सेवा करें, यह उपदेश किया है ॥

अह्ने पारावतानालभते रात्र्यै सीचापूरहोरात्रयोः सन्धिभ्यो जतूर्मासेभ्यो दात्यौहान्त्संवत्सराय महतः सुपर्णान् ॥ २५ ॥

पदार्थः—(**अह्ने**) दिवसाय (**पारावतान्**) कलरवान् (**आ**) (**लभते**) (**रात्र्यै**) (**सीचापूः**) पक्षिविशेषान् (**अहोरात्रयोः**) (**सन्धिभ्यः**) (**जतूः**) पक्षिविशेषान् (**मासेभ्यः**) (**दात्यौहान्**) कृष्णकाकान् (**संवत्सराय**) वर्षाय (**महतः**) (**सुपर्णान्**) शोभनपक्षान् पक्षिणः ॥ २५ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा कालविज्जनोऽह्ने पारावतान्रात्र्यै सीचापूरहोरात्रयोः सन्धिभ्यो जतूर्मासेभ्यो दात्यौहान्त्संवत्सराय महतः सुपर्णानालभते तथा यूयमप्येतानालभध्वम् ॥ २५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः! यथा कालविज्जनोऽह्ने** दिवसाय **पारावतान्** कलरवान्, **रात्र्यै सीचापूः** पक्षिविशेषान्, **अहोरात्रयोः सन्धिभ्यो जतूः** पक्षिविशेषान्, **मासेभ्यो दात्यौहान्** कृष्णकाकान्

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जैसे काल का ज्ञाता पुरुष—(अह्ने) दिन के लिए (पारावतान्) कलरव करने वाले कबूतरों को, (रात्र्यै) रात्रि के लिए (सीचापूः) सीचापू नामक पक्षियों को,

संवत्सराय वर्षाय महतः सुपर्णान् शोभन-पक्षान् पक्षिणः आ-लभते; तथा यूयमप्येतानालभध्वम् ॥ २४ । २५ ॥

(अहोरात्रयोः) दिन-रात की (सन्धिभ्यः) सन्धियों के लिए (जतूः) जतु नामक पक्षियों को, (मासेभ्यः) मासों के लिए (दात्यौहान्) काले कौओं को, (संवत्सराय) वर्ष के लिए (महतः) महान् (सुपर्णान्) सुन्दर पंख वाले गरुड़ पक्षियों को (आलभते) प्राप्त करता है; वैसे तुम भी इन्हें प्राप्त करो ॥ २४ । २५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्याः स्वस्वसमयानुकूलक्रीडकानां पक्षिणां स्वभावं कुर्युस्ते बहुविदः स्युः ॥ २४ । २५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। जो मनुष्य अपने-अपने समय के अनुकूल क्रीडा करने वाले पक्षियों के स्वभाव का अनुकरण करते हैं वे बहुत ज्ञाता होते हैं ॥ २४।२५॥

भाष्यसार—१. **किन पशुओं की किसलिए सेवा करें**—दिन में क्रीडा करने वाले कबूतरों की, रात्रि में क्रीडा करने वाले 'सीचापू' नामक पक्षी विशेषों की, दिन-रात की सन्धि-वेला में 'जतु' नामक पक्षी विशेषों की, मासों में क्रीडा करने वाले कृष्ण काकों की, वर्ष में क्रीडा करने वाले सुपर्ण अर्थात् सुन्दर पंखों वाले गरुड़ों की सेवा करें। सब मनुष्य—अपने-अपने समय के अनुकूल क्रीडा करने वाले पक्षियों की सेवा करें उनके स्वभाव का अनुकरण करके 'बहुज्ञ' बनें।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि जैसे काल का ज्ञाता मनुष्य मन्त्रोक्त पक्षियों के स्वभाव को जानता है वैसे अन्य मनुष्य भी इनके स्वभाव को जानकर उसका अनुकरण करें ॥ २४ । २५ ॥ ●

प्रजापतिः। **भूम्यादयः**=भूमि-अन्तरिक्ष-दिव्-दिक्-अवान्तरदिशाः। भुरिगनुष्टुप्। गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

किन पशुओं की किसलिए सेवा करें, यह उपदेश किया है ॥

भूम्याऽ आखूनालभतेऽन्तरिक्षाय पाङ्क्तान् दिवे कशान् दिग्भ्यो नकुलान् बभ्रुकानवान्तरदिशाभ्यः ॥ २६ ॥

पदार्थः—(**भूम्यै**) (**आखून्**) मूषकान् (**आ**) (**लभते**) (**अन्तरिक्षाय**) (**पाङ्क्तान्**) पङ्क्तिरूपेण गन्तॄन् पक्षिविशेषान् (**दिवे**) प्रकाशाय (**कशान्**) पक्षिविशेषान् (**दिग्भ्यः**) पूर्वादिभ्यः (**नकुलान्**) (**बभ्रुकान्**) नकुलजातिविशेषान् (**अवान्तरदिशाभ्यः**) उपदिशाभ्यः ॥ २६॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा भूमिजन्तुगुणविज्जनो भूम्या आखूनन्तरिक्षाय पाङ्क्तान् दिवे कशान् दिग्भ्यो नकुलानवान्तरदिशाभ्यो बभ्रुकानालभते तथा यूयमप्यालभध्वम् ॥ २६ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः! यथा भूमिजन्तुगुणविज्जनो भूम्या आखून्** मूषकान्, **अन्तरिक्षाय पाङ्क्तान्** पङ्क्तिरूपेण गन्तॄन् पक्षि-विशेषान्, **दिवे** प्रकाशाय **कशान्** पक्षिविशेषान्,

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जैसे भूमि के जन्तुओं के गुणों का ज्ञाता पुरुष—(भूम्यै) भूमि के लिए (आखून्) चूहों को, (अन्तरिक्षाय) आकाश के लिए (पांक्तान्) पंक्ति रूप में चलने वाले पक्षियों को,

दिग्भ्यः पूर्वादिभ्यः **नकुलान्, अवान्तरदिशाभ्यः** उपदिशाभ्यः **बभ्रुकान्** नकुलजातिविशेषान् **आ—लभते; तथा यूयमप्यालभध्वम्** ।। २४ । २६ ।।

(दिवे) प्रकाश के लिए (कशान्) कश नामक पक्षियों को, (दिग्भ्यः) पूर्व आदि दिशाओं के लिए (नकुलान्) नेवलों को, (अवान्तरदिशाभ्यः) उपदिशाओं के लिए (बभ्रुकान्) भूरे रंग के नकुल विशेषों को (आलभते) प्राप्त करता है; वैसे तुम भी प्राप्त करो ।। २४ । २६ ।।

भावार्थः—ये मनुष्या भूम्यादिवन्मूषकादिगुणान् विदित्वोपकुर्युस्ते बहुविज्ञाना जायेरन् ।। २४ । २६ ।।

भावार्थ—जो मनुष्य भूमि आदि के तुल्य चूहों आदि के गुणों को जानकर उपकार करते हैं वे बहुत विज्ञान वाले होते हैं ।। २४ । २६ ।।

भाष्यसार—**किन पशुओं की किसलिए सेवा करें**—भूमि के गुणों को जानने के लिए चूहों की, आकाश के गुणों को जानने के लिए पाँक्त—अर्थात् पंक्ति-बद्ध चलने वाले पक्षी विशेषों की, द्युलोक (प्रकाश) के गुणों को जानने के लिए 'कश' नामक पक्षी विशेषों की, पूर्व आदि दिशाओं के गुणों को जानने के लिए नकुल=नेवलों की, उपदिशाओं के गुणों को जानने के लिए भूरे रंग के नेवलों की सेवा करें। मन्त्रोक्त चूहे आदि प्राणियों के गुणों को जानकर उपकार करें तथा बहुत विज्ञान वाले बनें ।। २४ । २६ ।।

प्रजापतिः । **वस्वादयः**=**वसु-रुद्र-आदित्य-विश्वेदेव-साध्याः** । निचृद्बृहती । मध्यमः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

किन पशुओं की किसलिए सेवा करें, यह उपदेश किया है ।।

वसुभ्य ऽ ऋश्यानालभते रुद्रेभ्यो रुरूनादित्येभ्यो न्यङ्कून विश्वेभ्यो देवेभ्यः पृषतान्त्साध्येभ्यः कुलुङ्गान ।। २७ ।।

पदार्थः—(**वसुभ्यः**) अग्न्यादिभ्यः (**ऋश्यान्**) मृगजातिविशेषान् पशून् (**आ**) (**लभते**) (**रुद्रेभ्यः**) प्राणादिभ्यः (**रुरून्**) मृगविशेषान् (**आदित्येभ्यः**) मासेभ्यः (**न्यङ्कून्**) पशुविशेषान् (**विश्वेभ्यः**) (**देवेभ्यः**) दिव्येभ्यः पदार्थेभ्यो विद्वद्भ्यो वा (**पृषतान्**) मृगविशेषान् (**साध्येभ्यः**) साधितुं योग्येभ्यः (**कुलुङ्गान्**) पशुविशेषान् ।। २७ ।।

अन्वयः—हे मनुष्या यथा पशुगुणविज्जनो वसुभ्य ऋश्यान् रुद्रेभ्यो रुरूनादित्येभ्यो न्यङ्कून् विश्वेभ्यो देवेभ्यः पृषतान्त्साध्येभ्यः कुलुङ्गानालभते तथैतान्यूयमप्यालभध्वम् ।। २७ ।।

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यथा पशुगुणविज्जनो वसुभ्यः** अग्न्यादिभ्यः **ऋश्यान्** मृगजातिविशेषान् पशून्, **रुद्रेभ्यः** प्राणादिभ्यः **रुरून्** मृगविशेषान्, **आदित्येभ्यः** मासेभ्यः **न्यङ्कून्** पशुविशेषान्, **विश्वेभ्यो देवेभ्यः** दिव्येभ्यः पदार्थेभ्यो विद्वद्भ्यो वा **पृषतान्** मृगविशेषान्, **साध्येभ्यः** साधितुं योग्येभ्यः **कुलुङ्गान्** पशुविशेषान् **आलभते; तथैतान्यूयमप्यालभध्वम्** ।। २४ । २७ ।।

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे पशुओं के गुणों का ज्ञाता पुरुष—(वसुभ्यः) अग्नि आदि के लिए (ऋश्यान्) मृग विशेषों को, (रुद्रेभ्यः) प्राण आदि के लिए (रुरून्) मृग विशेषों को, (आदित्येभ्यः) मासों के लिए (न्यङ्कून्) बारहसींगाओं को, (विश्वेभ्यः) सब दिव्य पदार्थों वा विद्वानों के लिए (पृषतान्) चित्तीदार मृगों को, (साध्येभ्यः) साध्य लोगों के लिए (कुलुङ्गान्) कुलुंग नामक

पशुओं को (आ लभते) प्राप्त करता है; वैसे इन्हें तुम भी प्राप्त करो ॥ २४ । २७ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । ये मनुष्या मृगादीनां वेगगुणान् विदित्वोपकुर्युस्तेऽत्यन्तं सुखं लभेरन् ॥ २४ । २७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। जो मनुष्य मृग आदि पशुओं के वेग आदि गुणों को जानकर उपकार करते हैं; वे अत्यन्त सुख को प्राप्त करते हैं ॥ २४ । २७ ॥

भाष्यसार—१. **किन पशुओं की किसलिए सेवा करें**—वसु अर्थात् अग्नि आदि के गुणों को जानने के लिए 'ऋश्य' नामक मृगों की, रुद्र अर्थात् प्राण आदि के गुणों को जानने के लिए 'रुरू' नामक मृगों की, आदित्य अर्थात् मासों के गुणों को जानने के लिए न्यङ्कु=बारहसींगा नामक पशुओं की, सब पदार्थों एवं विद्वानों के गुणों को जानने के लिए चित्तीदार मृगों की, साध्य नामक विद्वानों के गुणों को जानने के लिए 'कुलंग' नामक पक्षियों की सेवा करें। मृग आदि पशुओं की वेग आदि गुणों को जानकर उपकार करें तथा अत्यन्त सुख को प्राप्त करें।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है जैसे पशुओं के गुणों को जानने वाला मनुष्य मन्त्रोक्त मृग आदि पशुओं के वेग आदि गुणों को जानकर उपकार करता है वैसे अन्य मनुष्य भी करें ॥ २४ । २७ ॥

प्रजापतिः । **ईशानादयः**=ईशान-मित्र-वरुण-बृहस्पति-त्वष्टारः । बृहती । मध्यमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

किन पशुओं की किसलिए सेवा करें, यह उपदेश किया है ॥

ईशानाय त्वा परस्वत ऽ आलभते मित्राय गौरान् वरुणाय महिषान् बृहस्पतये गवयांस्त्वष्ट्र ऽ उष्ट्रान् ॥ २८ ॥

पदार्थः—(**ईशानाय**) समर्थाय जनाय (त्वा) त्वाम् (**परस्वतः**) मृगविशेषान् (**आ लभते**) (**मित्राय**) (**गौरान्**) (**वरुणाय**) (**महिषान्**) (**बृहस्पतये**) (**गवयान्**) (**त्वष्ट्रे**) (**उष्ट्रान्**) ॥ २८ ॥

अन्वयः—हे राजन् ! यो मनुष्य ईशानाय त्वा परस्वतो मित्राय गौरान् वरुणाय महिषान् बृहस्पतये गवयान् त्वष्ट्र उष्ट्रानालभते स धनधान्ययुक्तो जायते ॥ २८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **राजन्** ! **यो मनुष्य ईशानाय** समर्थाय जनाय **त्वा** त्वां **परस्वतः** मृगविशेषान्, **मित्राय गौरान्, वरुणाय महिषान्, बृहस्पतये गवयान्, त्वष्ट्र** उष्ट्रानाऽलभते; **स धनधान्ययुक्तो जायते** ॥ २४ । २८ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जो मनुष्य—(ईशानाय) समर्थ पुरुष के लिए (त्वा) तुझे एवं (परस्वतः) 'परस्वान्' नामक मृग विशेषों को, (मित्राय) मित्र के लिए (गौरान्) गौर वर्ण के पशुओं को (वरुणाय) वरुण के लिए (महिषान्) भैंसों को, (बृहस्पतये) बृहस्पति के लिए (गवयान्) नीलगायों को, (त्वष्ट्रे) त्वष्टा के लिए (उष्ट्रान्) ऊँटों को (आलभते) प्राप्त करता है; वह धन-धान्य से युक्त होता है ॥ २४ । २८ ॥

भावार्थः—ये पशुभ्यो यथावदुपकारान् गृह्णीयुस्ते समर्थाः स्युः ॥ २४ । २८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य पशुओं से यथावत् उपकार ग्रहण करते हैं वे समर्थ होते हैं ॥२४।२८॥

भाष्यसार——**किन पशुओं की किसलिए सेवा करें**—समर्थ पुरुष बनने के लिए राजा तथा 'परस्वान्' नामक मृग विशेषों की, वायु के गुणों को जानने के लिए गौर वर्ण पशुओं की, जल के गुणों को जानने के लिए भैंसों की, बृहस्पति के गुणों जानने के लिए गवय=नील गायों की, त्वष्टा=सूर्य के गुणों को जानने के लिए ऊँटों की सेवा करें । मन्त्रोक्त पशुओं से यथावत् उपकार ग्रहण करके समर्थ बनें तथा धनधान्य से युक्त हों ॥ २४ । २८ ॥

प्रजापतिः । **प्राजापत्यादयः**=प्रजापति-वाक्-चक्षुः-श्रोत्राणि । विराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

किन पशुओं की किसलिए सेवा करें, यह उपदेश किया है ॥

प्रजापतये पुरुषान् हस्तिन ऽ आलभते वाचे प्लुषींश्चक्षुषे मशकाञ्छ्रोत्राय भृङ्गाः ॥ २९ ॥

पदार्थः—(**प्रजापतये**) प्रजास्वामिने (**पुरुषान्**) (**हस्तिनः**) कुञ्जरान् (**आ, लभते**) (**वाचे**) (**प्लुषीन्**) जन्तुविशेषान् (**चक्षुषे**) (**मशकान्**) (**श्रोत्राय**) (**भृङ्गाः**) ॥ २९ ॥

अन्वयः—यो मनुष्यः प्रजापतये पुरुषान्हस्तिनो वाचे प्लुषींश्चक्षुषे मशकाञ्छ्रोत्राय भृङ्गा आलभते स बलिष्ठो दृढेन्द्रियो जायते ॥ २९ ॥

सपदार्थान्वयः—**यो मनुष्यः प्रजापतये** प्रजास्वामिने **पुरुषान् हस्तिनः** कुञ्जरान्, **वाचे प्लुषीन्** जन्तुविशेषान्, **चक्षुषे मशकान्, श्रोत्राय भृङ्गा आलभते, स बलिष्ठो दृढेन्द्रियो जायते** ॥ २४ । २९ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य—(प्रजापतये) प्रजा के स्वामी के लिए (पुरुषान्) पुरुष=पुल्लिङ्ग (हस्तिनः) हाथियों को, (वाचे) वाणी के लिए (प्लुषीन्) प्लुषि नामक जन्तुओं को, (चक्षुषे) चक्षु के लिए (मशकान्) मच्छरों को, (श्रोत्राय) श्रोत्र के लिए (भृङ्गाः) भौरों को (आलभते) प्राप्त करता है; वह बलिष्ठ एवं दृढ़ इन्द्रियों वाला होता है ॥ २४ । २९ ॥

भावार्थः—ये प्रजारक्षणाय चतुरङ्गिणीं सेनां जितेन्द्रियतां च समाचरन्ति, ते श्रीमन्तो भवन्ति ॥ २४ । २९ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य प्रजा की रक्षा के लिए चतुरङ्गिणी सेना और जितेन्द्रियता को सिद्ध करते हैं; वे श्रीमान् होते हैं ॥ २४ । २९ ॥

भाष्यसार—**किन पशुओं की किसलिए सेवा करें**—प्रजापति अर्थात् प्रजा के स्वामी राजा के गुणों को जानने के लिए पुंल्लिङ्ग हाथियों की, वाणी के गुणों को जानने के लिए 'प्लुषि' नामक जन्तु विशेषों की, चक्षु के गुणों को जानने के लिए मशक=मच्छरों की, श्रोत्र के गुणों को जानने के लिए भृङ्ग=भौरों की सेवा करें । तथा बलिष्ठ एवं दृढ़ इन्द्रियों वाले बनें । प्रजा की रक्षा के लिए चतुरङ्गिणी (हाथी, घोड़े, रथ, पैदल) सेना तैयार करें और जितेन्द्रय बनकर श्रीमान् हों ॥ २४ । २९ ॥

प्रजापतिः । **प्राजापत्याद्यः**=प्रजापति-वायु-वरुण-यम-मनुष्यराज-शार्दूल-ऋषभ-क्षिप्रश्येन-नीलङ्गु-समुद्र-हिमवन्तः । निचृदतिधृतिः । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

किन पशुओं की किसलिए सेवा करें, यह उपदेश किया है ॥

प्रजापतये च वायवे च गोमृगो वरुणायारण्यो मेषो यमाय कृष्णो मनुष्यराजाय मर्कटः शार्दूलाय रोहिदृषभाय गवयी क्षिप्रश्येनाय वर्त्तिका नीलङ्गोः कृमिः समुद्राय शिशुमारो हिमवते हस्ती ॥ ३० ॥

पदार्थः—(**प्रजापतये**) प्रजापालकाय (**च**) तत्सम्बन्धिभ्यः (**वायवे**) (**च**) तत्सम्बन्धिभ्यः (**गोमृगः**) यो गां मार्ष्टि=शुन्धति सः (**वरुणाय**) (**आरण्यः**) वने भवः (**मेषः**) अविजातिविशेषः (**यमाय**) न्यायाधीशाय (**कृष्णः**) कृष्णगुणविशिष्टः (**मनुष्यराजाय**) नरेशाय (**मर्कटः**) वानरः (**शार्दूलाय**) महासिंहाय (**रोहित्**) रक्तगुणविशिष्टो मृगः (**ऋषभाय**) श्रेष्ठाय सभ्याय (**गवयी**) गवयस्य स्त्री (**क्षिप्रश्येनाय**) क्षिप्रगामिने श्येनायेव वर्त्तमानाय (**वर्त्तिका**) (**नीलङ्गोः**) यो नीलं गच्छति तस्य (**कृमिः**) क्षुद्रजन्तुविशेषः (**समुद्राय**) (**शिशुमारः**) बालहन्ता (**हिमवते**) बहूनि हिमानि विद्यन्ते यस्य तस्मै (**हस्ती**) ॥ ३० ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः युष्माभिः प्रजापतये च वायवे च गोमृगो वरुणायारण्यो मेषो यमाय कृष्णो मनुष्यराजाय मर्कटः शार्दूलाय रोहिदृषभाय गवयी क्षिप्रश्येनाय वर्त्तिका नीलङ्गोः कृमिः समुद्राय शिशुमारो हिमवते हस्ती च सम्प्रयोक्तव्यः ॥ ३० ॥

सपदार्थान्वयः — हे **मनुष्याः** ! **युष्माभिः प्रजापतये** प्रजापालकाय **च** तत्सम्बन्धिभ्यः **वायवे, च**=तत्सम्बन्धिभ्यः **गोमृगः** यो गां मार्ष्टि=शुन्धति सः **वरुणायारण्यः** वने भवः **मेषः** अविजातिविशेषः **यमाय** न्यायाधीशाय **कृष्णः** कृष्णगुणविशिष्टः **मनुष्यराजाय** नरेशाय **मर्कटः** वानरः **शार्दूलाय** महासिंहाय **रोहित्** रक्तगुणविशिष्टो मृगः **ऋषभाय** श्रेष्ठाय सभ्याय **गवयी** गवयस्य स्त्री **क्षिप्रश्येनाय** क्षिप्रगामिने श्येनायेव वर्त्तमानाय **वर्त्तिका नीलङ्गोः** यो नीलं गच्छति तस्य **कृमिः** क्षुद्रजन्तुविशेषः **समुद्राय शिशुमारः** बालहन्ता **हिमवते** बहूनि हिमानि विद्यन्ते यस्य तस्मै **हस्ती च सम्प्रयोक्तव्यः** ॥ २४ । ३० ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—(प्रजापतये) प्रजापति (च) और तत्सम्बन्धी पुरुषों के लिए तथा (वायवे) वायु (च) और तत्सम्बन्धी पदार्थों के लिए (गोमृगः) नील गाय, (वरुणाय) श्रेष्ठ पुरुष के लिए (आरण्यः) जंगली (मेषः) मेढा, (यमाय) न्यायाधीश के लिए (कृष्णः) कृष्ण मृग, (मनुष्यराजाय) नरेश के लिए (मर्कटः) वानर (शार्दूलाय) महासिंह के लिए (रोहित्) लाल मृग, (ऋषभाय) श्रेष्ठ एवं सभ्य पुरुष के लिए (गवयी) नील गाय, (क्षिप्रश्येनाय) शीघ्रगामी एवं श्येन=बाज पक्षी के तुल्य पुरुष के लिए (वर्त्तिका) बटेर, (नीलङ्गोः) नील वर्ण वाले प्राणी के लिए (कृमिः) क्षुद्र जन्तु, (समुद्राय) समुद्र के लिए (शिशुमारः) शिशुओं को मारने वाला सूंस नामक जलजन्तु और (हिमवते) (हिमवान्) प्रदेश के लिए (हस्ती) हाथी का प्रयोग करो ॥ २४ । ३० ॥

भावार्थः—ये मनुष्या मनुष्यसम्बन्ध्युत्तमान् प्राणिनो रक्षन्ति, ते साङ्गोपाङ्गबला जायन्ते ॥ २४ । ३० ॥

भावार्थ—जो मनुष्य—मनुष्यों से सम्बन्ध रखने वाले उत्तम प्राणियों की रक्षा करते हैं वे साङ्गोपाङ्ग बलवान् होते हैं ॥ २४ । ३० ॥

भाष्यसार—**किन पशुओं की किसलिए सेवा करें**—प्रजापति और उसके सम्बन्धी राजपुरुष, वायु और उसके सम्बन्धी प्राण आदि के गुणों को जानने के लिए गोमृग=नील गाय, वरुण= जल के गुणों को जानने के लिए मेष=मेंढा, न्यायाधीश के गुणों को जानने के लिए कृष्ण मृग, नरेश के गुणों को जानने के लिए वानर, महासिंह के गुणों को जानने के लिए लाल मृग, श्रेष्ठ एवं सभ्य पुरुष के गुणों को जानने के लिए नील गाय, शीघ्रगामी श्येन=बाज पक्षी के तुल्य व्यवहार करने वाले पुरुष के गुणों को जानने के लिए वर्त्तिका=बटेर, नील वर्ण को प्राप्त प्राणी के गुणों को जानने के लिए क्षुद्र जन्तु, समुद्र के गुणों को जानने के लिए शिशुमार=सूँस, हिमवान् प्रदेश के गुणों को जानने के लिए हाथी की सेवा करें। मनुष्य सम्बन्धी उत्तम प्राणियों की सेवा रक्षा करके अङ्ग और उपाङ्ग सहित बलवान् बनें ॥ २४ । ३० ॥

प्रजापतिः । **प्राजापत्यादयः**=प्राजापत्य-दिक्-आग्नेयी-त्वष्टृ-वाचः ।
स्वराट्त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

किन पशुओं की किसलिए सेवा करें, यह उपदेश किया है ॥

मयुः प्राजापत्य ऽ उलो हलिक्ष्णो वृषदꣳशस्ते धात्रे दिशां कङ्को धुङ्क्षाग्नेयी
कलविङ्को लोहिताहिः पुष्करसादस्ते त्वाष्ट्रा वाचे क्रुञ्चः ॥ ३१ ॥

पदार्थः—(**मयुः**) किन्नरः (**प्राजापत्यः**) प्रजापतिदेवताकः (**उलः**) क्षुद्रकृमिः (**हलिक्ष्णः**) मृगेन्द्रविशेषः (**वृषदंशः**) मार्जालः (**ते**) (**धात्रे**) धारकाय (**दिशाम्**) (**कङ्कः**) लोहपृष्ठः (**धुङ्क्षा**) पक्षिविशेषः (**आग्नेयी**) (**कलविङ्कः**) चटकः (**लोहिताहिः**) लोहितश्चासावहिश्च (**पुष्करसादः**) यः पुष्करे सीदति (**ते**) (**त्वाष्ट्रा**) त्वष्टृदेवताकाः (**वाचे**) (**क्रुञ्चः**) ॥ ३१ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! युष्माभिः प्राजापत्यो मयुरुलो हलिक्ष्णो वृषदंशश्च ते धात्रे कङ्को दिशां धुङ्क्षा आग्नेयी कलविङ्को लोहिताहिः पुष्करसादस्ते त्वाष्ट्रा वाचे क्रुञ्चश्च वेदितव्याः ॥ ३१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! **युष्माभिः प्राजापत्यः** प्रजापतिदेवताकः **मयुः** किन्नरः; **उलः** क्षुद्रकृमिः **हलिक्ष्णः** मृगेन्द्रविशेषः; **वृषदंशः** मार्जालः **च ते धात्रे** धारकाय, **कङ्कः** लोहपृष्ठः **दिशां**; **धुङ्क्षा** पक्षिविशेषः **आग्नेयी, कलविङ्कः** चटकः, **लोहिताहिः** लोहितश्चासावहिश्च, **पुष्करसादः** यः पुष्करे सीदति **ते त्वाष्ट्राः** त्वष्टृदेवताकाः; **वाचे क्रुञ्चश्च वेदितव्याः** ॥ २४ । ३१ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—(प्राजापत्यः) प्रजापति देवता वाला किन्नर, (उलः) क्षुद्र जन्तु, (हलिक्ष्णः) मृगेन्द्र=सिंह विशेष, और (वृषदंशः) बिलाव हैं (ते) वे (धात्रे) धारक वायु के लिए, (कङ्कः) कठोर पीठ वाला बगुला (दिशाम्) दिशाओं के लिए, (धुङ्क्षा) धुंक्षा नामक पक्षिणी (आग्नेयी) अग्नि देवता वाली, (कलविङ्कः) चिड़ा, (लोहिताहिः) लाल सांप और (पुष्करसादः) तालाब में रहने वाला प्राणी है (ते) वे सब (त्वाष्ट्राः) सूर्य

देवता वाले हैं; और (वाचे) वाणी के लिए (क्रुञ्चः) सारस पक्षी है; इन्हें जानो ॥ २४ । ३१ ॥

भावार्थः—ये शृगालसर्पादीन् वशं नयन्ति ते धुरन्धराः सन्ति ॥ २४ । ३१ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य शृगाल=गीदड़ और सर्प आदि प्राणियों को वश में करते हैं वे धुरन्धर होते हैं ॥ २४ । ३१ ॥

भाष्यसार—**किन पशुओं को किसलिए सेवा कर**—वायु के गुणों को जानने के लिए मयु=किन्नर एवं शृगाल (गीदड़), क्षुद्र जन्तु, मृगेन्द्र=सिंह और बिलाव, दिशाओं को जानने के लिए कंक=कठोर पीठ वाला बगुला, अग्नि के गुणों के लिए 'धुंक्षा' नामक पक्षी, त्वष्टा=सूर्य के गुणों को जानने के लिए चिड़िया, लाल सांप और तालाब में रहने वाली प्राणी, वाणी के गुणों को जानने के लिए सारस की सेवा करें। गीदड़ एवं सर्प आदि मन्त्रोक्त प्राणियों को वश में रखें ॥ २४ । ३१ ॥

प्रजापतिः । **सोमादयः**=**सोम-पूष-मायु-इन्द्र-अनुमति-प्रतिश्रुत्काः** । भुरिग्जगती । निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

किन पशुओं की किसलिए सेवा करें, यह उपदेश किया है ॥

सोमा॑य कुलु॒ङ्गऽआ॑र॒ण्यो॒ऽजो न॑कु॒लः शका॑ ते पौ॒ष्णाः क्रो॒ष्टा मा॒योरिन्द्र॑स्य गौ॒रमृ॒गः पि॒द्वो न्यङ्कुः॑ कक्क॒टस्तेऽनु॑मत्यै प्रति॒श्रुत्का॑यै चक्रवा॒कः ॥ ३२ ॥

पदार्थः—(**सोमाय**) (**कुलुङ्गः**) पशुविशेषः (**आरण्यः**) अरण्ये भवः (**अजः**) छागजातिविशेषः (**नकुलः**) (**शका**) शकः=शक्तिमान् । **अत्र सुपां सुलुगित्याकारादेशः** (**ते**) (**पौष्णाः**) पुष्टिकरसम्बन्धिनः (**क्रोष्टा**) शृगालः (**मायोः**) शृगालविशेषस्य (**इन्द्रस्य**) ऐश्वर्ययुक्तस्य (**गौरमृगः**) (**पिद्वः**) मृगविशेषः (**न्यङ्कुः**) मृगविशेषः (**कक्कटः**) अयमपि मृगविशेषः (**ते**) (**अनुमत्यै**) (**प्रतिश्रुत्कायै**) प्रतिश्राविकायै (**चक्रवाकः**) पक्षिविशेषः ॥ ३२ ॥

प्रमाणार्थ—(शका) यहाँ 'सुपां सुलुक्' (७ । १) से विभक्ति को आकार-आदेश है ।

अन्वयः—हे मनुष्या यदि युष्माभिः सोमाय कुलुङ्ग आरण्योऽजो नकुलः शका च ते पौष्णा मायोः क्रोष्टेन्द्रस्य गौरमृगो ये पिद्वो न्यङ्कुः कक्कटश्च तेऽनुमत्यै प्रतिश्रुत्कायै चक्रवाकश्च सम्प्रयुज्येत तर्हि बहुकृत्यं कर्त्तुं शक्येत ॥ ३२ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यदि युष्माभिः सोमाय कुलुङ्गः** पशुविशेषः, **आरण्यः** अरण्ये भवः **अजः** छागजातिविशेषः, **नकुलः, शका** शकः=शक्तिमान् **च ते पौष्णाः** पुष्टिकरसम्बन्धिनः; **मायोः** शृगालविशेषस्य **क्रोष्टा** शृगालः, **इन्द्रस्य** ऐश्वर्ययुक्तस्य **गौरमृगः; ये पिद्वः** मृगविशेषः **न्यङ्कुः** मृगविशेषः **कक्कटः** अयमपि मृगविशेषः **च तेऽनुमत्यै, प्रतिश्रुत्कायै** प्रतिश्राविकायै **चक्रवाकः** पक्षिविशेषः **च सम्प्रयुज्येत तर्हि बहुकृत्यं कर्त्तुं शक्येत** ॥ २४ । ३२ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! यदि तुम—(सोमाय) सोम के लिए—(कुलुङ्गः) कुलुंग नामक पशु विशेष, (आरण्यः) जंगली (अजः) बकरा, (नकुलः) नेवला और (शका) शक्तिमान् पशु हैं (ते) वे (पौष्णाः) पुष्टिकारक हैं; (मायोः) शृगाल=विशेष का सम्बन्धी (क्रोष्टा) शृगाल=गीदड़ है; (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् पुरुष का सम्बन्धी (गौरमृगः) गौर वर्ण का मृग है; और जो (पिद्वः) 'पिद्व' नामक मृग विशेष, न्यङ्कुः 'न्यंकु' नामक मृग विशेष और (कक्कटः) कक्कट नामक

मृग विशेष हैं (ते) वे (अनुमत्यै) अनुकूल मति के लिए; और (प्रतिश्रुत्कायै) प्रतिध्वनि के लिए (चक्रवाकः) चकवा पक्षी विशेष का प्रयोग करो तो बहुत कार्य कर सकते हो ॥ २४ । ३२ ॥

भावार्थः—य आरण्येभ्यः पश्वादिभ्यो ऽप्युपकारं कर्त्तुं जानीयुस्ते सिद्धकार्या जायन्ते ॥३२॥

भावार्थ—जो मनुष्य पशु आदि से उपकार करना जानते हैं वे सफल कार्यों वाले होते हैं ॥३२॥

भाष्यसार—किन पशुओं की किसलिए सेवा करें—सोम=चन्द्र के गुणों को जानने के लिए कुलुंग नामक पशु, जंगली बकरा, नेवला, शक्तिमान् पशु जो पुष्टिकर गुणों से सम्बद्ध हैं उनकी, मायु नामक शृगाल विशेष के गुणों को जानने के लिए क्रोष्टा नामक शृगाल की, ऐश्वर्यवान् इन्द्र के गुणों को जानने के लिए गौर मृग की; अनुकूल मति की प्राप्ति के लिए पिद्व, न्यङ्कु और कक्कट नामक मृग विशेषों की, प्रतिध्वनि को जानने के लिए चकवा नामक पक्षी की सेवा करें। मन्त्रोक्त जंगली पशु आदि प्राणियों से उपकार करना सीखें तथा कार्यों को सिद्ध करें ॥ २४ । ३२॥ ●

प्रजापतिः । **मित्रादयः**=मित्र-सरस्वती-मन्यु-सरस्वन्तः । भुरिग्जगती । निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

किन पशुओं की किसलिए सेवा करें, यह उपदेश किया है ॥

सौरी ब॒लाका॑ शा॒र्गः सृ॑ज॒यः श॑याण्ड॒कस्ते मै॒त्राः सर॑स्वत्यै॒ शारिः॑ पुरुष॒वाक्
श्वा॒वि॒द्भौमी शा॑र्दूलो वृ॒कः पृदा॑कु॒स्ते म॒न्यवे॒ सर॑स्वते॒ शुकः॑ पुरुष॒वाक् ॥ ३३ ॥

पदार्थः—(**सौरी**) सूर्यो देवता यस्याः सा (**बलाका**) विशेषपक्षिणी (**शार्गः**) शाङ्र्गश्चातकः। अत्र छान्दसो वर्णलोप इति ङ्लोपः (**सृजयः**) पक्षिविशेषः (**शयाण्डकः**) पक्षिविशेषः (**ते**) (**मैत्राः**) प्राणदेवताकाः (**सरस्वत्यै**) नद्यै (**शारिः**) शुकी (**पुरुषवाक्**) शुकः (**श्वावित्**) सेधा (**भौमी**) पृथिवीदेवताका (**शार्दूलः**) व्याघ्रविशेषः (**वृकः**) चित्रकः (**पृदाकुः**) सर्प्पः (**ते**) (**मन्यवे**) क्रोधाय (**सरस्वते**) समुद्राय (**शुकः**) शुद्धिकृत् पक्षिविशेषः (**पुरुषवाक्**) पुरुषस्य वागिव वाग् यस्य सः ॥ ३३ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या युष्माभिर्या सौरी सा बलाका ये शार्गः सृजयः शयाण्डकश्च ते मैत्राः शारिः पुरुषवाक् सरस्वत्यै श्वावित् भौमी शार्दूलो वृकः पृदाकुश्च ते मन्यवे शुकः पुरुषवाक् च सरस्वते विज्ञेयाः ॥ ३३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः! युष्माभिर्या **सौरी** सूर्यो देवता यस्याः सा **सा बलाका** विशेषपक्षिणी, **ये शार्गः** शाङ्र्गश्चातकः **सृजयः** पक्षिविशेषः **शयाण्डकः** पक्षिविशेषः **च ते मैत्राः** प्राणदेवताकाः, **शारिः** शुकी **पुरुषवाक्** शुकः **सरस्वत्यै** नद्यै, **श्वावित्** सेधा **भौमी** पृथिवी-देवताका, **शार्दूलः** व्याघ्रविशेषः **वृकः** चित्रकः **पृदाकुः** सर्प्पः **च ते मन्यवे** क्रोधाय, **शुकः** शुद्धिकृत्

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—जो (सौरी) सूर्य देवता वाली (बलाका) बक-स्त्री, बगुली, जो (शार्गः) चातक, (सृजयः) 'सृजय' नामक पक्षी विशेष और (शयाण्डकः) 'शयाण्डक' नामक पक्षी विशेष हैं (ते) वे (मैत्राः) प्राण देवता वाले हैं; (शारिः) मैना, (पुरुषवाक्)शुक=तोता (सरस्वत्यै) नदी के लिए हैं; (श्वावित्) सेंह (भौमी) पृथिवी देवता वाली है; (शार्दूलः) सिंह, (वृकः) चीता

पक्षिविशेषः **पुरुषवाक्** पुरुषस्य वागिव वाग् यस्य सः **च सरस्वते** समुद्राय **विज्ञेयाः** ॥ २४ । ३३ ॥

ग्रौर (पृदाकुः) सर्प हैं (ते) वे (मन्यवे) क्रोध के लिए हैं; (शुकः) शुद्धि करने वाला (पुरुषवाक्) पुरुष के समान वाणी वाला तोता (सरस्वते) समुद्र के लिए हैं; ऐसा समझो ॥ २४ । ३३ ॥

भावार्थः—ये बलाकादयः पशुपक्षिणस्तेषां मध्यात् केचित् पालनीयाः केचित्ताडनीयाः सन्तीति वेद्यम् ॥ २४ । ३३ ॥

भावार्थ—जो बलाका=बगुली ग्रादि पशु पक्षी हैं उनमें से कुछ पालन के योग्य ग्रौर कुछ ताड़न के योग्य हैं; ऐसा समझें ॥ २४ । ३३ ॥

भाष्यसार—**किन पशुग्रों की किसके लिए सेवा करें**—सूर्य के गुणों को जानने के लिए बलाका=बगुली, प्राणों को जानने के लिए चातक, सृजय तथा शयाण्डक नामक पक्षी की, सरस्वती=नदी के गुणों को जानने के लिए मैना ग्रौर तोता, पृथिवी के गुणों को जानने के लिए सेधा=सेंह, मन्यु=क्रोध को जानने के लिए शेर, भेड़िया ग्रौर सर्प, समुद्र के गुणों को जानने के लिए शुद्धि करने वाला, एवं पुरुष के समान वाणी वाले तोते की सेवा करें। मन्त्रोक्त बलाका (बगुली) ग्रादि पशु-पक्षियों में से कुछ एक पालन के योग्य तथा सिंह ग्रादि कुछ एक ताडन के योग्य हैं ॥ २४ । ३३ ॥

प्रजापतिः । **अग्न्यादयः=स्पष्टम्** । स्वराट् शक्वरी । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

किन पशुग्रों की किसलिए सेवा करें, यह उपदेश किया है ॥

सुपर्णः पार्जन्य ऽ आतिर्वाहसो दर्विदा ते वायवे बृहस्पतये वाचस्पतये पैङ्गराजोऽलज ऽ आन्तरिक्षः प्लवो मद्गुर्मत्स्यस्ते नदीपतये द्यावापृथिवीयः कूर्मः ॥३४॥

पदार्थः—(**सुपर्णः**) शोभनपतनः (**पार्जन्यः**) पर्जन्यवद्गुणः (**ग्रातिः**) पक्षिविशेषः (**वाहसः**) ग्रजगरः=सर्पविशेषः (**दर्विदाः**) काष्ठछित् पक्षिविशेषः (**ते**) (**वायवे**) (**बृहस्पतये**) बृहतां पालकाय (**वाचः**) (**पतये**) पालकाय (**पैङ्गराजः**) पक्षिविशेषः (**ग्रलजः**) पक्षिविशेषः (**ग्रान्तरिक्षः**) ग्रन्तरिक्षदेवताकः (**प्लवः**) वर्त्तिका (**मद्गुः**) जलकाकः (**मत्स्यः**) (**ते**) (**नदीपतये**) समुद्राय (**द्यावापृथिवीयः**) प्रकाशभूमिदेवताकः (**कूर्मः**) कच्छपः ॥ ३४ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या युष्माभिर्यः सुपर्णः स पार्जन्यो य ग्रातिर्वाहसो दर्विदा च ते वायवे पैङ्गराजो बृहस्पतये वाचस्पतयेऽलज ग्रान्तरिक्षो ये प्लवो मद्गुर्मत्स्यश्च ते नदीपतये यः कूर्मः स द्यावापृथिवीयश्च विज्ञेयाः ॥ ३४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः! युष्माभिर्यः सुपर्णः** शोभनपतनः **स पार्जन्यः** पर्जन्यवद्गुणः, **ये—ग्रातिः** पक्षिविशेषः **वाहसः** ग्रजगरः सर्पविशेषः **दर्विदा** काष्ठछित् पक्षिविशेषः **च ते वायवे, पैङ्गराजः** पक्षिविशेषः **बृहस्पतये** बृहतां पालकाय **वाचस्पतये** [वाचः] पालकाय, **ग्रलजः** पक्षिविशेषः **ग्रान्तरिक्षः** ग्रन्तरिक्षदेवताकः **ये**—

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—जो (सुपर्णः) सुन्दर पंखों वाला पक्षी है वह (पार्जन्यः) पर्जन्य=बादल के तुल्य गुणों वाला है; ग्रौर जो (ग्रातिः) ग्राति नामक पक्षी विशेष, (वाहसः) ग्रजगर सर्प विशेष ग्रौर (दर्विदा) कठफोड़ा पक्षी विशेष हैं; (ते) वे (वायवे) वायु के लिए हैं; (पैङ्गराजः) 'पैङ्गराज' नामक पक्षी विशेष (बृहस्पतये) बड़ों

प्लवः वर्त्तिका **मद्गुः** जलकाकः **मत्स्यश्च ते नदीपतये** समुद्राय, **यः कूर्मः** कच्छपः **स द्यावापृथिवीयः** प्रकाशभूमिदेवताकः **च विज्ञेयाः** ॥ २४ । ३४ ॥

के पालक बृहस्पति के लिए और (वाचस्पतये) वाणी के पालक वाचस्पति के लिए (अलजः) 'अलज' नामक पक्षी विशेष (आन्तरिक्षः) अन्तरिक्ष देवता वाला है; और जो (प्लवः) बत्तख, (मद्गुः) जल-काक तथा (मत्स्यः) मछली हैं (ते) वे (नदीपतये) समुद्र के लिए हैं, और जो (कूर्मः) कछुआ है वह (द्यावापृथिवीयः) प्रकाश और भूमि देवता वाला है; ऐसा समझो ॥ २४ । ३४ ॥

भावार्थः—ये मेघादितुल्यगुणाः पशुपक्षिविशेषाः सन्ति, ते कार्योपयोगाय नियोजनीयाः ॥ २४ । ३४ ॥

भावार्थ—जो मेघ आदि के समान गुण वाले पशु और पक्षी विशेष हैं उन्हें कार्य-उपयोग के लिए लगावें ॥ २४ । ३४ ॥

भाष्यसार—**किन पशुओं की किसलिए सेवा करें**—पर्जन्य=मेघ (बादल) के गुणों को जानने के लिए सुपर्ण=गरुड़ की, वायु के गुणों को जानने के लिए आति नामक पक्षी, अजगर, कठफोड़ा की, बृहस्पति के गुणों को जानने के लिए पैङ्गराज नामक पक्षी, वाचस्पति के गुणों को जानने के लिए अन्तरिक्ष देवता वाले 'अलज' नामक पक्षी की, समुद्र के गुणों को जानने के लिए प्लव=बत्तख, जलकाक और मछली, प्रकाश और भूमि के गुणों को जानने के लिए कछुआ की सेवा करें। इन मेघ आदि के तुल्य गुणों वाले पशु-पक्षियों से कार्यों में उपयोग ग्रहण करें ॥ २४ । ३४ ॥

प्रजापतिः । **चन्द्रादयः**=**चन्द्र-वनस्पति-सवितृ-वात-अकूपार-ह्रियः** । निचृच्छक्वरी । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

किन पशुओं की किसलिए सेवा करें, यह उपदेश किया है ॥

पुरुषमृगश्चन्द्रमसो गोधा कालका दार्वाघाटस्ते वनस्पतीनां कृकवाकुः
सावित्रो हꣳसो वातस्य नाक्रो मकरः कुलीपयस्तेऽकूपारस्य ह्रियै शल्यकः ॥ ३५ ॥

पदार्थः—(**पुरुषमृगः**) यः पुरुषान्मार्ष्टि स पशुविशेषः (**चन्द्रमसः**) चन्द्रस्य (**गोधा**) (**कालका**) (**दार्वाघाटः**) शतपत्रकः (**ते**) (**वनस्पतीनाम्**) (**कृकवाकुः**) कुक्कुटः (**सावित्रः**) सवितृदेवताकः (**हंसः**) (**वातस्य**) (**नाक्रः**) नक्राज्जातः (**मकरः**) (**कुलीपयः**) जलजन्तुविशेषः (**ते**) (**अकूपारस्य**) समुद्रस्य (**ह्रियै**) लज्जायै (**शल्यकः**) कण्टकपक्षयुक्तः श्वावित् ॥ ३५ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या युष्माभिर्यः पुरुषमृगः स चन्द्रमसो ये गोधा कालका दार्वाघाटश्च ते वनस्पतीनां यः कृकवाकुः स सावित्रो यो हंसः स वातस्य ये नाक्रो मकरः कुलीपयश्च तेऽकूपारस्य यः शल्यकः स ह्रियै च विज्ञेयाः ॥ ३५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः! युष्माभिर्यः पुरुषमृगः** यः पुरुषान् मार्ष्टि स पशुविशेषः **स चन्द्रमसः** चन्द्रस्य; **ये—गोधा, कालका, दार्वाघाटः** शतपत्रकः **च ते वनस्पतीनां; यः कृकवाकुः** कुक्कुटः

भाषार्थ—हे मनुष्यो! तुम—जो (पुरुषमृगः) पुरुषमृग नामक पशु विशेष है वह (चन्द्रमसः) चन्द्रमा के गुणों वाला है; जो (गोधा) गोह, (कालका) कालका नामक पक्षी विशेष, और

स सावित्रः सवितृदेवताकः; **यो हंसः स वातस्य; ये नाक्रः** नक्राज्जातः, **मकरः, कुलीपयः** जलजन्तुविशेषः **च तेऽकूपारस्य** समुद्रस्य; **यः शल्यकः** कण्टकपक्षयुक्तः श्वावित् **स ह्रियै** लज्जायै **च विज्ञेयाः** ॥ २४ । ३५ ॥

(दार्वाघाटः) कठफोड़ा हैं (ते) वे (वनस्पतीनाम्) वनस्पतियों के गुणों वाले हैं; (कृकवाकुः) कुक्कुट=मुर्गा है वह (सावित्राः) सूर्य देवता वाला है; जो (हंसः) हंस है वह (वातस्य) वायु के गुणों वाला है; जो (नाक्रः) नाके का बच्चा, (मकरः) मगरमच्छ और (कुलीपयः) 'कुलीपय' नामक जल-जन्तु हैं (ते) वे (अकूपारस्य) समुद्र के गुणों वाले हैं; जो (शल्यकः) कांटों के पंखों वाला सेंह है वह (ह्रियै) लज्जा के लिए है; ऐसा जानो ॥ २४।३५ ॥

भावार्थः—ये चन्द्रादिगुणाः पशुपक्षिविशेषास्ते मनुष्यैर्विज्ञेयाः ॥ २४ । ३५ ॥

भावार्थ—जो चन्द्र आदि के गुणों वाले पशु और पक्षी विशेष हैं उन्हें सब मनुष्य जानें ॥ २४ । ३५ ॥

भाष्यसार—किन पशुओं की किसलिए सेवा करें—चन्द्रमा के गुणों को जानने के लिए पुरुषमृग, वनस्पतियों के गुणों को जानने के लिए गोह, कालका नामक पक्षी और कठफोड़ा, सूर्य के गुणों को जानने के लिए कुक्कुट=मुर्गा, वात=वायु के गुणों को जानने के लिए हंस की, समुद्र के गुणों को जानने के लिए नाका, मगर और कुलीपय नामक जल जन्तु, लज्जा को जानने के लिए शल्यक=सेंह की सेवा करें। मनुष्य चन्द्र आदि गुणों वाले इन मन्त्रोक्त पशु-पक्षियों को जानें ॥ २४ । ३५ ॥

प्रजापतिः। **अश्विन्यादयः**=अहः-सर्प-अश्वि-रात्रि-इतरजन-विष्णवः।
निचृज्जगती। निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

किन पशुओं की किसलिए सेवा करें, यह उपदेश किया है ॥

एण्यह्नो मण्डूको मूषिका तित्तिरिस्ते सर्पाणां लोपाशऽआश्विनः कृष्णो रात्र्याऽ ऋक्षो जतूः सुषिलीका तऽइतरजनानां जहका वैष्णवी ॥ ३६ ॥

पदार्थः—(**एणी**) मृगी (**अह्नः**) दिनस्य (**मण्डूकः**) (**मूषिका**) (**तित्तिरः**) (**ते**) (**सर्पाणाम्**) (**लोपाशः**) वनचरपशुविशेषः (**आश्विनः**) अश्विदेवताकः (**कृष्णः**) कृष्णवर्णः (**रात्र्यै**) (**ऋक्षः**) भल्लूकः (**जतूः**) (**सुषिलीका**) एतौ च पक्षिविशेषौ (**ते**) (**इतरजनानाम्**) इतरे च ते जना इतरजनास्तेषाम् (**जहका**) गात्रसंकोचिनी (**वैष्णवी**) विष्णुदेवताका ॥ ३६ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या युष्माभिर्यैणी साऽह्नो ये मण्डूको मूषिका तित्तिरिश्च ते सर्पाणां यो लोपाशः स आश्विनो यः कृष्णः स रात्र्यै य ऋक्षो जतूः सुषिलीका च त इतरजनानां या जहका सा वैष्णवी च विज्ञेयाः ॥ ३६ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः! युष्माभिर्या-एणी** मृगी **साऽह्नः** दिनस्य, **ये—मण्डूको, मूषिका, तित्तिरिश्च ते सर्पाणां, यो लोपाशः** वनचरपशुविशेषः **स आश्विनः** अश्विदेवताकः, **यः**

भाषार्थ—हे मनुष्यो! तुम—जो (एणी) मृगी है वह (अह्नः) दिन के गुणों वाली है; जो (मण्डूकः) मेंढक, (मूषिका) चूही और (तित्तिरिः) तीतर हैं (ते) वे (सर्पाणाम्) साँपों के गुणों वाले

कृष्णः कृष्णवर्णः **स रात्र्यै, य ऋक्षः** भल्लूकः जतूः **सुषिलीका** एतौ च पक्षिविशेषौ **च त इतरजनानां** इतरे च ते जना इतरजनास्तेषां, **या जहका** गात्रसङ्कोचिनी **सा वैष्णवी** विष्णुदेवताका **च विज्ञेयाः** ॥ २४ । ३६ ॥

हैं, (लोपाशः) 'लोपाश' नामक वनचर पशु विशेष है वह (आश्विनः) सूर्य और चन्द्र देवता वाला है, जो (कृष्णः) काले रंग वाला पशु है वह (रात्र्यै) रात्रि के गुणों वाला है; जो (ऋक्षः) भालू (जतूः) 'जतू' नामक पक्षी और (सुषिलीका) 'सुषिलीका' नामक पक्षी हैं (ते) वे (इतरजनानाम्) पर पुरुष के गुणों वाले हैं, और जो (जहका) अंगों को संकुचित करने वाली जौंक है वह (वैष्णवी) विष्णु देवता वाली है, ऐसा जानो ॥ २४ । ३६ ॥

भावार्थः—ये दिनादिगुणाः पशुपक्षिविशेषास्ते तत्तद्गुणतो विज्ञेयाः ॥ २४ । ३६ ॥

भावार्थ—जो दिन आदि के गुणों वाले पशु और पक्षी विशेष हैं उन्हें उन-उन गुणों से युक्त समझें ॥ २४ । ३६ ॥

भाष्यसार—**किन पशुओं को किसलिए सेवा करें**—दिन के गुणों को जानने के लिए मृगी; साँपों के गुणों को जानने के लिए मेंढक; चूहा और तीतर, अश्विनौ=सूर्य और चन्द्र के गुणों को जानने के लिए 'लोपाश' नामक वनचर पशु, रात्रि के गुणों को जानने के लिए कृष्ण मृग, पर-पुरुषों के गुणों को जानने के लिए भालू, जतू और सुषिलीका, विष्णु=जल के गुणों को जानने के लिए 'जहका' (जौंक) की सेवा करें ॥ २४ ॥ ३६ ॥

प्रजापतिः । **अर्द्धमासादयः**=**अर्द्धमास-गान्धर्व-मास-अप्सरः-मृत्यवः ।**
भुरिग्जगती । निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

किन पशुओं की किसलिए सेवा करें, यह उपदेश किया है ॥

अन्यवापोऽर्द्धमासानामृश्यो मयूरः सुपर्णस्ते गन्धर्वाणामपामुद्रो मासाङ्कश्यपो रोहित्कुण्डृणाची गोलत्तिका तेऽप्सरसां मृत्यवेऽसितः ॥ ३७ ॥

पदार्थः—(**अन्यवापः**) कोकिलाख्यः पक्षिविशेषः (**अर्द्धमासानाम्**) (**ऋश्यः**) मृगविशेषः (**मयूरः**) (**सुपर्णः**) पक्षिविशेषः (**ते**) (**गन्धर्वाणाम्**) गायकानाम् (**अपाम्**) जलानाम् (**उद्रः**) जलचरः कर्कटाख्यः (**मासान्**) मासानाम् । अत्र विभक्तिव्यत्ययः । (**कश्यपः**) कच्छपः (**रोहित्**) मृगविशेषः (**कुण्डृणाची**) वनचरी (**गोलत्तिका**) वनचरविशेषा (**ते**) (**अप्सरसाम्**) किरणादीनाम् (**मृत्यवे**) (**असितः**) कृष्णगुणः पशुविशेषः ॥ ३७ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या युष्माभिर्योऽन्यवापः सोऽर्द्धमासानां य ऋश्यो मयूरः सुपर्णश्च ते गन्धर्वाणामपां च य उद्रः स मासान् ये कश्यपो रोहित् कुण्डृणाची गोलत्तिका च तेऽप्सरसां योऽसितः स मृत्यवे च विज्ञेयाः ॥ ३७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **युष्माभिर्योऽन्यवापः** कोकिलाख्यः पक्षिविशेषः **सोऽर्द्धमासानां; य ऋश्यः** मृगविशेषः, **मयूरः, सुपर्णः**

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—(अन्यवापः) कोकिल=कोयल नामक पक्षी विशेष है वह (अर्द्धमासानाम्) अर्द्धमास=पक्षों के गुणों वाला है; जो

पक्षिविशेषः **च ते गन्धर्वाणां** गायकानाम् **अपां** जलानां **च, य उद्रः** जलचरः कर्कटाख्यः **स मासान्** मासानां; **ये—कश्यपः** कच्छपः, **रोहित्** मृगविशेषः, **कुण्डृणाची** वनचरी **गोलत्तिका** वनचरविशेषा **च तेऽप्सरसां** किरणादीनां, **योऽसितः** कृष्णगुणः पशुविशेषः **स मृत्यवे च विज्ञेयाः** ॥ २४ । ३७ ॥

(ऋश्यः) 'ऋश्य' नामक मृग विशेष, (मयूरः) मोर और (सुपर्णः) सुन्दर पंखों वाला गरुड़ पक्षी—हैं (ते) वे (गन्धर्वाणाम्) गायकों के गुणों वाले हैं; जो (उद्रः) कर्कट=केकड़ा नामक जलचर है वह (मासान्) मासों के गुणों वाला है; जो (कश्यपः) कछुआ, (रोहित्) लाल मृग विशेष, (कुण्डृणाची) कुण्डृणाची' नामक वनचरी और (गोलत्तिका) 'गोलत्तिका' नामक वनचरी विशेष—हैं; (ते) वे (अप्सरसाम्) किरण आदि के गुणों वाले हैं; जो (असितः) काले रंग वाला पशु विशेष है वह (मृत्यवे) मृत्यु के लिए है; ऐसा जानो ॥२४।३७॥

भावार्थः—ये कालादिगुणाः पशुपक्षिणस्त उपकारिणः सन्तीति वेद्यम् ॥ २४ । ३७ ॥

भावार्थ—जो काल आदि के गुणों वाले पशु और पक्षी हैं वे उपकारी हैं; ऐसा समझें ॥ २४ । ३७ ॥

भाष्यसार—**किन पशुओं की किसलिए सेवा करें**—अर्धमास=पक्षों के गुणों को जानने के लिए कोयल, गन्धर्व=गायक और जल के गुणों को जानने के लिए 'ऋश्य' नामक मृग, मोर और सुपर्ण=गरुड़, मासों के गुणों को जानने के लिए जलचर कर्कट, अप्सर=किरण आदि के गुणों को जानने के लिए कछुआ, लाल मृग, कुण्डृणाची और गोलत्तिका वनचरी, मृत्यु को जानने के लिए कृष्ण मृग की सेवा करें। काल आदि गुणों से युक्त मन्त्रोक्त पशु पक्षी उपकारी हैं ॥ २४ । ३७ ॥

प्रजापतिः । **वर्षाह्वय**:=ऋतु-पितृ-वसु-निर्ऋति-वरुणाः । स्वराड्जगती । निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

किन पशुओं की किसलिए सेवा करें, यह उपदेश किया है ॥

वर्षाहूर्ऋतूनामाखुः कशो मान्थालस्ते पितृणां बलायाजगरो वसूनां कपिञ्जलः

कपोत उलूकः शशस्ते निर्ऋत्यै वरुणायारण्यो मेषः ॥ ३८ ॥

पदार्थः—(**वर्षाहूः**) या वर्षा आह्वयति सा भेकी (**ऋतूनाम्**) वसन्तादीनाम् (**आखुः**) मूषकः (**कशः**) शासनीयः (**मान्थालः**) जन्तुविशेषः (**ते**) (**पितृणाम्**) पालकानाम् (**बलाय**) (**अजगरः**) महान्सर्पः (**वसूनाम्**) (**कपिञ्जलः**) (**कपोतः**) (**उलूकः**) (**शशः**) पशुविशेषः (**ते**) (**निर्ऋत्यै**) (**वरुणाय**) (**आरण्यः**) अरण्ये भवः (**मेषः**) पशुविशेषः ॥ ३८ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या युष्माभिर्या वर्षाहूः सा ऋतुनामाखुः कशो मान्थालश्च ते पितृणां बलायाजगरो वसूनां कपिञ्जलः कपोत उलूकः शशश्च ते निर्ऋत्यै य आरण्यो मेषः स वरुणाय च विज्ञेयाः ॥ ३८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! **युष्माभिर्या वर्षाहूः** या वर्षा आह्वयति सा भेकी **सा**

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम— जो (वर्षाहूः) वर्षा का आह्वान करने वाली मेंढकी

ऋतूनां वसन्तादीनाम्; **आखुः** मूषकः, **कशः** शासनीयः, **मान्थालः** जन्तुविशेषः **च ते पितॄणां** पालकानां; **बलायाजगरः** महान्सर्पः, **वसूनां कपिञ्जलः, कपोतः, उलूकः, शशः** पशुविशेषः **च ते निर्ऋत्यै; य आरण्यः** अरण्ये भवः **मेषः** पशुविशेषः **स वरुणाय च विज्ञेयाः** ।। २४ । ३८ ।।

है वह (ऋतूनाम्) वसन्त आदि के गुणों वाली है; (आखुः) चूहा, (कशः) शासन में रखने योग्य घोड़ा आदि, और (मान्थालः) 'मान्थाल' नामक जन्तु विशेष हैं (ते) वे (पितॄणाम्) पालक जनों के गुणों वाले हैं; (बलाय) बल के लिए (अजगरः) अजगर महासर्प, (वसूनाम्) अग्नि आदि वसुओं के गुणों के लिए (कपिञ्जलः) पपीहा; (कपोतः) कबूतर, (उलूकः) उल्लू और (शशः) खरगोश पशुविशेष हैं (ते) वे (निर्ऋत्यै) विनाश के लिए हैं; जो (आरण्यः) जंगली (मेषः) मेंढा पशु विशेष है वह (वरुणाय) वरुण के लिए हैं; ऐसा जानो ।। २४ । ३८ ।।

भावार्थः—ये ऋत्वादिगुणाः पशुपक्षिणस्ते तद्गुणा विज्ञेयाः ।। २४ । ३८ ।।

भावार्थ—जो ऋतु आदि के गुणों वाले पशु और पक्षी हैं उन्हें उन-उन गुणों वाला समझें ।।३८।।

भाष्यसार—**किन पशुओं की किसलिए सेवा करें**—वसन्त आदि ऋतुओं के गुणों को जानने के लिए वर्षा को बुलाने वाली भेकी=मेंढकी, पितरों के गुणों को जानने के लिए चूहा, कश=शासन के योग्य घोड़ा आदि, और मान्थाल नामक जन्तु विशेष, बल के लिए अजगर, वसु=अग्नि आदि के गुणों को जानने के लिए कपिंजल=पपीहा, विनाश के लिए कबूतर, उल्लू और खरगोश, वरुण=जल के लिए जंगली मेंढा पशु की सेवा करें ।। २४ । ३८ ।।

प्रजापतिः । **आदित्यादयः**=**आदित्य-मति-अरण्य-रौद्र-दात्यौह-कामाः** ।
स्वराट्त्रिष्टुप् । धैवतः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

किन पशुओं की किसलिए सेवा करें, यह उपदेश किया है ।।

श्वित्रऽआदित्यानामुष्ट्रो घृणीवान् वार्ध्रीनसस्ते मत्याऽअरण्याय सृमरो रुरू रौद्रः क्वयिः कुटरुर्दात्यौहस्ते वाजिनां कामाय पिकः ॥ ३९ ॥

पदार्थः—(**श्वित्रः**) विचित्रः पशुविशेषः (**आदित्यानाम्**) कालावयवानाम् (**उष्ट्रः**) (**घृणीवान्**) तेजस्विपशुविशेषः (**वार्ध्रीनसः**) कण्ठेस्तनवान्महानजः (**ते**) (**मत्यै**) प्रज्ञायै (**अरण्याय**) (**सृमरः**) गवयः (**रुरुः**) मृगविशेषः (**रौद्रः**) रुद्रदेवताकः (**क्वयिः**) पक्षिविशेषः (**कुटरुः**) कुक्कुटः (**दात्यौहः**) काकः (**ते**) (**वाजिनाम्**) (**कामाय**) (**पिकः**) कोकिलः ।। ३९ ।।

अन्वयः—हे मनुष्या युष्माभिर्यः श्वित्रः स आदित्यानाम् । य उष्ट्रो घृणीवान् वार्ध्रीनसश्च ते मत्यै । यः सृमरः सोऽरण्याय । यो रुरुः स रौद्रः । ये क्वयिः कुटरुर्दात्यौहश्च ते वाजिनाम् । यः पिकः स कामाय च विज्ञेयाः ।। ३९ ।।

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! युष्माभिर्यः **श्वित्रः** विचित्रः पशुविशेषः **स**

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—जो (श्वित्रः) विचित्र पशु विशेष है वह (आदित्यानाम्)

आदित्यानां कालावयवानां; **ये उष्ट्रो, घृणीवान्** तेजस्विपशुविशेषः, **वार्ध्रीनसः** कण्ठेस्तनवान्महानजः **ते मत्यै प्रज्ञायै; यः सृमरः** गवयः **सोऽरण्याय, यो रुरुः** मृगविशेषः, **स रौद्रः** रुद्रदेवताकः, **ये क्वयिः** पक्षिविशेषः, **कुटरुः** कुक्कुटः, **दात्यौहः** काकः **च ते वाजिनां; यः पिकः** कोकिलः **स कामाय च विज्ञेयाः** ॥ २४ । ३९ ॥

काल-अवयवों के गुणों वाला है; जो (उष्ट्रः) ऊंट, (घृणीवान्) तेजस्वी पशु विशेष, (वार्ध्रीनसः) कण्ठ में स्तन वाला महान् अज=बकरा हैं (ते) वे (मत्यै) प्रज्ञा=बुद्धि के लिए हैं; जो (सृमरः) गवय=नीलगाय है वह (आरण्याय) जंगल के लिए है; जो (रुरुः) मृग विशेष है वह (रौद्रः) 'रुद्र' देवता वाला है; जो (क्वयिः) 'क्वयि' नामक पक्षी विशेष, (कुटरुः) कुक्कुट=मुर्गा और (दात्यौहः) कौआ हैं (ते) वे (वाजिनाम्) घोड़ों के गुणों वाले हैं; जो (पिकः) कोयल है वह (कामाय) काम के लिए हैं, ऐसा जानो ॥२४।३९॥

भावार्थः—ये आदित्यादिगुणाः पशुपक्षिणस्ते तत्तत्स्वभावाः सन्तीति वेद्यम् ॥ २४ । ३९ ॥

भावार्थ—जो आदित्य आदि के गुणों वाले पशु और पक्षी हैं वे उस-उस स्वभाव वाले हैं, ऐसा समझें ॥ २४ । ३९ ॥

भाष्यसार—**किन पशुओं की किसलिए सेवा करें**—आदित्य=काल अवयव (मास) के गुणों को जानने के लिए 'श्वित्र' विचित्र पशु, मति=प्रज्ञा (बुद्धि) को जानने के लिए ऊँट, घृणीवान्=तेजस्वी पशु विशेष, कठफोड़ा, अरण्य=जंगल को जानने के लिए नील गाय, रुद्र के गुणों का जानने के लिए 'रुरु' नामक मृग, वाजी=घोड़ों के गुणों को जानने के लिए 'क्वयि' नामक पक्षी, मुर्गा और काक (कौआ), काम को जानने के लिए कोयल की सेवा करें ॥ २४ । ३९ ॥

प्रजापतिः । **विश्वेदेवाद्यः**=**विश्वेदेव-रक्षः-इन्द्र-मरुत्-शरव्या-विश्वेदेवाः** ।
शक्वरी । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

किन पशुओं की किसलिए सेवा करें, यह उपदेश किया है ॥

खड्गो वैश्वदेवः श्वा कृष्णः कर्णो गर्दभस्तरक्षुस्ते रक्षसामिन्द्राय सूकरः सिंहो मारुतः कृकलासः पिप्पका शकुनिस्ते शरव्यायै विश्वेषां देवानां पृषतः ॥ ४० ॥

पदार्थः—(**खड्गः**) तुण्डशृङ्गः पशुविशेषः (**वैश्वदेवः**) विश्वेषां देवानामयम् (**श्वा**) कुक्कुरः (**कृष्णः**) कृष्णगुणविशेषः (**कर्णः**) दीर्घकर्णः (**गर्दभः**) पशुविशेषः (**तरक्षुः**) व्याघ्रः (**ते**) (**रक्षसाम्**) (**इन्द्राय**) विदारकाय (**सूकरः**) यः सुष्ठु शुद्धिं करोति स बलिष्ठो वराहः (**सिंहः**) हिंसको व्याघ्रः (**मारुतः**) मरुद्देवताकः (**कृकलासः**) सरटः (**पिप्पका**) पक्षिणी (**शकुनिः**) (**ते**) (**शरव्यायै**) शरवीषु कुशलायै (**विश्वेषाम्**) अखिलानाम् (**देवानाम्**) विदुषाम् (**पृषतः**) मृगविशेषाः ॥ ४० ॥

अन्वयः—हे मनुष्या युष्माभिर्यः खड्गः स वैश्वदेवो ये कृष्णः श्वा कर्णो गर्दभस्तरक्षुश्च ते रक्षसां यः सूकरः स इन्द्राय यः सिंहः स मारुतो ये कृकलासः पिप्पका शकुनिश्च ते शरव्यायै ये पृषतस्ते विश्वेषां देवानां विज्ञेयाः ॥ ४० ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः! युष्माभिर्यः **खड्गः** तुण्डशृङ्गः पशुविशेषः **स वैश्वदेवः** विश्वेषां देवानामयं; **ये—कृष्णः** कृष्णगुणविशेषः **श्वा** कुक्कुरः, **कर्णः** दीर्घकर्णः **गर्दभः** पशुविशेषः, **तरक्षुः** व्याघ्रः **च ते रक्षसां; यः सूकरः** यः सुष्ठु शुद्धिं करोति स बलिष्ठो वराहः **स इन्द्राय** विदारकाय; **यः सिंहः** हिंसको व्याघ्रः **स मारुतः** मरुद्देवताकः; **ये—कृकलासः** सरटः, **पिप्पका** पक्षिणी, **शकुनिश्च ते शरव्यायै** शरवीषु कुशलायै; **ये पृषतः** मृगविशेषाः **ते विश्वेषाम्** अखिलानां **देवानां** विदुषां **विज्ञेयाः** ॥ २४ । ४० ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—जो (खड्गः) गेंडा नामक पशु विशेष वह (वैश्वदेवः) सब विद्वानों के गुणों वाला है; जो (कृष्णः) कृष्ण वर्ण वाला, (श्वा) कुत्ता, (कर्णः) लम्बे कानों वाला (गर्दभः) गदहा पशु विशेष और (तरक्षुः) व्याघ्र=बाघ हैं (ते) वे (रक्षसाम्) राक्षसों के गुण वाले हैं; जो (सूकरः) उत्तम शुद्धि करने वाला बलिष्ठ सूअर है वह (इन्द्राय) शत्रु विदारक राजा के लिए है; जो (सिंहः) हिंसक बाघ है वह (मारुतः) मरुत्=वायु देवता वाला है; जो (कृकलासः) सरट=गिरगिट, (पिप्पका) 'पिप्पका' नामक पक्षिणी और (शकुनिः) पक्षी मात्र हैं (ते) वे (शरव्यायै) शर-शिक्षा में कुशलता स्त्री के लिए हैं; जो (पृषतः) चित्तीदार मृग विशेष हैं (ते) वे (विश्वेषाम्) सब (देवानाम्) विद्वानों के गुणों वाले हैं; ऐसा जानो ॥ २४ । ४० ॥

भावार्थः—ये सर्वे पशुपक्षिणः सर्वगुणाः सन्ति तान् विज्ञाय व्यवहारसिद्धये सर्वे मनुष्या नियोजयन्तामिति ॥ २४ । ४० ॥

भावार्थ—जो सब पशु और पक्षी सब गुणों वाले हैं उन्हें जानकर व्यवहार सिद्धि के लिए सब मनुष्य लगावें; यह उपदेश है ॥ २४ । ४० ॥

भाष्यसार—**किन पशुओं को किसलिए सेवा करें**—सब विद्वानों गुणों को जानने के लिए गेंडा, राक्षसों के गुणों को जानने के लिए काला कुत्ता, लम्बे कानों वाला गदहा, बाघ, शत्रुविदारक राजा के गुणों को जानने के लिए सफाई करने वाले बलिष्ठ वराह=सूअर, मरुत्=वायु के गुणों को जानने के लिए सिंह, शर (बाण) विद्या में कुशल स्त्री के गुणों को जानने के लिए 'पिप्पका' नामक पक्षिणी और सब पक्षी, सब विद्वानों के गुणों को जानने के लिए 'पृषत' नामक मृग विशेषों की सेवा करें। मनुष्य पशु-पक्षियों के गुणों को जानकर उन्हें व्यवहार-सिद्धि में लगावें ॥ २४ । ४० ॥

[पूर्वापराध्यायार्थसंगतिमाह—]

अस्मिन्नध्याये पशुपक्षिमृगसरीसृपजलजन्तुकृम्यादीनां गुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वाध्यायोक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति बोद्धव्यम् ॥ २४ ॥

इस अध्याय में पशु, पक्षी, मृग, साँप, जल-जन्तु और कृमि आदि के गुणों का वर्णन होने से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति है; ऐसा समझें ॥ २४ ॥

इति श्रीयुतपण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते दयानन्द-यजुर्वेदभाष्य-भास्करे चतुर्विंशोऽध्यायः सम्पूर्णः ॥

॥ ओ३म् ॥

* अथ पञ्चविंशोऽध्याय आरभ्यते *

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआसु॑व ॥ १ ॥

य० । ३ । ३० ॥

प्रजापतिः । **सरस्वत्यादयः**=वागादयः । पूर्वस्य भुरिक्छक्वरी । आदित्यानित्युत्तरस्य निचृदतिशक्वरी छन्दः । धैवतः ॥

अथ केन किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

अब पच्चीसवें अध्याय का आरम्भ है । इसके प्रथम मन्त्र में किससे क्या करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

शाद॑ द॒द्भिरव॑कां दन्तमू॒लैर्मृद॑ं बस्वैँ॑स्ते॒गान्द॒ꣳष्ट्रा॑भ्या॒ꣳ सर॑स्वत्याऽ अग्र॒जि॒ह्वं जि॒ह्वाया॑ऽ उ॒त्सा॒दम॑वक्र॒न्देन॒ ताल॒ु वाज॒ꣳ हनु॑भ्याम॒प ऽ आ॒स्ये॒न॒ वृष॑णमा॒ण्डाभ्या॑मादि॒त्याँ श्मश्रु॑भि॒ः पन्था॑नं भ्रू॒भ्यां द्यावा॑पृथि॒वी वर्त्तो॑भ्यां वि॒द्युतं॑ क॒नीन॑काभ्या॒ꣳ शु॒क्लाय॒ स्वाहा॑ कृ॒ष्णाय॒ स्वाह॒ा पार्या॑णि॒ पक्ष्मा॑ण्यवा॒र्या॒ऽ इ॒क्षवो॑ऽवा॒र्या॒णि॒ पक्ष्मा॑णि॒ पार्या॑ऽ इ॒क्षव॑ः ॥ १ ॥

पदार्थः—(**शादम्**) शीयते=छिनत्ति यस्मिँस्तं शादम् (**दद्भिः**) दन्तैः (**अवकाम्**) रक्षिकाम् (**दन्तमूलैः**) दन्तानां मूलैः (**मृदम्**) मृत्तिकाम् (**बस्वैः**) दन्तपृष्ठैः (**ते**) तव (**गाम्**) वाणीम् (**दंष्ट्राभ्याम्**) मुखदन्ताभ्याम् (**सरस्वत्यै**) प्रशस्तविज्ञानवत्यै वाचे (**अग्रजिह्वम्**) जिह्वाया अग्रम् (**जिह्वायाः**) (**उत्सादम्**) ऊर्ध्वं सीदन्ति यस्मिँस्तम् (**अवक्रन्देन**) विकलतारहितेन (**तालु**) आस्यावयवम् (**वाजम्**) अन्नम् (**हनुभ्याम्**) मुखैकदेशाभ्याम् (**अपः**) जलानि (**आस्येन**) आस्यन्दन्ति=क्लेदी भवन्ति यस्मिस्तेन (**वृषणम्**) वर्षयितारम् (**आण्डाभ्याम्**) वीर्याधाराभ्याम् (**आदित्यान्**) मुख्यान् विदुषः (**श्मश्रुभिः**) मुखाऽभितः केशैः (**पन्थानम्**) मार्गम् (**भ्रूभ्याम्**) नेत्रगोलकोर्ध्वाऽवयवाभ्याम् (**द्यावापृथिवी**) सूर्यभूमी (**वर्त्तोभ्याम्**) गमनागमनाभ्याम् (**विद्युतम्**) तडितम् (**कनीनकाभ्याम्**) तेजोमयाभ्यां कृष्णगोलकतारकाभ्याम् (**शुक्लाय**) वीर्याय (**स्वाहा**) ब्रह्मचर्यक्रियया (**कृष्णाय**) विद्याकर्षणाय (**स्वाहा**) सुशीलतायुक्तया क्रियया (**पार्याणि**) परितुं=पूरयितुं योग्यानि (**पक्ष्माणि**) परिग्रहीतुं योग्यानि कर्माणि नेत्रोर्ध्वलोमानि वा (**अवार्याः**) अवारे

भवाः (**इक्षवः**) इक्षुदण्डाः (**अवार्याणि**) अवारेषु भवानि (**पक्ष्माणि**) परिग्रहणानि लोमानि वा (**पार्याः**) परितुं=पालयितुं योग्याः (**इक्षवः**) गुडादिनिमित्ताः ॥ १ ॥

अन्वयः—हे जिज्ञासो विद्यार्थिन् ! ते दद्भिः शादं दन्तमूलैर्बर्स्वैश्चावकां मृदं दंष्ट्राभ्यां सरस्वत्यै गां जिह्वाया अग्रजिह्वमवक्रन्देनोत्सादं तालु हनुभ्यां वाजमास्येनाऽप आण्डाभ्यां वृषणं श्मश्रुभिरादित्यान् भ्रूभ्यां पन्थानं वर्त्तोभ्यां द्यावापृथिवी कनीनकाभ्यां विद्युतमहं बोधयामि । त्वया शुक्राय स्वाहा कृष्णाय स्वाहा पार्याणि पक्ष्माण्यवार्या इक्षवोऽवार्याणि पक्ष्माणि पार्या इक्षवश्च संग्राह्याः ॥ १ ॥

सपदार्थान्वयः — हे **जिज्ञासो विद्यार्थिन्** ! **ते** तव **दद्भिः** दन्तैः **शादं** शीयते=छिनत्ति यस्मिँस्तं शादं, **दन्तमूलैः** दन्तानां मूलैः **बर्स्वैः** दन्तपृष्ठैः **च अवकां** रक्षिकां **मृदं** मृत्तिकां, **दंष्ट्राभ्यां** मुखहन्ताभ्यां **सरस्वत्यै** प्रशस्तविज्ञानवत्यै वाचे **गां** वाणीं, **जिह्वाया अग्रजिह्वं** जिह्वाया अग्रम्, **अवक्रन्देन** विकलतारहितेन **उत्सादम्** ऊर्ध्वं सीदन्ति यस्मिँस्तं **तालु** आस्यावयवं, **हनुभ्यां** मुखैकदेशाभ्यां **वाजम्** अन्नम्, **आस्येन** आस्यन्दन्ति=क्लेदीभवन्ति यस्मिँस्तेन **अपः** जलानि, **आण्डाभ्यां** वीर्याधाराभ्यां **वृषणं** वर्षयितारं, **श्मश्रुभिः** मुखाऽभितः केशैः **आदित्यान्** मुख्यान् विदुषः, **भ्रूभ्यां** नेत्रगोलकोर्ध्वाऽवयवाभ्यां **पन्थानं** मार्गं, **वर्त्तोभ्यां** गमनागमनाभ्यां **द्यावापृथिवी** सूर्यभूमी, **कनीनकाभ्यां** तेजोमयाभ्यां कृष्णगोलकतारकाभ्यां **विद्युतं** तडितम् **अहं बोधयामि** ।

त्वया शुक्राय वीर्याय **स्वाहा** ब्रह्मचर्यक्रियया, **कृष्णाय** विद्याकर्षणाय **स्वाहा** सुशीलतायुक्तया क्रियया, **पार्याणि** परितुं=पूरयितुं योग्यानि **पक्ष्माणि** परिग्रहीतुं योग्यानि कर्माणि नेत्रोर्ध्वलोमानि वा, **अवार्याः** अवारे भवाः **इक्षवः** इक्षुदण्डाः, **अवार्याणि** अवारेषु भवानि **पक्ष्माणि** परिग्रहणानि लोमानि वा, **पार्याः** परितुं=पालयितुं योग्याः **इक्षवः** गुडादिनिमित्ताः **च संग्राह्याः** ॥ २५ । १ ॥

भाषार्थ—हे जिज्ञासु विद्यार्थी ! (ते)तुझे—(दद्भिः) दांतों से (शादम्) भक्ष्य पदार्थों के छेदक मुख, (दन्तमूलैः) दांतों के मूल एवं (बर्स्वैः) दांतों के पृष्ठ भागों से (अवकाम्) रक्षक (मृदम्) मिट्टी, (दंष्ट्राभ्याम्) दाढ़ एवं (सरस्वत्यै) प्रशस्त विज्ञानवती वाणी से (गाम्) वाणी, (जिह्वायाः) जिह्वा से (अग्रजिह्वम्) जिह्वा के अग्रभाग, (अवक्रन्देन) विकलता के अभाव से (उत्सादम्) वर्णों के ऊर्ध्व स्थान (तालु) तालु, (हनुभ्याम्) ठोडी के दो भागों से (वाजम्) अन्न, (आस्येन) भक्ष्य पदार्थों को गीला करने वाले मुख से (अपः) जल, (आण्डाभ्याम्) वीर्य के आधार अण्डकोशों से (वृषणम्) वीर्य की वर्षा करने वाले लिंग, (श्मश्रुभिः) मुख के केश अर्थात् मूछों से (आदित्यान्) मुख्य विद्वान्, (भ्रूभ्याम्) नेत्र-गोलक के ऊर्ध्व भाग अर्थात् भौं से (पन्थानम्) मार्ग, (वर्त्तोभ्याम्) जाने-आने से (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि, (कनीनकाभ्याम्) तेजोमय कृष्ण गोल तारकों से (विद्युतम्) विद्युत् का मैं बोध करता हूँ ।

तू—(शुक्राय) वीर्य के लिए (स्वाहा) ब्रह्मचर्य का आचरण, (कृष्णाय) विद्या के आकर्षण के लिए (स्वाहा) सुशीलता युक्त आचरण, (पार्याणि) पूरे करने योग्य वचन, (पक्ष्माणि) स्वीकार करने योग्य कर्म वा नेत्रों के ऊर्ध्व भाग के लोम, (अवार्याः) नदी आदि के अवर देश में होने वाले (इक्षवः) ईख, (अवार्याणि) अवर अवस्था के (पक्ष्माणि) स्वीकार करने योग्य कर्म वा लोम और (पार्याः) पालन करने योग्य (इक्षवः) ईख हैं, उन्हें ग्रहण कर ॥ २५ । १ ॥

भावार्थः—अध्यापकाः शिष्याणामङ्गान्युपदेशेन पुष्टानि कृत्वाऽऽहार-विहारादिकं सम्बोध्य, सर्वा विद्या प्रापय्याखण्डितं ब्रह्मचर्यं सेवयित्वैश्वर्यं प्रापय्य, सुखिनः सम्पादयन्तु ॥ २५ । १ ॥

भावार्थ—अध्यापक लोग शिष्यों के अंगों को उपदेश से पुष्ट बनाकर, आहार-विहार आदि को ठीक-ठीक जनाकर, सब विद्याओं को प्राप्त कराकर, अखण्डित ब्रह्मचर्य का सेवन कराकर, ऐश्वर्य को प्राप्त कराकर सुखी बनावें ॥ २५ । १ ॥

भा० पदार्थः—कृष्णाय=विद्याप्राप्तये । शुक्राय=अखण्डितब्रह्मचर्यसेवनाय ।

भाष्यसार—**किससे क्या करें**—अध्यापक लोग जिज्ञासु विद्यार्थियों को दांतों से मुख को, दन्तमूलों और दन्तपृष्ठों से रक्षक मृत्तिका को, दाढ़ों एवं प्रशस्त विज्ञानती वाक् से वाणी को, जिह्वा से जिह्वा के अग्रभाग को, विकलता के अभाव से वर्णों के ऊर्ध्व स्थान तालु को, ठोढ़ी के दोनों भागों से अन्न को, मुख से जलों को, वीर्य के आधार अण्ड-कोषों से लिंग को, मूँछों से मुख्य विद्वानों को, भ्रुवों से मार्ग को, गमन-आगमन से सूर्य और भूमि को, कनीनक=आँखों के तेजोमय कृष्ण गोल तारकों से विद्युत् को जनावें ।

जिज्ञासु विद्यार्थी लोग—वीर्य के लिए ब्रह्मचर्य का आचरण, विद्या के आकर्षण (ग्रहण) के लिए, सुशीलता युक्त आचरण करें । पूरे करने योग्य एवं स्वीकार करने योग्य कर्मों को ग्रहण करें । नदी के अवर भाग एवं परभाग में होने वाले ईख को ग्रहण करें ॥ २५ । १ ॥

प्रजापतिः । **प्राणादयः**=स्पष्टम् । भुरगतिशक्वर्यौ । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

किससे क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

वातं प्राणेनापानेन नासिके उपयाममधरेणौष्ठेन सदुत्तरेण प्रकाशेनान्तरमनूकाशेन बाह्यं निवेष्यं मूर्ध्ना स्तनयित्नुं निर्बाधेनाशनिं मस्तिष्केण विद्युतं कनीनकाभ्यां कर्णाभ्याᳬं श्रोत्रᳬं श्रोत्राभ्यां कर्णौ तेदनीमधरकण्ठेनापः शुष्ककण्ठेन चित्तं मन्याभिरदितिᳬं शीर्ष्णा निर्ऋतिं निर्जर्जल्पेन शीर्ष्णा संक्रोशैः प्राणान् रेष्माणᳬं स्तुपेन ॥ २ ॥

पदार्थः—(**वातम्**) वायुम् (**प्राणेन**) (**अपानेन**) (**नासिके**) नासिकाछिद्रे (**उपयामम्**) उपगतं नियमम् (**अधरेण**) मुखादधस्थेन (**ओष्ठेन**) (**सत्**) (**उत्तरेण**) उपरिस्थेन (**प्रकाशेन**) (**अन्तरम्**) मध्यस्थमाभ्यन्तरम् (**अनूकाशेन**) अनुप्रकाशेन (**बाह्यम्**) बहिर्भवम् (**निवेष्यम्**) निश्चयेन व्याप्तुं योग्यम् (**मूर्ध्ना**) मस्तकेन (**स्तनयित्नुम्**) शब्दनिमित्तां विद्युतम् (**निर्बाधेन**) नितरां बाधेन हेतुना (**अशनिम्**) व्यापिकां घोषयुक्ताम् (**मस्तिष्केण**) शिरस्थमज्जातन्तुसमूहेन (**विद्युतम्**) विशेषेण द्योतमानाम् (**कनीनकाभ्याम्**) प्रदीप्ताभ्यां=कमनीयाभ्याम् (**कर्णाभ्याम्**) श्रवणसाधकाभ्याम् (**श्रोत्रम्**) शृणोति येन तत् (**श्रोत्राभ्याम्**) शृणोति याभ्यां गोलकाभ्यां ताभ्यां (**कर्णौ**) करोति श्रवणं याभ्यां तौ (**तेदनीम्**) श्रवणक्रियाम् (**अधरकण्ठेन**) अधस्थेन कण्ठेन (**अपः**) जलानि (**शुष्ककण्ठेन**) (**चित्तम्**) विज्ञानसाधिकामन्तःकरणवृत्तिम् (**मन्याभिः**) विज्ञानक्रियाभिः (**अदितिम्**) अविनाशिकां प्रज्ञाम् (**शीर्ष्णा**) शिरसा (**निर्ऋतिम्**) भूमिम् (**निर्जर्जल्पेन**) नितरां जर्जरीभूतेन (**शीर्ष्णा**) शिरसा (**सङ्क्रोशैः**) सम्यगाह्वानैः (**प्राणान्**) (**रेष्माणम्**) हिंसकम् (**स्तुपेन**) हिंसनेन ॥ २ ॥

अन्वयः—हे जिज्ञासो मदुपदेशग्रहणेन त्वं प्राणेनापानेन वातं नासिके उपयाममधरेणौष्ठेनोत्तरेण प्रकाशेन सदन्तरमनूकाशेन बाह्यं मूर्ध्ना निवेष्यं निर्बाधेन सह स्तनयित्नुमशनिं मस्तिष्केण विद्युतं कनीनकाभ्यां कर्णाभ्यां कर्णौ श्रोत्राभ्यां च श्रोत्रं तेदनीमधरकण्ठेनापः शुष्ककण्ठेन चित्तं मन्याभिरदितिं शीर्ष्णा निर्ऋतिं निर्जर्जल्पेन शीर्ष्णा संक्रोशैः प्राणान् प्राप्नुहि स्तुपेन हिंसनेन रेष्माणमविद्यादिरोगं हिन्धि ॥ २ ॥

सपदार्थान्वयः--हे जिज्ञासो ! **मदुपदेशग्रहणेन त्वं प्राणेनापानेन वातं** वायुं **नासिके** नासिकाछिद्रे **उपयामम्** उपगतं नियमम्, **अधरेण** मुखादधस्थेन **ओष्ठेनोत्तरेण** उपरिस्थेन **प्रकाशेन सदन्तरं** मध्यस्थमाभ्यन्तरम्, **अनूकाशेन** अनुप्रकाशेन **बाह्यं** बहिर्भवं, **मूर्ध्ना** मस्तकेन **निवेष्यं** निश्चयेन व्याप्तुं योग्यं, **निर्बाधेन** नितरां बाधेन हेतुना **सह स्तनयित्नुं** शब्दनिमित्तां विद्युतम्, **अशनिं** व्यापिकां घोषयुक्तां, **मस्तिष्केण** शिरस्थमज्जातन्तुसमूहेन **विद्युतं** विशेषेण द्योतमानां, **कनीनकाभ्यां** प्रदीप्ताभ्यां, कमनीयाभ्यां **कर्णाभ्यां** श्रवणसाधकाभ्यां **कर्णौ** करोति श्रवणं याभ्यां तौ, **श्रोत्राभ्यां** शृणोति याभ्यां गोलकाभ्यां ताभ्यां **च श्रोत्रं** शृणोति येन तत् **तेदनीं** श्रवणक्रियाम्, **अधरकण्ठेन** अधरस्थेन कण्ठेन **अपः** जलानि, **शुष्ककण्ठेन चित्तं** विज्ञानसाधिकामन्तःकरणवृत्तिं, **मन्याभिः** विज्ञानक्रियाभिः **अदितिम्** अविनाशिकां प्रज्ञां, **शीर्ष्णा** शिरसा **निर्ऋतिं** भूमिं, **निर्जर्जल्पेन** नितरां जर्जरीभूतेन **शीर्ष्णा** शिरसा **सङ्क्रोशैः** सम्यगाह्वानैः, **प्राणान् प्राप्नुहि; स्तुपेन=हिंसनेन रेष्माणं=अविद्यादिरोगं** हिंसकं **हिन्धि** ॥ २५ । २ ॥

भाषार्थ—हे जिज्ञासु ! मेरे उपदेश के ग्रहण से तू—(प्राणेन) प्राण एवं (अपानेन) अपान से (वातम्) वायु, (नासिके) नासिका के दो छिद्र तथा (उपयामम्) स्वीकृत नियम को; (अधरेण) मुख के नीचे (ओष्ठेन) ओष्ठ से एवं (उत्तरेण) ऊपर के (प्रकाशेन) प्रकाश से (सत्) श्रेष्ठ (अन्तरम्) अन्दर की वस्तु को; (अनूकाशेन) अनुकूल प्रकाश से (बाह्यम्) बाहर की वस्तु को, (मूर्ध्ना) मस्तक से (निवेष्यम्) निश्चय से प्राप्त करने योग्य ज्ञान को; (निर्बाधेन) नितान्त बाधा के कारण (स्तनयित्नुम्) शब्द की निमित्त (अशनिम्) व्यापक, घोष युक्त विद्युत् को, (मस्तिष्केण) शिर में स्थित मज्जा के तन्तु समूह से (विद्युत्) विशेष प्रकाशमान विद्युत् को; (कनीनकाभ्याम्) प्रदीप्त एवं कमनीय (कर्णाभ्याम्) सुनने के साधनों से (कर्णौ) कानों को; (श्रोत्राभ्याम्) सुनने के साधन कानों के गोलकों से (श्रोत्रम्) श्रवण-शक्ति को तथा (तेदनीम्) श्रवण-क्रिया को, (अधरकण्ठेन) नीचे के कण्ठ से (अपः) जलों को, (शुष्ककण्ठेन) शुष्क कण्ठ से (चित्तम्) विज्ञान की साधक अन्तःकरण की वृत्ति को, (मन्याभिः) विज्ञान-क्रियाओं से (अदितिम्) अविनाशक प्रज्ञा=बुद्धि को, (शीर्ष्णा) शिर से (निर्ऋतिम्) भूमि को, (निर्जर्जल्पेन) नितान्त जर्जरीभूत (शीर्ष्णा) शिर से एवं (संक्रोशैः) संक्रोश=उत्तम आह्वानों से (प्राणान्) प्राणों को प्राप्त कर। (स्तुपेन) हिंसा से (रेष्माणम्) हिंसक अविद्या आदि रोगों का (हिन्धि) विनाश कर ॥ २५ । २ ॥

भावार्थः—सर्वैर्मनुष्यैः प्रथमवयसि सर्वैः शरीरादिभिः साधनैः शरीरात्मबले संसाधनीये। अविद्याकुशिक्षाकुशीलादयो रोगाः सर्वथा हन्तव्याः ॥ २५ । २ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य प्रथम आयु में शरीर आदि साधनों से शरीर और आत्मा के बल को सिद्ध करें। अविद्या, कुशिक्षा और कुशील=कुस्वभाव आदि रोगों का विनाश करें ॥ २५ । २॥

भा० पदार्थः—रेष्माणम्=अविद्याकुशिक्षाकुशीलादिरोगम् ।।

भाष्यसार—किससे क्या करें—अध्यापक एवं उपदेशक लोगों के उपदेश को ग्रहण करके जिज्ञासु लोग—प्राण-अपान से वायु, नासिका के दोनों छिद्रों एवं नियम को, नीचे के ओष्ठ और ऊपर के प्रकाश से अन्दर की वस्तु को, अनुकूल प्रकाश से बाहर की वस्तु को, मस्तक से निश्चय से प्राप्त करने योग्य ज्ञान को, नितान्त बाधक वस्तु से शब्द-निमित्त विद्युत् को, शिर के मज्जा-तन्तुओं से विशेष प्रकाशमान विद्युत् को, कनीनक=आंखों के प्रदीप्त एवं कमनीय तारकों एवं श्रवण-साधनों से कानों को, कानों के गोलकों से श्रवणशक्ति को, कण्ठ के अधोभाग से जलों को, शुष्क कण्ठ से विज्ञान की साधक अन्तःकरण की वृत्ति को, विज्ञान की क्रियाओं से प्रज्ञा=बुद्धि को, शिर से भूमि को, नितान्त जर्जरीभूत शिर एवं आह्वानों से प्राणों को प्राप्त करें।

सब मनुष्य आयु के प्रथम भाग में शरीर आदि साधनों से शरीर और आत्मा के बल को सिद्ध करें। अविद्या, कुशिक्षा, कुशील आदि रोगों का सर्वथा हनन करें ।। २५ । २ ।।

प्रजापतिः । **इन्द्रादयः**=ऐश्वर्यादयः । भुरिक्कृतिः । निषादः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

किससे क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ।।

मशकान् केशैरिन्द्रꣳ स्वपसा वहेन बृहस्पतिꣳ शकुनिसादेन कूर्मांञ्छफैराक्रमणꣳ स्थूराभ्यामृक्षलाभिः कपिञ्जलाञ्जवं जङ्घाभ्यामध्वानं बाहुभ्यां जाम्बीलेनारण्यमग्निमतिरुग्भ्यां पूषणं दोर्भ्यामश्विनावꣳसाभ्याꣳ रुद्रꣳ रोराभ्याम् ॥ ३ ॥

पदार्थः—(**मशकान्**) (**केशैः**) शिरस्थैर्बालैः (**इन्द्रम्**) ऐश्वर्यम् (**स्वपसा**) सुष्ठुकर्मणा (**वहेन**) प्रापणेन (**बृहस्पतिम्**) बृहत्या वाचः स्वामिनं विद्वांसम् (**शकुनिसादेन**) येन शकुनीन्सादयति तेन (**कूर्मान्**) कच्छपान् (**शफैः**) खुरैः (**आक्रमणम्**) (**स्थूराभ्याम्**) स्थूलाभ्याम् (**ऋक्षलाभिः**) गत्यादानैः (**कपिञ्जलान्**) पक्षिविशेषान् (**जवम्**) वेगम् (**जङ्घाभ्याम्**) (**अध्वानम्**) मार्गम् (**बाहुभ्याम्**) भुजाभ्याम् (**जाम्बीलेन**) फलविशेषेण (**अरण्यम्**) वनम् (**अग्निम्**) पावकम् (**अतिरुग्भ्याम्**) रुचीच्छाभ्याम् (**पूषणम्**) पुष्टिम् (**दोर्भ्याम्**) भुजदण्डाभ्याम् (**अश्विनौ**) प्रजाराजानौ (**अंसाभ्याम्**) भुजमूलाभ्याम् (**रुद्रम्**) रोदयितारम् (**रोराभ्याम्**) कथनश्रवणाभ्याम् ।। ३ ।।

अन्वयः—हे मनुष्या यूयं केशैरिन्द्रं शकुनिसादेन कूर्मान् मशकान् स्वपसा वहेन बृहस्पतिं स्थूराभ्यामृक्षलाभिः कपिञ्जलाञ्जङ्घाभ्यामध्वानं जवमंसाभ्यां बाहुभ्याम् शफैराक्रमणं जाम्बीलेनारण्यमग्निमतिरुग्भ्यां पूषणं दोर्भ्यामश्विनौ प्राप्नुत रोराभ्यां रुद्रं च ।। ३ ।।

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः! यूयं केशैः शिरस्थैर्बालैः **इन्द्रम्** ऐश्वर्यं, **शकुनिसादेन** येन शकुनीन् सादयति तेन **कूर्मान्** कच्छपान् **मशकान्**, **स्वपसा** सुष्ठुकर्मणा **वहेन** प्रापणेन **बृहस्पतिं** बृहत्या वाचः स्वामिनं विद्वांसं, **स्थूराभ्यां** स्थूलाभ्याम् **ऋक्षलाभिः** गत्यादानैः **कपिञ्जलान्**, पक्षिविशेषान्,

भाषार्थ—हे मनुष्यो! तुम—(केशैः) शिर के बालों से (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को, (शकुनिसादेन) पक्षियों को प्राप्त करने के साधन से (कूर्मान्) कछुओं को तथा (मशकान्) मच्छरों को (स्वपसा) उत्तम कर्म एवं (वहेन) देशान्तर में पहुँचाने वाले यान से (बृहस्पतिम्) वाणी के स्वामी

जङ्घाभ्यामध्वानं मार्गं **जवं** वेगम्, **अंसाभ्यां** भुजमूलाभ्यां **बाहुभ्यां** भुजाभ्यां **शफैः** खुरैः **आक्रमणं, जाम्बीलेन** फलविशेषेण **अरण्यं** वनम् **अग्निं** पावकम्, **अतिरुग्भ्यां** रुचीच्छाभ्यां **पूषणं** पुष्टिं, **दोर्भ्यां** भुजदण्डाभ्याम् **अश्विनौ** प्रजाराजानौ **प्राप्नुत; रोराभ्यां** कथनश्रवणाभ्यां **रुद्रं** रोदयितारं **च** ॥ २५ । ३ ॥

विद्वान् को, (स्थूराभ्याम्) स्थूल गुल्फों एवं (ऋक्षलाभिः)गति के आदान–स्वीकार से (कपिञ्जलान्) कपिञ्जल नामक पक्षियों को, (जंघाभ्याम्) जंघाओं से (अध्वानम्) मार्ग एवं (जवम्) वेग को; (अंसाभ्याम्) कंधों, (बाहुभ्याम्) भुजाओं तथा (शफैः) खुरों से (आक्रमणम्) आक्रमण को; (जाम्बीलेन) चकोतरा नामक फल विशेष से (अरण्यम्) वन को, (अतिरुग्भ्याम्) रुचि और इच्छा से (पूषणम्) पुष्टि को, (दोर्भ्याम्) हाथों से (अश्विनौ) प्रजा और राजा को प्राप्त करो; और (रोराभ्याम्) कहने और सुनने से (रुद्रम्) रुलाने वाले विघ्न को दूर करो ॥ २५ । ३ ॥

भावार्थः—मनुष्यैर्बहुभिरुपायैरुत्तमा गुणाः प्रापणीया, विघ्नाश्च निवारणीयाः ॥ २५ । ३ ॥

भावार्थ--सब मनुष्य बहुत उपायों से उत्तम गुणों को प्राप्त करें और विघ्नों का निवारण करें ॥ २५ । ३ ॥

भाष्यसार—**किस से क्या करें**—सब मनुष्य—शिर के बालों से ऐश्वर्य को, पक्षियों को प्राप्त करने योग्य साधन से कछुओं एवं मच्छरों को, उत्तम कर्म की प्राप्ति से वाणी के स्वामी विद्वान् को, गति-विज्ञानों से कपिञ्जल नामक पक्षियों को, जंघाओं से मार्ग एवं वेग को, दोनों कन्धों, भुजाओं और खुरों से आक्रमण को, जाम्बील=चकोतरा नामक फल से वन और अग्नि को, रुचि और इच्छा से पुष्टि को, हाथों से राजा और प्रजा को प्राप्त करें। कहने-सुनने से रोने वाले को शान्त करें। मनुष्य नाना उपायों से उत्तम गुणों को प्राप्त करें और विघ्नों का निवारण करें ॥ २५ । ३ ॥

प्रजापतिः । **अग्न्यादयः=पावकादयः** । स्वराड्धृतिः । ऋषभः ॥

पुनः कस्य का क्रिया कर्त्तव्येत्याह ॥

फिर किस की क्या क्रिया करने योग्य है, इस विषय का उपदेश किया है ॥

अग्नेः पक्षतिर्वायोर्निपक्षतिरिन्द्रस्य तृतीया सोमस्य चतुर्थ्यदित्यै पञ्चमीन्द्राण्यै षष्ठी मरुतांꣳ सप्तमी बृहस्पतेरष्टम्यर्यम्णो नवमी धातुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यमस्य त्रयोदशी ॥ ४ ॥

पदार्थः--(**अग्नेः**) पावकस्य (**पक्षतिः**) पक्षस्य=परिग्रहस्य मूलम् (**वायोः**) पवनस्य (**निपक्षतिः**) निश्चितस्य मूलम् (**इन्द्रस्य**) (**तृतीया**) त्रयाणां पूरणा क्रिया (**सोमस्य**) चन्द्रस्य (**चतुर्थी**) चतुर्णां पूरणा (**अदित्यै**) अन्तरिक्षस्य (**पञ्चमी**) पञ्चानां पूरणा (**इन्द्राण्यै**) इन्द्रस्य=विद्युद्रूपस्य स्त्रीव वर्त्तमानायै दीप्त्यै (**षष्ठी**) षण्णां पूरणा (**मरुतां**) वायूनाम् (**सप्तमी**) सप्तानां पूरणा (**बृहस्पतेः**) बृहतां पालकस्य महत्तत्त्वस्य (**अष्टमी**) अष्टानां पूरणा (**अर्यम्णः**) अर्याणां=स्वामिनां सत्कर्त्तुः (**नवमी**) नवानां पूरणा (**धातुः**) धारकस्य (**दशमी**) दशानां पूरणा (**इन्द्रस्य**) ऐश्वर्यवतः (**एकादशी**) एकादशानां पूरणा (**वरुणस्य**) श्रेष्ठस्य (**द्वादशी**) द्वादशानां पूरणा (**यमस्य**) न्यायाधीशस्य (**त्रयोदशी**) त्रयोदशानां पूरणा ॥४॥

अन्वयः—हे मनुष्या युष्माभिरग्नेः पक्षतिर्वायोर्निपक्षतिरिन्द्रस्य तृतीया सोमस्य चतुर्थ्यदित्यै पञ्चमीन्द्राण्यै षष्ठी मरुतां सप्तमी बृहस्पतेरष्टम्यर्यम्णो नवमी धातुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यमस्य त्रयोदशी च क्रियाः कर्त्तव्याः ॥ ४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः! युष्माभि-रग्नेः** पावकस्य **पक्षतिः** पक्षस्य=परिग्रहस्य मूलं, **वायोः** पवनस्य **निपक्षतिः** निश्चितस्य मूलं, **इन्द्रस्य तृतीया** त्रयाणां पूरणा क्रिया, **सोमस्य** चन्द्रस्य **चतुर्थी** चतुर्णां पूरणा, **अदित्यै** अन्तरिक्षस्य **पञ्चमी** पञ्चानां पूरणा, **इन्द्राण्यै** इन्द्रस्य=विद्युद्रूपस्य स्त्रीव वर्त्तमानायै दीप्त्यै **षष्ठी** षण्णां पूरणा, **मरुतां** वायूनां **सप्तमी** सप्तानां पूरणा, **बृहस्पतेः** बृहतां पालकस्य महत्तत्त्वस्य **अष्टमी** अष्टानां पूरणा, **अर्यम्णः** अर्याणां=स्वामिनां सत्कर्त्तुः **नवमी** नवानां पूरणा, **धातुः** धारकस्य **दशमी** दशानां पूरणा, **इन्द्रस्य** ऐश्वर्यवतः **एकादशी** एकादशानां पूरणा, **वरुणस्य** श्रेष्ठस्य **द्वादशी** द्वादशानां पूरणा, **यमस्य** न्यायाधीशस्य **त्रयोदशी** त्रयोदशानां पूरणा **च क्रियाः कर्त्तव्याः** ॥ २५ । ४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम=(अग्नेः) अग्नि के (पक्षतिः) पक्ष=स्वीकार करने का मूल (वायोः) वायु के (निपक्षतिः) निश्चित पक्ष=स्वीकार करने का मूल, (इन्द्रस्य) इन्द्र की (तृतीया) तीसरी, (सोमस्य) चन्द्रमा की (चतुर्थी) चौथी, (अदित्यै) अन्तरिक्ष=आकाश की (पञ्चमी) पाँचवीं, (इन्द्राण्यै) इन्द्र=विद्युत् की स्त्री के तुल्य दीप्ति की (षष्ठी) छठी, (मरुताम्) वायुओं की (सप्तमी) सातवीं, (बृहस्पतेः) बड़ों के पालक महत्तत्त्व की (अष्टमी) आठवीं, (अर्यम्णः) अर्य=स्वामी जनों के सत्कार करने वाले पुरुष की (नवमी) नौवीं, (धातुः) धारण करने वाले पुरुष की (दशमी) दसवीं (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् पुरुष की (एकादशी) ग्यारहवीं, (वरुणस्य) श्रेष्ठ पुरुष की (द्वादशी) बारहवीं और (यमस्य) न्यायाधीश की (त्रयोदशी) तेरहवीं क्रियाओं को करो ॥ २५ । ४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्याः ! युष्माभिः क्रियाविज्ञानसाधनैरग्न्यादीनां गुणान् विदित्वा सर्वाणि कार्याणि साधनीयानि ॥ २५ । ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम क्रिया एवं विज्ञान के साधनों से अग्नि आदि के गुणों को जानकर सब कार्यों को सिद्ध करो ॥ २५ । ४ ॥

भाष्यसार—**किस की क्या क्रिया है**—अग्नि की पक्षति (पदार्थों को ग्रहण करने का मूल) नामक क्रिया, वायु की निपक्षति (निश्चित मूल) नामक क्रिया है। इन्द्र की तीसरी क्रिया, चन्द्र की चौथी क्रिया, आकाश, की पाँचवीं क्रिया, इन्द्राणी (विद्युत् रूप इन्द्र की स्त्री के तुल्य उसकी दीप्ति) की छठी क्रिया, वायुओं की सातवीं क्रिया, महत्तत्त्व की आठवीं क्रिया, स्वामी जनों के सत्कार करने वाले पुरुष की नौवीं क्रिया, धारण करने वाले पुरुष की दसवीं क्रिया, ऐश्वर्यवान् पुरुष की ग्यारहवीं क्रिया, श्रेष्ठ पुरुष की बारहवीं क्रिया, न्यायाधीश की तेरहवीं क्रिया है। सब मनुष्य क्रिया एवं विज्ञान के साधनों से इन अग्नि आदि पदार्थों के गुणों को जानकर सब कार्यों को सिद्ध करें ॥ २५ । ४ ॥ ●

प्रजापतिः । **इन्द्राग्न्य**=वाय्वादयः । स्वराड्विकृतिः । मध्यमः ॥

पुनः किमर्था का भवतीत्याह ॥

फिर किसके लिए कौन क्रिया होती है, इस विषय का उपदेश किया है ॥

इन्द्राग्न्योः पक्षतिः सरस्वत्यै निपक्षतिर्मित्रस्य तृतीयापां चतुर्थी निर्ऋत्यै पञ्चम्यग्नीषोमयोः षष्ठी सर्पाणाᳬं सप्तमी विष्णोरष्टमी पूष्णो नवमी त्वष्टुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यम्यै त्रयोदशी द्यावापृथिव्योर्दक्षिणं पार्श्वं विश्वेषां देवानामुत्तरम् ॥ ५ ॥

पदार्थः—(**इन्द्राग्न्योः**) वायुपावकयोः (**पक्षतिः**) (**सरस्वत्यै**) (**निपक्षतिः**) (**मित्रस्य**) सख्युः (**तृतीया**) (**अपाम्**) जलानाम् (**चतुर्थी**) (**निर्ऋत्यै**) भूम्यै (**पञ्चमी**) (**अग्नीषोमयोः**) शीतोष्ण-कारकयोर्जलाग्न्योः (**षष्ठी**) (**सर्पाणाम्**) (**सप्तमी**) (**विष्णोः**) व्यापकस्य (**अष्टमी**) (**पूष्णः**) पोषकस्य (**नवमी**) (**त्वष्टुः**) प्रदीप्तस्य (**दशमी**) (**इन्द्रस्य**) जीवस्य (**एकादशी**) (**वरुणस्य**) श्रेष्ठजनस्य (**द्वादशी**) (**यम्यै**) यमस्य=न्यायकर्त्तुः स्त्रियै (**त्रयोदशी**) (**द्यावापृथिव्योः**) प्रकाशभूम्योः (**दक्षिणम्**) (**पार्श्वम्**) (**विश्वेषाम्**) सर्वेषाम् (**देवानाम्**) विदुषाम् (**उत्तरम्**) ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यूयमिन्द्राग्न्योः पक्षतिः सरस्वत्यै निपक्षतिर्मित्रस्य तृतीयाऽपां चतुर्थी निर्ऋत्यै पंचम्यग्नीषोमयोः षष्ठी सर्पाणां सप्तमी विष्णोरष्टमी पूष्णो नवमी त्वष्टुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यम्यै त्रयोदशी च क्रिया द्यावापृथिव्योर्दक्षिणं पार्श्वं विश्वेषां देवानामुत्तरं च विजानीत ॥ ५ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यूयमिन्द्राग्न्योः** वायुपावकयोः **पक्षतिः, सरस्वत्यै निपक्षतिः, मित्रस्य** सख्युः **तृतीया, अपां** जलानां **चतुर्थी, निर्ऋत्यै** भूम्यै **पञ्चमी, अग्नीषोमयोः** शीतोष्ण-कारकयोर्जलाग्न्योः **षष्ठी, सर्पाणां सप्तमी, विष्णोः** व्यापकस्य **अष्टमी, पूष्णः** पोषकस्य **नवमी, त्वष्टुः** प्रदीप्तस्य **दशमी, इन्द्रस्य** जीवस्य **एकादशी, वरुणस्य** श्रेष्ठजनस्य **द्वादशी, यम्यै** यमस्य=न्याय-कर्त्तुः स्त्रियै **त्रयोदशी च क्रिया, द्यावापृथिव्योः** प्रकाशभूम्योः **दक्षिणं पार्श्वं, विश्वेषां देवानां** विदुषाम् **उत्तरं च; विजानीत** ॥ २५ । ५ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—(इन्द्राग्न्योः) वायु और अग्नि के (पक्षतिः) पक्ष=स्वीकार करने के मूल, (सरस्वत्यै) सरस्वती=वाणी के (नि-पक्षतिः) निश्चित पक्ष=स्वीकार करने के मूल, (मित्रस्य) मित्र की (तृतीया) तीसरी, (अपाम्) जलों की (चतुर्थी) चौथी, (निर्ऋत्यै) भूमि की (पञ्चमी) पाँचवीं, (अग्नीषोमयोः) शीत और उष्णकारक जल और अग्नि की (षष्ठी) छठी, (सर्पाणाम्) साँपों की (सप्तमी) सातवीं, (विष्णोः) विष्णु की (अष्टमी) आठवीं, (पूष्णः) पोषक की (नवमी) नौवीं, (त्वष्टुः) प्रदीप्त सूर्य की (दशमी) दसवीं, (इन्द्रस्य) जीव की (एका-दशी) ग्यारहवीं, (वरुणस्य) श्रेष्ठ जन की (द्वादशी) बारहवीं और (यम्यै) यम=न्यायकर्त्ता स्त्री की (त्रयोदशी) तेरहवीं क्रिया को जानो। (द्यावा-पृथिव्योः) प्रकाश और भूमि के (दक्षिणम्) दाहिने (पार्श्वम्) भाग को और (विश्वेषाम्) सब (देवा-नाम्) विद्वानों के (उत्तरम्) उत्तर भाग को जानो ॥ २५ । ५ ॥

भावार्थः — मनुष्यैरेतेषां विज्ञानाय विविधाः क्रियाः कृत्वा कार्याणि साधनीयानि ॥ २५ । ५ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य इन मन्त्रोक्त वायु आदि के गुणों के विज्ञान के लिए विविध क्रियाएँ करके कार्यों को सिद्ध करें ॥ २५ । ५ ॥

भाष्यसार—**किस के लिए कौन क्रिया होती है**—सब मनुष्य—वायु और अग्नि के लिए पक्षति नामक क्रिया, सरस्वती के लिए निपक्षति नामक क्रिया, मित्र के लिए तीसरी क्रिया, जलों के लिए चौथी क्रिया, भूमि के लिए पाँचवीं क्रिया, शीत और उष्ण करने वाले जल और अग्नि के लिए छठी क्रिया, साँपों के लिए सातवीं क्रिया, विष्णु की आठवीं क्रिया, पूषा की नौवीं क्रिया, त्वष्टा की दसवीं

क्रिया, इन्द्र=जीव की ग्यारहवीं क्रिया, वरुण (श्रेष्ठ पुरुष) की बारहवीं क्रिया, यमी=न्यायकर्त्री विदुषी की तेरहवीं क्रिया होती है। मनुष्य अग्नि आदि के विज्ञान के लिए उक्त विविध क्रियाएँ करके कार्यों को सिद्ध करें। प्रकाश और भूमि के दक्षिण पार्श्व और विद्वानों के उत्तर पार्श्व को समझें॥ २५। ५॥

प्रजापतिः। **मरुतादयः**=मनुष्यादयः। निचृदतिधृतिः। षड्जः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

किस के लिए कौन क्रिया होती है, यह फिर उपदेश किया है॥

मरुताᳬ स्कन्धा विश्वेषां देवानां प्रथमा कीकसा रुद्राणां द्वितीयादित्यानां तृतीया वायोः पुच्छमग्नीषोमयोर्भासदौ क्रुञ्चौ श्रोणिभ्यामिन्द्राबृहस्पती ऽऊरुभ्यां मित्रावरुणावल्गाभ्यामाक्रमणᳬ स्थूराभ्यां बलं कुष्ठाभ्याम्॥ ६॥

पदार्थः—(**मरुताम्**) मनुष्याणाम् (**स्कन्धाः**) भुजदण्डमूलानि (**विश्वेषाम्**) (**देवानाम्**) विदुषाम् (**प्रथमा**) आदिमा (**कीकसा**) भृशं शासनानि (**रुद्राणाम्**) (**द्वितीया**) ताडनक्रिया (**आदित्यानाम्**) अखण्डितन्यायाधीशानाम् (**तृतीया**) न्यायक्रिया (**वायोः**) (**पुच्छम्**) पशोरवयवम् (**अग्नीषोमयोः**) (**भासदौ**) यौ भासं=प्रकाशं दद्यातां तौ (**क्रुञ्चौ**) पक्षिविशेषौ (**श्रोणिभ्याम्**) कटिप्रदेशाभ्याम् (**इन्द्राबृहस्पती**) वायुसूर्यौ (**ऊरुभ्याम्**) जानुन ऊर्ध्वाभ्यां पादावयवाभ्याम् (**मित्रावरुणौ**) प्राणोदानौ (**अल्गाभ्याम्**) अलं गन्तृभ्याम्। अत्र छान्दसो वर्णलोप इति टिलोपः (**आक्रमणम्**) (**स्थूराभ्याम्**) स्थूलाभ्याम्। अत्र कपिलकादित्वाल्लत्वविकल्पः (**बलम्**) (**कुष्ठाभ्याम्**) निष्कर्षाभ्याम्॥ ६॥

प्रमाणार्थ—(**अल्गाभ्याम्**) यहाँ 'छान्दसो वर्णलोपः' इस नियम से टि भाग का लोप है। (**स्थूराभ्याम्**) यहाँ 'कपिलक' आदि से लत्व विकल्प है।

अन्वयः—हे मनुष्या युष्माभिर्मरुतां स्कन्धा विश्वेषां देवानां प्रथमा कीकसा रुद्राणां द्वितीयाऽऽदित्यानां तृतीया वायोः पुच्छमग्नीषोमयोर्भासदौ क्रुञ्चौ श्रोणिभ्यामिन्द्राबृहस्पती ऊरुभ्यां मित्रावरुणावल्गाभ्यामाक्रमणं कुष्ठाभ्यां स्थूराभ्यां बलं च निष्पादनीयम्॥ ६॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः! **युष्माभिर्मरुतां** मनुष्याणां **स्कन्धाः** भुजदण्डमूलानि, **विश्वेषां देवानां** विदुषां **प्रथमा** आदिमा **कीकसा** भृशं शासनानि, **रुद्राणां द्वितीया** ताडनक्रिया, **आदित्यानाम्** अखण्डितन्यायाधीशानां **तृतीया** न्यायक्रिया, **वायोः पुच्छं** पशोरवयवम्, **अग्नीषोमयोर्भासदौ** यौ भासं=प्रकाशं दद्यातां तौ **क्रुञ्चौ** पक्षिविशेषौ, **श्रोणिभ्यां** कटिप्रदेशाभ्यां **इन्द्राबृहस्पती** वायुसूर्यौ, **ऊरुभ्यां** जानुन ऊर्ध्वाभ्यां पादावयवाभ्यां **मित्रावरुणौ** प्राणोदानौ, **अल्गाभ्याम्** अलं गन्तृभ्याम् **आक्रमणं, कुष्ठाभ्यां** निष्कर्षाभ्यां **स्थूराभ्यां** स्थूलाभ्यां **बलं च; निष्पादनीयम्**॥ २५। ६॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो! तुम—(मरुताम्) मनुष्यों के (स्कन्धाः) कन्धे (विश्वेषाम्) सब (देवानाम्) विद्वानों की (प्रथमा) प्रथम क्रिया (कीकसा) अत्यन्त शासन, (रुद्राणाम्) रुद्रों की (द्वितीया) दूसरी ताडन क्रिया, (आदित्यानाम्) अखण्डित न्यायाधीशों की (तृतीया) तीसरी न्यायक्रिया, (वायोः) वायु सम्बन्धी (पुच्छम्) पशु की 'पूंछ' (अग्नीषोमयोः) सूर्य और चन्द्र सम्बन्धी (भासदौ) भास=प्रकाश देने वाले (क्रुञ्चौ) दो सारस पक्षी, (श्रोणिभ्याम्) कटि प्रदेशों के लिए (इन्द्राबृहस्पती) वायु और सूर्य, (उरुभ्याम्) जाँघों के लिए (मित्रावरुणौ) प्राण और उदान, (अल्गा-

भ्याम्) अत्यन्त गति करने वाली उरुसन्धियों के लिए (आक्रमणम्) आक्रमण=गति विशेष, (स्थूराभ्याम्) स्थूल (कुष्ठाभ्याम्) नितम्बस्थ कूपकों के लिए (बलम्) बल को सिद्ध करो ॥ २५ । २६ ॥

भावार्थः—मनुष्यैर्भुजबलं स्वाङ्गपुष्टिर्दुष्टताडनं न्यायप्रकाशादीनि च कर्माणि सदा कर्त्तव्यानि ॥ २५ । ६ ॥

भावार्थ—सब बाहुबल, अपने अंगों की पुष्टि, दुष्टों का ताडन, और न्यायप्रकाश आदि कर्मों को सदा करें ॥ २५ । ६ ॥

भा० पदार्थः—स्कन्धाः=भुजबलम् । द्वितीया=दुष्टताडनम् । तृतीया=न्यायप्रकाशः । बलम्=स्वाङ्गपुष्टिः ।

भाष्यसार—**किसके लिए कौन क्रिया होती है**—सब मनुष्यों को उचित है कि वे मनुष्यों के भुजदण्ड अर्थात् बाहु-बल एवं अंगों की पुष्टि को; विद्वानों के शासन रूप प्रथम क्रिया, रुद्रों की ताडन रूप दूसरी क्रिया को, न्यायाधीशों की न्याय-प्रकाश रूप तीसरी क्रिया को, वायु की पशुओं की पूँछ रूप स्पर्श क्रिया को, सूर्य और चन्द्र की सारस पक्षी रूप प्रकाश देने वाली क्रिया को जानें । दोनों कटिप्रदेशों के लिए वायु और सूर्य को, दोनों जंघाओं के लिए प्राण और उदान को, उरुसन्धियों के लिए आक्रमण को, स्थूल नितम्बों के लिए बल को सिद्ध करें ॥ २५ । ६ ॥

प्रजापतिः । **पूषादयः**=पुष्टिकरादयः । निचृदष्टिः । मध्यमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

किसके लिए कौन होता है, इसका फिर उपदेश किया है ॥

पूषणं वनिष्ठुनान्धाहीन्त्स्थूलगुदया सर्पान् गुदाभिर्विह्रुतऽआन्त्रैरपो वस्तिना वृषणमाण्डाभ्यां वाजिनꣳ शेपेन प्रजाꣳ रेतसा चाषान् पित्तेन प्रदरान् पायुना कूश्माञ्छकपिण्डैः ॥ ७ ॥

पदार्थः—(**पूषणम्**) पुष्टिकरम् (**वनिष्ठुना**) याचनेन (**अन्धाहीन्**) अन्धान् सर्पान् (**स्थूलगुदया**) स्थूलया गुदया सह (**सर्पान्**)(**गुदाभिः**) (**विह्रुतः**) विशेषेण कुटिलान् (**आन्त्रैः**)उदरस्थैर्नाडीविशेषैः (**अपः**) जलानि (**वस्तिना**) नाभेरधोभागेन (**वृषणम्**) वीर्याधारम् (**आण्डाभ्याम्**) अण्डाकाराभ्यां वृषणावयवाभ्याम् (**वाजिनम्**) अश्वम् (**शेपेन**) लिङ्गेन (**प्रजाम्**) सन्ततिम् (**रेतसा**) वीर्येण (**चाषान्**) भक्षणानि (**पित्तेन**) (**प्रदरान्**) उदरावयवान् (**पायुना**) एतदिन्द्रियेण (**कूश्मान्**) शासनानि । **अत्र कशधातोर्मक्प्रत्ययोऽन्येषामपीति दीर्घश्च** (**शकपिण्डैः**) शक्तेः संघातैः ॥ ७ ॥

प्रमाणार्थ—(**कूश्मान्**) यहाँ 'कश' धातु से 'मक्' प्रत्यय और 'अन्येषामपि दृश्यते' (६ । ३ । १३७) से दीर्घ है ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यूयं वनिष्ठुना पूषणं स्थूलगुदया सह वर्त्तमानानन्धाहीन् गुदाभिः सहितान् विह्रुतः सर्पानान्त्रैरपो वस्तिना वृषणमाण्डाभ्यां वाजिनं शेपेन रेतसा प्रजां पित्तेन चाषान् प्रदरान् पायुना शकपिण्डैः कूश्मान् निगृह्णीत ॥ ७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **यूयं वनिष्ठुना** याचनेन **पूषणं** पुष्टिकरं, **स्थूलगुदया**

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—(वनिष्ठुना) माँगने से (पूषणम्) पुष्टि करने वाले को, (स्थूल-

स्थूलया गुदया सह **वर्त्तमानानन्धाहीन्** अन्धान् सर्पान्, **गुदाभिः सहितान् विह्रुत** विशेषेण कुटिलान् **सर्पान् आन्त्रैः** उदरस्थैर्नाडीविशेषैः **अपः** जलानि, **वस्तिना** नाभेरधोभागेन **वृषणं** वीर्याधारम्, **आण्डाभ्याम्** अण्डाकाराभ्यां वृषणावयवाभ्यां **वाजिनम्** अश्वं, **शेपेन** लिङ्गेन **रेतसा** वीर्येण **प्रजां** सन्तति, **पित्तेन चाषान्** भक्षणानि, **प्रदरान्,** उदरावयवान् **पायुना** एतदिन्द्रियेण, **शकपिण्डैः** शक्तेः संघातैः **कूश्मान्** शासनानि **निगृह्णीत** ॥ २५ । ७ ॥

गुदया) स्थूल गुदा से युक्त (अन्धाहीन्) अन्धे साँपों को, (गुदाभिः) गुदा सहित (विह्रुतः) विशेष कुटिल साँपों को, (आन्त्रैः) उदर की नाड़ी विशेषों से (अपः) जलों को, (वस्तिना) वस्ती=मूत्राशय से (वृषणम्) लिंग को, (आण्डाभ्याम्) अण्डाकार लिंग के अवयवों से (वाजिनम्) घोड़े को, (शेपेन) लिंग एवं (रेतसा) वीर्य से (प्रजाम्) सन्तान को, (पित्तेन) पित्त से (चाषान्) भोजनों को (प्रदरान्) उदर के अवयवों की (पायुना) पायु=गुदा इन्द्रिय से, (शकपिण्डैः) शक्ति के पिण्डों से (कूश्मान्) शासनों को ग्रहण करो ॥ २५ । ७ ॥

भावार्थः—येन येन यद्यत्कार्यं सिध्येत्, तेन तेनाङ्गेन पदार्थेन वा तत् तत् साधनीयम् ॥ २५ । ७ ॥

भावार्थ—जिस-जिस अंग वा पदार्थ से जो-जो कार्य सिद्ध हो उस-उस अंग वा पदार्थ से उस-उस को सिद्ध करें ॥ २५ । ७ ॥

भाष्यसार—**किससे क्या सिद्ध करें**—याचना से पुष्टिकर पदार्थ को, स्थूल गुदा से अन्धे सर्पों को, गुदा से विशेष कुटिल सर्पों को, (अर्थात् सांप को अग्र भाग से वश में नहीं किया जा सकता, गुदा से अभिप्राय पूँछ भाग से है), आँतों (उदर की नाडी विशेष) से जलों को, वस्ती=नाभि के अधोभाग से लिंग को, अण्डकोषों से घोड़े को, लिंग एवं वीर्य से प्रजा=सन्तान को, पित्त से भोजन को, पायु=गुदेन्द्रिय से उदर के अवयवों को, शक्ति से शासन को सिद्ध करें। तात्पर्य यह है कि जिस जिस अंग वा पदार्थ से जो-जो कार्य सिद्ध होता है उसे सिद्ध करें ॥ २५ । ७॥

प्रजापतिः । **इन्द्रादयः**=**विद्युदादयः** । निचृदभिकृतिः । ऋषभः ॥

पुनः कस्य कस्य गुणाः पशुषु सन्तीत्याह ॥

फिर किस किस के गुण पशुओं में हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

इन्द्रस्य क्रोडोऽदित्यै पाजस्यं दिशां जत्रवोऽदित्यै भसज्जीमूतान् हृदयौपशेनान्तरिक्षं पुरीतता नभ ऽ उदर्येण चक्रवाकौ मतस्नाभ्यां दिवं वृक्काभ्यां गिरीन् प्लाशिभिरुपलान प्लीह्ना वल्मीकान् क्लोमभिर्ग्लौभिर्गुल्मान् हिराभिः स्रवन्तीर्ह्रदान कुक्षिभ्याᳬं समुद्रमुदरेण वैश्वानरं भस्मना ॥ ८ ॥

पदार्थः—(**इन्द्रस्य**) विद्युतः (**क्रोडः**) निमज्जनम् (**अदित्यै**) पृथिव्यै (**पाजस्यम्**) पाजस्वन्नेषु साधु (**दिशाम्**) (**जत्रवः**) सन्धयः (**अदित्यैः**) दिवे=प्रकाशाय । अदितिर्द्यौरिति प्रमाणात् (**भसत्**) दीपनम् (**जीमूतान्**) मेघान् अत्र जेर्मूट् चोदात्त इत्यनेनायं सिद्धः । (**हृदयौपशेन**) यो हृदये आसमन्तादुपशेते स हृदयौपशो=जीवस्तेन (**अन्तरिक्षम्**) अवकाशम् (**पुरीतता**) हृदयस्थया नाड्या (**नभः**) उदकम् (**उदर्येण**) उदरे भवेन (**चक्रवाकौ**) पक्षिविशेषाविव (**मतस्नाभ्याम्**) ग्रीवोभयभागाभ्याम् (**दिवम्**) प्रकाशम् (**वृक्काभ्याम्**) याभ्यां वर्जन्ति ताभ्याम् (**गिरीन्**) शैलान् (**प्लाशिभिः**) प्रकर्षेणाशनक्रियाभिः (**उपलान्**) मेघान् । उपल इति मेघना० । निघं० १ । १० । (**प्लीह्ना**) हृदयस्थावयवेन (**वल्मीकान्**) मार्गान्

(क्लोमभिः) क्लेदनैः **(ग्लौभिः)** हर्षक्षयैः **(गुल्मान्)** दक्षिणपार्श्वोदरस्थितान् **(हिराभिः)** वृद्धिभिः **(स्रवन्तीः)** नदीः **(ह्रदान्)** जलाशयान् **(कुक्षिभ्याम्)** **(समुद्रम्)** **(उदरेण)** **(वैश्वानरम्)** सर्वेषां प्रकाशकम् **(भस्मना)** दग्धशेषेण निस्सारेण ॥ ८ ॥

प्रमाणार्थ—(अदितिः) दिवे=प्रकाशाय। 'अदितिर्द्यौः' इस प्रमाण से 'अदिति' पद का अर्थ द्यौ=प्रकाश है। (जीमूतान्) यह पद 'जेर्मूट् चोदात्तः' (उणा० ३। ९१) से सिद्ध होता है। (उपलान्) मेघान् 'उपल' पद निघं० (१। १०) में मेघ-नामों में पठित है॥

अन्वयः—हे मनुष्या युष्माभिः प्रयत्नेनेन्द्रस्य क्रोडोऽदित्यै पाजस्यं दिशां जत्रवोऽदित्यै भसच्च विज्ञेयाः। जीमूतान् हृदयौपशेन पुरीतताऽन्तरिक्षमुदर्येण नभश्चक्रवाकौ मतस्नाभ्यां दिवं वृक्काभ्यां गिरीन् प्लाशिभिरुपलान् प्लीह्ना वल्मीकान् क्लोमभिर्ग्लौभिश्च गुल्मान् हिराभिः स्रवन्तीर्ह्रदान् कुक्षिभ्यां समुद्रमुदरेण भस्मना च वैश्वानरं यूयं विजानीत ॥ ८ ॥

सपदार्थान्वयः — हे **मनुष्याः**! **युष्माभिः प्रयत्नेनेन्द्रस्य** विद्युतः **क्रोडः** निमज्जनम्, **अदित्यै** पृथिव्यै **पाजस्यं** पाजस्वन्नेषु साधु, **दिशां जत्रवः** सन्धयः, **अदित्यै** दिवे=प्रकाशाय **भसद्** दीपनं **च विज्ञेयाः**।

जीमूतान् मेघान् **हृदयौपशेन** यो हृदये आ=समन्तादुपशेते स हृदयौपशो=जीवस्तेन **पुरीतता** हृदयस्थया नाड्या, **अन्तरिक्षम्** अवकाशम्; **उदर्येण** उदरे भवेन **नभः** उदकं; **चक्रवाकौ** पक्षिविशेषाविव **मतस्नाभ्यां** ग्रीवोभयभागाभ्यां; **दिवं** प्रकाशं **वृक्काभ्यां** याभ्यां वर्जन्ति ताभ्यां; **गिरीन्** शैलान् **प्लाशिभिः** प्रकर्षेणाशनक्रियाभिः; **उपलान्** मेघान् **प्लीहा** हृदयस्थावयवेन; **वल्मीकान्** मार्गान् **क्लोमभिः** क्लेदनैः **ग्लौभिः** हर्षक्षयैः **च**; **गुल्मान्** दक्षिणपार्श्वोदरस्थितान् **हिराभिः** वृद्धिभिः, **स्रवन्तीः** नदीः **ह्रदान्** जलाशयान् **कुक्षिभ्यां, समुद्रमुदरेण, भस्मना** दग्धशेषेण निस्सारेण **च वैश्वानरं** सर्वेषां प्रकाशकं **यूयं विजानीत**॥ २५। ८॥

भावार्थः—यदि मनुष्या अनेकान् विद्याबोधान् प्राप्य, युक्ताहारविहारैः सर्वाण्यङ्गानि

भाषार्थ—हे मनुष्यो! तुम प्रयत्न से—(इन्द्रस्य) विद्युत् का (क्रोडः) डूबना, (अदित्यै) पृथिवी के (पाजस्यम्) अन्नों की श्रेष्ठता, (दिशाम्) दिशाओं की (जत्रवः) सन्धियाँ और (अदित्यै) प्रकाश की (भसत्) दीप्ति को जानो! और—

(जीमूतान्) मेघों को (हृदयौपशेन) हृदय में शयन करने वाले जीव से; (पुरीतता) हृदय में स्थित पुरीतत् नामक नाडी से (अन्तरिक्षम्) आकाश को; (उदर्येण) उदर में विद्यमान पदार्थ से (नभः) जल को; (चक्रवाकौ) चकवा-चकवी पक्षियों को (मतस्नाभ्याम्) ग्रीवा के दोनों भागों से; (दिवम्) प्रकाश को (वृक्काभ्याम्) कुक्षिस्थ मांस के गोलकों से, (गिरीन्) पहाड़ों को (प्लाशिभिः) अत्यन्त भोजन क्रियाओं से, (उपलान्) मेघों को (प्लीहा) हृदय में स्थित प्लीहा नामक अंग से, (वल्मीकान्) मार्गों को (क्लोमभिः) गीला करने और (ग्लौभिः) हर्ष के क्षय से, (गुल्मान्) दक्षिण भाग में उदरस्थ गुल्म नामक अंगों को (हिराभिः) वृद्धि से, (स्रवन्तीः) नदियों एवं (ह्रदान्) जलाशय=तालाबों को (कुक्षिभ्याम्) कोखों से, (समुद्रम्) समुद्र को (उदरेण) उदर से; (भस्मना) दग्ध शेष निस्सार भस्म से, (वैश्वानरम्) सब के प्रकाशक अग्नि को तुम जानो॥ २५। ८॥

भावार्थ—यदि मनुष्य अनेक विद्या-बोधों को प्राप्त करके, युक्त आहार-विहार से सब अंगों

संपोष्य, रोगान् निवारयेयुस्तर्हि ते धर्मार्थकाममोक्षानाप्नुयुः ॥ २५ । ८ ॥

को पुष्ट कर, रोगों का निवारण करें तो वे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त हों ॥ २५ । ८ ॥

प्रजापतिः । **पूषादयः**=पुष्टिकरादयः । भुरिगत्यष्टिः । गान्धारः ॥

पुनः केन किं भवतीत्याह ॥

फिर किससे क्या होता है, इस विषय का उपदेश किया है ॥

विधृतिं नाभ्या घृतꣳ रसेनापो यूष्णा मरीचीर्विप्रुड्भिर्नीहारमूष्मणा शीनं वसया प्रुष्वा ऽ अश्रुभिर्ह्रादुनीर्दूषीकाभिरस्ना रक्षाꣳसि चित्राण्यङ्गैर्नक्षत्राणि रूपेण पृथिवीं त्वचा जुम्बकाय स्वाहा ॥ ९ ॥

पदार्थः—(**विधृतिम्**) विशेषेण धारणाम् (**नाभ्या**) शरीरस्य मध्यावयवेन (**घृतम्**) आज्यम् (**रसेन**) (**अपः**) जलानि (**यूष्णा**) क्वथितेन रसेन (**मरीचीः**) किरणान् (**विप्रुड्भिः**) विशेषेण पूर्णैः (**नीहारम्**) प्रभातसमये सोमवद्वर्त्तमानम् (**ऊष्मणा**) ऊष्णतया (**शीनम्**) संकुचितं घृतम् (**वसया**) निवासहेतुना जीवनेन (**प्रुष्वाः**) पुष्णन्ति=सिंचन्ति याभिस्ताः (**अश्रुभिः**) रोदनैः (**ह्लादुनीः**) शब्दानामव्यक्तोच्चारणक्रियाः (**दूषीकाभिः**) विक्रियाभिः (**अस्ना**) रुधिराणि (**रक्षांसि**) पालयितव्यानि (**चित्राणि**) अद्भुतानि (**अङ्गैः**) अवयवैः (**नक्षत्राणि**) (**रूपेण**) (**पृथिवीम्**) भूमिम् (**त्वचा**) मांसरुधिरादीनां संवरकेणेन्द्रियेण (**जुम्बकाय**) अतिवेगवते (**स्वाहा**) सत्यां वाचम् ॥ ९ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यूयं नाभ्या विधृतिं घृतं रसेनापो यूष्णा मरीचीर्विप्रुड्भिर्नीहारमूष्मणा शीनं वसया प्रुष्वा अश्रुभिर्ह्लादुनीर्दूषीकाभिश्चित्राणि रक्षांस्यस्नाङ्गैः रूपेण नक्षत्राणि त्वचा पृथिवीं विदित्वा जुम्बकाय स्वाहा प्रयुङ्ग्ध्वम् ॥ ९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **यूयं नाभ्या** शरीरस्य मध्यावयवेन **विधृतिं** विशेषेण धारणां; **घृतम्** आज्यं, **रसेन**; **अपः** जलानि **यूष्णा** क्वथितेन रसेन; **मरीचीः** किरणान् **विप्रुड्भिः** विशेषेण पूर्णैः **नीहारं** प्रभातसमये सोमवद्वर्त्तमानम्, **ऊष्मणा** ऊष्णतया **शीनं** सङ्कुचितं घृतं, **वसया** निवासहेतुना जीवनेन **प्रुष्वाः** पुष्णन्ति=सिञ्चन्ति याभिस्ताः, **अश्रुभिः** रोदनैः **ह्लादुनीः** शब्दानामव्यक्तोच्चारणक्रियाः, **दूषीकाभिः** विक्रियाभिः **चित्राणि** अद्भुतानि **रक्षांसि** पालयितव्यानि **अस्ना** रुधिराणि, **अङ्गैः** अवयवैः **रूपेण नक्षत्राणि**, **त्वचा** मांसरुधिरादीनां संवरकेणेन्द्रियेण **पृथिवीं** भूमिं विदित्वा **जुम्बकाय** अतिवेगवते **स्वाहा** सत्यां वाचं **प्रयुङ्ग्ध्वम्** ॥ २५ । ९ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—(नाभ्या) शरीर के मध्य भाग नाभि से (विधृतिम्) विशेष धारण को तथा (घृतम्) घृत को, (रसेन) रस से (अपः) जलों को; (यूष्णा) क्वाथ रूप रस से, (मरीचीः) किरणों को; (विप्रुड्भिः) विशेष पूर्ण बिन्दुओं से (नीहारम्) प्रभात समय में चन्द्र के तुल्य कोहरे को, (उष्मणा) उष्णता से (शीनम्) जमा घृत को, (वसया) निवास के हेतु जीवन से (प्रुष्वाः) पोषक एवं सेचक क्रियाओं को, (अश्रुभिः) रोदन से (ह्लादुनीः) शब्दों की अव्यक्त उच्चारण क्रियाओं को, (दूषीकाभिः) विकारों से (चित्राणि) अद्भुत (रक्षांसि) पालन करने योग्य (अस्ना) रुधिरों को, (अङ्गैः) अङ्गों एवं (रूपेण) रूप से (नक्षत्राणि) नक्षत्रों को, (त्वचा) मांस, रुधिर, आदि को आच्छादक त्वचा इन्द्रिय से (पृथिवीम्) भूमि को जानकर (जुम्बकाय) अति वेगवान् दुर्व्यसनों के

निवारण के लिए (स्वाहा) सत्य वाणी का प्रयोग करो ॥ २५ । ९ ॥

भावार्थः—मनुष्यैर्धारणादिभिः कर्मभिर्दुर्व्यसनानि रोगाँश्च निवार्य्य सत्यभाषणादिधर्मलक्षणानि विचार्य प्रवर्त्तनीयम् ॥ २५ । ९ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य धारणा आदि कर्मों से दुर्व्यसनों और रोगों का निवारण करके सत्य-भाषण आदि धर्म के लक्षणों का विचार करके कार्यों में प्रवृत्त हों ॥ २५ । ९ ॥

भा० पदार्थः—स्वाहा=सत्यभाषणादिधर्मलक्षणानि ॥

भाष्यसार—**किससे क्या होता है**—सब मनुष्य—नाभि से विशेषण धारणा शक्ति एवं घृत को, रस से जलों को, क्वाथ रूप रस से किरणों को, बिन्दुओं से कोहरे को, उष्णता से जमे हुए घृत को, जीवन से पोषक एवं सेचक क्रियाओं को, रोदन से अव्यक्त उच्चारणों को, विकारों से अद्भुत एवं रक्षा के योग्य रुधिरों को, अंगों से एवं रूप से नक्षत्रों को, त्वचा इन्द्रिय से भूमि को जानें। इन धारणा आदि कर्मों से अति वेगवान् दुर्व्यसनों और रोगों का निवारण करें। सत्यभाषण आदि धर्म के लक्षणों का विचार करके कार्यों में प्रवृत्त हों ॥ २५ । ९ ॥ ●

प्रजापतिः । **हिरण्यगर्भः**=**परमात्मा** । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथ परमात्मा कीदृशोऽस्तीत्याह ॥

अब परमात्मा कैसा है, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक ऽ आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १० ॥

पदार्थः—(**हिरण्यगर्भः**) हिरण्यानि=सूर्यादितेजांसि गर्भे यस्य स परमात्मा (**सम्**) (**अवर्त्तत**) वर्तमान आसीत् (**अग्रे**) भूम्यादिसृष्टेः प्राक् (**भूतस्य**) उत्पन्नस्य (**जातः**) प्रादुर्भूतस्य । अत्र षष्ठ्यर्थे प्रथमा । (**पतिः**) पालकः (**एकः**) असहायः (**आसीत्**) अस्ति (**सः**) (**दाधार**) धरति (**पृथिवीम्**) आकर्षणेन भूमिम् (**द्याम्**) प्रकाशम (**उत**) अपि (**इमाम्**) सृष्टिम् (**कस्मै**) सुखकारकाय (**देवाय**) द्योतमानाय (**हविषा**) होतव्येन पदार्थेन (**विधेम**) परिचरेम ॥ १० ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा वयं यो हिरण्यगर्भो जातो जातस्य भूतस्यैकोऽग्रे पतिरासीत्सर्वप्रकाशोऽवर्त्तत स पृथिवीमुत द्यां संदाधार । य इमां सृष्टिं कृतवाँस्तस्मै कस्मै देवाय परमेश्वराय हविषा विधेम तथा यूयमपि विधत्त ॥ १० ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **यथा वयं**—**यो हिरण्यगर्भः** हिरण्यानि=सूर्यादितेजांसि गर्भे यस्य स परमात्मा **जातो**=**जातस्य** प्रादुर्भूतस्य **भूतस्य** उत्पन्नस्य **एकः** असहायः **अग्रे** भूम्यादिसृष्टेः प्राक् **पतिः** पालकः **आसीत्** अस्ति, **सर्वप्रकाशोऽवर्त्तत** वर्त्तमान आसीत्, **स पृथिवीम्** आकर्षणेन भूमिम् **उत** अपि **द्यां** प्रकाशं **संदाधार** धरति । **ये इमां**=

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे तुम—जो (हिरण्यगर्भः) हिरण्य=सूर्य आदि तेजोमय पदार्थ जिसके गर्भ में हैं वह परमात्मा (जातः) प्रकट एवं (भूतस्य) उत्पन्न जगत् का (एकः) एक (अग्रे) भूमि आदि सृष्टि से पूर्व (पतिः) पालक (आसीत्) है, एवं सब का प्रकाशक (अवर्त्तत) विद्यमान था; (सः) वह (पृथिवीम्) आकर्षण से भूमि को (उत)

सृष्टिं कृतवाँस्तस्मै कस्मै सुखकारकाय **देवाय**=परमेश्वराय द्योतमानाय **हविषा** होतव्येन पदार्थेन **विधेम** परिचरेम; **तथा यूयमपि विधत्त** ।।२५।१०।।

और (द्याम्) प्रकाश को (दाधार) धारण कर रहा है। जिसने (इमाम्) इस सृष्टि को बनाया है उस (कस्मै) सुखकारक (देवाय) प्रकाशमान परमेश्वर के लिए (हविषा) होम योग्य पदार्थ से (विधेम) परिचर्या=सेवा करते हैं; वैसे तुम भी करो ।।१०।।

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः ! येन परमेश्वरेण सूर्यादिसर्वं जगन्निर्मितं स्वसामर्थ्येन धृतं च, तस्यैवोपासनां-कुरुत।। २५। १०।।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। हे मनुष्यो ! जिस परमेश्वर ने सूर्य आदि सब जगत् को बनाया और अपने सामर्थ्य से धारण किया है उसकी ही उपासना करो ।। १० ।।

भाष्यसार—**१. परमात्मा कैसा है**—जो परमात्मा सूर्य आदि तेजस्वी पदार्थों को अपने गर्भ में रखने वाला है, इस उत्पन्न जगत् का भूमि आदि की सृष्टि से पूर्व भी पति=पालक है, सब पदार्थों का प्रकाशक है, वही इस भूमि को तथा द्यौ=(प्रकाश) को आकर्षण-शक्ति से धारण कर रहा है। जिस परमेश्वर ने इस सृष्टि अर्थात् सूर्य आदि सब जगत् को रचा है और अपने सामर्थ्य से धारण किया है उस सुखस्वरूप, प्रकाशमान परमेश्वर की सब मनुष्य होम के योग्य पदार्थों से सेवा करें; उसी की उपासना करें।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि विद्वानों के समान सब मनुष्य सृष्टि कर्त्ता परमात्मा की उपासना करें ।। २५। १०।। ●

प्रजापतिः। **ईश्वरः**=सूर्यः। त्रिष्टुप्। धैवतः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

सूर्य कैसा है, इसका फिर उपदेश किया है ।।

यः प्रा॑ण॒तो नि॑मिष॒तो म॑हि॒त्वैक॒ऽ इद्राजा॒ जग॑तो ब॒भूव॑।
य ऽ ईशे॑ ऽ अ॒स्य द्वि॒पद॒श्चतु॑ष्पद॒ः कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥ ११ ॥

पदार्थः—(**यः**) सूर्यः (**प्राणतः**) प्राणिनः (**निमिषतः**) चेष्टां कुर्वतः (**महित्वा**) महत्त्वेन (**एकः**) असहायः (**इत्**) एव (**राजा**) प्रकाशकः (**जगतः**) संसारस्य (**बभूव**) भवति (**यः**) (**ईशे**) ऐश्वर्यं करोति (**अस्य**) (**द्विपदः**) द्वौ पादौ यस्य तस्य मनुष्यादेः (**चतुष्पदः**) चत्वारः पादा यस्य गवादेस्तस्य (**कस्मै**) सुखकारकाय (**देवाय**) दीपकाय (**हविषा**) आदानेन (**विधेम**) सेवेमहि ।। ११ ।।

अन्वयः—हे मनुष्या यथा वयं यः प्राणतो निमिषतो जगतो महित्वैक इद्राजा बभूव योऽस्य द्विपदश्चतुष्पद ईशे तस्मै कस्मै देवाय हविषा विधेम तथा यूयमप्यनुतिष्ठत ।। ११ ।।

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यथा वयं**—**यः** सूर्यः **प्राणतः** प्राणिनः **निमिषतः** चेष्टां कुर्वतः **जगतः** संसारस्य **महित्वा** महत्त्वेन **एकः** असहायः **इत्** एव **राजा** प्रकाशकः **बभूव** भवति, **योऽस्य द्विपदः** द्वौ पादौ यस्य तस्य मनुष्यादेः,

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम—(यः) जो सूर्य (प्राणतः) प्राणी एवं (निमिषतः) चेष्टा करने वाले (जगतः) संसार का (महित्वा) अपनी महिमा से (एकः) एक (इत्) ही (राजा) प्रकाशक (बभूव) है; (यः) जो (अस्य) इस (द्विपदः) दो

चतुष्पदः चत्वारः पादा यस्य गवादेस्तस्य, **ईशे** ऐश्वर्यं करोति **तस्मै कस्मै** सुखकारकाय **देवाय** दीपकाय **हविषा** आदानेन **विधेम** सेवेमहि; **तथा यूयमप्यनुतिष्ठत** ।। २५ । ११ ॥

पैरों वाले मनुष्य आदि तथा (चतुष्पदः) चार पैरों वाले गौ आदि को (ईशे) ऐश्वर्य प्रदान करता है; (तस्मै) उस (कस्मै) सुखकारक (देवाय) दीपक=प्रकाशक सूर्य के (हविषा) गुणों को ग्रहण करके (विधेम) सेवन करते हैं; वैसे तुम भी करो ॥११॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यदि सूर्यो न स्यात् तर्हि स्थावरं जङ्गमं च जगत् स्वकार्यं कर्त्तुमसमर्थं स्यात्। यः सर्वेभ्यो महान् सर्वेषां प्रकाशक, ऐश्वर्यप्राप्तिहेतुरस्ति, स सर्वैर्युक्त्या सेवनीयः ॥ २५ । ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। यदि सूर्य न हो तो स्थावर और जंगम जगत् अपना कार्य नहीं कर सकता। जो सूर्य सब से महान्, सब का प्रकाशक और ऐश्वर्य का हेतु है; उसका सब मनुष्य युक्ति से सेवन करें ॥२५।११॥

भा० पदार्थः—राजा=सूर्यः, सर्वेषां प्रकाशकः ।

भाष्यसार—१. **सूर्य कैसा है**—सूर्य चेष्टा करने वाले प्राणी रूप संसार का अपनी महिमा से अकेला ही प्रकाशक है। वह दो पाँव वाले मनुष्य आदि और चार पाँव वाले गौ आदि प्राणियों को ऐश्वर्य प्रदान करता है। उस सुखकारक, सबके प्रकाशक सूर्य के गुणों को ग्रहण करके उसका सेवन करें। यदि सूर्य न हो तो स्थावर और जंगम जगत् अपना कार्य नहीं कर सकता। सूर्य सब से महान्, सब का प्रकाशक, ऐश्वर्य-प्राप्ति का हेतु है। सब मनुष्य उसका युक्तिपूर्वक सेवन करें।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि विद्वानों के समान सब मनुष्य सूर्य का युक्ति से सेवन करें ॥ २५ । ११ ॥

प्रजापतिः । **ईश्वरः=सूर्यः** । स्वराट्पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनः सूर्यवर्णनविषयमाह ॥

सूर्य का वर्णन फिर किया है ॥

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रꣳ रसया सहाहुः ।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १२ ॥

पदार्थः—(**यस्य**) (**इमे**) (**हिमवन्तः**) हिमालयादयः पर्वताः (**महित्वा**) महत्त्वेन (**यस्य**) (**समुद्रम्**) अन्तरिक्षम् (**रसया**) स्नेहनेन (**सह**) (**आहुः**) कथयन्ति (**यस्य**) (**इमाः**) (**प्रदिशः**) दिशो विदिशश्च (**यस्य**) (**बाहू**) भुजवद्वर्त्तमानाः (**कस्मै**) सुखरूपाय (**देवाय**) कमनीयाय (**हविषा**) हवनयोग्येन पदार्थेन (**विधेम**) परिचरेम ॥ १२ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यस्य सूर्यस्य महित्वा महत्वेनेमे हिमवन्त आकर्षिताः सन्ति यस्य रसया सह समुद्रमाहुर्यस्येमा दिशो यस्य प्रदिशश्च बाहू इवाहुस्तस्मै कस्मै देवाय हविषा वयं विधेम, एवं यूयमपि विधत्त ॥ १२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **यस्य सूर्यस्य महित्वा=महत्त्वेनेमे हिमवन्तः** हिमालयादयः पर्वताः **आकर्षिताः सन्ति**; **यस्य रसया** स्नेहनेन **सह**

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! (यस्य) जिस सूर्य की (महित्वा) महिमा से (इमे) ये (हिमवन्तः) हिमालय आदि पर्वत आकर्षित हैं; (यस्य) जिसके

समुद्रम् अन्तरिक्षम् **आहुः** कथयन्ति, **यस्येमा दिशो, यस्य प्रदिशः** दिशो विदिशश्च **च बाहू** भुजवद्वर्तमानः **इवाहुः** कथयन्ति; **तस्मै कस्मै** सुखरूपाय **देवाय** कमनीयाय **हविषा** हवनयोग्येन पदार्थेन **वयं विधेम** परिचरेम; **एवं यूयमपि विधत्त** ॥ २५ । १२ ॥

(रसया) स्नेहन=रस के साथ (समुद्रम्) आकाश को (आहुः) कहते हैं; (यस्य) जिसकी (इमाः) ये दिशाएँ और (यस्य) जिसकी (प्रदिशः) उपदिशाएँ (बाहू) भुजाओं के समान (आहुः) कहते हैं; (तस्मै) उस (कस्मै) सुख रूप (देवाय) कामना करने योग्य सूर्य का (हविषा) हवन करने योग्य पदार्थ से हम लोग (विधेम) सेवन करते हैं; इस प्रकार तुम भी करो ॥ २५ । १२ ॥

भावार्थः—हे मनुष्याः ! यः सर्वेभ्यो महान् सर्वप्रकाशकः, सर्वेभ्यो रसस्य हर्त्ता; यस्य प्रतापेन दिशामुपदिशां च विभागो भवति, स सवितृलोको युक्त्या सेवनीयः ॥ २५ । १२ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो सब से महान्, सब का प्रकाशक, सब से रस को हरण करने वाला और जिसके प्रताप से दिशाओं तथा उपदिशाओं का विभाग होता है उस सूर्यलोक का युक्ति से सेवन करें ॥ २५ । १२ ॥

भाष्यसार—सूर्य का वर्णन—सूर्य की महिमा से ही ये हिमालय आदि पर्वत आकर्षित हैं। इसकी महिमा से ही रस (जल) के साथ आकाश विद्यमान है। दिशाएँ और उपदिशाएँ इसकी बाहु के समान हैं। इस प्रताप से ही दिशाओं और उपदिशाओं का विभाग होता है। यह सब से महान् और सब का प्रकाशक है। सब पदार्थों से रस को हरण करता है। इस सुख रूप, कामना करने के योग्य सूर्य का हवन योग्य पदार्थों का होम करके युक्ति से सेवन करें ॥ २५ । १२ ॥

प्रजापतिः । **परमात्मा**=स्वष्टम् । निचृत्त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनरुपासित ईश्वरः किं ददातीत्याह ॥

फिर उपासना किया ईश्वर क्या देता है, इस विषय का उपदेश किया है ॥

य ऽ आ॑त्म॒दा ब॑ल॒दा यस्य॒ विश्वे॑ ऽ उ॒पास॑ते प्र॒शिषं॒ यस्य॑ दे॒वाः ।
यस्य॑ च्छा॒यामृतं॒ यस्य॑ मृत्युः कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥ १३ ॥

पदार्थः—(यः) **(आत्मदाः)** य आत्मानं ददाति सः **(बलदाः)** यो बलं ददाति सः **(यस्य) (विश्वे) (उपासते) (प्रशिषम्)** प्रशासनम् **(यस्य) (देवाः)** विद्वांसः **(यस्य) (छाया)** आश्रयः **(अमृतम्) (यस्य) (मृत्युः) (कस्मै) (देवाय) (हविषा) (विधेम)** ॥ १३ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या य आत्मदा बलदा यस्य प्रशिषं विश्वे देवा उपासते यस्य सकाशात्सर्वे व्यवहारा जायन्ते यस्य च्छायाऽमृतं यस्याज्ञाभङ्गो मृत्युस्तस्मै कस्मै देवाय वयं हविषा विधेम ॥ १३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः ! य आत्मदाः** य आत्मानं ददाति सः, **बलदाः** यो बलं ददाति सः, **यस्य प्रशिषं** प्रशासनं **विश्वे देवाः** विद्वांसः **उपासते; यस्य सकाशात्सर्वे व्यवहारा जायन्ते, यस्य च्छाया** आश्रयः **अमृतं, यस्याज्ञाभङ्गो मृत्युस्तस्मै कस्मै देवाय वयं हविषा विधेम** ॥२५।१३॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो! (यः) जो (आत्मदाः) आत्मा का दाता तथा (बलदाः) बल का दाता है और (यस्य) जिसके (प्रशिषम्) प्रशासन की (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (उपासते) उपासना करते हैं; एवं जिसके सान्निध्य से सब व्यवहार उत्पन्न होते हैं; (यस्य) जिसका (छाया)

आश्रय (अमृतम्) अमृत है; और (यस्य) जिसकी आज्ञा का भंग करना (मृत्युः) मृत्यु है; (तस्मै) उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) देव की हम लोग (हविषा) होम योग्य पदार्थ से (विधेम) सेवा करते हैं ॥ २५ । १३ ॥

भावार्थः—हे मनुष्याः ! यस्य जगदीश्वरस्य प्रशासने कृतायां मर्यादायां सूर्यादयो लोका नियमेन वर्त्तन्ते, येन सूर्येण विना वर्षा आयुः क्षयश्च न जायते, स येन निर्मितस्तस्यैवोपासनां सर्वे मिलित्वा कुर्वन्तु ॥ २५ । १३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस जगदीश्वर के प्रशासन में बनी हुई मर्यादा में सूर्य आदि लोक नियम से चलते हैं; जिस सूर्य के विना वर्षा और आयु का क्षय नहीं होता; वह सूर्य जिसने बनाया है, उसकी ही उपासना सब लोग मिल कर करें ॥ २५ । १३ ॥

भा० पदार्थः—देवाः=सूर्यादयो लोकाः । प्रशिषम्=कृतां मर्यादाम् । उपासते=नियमेन वर्त्तन्ते । अमृतम्=वर्षा । मृत्युः=आयुःक्षयः ।

अन्यत्र व्याख्यात—(क) (यः) जो (आत्मदाः) आत्मज्ञान का दाता (बलदाः) शरीर, आत्मा और समाज के बल का देनेहारा, (यस्य) जिसकी (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (उपासते) उपासना करते हैं और (यस्य) जिसका (प्रशिषम्) प्रत्यक्ष सत्य स्वरूप शासन और न्याय अर्थात् शिक्षा को मानते हैं (यस्य) जिसका (छाया) आश्रय ही (अमृतम्) मोक्ष सुखदायक है (यस्य) जिसका न मानना अर्थात् भक्ति न करना ही (मृत्युः) मृत्यु आदि दुःख का हेतु है, हम लोग उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) सकल ज्ञान के देनेहारे परमात्मा की प्राप्ति के लिए (हविषा) आत्मा और अन्तः-करण से (विधेम) भक्ति अर्थात् उसी की आज्ञा-पालन करने में तत्पर रहें ।

(संस्कारविधि०, ईश्वरस्तुति प्रार्थनोपासना०) ॥

(ख) (य आत्मदाः०) जो जगदीश्वर अपनी कृपा से ही आत्मा को विज्ञान देने वाला है, जो सब विद्या और सत्य सुखों की प्राप्ति कराने वाला है, जिसकी उपासना सब विद्वान् लोग करते आये हैं और जिसका अनुशासन जो वेदोक्त शिक्षा है, उसको अत्यन्त मान्य से सब शिष्ट लोग स्वीकार करते हैं, जिसका आश्रय करना ही मोक्ष सुख का कारण है और जिसकी अकृपा ही जन्म-मरणस्वरूप दुःखों को देने वाली है अर्थात् ईश्वर और उसका उपदेश जो सत्य विद्या, सत्य धर्म और सत्य मोक्ष हैं, उनको नहीं मानना और जो वेद से विरुद्ध हो के अपनी कपोल कल्पना अर्थात् दुष्ट इच्छा से बुरे कामों में वर्तता है, उस पर ईश्वर की अकृपा होती है, वही सब दुःखों का कारण है और जिसकी आज्ञा पालन ही सब सुखों का मूल है (कस्मै०) जो सुखस्वरूप और सब प्रजा का पति है, उस परमेश्वर देव की प्राप्ति के लिए सत्यप्रेम भक्ति रूप सामग्री से हम लोग नित्य भजन करें । जिससे हम लोगों को किसी प्रकार का दुःख कभी न हो । (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, ईश्वरप्रार्थनाविषयः) ॥

(ग) हे मनुष्यो ! जो परमात्मा अपने लोगों को 'आत्मदा' आत्मा का देने वाला तथा आत्म-ज्ञानादि का दाता है जीवप्राणदाता, तथा 'बलदा' त्रिविध बल—एक मानस विज्ञानबल, द्वितीय इन्द्रिय बल अर्थात् श्रोत्रादि को स्वस्थता तेजोवृद्धि, तृतीय शरीरबल महापुष्टि दृढाङ्गता और बीर्यादि वृद्धि इन तीनों बलों का जो दाता है, जिसके 'प्रशिषम्' अनुशासन (शिक्षा मर्यादा) को यथावत् विद्वान् लोग मानते हैं। सब प्राणी और अप्राणी, जड़ चेतन, विद्वान् वा मूर्ख उस परमात्मा के नियमों को कोई कभी

उल्लंघन नहीं कर सकता, जैसे कि कान से सुनना, आँख से देखना इसको उलटा कोई नहीं कर सकता। जिसकी छाया=आश्रय ही अमृत विज्ञानी लोगों का मोक्ष कहाता है, तथा जिसकी अछाया (अकृपा) दुष्ट जनों के लिए बारम्बार मरण और जन्म रूप महाक्लेशदायक है।

हे सज्जन मित्रो ! वही एक परमसुखदायक पिता है। आओ अपने सब मिल के प्रेम, विश्वास और भक्ति करें, कभी उसको छोड़ के अन्य को उपास्य न मानें। वह अपने को अत्यन्त सुख देगा इसमें कुछ सन्देह नहीं। (आर्याभिविनय, २। ४८) ॥

भाष्यसार—**उपासित ईश्वर क्या देता है**—जो ईश्वर उपासना करने से आत्मज्ञान प्रदान करता है, शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाता है। उसके प्रशासन की सब विद्वान् लोग उपासना करते हैं। सब व्यवहार उसी से उत्पन्न होते हैं। उसका आश्रय (उपासना) अमृत है। उसकी आज्ञा का भंग करना मृत्यु है। अतः उस सुख स्वरूप, सब के प्रकाशक परमात्मा की सकल उत्तम सामग्री से हम लोग उपासना करें ॥ २५। १३ ॥

प्रजापतिः। **यज्ञः=यज्ञः प्रजा वा**। निचृज्जगती। निषादः ॥

पुनर्मनुष्यैः किमेष्टव्यमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को किसकी इच्छा करनी चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो ऽ अपरीतास ऽ उद्भिदः।
देवा नो यथा सदमिद्वृधे ऽ असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥ १४ ॥

पदार्थः—(**आ**) (**नः**) अस्मान् (**भद्राः**) कल्याणकराः (**क्रतवः**) यज्ञाः प्रज्ञा वा (**यन्तु**) प्राप्नुवन्तु (**विश्वतः**) सर्वतः (**अदब्धासः**) अहिंसिताः (**अपरीतासः**) अन्यैरव्याप्ताः (**उद्भिदः**) य उद्भिन्दन्ति (**देवाः**) पृथिव्यादय इव विद्वांसः (**नः**) अस्माकम् (**यथा**) (**सदम्**) सीदन्ति=प्राप्नुवन्ति यस्यां ताम् (**इत्**) एव (**वृधे**) वृद्धये (**असन्**) भवन्तु (**अप्रायुवः**) अनष्टायुषः (**रक्षितारः**) रक्षका (**दिवेदिवे**) प्रतिदिनम् ॥१४॥

अन्वयः—हे विद्वांसो यथा नोऽस्मान् विश्वतो भद्रा अदब्धासोऽपरीतास उद्भिदः क्रतव आ यन्तु यथा नः सदं प्राप्ता अप्रायुवो देवा इद्दिवेदिवे वृधे रक्षितारोऽसन् तथाऽनुतिष्ठन्तु ॥ १४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वांसः ! यथा **नः**=**अस्मान् विश्वतः** सर्वतः **भद्राः** कल्याणकराः, **अदब्धासः** अहिंसिताः, **अपरीतासः** अन्यैरव्याप्ताः, **उद्भिदः** य उद्भिन्दन्ति, **क्रतवः** यज्ञाः प्रज्ञा वा **आ+यन्तु** प्राप्नुवन्तु, **यथा नः** अस्माकं **सदं** सीदन्ति=प्राप्नुवन्ति यस्यां तां **प्राप्ता अप्रायुव** अनष्टायुषः, **देवाः** पृथिव्यादय इव विद्वांसः, **इत्** एव, **दिवेदिवे** प्रतिदिनं **वृधे** वृद्धये **रक्षितारः** रक्षका, **असन्** भवन्तु; **तथानुतिष्ठन्तु** ॥ २५। १४ ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! जैसे (नः) हमें (विश्वतः) सब ओर से (भद्राः) कल्याणकारी, (अदब्धासः) हिंसा रहित, (अपरीतासः) अन्यों से अव्याप्त, (उद्भिदः) दुःखों का भेदन करने वाले (क्रतवः) यज्ञ वा प्रज्ञा=बुद्धि (आ+यन्तु) प्राप्त हों; और जैसे (नः) हमारी (सदम्) सभा में प्राप्त हुए (अप्रायुवः) अनष्ट आयु वाले अर्थात् युवक, (देवाः) पृथिवी आदि के तुल्य विद्वान् (इत्) ही (दिवे दिवे) प्रतिदिन (वृधे) वृद्धि के लिए (रक्षितारः) रक्षक (असन्) हों; वैसा आचरण करो ॥ २५। १४ ॥

भावार्थः—सर्वैर्मनुष्यैः परमेश्वरस्य विज्ञानाद् विदुषां सङ्गेन पुष्कलाः प्रज्ञाः प्राप्य सर्वतो धर्ममाचर्य सर्वेषां रक्षकैर्भवितव्यम् ॥ २५ । १४ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य परमेश्वर के विज्ञान से एवं विद्वानों के संग से पुष्कल=पर्याप्त प्रज्ञा को प्राप्त करके, सब ओर से धर्म का आचरण करके सबके रक्षक बनें ॥ २५ । १४ ॥

भा० पदार्थः—क्रतवः=पुष्कलाः प्रज्ञाः । रक्षितारः=सर्वेषां रक्षकाः ॥

विनियोग—'आ नो भद्राः०' महर्षि ने इस मन्त्र का विनियोग स्वस्तिवाचन में संस्कारविधि में किया है ॥

भाष्यसार—मनुष्य किसकी इच्छा करें—सब मनुष्य परमेश्वर के विज्ञान एवं विद्वानों के संग में रहते हुए ऐसी कामना करें—सब ओर से कल्याणकारी, हिंसा रहित, अन्यों से अव्याप्त (स्वतन्त्र), दुःखों का भेदन करने वाले यज्ञ=शुभकर्म वा बुद्धि हमें प्राप्त हो। हमारे घर में प्राप्त हुए युवक विद्वान् लोग प्रतिदिन हमारी वृद्धि के लिए प्रयत्न करें एवं धर्माचरण से हमारे रक्षक बनें ॥ २५ । १४ ॥ ●

प्रजापतिः । **विद्वांसः=स्पष्टम्** । जगती । निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्य किस की इच्छा करें, यह फिर उपदेश किया है।

दे॒वानां॑ भ॒द्रा सु॑म॒तिर्ऋ॑जूय॒तां दे॒वाना॑ᳬं रा॒तिर॒भि नो॒ निव॑र्त्तताम् ।
दे॒वाना॑ᳬं स॒ख्यमुप॑सेदिमा व॒यं दे॒वा न॒ऽ आयुः॒ प्रति॑रन्तु जी॒वसे॑ ॥ १५ ॥

पदार्थः—(**देवानाम्**) विदुषाम् (**भद्रा**) कल्याणकरी (**सुमतिः**) शोभना प्रज्ञा (**ऋजूयताम्**) सरलीकुर्वताम् (**देवानाम्**) दातॄणाम् (**रातिः**) विद्यादिदानम् (**अभि**) सर्वतः (**नः**) अस्मान् (**नि**) (**वर्त्तताम्**) (**देवानाम्**) विदुषाम् (**सख्यम्**) मित्रत्वम् (**उप**) (**सेदिम**) प्राप्नुयाम (**आ**) (**वयम्**) (**देवाः**) विद्वांसः (**नः**) अस्माकम् (**आयुः**) प्राणधारणम् (**प्र**) (**तिरन्तु**) पूर्णं भोजयन्तु (**जीवसे**) जीवितुम् ॥१५॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा देवानां भद्रा सुमतिरस्मानृजूयतां देवानां रातिर्नोऽस्मानभिनिवर्त्ततां वयं देवानां सख्यमुपासेदिम देवा नो जीवस आयुः प्रतिरन्तु तथा युष्मान्प्रतिवर्त्तन्ताम् ॥ १५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! यथा— देवानां विदुषां **भद्रा** कल्याणकरी **सुमतिः** शोभना प्रज्ञा **अस्मानृजूयतां** सरलीकुर्वताम्, **देवानां** दातॄणां **रातिः** विद्यादिदानं **नः** अस्मान् **अभि+निवर्त्ततां** सर्वतः [निवर्त्तताम्], **वयं देवानां** विदुषां **सख्यं** मित्रत्वम् **उप+आ+सेदिम** प्राप्नुयाम, **देवाः विद्वांसः नः** अस्माकं **जीवसे** जीवितुम् **आयुः**=प्राणधारणं **प्रतिरन्तु** पूर्णं भोजयन्तु; **तथा युष्मान्प्रतिवर्त्तन्ताम्** ॥ २५ । १५ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे—(देवानाम्) विद्वानों की (भद्रा) कल्याणकारी (सुमतिः) उत्तम प्रज्ञा, हमें प्राप्त हो; और (ऋजूयताम्) सरल व्यवहार करने वाले (देवानाम्) दाता विद्वानों का (रातिः) विद्या आदि दान (नः) हमें (अभि+निवर्त्तताम्) सब ओर से प्राप्त हो; हम (देवानाम्) विद्वानों की (सख्यम्) मित्रता को (उप+आ+सेदिम) प्राप्त करें; (देवाः) विद्वान् लोग (नः) हमारे (जीवसे) जीवन के लिए (आयुः) आयु को (प्रतिरन्तु) पूर्ण भोगें, वैसा तुम्हारे प्रति वर्त्ताव करें ॥ २५ । १५ ॥

भावार्थः—सर्वैर्मनुष्यैराप्तानां विदुषां सकाशात् प्रज्ञाः प्राप्य, ब्रह्मचर्येणायुः संवर्ध्य सदैव धार्मिकैः सह मित्रता रक्षणीया ॥ २५ । १५ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य आप्त विद्वानों से प्रज्ञा को प्राप्त करके, ब्रह्मचर्य से आयु को बढ़ाकर सदैव धार्मिकों के साथ मित्रता रखें ॥ २५ । १५ ॥

विनियोग—'देवानां भद्रा' महर्षि ने इस मन्त्र का विनियोग स्वस्तिवाचन में संस्कारविधि में किया है ॥

भाष्यसार—**मनुष्य किस की इच्छा करें**—सब मनुष्य ऐसी इच्छा करें—आप्त विद्वानों के संग से हमें उत्तम प्रज्ञा=बुद्धि प्राप्त हो। सरल व्यवहार करने वाले, विद्या के दाता विद्वानों से हमें विद्या का दान प्राप्त हो। हम विद्वानों की मित्रता को प्राप्त करें। विद्वान् लोग ब्रह्मचर्य की शिक्षा से हमें पूर्ण आयु भोग के लिए समर्थ बनावें ॥ २५ । १५ ॥ ●

प्रजापतिः । **विश्वेदेवाः**=विद्वांसः । जगती । निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्य किसकी इच्छा करें, यह फिर उपदेश किया है ॥

तान् पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्रिधम् ।
अर्यमणं वरुणꣳ सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥ १६ ॥

पदार्थः—(**तान्**) पूर्वोक्तान् (**पूर्वया**) पूर्वैः स्वीकृतया (**निविदा**) वेदवाचा। **निविदिति** वाङ्ना०। निघं० १। ११॥ (**हूमहे**) स्पर्द्धेमहि (**वयम्**) (**भगम्**) ऐश्वर्यकारकम् (**मित्रम्**) सर्वस्य सुहृदम् (**अदितिम्**) अखण्डितप्रज्ञम् (**दक्षम्**) चतुरम् (**अस्रिधम्**) अहिंसनीयम् (**अर्यमणम्**) प्रजायाः पालकम् (**वरुणम्**) श्रेष्ठम् (**सोमम्**) ऐश्वर्यवन्तम् (**अश्विना**) अध्यापकोपदेशकौ (**सरस्वती**) सर्वविद्यायुक्ता (**नः**) अस्मभ्यम् (**सुभगा**) सुष्ठ्वैश्वर्या (**मयः**) सुखम् (**करत्**) कुर्यात् ॥ १६॥

प्रमाणार्थ—(**निविदा**) वेदवाचा। 'निविद्' यह पद निघं० (१। ११) में वाक्-नामों में पठित है। वाक्=वेदवाणी।

अन्वयः—हे मनुष्या यथा वयं पूर्वया निविदा दक्षमर्यमणमस्रिधं भगं मित्रमदितिं वरुणं सोममश्विना हूमहे यथा सुभगा सरस्वती नो युष्मभ्यं च मयस्करत्तथा तान् यूयमप्याह्वयत कुरुत च ॥ १६॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः यथा** ! **वयं पूर्वया** पूर्वैः स्वीकृतया **निविदा** वेदवाचा **दक्षं** चतुरम्, **अर्यमणं** प्रजायाः पालकम्, **अस्रिधम्** अहिंसनीयं, **भगम्** ऐश्वर्यकारकं, **मित्रं** सर्वस्य सुहृदम्, **अदितिम्** अखण्डितप्रज्ञं, **वरुणं** श्रेष्ठं, **सोमम्** ऐश्वर्यवन्तम्, **अश्विना** अध्यापकोपदेशकौ **हूमहे** स्पर्द्धेमहि, **यथा सुभगा** सुष्ठ्वैश्वर्या **सरस्वती** सर्वविद्यायुक्ता **नः** अस्मभ्यं **युष्मभ्यञ्च मयः** सुखं **करत्** कुर्यात्; **तथा तान्** पूर्वोक्तान् **यूयमप्याह्वयत, कुरुत च** ॥ २५ । १६ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जैसे हम—(पूर्वया) पूर्वजों से स्वीकृत (निविदा) वेदवाणी के निमित्त (दक्षम्) चतुर, (अर्यमणम्) प्रजा के पालक, (अस्रिधम्) हिंसा के अयोग्य, (भगम्) ऐश्वर्य-कारक, (मित्रम्) सबके मित्र, (अदितिम्) अखण्डित प्रज्ञा वाले (वरुणम्) श्रेष्ठ (सोमम्) ऐश्वर्यवान् विद्वान् तथा (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक की (हूमहे) स्पर्धा=कामना करते हैं; और जैसे (सुभगा) उत्तम ऐश्वर्य वाला (सरस्वती) सब विद्याओं से युक्त माता (नः) हमें और तुम्हें (मयः)

सुख (करत्) देती है; वैसे (तान्) उन पूर्वोक्त विद्वानों को तुम भी बुलाओ और सुख प्रदान करो ॥ २५ । १६ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्यद्यद्वेदोक्तं कर्म तत् तदेवानुष्ठेयं; यथा सद्विद्यार्थिनः स्पर्द्धया विद्यां वर्द्धयन्ति तथैव सर्वैर्विद्या वर्द्धनीया। यथा—पूर्णविद्यामाता सन्तानान् सुशिक्षया विद्याः प्रापय्य वर्द्धयति, तथैव सर्वैः सर्वस्मै सुखं दत्त्वा, सर्वे वर्द्धनीयाः ॥ २५ । १६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। मनुष्य जो-जो वेदोक्त कर्म है उस उस का ही अनुष्ठान करें, जैसे उत्तम विद्यार्थी लोग स्पर्द्धा से विद्या को बढ़ाते हैं वैसे ही सब लोग विद्या को बढ़ावें। जैसे पूर्ण विद्या से युक्त माता सन्तानों को सुशिक्षा से विद्याएँ प्राप्त कराकर बढ़ाती है, वैसे ही सब लोग सब को सुख देकर सब को बढ़ावें ॥ २५ । १६ ॥

भा० पदार्थः—सुभगा=पूर्णविद्यामाता। सरस्वती=सुशिक्षा विद्या च ॥

भाष्यसार—**मनुष्य किसकी इच्छा करें**—सब मनुष्य पूर्व विद्वानों से स्वीकार की गई वेदवाणी के निमित्त—चतुर, प्रजा के पालक, हिंसा के अयोग्य, ऐश्वर्यकारक, सबके मित्र, अखण्डित प्रज्ञा=बुद्धि वाले, श्रेष्ठ, ऐश्वर्यवान् विद्वान् की तथा अध्यापक और उपदेशक की कामना करें। मनुष्य, जो-जो वेदोक्त कर्म है उस-उस का ही अनुष्ठान करें। जैसे अच्छे विद्यार्थी स्पर्द्धा से विद्या को बढ़ाते हैं वैसे विद्या को बढ़ावें। जैसे उत्तम ऐश्वर्य से सम्पन्न, सब विद्याओं से युक्त विदुषी माता अपने सन्तानों को सुशिक्षा से विद्या प्रदान करती है, उन्हें बढ़ाती है वैसे सब मनुष्य परस्पर सुख प्रदान करके सबको बढ़ावें ॥ २५ । १६ ॥

गोतमः। **वायुः**=**स्पष्टम्**। भुरिक्त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

पुनः का किं कुर्यादित्याह ॥

फिर कौन क्या करे, इस विषय का उपदेश किया है ॥

तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः।
तद् ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम् ॥ १७ ॥

पदार्थः—(तत्) (नः) अस्मभ्यम् (वातः) वायुः (मयोभु) सुखकारि (वातु) प्रापयतु (भेषजम्) औषधम् (तत्) (माता) मान्यप्रदा (पृथिवी) विस्तीर्णा भूमिः (तत्) (पिता) पालनहेतुः (द्यौः) सूर्यः (तत्) (ग्रावाणः) मेघाः (सोमसुतः) ओषध्यैश्वर्योत्पादकाः (मयोभुवः) सुखं भावुकाः (तत्) (अश्विना) अध्यापकोपदेशकौ (शृणुतम्) (धिष्ण्या) भूमिवद्धर्त्तारौ (युवम्) युवाम् ॥ १७ ॥

अन्वयः—हे अश्विना धिष्ण्या युवमस्माभिरधीतं शृणुतं यथा नो वातस्तन्मयोभु भेषजं वातु तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौर्वातु तत्सोमसुतो मयोभुवो ग्रावाणो वान्तु तद्युष्मभ्यमप्यस्तु ॥ १७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे अश्विना ! अध्यापकोपदेशकौ **धिष्ण्या** भूमिवद्धर्त्तारौ ! **युवं** युवाम् **अस्माभिरधीतं शृणुतम् यथा नः** अस्मभ्यं

भाषार्थ—हे (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक (धिष्ण्या) भूमि के समान धारण करने वाले (युवम्) तुम—हमारे पढ़े हुए पाठ को

वातः वायुः **तन्मयोभु** सुखकारि **भेषजम्** औषधं **वातु** प्रापयतु, **तन्माता** मान्यप्रदा **पृथिवी** विस्तीर्णा भूमिः, **तत्पिता** पालनहेतुः **द्यौः** सूर्यः **वातु** प्रापयतु, **तत्सोमसुतः** ओषध्यैश्वर्योत्पादकाः **मयोभुवः** सुखं भावुकाः **ग्रावाणः** मेघाः **वान्तु, तद्युष्मभ्यमप्यस्तु** ।। २५ । १७ ।।

(शृणुतम्) सुनो ! जैसे (नः) हमारे लिए (वातः) वायु (तत्) उस (मयोभु) सुखकारी (भेषजम्) औषध को (वातु) प्राप्त कराती है, (तत्) उसे (माता) माननीया माता (पृथिवी) विस्तीर्ण भूमि और (तत्) उसे (पिता) पालक पिता (द्यौः) सूर्य (वातु) प्राप्त कराता है, (तत्) उसे (सोमसुतः) ओषधि एवं ऐश्वर्य के उत्पादक (मयोभुवः) सुख कारक (ग्रावाणः) मेघ (वान्तु) प्राप्त करावें; वह औषध तुम्हारे लिए भी प्राप्त हो ।। २५ । १७ ।।

भावार्थः—यस्य पृथिवीव माता, द्यौरिव पिता भवेत्, स सर्वतः कुशलीभूत्वा सर्वानरोगान्, चतुरान् कुर्यात् ।। २५ । १७ ।।

भावार्थ—जिसकी पृथिवी के समान माता और द्यौ के समान पिता हो वह सब ओर से कुशल होकर सब को नीरोग एवं चतुर बनावे ।। २५।१७।।

भा० पदार्थः—मयोभुवः=कुशलिनः । अरोगाः ।।

भाष्यसार—**कौन क्या करे**—भूमि के समान धारण करने वाले अध्यापक और उपदेशक लोग छात्रों के पढ़े हुए पाठ को सुना करें । वायु सुखकारी औषध प्रदान करावे । मान प्रदान करने वाली विस्तीर्ण भूमि तथा पालन का हेतु सूर्य, उक्त औषध प्रदान करावे । ओषधि और ऐश्वर्य के उत्पादक, सुखदायक मेघ भी उक्त औषध प्रदान करावें । जिस मनुष्य की माता पृथिवी के समान माननीय तथा पिता सूर्य के समान पालक है वह सब ओर से कुशल होकर सबको नीरोग एवं चतुर बनाता है ।। २५ । १७।।

गोतमः । **ईश्वरः=स्पष्टम्** । भुरिक्त्रिष्टुप् । धैवतः ।।

पुनरीश्वरः कीदृशः किमर्थ उपासनीय इत्याह ।।

फिर ईश्वर कैसा है और किसलिए उपासना के योग्य है इस विषय का उपदेश किया है ।।

तमीशा॑नं॒ जग॑तस्त॒स्थुष॒स्पतिं॑ धिय॒ञ्जि॒न्वमव॑से हूमहे व॒यम् ।
पू॒षा नो॒ यथा॒ वेद॑सा॒मस॑द् वृ॒धे र॑क्षि॒ता पा॒युरद॑ब्धः स्व॒स्तये॑ ॥ १८ ॥

पदार्थः—(**तम्**) (**ईशानम्**) ईशनशीलम् (**जगतः**) जङ्गमस्य (**तस्थुषः**) स्थावरस्य (**पतिम्**) पालकम् (**धियञ्जिन्वम्**) यो धियं=प्रज्ञां जिन्वति=प्रीणाति तम् (**अवसे**) रक्षणाद्याय (**हूमहे**) स्तुमः (**वयम्**) (**पूषा**) पुष्टिकर्त्ता (**नः**) अस्माकम् (**यथा**) (**वेदसाम्**) धनानाम् (**असत्**) भवेत् (**वृधे**) वृद्धये (**रक्षिता**) रक्षणकर्त्ता (**पायुः**) सर्वस्य रक्षकः (**अदब्धः**) अहिंसकः (**स्वस्तये**) सुखाय ।। १८ ।।

अन्वयः—हे मनुष्या वयमवसे जगतस्तस्थुषस्पतिं धियंजिन्वं तमीशानं हूमहे स यथा नो वेदसां वृधे पूषा रक्षिता स्वस्तये पायुरदब्धोऽसत्तथा यूयं कुरुत स च युष्मभ्यमप्यस्तु ।। १८ ।।

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! वयम्** -**अवसे** रक्षणाद्याय **जगतः** जङ्गमस्य **तस्थुषः** स्थावरस्य **पतिं** पालकं, **धियञ्जिन्वं** यो धियं=प्रज्ञां जिन्वति=प्रीणाति तं, **तमीशानम्** ईशनशीलं **हूमहे**

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! हम—(अवसे) रक्षा आदि के लिए (जगतः) जंगम तथा (तस्थुषः) स्थावर जगत् के (पतिम्) पालक, (धियं जिन्वम्) बुद्धि को तृप्त करने वाले (तम्) उस (ईशानम्)

स्तुमः । **स यथा नः** अस्माकं **वेदसां** धनानां **वृधे** वृद्धये **पूषा** पुष्टिकर्त्ता, **रक्षिता** रक्षणकर्त्ता **स्वस्तये** सुखाय **पायुः** सर्वस्य रक्षकः, **अदब्धः** अहिंसकः **असत्** भवेत्; **तथा यूयं कुरुत; स च युष्मभ्यमप्यस्तु** ॥ २५ । १८ ॥

सबके स्वामी परमेश्वर की (हूमहे) स्तुति करते हैं; वह (यथा) जैसे (नः) हमारे (वेदसाम्) धनों की (वृधे) वृद्धि के लिए (पूषा) पुष्टिकर्त्ता तथा (रक्षिता) रक्षक, और (स्वस्तये) सुख के लिए (पायुः) सब का रक्षक तथा (अदब्धः) अहिंसक (असत्) होवे; वैसा तुम करो और वह तुम्हारे लिए भी ऐसा ही हो ॥ २५ । १८ ॥

भावार्थः—सर्वे विद्वांसः सर्वान् प्रत्येवमुपदिशेयुः यस्य सर्वशक्तिमतो निराकारस्य सर्वत्र व्यापकस्य परमेश्वरस्योपासनं वयं कुर्मस्तमेव, सुखैश्वर्यवर्द्धकं जानीमस्तस्यैवोपासनं यूयमपि कुरुत, तमेव सर्वोन्नतिकरं च विजानीत ॥२५।१८॥

भावार्थ—सब विद्वान् सब मनुष्यों को इस प्रकार उपदेश करें—जिस सर्वशक्तिमान्, निराकार, सर्वत्र व्यापक परमेश्वर की उपासना हम करते हैं; तथा उसे ही सुख एवं ऐश्वर्य को बढ़ाने वाला समझते हैं; उसकी ही उपासना तुम भी करो, और उसे ही सब की उन्नति करने वाला समझो ॥१८॥

अन्यत्र व्याख्यात—हे सुख और मोक्ष की इच्छा करने वाले जनो ! उस परमात्मा को ही 'हूमहे' हम लोग प्राप्त होने के लिए अत्यन्त स्पर्धा करते हैं कि उसको हम कब मिलेंगे, क्योंकि वह ईशन (सब जगत् का स्वामी) है और ईशन (उत्पादन) करने की इच्छा करने वाला है। दो प्रकार का जगत् है अर्थात् चर और अचर, इन दोनों प्रकार के जगत् का पालन करने वाला वही है। 'धियञ्जिन्वम्' विज्ञानमय, विज्ञानप्रद और तृप्तिकारक ईश्वर से अन्य कोई नहीं है। उसको 'अवसे' अपनी रक्षा के लिए हम स्पर्धा (इच्छा) से आह्वान करते हैं।

जैसे वह ईश्वर 'पूषा' हमारे लिए पोषणप्रद है वैसे ही 'वेदसाम्' धन और विज्ञानों की वृद्धि का 'रक्षिता' रक्षक है, तथा 'स्वस्तये' निरुपद्रवता के लिए हमारा 'पायु' पालक वही है, और 'अदब्ध' हिंसा रहित है।

इसलिए ईश्वर जो निराकार, सर्वानन्दप्रद है, हे मनुष्यो ! उसको मत भूलो, विना उसके कोई सुख का ठिकाना नहीं है ॥ (आर्याभिविनय २ । ५०)

विनियोग—'तमीशानं' महर्षि ने इस मन्त्र का विनियोग स्वस्तिवाचन में संस्कारविधि में किया है ॥

भाष्यसार—ईश्वर कैसा है और वह किसलिए उपासनीय है—ईश्वर जंगम और स्थावर जगत् का पालक है; बुद्धि को तृप्त करने वाला है; सबका ईश=स्वामी है; सर्वशक्तिमान्, निराकार और सर्वत्र व्यापक है; सुख और ऐश्वर्य (धन) का वर्द्धक है; पुष्टिकर्त्ता, सब का रक्षक और अहिंसक है; सबकी उन्नति चाहने वाला है। वह रक्षा आदि के लिए, ऐश्वर्य की वृद्धि तथा सुख की प्राप्ति के लिए उपासनीय है ॥ २५ । १८ ॥ ●

गोतमः । **ईश्वरः=स्पष्टम्** । स्वराड्बृहती । मध्यमः ॥

पुनर्मनुष्यैः किमेष्टव्यमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को किसकी इच्छा करनी चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

स्व॒स्ति न॒ऽइन्द्रो॑ वृ॒द्धश्र॑वाः स्व॒स्ति नः॑ पू॒षा वि॒श्ववे॑दाः ।
स्व॒स्ति न॒स्तार्क्ष्यो॒ऽअरि॑ष्टनेमिः स्व॒स्ति नो॒ बृह॒स्पति॑र्दधातु ॥ १९ ॥

पदार्थः—(**स्वस्ति**) सुखम् (**नः**) अस्मभ्यम् (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवानीश्वरः (**वृद्धश्रवाः**) वृद्धं श्रवः=श्रवणं यस्य सः (**स्वस्ति**) (**नः**) (**पूषा**) सर्वतः पोषकः (**विश्ववेदाः**) विश्वं=सर्वं जगद्वेदो=धनं यस्य सः (**स्वस्ति**) (**नः**) (**तार्क्ष्यः**) अश्व इव । तार्क्ष्य इत्यश्वना० । निघं० १ । १४ ॥ (**अरिष्टनेमिः**) योऽरिष्टानि=सुखानि प्रापयति सः । अत्रारिष्टोपपदाण्णीञ् प्रापणे धातोरौणादिको मिः प्रत्ययः । (**स्वस्ति**) (**नः**) (**बृहस्पतिः**) बृहतां=महत्तत्त्वादीनां स्वामी पालकः (**दधातु**) ॥ १९ ॥

प्रमाणार्थ—(तार्क्ष्यः) अश्व इव । 'तार्क्ष्य' यह पद निघं० (१ । १४) में अश्व-नामों में पठित है । (**अरिष्टनेमिः**) यहाँ 'अरिष्ट' उपपद 'णीञ् प्रापणे' धातु से औणादिक 'मि' प्रत्यय है ।

अन्वयः—हे मनुष्या यो वृद्धश्रवा इन्द्रो नः स्वस्ति यो विश्ववेदाः पूषा नः स्वस्ति यस्तार्क्ष्य इवारिष्टनेमिः सन्नः स्वस्ति यो बृहस्पतिर्नः स्वस्ति दधातु स युष्मभ्यमपि सुखं दधातु ॥ १९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः ! यो वृद्धश्रवाः** वृद्धं श्रवः=श्रवणं यस्य सः **इन्द्रः** परमैश्वर्यवानीश्वरः **नः** अस्मभ्यं **स्वस्ति** सुखम्, **यो विश्ववेदाः** विश्वं=सर्वं जगद्वेदो=धनं यस्य सः, **पूषा** सर्वतः पोषकः **नः** अस्मभ्यं **स्वस्ति** सुखम्, **यस्तार्क्ष्यः** अश्व (इव) **इवारिष्टनेमिः** योऽरिष्टानि=सुखानि प्रापयति सः **सन्, नः** अस्मभ्यं **स्वस्ति** सुखम्, **यो बृहस्पतिः** बृहतां=महत्तत्त्वादीनां स्वामी पालकः **नः** अस्मभ्यं **स्वस्ति** सुखं **दधातु; स युष्मभ्यमपि सुखं दधातु** ॥ २५ । १९ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो—(वृद्धश्रवाः) बड़े श्रवण विज्ञान (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् ईश्वर (नः) हमारे (स्वस्ति) सुख को धारण करता है; जो (विश्ववेदाः) जगत् रूप धन वाला, (पूषा) सब ओर से पोषक ईश्वर (नः) हमारे लिए (स्वस्ति) सुख को धारण करता है; जो (तार्क्ष्यः) घोड़े के समान (अरिष्टनेमिः) सुखों को प्राप्त कराने वाला होकर (नः) हमारे लिए (स्वस्ति) सुख को धारण करता है; जो (बृहस्पतिः) महत् तत्त्व आदि का स्वामी एवं पालक (नः) हमारे लिए (स्वस्ति) सुख को धारण करता है; वह तुम्हारे लिए भी सुख को धारण करे ॥ २५ । १९ ॥

भावार्थः—मनुष्यैर्यथा स्वार्थं सुखमेष्टव्यं तथाऽन्यार्थमप्येषितव्यम् । यथा कश्चिदपि स्वार्थं दुःखं नेच्छति तथा परार्थमपि नैषितव्यम् ॥२५।१९॥

भावार्थ—मनुष्य जैसे अपने लिए सुख चाहें वैसे दूसरों के लिए भी सुख की कामना करें । जैसे कोई भी व्यक्ति अपने लिए दुःख नहीं चाहता वैसे दूसरों के लिए भी दुःख की कामना न करें ॥ २५ । १९ ॥

विनियोग—'स्वस्ति नः इन्द्रो०' महर्षि ने इस मन्त्र का विनियोग स्वस्तिवाचन में संस्कार-विधि में किया है ॥

भाष्यसार—**मनुष्य किसकी इच्छा करें**—सब मनुष्य ऐसी कामना करें कि जो ईश्वर बड़े विज्ञान वाला, परम ऐश्वर्यवान्, सकल जगत् रूप धन वाला, सब ओर से पोषक, घोड़े के समान सुखों का प्रापक, महत्तत्त्व आदि का स्वामी अर्थात् पालक है वह हमारे लिए तथा तुम्हारे लिए भी सुख को धारण करे । मनुष्य जैसे अपने लिए सुख की कामना करें वैसे अन्यों के लिए भी सुख की कामना किया करें । जैसे कोई मनुष्य अपने लिए दुःख की कामना नहीं करता वैसे अन्यों के लिए भी दुःख की कामना न करें ॥ २५ । १९ ॥

गोतमः । **विद्वांसः=स्पष्टम्** । जगती । निषादः ॥

पुनः के किं कुर्युरित्याह ॥

फिर कौन क्या करें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः ।
अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा ऽ अवसागमन्निह ॥ २० ॥

पदार्थः—(**पृषदश्वाः**) पृषतः=पुष्टयादिना संसिक्ताङ्गा अश्वा येषान्ते (**मरुतः**) मनुष्याः (**पृश्निमातरः**) पृश्निरन्तरिक्षं माता येषां वायूनां ते इव (**शुभंयावानः**) ये शुभं=कल्याणं यान्ति=प्राप्नुवन्ति ते । **अत्र वाच्छन्दसि सर्वे विधयो भवन्तीति द्वितीयाया अलुक्** (**विदथेषु**) संग्रामेषु (**जग्मयः**) संगन्तारः (**अग्निजिह्वाः**) अग्निरिव सुप्रकाशिता जिह्वा=वाणी येषान्ते । **जिह्वेति वाङ्ना० निघं० । १ । ११ ॥** (**मनवः**) मननशीलाः (**सूरचक्षसः**) सूर=ऐश्वर्ये प्रेरणे वा चक्षो=दर्शनं येषान्ते (**विश्वे**) सर्वे (**नः**) अस्मान् (**देवाः**) विद्वांसः (**अवसा**) रक्षणाद्येन सह (**आ**) (**अगमन्**) प्राप्नुवन्तु (**इह**) अस्मिन्संसारे वर्त्तमानसमये वा ॥ २० ॥

प्रमाणार्थ—(**शुभंयावानः**) यहाँ 'वा छन्दसि सर्वे विधयो भवन्ति' इस परिभाषा से द्वितीया विभक्ति का अलुक् है । (**अग्निजिह्वाः**) जिह्वा पद निघं० (१ । ११) में वाक् नामों में पठित है । वाक्=वाणी ॥

अन्वयः—ये पृश्निमातर इव पृषदश्वा मरुतो विदथेषु शुभंयावानो जग्मयोऽग्निजिह्वाः सूरचक्षसो विश्वे देवा मनवोऽवसा सह वर्त्तन्ते ते इह नोऽस्मानागमन् ॥ २० ॥

सपदार्थान्वयः—**ये पृश्निमातरः** पृश्निरन्तरिक्षं माता येषां वायूनां ते **इव पृषदश्वाः** पृषतः=पुष्टयादिना संसिक्ताङ्गा अश्वा येषान्ते, **मरुतः** मनुष्याः; **विदथेषु** सङ्ग्रामेषु **शुभंयावानः** ये शुभं=कल्याणं यान्ति=प्राप्नुवन्ति ते, **जग्मयः** संगन्तारः, **अग्निजिह्वाः** अग्निरिव सुप्रकाशिता जिह्वा=वाणी येषान्ते, **सूरचक्षसः** सूर=ऐश्वर्ये प्रेरणे वा चक्षः=दर्शनं येषान्ते, **विश्वे** सर्वे **देवाः** विद्वांसः, **मनवः** मननशीलाः **अवसा** रक्षणाद्येन **सह वर्त्तन्ते; त इह** अस्मिन्संसारे वर्त्तमानसमये वा **नः**=**अस्मान् आ**+**अगमन्** प्राप्नुवन्तु ॥२५।२०॥

भाषार्थ—जो (पृश्निमातरः) पृश्नि=अन्तरिक्ष जिनकी माता है उन वायुओं के तुल्य, (पृषदश्वाः) परिपुष्ट घोड़ों वाले (मरुतः) मनुष्य हैं तथा (विदथेषु) संग्रामों में (शुभंयावानः) शुभ=कल्याण को प्राप्त कराने वाले, (जग्मयः) संगति करने वाले, (अग्निजिह्वाः) अग्नि के तुल्य सुप्रकाशित जिह्वा=वाणी वाले, (सूरचक्षसः) ऐश्वर्य वा प्रेरणा में दृष्टि रखने वाले (सर्वे) सब (देवाः) विद्वान् एवं (मनवः) मननशील मनुष्य (अवसा) रक्षा आदि के साथ वर्तमान हैं; वे (इह) इस संसार में वा इस समय में (नः) हमें (आ+अगमन्) प्राप्त होवें ॥ २५ । २० ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । मनुष्यैर्विदुषां सङ्गः सदैव प्रार्थनीयः, यथाऽस्मिञ्जगति सर्वे वायवः सर्वेषां जीवनहेतवः सन्ति, तथाऽत्र जङ्गमेषु विद्वांसः सन्ति ॥ २५ । २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । मनुष्य विद्वानों के संग की सदा कामना करें । जैसे इस जगत् में सब वायु सबके जीवन का हेतु हैं; वैसे यहाँ जंगम प्राणियों में विद्वान् लोग हैं ॥ २५ । २० ॥

भा० पदार्थः—पृश्निमातरः=वायव इव सर्वेषां जीवनहेतवः।

भाष्यसार—कौन क्या करें—अन्तरिक्ष जिनकी माता है उन वायुओं के समान सुखदायक, पुष्टांग घोड़ों वाले, संग्रामों में कल्याण को प्राप्त करने वाले, संगति करने वाले, अग्नि के समान विद्या से सुप्रकाशित वाणी वाले, ऐश्वर्य वा प्रेरणा में दृष्टि रखने वाले, मननशील विद्वान् लोग इस संसार में एवं अपने वर्तमान काल में शिक्षा आदि से मनुष्यों की रक्षा करें तथा उन्हें प्राप्त हों। मनुष्य भी विद्वानों के सङ्ग की सदैव कामना करें क्योंकि जैसे इस जगत् में वायु सबके जीवन का हेतु है वैसे जंगमों में विद्वान् भी सबके जीवन का हेतु हैं ॥ २५ । २० ॥

गोतमः । **विद्वांसः**=स्पष्टम् । निचृत्त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाᳬसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ २१ ॥

पदार्थः—(**भद्रम्**) सत्यलक्षणकरं वचः (**कर्णेभिः**) श्रोत्रैः (**शृणुयाम**) (**देवाः**) विद्वांसः (**भद्रम्**) कल्याणम् (**पश्येम**) (**अक्षभिः**) चक्षुर्भिः (**यजत्राः**) संगन्तारः (**स्थिरैः**) दृढैः (**अङ्गैः**) अवयवैः (**तुष्टुवांसः**) स्तुवन्तः (**तनूभिः**) शरीरैः (**वि, अशेमहि**) प्राप्नुयाम (**देवहितम्**) देवेभ्यो=विद्वद्भ्यो हितम् (**यत्**) (**आयुः**) जीवनम् ॥ २१ ॥

अन्वयः—हे यजत्रा देवा विद्वांसो भवत्सङ्गेन वयं कर्णेभिर्भद्रं शृणुयामाक्षभिर्भद्रं पश्येम स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसः सन्तस्तनूभिर्यद्देवहितमायुस्तद् व्यशेमहि ॥ २१ ॥

सपदार्थान्वयः— हे यजत्राः सङ्गन्तारः **देवाः**=**विद्वांसः** ! **भवत्सङ्गेन वयं कर्णेभिः** श्रोत्रैः **भद्रं** सत्यलक्षणकरं वचः **शृणुयाम**, **अक्षभिः** चक्षुर्भिः **भद्रं** कल्याणं **पश्येम**, **स्थिरैः** दृढैः **अङ्गैः** अवयवैः **तुष्टुवांसः** स्तुवन्तः **सन्तस्तनूभिः** शरीरैः **यद्देवहितं** देवेभ्यो=विद्वद्भ्यः हितम् **आयुः** जीवनं **तद्**; **वि**+**अशेमहि** प्राप्नुयाम ॥ २५।२१ ॥

भाषार्थ—हे (यजत्राः) संगति करने वाले (देवाः) विद्वानो ! आपके संग से हम लोग (कर्णेभिः) कानों से (भद्रम्) सत्य लक्षण युक्त वचन (शृणुयाम) सुनें; (अक्षभिः) आँखों से (भद्रम्) कल्याण (पश्येम) देखें; (स्थिरैः) दृढ़ (अङ्गैः) अंगों से (तुष्टुवांसः) स्तुति करते हुए (तनूभिः) शरीरों से (यत्) जो (देवहितम्) विद्वानों के लिए हितकारी (आयुः) आयु है; उसे (वि+अशेमहि) प्राप्त करें ॥ २५ । २१ ॥

भावार्थः—यदि मनुष्या विद्वत्सङ्गेन विद्वांसो भूत्वा सत्यं शृणुयुः, सत्यं पश्येयुः, जगदीश्वरं स्तुयुस्तर्हि ते दीर्घायुषो भवेयुः । मनुष्यैरसत्यश्रवणं कुदर्शनं मिथ्यास्तुतिर्व्यभिचारश्च कदापि नैव कर्त्तव्यः ॥ २५ । २१ ॥

भावार्थ—यदि मनुष्य विद्वानों के संग से विद्वान् होकर सत्य सुनें, सत्य देखें, जगदीश्वर की स्तुति करें तो वे दीर्घायु हों । मनुष्य असत्य श्रवण, कुदर्शन, मिथ्या स्तुति और व्यभिचार कभी न करें ॥ २५ । २१ ॥

अन्यत्र व्याख्यात—हे देवेश्वर ! देव विद्वानो ! हम लोग कानों से सदैव भद्र कल्याण को ही सुनें, अकल्याण की बात भी हम कभी न सुनें। हे यजनीयेश्वर ! हे यज्ञकर्त्तारो ! हम आँखों से कल्याण (मंगल सुख) को ही सदा देखें।

हे जनो ! हे जगदीश्वर ! हमारे सब अङ्ग-उपाङ्ग (श्रोत्रादि इन्द्रिय तथा सेनादि उपाङ्ग) स्थिर (दृढ़) सदा रहें, जिन से हम लोग स्थिरता से आपकी स्तुति और आपकी आज्ञा का अनुष्ठान सदा करें, तथा हम लोग आत्मा, शरीर, इन्द्रिय और विद्वानों के हितकारक आयु को विविध सुखपूर्वक प्राप्त हों अर्थात् सदा सुख में ही रहें। (आर्याभिविनय २। २७॥)

विनियोग—(क) 'भद्रं कर्णेभिः०' इस मन्त्र का महर्षि ने शान्तिकरण (संस्कारविधि) में विनियोग किया है।

(ख) बालक के आगे कुछ खाने का पदार्थ वा खिलौना धर के···'ओं भद्रं कर्णेभिः०' इस मन्त्र को पढ़ के, चरक सुश्रुत वैदिक ग्रन्थों के जानने वाले सद् वैद्य के हाथ से कर्ण वा नासिका वेध करावें कि जो नाड़ी आदि को बचा के वेध कर सके॥ (संस्कारविधि कर्णवेधसंस्कार)॥

भाष्यसार—मनुष्यों को क्या करना चाहिए—सब मनुष्य विद्वानों के संग से कानों से सत्य लक्षण युक्त वचन सुनें। आँखों से कल्याण ही देखें। शरीर के दृढ़ अंगों से स्तुति को प्राप्त होकर विद्वानों के लिए हितकारी आयु को प्राप्त करें। सत्य व्यवहार एवं जगदीश्वर की स्तुति से दीर्घ आयु को प्राप्त करें। असत्य-श्रवण, कुदर्शन, मिथ्यास्तुति और व्यभिचार कभी न करें॥ २५। २१॥

गोतमः। **विद्वांसः=स्पष्टम्**। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

पुनरस्मदर्थं के किं कुर्युरित्याह॥

फिर हमारे लिए कौन क्या करें, इस विषय का उपदेश किया है॥

शतमिन्नु शरदो ऽ अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम्।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः॥ २२॥

पदार्थः—(**शतम्**) शतवार्षिकम् (**इत्**) एव (**नु**) सद्यः (**शरदः**) शरदृत्वन्तानि (**अन्ति**) अन्तिके (**देवाः**) विद्वांसः (**यत्र**) यस्मिन्। **अत्र निपातस्य चेति दीर्घः**। (**नः**) अस्माकम् (**चक्र**) कुर्वन्तु। **अत्र द्व्यचोऽतस्तिङ इति दीर्घः**। (**जरसम्**) जराः (**तनूनाम्**) शरीराणाम् (**पुत्रासः**) वृद्धावस्थाजन्यदुःखात्त्रातारः (**यत्र**) (**पितरः**) पितर इव वर्त्तमानाः (**भवन्ति**) (**मा**) (**नः**) अस्माकम् (**मध्या**) पूर्णायुषो भोगस्य मध्ये (**रीरिषत**) घ्नत (**आयुः**) जीवनम् (**गन्तोः**) गमनम्॥ २२॥

प्रमाणार्थ—(**यत्र**) यहाँ 'निपातस्य च' (६। ३। १३६) से संहिता में दीर्घ है [**यत्रा**]। (**चक्र**) यहाँ 'द्व्यचोऽतस्तिङः' (६। ३। १३५) से संहिता में दीर्घ है [**चक्रा**]।

अन्वयः—हे देवा भवदन्ति स्थितानां नोऽस्माकं यत्र तनूनां जरसं शतं शरदः स्युस्तन्नु चक्र। यत्र पुत्रास इत्पितरो भवन्ति तन्नो गन्तोरायुर्मध्या मा रीरिषत॥ २२॥

सपदार्थान्वयः—हे **देवाः** विद्वांसः! **भवदन्ति** अन्तिके **स्थितानां नः अस्माकं यत्र** यस्मिन् **तनूनां** शरीराणां **जरसं** जराः **शतं** शत-

भाषार्थ—हे (देवाः) विद्वानो ! आपके (अन्ति) समीप में स्थित (नः) हमारे (यत्र) जिससे (तनूनाम्) शरीरों की (जरसम्) जरावस्थाएँ

वार्षिकं **शरदः** शरदृत्वन्तानि **स्युस्तन्नु** सद्यः **चक्र** कुर्वन्तु । **यत्र** यस्मिन् **पुत्रासः** वृद्धावस्थाजन्यदुःखात् त्रातारः **इत्** एव **पितरः** पितर इव वर्त्तमानाः **भवन्ति, तन्नः** अस्माकं **मन्तोः** गमनम् **आयुः** जीवनं **मध्या** पूर्णायुषो भोगस्य मध्ये **मा रीरिषत** घ्नत ॥ २५ । २२ ॥

(शतम्) सौ (शरदः) शरद् ऋतु पर्यन्त हों, उसे (नु) शीघ्र (चक्र) सिद्ध करें। (यत्र) जिससे (पुत्रासः) वृद्धावस्था जन्य दुःख से रक्षा करने वाले (इत्) ही (पितरः) पितरों के तुल्य होते हैं, उसे (नः) हमारे (गन्तोः) मार्ग, (आयुः) जीवन एवं (मध्या) पूर्ण आयु भोग के मध्य में (मा, रीरिषत) मत नष्ट करो ॥ २५ । २२ ॥

भावार्थः—मनुष्यैर्दीर्घमष्टचत्वारिंशद्वर्ष-परिमितं ब्रह्मचर्यं सदा सेवनीयम् । यदा शतवार्षिक-मायुर्व्यतीयात्तदैव शरीराणां जराऽवस्था भवेत् । येन पितृषु विद्यमानेषु पुत्रा अपि पितरो भवेयुः । यदि ब्रह्मचर्येण सह न्यूनान्न्यूनानि पञ्चविंशति-वर्षाणि व्यतीतानि स्युस्ततः पश्चादतिमैथुनेन ये वीर्यक्षयं कुर्वन्ति तर्हि ते सरोगा निर्बुद्धयो भूत्वा दीर्घायुषः कदापि न भवन्ति ॥ २५ । २२ ॥

भावार्थ—मनुष्य—दीर्घ, अड़तालीस वर्ष प्रमाण के ब्रह्मचर्य का सदा सेवन करें। जब सौ वर्ष आयु व्यतीत हो जाए तभी शरीरों की जरा अवस्था हो। जिससे पितरों की विद्यमानता में पुत्र भी पितर हो जायें। यदि ब्रह्मचर्य के साथ न्यून से न्यून पच्चीस वर्ष व्यतीत हो जाएँ तत्पश्चात् अति मैथुन से जो वीर्य का क्षय करते हैं तो वे रोगी, निर्बुद्धि होकर दीर्घायु कभी नहीं होते ॥ २२॥

भाष्यसार—**हमारे लिए कौन क्या करें**—हमारे लिए विद्वान् लोग ऐसा करें कि उनके समीप रहते हुए हमारे शरीरों की जरा अवस्था सौ शरद् ऋतु के पश्चात् हो। तात्पर्य यह है कि मनुष्य ४८ अड़तालीस वर्ष पर्यन्त दीर्घ ब्रह्मचर्य का सेवन करें। जब सौ वर्ष की आयु व्यतीत हो जावे तभी शरीर की जरा अवस्था आवे। वृद्धावस्था से उत्पन्न दुःख से त्राण करने वाले पुत्र भी पितर बन जावें। वे हमारे जीवन काल में ही नष्ट न हों। जो मनुष्य कम से कम पच्चीस वर्ष ब्रह्मचर्य सेवन करने के पश्चात् अति मैथुन से वीर्य का क्षय करते हैं वे रोगी और निर्बुद्धि हो कर कभी दीर्घायु नहीं होते ॥ २५।२२ ॥

प्रजापतिः । **द्यौरित्यादयः=कारणरूपप्रकाशादयः** । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथादितिशब्दस्यानेकाऽर्थाः सन्तीत्याह ॥

अब अदिति शब्द के अनेक अर्थ हैं, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

अदि॑ति॒र्द्यौरदि॑तिर॒न्तरि॑क्ष॒मदि॑तिर्मा॒ता स पि॒ता स पु॒त्रः ।
विश्वे॑ दे॒वाऽअदि॑तिः॒ पञ्च॒ जना॒ऽ अदि॑तिर्जा॒तमदि॑ति॒र्जनि॑त्वम् ॥ २३ ॥

पदार्थः—(**अदितिः**) अखण्डिता (**द्यौः**) कारणरूपेण प्रकाशः (**अदितिः**) अविनाशि (**अन्तरिक्षम्**) आकाशम् (**अदितिः**) विनाशरहिता (**माता**) सर्वस्य जगतो जननी प्रकृतिः (**सः**) परमेश्वरः (**पिता**) नित्यपालकः (**सः**) (**पुत्रः**) ईश्वरस्य पुत्र इवाविनाशी (**विश्वे**) सर्वे (**देवाः**) दिव्यगुणादियुक्ताः पृथिव्यादयः (**अदितिः**) कारणरूपेण नाशरहिता (**पञ्च**) एतत्संख्याकाः (**जनाः**) मनुष्याः प्राणा वा (**अदितिः**) स्वात्मरूपेण नित्यम् (**जातम्**) यत्किंचिदुत्पन्नं कार्यम् (**अदितिः**) कारणरूपेण नित्यम् (**जनित्वम्**) उत्पत्स्यमानम् ॥ २३ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या युष्माभिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रश्चादितिर्विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातञ्जनित्वञ्चादितिरस्तीति वेद्यम् ॥ २३ ॥

सपदार्थान्वयः — हे मनुष्याः ! युष्माभिर्द्यौः कारणरूपेण प्रकाशः **अदितिः** अखण्डिता; **अन्तरिक्षम्** आकाशम् **अदितिः** अविनाशि; **माता** सर्वस्य जगतो जननी प्रकृतिः **सः** परमेश्वरः **पिता** नित्यपालकः **स पुत्रः** ईश्वरस्य पुत्र इवाविनाशी **चादितिः** विनाशरहितः, **विश्वे** सर्वे **देवाः** दिव्यगुणादियुक्ताः पृथिव्यादयः **अदितिः** कारणरूपेण नाशरहिता, **पञ्च** एतत्संख्याकाः **जनाः** मनुष्याः प्राणा वा **अदितिः** स्वात्मरूपेण नित्यं; **जातं** यत्किञ्चिदुत्पन्नं कार्यं **जनित्वम्** उत्पत्स्यमानं **चादितिः** कारणरूपेण नित्यम् **अस्तीति वेद्यम्** ॥ २५ । २३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—(द्यौः) कारण रूप से प्रकाश (अदितिः) अखण्डित है; (अन्तरिक्षम्) आकाश (अदितिः) अविनाशी है; (माता) सब जगत् की जननी प्रकृति, (सः) वह परमेश्वर (पिता) नित्य पालक, तथा (सः) वह (पुत्रः) ईश्वर के पुत्र के समान अविनाशी जीव (अदितिः) विनाश रहित है; (विश्वे) सब (देवाः) दिव्य गुण आदि से युक्त पृथिवी आदि (अदितिः) कारण रूप से नाशरहित हैं, (पञ्च) पाँच (जनाः) मनुष्य वा प्राण (अदितिः) स्वात्म रूप से नित्य हैं; (जातम्) जो कुछ उत्पन्न कार्य जगत् तथा (जनित्वम्) भविष्य में उत्पन्न होने वाला जगत् है वह (अदितिः) कारण रूप से नित्य है; ऐसा जानो ॥ २५ । २३ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या ! भवन्तो यत् किंचित् कार्यं जगत् पश्यन्ति तददृष्टकारणं विजानन्तु । जगन्निर्माता परमात्मा, जीवः, पृथिव्यादीनि तत्त्वानि, यज्जातं यच्च जनिष्यते, या च प्रकृतिस्तत् सर्वं स्वरूपेण नित्यमस्ति । न कदाप्यस्याभावो भवति, न चाभावाद्भावोत्पत्तिर्भवतीति विज्ञेयम् ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप जो कुछ कार्य जगत् देख रहे हैं उसे अदृष्ट कारण वाला जानो। जगत् का निर्माता परमात्मा, जीव, पृथिवी आदि तत्त्व, जो उत्पन्न जगत् है और जो उत्पन्न होगा, और जो प्रकृति है, वह सब स्वरूप से नित्य है। इसका कभी अभाव नहीं होता, और अभाव से भाव की उत्पत्ति नहीं होती; ऐसा समझो ॥ २५ । २३ ॥

भा० पदार्थः—अदितिः=अदृष्टकारणम् । माता=जगन्निर्माता परमात्मा । पुत्रः=जीवः । विश्वेदेवाः=पृथिव्यादीनि तत्त्वानि । जनित्वम्=यज्जनिष्यते तत् । अदितिः=स्वरूपेण नित्यम् ॥

भाष्यसार—**अदिति शब्द के अनेक अर्थ हैं**—अविनाशी को अदिति कहते हैं। अतः कारण रूप से द्यौ=प्रकाश अदिति है। आकाश भी अदिति है। माता अर्थात् सब जगत् की जननी प्रकृति, नित्य पालन करने वाला परमेश्वर, ईश्वर के पुत्र के समान जीव भी अदिति है। दिव्य गुणों से युक्त पृथिवी आदि भी कारण रूप में नाश रहित होने से अदिति है। पाँच जन तथा पाँच प्राण अपने आत्मरूप में नित्य रहने से अदिति हैं। जो कुछ यह कार्य जगत् दिखाई देता है और जो आगे उत्पन्न होगा वह सब कारणरूप से नित्य है। इस जगत् का कभी अभाव नहीं होता। सिद्धान्त यह है कि अभाव से भाव की उत्पत्ति नहीं होती ॥ २५ । २३ ॥ ●

गोतमः । **मित्रादयः**=**प्राण इव सख्यादयः** त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनः केऽस्माकं किन्न कुर्युरित्याह ॥

फिर कौन हम लोगों के किस काम को न करें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

मा नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो ऽ अर्य॒मायुरिन्द्र॑ ऽ ऋभु॒क्षा म॒रुतः॒ परि॑ख्यन् ।
यद्वा॒जिनो॑ दे॒वजा॑तस्य॒ सप्तेः॑ प्रव॒क्ष्यामो॑ वि॒दथे॑ वी॒र्या॑णि ॥ २४ ॥

पदार्थः—(**मा**) निषेधे (**नः**) अस्माकम् (**मित्रः**) प्राण इव सखा (**वरुणः**) उदान इव श्रेष्ठः (**अर्यमा**) न्यायाधीश इव नियन्ता (**आयुः**) जीवनम् (**इन्द्रः**) राजा (**ऋभुक्षाः**) महान्तः (**मरुतः**) मनुष्याः (**परिख्यन्**) वर्जयेयुः (**यत्**) यानि (**वाजिनः**) वेगवतः (**देवजातस्य**) देवैर्दिव्यैर्गुणैः प्रसिद्धस्य (**सप्तेः**) अश्वस्य (**प्रवक्ष्यामः**) प्रवदिष्यामः (**विदथे**) युद्धे (**वीर्याणि**) बलानि ॥ २४ ॥

अन्वयः—हे विद्वांसो यथा मित्रो वरुणोऽर्यमेन्द्रश्च ऋभुक्षा मरुतो न आयुर्मा परिख्यन्। येन वयं देवजातस्य वाजिनः सप्तेरिव विदथे यद्वीर्याणि प्रवक्ष्यामस्तानि मा परिख्यन्। तथा यूयमुपदिशत ॥ २४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **विद्वांसः** ! **यथा**-**मित्रः** प्राण इव सखा, **वरुणः** उदान इव श्रेष्ठः **अर्यमा** न्यायाधीश इव नियन्ता **इन्द्रः** राजा **च**, **ऋभुक्षाः** महान्तः **मरुतः** मनुष्याः **नः** अस्माकम् **आयुः** जीवनं **मा न परिख्यन्** वर्जयेयुः; **येन वयं देवजातस्य** देवैर्दिव्यैर्गुणैः प्रसिद्धस्य **वाजिनः** वेगवतः **सप्तेः** अश्वस्य **इव विदथे** युद्धे, **यत्** यानि **वीर्याणि** बलानि **प्रवक्ष्यामः** प्रवदिष्यामः, **तानि मा न परिख्यन्** वर्जयेयुः; **तथा यूयमुपदिशत** ॥ २५ । २४ ॥

भाषार्थ—हे विद्वानो ! जैसे—(मित्रः) प्राण के समान सखा, (वरुणः) उदान के समान श्रेष्ठ पुरुष, (अर्यमा) न्यायाधीश के समान नियन्ता पुरुष और (इन्द्रः) राजा तथा (ऋभुक्षाः) महान् (मरुतः) मनुष्य (नः) हमारी (आयुः) आयु को (मा, परिख्यन्) नष्ट न करें; जिससे हम लोग (देवजातस्य) दिव्य गुणों से प्रसिद्ध (वाजिनः) वेगवान् (सप्तेः) घोड़े के समान (विदथे) युद्ध में (यत्) जिन (वीर्याणि) बलों को (प्रवक्ष्यामः) बतलायेंगे; उन्हें (मा, परिख्यन्) नष्ट न करें; वैसा तुम उपदेश करो ॥ २५ । २४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा सर्वे मनुष्याः स्वेषां बलानि वर्द्धयितुमिच्छेयुस्तथैवान्येषामपि वर्द्धयितुमिच्छन्तु ॥ २५ । २४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। जैसे सब मनुष्य अपने जनों के बलों को बढ़ाना चाहते हैं वैसे अन्यों के भी बलों को बढ़ाने की इच्छा करें ॥ २५ । २४ ॥

भाष्यसार—१. **कौन हमारा क्या न करें**—प्राण के समान प्रिय सखा, उदान के समान श्रेष्ठ पुरुष, न्यायाधीश के समान नियन्ता पुरुष, राजा और महान् मनुष्य हमारी आयु=जीवन को नष्ट न करें। जैसे दिव्य गुणों से प्रसिद्ध, वेगवान् अश्व युद्ध में अपने बल को प्रख्यात करता है वैसे हम लोग अपने बलों को प्रख्यात करें तथा उन बलों को कोई नष्ट न करे। सब मनुष्य अपने बलों के समान अन्यों के बल को भी बढ़ाने की कामना करें। विद्वान् लोग सब मनुष्यों को ऐसा ही उपदेश करें।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा वाचक 'इव' आदि पद लुप्त हैं अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि अश्व के समान सब मनुष्य अपने बल को प्रख्यात करें ॥ २५ । २४ ॥

गोतमः। **विद्वांसः=स्पष्टम्**। निचृत्त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

पुनर्मनुष्याः किं कुर्युरित्याह ॥

फिर मनुष्य क्या करें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति।
सुप्राङजो मेम्यद्विश्वरूप ऽ इन्द्रापूष्णोः प्रियमप्येति पाथः ॥ २५ ॥

पदार्थः—(**यत्**) ये (**निर्णिजा**) सुरूपेण (**रेक्णसा**) धनेन । रेक्ण इति धनना० निघं० २। १० ॥ (**प्रावृतस्य**) युक्तस्य (**रातिम्**) दानम् (**गृभीताम्**) गृहीताम् (**मुखतः**) अग्रतः (**नयन्ति**) प्रापयन्ति (**सुप्राङ्**) यः सुष्ठु पृच्छति सः (**अजः**) जन्मादिरहितः (**मेम्यत्**) प्राप्नुवन् (**विश्वरूपः**) विश्वं रूपं यस्य सः (**इन्द्रापूषणोः**) विद्युद्वाय्वोः (**प्रियम्**) कमनीयम् (**अपि**) (**एति**) प्राप्नोति (**पाथः**) अन्नम् ॥ २५ ॥

प्रमाणार्थ—(रेक्णसा) धनेन । 'रेक्णः' पद निघं० (२ । १०) में धन-नामों में पठित है ॥

अन्वयः—यन्मनुष्या निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां सतीं मुखतो नयन्ति यो मेम्यत्सुप्राङ् विश्वरूपोऽज इन्द्रापूष्णोः प्रियं पाथोऽप्येति ते स च सुखमाप्नुवन्ति ॥ २५ ॥

सपदार्थान्वयः—यद् ये मनुष्या **निर्णिजा** सुरूपेण **रेक्णसा** धनेन **प्रावृतस्य** युक्तस्य **रातिं** दानं **गृभीतां** गृहीतां **सतीं मुखतः** अग्रतः **नयन्ति** प्रापयन्ति; **यो मेम्यत्** प्राप्नुवन् **सुप्राङ्** यः सुष्ठु पृच्छति सः, **विश्वरूपः** विश्वं रूपं यस्य सः, **अजः** जन्मादिरहितः, **इन्द्रापूष्णोः** विद्युद्वाय्वोः **प्रियं** कमनीयं **पाथः** अन्नम् **अपि एति** प्राप्नोति; **ते स च सुखमाप्नुवन्ति** ॥ २५ । २५ ॥

भाषार्थ—(यत्) जो मनुष्य—(निर्णिजा) सुरूप तथा (रेक्णसा) धन से (प्रावृतस्य) युक्त पुरुष के (रातिम्) दान को (गृभीताम्) ग्रहण करके (मुखतः) आगे (नयन्ति) पहुँचाते हैं; जो (मेम्यत्) प्राप्त होने वाला, (सुप्राङ्) अच्छे प्रकार पूछने वाला, (विश्वरूपः) नाना रूप वाला, (अजः) जन्म आदि से रहित है वह (इन्द्रापूष्णोः) विद्युत् और वायु के (प्रियम्) प्रिय (पाथः) अन्न को भी (एति) प्राप्त करता है। वे मनुष्य और वह जीव सुख को प्राप्त करते हैं ॥ २५ । २५ ॥

भावार्थः—ये धनं प्राप्य, सत्कर्मसु व्ययं कुर्वन्ति ते सर्वान् कामानाप्नुवन्ति ॥ २५ । २५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य धन को प्राप्त करके शुभ कर्मों में व्यय करते हैं वे सब कामनाओं को प्राप्त करते हैं ॥ २५ । २५ ॥

भाष्यसार—**मनुष्य क्या करें**—मनुष्य सुरूप एवं धन से युक्त पुरुष के दान को ग्रहण करें और उसे आगे पहुँचावें अर्थात् धन को प्राप्त करके उसे शुभ कर्मों में व्यय करें। शरीर आदि को प्राप्त करने वाला, अच्छे प्रकार प्रश्न आदि पूछने वाला, नाना रूपों वाला, जन्म आदि से रहित जीव विद्युत् और वायु के प्रिय अन्न को प्राप्त करें। मनुष्य इस प्रकार अपनी सब कामनाओं एवं सुखों को प्राप्त करें ॥ २५ । २५ ॥ ●

गोतमः । **यज्ञः**=**पशुपालनम्** । निचृज्जगती । निषादः ॥

पुनः केन सह के पालनीया इत्याह ॥

फिर किसके साथ कौन पालना करने योग्य है, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

एष छागः पुरो ऽ अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः ।
अभिप्रियं यत्पुरोडाशमर्वता त्वष्टेदेनꣳ सौश्रवसाय जिन्वति ॥ २६ ॥

पदार्थः—(एषः) (छागः) छेदकः (पुरः) पुरस्तात् (अश्वेन) (वाजिना) (पूष्णः) पोषकस्य (भागः) सेवनीयः (नीयते) प्राप्यते (विश्वदेव्यः) विश्वेषु=सर्वेषु देवेषु साधुः (अभिप्रियम्) सर्वतः कमनीयम् (यत्) यम् (पुरोडाशम्) (अर्वता) गन्त्रा (त्वष्टा) तनूकर्त्ता (इत्) (एनम्) पूर्वोक्तम् (सौश्रवसाय) शोभनं श्रवः=कीर्त्तिर्यस्य स सुश्रवास्तस्य भावाय (जिन्वति) प्रीणाति ॥ २६ ॥

अन्वयः—विद्वद्भिर्य एष पुरो विश्वदेव्यः पूष्णो भागश्छागो वाजिनाऽश्वेन सह नीयते यदभिप्रियं पुरोडाशमर्वता सह त्वष्टैनं सौश्रवसायेज्जिन्वति स सदा पालनीयः ॥ २६ ॥

सपदार्थान्वयः—**विद्वद्भिर्य एषः पुरः** पुरस्तात् **विश्वदेव्यः** विश्वेषु=सर्वेषु देवेषु साधुः **पूष्णः** पोषकस्य **भागः** सेवनीयः **छागः** छेदकः **वाजिनाऽश्वेन सह नीयते** प्राप्यते; **यद्** यम् **अभिप्रियं** सर्वतः कमनीयं **पुरोडाशमर्वता** गन्त्रा **सह, त्वष्टा** तनूकर्त्ता **एनं** पूर्वोक्तं **सौश्रवसाय** शोभनं श्रवः=कीर्त्तिर्यस्य स सुश्रवास्तस्य भावाय **इज्जिन्वति** प्रीणाति; **स सदा पालनीयः** ॥२५।२६॥

भाषार्थ—विद्वानों से जो (एषः) यह (पुरस्तात्) प्रथम (विश्वदेव्यः) सब देवों में उत्तम, (पूष्णः) पोषक पुरुष का (भागः) सेवनीय, (छागः) बकरा (वाजिना) घोड़े के साथ (नीयते) प्राप्त किया जाता है; और (यत्) जिस (अभिप्रियम्) अत्यन्त प्रिय (पुरोडाशम्) पुरोडाश को (अर्वता) उक्त घोड़े के साथ (त्वष्टा) पदार्थों को सूक्ष्म करने वाला पुरुष (एनम्) इस पूर्वोक्त पुरोडाश को (सौश्रवसाय) उत्तम कीर्तिमान् होने के लिए (इत्) ही (जिन्वति) सेवन करता है; उसका सदा पालन करें ॥ २५ । २६ ॥

भावार्थः—यद्यश्वादिभिः सहान्यानजादीन् पशून् वर्धयेयुस्तर्हि ते मनुष्याः सुखमुन्नयेयुः ॥ २५ । २६ ॥

भावार्थ—यदि घोड़ों आदि के साथ अन्य बकरी आदि पशुओं को बढ़ावें तो वे मनुष्य सुख की उन्नति कर सकते हैं ॥ २५ । २६ ॥

भाष्यसार—**किस के साथ किन का पालन करें**—विद्वान् लोग घोड़े आदि पशुओं के साथ सब देवों में श्रेष्ठ, पोषक पुरुष के लिए सेवनीय, दुःखों के छेदक बकरे आदि पशुओं का भी पालन करें। उक्त घोड़ों के साथ सब ओर से कमनीय पुरोडाश की भी रक्षा करें। पदार्थों को सूक्ष्म करने वाला त्वष्टा कीर्तिमान् होने के लिए पुरोडाश का सेवन करे तथा सुख को बढ़ावे ॥ २५ । २६ ॥

प्रजापतिः । **यज्ञः=अश्वादीनामुपयोगः** । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनः केन के किं कुर्वन्तीत्याह ॥

फिर किससे कौन क्या करते हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

यद्धविष्यमृतुशो देवयानं त्रिर्मानुषाः पर्यश्वं नयन्ति ।
अत्रा पूष्णः प्रथमो भाग ऽ एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः ॥ २७ ॥

पदार्थः—(यत्) ये (हविष्यम्) हविर्भ्यो हितम् (ऋतुशः) ऋत्वर्हम् (देवयानम्) देवानां प्रापणसाधनम् (त्रिः) त्रिवारम् (मानुषाः) (परि) सर्वतः (अश्वम्) आशुगामिनम् (नयन्ति) प्राप्नुवन्ति (अत्र) अस्मिन्। **अत्र ऋचितुनुघ० इति दीर्घत्वम्।** (पूष्णः) पुष्टेः (प्रथमः) आदिमः (भागः) सेवनीयः (एति) प्राप्नोति (यज्ञम्) (देवेभ्यः) विद्वद्भ्यः (प्रतिवेदयन्) विज्ञापयन् (अजः) पशुविशेषः ॥ २७ ॥

प्रमाणार्थ—(अत्र) यहाँ 'ऋचि तुनुघ०' (६ । ३ । १३३) से संहिता में दीर्घ है [अत्रा]।

अन्वयः—यद्ये मानुषा ऋतुशो हविष्यं देवयानमश्वं त्रिः परिनयन्ति योऽत्र पूष्णः प्रथमो भागो देवेभ्यो यज्ञं प्रतिवेदयन्नज एति स सदा रक्षणीयः ।। २७ ।।

सपदार्थान्वयः—**यद्**=ये **मानुषा ऋतुशः** ऋत्वर्हं **हविष्यं** हविर्भ्यो हितं **देवयानं** देवानां प्रापणसाधनम् **अश्वम्** आशुगामिनं **त्रिः** त्रिवारं **परिनयन्ति** सर्वतः प्राप्नुवन्ति, **योऽत्र** अस्मिन् **पूष्णः** पुष्टेः **प्रथमः** आदिमः **भागः** सेवनीयः, **देवेभ्यः** विद्वद्भ्यः **यज्ञं प्रतिवेदयन्** विज्ञापयन् **अजः** पशुविशेषः, **एति** प्राप्नोति; **स सदा रक्षणीयः** ।। २५ । २७ ।।

भाषार्थ—(यत्) जो मनुष्य (ऋतुशः) ऋतु अनुसार (हविष्यम्) हवि के लिए हितकारी उत्तम पदार्थ तथा (देवयानम्) देवों को देशान्तर में पहुँचाने वाले (अश्वम्) आशुगामी घोड़े को (त्रिः) तीन बार (परिनयन्ति) सब ओर ले जाते हैं; जो (अत्र) यहाँ (पूष्णः) पुष्टि का (प्रथमः) प्रथम (भागः) सेवन करने योग्य पदार्थ (देवेभ्यः) विद्वानों के लिए (यज्ञम्) यज्ञ को (प्रतिवेदयन्) जनाने वाला (अजः) बकरा (एति) प्राप्त होता है, वह सदा रक्षा करने योग्य है ।। २५। २७ ।।

भावार्थः—ये प्रत्यृत्वाहारविहारान् कुर्वन्ति; अश्वाजादिपशुभ्यः संगतानि कार्याणि कुर्वन्ति; तेऽत्यन्तं सुखं लभन्ते ।। २५ । २७ ।।

भावार्थ—जो मनुष्य ऋतु अनुसार आहार-विहार करते हैं; घोड़े और बकरे आदि पशुओं से संगत कार्य करते हैं; वे अत्यन्त सुख को प्राप्त करते हैं ।। २५ । २७ ।।

भाष्यसार—**किससे कौन क्या करते हैं**—मनुष्य ऋतु अनुसार हवि के लिए हितकारी पदार्थों का आहार-विहार करें। पुष्टि के लिए प्रथम सेवनीय तथा विद्वानों के लिए यज्ञ को सिद्ध करने वाले बकरे को प्राप्त करें। तात्पर्य यह है कि घोड़े और बकरे आदि पशुओं से उचित कार्य करें तथा उनकी सदा रक्षा करके सुख को प्राप्त करें ।। २५ । २७ ।। ●

गोतमः । **य.ज्ञः=स्पष्टम्** । निचृत्त्रिष्टुप् । धैवतः ।।

पुनर्मनुष्याः किं कुर्युरित्याह ।।

मनुष्य क्या करें, इस विषय का फिर उपदेश किया है ।।

होताध्वर्युरावया ऽ अग्निमिन्धो ग्रावग्राभ ऽ उत शꣳस्ता सुविप्रः ।
तेन यज्ञेन स्वरङ्कृतेन स्विष्टेन वक्षणा आ पृणध्वम् ।। २८ ।।

पदार्थः—(**होता**) आदाता (**अध्वर्युः**) अहिंसायज्ञमिच्छुः (**आवयाः**) येनावयजन्ति सः (**अग्निमिन्धः**) अग्निप्रदीपकः (**ग्रावग्राभः**) यो ग्रावाणं=मेघं गृह्णाति सः (**उत**) (**शंस्ता**) प्रशंसकः (**सुविप्रः**) शोभना विप्रा=मेधाविनो यस्मिन् सः (**तेन**) (**यज्ञेन**) संगतेन (**स्वरङ्कृतेन**) सुष्ठ्वलंकृतेन । अत्र कपिलकादित्वाद्रेफः । (**स्विष्टेन**) शोभनेनेष्टेन (**वक्षणाः**) नदीः । **वक्षणा इति नदीना० १ । १३ ।** (**आ**) (**पृणध्वम्**) समन्तात्सुखयत ।। २८ ।।

प्रमाणार्थ—(**वक्षणाः**) नदीः । 'वक्षणा' पद निघं० (१ । १३) में नदी-नामों में पठित है ।।

अन्वयः—हे मनुष्या यथा होताऽऽवया अग्निमिन्धो ग्रावग्राभः शंस्तोत सुविप्रोऽध्वर्युर्येन स्वरंकृतेन स्विष्टेन यज्ञेन वक्षणा अलङ्करोति तथा तेन यूयमप्यापृणध्वम् ।। २८ ।।

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! यथा—**होता** आदाता, **आवयाः** येनावयजन्ति सः, **अग्निमिन्धः** अग्निप्रदीपकः, **ग्रावग्राभः** यो ग्रावाणं=मेघं गृह्णाति सः, **शंस्ता** प्रशंसकः, **उत सुविप्रः** शोभना विप्रा=मेधाविनो यस्मिन् सः, **अध्वर्युः** अहिंसायज्ञमिच्छुः; **येन स्वरङ्कृतेन** सुष्ठ्वलंकृतेन **स्विष्टेन** शोभनेनेष्टेन **यज्ञेन** सङ्गतेन **वक्षणाः** नदीः **अलङ्करोति; तथा तेन यूयमप्यापृणध्वं** समन्तात् सुखयत ॥ २५ । २८ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे—(होता) शुभ गुणों को ग्रहण करने वाला, (आवयाः) यज्ञ करने वाला, (अग्निमिन्धः) अग्नि को प्रदीप्त करने वाला, (ग्रावग्राभः) ग्रावा=मेघ को ग्रहण करने वाला, (शंस्ता) प्रशंसा करने वाला, (उत) और (सुविप्रः) उत्तम मेधावी विद्वानों वाला, (अध्वर्युः) अहिंसा-यज्ञ का इच्छुक विद्वान्—जिस (स्वरङ्कृतेन) अत्यन्त अलंकृत (स्विष्टेन) अति प्रिय (यज्ञेन) यज्ञ से (वक्षणाः) नदियों को अलंकृत करता है; वैसे उस यज्ञ से तुम भी (आपृणध्वम्) सब ओर सुखी रहो ॥ २५ । २८ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । ये मनुष्याः सुगन्ध्यादिसुसंस्कृतानां हविषां वह्नौ प्रक्षेपेण वायुवर्षाजलादीनि शोधयित्वा, नद्यादिजलानि शोधयन्ति, ते सदा सुखयन्ति ॥ २५ । २८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । जो मनुष्य सुगन्धि आदि सुसंस्कृत हवियों को अग्नि में डालने से वायु और वर्षा-जल आदि को शुद्ध करके नदी आदि के जलों को शुद्ध करते हैं; वे सदा सुखी रहते हैं ॥ २५ । २८ ॥

भा० पदार्थः—यज्ञेन=सुगन्ध्यादिसुसंस्कृतानां हविषा वह्नौ प्रक्षेपेण ।

भाष्यसार—मनुष्य क्या करें—शुभ गुणों को ग्रहण करने वाला, यज्ञ करने वाला, अग्नि को प्रदीप्त करने वाला, यज्ञ से मेघों को ग्रहण करने वाला, उत्तम मेधावी विद्वानों वाला, हिंसा रहित यज्ञ का इच्छुक मनुष्य यज्ञ से नदियों को अलंकृत करे अर्थात् सुगन्धि आदि शुद्ध हवि को अग्नि में देकर वायु और वर्षा जल आदि को शुद्ध करके नदी आदि के जलों को शुद्ध करें तथा सदा सुखी रहें ॥ २५ । २८ ॥

गोतमः । **यज्ञः=शिल्पिभिर्यूपादिनिर्माणम्** । भुरिक्त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्ते किं कुर्युरित्याह ॥

फिर वे मनुष्य क्या करें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

यूपव्रस्का ऽ उत ये यूपवाहाश्चषालं ये ऽ अश्वयूपाय तक्षति ।
ये चार्वते पचनꣳ सम्भरन्त्युतो तेषामभिगूर्त्तिर्न ऽ इन्वतु ॥ २९ ॥

पदार्थः—(**यूपव्रस्काः**) यूपस्य=स्तम्भस्य छेदकाः (**उत**) अपि (**ये**) (**यूपवाहाः**) ये यूपं वहन्ति ते (**चषालम्**) यूपावयवम् (**ये**) (**अश्वयूपाय**) अश्वस्य बन्धनार्थाय स्तम्भाय (**तक्षति**) तक्षन्ति=तनूकुर्वन्ति । **अत्र वचनव्यत्ययेनैकवचनम्** (**ये**) (**च**) (**अर्वते**) अश्वाय (**पचनम्**) पाकसाधनम् (**सम्भरन्ति**) सम्यग्धरन्ति पुष्णन्ति वा (**उतो**) अपि (**तेषाम्**) (**अभिगूर्त्तिः**) अभ्युद्यमः (**नः**) अस्मान् (**इन्वतु**) व्याप्नोतु=प्राप्नोतु ॥ २९ ॥

प्रमाणार्थ—(**तक्षति**) तक्षन्ति । यहाँ वचन-व्यत्यय से बहुवचन के स्थान में एकवचन है ॥

अन्वयः—ये यूपव्रस्का उतापि ये यूपवाहा अश्वयूपाय चषालं तक्षति ये चार्वते पचनं सम्भरन्ति उतो ये प्रयतन्ते तेषामभिगूर्त्तिर्न इन्वतु ॥ २९ ॥

सपदार्थान्वयः—ये यूपव्रस्काः यूपस्य=स्तम्भस्य छेदकाः, **उत**=अपि **ये यूपवाहाः** ये यूपं वहन्ति ते, **अश्वयूपाय** अश्वस्य बन्धनार्थाय स्तम्भाय **चषालं** यूपावयवं **तक्षति** तक्षन्ति=तनूकुर्वन्ति, **ये चार्वते** अश्वाय **पचनं** पाकसाधनं **सम्भरन्ति** सम्यग्धरन्ति पुष्णन्ति वा, **उतो** अपि **ये प्रयतन्ते, तेषामभिगूर्तिः** अभ्युद्यमः **नः** अस्मान् **इन्वतु** व्याप्नोतु=प्राप्नोतु ॥ २५ । २६ ॥

भाषार्थ—जो (यूपव्रस्काः) यूप=खंभे के छेदक, (उत) और जो (यूपवाहाः) यूप=खंभे को ढोने वाले पुरुष (अश्वयूपाय) घोड़ा बाँधने के खंभे के लिए (चषालम्) चषाल नामक खंभे के अवयव को (तक्षति) छीलते हैं; और जो (अर्वते) घोड़े के लिए (पचनम्) पाक-साधन को (सम्भरन्ति) धारण वा पुष्ट करते हैं, (उतो) और जो प्रयत्न करते हैं; उनका (अभिगूर्तिः) उद्यम=पुरुषार्थ (नः) हमें (इन्वतु) प्राप्त हो ॥ २५ । २६ ॥

भावार्थः—ये शिल्पिनोऽश्वबन्धनादीनि काष्ठविशेषजानि वस्तूनि निर्मिमते, ये च वैद्या अश्वादीनामौषधानि सम्भारांश्च संगृह्णन्ति, ते सदोद्यमिनः सन्तोऽस्मान् प्राप्नुवन्तु ॥ २५ । २६ ॥

भावार्थ—जो शिल्पी लोग काष्ठ-विशेष के बने अश्वबन्धन आदि वस्तुओं को बनाते हैं; और जो वैद्य लोग घोड़ों आदि के औषधों और सम्भारों का संग्रह करते हैं; वे सदा पुरुषार्थी होकर हमें प्राप्त हों ॥ २५ । २६ ॥

भा० पदार्थः—चषालम्=काष्ठविशेषजं वस्तु ॥

भाष्यसार—**मनुष्य क्या करें**—यूप का छेदन करने वाले, यूप को वहन करने वाले, घोड़े के बन्धनार्थ यूप के लिए चषाल (यूप का अवयव विशेष) का तक्षण करें; अर्थात् शिल्पी लोग काष्ठ-विशेष से उत्पन्न अश्व-बन्धन (यूप एवं चषाल) आदि वस्तुओं का निर्माण करें। वैद्य लोग घोड़ों के लिए औषध और संभारों का संग्रह करें। सदा उद्यमी हों ॥ २५ । २६ ॥ ●

गोतमः । **विद्वांसः**=ऋषयः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनः के केषां सकाशात् किं गृह्णीयुरित्याह ॥

फिर कौन किनसे क्या ग्रहण करें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

उप प्रागात्सुमन्मेऽधायि मन्म देवानामाशा ऽ उप वीतपृष्ठः ।
अन्वेनं विप्रा ऽ ऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे चकृमा सुबन्धुम् ॥ ३० ॥

पदार्थः—(**उप**) सामीप्ये (**प्र**) (**अगात्**) प्राप्नुयात् (**सुमत्**) स्वयम् (**मे**) मम (**अधायि**) ध्रियते (**मन्म**) विज्ञानम् (**देवानाम्**) विदुषाम् (**आशाः**) दिशः (**उप**) (**वीतपृष्ठः**) वीतं=व्याप्तं पृष्ठं यस्य सः (**अनु**) (**एनम्**) (**विप्राः**) मेधाविनः (**ऋषयः**) मन्त्रार्थविदः (**मदन्ति**) कामयन्ते (**देवानाम्**) विदुषाम् (**पुष्टे**) पुष्टे जने (**चकृम**) कुर्याम **अत्र संहितायामिति दीर्घः ।** (**सुबन्धुम्**) शोभना बन्धवो=भ्रातरो यस्य तम् ॥ ३० ॥

प्रमाणार्थ—(**चकृम**) यहाँ 'संहितायाम्' अधिकार में दीर्घ है [**चकृमा**] ॥

अन्वयः—येन सुमत्स्वयं देवानाम् वीतपृष्ठो यज्ञोऽधायि येनैतेषां मे च मन्माशाश्चोपप्रागाद्येनमनुदेवानां पुष्टे ऋषयो विप्रा उपमदन्ति तं सुबन्धुं वयं चकृम ॥ ३० ॥

सपदार्थान्वयः—**येन सुमत्**=**स्वयं, देवानां** विदुषां **वीतपृष्ठः**=**यज्ञः** वीतं=व्याप्तं

भाषार्थ—जो (सुमत्) स्वयं (देवानाम्) विद्वानों के (वीतपृष्ठः) यज्ञ को (अधायि) धारण

पृष्ठं यस्य सः, **अधायि** ध्रियते; **येनैतेषां मे** मम **च मन्म** विज्ञानम्, **आशाः दिशः चोपप्रागात्** समीपं प्राप्नुयात्; **यमेनमनु देवानां** विदुषां **पुष्टे** पुष्टे जने **ऋषयः** मन्त्रार्थविदः **विप्राः** मेधाविनः **उपमदन्ति** समीपं कामयन्ते, **तं सुबन्धुं** शोभना बन्धवो=भ्रातरो यस्य तं **वयं चकृम** कुर्याम ॥ २५ । ३० ॥

भावार्थः—ये विदुषां सकाशाद् विज्ञानं प्राप्य, ऋषयो भवन्ति ते सर्वान् विज्ञानदानेन पोषयन्ति ।

ये ऽन्योऽन्यस्योन्नतिं विधाय सिद्धकामा भवन्ति; ते जगद्धितैषिणो जायन्ते ॥ २५ । ३० ॥

करता है; जो इन विद्वानों तथा (मे) मेरे (मन्म) विज्ञान को और (दिशः) दिशाओं को (उपप्रागात्) प्राप्त करता है; (एनम्, अनु) इसके पश्चात् (देवानाम्) विद्वानों के (पुष्टे) पुष्ट होने पर (ऋषयः) मन्त्रार्थ के ज्ञाता (विप्राः) मेधावी लोग जिसकी (उपमदन्ति) कामना करते हैं; उसे हम (सुबन्धुम्) उत्तम बन्धु (चकृम) बनावें ॥२५।३०॥

भावार्थ—जो विद्वानों से विज्ञान को प्राप्त करके ऋषि बनते हैं; वे सब को विज्ञान-दान से पुष्ट करते हैं ।

जो परस्पर की उन्नति करके कामनाओं को सिद्ध करते हैं; वे जगत् के हितैषी होते हैं ॥३०॥

भाष्यसार—कौन किससे क्या ग्रहण करें—मनुष्य विद्वानों के यज्ञ को स्वयं धारण करें, विद्वानों से विज्ञान को ग्रहण करें; विद्वानों की दिशाओं को प्राप्त करें अर्थात् उनके समीप रहें; विद्वानों के संग से विज्ञान को प्राप्त करके पुष्ट हों, मन्त्रार्थ के ज्ञाता ऋषि एवं मेधावी विद्वान् बनें तथा विज्ञान-दान से सबको पुष्ट करें । उक्त विद्वानों को मनुष्य अपना बन्धु बनावें । इस प्रकार परस्पर उन्नति करके कामनाओं को सिद्ध करें तथा जगत् के हितैषी हों ॥ २५ । ३० ॥

गोतमः । **यज्ञः**=अश्वसुशिक्षणादिः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनः के कैः किं कुर्युरित्याह ॥

फिर कौन किनसे क्या करें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

यद्वाजिनो दाम सन्दानमर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य ।
यद्वा घास्य प्रभृतमास्ये तृणꣳ सर्वा ता ते ऽ अपि देवेष्वस्तु ॥ ३१ ॥

पदार्थः—(यत्) (**वाजिनः**) प्रशस्तवेगवतः (**दाम**) उदरबन्धनम् (**सन्दानम्**) पादादिबन्धनादीनि (**अर्वतः**) बलिष्ठस्याश्वस्य (**या**) (**शीर्षण्या**) शिरसि भवा (**रशना**) व्याप्नुवती (**रज्जुः**) (**अस्य**) (**यत्**) (**वा**) (**घ**) एव (**अस्य**) (**प्रभृतम्**) प्रकर्षेण धृतम् (**आस्ये**) मुखे (**तृणम्**) घासविशेषम् (**सर्वा**) सर्वाणि (**ता**) तानि (**ते**) तव (**अपि**) (**देवेषु**) विद्वत्सु (**अस्तु**) ॥ ३१ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् वाजिनोऽस्यार्वतो यद्दाम सन्दानं या शीर्षण्या रशना रज्जुर्यद्वाऽस्यास्ये तृणं प्रभृतं ता सर्वा ते सन्तु । एतत्सर्वं घ देवेष्वप्यस्तु ॥ ३१ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे विद्वन् ! वाजिनः** प्रशस्तवेगवतः **अस्यार्वतः** बलिष्ठस्याश्वस्य **यद्दाम** उदरबन्धनं, **सन्दानं** पादादिबन्धनादीनि, **या शीर्षण्या** शिरसि भवा **रशना** व्याप्नुवती **रज्जुः**, **यद्वाऽस्यास्ये** मुखे **तृणं** घासविशेषं **प्रभृतं** प्रकर्षेण धृतं,

भाषार्थ—हे विद्वान् ! (वाजिनः) प्रशस्त वेग वाले (अस्य) इस (अर्वतः) बलिष्ठ घोड़े का (यत्) जो (दाम) उदर-बन्धन, (संदानम्) पाँव आदि का बन्धन, (या) जो (शीर्षण्या) शिर की (रशना) व्यापक रस्सी, (यद्वा) और जो (अस्य)

ता तानि **सर्वा** सर्वाणि **ते** तव **सन्तु । एतत्सर्वं घ** एव **देवेषु** विद्वत्सु **अप्यस्तु** ॥ २५ । ३१ ॥

इसके (आस्ये) मुख में (तृणम्) घास (प्रभृतम्) रखी हुई है; (ता) वे (सर्वा) सब (ते) तेरे अधीन हों। यह सब (घ) ही (देवेषु) अन्य विद्वानों के भी अधीन हो ॥ २५ । ३१ ॥

भावार्थः—येऽश्वान् सुशिक्ष्य सर्वावयव-बन्धनानि सुन्दराणि, भक्ष्यं भोज्यं पेयं च श्रेष्ठ-मौषधमुत्तमं च कुर्वन्ति; ते विजयादीनि कार्याणि साद्धुं शक्नुवन्ति ॥ २५ । ३१ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य घोड़ों को सुशिक्षित करके उनके सब अवयवों के सुन्दर बन्धन, श्रेष्ठ खान-पान, और उत्तम औषध करते हैं वे विजय आदि कार्यों को सिद्ध कर सकते हैं ॥ २५ । ३१ ॥

भा० पदार्थः—तृणम्=भक्ष्यं भोज्यं पेयं श्रेष्ठम्, औषधमुत्तमं च ।

भाष्यसार—**कौन किससे क्या करें**—अश्व-शिक्षक विद्वान् प्रशस्त वेग वाले, बलिष्ठ घोड़े के दाम=उदर-बन्धन, संदान=पाँव आदि के बन्धन, शिर की रस्सी और घास आदि से घोड़ों को शिक्षित करें। उनके उक्त सब बन्धन बड़े सुन्दर हों; उनका खान-पान श्रेष्ठ हो। उन्हें उत्तम औषध दें। घोड़ों से विजय आदि कार्यों को सिद्ध करें। यह सब कार्य विद्वानों के अधीन हो ॥ २५ । ३१ ॥ ●

गोतमः । **यज्ञः**=**अश्वस्य मक्षिकानिवारणादिः** । निचृत्त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनः कथं के रक्ष्या इत्याह ॥

फिर कैसे कौन रक्षा करने योग्य हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

यदश्व॑स्य क्र॒विषो॒ मक्षि॒काश॒ यद्वा॒ स्वरौ॒ स्वधि॑तौ रि॒प्तमस्ति॑ ।
यद्धस्त॑योः शमि॒तुर्यन्न॒खेषु॒ सर्वा॒ ता ते॒ ऽ अपि॑ दे॒वेष्व॑स्तु ॥ ३२ ॥

पदार्थः—(यत्) या (**अश्वस्य**) आशुगामिनः (**क्रविषः**) गन्तुः (**मक्षिका**) (**आश**) अश्नाति (**यत्**) यौ (**वा**) (**स्वरौ**) (**स्वधितौ**) वज्रवद्वर्त्तमानौ (**रिप्तम्**) प्राप्तम् (**अस्ति**) (**यत्**) (**हस्तयोः**) (**शमितुः**) यज्ञस्य कर्त्तुः (**यत्**) (**नखेषु**) (**सर्वा**) सर्वाणि (**ता**) तानि (**ते**) तव (**अपि**) (**देवेषु**) विद्वत्सु (**अस्तु**) ॥ ३२ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यद्या मक्षिका क्रविषोऽश्वस्याऽऽश वा यत्स्वरौ स्वधितौ स्तः शमितुर्हस्तयोर्यद्रिप्तं यच्च नखेषु रिप्तमस्ति ता सर्वा ते सन्तु । एतत्सर्वं देवेष्वप्यस्तु ॥ ३२ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यद्**=या **मक्षिका क्रविषः** गन्तुः **अश्वस्य** आशुगामिनः **आश** अश्नाति, **वा यत्** यौ **स्वरौ स्वधितौ** वज्रवद् वर्तमानौ **स्तः**, **शमितुः** यज्ञस्य कर्त्तुः **हस्तयोर्यद्रिप्तं** प्राप्तं, **यद्** या **च नखेषु रिप्तं** प्राप्तम् **अस्ति, ता** तानि **सर्वा** सर्वाणि **ते** तव **सन्तु । एतत्सर्वं देवेषु** विद्वत्सु **अप्यस्तु** ॥ २५ । ३२ ॥

भाषार्थ — हे मनुष्यो ! (यत्) जो (मक्षिका) मक्खी (क्रविषः) चलने वाले (अश्वस्य) शीघ्रगामी घोड़े के अंगों को (आश) खाती है, (वा) और (यत्) जो (स्वरौ) स्वर (स्वधितौ) वज्र के समान हैं; (शमितुः) यज्ञ-कर्त्ता के (हस्तयोः) हाथों में (यत्) जो (रिप्तम्) हवि लगी हुई है, और (यत्) जो (नखेषु) नखों में (रिप्तम्) लगी हुई है, (ता) वे (सर्वा) सब (ते) तुम्हारे अधीन हों। यह सब (देवेषु) विद्वानों के अधिकार में भी हों ॥ २५ । ३२ ॥

भावार्थः—मनुष्यैरीदृशायां शालायामश्वा बन्धनीया, यत्रैषां रुधिरादिकं मक्षिकादयो न पिबेयुः, यथा—यज्ञकर्त्तुर्हस्तयोर्लिप्तं हविः प्रक्षालनादिना निवारयन्ति, तथैवाश्वादीनां शरीरे लिप्तानि धूल्यादीनि नित्यं निवारयन्तु ॥ २५ । ३२ ॥

भावार्थ—मनुष्य ऐसी शाला में घोड़ों को बाँधें जहाँ इनके रुधिर आदि को मक्खी आदि न पीवें। जैसे—यज्ञ-कर्त्ता मनुष्य के हाथों में लगी हवि को प्रक्षालन (धोना) आदि से दूर करते हैं; वैसे घोड़ों आदि के शरीर में लगी धूलि आदि का नित्य निवारण करें ॥ २५ । ३२ ॥

भाष्यसार—**कैसे किनकी रक्षा करें**—गतिशील एवं शीघ्रगामी घोड़ों की मक्खियों से रक्षा करें अर्थात् घोड़ों को ऐसी शाला में बाँधे कि जहाँ इनके रुधिर आदि को मक्खियाँ न पीवें। वज्र के समान कठोर से भी घोड़ों की रक्षा करें। जैसे यज्ञकर्त्ता के हाथों में हवि लग जाती है और वह उसे प्रक्षालन (धोना) आदि से दूर करता है वैसे घोड़े आदि पशुओं के शरीर में लगी हुई धूलि आदि को सदा दूर करें। यह सब कार्य विद्वानों के अधीन हो ॥ २५ । ३२ ॥

गोतमः । **यज्ञः**=**अग्निहोत्रम्** । निचृत्त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनः के किमर्थं किं न कुर्युरित्याह ॥

फिर कौन किसलिए क्या न करें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

यदूव॑ध्यमु॒दर॑स्यापु॒वाति॒ य ऽ आ॒मस्य॑ क्र॒विषो॑ ग॒न्धो ऽ अस्ति॑ ।
सु॒कृ॒ता तच्छ॑मि॒तार॑: कृण्वन्तू॒त मेधं॑ शृत॒पाकं॑ पचन्तु ॥ ३३ ॥

पदार्थः—(**यत्**) (**ऊवध्यम्**) मलीनम् (**उदरस्य**) उदरस्य सकाशात् (**अपवाति**) अपगच्छति (**यः**) (**आमस्य**) अपरिपक्वस्य (**क्रविषः**) भक्षितस्य (**गन्धः**) (**अस्ति**) (**सुकृता**) सुकृतं=सुष्ठुसंस्कृतम्। अत्राकारादेशः (**तत्**) (**शमितारः**) शान्तिकराः (**कृण्वन्तु**) कुर्वन्तु (**उत**) अपि (**मेधम्**) पवित्रम् (**शृतपाकम्**) शृतः=पक्वः पाको यस्य तत् (**पचन्तु**) ॥ ३३ ॥

प्रमाणार्थ—(**सुकृता**) यहाँ 'सुपां सुलुक्०' (७ । १ । ३६) से विभक्ति को आकार आदेश है ॥

अन्वयः—हे मनुष्या उदरस्य यदूवध्यमपवाति य आमस्य क्रविषो गन्धोऽस्ति तच्छमितारः सुकृता कृण्वन्तूतापि मेधं शृतपाकं पचन्तु ॥ ३३ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! उदरस्य** उदरस्य सकाशाद् **यदूवध्यं** मलीनम् **अपवाति** अपगच्छति, **य आमस्य** अपरिपक्वस्य **क्रविषः** भक्षितस्य **गन्धोऽस्ति**, **तच्छमितारः** शान्तिकराः **सुकृता** सुकृतं=सुष्ठु संस्कृतं **कृण्वन्तु**, कुर्वन्तु; **उत**= **अपि मेधं** पवित्रं **शृतपाकं** शृतः=पक्वः पाको यस्य तत् **पचन्तु** ॥ २५ । ३३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! (उदरस्य) उदर= पेट से (यत्) जो (ऊवध्यम्) मल (अपवाति) निकलता है; और (यः) जो (आमस्य) अपरिपक्व= कच्चे रहे (क्रविषः) भक्षित पदार्थ का (गन्धः) गन्ध है (तत्) उसे (शमितारः) शान्तिकर यजमान (सुकृता) सुगन्धित (कृण्वन्तु) करें; (उत) और (मेधम्) पवित्र (शृतपाकम्) उत्तम पाक (पचन्तु) बनावें ॥ २५ । ३३ ॥

भावार्थः—ये जना यज्ञं कर्तुमिच्छेयुस्ते दुर्गन्धयुक्तं द्रव्यं विहाय, सुगन्धादियुक्तं सुसंस्कृतं

भावार्थ—जो मनुष्य यज्ञ करना चाहें वे दुर्गन्ध युक्त द्रव्य को छोड़कर, सुगन्ध आदि से युक्त,

पाकं कृत्वाऽग्नौ जुहुयुः, ते जगद्धितैषिणो भवन्ति ॥ २५ । ३३ ॥

शुद्ध पाक बनाकर अग्नि में होम करें। जो ऐसा करते हैं वे जगत् के हितैषी होते हैं ॥ २५ । ३३ ॥

भा० पदार्थः—ऊवध्यम्=दुर्गन्धयुक्तं द्रव्यम् । शमितारः=यज्ञकर्त्तारः । सुकृता=सुगन्धादियुक्तम् । शृतपाकम्=सुसंस्कृतं पाकम् । पचन्तु=अग्नौ जुहुयुः ।

भाष्यसार—कौन किसलिए क्या न करें—जो मनुष्य यज्ञ करना चाहते हैं वे यज्ञ के लिए दुर्गन्धयुक्त द्रव्य को ग्रहण न करें, उसका परित्याग करें। जो उदर से मल निकलता है उसे दूर हटावें। अपरिपक्व=कच्चे भक्षित पदार्थ की जो गन्ध है उसे दूर करें। सुगन्ध आदि से युक्त शुद्ध पाक बना कर अग्नि में होम करें। पवित्र पाक बनावें। इस प्रकार यज्ञानुष्ठान से जगत् के हितैषी बनें ॥२५।३३॥

गोतमः । **यज्ञः=औषधेन रोगनिवारणम्** । भुरिक्त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनर्मनुष्यैः केन किं निस्सारणीयमित्याह ॥

फिर मनुष्य को किस से क्या निकालना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

यत्ते गात्रा॑द॒ग्निना॑ प॒च्यमा॑नाद॒भि शूलं॒ निह॑तस्याव॒धाव॑ति ।
मा तद्भूम्या॒माश्रि॑ष॒न्मा तृणे॑षु दे॒वेभ्य॒स्तदु॒शद्भ्यो॑ रा॒तम॑स्तु ॥ ३४ ॥

पदार्थः—(**यत्**) यदा (**ते**) तव (**गात्रात्**) अङ्गात् (**अग्निना**) अन्तःकरणरूपेण तेजसा (**पच्यमानात्**) (**अभि**) (**शूलम्**) शु=शीघ्रं लाति=बोधं गृह्णाति येन तद्वचः । **पृषोदरादित्वात्सिद्धम्** (**निहतस्य**) निश्चयेन कृतश्रमस्य (**अवधावति**) गच्छति (**मा**) (**तत्**) (**भूम्याम्**) (**आ, श्रिषत्**) आश्रयति (**मा**) (**तृणेषु**) (**देवेभ्यः**) विद्वद्भ्यः (**तत्**) (**उशद्भ्यः**) सत्पुरुषेभ्यः (**रातम्**) दत्तम् (**अस्तु**) ॥ ३४ ॥

प्रमाणार्थ—(शूलम्) यह पद 'पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्' (६ । ३ । १०६) से सिद्ध है ॥

अन्वयः—हे मनुष्य निहतस्य ते तवाग्निना पच्यमानाद्गात्राद्यच्छूलमभ्यवधावति तद्भूम्यां माश्रिषत् । तत्तृणेषु माश्रिषत् किन्तु तच्चोशद्भ्यो देवेभ्यो रातमस्तु ॥ ३४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्य** ! **निहतस्य** निश्चयेन कृतश्रमस्य **ते=तवाग्निना** अन्तःकरणरूपेण तेजसा **पच्यमानाद् गात्राद्** अङ्गात् **यद्** यदा **शूलं** शु=शीघ्रं लाति=बोधं गृह्णाति येन तद्वचः **अभ्यवधावति** गच्छति, **तद् भूम्यां मा आ+श्रिषत्** आश्रयति, **तत् तृणेषु मा श्रिषद्** आश्रयति, **किन्तु—तच्चोशद्भ्यः** सत्पुरुषेभ्यः **देवेभ्यः** विद्वद्भ्यः **रातं** दत्तम् **अस्तु** ॥ २५ । ३४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्य ! (निहतस्य) निश्चय से श्रम किए हुए अर्थात् श्रान्त (ते) तेरे (अग्निना) अन्तःकरण रूप तेज से (पच्यमानात्) पकाये जाते हुए (गात्रात्) अङ्ग से (यत्) जब (शूलम्) शीघ्र बोध कराने वाला वचन (अभ्यवधावति) निकलता है; (तत्) वह (भूम्याम्) भूमि में (मा, आश्रिषत्) वृथा न रहे, (तत्) वह (तृणेषु) तृणों में (मा, श्रिषत्) वृथा न रहे; किन्तु (तत्) वह (उशद्भ्यः) सत्पुरुषों एवं (देवेभ्यः) विद्वानों के लिए (रातम्) दान (अस्तु) हो ॥ २५ । ३४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्याः ! यानि ज्वरादि-पीडितान्यङ्गानि भवेयुः तानि वैद्येभ्यो नीरोगाणि कार्याणि, तैर्यदौषधं दीयते तद् रोगिभ्यो हितकरं भवति ॥ २५ । ३४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो ज्वर आदि से पीडित अंग हों उन्हें वैद्यों से नीरोग करावें, वे जो औषध देते हैं वह रोगियों के लिए हितकर होती है ॥ २५ । ३४ ॥

भा० पदार्थः—अग्निना=ज्वरादिना । पच्यमानात्=पीडचमानात् । उशद्भ्यः=वैद्येभ्यः ।

भाष्यसार—मनुष्य किससे क्या निकालें—श्रम करने वाले मनुष्य का शरीर अन्तः-करण की अग्नि से पकने लगता है अर्थात् ज्वर आदि से पीडित हो जाता है। वह रोगी शूल=पीड़ा का बोध कराने वाले वचन बोलता है। वे वचन भूमि वा तृणों में ही न रहें अर्थात् व्यर्थ न हों; अपितु सत्पुरुष, विद्वान्, वैद्य लोग उन्हें स्वीकार करें तथा उन्हें नीरोग करें। उन्हें हितकर औषध प्रदान करें। रोगी के शरीर से रोग को निकालें ॥ २५। ३४॥

गोतमः । **विश्वेदेवाः=राजादयः श्रेष्ठजनाः** । स्वराट्त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनः के निरोद्धव्या इत्याह ॥

फिर कौन रोकने योग्य हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ऽ ईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति ।
ये चार्वतो मांꣳसभिक्षामुपासत ऽ उतो तेषामभिगूर्त्तिर्न ऽ इन्वतु ॥ ३५ ॥

पदार्थः—(ये) (**वाजिनम्**) वेगवन्तमश्वम् (**परिपश्यन्ति**) सर्वतोऽन्वीक्षन्ते (**पक्वम्**) परिपक्व-स्वभावम् (**ये**) (**ईम्**) प्राप्तम् (**आहुः**) (**सुरभिः**) सुगन्धः (**निः**) नितराम् (**हर**) निस्सारय (**इति**) (**ये**) (**च**) (**अर्वतः**) अश्वस्य (**मांसभिक्षाम्**) मांसयाचनाम् (**उपासते**) (**उतो**) अपि (**तेषाम्**) (**अभिगूर्त्तिः**) अभ्युद्यमः (**नः**) अस्मान् (**इन्वतु**) प्राप्नोतु ॥ ३५ ॥

अन्वयः—येऽर्वतो मांसभिक्षामुपासते च येऽश्वमीं हन्तव्यमाहुस्तान्निर्हर दूरे प्रक्षिप । ये वाजिनं पक्वं परिपश्यन्ति उतो अपि तेषां सुरभिरभिगूर्त्तिर्न इन्वत्विति ॥ ३५ ॥

सपदार्थान्वयः—**ये ऽर्वतः** अश्वस्य **मांसभिक्षां** मांसयाचनाम् **उपासते, च येऽश्वमीं** प्राप्तं **हन्तव्यमाहुः; तान्निर्हर=दूरे प्रक्षिप** नितरां निस्सारय । **ये वाजिनं** वेगवन्तमश्वं **पक्वं** परिपक्व-स्वभावं **परिपश्यन्ति** सर्वतोऽन्वीक्षन्ते, **उतो=अपि तेषां सुरभिः** सुगन्धः **अभिगूर्तिः** अभ्युद्यमः **नः** अस्मान् **इन्वतु** प्राप्नोतु **इति** ॥ २५। ३५ ॥

भाषार्थ—(ये) जो (अर्वतः) घोड़े (मांस-भिक्षाम्) मांस की याचना (उपासते) करते हैं; (च) और (ये) जो (ईम्) प्राप्त हुए घोड़े को मारने योग्य (आहुः) कहते हैं; उन्हें (निर्हर) दूर फैंक; सर्वथा निकाल दे। और—(ये) जो (वाजिनम्) वेगवान् घोड़े के (पक्वम्) परिपक्व स्वभाव की (परिपश्यन्ति) परीक्षा करते हैं; (उतो) और (तेषाम्) (सुरभिः) सुगन्ध एवं (अभिगूर्तिः) पुरुषार्थ (नः) हमें (इन्वतु) प्राप्त होवे (इति) ऐसी कामना है ॥ २५। ३५ ॥

भावार्थः—येऽश्वादिश्रेष्ठानां पशूनां मांस-मत्तुमिच्छेयुस्ते राजादिभिः श्रेष्ठैर्निरोद्धव्याः । यतो मनुष्याणामुद्यमसिद्धिः स्यात् ॥ २५। ३५ ॥

भावार्थ—जो लोग घोड़े आदि श्रेष्ठ पशुओं के मांस को खाना चाहें उन्हें राजा आदि श्रेष्ठ पुरुष रोकें। जिससे मनुष्यों के उद्यम की सिद्धि हो ॥ २५। ३५ ॥

भा० पदार्थः—अभिगूर्तिः=उद्यमसिद्धिः । मांसभिक्षाम्=मांसमत्तुमिच्छाम् ।

भाष्यसार—कौन रोकने योग्य हैं—जो लोग घोड़े के मांस की याचना करते हैं; जो प्राप्त हुए घोड़े को मारने के लिए कहते हैं; उन्हें राजा आदि श्रेष्ठ लोग ऐसा करने से रोकें। जो घोड़ों के परीक्षक उनके परिपक्व स्वभाव की परीक्षा करते हैं उनकी यश-सुगन्ध और उद्यम हमें प्राप्त हो; अर्थात् हम भी उनके संग से घोड़ों के स्वभाव की परीक्षा करें तथा अपने उद्यम को सिद्ध करें ॥ २५ । ३५ ॥ ●

गोतमः । **यज्ञः=मांसाहारिभ्यो यथाऽपराधं दण्डः** । भुरिक्पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनः केन किं निरीक्षणीयमित्याह ॥

फिर किस को क्या देखना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

यन्नीक्षणं मांस्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण ऽ आसेचनानि ।
ऊष्मण्यापिधाना चरूणामङ्काः सूनाः परि भूषन्त्यश्वम् ॥ ३६ ॥

पदार्थः—(**यत्**) (**नीक्षणम्**) निकृष्टं तदीक्षणं=दर्शनं च तत् (**मांस्पचन्याः**) मांसं पचन्ति यस्यां तस्याः (**उखायाः**) स्थाल्याः (**या**) यानि (**पात्राणि**) (**यूष्णः**) वर्द्धकस्य (**आसेचनानि**) समन्तात् सिंचन्ति यैस्तानि (**ऊष्मण्या**) ऊष्मसु साधूनि (**अपिधाना**) आच्छादनानि (**चरूणाम्**) पात्राणाम् (**अङ्काः**) लक्षिताः (**सूनाः**) प्रसूताः (**परि**) सर्वतः (**भूषन्ति**) अलङ्कुर्वन्ति (**अश्वम्**) ॥ ३६ ॥

अन्वयः—या ऊष्मण्याऽपिधानाऽऽसेचनानि पात्राणि यन्मांस्पचन्या उखाया नीक्षणं चरूणामङ्काः सूना यूष्णोऽश्वं परिभूषन्ति तानि स्वीकर्त्तव्यानि ॥ ३६ ॥

सपदार्थान्वयः—या यानि **ऊष्मण्या** ऊष्मसु साधूनि **अपिधाना** आच्छादनानि, **आसेचनानि** समन्तात् सिञ्चन्ति यैस्तानि **पात्राणि, यत्—मांस्पचन्या** मांसं पचन्ति यस्यां तस्याः **उखायाः** स्थाल्याः **नीक्षणं** निकृष्टं तदीक्षणं=दर्शनं च तत्, **चरूणां** पात्राणाम् **अङ्काः** लक्षिताः **सूनाः** प्रसूताः, **यूष्णः** वर्द्धकस्य **अश्वं परिभूषन्ति** सर्वतोऽलङ्कुर्वन्ति; **तानि स्वीकर्त्तव्यानि** ॥ २५ । ३६ ॥

भाषार्थ—(या) जो (ऊष्मण्या) उष्णता में उपयुक्त (अपिधाना) ढक्कन, (आसेचनानि) सब ओर जल आदि सींचने के (पात्राणि) पात्र, (यत्) जो (मांस्पचन्याः) मांस पकाने की (उखायाः) स्थाली=पतीली को (नीक्षणम्) घृणा से देखना, (चरूणाम्) पात्रों के (अङ्काः) विशेष चिह्न, (सूनाः) प्रसिद्ध हैं और जो (यूष्णः) शुभ कर्म को बढ़ाने वाले पुरुष के (अश्वम्) घोड़े को (परिभूषन्ति) अलंकृत करते हैं; उन्हें स्वीकार करें ॥३६॥

भावार्थः—यदि केचिदश्वादीनामुपकारिणां पशूनां, शुभानां पक्षिणां मांसाहारं कुर्युस्तर्हि तेभ्यो दण्डो यथाऽपराधं दातव्य एव ॥ २५ । ३६ ॥

भावार्थ—यदि कोई घोड़े आदि उपकारी पशुओं एवं अच्छे पक्षियों का मांसाहार करते हैं तो उन्हें दण्ड यथापराध देवें ही ॥ २५ । ३६ ॥

भाष्यसार—कौन किसका निरीक्षण करें—विद्वान् लोग उष्णता में उपयोगी आच्छादन=ढक्कन, सब ओर जल आदि सींचने के पात्रों का निरीक्षण करें। जिसमें मांस पकाने की स्थाली=पतीली को घृणा की दृष्टि से देखें। पात्रों के प्रसिद्ध चिह्नों का भी निरीक्षण करें। यदि कोई उक्त घोड़े आदि पशुओं और सुन्दर पक्षियों का मांसाहार करें तो उन्हें अपराध के अनुसार दण्ड अवश्य दें ॥ २५।३६ ॥ ●

गोतमः । **विद्वांसः=स्पष्टम्** । स्वराट्पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनर्मनुष्यैर्मांसभक्षणं न कर्त्तव्यमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को मांस नहीं खाना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

मा त्वाग्निर्ध्वनयीद् धूमगन्धिर्मोखा भ्राजन्त्यभि विक्त जघ्रिः ।
इष्टं वीतमभिगूर्त्तं वषट्कृतं तं देवासः प्रति गृभ्णन्त्यश्वम् ॥ ३७ ॥

पदार्थः—(मा) (त्वा) तम् (अग्निः) पावकः (ध्वनयीत्) शब्दयेत् (धूमगन्धिः) धूमे गन्धो यस्य सः (मा) (उखा) स्थाली (भ्राजन्ती) प्रकाशमाना (अभि) सर्वतः (विक्त) विजानीत (जघ्रिः) जिघ्रति यस्याः सा (इष्टम्) अभीप्सितम् (वीतम्) प्राप्तम् (अभिगूर्तम्) अभितः कृतोद्यमम् (वषट्कृतम्) क्रियासिद्धम् (तम्) (देवासः) विद्वांसः (प्रति) (गृभ्णन्ति) गृह्णन्ति (अश्वम्) वेगवन्तम् ॥ ३७ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा देवासो यमिष्टं वीतमभिगूर्तं वषट्कृतमश्वं प्रतिगृभ्णन्ति तं यूयमभि विक्त त्वा तं धूमगन्धिरग्निर्मा ध्वनयीत्तं जघ्रिर्भ्राजन्त्युखा मा ध्वनयीत् ॥ ३७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **यथा देवासः** विद्वांसः **यमिष्टम्** अभीप्सितं, **वीतं** प्राप्तम्, **अभिगूर्तम्** अभितः कृतोद्यमं, **वषट्कृतं** क्रियासिद्धम्, **अश्वं** वेगवन्तं **प्रतिगृभ्णन्ति** गृह्णन्ति; **तं यूयमभिविक्त** सर्वतो विजानीत । **त्वा=तं धूमगन्धिः** धूमे गन्धो यस्य सः, **अग्निः** पावकः **मा ध्वनयीत्** शब्दयेत्, **तं जघ्रिः** जिघ्रति यस्याः सा **भ्राजन्ती** प्रकाशमाना **उखा** स्थाली **मा ध्वनयीत्** शब्दयेत् ॥ २५ । ३७ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (देवासः) विद्वान् लोग जिस (इष्टम्) प्रिय, (वीतम्) प्राप्त, (अभिगूर्तम्) उद्यमी, (वषट्कृतम्) क्रिया से सिद्ध=सीधा किए हुए (अश्वम्) वेगवान् घोड़े को (प्रतिगृभ्णन्ति) ग्रहण करते हैं, उसे तुम (अभिविक्त) सब ओर से जानो । (त्वा) उस घोड़े को गन्ध से युक्त धूम वाली (अग्निः) अग्नि (मा, ध्वनयीत्) शब्द युक्त न करे । (तम्) उसे (जघ्रिः) गन्ध वाली (भ्राजन्ती) प्रकाशमान (उखा) स्थाली=पतीली (मा, ध्वनयीत्) शब्द युक्त न करे ॥ २५ । ३७ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या ! यथा विद्वांसो मांसाहारिणो निवार्याऽश्वादीनां वृद्धिं रक्षां च कुर्वन्ति तथा यूयमपि कुरुत । अग्न्यादिविघ्नेभ्यः पृथग् रक्षत ॥ २५ । ३७ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् मांसाहारी लोगों का निवारण करके घोड़े आदि पशुओं की वृद्धि और रक्षा करते हैं; वैसे तुम भी करो । और उन्हें अग्नि आदि विघ्नों से पृथक् रखो ॥ २५ । ३७ ॥

भाष्यसार—मनुष्य मांस-भक्षण न करें—विद्वान् लोग—प्रिय, समीप प्राप्त, उद्यम करने वाले, क्रिया विशेष से सधाए हुए, वेगवान् घोड़े को ग्रहण करें । उसे अग्नि के धूम की गन्ध से तथा स्थाली=पतीली आदि की गन्ध से बचावें । अग्नि आदि विघ्नों से उसे पृथक् रखें । जैसे विद्वान् लोग मांसाहारियों को हटाकर घोड़े आदि पशुओं की वृद्धि और रक्षा करते हैं वैसे सब मनुष्य करें ॥ २५ । ३७ ॥

गोतमः । **यज्ञः=अश्वानां सुशिक्षणादिः** । विराट्पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

अश्व आदि पशुओं के सुशिक्षण का फिर उपदेश किया है ॥

निक्रमणं निषदनं विवर्तनं यच्च पड्वीशमर्वतः ।
यच्च पपौ यच्च घासिं जघास सर्वा ता ते ऽ अपि देवेष्वस्तु ॥ ३८ ॥

पदार्थः—(**निक्रमणम्**) निरन्तरं क्रमते यस्मिँस्तत् (**निषदनम्**) नितरां सीदन्ति यस्मिँस्तत् (**विवर्त्तनम्**) विशेषेण वर्त्तन्ते यस्मिँस्तत् (**यत्**) (**च**) (**पड्वीशम्**) यत्पादेषु विशति तत् (**अर्वतः**) अश्वस्य (**यत्**) (**च**) (**पपौ**) पिबति (**यत्**) (**च**) (**घासिम्**) अदनम् (**जघास**) अत्ति (**सर्वा**) सर्वाणि (**ता**) तानि (**ते**) तव (**अपि**) (**देवेषु**) दिव्येषु गुणेषु (**अस्तु**) ।। ३८ ।।

अन्वयः—हे विद्वन् यत्तेऽर्वतो निक्रमणं निषदनं विवर्त्तनं यच्च पड्वीशं यच्चायं पपौ यच्च घासि जघास ताः सर्वा युक्त्या सन्तु तद्देवेष्वप्यस्तु ।। ३८ ।।

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! **यत्ते** तव **अर्वतः** अश्वस्य **निक्रमणं** निरन्तरं क्रमते यस्मिँस्तत्, **निषदनं** नितरां सीदन्ति यस्मिँस्तत्, **विवर्त्तनं** विशेषेण वर्त्तन्ते यस्मिँस्तत्, **यच्च पड्वीशं** यत्पादेषु विशति तत्, **यच्चायं पपौ** पिबति; **यच्च घासिम्** अदनं **जघास** अत्ति, **ता** तानि **सर्वा** सर्वाणि **युक्त्या सन्तु; तद् देवेषु** दिव्येषु गुणेषु **अप्यस्तु** ।।३८।।

भाषार्थ—हे विद्वान् ! (यत्) जो (ते) तेरे (अर्वतः) घोड़े का (निक्रमणम्) निरन्तर गति करने का स्थान, (निषदनम्) बैठने का स्थान, (विवर्त्तनम्) विशेष वर्त्ताव का स्थान है, (यच्च) और जो (पड्वीशम्) पांव में प्रविष्ट होने वाली पछाड़ी है (यच्च) और जो यह (पपौ) पीता है, (यच्च) और जो (घासिम्) घास आदि खाना (जघास) खाता है, (ता) वे (सर्वा) सब कार्य युक्ति से हों। वही व्यवहार (देवेषु) दिव्य गुणों की प्राप्ति में (अपि) भी (अस्तु) हो ।। २५।३८ ।।

भावार्थः—हे मनुष्याः ! भवन्तोऽश्वादीनां सुशिक्षणेन, भक्ष्यपेयदानेन सर्वाणि कार्याणि साध्नुवन्तु ।। २५ । ३८ ।।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप घोड़े आदि पशुओं के सुशिक्षण एवं भक्ष्य तथा पेय पदार्थों के दान से सब कार्यों को सिद्ध करो ।। २५ । ३८ ।।

भाष्यसार—अश्व आदि का सुशिक्षण—विद्वान् लोग घोड़े आदि पशुओं को सुशिक्षित करें। उनके निरन्तर गति करने के स्थान, बैठने के स्थान, विशेष वर्त्ताव के स्थान, उनके पांव में लगने वाली पछाड़ी और उनके खान-पान आदि को युक्तिपूर्वक बनावें। उनसे सब कार्यों को सिद्ध करें ।। २५ । ३८ ।। ●

गोतमः । **विद्वांसः**=स्पष्टम् । विराट्पङ्क्तिः । पञ्चमः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

अश्व आदि पशुओं की रक्षा का फिर उपदेश किया है ।।

यदश्वा॑य॒ वास॑ ऽ उपस्तृ॒णन्त्य॑धीवा॒सं या हिर॑ण्यान्यस्मै ।
स॒न्दान॒मर्व॑न्तं॒ पड्वी॑शं प्रि॒या दे॒वेष्वा याम॑यन्ति ॥ ३९ ॥

पदार्थः—(**यत्**) (**अश्वाय**) (**वासः**) वस्त्रम् (**उपस्तृणन्ति**) आच्छादयन्ति (**अधीवासम्**) उपरि स्थापनीयम् (**या**) यानि (**हिरण्यानि**) हिरण्यैर्निर्मितानि आभूषणादीनि (**अस्मै**) (**सन्दानम्**) शिरोबन्धनादि (**अर्वन्तम्**) गच्छन्तम् (**पड्वीशम्**) पद्भिर्विशन्तम् (**प्रिया**) प्रियाणि (**देवेषु**) विद्वत्सु (**आ**) समन्तात् (**यामयन्ति**) नियमयन्ति ।। ३९ ।।

अन्वयः—हे मनुष्या भवन्तोऽस्मा अश्वाय यद्वासोऽधीवासं सन्दानं या हिरण्यान्युपस्तृणन्ति यं पड्वीशमर्वन्तमायामयन्ति तानि सर्वाणि देवेषु प्रिया सन्तु ।। ३९ ।।

सपदार्थान्वयः — हे मनुष्याः ! **भवन्तोऽस्मा अश्वाय यद् वासः** वस्त्रम्, **अधीवासम्** उपरि स्थापनीयं, **सन्दानं** शिरोबन्धनादि, **या** यानि **हिरण्यानि** हिरण्यैर्निर्मितानि आभूषणादीनि **उपस्तृणन्ति** आच्छादयन्ति; **यं पड्वीशं** पद्भिर्विशन्तम् **अर्वन्तं** गच्छन्तम् **आ+यामयन्ति** समन्तान्नियमयन्ति, **तानि सर्वाणि देवेषु** विद्वत्सु **प्रिया** प्रियाणि **सन्तु** ॥ २५ । ३९ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! आप—(अस्मै) इस (अश्वाय) घोड़े के लिए (यत्) जो (वासः) वस्त्र, (अधीवासम्) ऊपर का वस्त्र, (सन्दानम्) शिरोबन्धन आदि है, तथा उसे (या) जिन (हिरण्यानि) सुवर्ण के आभूषणों से (उपस्तृणन्ति) आच्छादित करते हैं; जिस (पड्वीशम्) पाँव से प्रविष्ट होने वाले (अर्वन्तम्) गतिशील घोड़े को (आ+यामयन्ति) सब ओर से नियन्त्रित करते हैं; वे सब कार्य (देवेषु) विद्वानों में (प्रिया) प्रिय हों ॥ २५ । ३९ ॥

भावार्थः—यदि मनुष्या अश्वादीन् पशून् यथावद् रक्षयित्वोपकारं गृह्णीयुस्तर्हि बहुकार्यसिद्धचुपकृताः स्युः ॥ २५ । ३९ ॥

भावार्थ—यदि मनुष्य घोड़े आदि पशुओं की यथावत् रक्षा करके उपकार ग्रहण करें तो बहुत कार्यों की सिद्धि से उपकारयुक्त हों ॥२५।३९॥

भाष्यसार—**अश्व आदि की रक्षा**—सब मनुष्य घोड़े आदि पशुओं को वस्त्र, ऊपर का वस्त्र, शिरोबन्धन और सुवर्ण आदि से बने आभूषणों से आच्छादित करें । अर्थात् उनकी यथावत् रक्षा करें । उन्हें सब ओर से नियन्त्रित करें । यह सब कार्य विद्वानों में प्रिय हों । घोड़े आदि पशुओं से उपकार ग्रहण करें तथा नाना कार्यों को सिद्ध करें ॥ २५ । ३९ ॥ ●

गोतमः । **यज्ञः**=**अश्वादीनां सुशिक्षणम्** । भुरिक्त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

अश्व आदि पशुओं की रक्षा का फिर उपदेश किया है ॥

यत्ते सादे महसा शूकृतस्य पार्ष्ण्या वा कशया वा तुतोद ।
स्रुचेव ता हविषो ऽ अध्वरेषु सर्वा ता ते ब्रह्मणा सूदयामि ॥ ४० ॥

पदार्थः—(**यत्**) यतः (**ते**) तव (**सादे**) स्थित्यधिकरणे (**महसा**) महत्त्वेन (**शूकृतस्य**) शीघ्रं शिक्षितस्य । शिवति क्षिप्रना० । निघं० २ । १५ ॥ (**पार्ष्ण्या**) पार्ष्णिषु=कक्षासु साधूनि (**वा**) (**कशया**) ताडनसाधनेन (**वा**) (**तुतोद**) तुद्यात् (**स्रुचेव**) यथा स्रुचा प्रेरयन्ति तथा (**ता**) तानि (**हविषः**) होतुमर्हस्य (**अध्वरेषु**) अहिंसनीयेषु यज्ञेषु (**सर्वा**) सर्वाणि (**ता**) तानि (**ते**) तुभ्यम् (**ब्रह्मणा**) धनेन (**सूदयामि**) प्रापयामि ॥ ४० ॥

प्रमाणार्थ—(**शूकृतस्य**) शीघ्रं शिक्षितस्य । 'शू' यह पद निघं० (२ । १५) में क्षिप्र-नामों में पठित है । क्षिप्र=शीघ्र (जल्दी) ॥

अन्वयः—हे विद्वँस्ते सादे महसा शूकृतस्य कशया वा यत्पार्ष्ण्या वा तुतोद ता तान्यध्वरेषु हविषः स्रुचेव करोषि ता सर्वा ते ब्रह्मणाऽहं सूदयामि ॥ ४० ॥

सपदार्थान्वयः—हे **विद्वन्** ! **ते** तव **सादे** स्थित्यधिकरणे **महसा** महत्त्वेन **शूकृतस्य** शीघ्रं शिक्षितस्य, **कशया** ताडनसाधनेन **वा यत्**

भाषार्थ—हे विद्वान् ! (ते) तेरे (सादे) घर में (महसा) महत्ता से (शूकृतस्य) शीघ्र शिक्षित घोड़े को (कशया) कशा=चाबुक (वा)

यतः **पार्ष्ण्या** पार्ष्णिषु=कक्षासु साधूनि **वा तुतोद** तुद्यात्; **ता**=**तान्यध्वरेषु** अहिंसनीयेषु यज्ञेषु **हविषः** होतुमर्हस्य **स्रुचेव** यथा स्रुचा प्रेरयन्ति तथा **करोषि, ता** तानि **सर्वा** सर्वाणि **ते** तुभ्यं **ब्रह्मणा** धनेन **अहं सूदयामि** प्रापयामि ।। २५ । ४० ।।

अथवा (यत्) जो (पार्ष्ण्या) कक्षा=पार्श्व भागों में उपयुक्त वस्तु है उससे (तुतोद) पीडित करता है, (ता) उन्हें (अध्वरेषु) हिंसारहित यज्ञों में (हविषः) होम के योग्य पदार्थों को (स्रुचेव) जैसे स्रुवा से चलाते हैं वैसे बनाता है; (ता) उन (सर्वा) सब वस्तुओं को (ते) तेरे लिए (ब्रह्मणा) धन से मैं (सूदयामि) प्राप्त कराता हूँ ।।२५।४०।।

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः। यथा यज्ञसाधनैर्हवींष्यग्नौ प्रेरयन्ति, तथैवाश्वादीनि सुशिक्षारीत्या प्रेरयेयुः ।। २५ । ४० ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलंकार है। जैसे यज्ञ के साधन स्रुवा आदि से हवियों को अग्नि में डालते हैं वैसे ही घोड़े आदि पशुओं को सुशिक्षा की रीति से चलावें ।। २५ । ४० ।।

भाष्यसार—**अश्व आदि का सुशिक्षण**—जैसे स्रुवा आदि यज्ञ-साधनों से हवियों को अग्नि में प्रेरित करते हैं; अग्नि में होम करते हैं वैसे विद्वान् लोग अपने घर में अपनी विद्या आदि की महिमा से शीघ्र शिक्षित घोड़े को कशा=चाबुक आदि से ताड़न करें, अर्थात् उसे सुशिक्षित करें। मनुष्य इन घोड़े आदि सब वस्तुओं को धन से विद्वान् के लिए उपलब्ध करावें ।। २५ । ४० ।।

गोतमः । **यज्ञः**=**अश्वादीनां रक्षणम्** । त्रिष्टुप् । धैवतः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

अश्व आदि की रक्षा का फिर उपदेश किया है ।।

चतु॑स्त्रिꣳशद्वा॒जिनो॑ दे॒वब॑न्धो॒र्वङ्क्री॒रश्व॑स्य॒ स्वधि॑तिः॒ समे॑ति ।
अच्छि॑द्रा॒ गात्रा॑ व॒युना॑ कृणोत॒ परु॑ष्परुरनु॒घुष्या॒ वि श॑स्त ।। ४१ ।।

पदार्थः—(**चतुस्त्रिशत्**) शिक्षणानि (**वाजिनः**) वेगवतः (**देवबन्धोः**) देवा=विद्वांसो बन्धुवद्यस्य तस्य (**वङ्क्रीः**) कुटिला गतीः (**अश्वस्य**) (**स्वधितिः**) वज्र इव वर्त्तमानः (**सम्**) सम्यक् (**एति**) गच्छति (**अच्छिद्रा**) छिद्ररहितानि (**गात्रा**) गात्राणि (**वयुना**) वयुनानि=प्रज्ञानानि (**कृणोतु**) (**परुष्परुः**) मर्ममर्म (**अनुघुष्य**) आनुकूल्येन घोषयित्वा । **अत्र संहितायामिति दीर्घः** (**वि**) विशेषेण (**शस्त**) छिन्त ।। ४१ ।।

अन्वयः—हे मनुष्या यथाऽश्वशिक्षको देवबन्धोर्वाजिनोऽश्वस्य चतुस्त्रिशद्वङ्क्रीः समेत्यच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोतु तस्य परुष्परुरनुघुष्य स्वधितिरिव रोगान् यूयं वि शस्त ।। ४१ ।।

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः! यथाऽश्वशिक्षको देवबन्धोः** देवाः=विद्वांसो बन्धुवद्यस्य तस्य **वाजिनः** वेगवतः **अश्वस्य चतुस्त्रिशद्** शिक्षणानि **वङ्क्रीः** कुटिला गतीः **समेति** सम्यग्गच्छति; **अच्छिद्रा** छिद्ररहितानि **गात्रा** गात्राणि **वयुना** वयुनानि=प्रज्ञानानि **कृणोतु, तस्य परुष्परुः** मर्ममर्म **अनुघुष्य** आनुकूल्येन घोषयित्वा **स्वधितिः** वज्र

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जैसे अश्व—शिक्षक—(देवबन्धोः) विद्वान् जिसके बन्धु के समान हैं उस (वाजिनः) वेगवान् (अश्वस्य) घोड़े की (चतुस्त्रिशत्) ३४ चौंतीस शिक्षात्मक (वंक्रीः) कुटिल गतियों को (समेति) सम्यक् प्राप्त करता है; और (अच्छिद्रा) दोष रहित (गात्रा) गात्रों=शरीरों को एवं (वयुना) प्रज्ञानों को (कृणोतु)

इव वर्त्तमानः **इव रोगान् यूयं विशस्त** विशेषेण छिन्त ॥ २५ । ४१ ॥

सिद्ध करता है; उसके (परुष्परुः) प्रत्येक मर्म स्थल को (अनुघुष्य) अनुकूल घोषित करके (स्वधितिः) वज्र के समान रोगों को तुम (विशस्त) काटो ॥ २५ । ४१ ॥

भावार्थः—हे मनुष्याः ! यथा चतुरोऽश्वशिक्षकश्चतुस्त्रिंशद् विचित्रा गतीरश्वं नयति, वैद्यश्चारोगिणं करोति, तथैवान्येषां पशूनां रक्षणेनोन्नतिः कार्या ॥ २५ । ४१ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे चतुर अश्व शिक्षक ३४ चौंतीस विचित्र गतियाँ घोड़े को सिखलाता है; और वैद्य उसे नीरोग करता है; वैसे ही अन्य पशुओं की रक्षा से उन्नति करो ॥ ४१ ॥

भा० पदार्थः—वङ्क्रीः=विचित्रा गतीः ।

भाष्यसार—**अश्व आदि की रक्षा**—अश्व-शिक्षक विद्वान् देवों के बन्धु, वेगवान् अश्व की ३४ चौंतीस शिक्षात्मक कुटिल गतियों को जानें । उक्त विचित्र गतियों से अश्व को शिक्षित करें । वैद्य अश्व को दोष रहित शरीर वाला अर्थात् रोग रहित करे। अश्व विषयक प्रज्ञान को प्राप्त करे। उसके प्रत्येक मर्म को यथावत् घोषित करके वज्र के समान रोगों का छेदन करे। सब मनुष्य अश्व आदि के समान अन्य पशुओं की भी रक्षा से उन्नति करें ॥ २५ । ४१ ॥ ●

गोतमः । **यजमानः**=गुरुः । स्वराट्पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनः कथं पशवः शिक्षणीया इत्याह ॥

फिर किस प्रकार पशु सिखाने चाहिएँ, इस विषय का उपदेश किया है ॥

एक॒स्त्वष्टु॒रश्व॑स्या विश॒स्ता द्वा य॒न्तारा॑ भवत॒स्तथ॑ऽ ऋ॒तुः ।
या ते॒ गात्रा॑णामृतु॒था कृ॒णोमि॒ ता ता॒ पिण्डा॑ना॒ं प्र जु॑होम्य॒ग्नौ ॥ ४२ ॥

पदार्थः—(**एकः**) असहायः (**त्वष्टुः**) प्रदीप्तस्य (**अश्वस्य**) तुरङ्गस्य । **अत्र संहितायामिति दीर्घः ।** (**विशस्ता**) विच्छेदकः (**द्वा**) द्वौ (**यन्तारा**) नियामकौ (**भवतः**) (**तथा**) तेन प्रकारेण (**ऋतुः**) वसन्तादिः (**या**) यानि (**ते**) तव (**गात्राणाम्**) अङ्गानाम् (**ऋतुथा**) ऋतोः (**कृणोमि**)(**ता ता**) तानि तानि (**पिण्डानाम्**) (**प्र**) (**जुहोमि**) (**अग्नौ**) पावके ॥ ४२ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथैक ऋतुस्त्वष्टुरश्वस्य विशस्ता भवति यौ द्वा यन्तारा भवतस्तथा या ते गात्राणां पिण्डानामृतुथा वस्तून्यहं कृणोमि ता ताऽग्नौ प्रजुहोमि ॥ ४२ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यथैकः** असहायः **ऋतुः** वसन्तादिः **त्वष्टुः** प्रदीप्तस्य **अश्वस्य** तुरङ्गस्य **विशस्ता** विच्छेदकः भवति, **यौ द्वा** द्वौ **यन्तारा** नियामकौ **भवतस्तथा** तेन प्रकारेण **या** यानि **ते** तव **गात्राणाम्** अङ्गानां **पिण्डानामृतुथा** ऋतोः **वस्तून्यहं कृणोमि, ता ता** तानि तानि **अग्नौ** पावके **प्रजुहोमि** ॥ २५ । ४२ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (एकः) एक (ऋतुः) वसन्त ऋतु (त्वष्टुः) प्रदीप्त सूर्यरूप (अश्वस्य) घोड़े का (विशस्ता) विच्छेदक होता है; और जो (द्वा) दो ऋतुएँ (यन्तारौ) घोड़े की नियामक होती हैं; (तथा) वैसे (या) जो (ते) तेरे (गात्राणाम्) अंगों एवं (पिण्डानाम्) पिण्डों के निमित्त (ऋतुथा) ऋतु के अनुसार वस्तुओं को मैं (कृणोमि) बनाता हूँ; और (ता ता) उन उन

वस्तुओं को (अग्नौ) अग्नि में (प्रजुहोमि) होम करता हूँ ॥ २५ । ४२ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथाऽश्वशिक्षकाः प्रत्यृत्वश्वान् शिक्षयन्ति, तथा गुरवो विद्यार्थिनां चेष्टाकरणानि शिक्षयन्ति। यथाऽग्नौ पिण्डान् हुत्वा वायुं शोधयन्ति तथा विद्याग्नावविद्याभ्रमान् हुत्वाऽऽत्मनः शोधयन्ति ॥ २५ । ४२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। जैसे घोड़ों के शिक्षक प्रत्येक ऋतु में घोड़ों को प्रशिक्षण देते हैं; वैसे गुरुजन विद्यार्थियों को चेष्टा करना सिखलाते हैं। जैसे अग्नि में पिण्डों का होम करके वायु को शुद्ध करते हैं, वैसे विद्या-अग्नि में अविद्या-भ्रमों का होम करके आत्माओं को शुद्ध करते हैं ॥ २५ । ४२ ॥

भाष्यसार—१. पशुओं को कैसे शिक्षित करें—जैसे एक वसन्त ऋतु त्वष्टा=सूर्य रूप अश्व की विच्छेदक=विशेषक होती है, और जैसे दो ऋतु उक्त सूर्य की नियामक होती हैं वैसे अश्व शिक्षक विद्वान् प्रत्येक ऋतु में घोड़ों को शिक्षित करें। इसी प्रकार गुरुजन भी विद्यार्थियों को उचित चेष्टा करना सिखलावें। जैसे याजक लोग अग्नि में पिण्डों का होम करके वायु को शुद्ध करते हैं वैसे विद्वान् लोग विद्या की अग्नि में अविद्या-भ्रम का होम करके आत्मा को शुद्ध करें।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा वाचक इव आदि पद लुप्त है अतः वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि अश्व-शिक्षकों के समान गुरुजन भी विद्यार्थियों को उचित गात्र-चेष्टा करना सिखलावें ॥ २५ । ४२ ॥

गोतमः। **आत्मा**=स्वस्वरूपम्। निचृत्त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

पुनर्मनुष्यैरात्मादयः कथं शोधनीया इत्याह ॥

फिर मनुष्यों को आत्मादि पदार्थ कैसे शुद्ध करने चाहिएँ, इस विषय का उपदेश किया है ॥

मा त्वा तपत् प्रियऽआत्मापियन्तं मा स्वधितिस्तन्वऽआ तिष्ठिपत्ते।
मा ते गृध्नुरविशस्तातिहाय छिद्रा गात्राण्यसिना मिथू कः ॥ ४३ ॥

पदार्थः—(**मा**) निषेधे (**त्वा**) त्वाम् (**तपत्**) तपेत् (**प्रियः**) यः प्रीणाति=कामयत आनन्दयति वा (**आत्मा**) स्वस्वरूपम् (**अपियन्तम्**) योऽप्येति तम् (**मा**) (**स्वधितिः**) वज्रः (**तन्वः**) शरीरस्य मध्ये (**आ**) (**तिष्ठिपत्**) समन्तात्स्थापयेत् (**ते**) तव (**मा**) (**ते**) तव (**गृध्नुः**) अभिकांक्षकः (**अविशस्ता**) अविच्छेदकः (**अतिहाय**) अत्यन्तं त्यक्त्वा (**छिद्रा**) छिद्राणि (**गात्राणि**) अङ्गानि (**असिना**) खड्गेन (**मिथू**) मिथः (**कः**) कुर्यात् ॥ ४३ ॥

अन्वयः—हे विद्वँस्ते प्रिय आत्माऽपियन्तं त्वा त्वामतिहाय मा तपत्स्वधितिस्ते तन्वो मा तिष्ठिपत्ते छिद्रा गात्राण्यविशस्ता गृध्नुर्मा तिष्ठिपदसिना मिथू मा कः ॥ ४३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन्! ते तव प्रियः यः प्रीणाति=कामयत आनन्दयति वा आत्मा

भाषार्थ—हे विद्वान्! (ते) तेरा (प्रियः) कामना करने योग्य अथवा आनन्ददायक (आत्मा)

स्वस्वरूपम्, **अपियन्तं** योऽप्येति तं **त्वा=त्वामतिहाय** अत्यन्तं त्यक्त्वा **मा न तपत्** तपेत् ।

आत्मा=अपना स्वरूप—(अपियन्तम्) सर्वथा प्राप्त हुए (त्वा) तुझको (अतिहाय) छोड़कर (मा, तपत्) कष्ट न दे ।

स्वधितिः वज्रः **ते** तव **तन्वः** शरीरस्य मध्ये **मा न आतिष्ठिपत्** समन्तात्स्थापयेत् ।

(स्वधितिः) वज्र (ते) तेरे (तन्वः) शरीर के मध्य में (मा, आतिष्ठिपत्) स्थापित न हो ।

ते तव **छिद्रा** छिद्राणि **गात्राणि** अङ्गानि **अविशस्ता** अविच्छेदकः **गृध्नुः** अभिकाङ्क्षकः **मा न अतिष्ठिपत्** समन्तात्स्थापयेत्, **असिना** खड्गेन **मिथू** मिथः **कः** कुर्यात् ॥ २५ । ४३ ॥

(ते) तेरे (छिद्रा) दोष-युक्त (गात्राणि) अंगों को—(अविशस्ता) न काटने वाले (गृध्नुः) लालची पुरुष (मा, अतिष्ठिपत्) स्थापित न करे; अपितु (असिना) तलवार से (मिथू) परस्पर (कः) छेदन करे ॥ २५ । ४३ ॥

भावार्थः—सर्वैर्मनुष्यैः स्वःस्व आत्मा शोके न निपातनीयः; कस्याप्युपरि वज्रो न निपातनीयः; कस्याप्युपकारो न विच्छेदनीयः ॥ २५ । ४३ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य—अपने अपने आत्मा को शोक में न डालें; किसी के ऊपर वज्र-निपात न करें, किसी के उपकार का विच्छेद न करें ॥ २५ । ४३ ॥

भाष्यसार—आत्मोन्नति के साधन—मनुष्यों को आत्मा की उन्नति के लिए आवश्यक है कि शोक का त्याग करें और दूसरों की उन्नति में ही अपनी उन्नति समझें । परोपकार भी आत्मा की उन्नति में साधक होता है ॥ २५ । ४३ ॥

गोतमः । **आत्मा**=स्वस्वरूपम् । स्वराट्पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनर्मनुष्यैः कीदृशानि यानानि कर्त्तव्यानीत्याह ॥

फिर मनुष्यों को कैसे रथ निर्माण करने चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

न वा ऽ उं ऽ एतन्म्रियसे न रिंष्यसि देवाँ२ऽ इदेषि पथिभिः सुगेभिः ।
हरी ते युञ्जा पृषती ऽ अभूतामुपास्थाद्वाजी धुरि रासभस्य ॥ ४४ ॥

पदार्थः—(**न**) निषेधे (**वै**) निश्चयेन (**उ**) इति वितर्के (**एतत्**) विज्ञानं प्राप्य (**म्रियसे**) (**न**) (**रिष्यसि**) हन्सि (**देवान्**) विदुषः (**इत्**) एव (**एषि**) (**पथिभिः**) मार्गैः (**सुगेभिः**) सुष्ठु गच्छन्ति येषु तैः (**हरी**) हरणशीलौ (**ते**) तव (**युञ्जा**) योजकौ (**पृषती**) स्थूलौ (**अभूताम्**) भवेताम् (**उप**) (**अस्थात्**) उपतिष्ठेत् (**वाजी**) वेगवान् (**धुरि**) धारणे (**रासभस्य**) अश्वसम्बन्धस्य ॥ ४४ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यद्येतद्विज्ञानं प्राप्नोषि तर्हि न त्वं म्रियसे न वै रिष्यसि सुगेभिः पथिभि-देवानिदेषि यदि ते पृषती युञ्जा हरी अभूतामु तर्हि वाजी रासभस्य धुर्य्युपास्थात् ॥ ४४ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे विद्वन् ! यद्येतद् विज्ञानं प्राप्नोषि तर्हि न त्वं म्रियसे, न वै** निश्चयेन **रिष्यसि** हन्सि, **सुगेभिः** सुष्ठु गच्छन्ति येषु तैः **पथिभिः** मार्गैः **देवान्** विदुषः **इत्** एव **एषि यदि ते** तव **पृषती** स्थूलौ **युञ्जा** योजकौ **हरी** हरणशीलौ **अभूतां** भवेताम्, **उ=तर्हि वाजी** वेग-

भाषार्थ—हे विद्वान् ! यदि तू (एतत्) इस विज्ञान को प्राप्त करता है तो तू (न) नहीं (म्रियसे) मरता है; और (न) नहीं (वै) निश्चय से (रिष्यसि) हिंसित होता है; अपितु (सुगेभिः) सुगम (पथिभिः) मार्गों से (देवान्) विद्वानों को (इत्) ही (एषि) प्राप्त करता है । यदि (ते) तेरे

वान् **रासभस्य** अश्वसम्बन्धस्य **धुरि** धारणे **उपास्थात्** उपतिष्ठेत् ॥ २५ । ४४ ॥

(पृषती) स्थूल (युञ्जा) रथ में जुड़ने वाले (हरी) दो घोड़े (अभूताम्) हों; (उ) तो (वाजी) वेगवान् घोड़ा (रासभस्य) अश्व जाति से सम्बन्ध रखने वाला खच्चर (धुरि) रथ आदि के धारण करने में (उपास्थात्) उपस्थित हो ॥ २५ । ४४ ॥

भावार्थः—यथा विद्यया संयुक्तैर्वायुजलाग्निभिर्युक्ते रथे मार्गान् सुखेन गच्छन्ति; तथैव—आत्मज्ञानेन स्वस्वरूपं नित्यं बुद्ध्वा, मरणहिंसात्रासं विहाय, दिव्यानि सुखानि प्राप्नुयुः ॥ २५ । ४४ ॥

भावार्थ—जैसे विद्या-संयुक्त वायु, जल और अग्नि से युक्त रथ में लोग मार्गों को सुख से तय करते हैं; वैसे ही आत्म-ज्ञान से अपने स्वरूप (आत्मा) को नित्य जान कर मृत्यु एवं हिंसा के त्रास=भय को छोड़ कर, दिव्य सुखों को प्राप्त करें ॥ २५ । ४४ ॥

भाष्यसार—**मनुष्य कैसे यान बनावें**—मनुष्य विद्या के द्वारा वायु, जल और अग्नि से युक्त रथों का निर्माण करें। उनमें बैठ कर मार्गों को सुख से तय करें। इसी प्रकार विद्वान् लोग विज्ञान=आत्मज्ञान से अपने स्वरूप को नित्य जानें तथा मृत्यु और हिंसा के त्रास से पृथक् रहें। विद्वानों के पास स्थूल=हृष्ट-पुष्ट, रथ में जुड़ने वाले घोड़े हों। वेगवान् घोड़े तथा खच्चर को भी रथ आदि में संयुक्त करें ॥ २५ । ४४ ॥ ●

गोतमः। **प्रजा=स्पष्टम्**। स्वराट् पङ्क्तिः। पञ्चमः ॥

कै राज्योन्नतिः स्यादित्याह ॥

किन से राज्य की उन्नति होवे, इस विषय का उपदेश किया है ॥

सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं पुꣳसः पुत्राँ२ऽ उत विश्वापुषꣳ रयिम् ।
अनागास्त्वं नो ऽ अदितिः कृणोतु क्षत्रं नो ऽ अश्वो वनताꣳ हविष्मान् ॥ ४५ ॥

पदार्थः—(**सुगव्यम्**) सुष्ठु गोभ्यो हितम् (**नः**) अस्माकम् (**वाजी**) अश्वः (**स्वश्व्यम्**) शोभनेष्वश्वेषु भवम् (**पुंसः**) पुंस्त्वयुक्तान् पुरुषार्थिनः (**पुत्रान्**) (**उत**) अपि (**विश्वापुषम्**) समग्रपुष्टिकरम् (**रयिम्**) धनम् (**अनागास्त्वम्**) अनपराधत्वम् (**नः**) अस्मान् (**अदितिः**) कारणरूपेणाविनाशिनी भूमिः (**कृणोतु**) (**क्षत्रम्**) राज्यम् (**नः**) अस्माकम् (**अश्वः**) व्याप्तिशीलः (**वनताम्**) संभजताम् (**हविष्मान्**) प्रशस्तानि हवींषि=सुखदानानि यस्मिन् सः ॥ ४५ ॥

अन्वयः—यो नो वाजी सुगव्यं स्वश्व्यङ्करोति यो विद्वान् पुंसः पुत्रानुत विश्वापुषं रयिञ्च प्राप्नोति यथाऽदितिर्नोऽनागास्त्वङ्करोति तथा भवान् कृणोतु। यथा हविष्मानश्वो नः क्षत्रं वनतान्तथा त्वं सेवस्व ॥ ४५ ॥

सपदार्थान्वयः—यो नः अस्माकं **वाजी** अश्वः **सुगव्यं** सुष्ठु गोभ्यो हितं **स्वश्व्यं** शोभनेष्वश्वेषु भवं **करोति; यो विद्वान् पुंसः** पुंस्त्वयुक्तान् पुरुषार्थिनः **पुत्रान् उत** अपि **विश्वापुषं** समग्रपुष्टिकरं **रयिं** धनं **च प्राप्नोति, यथाऽदितिः** कारणरूपेणाऽविनाशिनी भूमिः **नः** अस्मान् **अनागास्त्वम्** अनपराधत्वं **करोति; तथा भवान् कृणोतु।**

भाषार्थ—जो (नः) हमारा (अश्वः) घोड़ा (सुगव्यम्) उत्तम गौओं के लिए हितकारी तथा (स्वश्व्यम्) उत्तम घोड़ों में विद्यमान कर्मों को करता है; जो विद्वान् (पुंसः) पुंस्त्व से युक्त एवं पुरुषार्थी (पुत्रान्) पुत्रों को (उत) और (विश्वापुषम्) समग्र पुष्टि करने वाले (रयिम्) धन को प्राप्त करता है, और जैसे (अदितिः) कारण

यथा हविष्मान् प्रशस्तानि हवींषि=सुखदानानि यस्मिन् सः **अश्वः** व्याप्तिशीलः **नः** अस्माकं **क्षत्रं** राज्यं **वनतां** सम्भजतां, **तथा त्वं सेवस्व** ॥२५।४५॥

रूप से अविनाशी भूमि (नः) हमें (अनागास्त्वम्) अपराध रहित करती है; वैसे आप करें। जैसे (हविष्मान्) प्रशस्त सुख देने वाला (अश्वः) व्याप्तिशील घोड़ा (नः) हमारे (क्षत्रम्) राज्य की (वनताम्) सेवा करता है; वैसे तू सेवा कर ॥४५॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये जितेन्द्रिया ब्रह्मचर्येण वीर्यवन्तोऽश्वा इवाऽमोघवीर्याः, पुरुषार्थेन धनं प्राप्नुवन्तो न्यायेन राज्यमुन्नयेयुस्ते सुखिनः स्युः ॥ २५ । ४५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। जो जितेन्द्रिय पुरुष ब्रह्मचर्य से वीर्यवान् घोड़े के समान अमोघवीर्य होते हैं तथा पुरुषार्थ से धन को प्राप्त करते हुए न्याय से राज्य को उन्नत करते हैं वे सुखी होते हैं ॥ २५ । ४५ ॥

भा० पदार्थः—सुगव्यम्=जितेन्द्रियम्। स्वश्व्यम्=ब्रह्मचर्येण वीर्यवन्तम्, अश्व इवामोघवीर्यम्। वनताम्=उन्नयेत्।

भाष्यसार—१. **राज्योन्नति किन से होती है**—राजा प्रजा के लिए घोड़े, उत्तम गौओं के लिए हितकारी, तथा उत्तम घोड़ों में विद्यमान कर्म करते हैं अर्थात् जितेन्द्रिय, ब्रह्मचर्य से वीर्यवान् एवं घोड़ों के समान अमोघवीर्य वाला हो। पुंस्त्व युक्त पुरुषार्थी पुत्रों को प्राप्त करे। पुरुषार्थ से समग्र पुष्टि करने वाले धन को प्राप्त करे। भूमि को अपराध-रहित करे अर्थात् न्याय से राज्य को उन्नत करे। जैसे प्रशस्त सुख देने वाला घोड़ा राज्य की सेवा करता है वैसे विद्वान् राजा प्रजा की सेवा करे।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि विद्वान् राजा अश्व के समान राज्य की सेवा करे तथा जितेन्द्रिय, ब्रह्मचर्य से वीर्यवान् (बलवान्) तथा अमोघवीर्य हो ॥ २५ । ४५ ॥ ●

गोतमः। **विश्वेदेवाः=विद्वांसः सभासदः**। भुरिक्शक्वरी। धैवतः स्वरः॥

पुनः के श्रीमन्तो भवन्तीत्याह ॥

फिर कौन धनवान् होते हैं, इस विषय का उपदेश किया है॥

इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः। आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्मभ्यं भेषजा करत्। यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह सीषधाति ॥ ४६ ॥

पदार्थः—(**इमा**) इमानि (**नु**) सद्यः (**कम्**) सुखम् (**भुवना**) भुवनानि (**सीषधाम**) साधयेम (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान् राजा (**च**) (**विश्वे**) सर्वे (**च**) (**देवाः**) विद्वांसः सभासदः (**आदित्यैः**) मासैः (**इन्द्रः**) सूर्यः (**सगणः**) गणैः सह वर्त्तमानः (**मरुद्भिः**) मनुष्यैः सह (**अस्मभ्यम्**) (**भेषजा**) भेषजानि (**करत्**) कुर्यात् (**यज्ञम्**) विद्वत्सत्कारादिकम् (**च**) (**नः**) अस्माकम् (**तन्वम्**) शरीरम् (**च**) (**प्रजाम्**) सन्तानादिकम् (**च**) (**आदित्यैः**) उत्तमैर्विद्वद्भिः सह (**इन्द्रः**) ऐश्वर्यकारी सभेशः (**सह**) (**सीषधाति**) साधयेत् ॥ ४६ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथेन्द्रश्च विश्वे देवाश्चेमा विश्वा भुवना धरन्ति तथा वयं कं नु सीषधाम। यथा सगण इन्द्र आदित्यैः सह सर्वांल्लोकान् प्रकाशयति तथा मरुद्भिः सह वैद्योऽस्मभ्यं भेषजा करत्। यथाऽऽदित्यैः सहेन्द्रो नो यज्ञं च तन्वं च प्रजां च सीषधाति तथा वयं साध्नुयाम ॥ ४६ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः! यथेन्द्रः** परमैश्वर्यवान् राजा, **च विश्वे** सर्वे **देवाः** विद्वांसः

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जैसे (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य वाला राजा (च) और (विश्वे) सब

सभासदः, **इमा** इमानि **विश्वा भुवना** भुवनानि **धरन्ति; तथा वयं कं** सुखं **नु** सद्यः **सीषधाम** साधयेम । **यथा सगणः** गणैः सह वर्त्तमानः **इन्द्रः** सूर्यः, **आदित्यैः** मासैः **सह सर्वांल्लोकान् प्रकाशयति, तथा मरुद्भिः** मनुष्यैः सह **वैद्योऽस्मभ्यं भेषजा** भेषजानि **करत्** कुर्यात् । **यथाऽऽदित्यैः** उत्तमैर्विद्वद्भिः **सह इन्द्रः** ऐश्वर्यकारी सभेशः, **नः** अस्माकं **यज्ञं** विद्वत्सत्कारादिकं **च, तन्वं** शरीरं **च, प्रजां** सन्तानादिकं **च सीषधाति** साधयेत्; **तथा वयं साध्नुयाम** ॥ २५ । ४६ ॥

(देवाः) विद्वान् (इमा) इन (विश्वा) सब (भुवना) लोकों को धारण करते हैं; वैसे हम लोग (कम्) सुख को (नु) शीघ्र (सीषधाम) सिद्ध करें । जैसे (सगणः) गणों सहित (इन्द्रः) सूर्य (आदित्यैः) मासों सहित सब लोकों को प्रकाशित करता है; वैसे (मरुद्भिः) मनुष्यों सहित वैद्य हमारे लिए (भेषजा) औषधों को (करत्) बनावें । जैसे (आदित्यैः) उत्तम विद्वानों सहित (इन्द्रः) ऐश्वर्यकारी सभापति (नः) हमारे (यज्ञम्) विद्वानों के सत्कार आदि रूप यज्ञ को (च) और (तन्वम्) शरीर को (च) और (प्रजाम्) सन्तान आदि को (सीषधाति) साधता है; वैसे हम भी उन्हें सिद्ध करें ॥ २५ । ४६ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । ये मनुष्याः सूर्यवन्नियमेन वर्तित्वा, शरीरमरोगमात्मानं विद्वांसं संसाध्य, पूर्णं ब्रह्मचर्यं कृत्वा, स्वं वृतां हृद्यां स्त्रियं स्वीकृत्य, तत्र प्रजा उत्पाद्य, सुशिक्ष्य विदुषीः कुर्वन्ति, ते श्रियः पतयो जायन्ते ॥ २५ । ४६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । जो मनुष्य सूर्य के समान नियम से वर्त्ताव करके, शरीर को नीरोग तथा आत्मा को विद्वान् बनाकर, पूर्ण ब्रह्मचर्य करके, स्वयं वरण की हुई प्रिय स्त्री को स्वीकार कर, उसमें प्रजा को उत्पन्न कर एवं सुशिक्षित करके विदुषी बनाते हैं वे श्री के पति होते हैं ॥ २५ । ४६ ॥

भाष्यसार—**१. कौन श्रीमान् होते हैं**—जैसे परम ऐश्वर्यवान् राजा और सब सभासद् विद्वान् सब लोकों को धारण करते हैं वैसे सब मनुष्य सुख को सिद्ध करें । जैसे तारा गणों सहित सूर्य मासों तथा सब लोकों को प्रकाशित करता है वैसे सब मनुष्य सूर्य के समान नियम से वर्ताव करें । वैद्य लोग मनुष्यों के लिए औषध तैयार करें तथा शरीर के रोगों का निवारण करें । उत्तम विद्वानों के साथ वर्तमान ऐश्वर्यकारी सभापति विद्वानों का सत्कार करे तथा अपने आत्मा को भी विद्वान् बनावे । पूर्ण ब्रह्मचर्य से शरीर को सिद्ध करके, स्वयं वरण की हुई प्रिय स्त्री को स्वीकार करके उसमें प्रजा को उत्पन्न करे तथा उसे सुशिक्षा से विदुषी बनावे । जो ऐसा आचरण करते हैं वे श्रीमान् होते हैं ।

२. अलंकार—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । उपमा यह है कि मनुष्य राजा के समान सुख को सिद्ध करें, तथा सूर्य के समान नियम से वर्ताव करें ॥ २५ । ४६ ॥

गोतमः । **अग्निः=वेदविद् विद्वान्** । शक्वरी । धैवतः ॥

पुनः के सत्कर्त्तव्याः सन्तीत्याह ॥

फिर कौन सत्कार करने योग्य हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

अग्ने त्वं नो ऽ अन्तम ऽ उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः ।
वसुरग्निर्वसुश्रवा ऽ अच्छा नक्षि द्युमत्तमꣳ रयिं दाः ॥ ४७ ॥

पदार्थः—(**अग्ने**) वेदविदध्यापकोपदेशक (**त्वम्**) (**नः**) अस्माकम् (**अन्तमः**) निकटस्थः (**उत**) अपि (**त्राता**) पालकः (**शिवः**) कल्याणकारी (**भव**) **अत्र द्वचचोऽतस्तिङ इति दीर्घः ।** (**वरूथ्यः**) वरूथेषु=गृहेषु साधुः (**वसुः**) विद्यासु वासयिता (**अग्निः**) पावक इव (**वसुश्रवाः**) वसूनि=धनानि श्रवणे यस्य सः (**अच्छ**) **अत्र निपातस्य चेति दीर्घः ।** (**नक्षि**) प्राप्नोषि । णक्षधातोरयं प्रयोगः । (**द्युमत्तमम्**) अतिशयेन प्रकाशवन्तम् (**रयिम्**) धनम् (**दाः**) दद्याः ॥ ४७ ॥

अन्वयः—हे अग्ने त्वमग्निरिव नोऽन्तमस्त्राता शिव उत वरूथ्यो वसुश्रवा वसुर्भव । यो द्युमत्तमं रयिमस्मभ्यमच्छ दाः । अस्मान्नक्षि स त्वमस्माभिः सत्कर्त्तव्योऽसि ॥ ४७ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे अग्ने** वेदविदध्यापकोपदेशक ! **त्वमग्निः** पावकः **इव, नः** अस्माकम् **अन्तमः** निकटस्थः, **त्राता** पालकः, **शिवः** कल्याणकारी, **उत** अपि **वरूथ्यः** वरूथेषु=गृहेषु साधुः, **वसुश्रवाः** वसूनि=धनानि श्रवणे यस्य सः, **वसुः** विद्यासु वासयिता **भव । यो द्युमत्तमम्** अतिशयेन प्रकाशवन्तं **रयिं** धनम् **अस्मभ्यमच्छ दाः** दद्याः, **अस्मान् नक्षि** प्राप्नोषि, **स त्वमस्माभिः सत्कर्त्तव्योऽसि** ॥ २५ । ४७ ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) वेद के ज्ञाता अध्यापक और उपदेशक ! तू (अग्निः) अग्नि के समान (नः) हमारे (अन्तमः) निकट रहने वाला, (त्राता) पालक, (शिवः) कल्याणकारी (उत) और (वरूथ्यः) घरों में श्रेष्ठ व्यवहार करने वाला, (वसुश्रवाः) धनों को सुनने वाला और (वसुः) विद्याओं में वास कराने वाला हो । जो तू—(द्युमत्तमम्) अत्यन्त प्रकाश से युक्त (रयिम्) धन हमें (अच्छ) अच्छे प्रकार (दाः) देता है, हमें तू (नक्षि) प्राप्त होता है; सो तू हमारे लिए सत्कार के योग्य है ॥ २५ । ४७ ॥

भावार्थः—मनुष्यैः सर्वोपकारिणो वेदादिशास्त्रवेत्तारोऽध्यापकोपदेशका विद्वांसः सदैव सत्कर्त्तव्याः । ते च सत्कृताः सन्तः सर्वेभ्यः सदुपदेशाद्युत्तमगुणान् धनादिकं च सदा प्रयच्छेयुः । येन परस्परस्य प्रीत्युपकारेण महान् सुखलाभः स्यादिति ॥ २५ । ४७ ॥

भावार्थ—मनुष्य सबके उपकारक वेदादि शास्त्रों के ज्ञाता अध्यापक, उपदेशक, विद्वान् लोगों का सदैव सत्कार करें और वे सत्कार को प्राप्त होकर सबको सदुपदेश आदि उत्तम गुण और धन आदि सदा प्रदान करें । जिससे परस्पर के प्रीतिपूर्वक उपकार से महान् सुख-लाभ हो ॥ २५ । ४७ ॥

भा० पदार्थः—द्युमत्तमम्=सदुपदेशाद्युत्तमगुणम् ।

भाष्यसार—**कौन सत्कार के योग्य हैं**—वेद के ज्ञाता अध्यापक और उपदेशक अग्नि के समान मनुष्यों के समीप रहें, सब के पालक, कल्याणकारी, घरों में श्रेष्ठ व्यवहार करने वाले, धनों को सुनने वाले, विद्याओं में वास कराने वाले हों। सब मनुष्य उनका सदा सत्कार करें। वे सत्कार को प्राप्त होकर सबको सदुपदेश आदि एवं उत्तम गुण और धन आदि सदा प्रदान करें। इस प्रकार परस्पर प्रीतिपूर्वक उपकार से महान् सुख को प्राप्त करें ॥ २५ । ४७ ॥

गोतमः । **विद्वान्**=स्वष्टम् । भुरिग्बृहती । मध्यमः ॥

पुनर्मनुष्यैरिह कथं वर्त्तितव्यमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को इस जगत् में कैसे वर्त्तना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ।
स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णो ऽ अघायतः समस्मात् ॥ ४८ ॥

पदार्थः—(तम्) (त्वा) त्वाम् (**शोचिष्ठ**) सद्गुणैः प्रकाशमान (**दीदिवः**) विद्यादिगुणैः शोभावन् (**सुम्नाय**) सुखाय (**नूनम्**) निश्चितम् (**ईमहे**) याचामहे (**सखिभ्यः**) मित्रेभ्यः (**सः**) (**नः**) अस्मान् (**बोधि**) बोधय (**श्रुधी**) शृणु (**हवम्**) आह्वानम् (**उरुष्य**) रक्ष (**नः**) अस्माकम् (**अघायतः**) आत्मनोऽघमाचरतः (**समस्मात्**) अधर्मेण तुल्यगुणकर्मस्वभावात् ॥ ४८ ॥

अन्वयः—हे शोचिष्ठ दीदिवो विद्वन् यस्त्वं नो बोधि तन्त्वा सुम्नाय सखिभ्यो नूनं वयमीमहे । स त्वन्नो हवं श्रुधि समस्मादघायत उरुष्य च ॥ ४८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **शोचिष्ठ** सद्गुणैः प्रकाशमान ! **दीदिवः=विद्वन्** ! विद्यादिगुणैः शोभावन् ! **यस्त्वं नः** अस्मान् **बोधि** बोधय, **तन्त्वा** त्वां **सुम्नाय** सुखाय **सखिभ्यः** मित्रेभ्यः **नूनं** निश्चितं **वयमीमहे** याचामहे । **स त्वं नः** अस्माकं **हवम्** आह्वानं **श्रुधी** शृणु, **समस्मात्** अधर्मेण तुल्यगुणकर्मस्वभावात् **अघायतः** आत्मनोऽघमाचरतः **उरुष्य** रक्ष **च** ॥ २५ । ४८ ॥

भाषार्थ—हे (शोचिष्ठ) सद्गुणों से प्रकाशमान (दीदिवः) विद्या आदि गुणों से शोभावान् विद्वान् ! जो तू—(नः) हमें (बोधि) बोध=ज्ञान प्रदान करता है, सो (त्वा) तुझे (सुम्नाय) सुख देने के लिए तथा (सखिभ्यः) मित्रों के लिए भी (नूनम्) निश्चित रूप से हम (ईमहे) चाहते हैं; प्रार्थना करते हैं; सो तू (नः) हमारी (हवम्) प्रार्थना को (श्रुधी) सुन; (समस्मात्) अधर्म के तुल्य गुण, कर्म स्वभाव वाले (अघायतः) पापाचरण करने वाले दुष्टाचारी से (उरुष्य) बचा ॥ २५ । ४८ ॥

भावार्थः—विद्यार्थिनोऽध्यापकान् प्रत्येवं वदेयुः भवन्तो–यदस्माभिरधीतं तत्परीक्षन्ताम्, अस्मान् दुष्टाचारात् पृथग् रक्षन्तु, यतो वयं सर्वैः सह मित्रवद् वर्त्तेमहि ॥ २५ । ४८ ॥

भावार्थ—विद्यार्थी अध्यापकों से इस प्रकार कहें—आप जो हमने पढ़ा है उसकी परीक्षा करो; हमें दुष्ट आचरण से पृथक् रखो; जिससे हम सबके साथ मित्र के समान वर्त्ताव करें ॥ २५ । ४८ ॥

भा० पदार्थः—अघायतः=दुष्टाचारात् । उरुष्य=पृथग् रक्ष ।

भाष्यसार—मनुष्य यहाँ कैसे वर्त्ताव करें—सद्गुणों से प्रकाशमान, विद्या आदि शुभ गुणों से शोभायमान, विद्वान् विद्यार्थियों को विद्या का बोध करावें । विद्यार्थी लोग सुख की प्राप्ति तथा अपने मित्रों के लिए भी विद्या प्राप्ति की विद्वानों से प्रार्थना करें । विद्वान् विद्यार्थियों की प्रार्थना को सुनें और जो कुछ उन्होंने पढ़ा हो उसकी परीक्षा करें । दुष्ट आचरण से उन्हें पृथक् रखें । विद्यार्थी सब के साथ मित्र के समान वर्त्ताव करें ॥ २५ । ४८ ॥ ●

[पूर्वापराध्यायार्थसंगतिमाह—]

अस्मिन्नध्याये सृष्टिस्थपदार्थगुणवर्णनं, पश्वादिप्राणिनां शिक्षा-रक्षणं, स्वाङ्गरक्षणं, परमेश्वर-

इस अध्याय में सृष्टि के पदार्थों के गुणों का वर्णन (१-६), पशु आदि प्राणियों की शिक्षा एवं

प्रार्थनं, यज्ञप्रशंसा, प्रज्ञाप्रापणं, धर्मेच्छाऽश्वगुण-कथनं, तच्छिक्षणमात्मज्ञानधनप्रापणयोर्विधानं चोक्तमत एतदध्यायोक्तार्थस्य पूर्वाध्यायोक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम् ॥ २५ ॥

रक्षा (२६, २७), अपने अंगों की रक्षा (३४), परमेश्वर से प्रार्थना (१०-१३), यज्ञ की प्रशंसा (१४), प्रज्ञा=सुमति की प्राप्ति (१५), धर्म की इच्छा (२१), अश्व के गुणों का कथन (३५-४०), अश्व का शिक्षण (४१), आत्मज्ञान (४३) और धन प्राप्ति (४६) का विधान है अतः इस अध्याय में प्रतिपादित अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति है; ऐसा जानें ॥ २५ ॥

इति श्रीयुतपण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते दयानन्द-यजुर्वेदभाष्य-भास्करे पञ्चविंशोऽध्यायः सम्पूर्णः ॥

॥ ओ३म् ॥

अथ षड्विंशोऽध्याय आरभ्यते

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्नऽआसुव ॥ १ ॥

य० ३० । ३ ॥

याज्ञवल्क्यः । **अग्न्यादयः**=**पावकादयः** । अभिकृतिः । ऋषभः ॥

अथ मनुष्यैस्तत्त्वेभ्य उपकारा यथावत्संग्राह्या इत्याह ॥

अब छब्बीसवें अध्याय का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को तत्त्वों से यथावत् उपकार लेने चाहिएँ, इस विषय का वर्णन किया है ॥

अग्निश्च पृथिवी च सन्नते ते मे सं नमतामदो वायुश्चाऽन्तरिक्षं च सन्नते ते मे सं नमतामद ऽ आदित्यश्च द्यौश्च सन्नते ते मे सं नमतामद ऽ आपश्च वरुणश्च सन्नते ते मे सं नमतामदः । सप्त सꣳसदो ऽ अष्टमी भूतसाधनी सकामाँ२ऽ अध्वनस्कुरु संज्ञानमस्तु मेऽमुना ॥ १ ॥

पदार्थः—(**अग्निः**) पावकः (**च**) (**पृथिवी**) (**च**) (**सन्नते**) (**ते**) (**मे**) मह्यम् (**सम्**) सम्यक् (**नमताम्**) अनुकूलं कुर्वाताम् (**अदः**) (**वायुः**) (**च**) (**अन्तरिक्षम्**) (**च**) (**सन्नते**) अनुकूले (**ते**) (**मे**) मह्यम् (**सम्**) (**नमताम्**) (**अदः**) (**आदित्यः**) सूर्यः च (**द्यौः**) तत्प्रकाशः (**च**) (**सन्नते**) (**ते**) (**मे**) मह्यम् (**सम्**) (**नमताम्**) (**अदः**) (**आपः**) जलानि (**च**) (**वरुणः**) तदवयवी (**च**) (**सन्नते**) (**ते**) (**मे**) मह्यम् (**सम्**) (**नमताम्**) (**अदः**) (**सप्त**) (**संसदः**) सम्यक् सीदन्ति यासु ताः (**अष्टमी**) अष्टानां पूरणा (**भूतसाधनी**) भूतानां साधिका (**सकामान्**) समानस्तुल्यः कामो येषां तान् (**अध्वनः**) मार्गान् (**कुरु**) (**संज्ञानम्**) सम्यग्ज्ञानम् (**अस्तु**) (**मे**) मह्यम् (**अमुना**) एवं प्रकारेण ॥ १ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा ये मेऽग्निश्च पृथिवी च सन्नते ते अदः सन्नमतां ये मे वायुश्चान्तरिक्षं च सन्नते स्तस्ते अदः सन्नमताम् । ये मे आदित्यश्च द्यौश्च सन्नते ते अदः सन्नमतां ये म आपश्च वरुणश्च सन्नते स्तस्ते अदः सन्नमताम् । या अष्टमी भूतसाधनी सप्त संसदः सकामानध्वनः कुर्य्यात् तथा कुरु । अमुना मे संज्ञानमस्तु तथैतत्सर्वं युष्माकमप्यस्तु ॥ १ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! यथा **ये मे** मह्यम् **अग्निः** पावकः **च पृथिवी च सन्नते** अनुकूले **ते अदः सन्नमतां** सम्यग् अनुकूलं कुर्वाताम् ।

ये मे मह्यं **वायुश्चान्तरिक्षं च सन्नते** अनुकूले **स्तः, ते अदः सन्नमतां** सम्यगनुकूलं कुर्वाताम् ।

ये मे मह्यम् **आदित्यः** सूर्यः **च द्यौः** तत्प्रकाशः **च सन्नते** अनुकूले **ते अदः सन्नमतां** सम्यगनुकूलं कुर्वाताम् ।

ये मे मह्यम् **आपः** जलानि **च वरुणः** तदवयवी **च सन्नते** अनुकूले **स्तः, ते अदः सन्नमतां** सम्यगनुकूलं कुर्वाताम् ।

या अष्टमी अष्टानां पूरणा **भूतसाधनी** भूतानां साधिका **सप्त संसदः** सम्यक् सीदन्ति यासु ताः **सकामान्** समानस्तुल्यः कामो येषां तान् **अध्वनः** मार्गान् **कुर्यात्** तथा **कुरु** ।

अमुना एवं प्रकारेण **मे** मह्यं **संज्ञानं** सम्यग् ज्ञानम् **अस्तु; तथैतत्सर्वं युष्माकमप्यस्तु** ।। २६ । १ ।।

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यद्यग्न्यादिपञ्चभूतानि यथावद्विज्ञाय कश्चित् प्रयुञ्जीत तर्हि तानि वर्त्तमानमदः सुखं प्रापयन्ति ।।

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे—जो (मे) मेरे लिए (अग्निः) अग्नि (च) और (पृथिवी) भूमि (च) भी (सन्नते) अनुकूल हैं; (ते) वे (अदः) इस वर्तमान सुख को (सन्नमताम्) अनुकूल करें ।

जो (मे) मेरे लिए (वायुः) वायु (च) और (अन्तरिक्षम्) आकाश (च) भी (सन्नते) अनुकूल हैं; (ते) वे (अदः) इस वर्तमान सुख को (सन्नमताम्) अनुकूल करें ।

जो (मे) मेरे लिए (आदित्यः) सूर्य (च) और (द्यौः) उसका प्रकाश (च) भी (सन्नते) अनुकूल हैं; (ते) वे (अदः) इस वर्तमान सुख को (सन्नमताम्) अनुकूल करें ।

जो (मे) मेरे लिए (आपः) जल (च) और (वरुणः) जल का अवयवी (च) भी (सन्नते) अनुकूल हैं; (ते) वे (अदः) इस वर्तमान सुख को (सन्नमताम्) अनुकूल करें ।

जो (अष्टमी) अष्टमी (भूतसाधनी) प्राणियों के कार्यों को सिद्ध करने वाली है वह (सप्त) सात (संसदः) सभाओं तथा (सकामान्) तुल्य कामना वाले (अध्वनः) मार्गों को सिद्ध करे; वैसा (कुरु) आचरण कर ।

(अमुना) इस प्रकार से (मे) मेरे लिए (संज्ञानम्) उत्तम ज्ञान (अस्तु) प्राप्त हो, वैसे यह सब तुम्हें भी प्राप्त हो ।। २६ । १ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है । यदि अग्नि आदि पाँच भूतों को यथावत् जानकर प्रयोग करें तो वे इस वर्तमान सुख को प्राप्त कराते हैं ।। २६ । १ ।।

भाष्यसार—**१. मनुष्य तत्त्वों से यथावत् उपकार ग्रहण करें**—सब मनुष्य अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष=आकाश, सूर्य, सूर्य का प्रकाश, जल, वरुण अर्थात् जल का अवयवी इन तत्त्वों को अनुकूल बनावें अर्थात् इन अग्नि आदि तत्त्वों को यथावत् जानकर इनका कार्यों में प्रयोग करें तथा सुख को प्राप्त करें ।

प्राणियों के कार्यों को सिद्ध करने वाली अष्टमी (क्रिया विशेष) सात संसदों को, तुल्य कामना वाले मार्गों को सिद्ध करने वाली हो । इस प्रकार सब मनुष्य उत्कृष्ट ज्ञान को प्राप्त करें ।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा

अलंकार है। उपमा यह है कि सब मनुष्य विद्वानों के समान अग्नि आदि तत्त्वों से उपकार ग्रहण करें ॥ २६ । १ ॥

लौगाक्षिः । **ईश्वरः**=स्पष्टम् । स्वराडत्यष्टिः । गान्धारः ॥

अथेश्वरः सर्वेभ्यो मनुष्येभ्यो वेदपठनश्रवणाधिकारं ददातीत्याह ॥

अब ईश्वर सब मनुष्यों के लिए वेद के पढ़ने और सुनने का अधिकार देता है, यह उपदेश किया है ॥

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः । ब्रह्मराजन्याभ्याᳫं शूद्राय चार्य्याय च स्वाय चारणाय । प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुप मादो नमतु ॥ २ ॥

पदार्थः—(**यथा**) येन प्रकारेण (**इमाम्**) प्रत्यक्षीकृताम् (**वाचम्**) वेदचतुष्टयीं वाणीम् (**कल्याणीम्**) कल्याणनिमित्ताम् (**आवदानि**) समन्तादुपदिशेयम् (**जनेभ्यः**) मनुष्येभ्यः (**ब्रह्मराजन्याभ्याम्**) ब्रह्म=ब्राह्मणश्च राजन्यः=क्षत्रियश्च ताभ्याम् (**शूद्राय**) चतुर्थवर्णाय (**च**) (**अर्याय**) वैश्याय । **अर्यः स्वामिवैश्ययोरिति पाणिनिसूत्रम्** (**च**) (**स्वाय**) स्वकीयाय (**च**) (**अरणाय**) सल्लक्षणाय प्राप्तायान्त्यजाय (**प्रियः**) कमनीयः (**देवानाम्**) विदुषाम् (**दक्षिणायै**) दानाय (**दातुः**) दानकर्त्तुः (**इह**) अस्मिन् संसारे (**भूयासम्**) (**अयम्**) (**मे**) मम (**कामः**) (**सम्**) (**ऋध्यताम्**) वर्द्धताम् (**उप**) (**मा**) माम् (**अदः**) परोक्ष-सुखम् (**नमतु**) प्राप्नोतु ॥ २ ॥

प्रमाणार्थ—(**अर्याय**) वैश्याय । 'अर्यः स्वामिवैश्ययोः' (३ । १ । १०३) सूत्र से अर्य का अर्थ वैश्य है ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथाऽहमीश्वरो ब्रह्मराजन्याभ्यामर्याय शूद्राय च स्वाय चारणाय च जनेभ्य इहेमां कल्याणीं वाचमावदानि तथा भवन्तोऽप्यावदन्तु । यथाऽहं दातुर्देवानां दक्षिणायै प्रियो भूयासं मेऽयं कामः समृध्यतां माऽद उपनमतु तथा भवन्तोऽपि भवन्तु तद्भवतामप्यस्तु ॥ २ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यथा** येन प्रकारेण **अहमीश्वरो ब्रह्मराजन्याभ्यां** ब्रह्म=ब्राह्मणश्च राजन्यः=क्षत्रियश्च ताभ्याम् **अर्याय** वैश्याय **शूद्राय** चतुर्थवर्णाय **च स्वाय** स्वकीयाय **चारणाय** सल्लक्षणाय प्राप्तायान्त्यजाय **च जनेभ्यः** मनुष्येभ्यः **इह** अस्मिन्संसारे **इमां** प्रत्यक्षीकृतां **कल्याणीं** कल्याणनिमित्तां **वाचं** वेदचतुष्टयीं वाणीम् **आवदानि** समन्तादुपदिशेयं **तथा भवन्तोऽप्यावदन्तु** ।

यथा येन प्रकारेण **अहं दातुः** दानकर्त्तुः **देवानां** विदुषां **दक्षिणायै** दानाय **प्रियः** कमनीयः **भूयासं मे** मम **अयं कामः समृध्यतां** वर्द्धतां **मा** माम् **अदः** परोक्षसुखम् **उपनमतु** प्राप्नोतु **तथा भवन्तोऽपि भवन्तु; तद्भवतामप्यस्तु** ॥ २६ । २ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! (यथा) जैसे मैं ईश्वर (ब्रह्मराजन्याभ्याम्) ब्राह्मण, क्षत्रिय, (अर्याय) वैश्य, (शूद्राय) चौथा वर्ण शूद्र, (च) और (स्वाय) अपने (चारणाय) उत्तम लक्षण वाले, समीप प्राप्त अन्त्यज (च) और (जनेभ्यः) सब मनुष्यों के लिए (इह) इस संसार में (इमाम्) इस (कल्याणीम्) कल्याण करने वाली (वाचम्) चार वेद रूप वाणी का (आवदानि) सब ओर उपदेश करता हूँ; वैसे आप लोग भी उपदेश करें ।

(यथा) जैसे मैं (दातुः) दान करने वाले पुरुष की तथा (देवानाम्) विद्वानों की (दक्षिणायै) दक्षिणा=दान के लिए (प्रियः) प्रिय (भूयासम्) होता हूँ; तथा (मे) मेरी (अयम्) यह (कामः) कामना (समृध्यताम्) बढ़ती है; (मा) मुझे (अदः)

परोक्ष सुख (उपनमतु) प्राप्त होता है; वैसे आप लोग भी हों; वह परोक्ष सुख आप लोगों को भी प्राप्त हो ॥ २६ । २ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः । परमात्मा सर्वान्मनुष्यान्प्रतीदमुपदिशतीयं वेदचतुष्टयी वाक् सर्वमनुष्याणां हिताय मयोपदिष्टा नाऽत्र कस्याप्यनधिकारोऽस्तीति । यथाऽहं पक्षपातं विहाय सर्वेषु मनुष्येषु वर्त्तमानः सन् प्रियोऽस्मि तथा भवन्तोऽपि भवन्तु । एवङ्कृते युष्माकं सर्वे कामाः सिद्धा भविष्यन्तीति ॥ २६ । २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है। परमात्मा सब मनुष्यों के प्रति यह उपदेश करता है कि चार वेद रूप वाणी का सब मनुष्यों के हित के लिए मैंने उपदेश किया है, इसमें किसी का अनधिकार नहीं है अर्थात् सबका अधिकार है। जैसे मैं पक्षपात छोड़कर सब मनुष्यों में वर्त्ताव करता हुआ प्रिय होता हूँ वैसे आप लोग भी हों। ऐसा करने से तुम्हारी सब कामनाएँ सिद्ध होंगी; ऐसा निश्चय है ॥ २६ । २ ॥

अन्यत्र व्याख्यात—(क) परमेश्वर कहता है कि (यथा) जैसे मैं (जनेभ्यः) सब मनुष्यों के लिए (इमाम्) इस (कल्याणीम्) कल्याण अर्थात् संसार और मुक्ति के सुख देनेहारी (वाचम्) ऋग्वेदादि चारों वेदों की वाणी का (आवदानि) उपदेश करता हूँ; वैसे तुम भी किया करो। यहाँ कोई ऐसा प्रश्न करे कि 'जन' शब्द से द्विजों का ग्रहण करना चाहिए क्योंकि स्मृत्यादि ग्रन्थों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ही के वेदों में पढ़ने का अधिकार लिखा है; स्त्री और शूद्रादि वर्णों का नहीं। (उत्तर)—(ब्रह्मराजन्याभ्यां०) इत्यादि देखो परमेश्वर स्वयं कहता है कि हमने ब्राह्मण, क्षत्रिय, (अर्य्याय) वैश्य, (शूद्राय) शूद्र और (स्वाय) अपने भृत्य वा स्त्रियादि (अरणाय) और अति शूद्रादि के लिए भी वेदों का प्रकाश किया है ॥ (सत्यार्थप्रकाश तृतीय समु०) ॥

(ख) (यथेमां वाचं कल्याणीम्०) इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि वेदों के पढ़ने-पढ़ाने का सब मनुष्यों को अधिकार है; और विद्वान् को उनके पढ़ाने का। इसलिए ईश्वर-आज्ञा है कि हे मनुष्य लोगो! जिस प्रकार मैं तुमको चारों वेदों का उपदेश करता हूँ; उसी प्रकार से तुम भी उनको पढ़ के सब मनुष्यों को पढ़ाया और सुनाया करो; क्योंकि यह चारों वेदरूप वाणी सब की कल्याण करने वाली है तथा (आवदानि जनेभ्यः) जैसे सब मनुष्यों के लिए मैं वेदों का उपदेश करता हूँ वैसे ही सदा तुम भी किया करो।

(प्रश्न)—(जनेभ्यः) इस पद से द्विजों ही का ग्रहण करना चाहिए क्योंकि जहाँ कहीं सूत्र और स्मृतियों में पढ़ने का अधिकार लिखा है, वहाँ केवल द्विजों ही का ग्रहण किया है।

(उत्तर)—यह बात ठीक नहीं है क्योंकि जो ईश्वर का अभिप्राय द्विजों ही के ग्रहण करने का होता तो मनुष्य मात्र को उनके पढ़ने का अधिकार कभी न देता जैसा कि इस मन्त्र में प्रत्यक्ष विधान—(ब्रह्मराजन्याभ्या७ँ शूद्राय चार्य्याय च स्वाय चारणाय) अर्थात् वेदाधिकार जैसा ब्राह्मण वर्ण के लिए है वैसा ही क्षत्रिय, अर्य्य=वैश्य, शूद्र, पुत्र, भृत्य और अति शूद्र के लिए भी बराबर है; क्योंकि वेद ईश्वर प्रकाशित है। जो विद्या का पुस्तक होता है वह सब का हितकारक है और ईश्वर रचित पदार्थों के दायभागी सब मनुष्य अवश्य होते हैं; इसलिए उसका जानना सब मनुष्यों को उचित है; क्योंकि वह माल सब के पिता का सब पुत्रों के लिए है; किसी वर्ण विशेष के लिए नहीं। (प्रियो देवानाम्) जैसे मैं इस वेद-रूप सत्य विद्या का उपदेश करके विद्वानों के आत्माओं में प्रिय हो रहा तथा (दक्षिणायै दातुरिह भूयासं)

जैसे दानी वा शीलमान् पुरुष को प्रिय होता हूँ वैसे ही तुम लोग भी पक्षपात रहित होकर वेद-विद्या को सुना कर सब को प्रिय हो। (अयं मे कामः समृध्यताम्) जैसे यह वेदों का प्रचार रूप मेरा काम संसार के बीच में यथावत् प्रचारित होता है इसी प्रकार की इच्छा तुम लोग भी करो कि जिससे उक्त विद्या आगे को भी सब मनुष्यों में प्रकाशित होती रहे। (उपमादो नमतु) जैसे मुझ में अनन्त विद्या से सब सुख हैं वैसे कोई विद्या का ग्रहण और प्रचार करेगा उस को भी मोक्ष तथा संसार का सुख प्राप्त होगा ॥

(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, अधिकारानधिकारविषयः) ॥

भाष्यसार—**१. ईश्वर सब मनुष्यों को वेद पढ़ने और सुनने का अधिकार देता है**—जैसे ईश्वर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्त्यज आदि सब मनुष्यों को इस संसार में इस कल्याणी वेदवाणी का उपदेश करता है वैसे सब मनुष्य इसका उपदेश करें। चार वेद रूप वाणी का परमात्मा ने सब मनुष्यों के हित के लिए उपदेश किया है। इसके पढ़ने पढ़ाने और सुनने सुनाने का सबको अधिकार है।

परमेश्वर दाता जनों तथा विद्वानों को उनके कर्मानुसार दक्षिणा (कर्मफल) प्रदान करके उनका प्रिय होता है। अर्थात् पक्षपात छोड़ कर सब मनुष्यों में वर्त्ताव करता हुआ सब का प्रिय होता है, इसी प्रकार विद्वान् लोग पक्षपात को छोड़कर वर्त्ताव करें तथा सबके प्रिय बनें। इस प्रकार व्यवहार करके सब कामनाओं को सिद्ध करें तथा सुख को प्राप्त करें।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'यथा' पद है अतः उपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि ईश्वर के समान सब विद्वान् वेदवाणी का उपदेश करें ॥ २६ । २ ॥

गृत्समदः । **ईश्वरः**=स्पष्टम् । भुरिगत्यष्टिः । गान्धारः ॥

पुनः स ईश्वरः किं करोतीत्याह ॥

फिर वह ईश्वर क्या करता है, यह उपदेश किया है ॥

बृहस्पते ऽ अति यदर्यो ऽ अर्हाद् द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु ।
यद्दीदयच्छवस ऽ ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् ।
उपयामगृहीतोऽसि बृहस्पतये त्वैष ते योनिर्बृहस्पतये त्वा ॥ ३ ॥

पदार्थः—(**बृहस्पते**) बृहतां=प्रकृत्यादीनां जीवानां च पालकेश्वर (**अति**) (**यत्**) (**अर्यः**) स्वामीश्वरः। अर्यः स्वामिवैश्ययोः। अर्य इतीश्वरना०। निघं० २। २२॥ (**अर्हात्**) योग्यात् (**द्युमत्**) प्रशस्तप्रकाशयुक्तं मनः (**विभाति**) विशेषतया प्रकाशते (**क्रतुमत्**) प्रशस्तप्रज्ञाकर्मयुक्तम् (**जनेषु**) मनुष्येषु (**यत्**) (**दीदयत्**) प्रकाशयत्सत् (**शवसा**) बलेन (**ऋतप्रजात**) ऋतं=सत्यं प्रजातं यस्मात्तत्संबुद्धौ (**तत्**) (**अस्मासु**) (**द्रविणम्**) धनं यशश्च (**धेहि**) (**चित्रम्**) आश्चर्यम् (**उपयामगृहीतः**) उपगतयमैर्विदितः (**असि**) (**बृहस्पतये**) बृहत्या=वाचः पालनाय (**त्वा**) त्वाम् (**एषः**) (**ते**) तव (**योनिः**) प्रमाणम् (**बृहस्पतये**) बृहतामाप्तानां पालकाय (**त्वा**) त्वाम् ॥ ३ ॥

प्रमाणार्थ—(**अर्यः**) स्वामीश्वरः। 'अर्यः स्वामिवैश्ययोः' (३। १। १०३) इस सूत्र से 'अर्य' पद का अर्थ स्वामी=ईश्वर है। 'अर्य' पद निघं० (२। २२) में ईश्वर-नामों में पठित है ॥

अन्वयः—हे बृहस्पते यस्त्वमुपयामगृहीतोऽसि तं त्वा बृहस्पतये यस्यैष ते योनिरस्ति तस्मै

बृहस्पतये त्वा वयं स्वीकुर्मः । हे ऋतप्रजातार्यस्त्वं जनेष्वर्हाद्यद्द्युमत् क्रतुमदतिविभाति यच्छवसा दीदयदस्ति तच्चित्रं विज्ञानं द्रविणं चास्मासु धेहि ॥ ३ ॥

सपदार्थान्वयः — हे **बृहस्पते** ! बृहतां=प्रकृत्यादीनां जीवानां च पालकेश्वर ! **यस्त्वमुपयामगृहीतः** उपगतयमैर्विदितः **असि, तं त्वा** त्वां **बृहस्पतये** बृहत्या=वाचः पालनाय **यस्यैष ते** तव **योनिः** प्रमाणम् **अस्ति, तस्मै बृहस्पतये** बृहता-माप्तानां पालकाय **त्वा** त्वां **वयं स्वीकुर्मः** । **हे ऋतप्रजात** ! ऋतं=सत्यं प्रजातं यस्मात्तत्सम्बुद्धौ ! **अर्यः** स्वामीश्वरः **त्वं जनेषु** मनुष्येषु **अर्हाद्** योग्याद् **यद् द्युमत्** प्रशस्तप्रकाशयुक्तं मनः **क्रतुमत्** प्रशस्त-प्रज्ञाकर्मयुक्तम् **अतिविभाति** विशेषतया प्रकाशते, **यच्छवसा** बलेन **दीदयत्** प्रकाशयत्सत् **अस्ति, तच्चित्रं=विज्ञानम्** आश्चर्यं **द्रविणं** धनं यशश्च **अस्मासु धेहि** ॥ २६ । ३ ॥

भाषार्थ—हे (बृहस्पते) प्रकृति आदि और जीवों के पालक ईश्वर ! जो तू—(उपयामगृहीतः) यमों के अनुष्ठान से विदित होता (असि) है; सो (त्वा) तुझे—(बृहस्पतये) वेदवाणी के पालन के लिए (एषः) यह (ते) तेरा (योनिः) प्रमाण है—उस (बृहस्पतये) आप्त जनों के पालक—(त्वाम्) तुझे हम स्वीकार करते हैं। हे (ऋतप्रजात) सत्य को उत्पन्न करने वाले (अर्यः) स्वामी और ईश्वर तू—(जनेषु) मनुष्यों में (अर्हात्) योग्यता का हेतु (यत्) जो (द्युमत्) प्रशस्त प्रकाश से युक्त (क्रतुमत्) प्रशस्त प्रज्ञा और कर्म से युक्त मन (अति विभाति) विशेष रूप से प्रकाश कर रहा है; (यत्) जो (शवसा) बल (दीदयत्) प्रकाश कर रहा है; (तत्) उस (चित्रम्) विचित्र विज्ञानमय मन को और (द्रविणम्) धन और यश को (अस्मासु) हम लोगों में (धेहि) स्थापित कर ॥ २६ । ३ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या यस्मान्महान्दयालुर्न्यायकार्यणीयान्कश्चिदपि पदार्थो नास्ति, येन वेदाविर्भावद्वारा सर्वे मनुष्या भूषिता, येनाद्भुतं विज्ञानं धनं च विस्तारितं, यो योगाभ्यासगम्योऽस्ति स एवेश्वरोऽस्माभिः सर्वैरुपासनीयतमोऽस्तीति विजानीत ॥ २६ । ३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिससे महान्, दयालु, न्यायकारी और अणीयान्=सूक्ष्म कोई पदार्थ नहीं है; जिसने वेद के आविर्भाव (प्रकाश) के द्वारा सब मनुष्यों को भूषित किया है; जिसने अद्भुत विज्ञान और धन का विस्तार किया है; जो योगाभ्यास से जानने योग्य है, वही ईश्वर हम सब का उपासनीय है; ऐसा जानो ॥ २६ । ३ ॥

अन्यत्र व्याख्यात—(बृहस्पते) हे विद्यारक्षक (ऋतप्रजात) वेद-विद्या से प्रसिद्ध जगदीश्वर ! आप (तदस्मासु द्रविणं धेहि) जो सत्य विद्या रूप अनेक प्रकार का (चित्रं) अद्भुत धन है; सो हमारे बीच में कृपा करके स्थापन कीजिए। कैसा वह धन है कि (जनेषु) विद्वानों और लोक-लोकान्तरों में (क्रतुमत्) जिस से बहुत से यज्ञ किए जाएँ (द्युमत्) जिससे सत्य व्यवहार के प्रकाश का विधान हो (शवसः) बल की रक्षा करने वाला और (दीदयत्) धर्म और सब के सुख का प्रकाश करने वाला तथा (यदर्य्यो०) जिसको धर्म योग्य व्यवहार के द्वारा राजा और वैश्य प्राप्त होकर (विभाति) धर्म-व्यवहार अथवा धार्मिक श्रेष्ठ पुरुषों में प्रकाशमान होता है उस सम्पूर्ण विद्यायुक्त धन को हमारे बीच में निरन्तर धारण कीजिए; ऐसे इस मन्त्र से परमेश्वर की प्रार्थना की जाती है ॥

(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्यविषयः)

भाष्यसार—**ईश्वर क्या करता है**—ईश्वर प्रकृति आदि का और जीवों का पालक है। वह यम-नियम आदि के अनुष्ठान से विदित होता है। वह आप्त जनों का पालक है। वेदवाणी के पालन के लिए उसे सब मनुष्य स्वीकार करें क्योंकि उसके जानने में वेदवाणी ही प्रमाण है। ईश्वर से बढ़ कर महान्, दयालु, न्यायकारी और सूक्ष्म पदार्थ कोई नहीं है। उसी ने वेद के आविर्भाव से सब मनुष्यों को भूषित किया है। ईश्वर से ही सत्य की उत्पत्ति होती है। वही मनुष्यों में योग्यतानुसार प्रशस्त प्रकाश प्रज्ञा और कर्म से युक्त मन को प्रकाशित करता है। वही अद्भुत विज्ञान, धन और यश का विस्तार करता है। वह योगाभ्यास से जानने योग्य है अतः सब मनुष्य ईश्वर को ही उपासनीय समझें ॥ २६ । ३ ॥

रम्याक्षी । **इन्द्रः**=**विद्वान्** । स्वराड्जगती । निषादः ॥

पुनर्मनुष्याः किं कुर्युरित्याह ॥

फिर मनुष्य क्या करें, यह उपदेश किया है ॥

इन्द्र गोमन्निहा याहि पिबा सोमꣳ शतक्रतो । विद्यद्भिर्ग्रावभिः सुतम् ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा गोमत ऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा गोमते ॥ ४ ॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) विद्वन् मनुष्य (**गोमन्**) प्रशस्ता गौर्वाणी विद्यते यस्य तत्संबुद्धौ (**इह**) अस्मिन् संसारे (**आ**) (**याहि**) प्राप्नुहि (**पिब**) **अत्र द्वचचोऽतस्तिङ इति दीर्घः** (**सोमम्**) रसम् (**शतक्रतो**) शतमसंख्यः क्रतुः=प्रज्ञा यस्य तत्सम्बुद्धौ (**विद्यद्भिः**) विद्यमानैः । **अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदम्** (**ग्रावभिः**) मेघैः (**सुतम्**) निष्पन्नम् (**उपयामगृहीतः**) उपयामैर्गृहीतानि=जितानि इन्द्रियाणि येन सः (**असि**) (**इन्द्राय**) ऐश्वर्याय (**त्वा**) त्वाम् (**गोमते**) प्रशस्तपृथिवीराज्ययुक्ताय (**एषः**) (**ते**) (**योनिः**) निमित्तम् (**इन्द्राय**) प्रशस्तैश्वर्यवते (**त्वा**) त्वाम् (**गोमते**) प्रशस्तवाग्वते ॥ ४ ॥

प्रमाणार्थ—(**पिब**) यहाँ 'द्वचचोऽतस्तिङः' (६ । ३ । १३५) इस सूत्र से संहिता में दीर्घ है [**पिबा**] । (**विद्यद्भिः**) विद्यमानैः । यहाँ व्यत्यय से परस्मैपद है ॥

अन्वयः—हे शतक्रतो गोमन्निन्द्र त्वमिहा याहि विद्यद्भिर्ग्रावभिः सुतं सोमं पिब यतस्त्वमुपयामगृहीतोऽसि तस्माद् गोमत इन्द्राय त्वा यस्यैष ते योनिरस्ति तस्मै गोमत इन्द्राय त्वा च वयं सत्कुर्मः ॥ ४ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे शतक्रतो** शतमसंख्यः क्रतुः=प्रज्ञा यस्य तत्सम्बुद्धौ **गोमन्** प्रशस्ता गौर्वाणी विद्यते यस्य तत्सम्बुद्धौ **इन्द्र !** विद्वन् मनुष्य ! **त्वमिह** अस्मिन् संसारे **आ+याहि** प्राप्नुहि; **विद्यद्भिः** विद्यमानैः **ग्रावभिः** मेघैः **सुतं** निष्पन्नं **सोमं** रसं **पिब** ।

यतस्त्वमुपयामगृहीतः उपयामैर्गृहीतानि=जितानि इन्द्रियाणि येन सः **असि, तस्माद् गोमते** प्रशस्तपृथिवीराज्ययुक्ताय **इन्द्राय** ऐश्वर्याय **त्वा** त्वां **यस्यैष ते योनिः** निमित्तम् **अस्ति, तस्मै गोमते**

भाषार्थ—हे (शतक्रतो) शत=असंख्य क्रतु=प्रज्ञा वाले, (गोमन्) प्रशस्त गौ=वाणी वाले, (इन्द्र) विद्वान् मनुष्य ! तू—(इह) इस संसार में (आ+याहि) आ, प्राप्त हो; और (विद्यद्भिः) विद्यमान (ग्रावभिः) मेघों से (सुतम्) उत्पन्न (सोमम्) रस का (पिब) पान कर।

जिससे तू—(उपयामगृहीतः) यम-नियमों के अनुष्ठान से इन्द्रियों को जीतने वाला अर्थात् जितेन्द्रिय (असि) है, अतः (गोमते) प्रशस्त पृथिवी के राज्य से युक्त (इन्द्राय) ऐश्वर्य की प्राप्ति के

प्रशस्तवाग्वते **इन्द्राय** प्रशस्तैश्वर्य्यवते **त्वा** त्वां **च वयं सत्कुर्मः** ॥ २६ । ४ ॥

लिए (त्वा) तुझे—जो (एषः) यह (ते) तेरा (योनिः) निमित्त=उद्देश्य है—सो (गोमते) प्रशस्त वाणी वाले तथा (इन्द्राय) प्रशस्त ऐश्वर्य वाले (त्वा) आपका हम सत्कार करते हैं ॥ २६ । ४ ॥

भावार्थः—ये वैद्यकशास्त्रविद्यासिद्धानि मेघेनोत्पन्नान्यौषधानि सेवन्ते योगं चाभ्यस्यन्ति ते सुखैश्वर्ययुक्ता जायन्ते ॥ २६ । ४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य वैद्यक शास्त्र की विद्या से सिद्ध हुई, मेघ से उत्पन्न औषधों का सेवन करते हैं और योग का अभ्यास करते हैं; वे सुख और ऐश्वर्य से युक्त होते हैं ॥ २६ । ४ ॥

भाष्यसार—**मनुष्य क्या करें**—असंख्य प्रज्ञा वाला, प्रशस्त वाणी वाला विद्वान् इस संसार में सब मनुष्यों को प्राप्त हो। वह विद्यमान मेघों से उत्पन्न हुए रस का पान करे। अर्थात् वैद्यक-शास्त्र की विद्या से सिद्ध की हुई मेघ (वर्षा) से उत्पन्न औषधों का सेवन करे। यम-नियमों से इन्द्रियों को जीते अर्थात् योगाभ्यास करे। वह प्रशस्त पृथिवी के राज्य से युक्त, प्रशस्त वाणी वाला तथा प्रशस्त ऐश्वर्य वाला हो। यही उसका उद्देश्य हो। अतः सब मनुष्य उसका सत्कार करें ॥ २६ । ४ ॥ ●

रम्याक्षी। **सूर्यः=स्पष्टम्**। भुरिक्त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

पुनर्मनुष्यैः किं क्रियेत इत्याह ॥

फिर मनुष्य क्या करें, यह उपदेश किया है ॥

इन्द्रा याहि वृत्रहन् पिबा सोमꣳ शतक्रतो। गोमद्भिर्ग्रावभिः सुतम्।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा गोमत ऽ एष ते योनिरिन्द्राय त्वा गोमते ॥ ५ ॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) परमैश्वर्ययुक्त (**आ**) समन्तात् (**याहि**) गच्छ (**वृत्रहन्**) यो वृत्रं=मेघं हन्ति स सूर्यस्तद्वत् (**पिब**) **अत्र द्वचचोऽतस्तिङ इति दीर्घः।** (**सोमम्**) ऐश्वर्यकारकं रसम् (**शतक्रतो**) बहु-प्रज्ञाकर्मयुक्त (**गोमद्भिः**) बहवो गावः=किरणा विद्यन्ते येषु तैः (**ग्रावभिः**) गर्जनायुक्तैर्मेघैः (**सुतम्**) निष्पादितम् (**उपयामगृहीतः**) सुनियमैर्निगृहीतात्मा (**असि**) (**इन्द्राय**) ऐश्वर्याय (**त्वा**) त्वाम् (**गोमते**) बहुधेन्वादियुक्ताय (**एषः**) (**ते**) तव (**योनिः**) गृहम् (**इन्द्राय**) ऐश्वर्यमिच्छुकाय (**त्वा**) त्वाम् (**गोमते**) प्रशस्तभूमिराज्ययुक्ताय ॥ ५ ॥

प्रमाणार्थ—(**पिब**) यहाँ 'द्वचचोऽतस्तिङः' (६ । ३ । १३५) इस सूत्र से संहिता में दीर्घ है [**पिबा**] ॥

अन्वयः—हे शतक्रतो वृत्रहन्निन्द्र त्वं गोमद्भिर्ग्रावभिः सहायाहि सुतं सोमं पिब। यतस्त्वं गोमत इन्द्रायोपयामगृहीतोऽसि तं त्वा यस्यैष ते गोमत इन्द्राय योनिरस्ति तं त्वा च वयं सत्कुर्याम ॥५॥

सपदार्थान्वयः—हे **शतक्रतो** बहु-प्रज्ञाकर्मयुक्त **वृत्रहन्** यो वृत्रं=मेघं हन्ति स सूर्य-स्तद्वद् **इन्द्र** ! परमैश्वर्ययुक्त ! **त्वं गोमद्भिः** बहवो गावः=किरणा विद्यन्ते येषु तैः **ग्रावभिः** गर्जना-युक्तैर्मेघैः **सहायाहि** समन्ताद् गच्छ **सुतं** निष्पादितं

भावार्थ—हे (शतक्रतो) बहुत प्रज्ञा और कर्म से युक्त, (वृत्रहन्) वृत्र=मेघ का हनन करने वाले सूर्य के तुल्य, (इन्द्र) परम ऐश्वर्य से युक्त मनुष्य ! तू—(गोमद्भिः) बहुत गौ=किरणों वाले (ग्रावभिः) गर्जना-युक्त मेघों के साथ (आ+याहि)

सोमम् ऐश्वर्यकारकं रसं **पिब** । **यतस्त्वं गोमते** बहुधेन्वादियुक्ताय **इन्द्राय** ऐश्वर्याय **उपयामगृहीतः** सुनियमैर्निगृहीतात्मा **असि, तं त्वा** त्वां **यस्यैष ते गोमते** प्रशस्तभूमिराज्ययुक्ताय **इन्द्राय** ऐश्वर्यमिच्छुकाय **योनिः** गृहम् **अस्ति, तं त्वा** त्वां **च वयं** सत्कुर्याम ॥ २६ । ५ ॥

सब ओर जा; तथा मेघों से (सुतम्) उत्पन्न (सोमम्) ऐश्वर्य-कारक रस का (पिब) पान कर । क्योंकि तू (गोमते) बहुत धेनु आदि से युक्त (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिए (उपयामगृहीतः) नियमों के अनुष्ठान से आत्मा को वश में किए हुए (असि) है, सो (त्वा) तुझे—जो (एषः) यह (ते) तेरा (गोमते) प्रशस्त भूमि राज्य से युक्त (इन्द्राय) ऐश्वर्य के इच्छुक के लिए (योनिः) घर है—सो (त्वा) तुझे हम सत्कृत करते हैं ॥ २६ । ५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । हे मनुष्य ! यथा मेघहन्ता सूर्यः सर्वस्य जगतो रसं पीत्वा वर्षयित्वा सर्वं जगत्प्रीणाति तथैव त्वं महौषधिरसान् पिब ऐश्वर्योन्नतये प्रयतस्व च ॥ २६।५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। हे मनुष्य ! जैसे मेघों का हनन करने वाला सूर्य सब जगत् के रस को पीकर, और उसे बरसा कर सब जगत् को तृप्त करता है; वैसे ही तू महौषधियों के रसों का पान कर; और ऐश्वर्य की उन्नति के लिए प्रयत्न कर ॥ २६ । ५ ॥

भाष्यसार—मनुष्य क्या करे—विद्वान् मनुष्य बहुत प्रज्ञा और शुभ कर्म से युक्त तथा मेघ के हनन करने वाले सूर्य के समान हो; अर्थात् जैसे मेघहन्ता सूर्य सब जगत् के रस को पीकर और उसे बरसा कर सब जगत् को तृप्त करता है वैसे-वैसे मेघ (वर्षा) से उत्पन्न महोषधियों के ऐश्वर्यकारक रस का पान करे। वह विद्वान् बहुत धेनुओं (दुधारू गाय), ऐश्वर्य, प्रशस्त भूमि-राज्य से युक्त हो तथा सदा ऐश्वर्य का इच्छुक हो। उत्तम नियमों के आचरण से आत्मा को वश में रखने वाला हो। ऐसे विद्वान् का सब मनुष्य सत्कार करें ॥ २६ । ५ ॥

प्रादुराक्षिः । **वैश्वानरः=अग्निः** । जगती । निषादः ॥

पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् । अजस्रं घर्ममीमहे ।
उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥ ६ ॥

पदार्थः—(**ऋतावानम्**) य ऋतं=जलं वनति=संभजति तम् (**वैश्वानरम्**) विश्वेषां नराणां मध्ये राजमानम् (**ऋतस्य**) जलस्य (**ज्योतिषः**) प्रकाशस्य (**पतिम्**) पालकम् (**अजस्रम्**) निरन्तरम् (**घर्मम्**) प्रतापम् (**ईमहे**) याचामहे (**उपयामगृहीतः**) सुनियमैर्निगृहीतान्तःकरणः (**असि**) (**वैश्वानराय**) विश्वस्य नायकाय (**त्वा**) (**एषः**) (**ते**) (**योनिः**) गृहम् (**वैश्वानराय**) (**त्वा**) त्वाम् ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा वयमृतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिं घर्ममजस्रमीमहे तथा यूयमप्येनं याचत । यस्त्वं वैश्वानरायोपयामगृहीतोऽसि तं त्वा यस्यैष ते योनिरस्ति तं त्वा च वैश्वानराय सत्कुर्मस्तथा यूयमपि कुरुत ॥ ६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! **यथा वयमृतावानं** य ऋतं=जलं वनति=संभजति तं, **वैश्वानरं** विश्वेषां नराणां मध्ये राजमानम्, **ऋतस्य** जलस्य **ज्योतिषः** प्रकाशस्य **पतिं** पालकं, **घर्मं** प्रतापम् **अजस्रं** निरन्तरम् **ईमहे** याचामहे, **तथा यूयमप्येनं याचत । यस्त्वं वैश्वानराय** विश्वस्य नायकाय **उपयामगृहीतः** सुनियमैर्निगृहीतान्तःकरण, **असि, तं त्वा** त्वां **यस्यैष ते योनिः** गृहम् **अस्ति, तं त्वा** त्वां **च वैश्वानराय** विश्वस्य नायकाय **सत्कुर्मस्तथा यूयमपि कुरुत** ॥ २६ । ६ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम—(ऋतावानम्) ऋत=जल को विभक्त करने वाला, (वैश्वानरम्) सब नरों के मध्य में प्रकाशमान, (ऋतस्य) जल तथा (ज्योतिषः) प्रकाश के (पतिम्) पति=पालक, (घर्मम्) प्रताप=अग्नि की (अजस्रम्) निरन्तर (ईमहे) कामना करते हैं; वैसे तुम भी इसकी कामना करो। जो तू—(वैश्वनराय) विश्व के नायक के लिए (उपयामगृहीतः) उत्तम नियमों के अनुष्ठान से अन्तःकरण को वश में किए हुए (असि) है; सो (त्वा) तुझे—जो (एषः) यह (ते) तेरा (योनिः) घर है—सो (त्वा) तुझे (वैश्वानराय) विश्व के नायक का हम सत्कार करते हैं; वैसे तुम भी करो ॥ २६ । ६ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। योऽग्निर्जलादीनि मूर्त्तानि द्रव्याणि स्वतेजसा भिनत्ति निरन्तरं जलमाकर्षति च तं विदित्वा मनुष्याः सर्वर्त्तुसुखकारकं गृहमलंकुर्युः ॥ २६ । ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। जो अग्नि जल आदि मूर्त्त द्रव्यों का अपने तेज से भेदन करता है; और निरन्तर जल को खेंचता है, उसे जानकर मनुष्य सब ऋतुओं में सुखकारक घर को अलंकृत करें ॥ २६ । ६ ॥

भाष्यसार—१. **मनुष्य क्या करे**—विद्वान् मनुष्य—जल आदि मूर्त्त द्रव्यों का अपने तेज से भेदन करने वाले तथा जल का निरन्तर आकर्षण करने वाले, सब नरों के मध्य में प्रकाशमान, जल एवं प्रकाश के पालक अग्नि की सदा कामना करें। विश्व के नायक अग्नि की प्राप्ति के लिए विद्वान् मनुष्य उत्तम नियमों से अन्तःकरण को वश में करे। अग्नि को जानकर सब ऋतुओं में सुखकारक घर को अलंकृत करे। इस अग्नि-विद्या के ज्ञाता विद्वान् का सब मनुष्य सत्कार करें।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि विद्वानों के समान सब मनुष्य मन्त्रोक्त अग्नि की कामना करें ॥ २६ । ६ ॥

कुत्सः। **वैश्वानरोऽग्निः**=**विश्वस्य नायकः सुराजा**। जगती। निषादः ॥

पुनर्मनुष्याः किं कुर्युरित्याह ॥

फिर मनुष्य क्या करें, यह उपदेश किया है ॥

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः ।
इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण ।
उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥ ७ ॥

पदार्थः—(**वैश्वानरस्य**) विश्वस्य नायकस्य (**सुमतौ**) शोभनायां बुद्धौ (**स्याम**) भवेम (**राजा**) प्रकाशमानः (**हि**) खलु (**कम्**) सुखम् (**भुवनानाम्**) (**अभिश्रीः**) अभितः=सर्वतः श्रियो यस्य सः

(**इतः**) अस्मात् कारणात् (**जातः**) प्रकटः सन् (**विश्वम्**) सर्वं जगत् (**इदम्**) (**वि, चष्टे**) प्रकाशयति (**वैश्वानरः**) विद्युदग्निः (**यतते**) (**सूर्येण**) सूर्यमण्डलेन (**उपयामगृहीतः**) सुनियमैः स्वीकृतः (**असि**) (**वैश्वानराय**) अग्नये (**त्वा**) त्वाम् (**एषः**) (**ते**) तव (**योनिः**) गृहम् (**वैश्वानराय**) अग्निकार्यसाधनाय (**त्वा**) त्वाम् ॥ ७ ॥

अन्वयः—यथा राजा भुवनानामभिश्रीः कं हि साध्नोति इतो जातः सन् विश्वमिदं विचष्टे यथा सूर्येण सह वैश्वानरो यतते यथा वयं वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम । हे विद्वन् यतस्त्वमुपयामगृहीतोऽसि तस्माद्वैश्वानराय त्वा यस्यैष ते योनिरस्ति तं त्वा च वैश्वानराय सत्करोमि ॥ ७ ॥

सपदार्थान्वयः—**यथा राजा** प्रकाशमानः **भुवनानामभिश्रीः** अभितः=सर्वतः श्रियो यस्य सः **कं** सुखं **हि** खलु **साध्नोति, इतः** अस्मात् कारणात् **जातः** प्रकटः **सन् विश्वं** सर्वं जगद् **इदं वि+चष्टे** प्रकाशयति; **यथा सूर्येण** सूर्यमण्डलेन **सह वैश्वानरः** विद्युदग्निः **यतते, तथा वयं वैश्वानरस्य** विश्वस्य नायकस्य **सुमतौ** शोभनायां बुद्धौ **स्याम** भवेम ।

हे **विद्वन्** ! **यतस्त्वमुपयामगृहीतः** सुनियमैः स्वीकृतः **असि, तस्माद्वैश्वानराय** अग्नये **त्वा** त्वां **यस्यैष ते** तव **योनिः** गृहम् **अस्ति, तं त्वा** त्वां **च वैश्वानराय** अग्निकार्यसाधनाय **सत्करोमि** ॥२६।७॥

भाषार्थ—जैसे (राजा) प्रकाशमान, (भुवनानाम्) लोकों को (अभिश्रीः) सब ओर से सुशोभित करने वाला अग्नि (कम्) सुख को (हि) निश्चय से सिद्धि करता है; (इतः) अतः (जातः) प्रसिद्ध होकर (इदम्) इस (विश्वम्) सब जगत् को (वि+चष्टे) प्रकाशित करता है; और जैसे (सूर्येण) सूर्यमण्डल के साथ (वैश्वानरः) विद्युत् रूप अग्नि (यतते) चेष्टा करता है, वैसे हम लोग (वैश्वानरस्य) विश्व के नायक की (सुमतौ) सुमति में रहें ।

हे विद्वान् ! जिससे तू (उपयामगृहीतः) उत्तम नियमों से स्वीकार किया हुआ (असि) है; अतः (वैश्वानराय) अग्नि के लिए (त्वा) तुझे—जो (एषः) यह (ते) तेरा (योनिः) घर है—सो (त्वा) तुझे (वैश्वानराय) अग्नि-कार्य की सिद्धि के लिए सत्कृत करता हूँ ॥ २६ । ७ ॥

भावार्थः—यथा सूर्येण सह चन्द्रमा रात्रिं सुभूषयति तथा सुराज्ञा प्रजा प्रकाशिता भवति; विद्वान् शिल्पिजनश्च वह्निना सर्वोपयोगीनि कार्याणि साध्नोति ॥ २६ । ७ ॥

भावार्थ—जैसे सूर्य के साथ चन्द्रमा रात्रि को सुभूषित करता है, वैसे उत्तम राजा के साथ प्रजा प्रकाशित होती है; विद्वान् और शिल्पी जन अग्नि से सबके उपयोगी कार्यों को सिद्ध करते हैं ॥ २६ । ७ ॥

भाष्यसार—**मनुष्य क्या करे**—जैसे प्रकाशमान, लोकों को सब ओर से सुशोभित करने वाला, अग्नि निश्चय से सुख को सिद्ध करता है, प्रकट हुआ अग्नि सब जगत् को प्रकाशित करता है, सूर्यमण्डल के साथ विद्युत् रूप अग्नि तथा चन्द्रमा रात्रि को भूषित करता है वैसे विश्व का नायक श्रेष्ठ राजा प्रजा को प्रकाशित करता है । सब प्रजा उसकी सुमति में रहे ।

श्रेष्ठ नियमों से स्वीकृत विद्वान् और शिल्पी जन अग्नि से सर्वोपयोगी कार्य सिद्ध करें । विद्वान् का घर अग्नि-कार्य की सिद्धि के लिए हो । अतएव विद्वान् का सत्कार करें ॥ २६ । ७ ॥

कुत्सः । **वैश्वानरः**=विद्वान् । जगती । निषादः ॥

पुनर्मनुष्याः किंवत् किं कुर्युरित्याह ॥

फिर मनुष्य किसके समान क्या करें, यह उपदेश किया है ॥

वैश्वानरो न ऽ ऊतय ऽ आ प्र यातु परावतः । अग्निरुक्थेन वाहसा ।
उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥ ८ ॥

पदार्थः—(**वैश्वानरः**) विश्वेषु नायकेषु=विद्वत्सु राजमानः (**नः**) अस्माकम् (**ऊतये**) रक्षणाद्याय (**आ**) (**प्र, यातु**) गच्छतु (**परावतः**) दूरदेशात् (**अग्निः**) पावकवद्वर्त्तमानः (**उक्थेन**) प्रशंसनीयेन (**वाहसा**) प्रापणेन (**उपयामगृहीतः**) विद्याविचारसंयुक्तः (**असि**) (**वैश्वानराय**) प्रकाशमानाय (**त्वा**) त्वाम् (**एषः**) (**ते**) तव (**योनिः**) गृहम् (**वैश्वानराय**) (**त्वा**) त्वाम् ॥ ८ ॥

अन्वयः—यथा वैश्वानरः परावतो न ऊतय आ प्रयातु तथाऽग्निरुक्थेन वाहसा सहाप्नोति यस्त्वं वैश्वानरायोपयामगृहीतोऽसि तं त्वा यस्यैष ते वैश्वानराय योनिरस्ति तं त्वा च स्वीकुर्मः ॥ ८ ॥

सपदार्थान्वयः—**यथा वैश्वानरः** विश्वेषु नायकेषु=विद्वत्सु राजमानः **परावतः** दूरदेशात् **नः** अस्माकम् **ऊतये** रक्षणाद्याय **आ+प्र+यातु** गच्छतु, **तथा अग्निः** पावकवद्वर्त्तमानः **उक्थेन** प्रशंसनीयेन **वाहसा** प्रापणेन **सहाप्नोतु । यस्त्वं वैश्वानराय** प्रकाशमानाय **उपयामगृहीतः** विद्याविचारसंयुक्तः **असि, तं त्वा** त्वां, **यस्यैष ते** तव **वैश्वानराय** प्रकाशमानाय **योनिः** गृहम् **अस्ति तं त्वां च स्वीकुर्मः** ॥ २६ । ८ ॥

भाषार्थ—जैसे (वैश्वानरः) सब विद्वानों में विद्या से प्रकाशमान सूर्य (परावतः) दूर देश से (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा आदि के लिए (आ+प्र+यातु) सब ओर से प्राप्त होता है; वैसे (अग्निः) अग्नि के तुल्य विद्वान् (उक्थेन) प्रशंसनीय (वाहसा) वाहन=यान के साथ हमें प्राप्त हो। जो तू (वैश्वानराय) प्रकाशमान जिज्ञासु के लिए (उपयामगृहीतः) विद्या-विचार से संयुक्त (असि) है, सो (त्वा) तुझे—जो (एषः) यह (ते) तेरा (वैश्वानराय) प्रकाशमान जिज्ञासु के लिए (योनिः) घर है—सो (त्वा) तुझे हम स्वीकार करते हैं ॥ २६ । ८ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यथा सूर्यो दूरदेशात्स्वप्रकाशेन दूरस्थान् पदार्थान् प्रकाशयति तथा विद्वांसः स्वसूपदेशेन दूरस्थान् जिज्ञासून् प्रकाशयन्ति ॥ २६ । ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है । जैसे सूर्य दूर देश से अपने प्रकाश से दूरस्थ पदार्थों को प्रकाशित करता है; वैसे विद्वान् लोग अपने उत्तम उपदेश से जिज्ञासु लोगों को प्रकाशित करते हैं ॥ २६ । ८ ॥

भाष्यसार—**मनुष्य किसके तुल्य क्या करें**—सब विद्वानों में विद्या से प्रकाशमान सूर्य दूर देश से हमारी रक्षा आदि के लिए प्राप्त होता है एवं दूरस्थ पदार्थों को प्रकाशित करता है वैसे अग्नि के तुल्य विद्या से प्रकाशमान विद्वान् प्रशंसनीय वाहन से सब दूरस्थ जिज्ञासुओं को प्राप्त हो तथा उन्हें अपने श्रेष्ठ उपदेश से प्रकाशित करे । विद्वान् मनुष्य प्रकाशमान जिज्ञासु के लिए विद्या-विचार से संयुक्त हो । विद्वान् का घर जिज्ञासु के लिए हो । विद्वान् के घर तथा विद्वान् को सब स्वीकार करें ॥ २६ । ८ ॥

कुत्सः । **वैश्वानरः**=विद्वान् । जगती । निषादः ॥

पुनः कैः कस्मात् किं याचनीयमित्याह ॥

फिर किनको किस से क्या माँगना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

अ॒ग्निर्ऋषिः॒ पव॑मानः॒ पाञ्च॑जन्यः॒ पु॒रोहि॑तः । तमी॑महे महाग॒यम् ।
उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽस्य॒ग्नये॑ त्वा॒ वर्च॑से ऽ ए॒ष ते॒ योनि॑र॒ग्नये॑ त्वा॒ वर्च॑से ॥ ९ ॥

पदार्थः—(**अग्निः**) पावकवद्विद्यया प्रकाशितः (**ऋषिः**) मन्त्रार्थवेत्ता (**पवमानः**) पवित्रः (**पाञ्चजन्यः**) पञ्चानां पञ्चसु वा जनेषु साधुः (**पुरोहितः**) पुरस्ताद्धितकारी (**तम्**) (**ईमहे**) याचामहे (**महागयम्**) महान्तो गया=गृहाणि प्रजा धनं वा यस्य तम् । **गयमिति गृहना० । निघं० ३ । ४ । अपत्यना० । निघं० २ । २ । धनना० च । निघं० २ । १० ।** (**उपयामगृहीतः**) (**असि**) (**अग्नये**) विदुषे (**त्वा**) त्वाम् (**वर्चसे**) अध्यापनाय (**एषः**) (**ते**) (**योनिः**) निमित्तम् (**अग्नये**) (**त्वा**) त्वाम् (**वर्चसे**) विद्याप्रकाशाय ॥ ९ ॥

प्रमाणार्थ—(**महागयम्**) 'गय' यह पद निघं० (३ । ४) में गृह-नामों में; निघं० (२ । २) में अपत्य-नामों में और निघं० (२ । १०) में धन-नामों में पठित है । गृह=घर । अपत्य=सन्तान ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यः पाञ्चजन्यः पुरोहितः पवमान ऋषिरग्निरस्ति तं महागयं यथा वयमीमहे तथा त्वं वर्चसेऽग्नय उपयामगृहीतोऽसि तस्मात् त्वा यस्यैष ते योनिर्वर्चसेऽग्नयेऽस्ति तं त्वा च वयमीमहे तथैतं यूयमपीहध्वम् ॥ ९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **यः पाञ्चजन्यः** पञ्चानां पञ्चसु वा जनेषु साधुः **पुरोहितः** पुरस्ताद्धितकारी **पवमानः** पवित्रः **ऋषिः** मन्त्रार्थवेत्ता **अग्निः** पावकवद्विद्यया प्रकाशितः **अस्ति, तं महागयं** महान्तो गया=गृहाणि प्रजा धनं वा यस्य तं **यथा वयमीमहे** याचामहे **तथा त्वं वर्चसे** अध्यापनाय **अग्नये** विदुषे **उपयामगृहीतोऽसि, तस्मात् त्वा** त्वां **यस्यैष ते योनिः** निमित्तं **वर्चसे** विद्याप्रकाशाय **अग्नये** विदुषे **अस्ति, तं त्वा** त्वां **च वयमीमहे** याचामहे, **तथैतं यूयमपीहध्वम्** ॥२६।९॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो (पांचजन्यः) पाँच जनों में उत्तम (पुरोहितः) प्रथम से हितकारी, (पवमानः) पवित्र, (ऋषिः) मन्त्रार्थ का ज्ञाता, (अग्निः) अग्नि के तुल्य विद्या से प्रकाशित विद्वान् है; (तम्) उस (महागयम्) महान् गय=घर प्रजा वा धन वाले उक्त विद्वान् की जैसे हम (ईमहे) कामना करते हैं; वैसे तू—(वर्चसे) अध्यापन एवं (अग्नये) विद्वान् के लिए (उपयामगृहीतः) उत्तम नियमों से स्वीकृत (असि) है सो (त्वा) तुझे—जो (एषः) यह (ते) तेरा (योनिः) निमित्त=उद्देश्य (वर्चसे) विद्या-प्रकाश एवं (अग्नये) विद्वान् के लिए है—सो (त्वा) तुझे हम (ईमहे) चाहते हैं; तेरी कामना करते हैं; वैसे इसकी तुम भी कामना करो ॥ २६ । ९ ॥

भावार्थः — सर्वैर्मनुष्यैर्वेदशास्त्रविद्भ्यो विद्वद्भ्यः सदा विद्याप्राप्तिर्याचनीया येन महत्त्वं प्राप्नुयुः ॥ २६ । ९ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य—वेदादि शास्त्रों के ज्ञाता विद्वानों से सदा विद्या-प्राप्ति की याचना करें; जिससे महत्त्व (बड़प्पन) को प्राप्त हों ॥ २६ । ९ ॥

भाष्यसार—**कौन किससे क्या याचना करें**—सब मनुष्य—पाँच जनों में श्रेष्ठ, प्रथम से हितकारी, पवित्र, मन्त्रार्थ का ज्ञाता, अग्नि के तुल्य विद्या से प्रकाशित, महान् घर, प्रजा और धन से

युक्त वेदशास्त्रों के ज्ञाता विद्वानों से सदा विद्या-प्राप्ति की याचना करें। उन्हें अध्यापन तथा विद्वानों की प्राप्ति के लिए श्रेष्ठ नियमों से स्वीकार करें। उक्त विद्वानों का उद्देश्य विद्या-प्रकाश और विद्वानों की उपलब्धि कराना हो ॥ २६ । ९ ॥ ●

वसिष्ठः । **इन्द्रः=परमैश्वर्ययुक्तो राजा** । निचृज्जगती । निषादः ॥

अथ राजसत्कारमाह ॥

अब राजा के सत्कार का उपदेश किया है ॥

म॒हाँ२ऽ इन्द्रो॒ वज्र॑हस्तः षोड॒शी शर्म॑ यच्छतु । हन्तु॑ पा॒प्मानं॒ यो॒ऽस्मान् द्वेष्टि॑ । उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि म॒हेन्द्रा॑य त्वै॒ष ते॒ योनि॑र्म॒हेन्द्रा॑य त्वा ॥ १० ॥

पदार्थः—(**महान्**) बृहत्तमः (**इन्द्रः**) परमैश्वर्ययुक्तो राजा (**वज्रहस्तः**) वज्रो हस्तयोर्यस्य सः (**षोडशी**) षोडशकलायुक्तः (**शर्म**) शृण्वन्ति दुःखानि यस्मिन् तद्गृहम् । शर्मेति गृहना० । निघं० ३ । १४ । (**यच्छतु**) ददातु (**हन्तु**) (**पाप्मानम्**) दुष्टकर्मकारिणम् (**यः**) (**अस्मान्**) (**द्वेष्टि**) अप्रीतयति (**उपयामगृहीतः**) (**असि**) (**महेन्द्राय**) महद्गुणविशिष्टाय (**त्वा**) त्वाम् (**एषः**) (**ते**) (**योनिः**) निमित्तम् (**महेन्द्राय**) (**त्वा**) त्वाम् ॥ १० ॥

प्रमाणार्थ—(**शर्म**) शृण्वन्ति दुःखानि यस्मिन् तद् गृहम् । 'शर्म' यह पद निघण्टु (३ । १४) में गृह-नामों में पठित है । गृह=घर ॥

अन्वयः—हे मनुष्या ! वज्रहस्तः षोडशी महानिन्द्रः शर्म यच्छतु योऽस्मान् द्वेष्टि तं पाप्मानं हन्तु यस्त्वं महेन्द्रायोपयामगृहीतोऽसि तं त्वा यस्यैष ते महेन्द्राय योनिरस्ति तं त्वा च वयं सत्कुर्याम ॥१०॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! वज्रहस्तः** वज्रो हस्तयोर्यस्य सः **षोडशी** षोडशकलायुक्तः **महान्** बृहत्तमः **इन्द्रः** परमैश्वर्ययुक्तो राजा **शर्म** शृण्वन्ति दुःखानि यस्मिन् तद् गृहं **यच्छतु** ददातु; **योऽस्मान् द्वेष्टि** अप्रीतयति, **तं पाप्मानं** दुष्टकर्मकारिणं **हन्तु । यस्त्वं महेन्द्राय** महद्गुणविशिष्टाय **उपयामगृहीतोऽसि तं त्वा** त्वां **यस्यैष ते महेन्द्राय** महद्गुणविशिष्टाय **योनिः** निमित्तम् **अस्ति, तं त्वा** त्वां **च वयं सत्कुर्याम** ॥ २६ । १० ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! (वज्रहस्तः) दोनों हाथों में वज्र रखने वाला, (षोडशी) सोलह कला से युक्त, (महान्) बड़ा, (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य से युक्त राजा (शर्म) दुःखों को सुनने का स्थान (यच्छतु) प्रदान करे। (यः) जो (अस्मान्) हम से (द्वेष्टि) द्वेष=अप्रीति करता है उस (पाप्मानम्) दुष्ट कर्म करने वाले पापी को (हन्तु) मार डाले । जो तू (महेन्द्राय) महान् गुणों से विशिष्ट पुरुष के लिए (उपयामगृहीतः) उत्तम नियमों से स्वीकृत (असि) है; सो तुझे—जो (एषः) यह (ते) तेरा (महेन्द्राय) महान् गुणों से विशिष्ट पुरुष के लिए (योनिः) निमित्त=उद्देश्य है; सो (त्वा) तुझे हम सत्कृत करते हैं ॥ २६ । १० ॥

भावार्थः—हे प्रजाजना यो युष्मभ्यं सुखं दद्याद् दुष्टान् हन्यान्महैश्वर्यं वर्द्धयेत्स युष्माभिः सदा सत्कर्त्तव्यः ॥ २६ । १० ॥

भावार्थ—हे प्रजा के लोगो ! जो तुम्हें सुख देवे, दुष्टों का हनन करे, और महान् ऐश्वर्य को बढ़ावे; उसका तुम सदा सत्कार करो ॥ १० ॥

भाष्यसार—**राजा का सत्कार**—दोनों हाथों में वज्र रखने वाला, सोलह कला से युक्त, महान्, परम ऐश्वर्य से युक्त राजा प्रजा-जनों को सुख प्रदान करे। जो दुष्ट कर्म करने वाला पापी प्रजा से द्वेष करता है उसका हनन करे तथा ऐश्वर्य को बढ़ावे। महान गुणों से विशिष्ट राजा को प्रजाजन स्वीकार करें। महान् गुणों के निमित्त से प्रजाजन राजा का सत्कार करें॥ २६। १०॥ ●

नोधा गोतमः। **अग्निः=प्रजारक्षकः पुरुषः**। विराडनुष्टुप्। गान्धारः॥

पुना राजा किं कुर्यादित्याह॥

फिर राजा क्या करे, यह उपदेश किया है॥

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव ऽ इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे॥ ११॥

पदार्थः—(**तम्**) (**वः**) युष्मभ्यम् (**दस्मम्**) दुःखोपक्षयितारम् (**ऋतीषहम्**) गतिसहम्। **अत्र** संहितायामिति दीर्घः (**वसोः**) धनस्य (**मन्दानम्**) आनन्दन्तम् (**अन्धसः**) अन्नस्य (**अभि**) सर्वतः (**वत्सम्**) (**न**) इव (**स्वसरेषु**) दिनेषु (**धेनवः**) गावः (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्यवन्तम् (**गीर्भिः**) वाग्भिः (**नवामहे**) स्तुवीमहे॥ ११॥

प्रमाणार्थ—(**ऋतीषहम्**) यहाँ 'ऋति' पद में 'संहितायाम्' (६। ३। ११४) इस सूत्र से संहिता में दीर्घ है [**ऋती**]॥

अन्वयः—हे मनुष्या वयं स्वसरेषु धेनवो वत्सं न यं दस्ममृतीषहं वसोरन्धसो मन्दानमिन्द्रं वो गीर्भिरभि नवामहे तथा तं भवन्तोऽपि सदा प्रीतिभावेन स्तुवन्तु॥ ११॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः! वयं स्वसरेषु** दिनेषु **धेनवः** गावः **वत्सं न** इव **यं दस्मं** दुःखोपक्षयितारम् **ऋतीषहं** गतिसहं **वसोः** धनस्य **अन्धसः** अन्नस्य **मन्दानम्** आनन्दन्तम् **इन्द्रं** परमैश्वर्यवन्तं **वः** युष्मभ्यं **गीर्भिः** वाग्भिः **अभिनवामहे** सर्वतः स्तुवीमहे **तथा तं भवन्तोऽपि सदा प्रीतिभावेन स्तुवन्तु**॥ २६। ११॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो! हम—(स्वसरेषु) दिनों में=प्रतिदिन (धेनवः) गौवें (वत्सम्) बछड़े के (न) समान—जिस (दस्मम्) दुःखों का उपक्षय=विनाश करने वाले, (ऋतीषहम्) गति को सहन करने वाले, (वसोः) धन और (अन्धसः) अन्न का (मन्दानम्) आनन्द लेने वाले (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्यवान् राजा की (वः) तुम्हारे लिए (गीर्भिः) वाणियों से (अभिनवामहे) सब ओर स्तुति करते हैं; वैसे उसकी आप भी सदा प्रीति भाव से स्तुति करो॥ २६। ११॥

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः। यथा गावः प्रतिदिनं स्वं स्वं वत्सं पालयन्ति तथैव प्रजारक्षकः पुरुषः प्रजा नित्यं रक्षेत्; प्रजायै धनधान्यैः सुखानि वर्धयेत्॥ २६। ११॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलंकार है। जैसे गौवें प्रतिदिन अपने-अपने बछड़े का पालन करती हैं; वैसे ही प्रजा का रक्षक पुरुष (राजा) प्रजा की नित्य रक्षा करे; प्रजा के लिए धन-धान्यों से सुखों को बढ़ावे॥ २६। ११॥

भाष्यसार—**राजा क्या करे**—प्रजा-रक्षक राजा—जैसे गौवें प्रतिदिन अपने-अपने

बछड़ों का पालन करती हैं वैसे प्रजा का नित्य पालन करे तथा प्रजा के लिए धन-धान्यों से सुखों को बढ़ावे। राजा दुःखों का उपक्षय=विनाश करने वाला, गति (यात्रा) को सहन करने वाला, धन और अन्न का आनन्द लेने वाला और परम ऐश्वर्यवान् हो। प्रजाजन इस राजा की विविध वाणियों से सब ओर स्तुति करें ॥ २६। ११ ॥

नोधा गोतमः। **अग्निः=राज्ञी**। विराड्गायत्री। षड्जः ॥

पुनः सा राज्ञी किं कुर्यादित्याह ॥

फिर वह रानी क्या करे, यह उपदेश किया है ॥

यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो। महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजा ऽ उदीरते ॥ १२ ॥

पदार्थः—(**यत्**) (**वाहिष्ठम्**) अतिशयेन वाहयितारम् (**तत्**) (**अग्नये**) पावकाय (**बृहत्**) महत् (**अर्च**) सत्कुरु (**विभावसो**) प्रकाशितधन (**महिषीव**) यथा राज्ञी तथा (**त्वत्**) तव सकाशात् (**रयिः**) धनम् (**त्वत्**) (**वाजाः**) अन्नादीनि (**उत्**) अपि (**ईरते**) प्राप्नुवन्ति ॥ १२ ॥

अन्वयः—हे विभावसो अग्नये यद्बृहद्वाहिष्ठमस्ति तदर्च तद्वयमप्यर्चेम महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजाश्चोदीरते तं वयं सत्कुर्याम ॥ १२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **विभावसो** ! प्रकाशितधन ! **अग्नये** पावकाय **यद् बृहद्** महत् **वाहिष्ठम्** अतिशयेन वाहयितारम् **अस्ति, तदर्च** सत्कुरु, **तद्वयमप्यर्चेम** । **महिषीव** यथा राज्ञी तथा **त्वत्** तव सकाशात् **रयिः** धनं **त्वत्** तव सकाशाद् **वाजाः** अन्नादीनि **च, उदीरते** प्राप्नुवन्ति, **तं वयं सत्कुर्याम** ॥ २६। १२ ॥

भावार्थः—यथा राज्ञी सुखप्रापिका महाधनप्रदा भवति तथैव राज्ञः सकाशात्सर्वे धनमन्यान्युत्तमानि वस्तूनि च प्राप्नुयुः ॥ २६। १२ ॥

भाषार्थ—हे (विभावसो) प्रकाशित धन वाले राजन्! (अग्नये) अग्नि के लिए (यत्) जो (बृहत्) बड़े (वाहिष्ठम्) द्रव्यों को प्राप्त कराने वाला है (तत्) उसका (अर्च) सत्कार कर; उसका हम भी सत्कार करें। (महिषीव) रानी के समान (त्वत्) तेरे पास से (रयिः) धन को तथा (त्वत्) तेरे पास से (वाजाः) अन्न आदि को (उदीरते) प्राप्त करते हैं; सो आपका हम सत्कार करते हैं ॥ २६। १२ ॥

भावार्थ—जैसे रानी सुखों को प्राप्त कराने वाली एवं महान् धन प्रदान करने वाली होती है; वैसे ही राजा के पास से सब लोग धन और अन्य उत्तम वस्तुओं को प्राप्त करें ॥ २६। १२ ॥

भाष्यसार—रानी क्या करे—प्रकाशित धन वाला राजा अग्नि के लिए महान् द्रव्य प्राप्त कराने वाले अर्थात् यज्ञ करने वाले पुरुष का सत्कार करे। राजा के तुल्य अन्य प्रजाजन भी उसका सत्कार करें। जैसे रानी सुख पहुँचाने वाली तथा महाधन प्रदान करने वाली होती है वैसे राजा के पास से सब लोग धन एवं अन्य उत्तम वस्तुओं को प्राप्त करें ॥ २६। १२॥

भारद्वाजः। **अग्निः=प्रकाशितप्रज्ञो विद्वान्**। विराड्गायत्री। षड्जः ॥

विद्वद्भिः किं कार्यमित्याह ॥

विद्वानों को क्या करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न ऽ इत्थेतरा गिरः । एभिर्वर्द्धास ऽ इन्दुभिः ॥ १३ ॥

पदार्थः—(**आ**) समन्तात् (**इहि**) प्राप्नुहि (**उ**) वितर्के (**सु**) शोभने (**ब्रवाणि**) उपदिशेयम् (**ते**) तुभ्यम् (**अग्ने**) प्रकाशितप्रज्ञ (**इत्था**) अस्माद्धेतोः (**इतराः**) त्वयाऽज्ञाताः (**गिरः**) वाचः (**एभिः**) (**वर्द्धासे**) वृद्धो भव (**इन्दुभिः**) जलादिभिः ॥ १३ ॥

अन्वयः—हे अग्नेऽहमित्था त इतरा गिरः सु ब्रवाणि यतस्त्वमेता एहि उ एभिरिन्दुभिर्वर्द्धासे ॥ १३ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे अग्ने** प्रकाशितप्रज्ञ ! **अहमित्था** अस्माद्धेतोः **ते** तुभ्यम् **इतराः** त्वयाऽज्ञाताः **गिरः** वाचः **सु ब्रवाणि** शोभनमुपदिशेयम् **यतस्त्वमेता आ+इहि** समन्तात् प्राप्नुहि, **उ** सवितर्कम् **एभिरिन्दुभिः** जलादिभिः **वर्द्धासे** वृद्धो भव ॥ २६ । १३ ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) प्रकाशित प्रज्ञा वाले विद्यार्थी ! मैं (इत्था) इसलिए (ते) तेरे लिए (इतराः) तुझसे अज्ञात (गिरः) वाणियों का (सु) अच्छे प्रकार से (ब्रवाणि) उपदेश करता हूँ; जिससे तू इन्हें (आ+इहि) सब ओर से प्राप्त कर; तथा (उ) विचारपूर्वक (एभिः) इन (इन्दुभिः) जल आदि पदार्थों से (वर्द्धासे) बढ़, वृद्धि को प्राप्त हो ॥ २६ । १३ ॥

भावार्थः–यया शिक्षया विद्यार्थिनो विज्ञानेन वर्द्धेरँस्तामेव विद्वांस उपदिशेयुः ॥ २६ । १३ ॥

भावार्थ—जिस शिक्षा से विद्यार्थी लोग विज्ञान के द्वारा वृद्धि को प्राप्त हों; उसका ही विद्वान् लोग उपदेश करें ॥ २६ । १३ ॥

भाष्यसार—**विद्वान् क्या करें**—विद्वान् लोग प्रकाशित प्रज्ञा=बुद्धि वाले विद्यार्थियों के लिए उनसे अज्ञात वाणियों का अच्छे प्रकार उपदेश करें । विद्यार्थी भी उन्हें सब ओर से प्राप्त करें । जिस शिक्षा से विद्यार्थी लोग जल आदि के विज्ञान से वृद्धि को प्राप्त हों उस शिक्षा का ही विद्वान् लोग उपदेश करें ॥ २६ । १३ ॥

भारद्वाजः । **संवत्सरः=स्पष्टम्** । भुरिग्बृहती । निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वानों को क्या करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

ऋतवस्ते यज्ञं वि तन्वन्तु मासा रक्षन्तु ते हविः ।
संवत्सरस्ते यज्ञं दधातु नः प्रजां च परि पातु नः ॥ १४ ।

पदार्थः—(**ऋतवः**) वसन्ताद्याः (**ते**) तव (**यज्ञम्**) सत्कारादिव्यवहारम् (**वि**) (**तन्वन्तु**) विस्तृणन्तु (**मासाः**) कार्त्तिकादयः (**रक्षन्तु**) (**ते**) तव (**हविः**) होतव्यं वस्तु (**संवत्सरः**) (**ते**) तव (**यज्ञम्**) (**दधातु**) (**नः**) अस्माकम् (**प्रजाम्**) (**च**) (**परि**) (**पातु**) रक्षतु (**नः**) अस्माकम् ॥ १४ ॥

अन्वयः—हे विद्वँस्ते यज्ञमृतवो वितन्वन्तु ते हविर्मासा रक्षन्तु ते यज्ञं नः संवत्सरो दधातु नः प्रजां च परिपातु ॥ १४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! **ते** तव **यज्ञं** सत्कारादिव्यवहारम् **ऋतवः** वसन्ताद्याः **वि+तन्वन्तु** विस्तृणन्तु, **ते** तव **हविः** होतव्यं वस्तु **मासाः** कार्तिकादयः **रक्षन्तु**, **ते यज्ञं** सत्कारादिव्यवहारं **नः** अस्माकं **संवत्सरो दधातु नः** अस्माकं **प्रजां च परि+पातु** रक्षतु ॥ २६ । १४ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् ! (ते) तेरे (यज्ञम्) सत्कार आदि व्यवहार को (ऋतवः) वसन्त आदि ऋतुएँ (वि+तन्वन्तु) विस्तृत करें, फैलावें; (ते) तेरी (हविः) होम के योग्य वस्तु की (मासाः) कार्त्तिक आदि मास (रक्षन्तु) रक्षा करें; (ते) तेरे (यज्ञम्) सत्कार आदि व्यवहार को (नः) हमारा (संवत्सरः) वर्ष (दधातु) धारण करे (च) और (नः) हमारी (प्रजा) प्रजा की (परि+पातु) सब ओर से रक्षा करे ॥ २६ । १४ ॥

भावार्थः— विद्वद्भिर्मनुष्यैः सर्वाभिः सामग्रीभिर्विद्यावर्द्धको व्यवहारः सदा वर्द्धनीयो न्यायेन प्रजाश्च पालनीयाः ॥ २६ । १४ ॥

भावार्थ—विद्वान् मनुष्य सब सामग्रियों से विद्यावर्द्धक व्यवहार को सदा बढ़ावें और न्याय से प्रजा का पालन करें ॥ २६ । १४ ॥

भाष्यसार—**विद्वान् क्या करें**—वसन्त आदि ऋतुएँ विद्वानों के सत्कार आदि व्यवहार को विस्तृत करें। कार्तिक आदि मास हवि=होम के योग्य वस्तुओं की रक्षा करें। संवत्सर=वर्ष विद्वानों के सत्कार आदि व्यवहार को धारण करे और प्रजा की रक्षा करें। तात्पर्य यह है कि विद्वान् मनुष्य ऋतु, मास, वर्ष आदि सब सामग्री से विद्यावर्द्धक व्यवहार को सदा बढ़ावें और न्याय से प्रजा का पालन करें ॥ २६ । १४ ॥ ●

वत्सः । **विद्वान्**=स्पष्टम् । विराड्गायत्री । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

उपह्वरे गिरीणाᳬ संङ्गमे च नदीनाम् । धिया विप्रो ऽअजायत ॥ १५ ॥

पदार्थः—(**उपह्वरे**) निकटे (**गिरीणाम्**) शैलानाम् (**सङ्गमे**) मेलने (**च**) (**नदीनाम्**) (**धिया**) प्रज्ञया कर्मणा वा (**विप्रः**) मेधावी । **विप्र इति मेधाविनाम । निघं० ३ । १५ ॥** (**अजायत**) जायते ॥ १५ ॥

प्रमाणार्थ—(**विप्रः**) मेधावी । 'विप्र' यह पद निघण्टु (३ । १५) में मेधावी-नामों में पठित है । मेधावी=विद्वान् ॥

अन्वयः—यो मनुष्यो गिरीणामुपह्वरे नदीनां च सङ्गमे योगेनेश्वरं विचारेण विद्यां चोपासीत स धिया विप्रो अजायत ॥ १५ ॥

सपदार्थान्वयः—**यो मनुष्यो गिरीणां** शैलानाम् **उपह्वरे** निकटे **नदीनां च सङ्गमे** मेलने **योगेनेश्वरं, विचारेण विद्यां चोपासीत; स धिया** प्रज्ञया कर्मणा वा **विप्रः** मेधावी **अजायत** जायते ॥ २६ । १५ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य (गिरीणाम्) पर्वतों के (उपह्वरे) निकट (च) और (नदीनाम्) नदियों के (संगमे) संगम=मेल स्थल पर योग से ईश्वर की एवं विचार से विद्या की उपासना करता है; वह (धिया) प्रज्ञा वा कर्म से (विप्रः) मेधावी (अजायत) हो जाता है ॥ २६ । १५ ॥

भावार्थः--ये विद्वांसः पठित्वैकान्ते विचारयन्ति ते योगिन इव प्राज्ञा भवन्ति ॥ २६ । १५ ॥

भावार्थ--जो विद्वान् लोग विद्या को पढ़ कर एकान्त में विचार करते हैं; वे योगियों के तुल्य प्राज्ञ=विद्वान् हो जाते हैं ॥ २६ । १५ ॥

भाष्यसार--**विद्वान् क्या करें**--जो विद्वान् पर्वतों के निकट और नदियों के संगम पर योग से ईश्वर की उपासना करते हैं, विचार से विद्या को प्राप्त करते हैं; पढ़ कर एकान्त में विचार करते हैं वे योगी जनों के समान प्रज्ञा वा कर्म से मेधावी विद्वान् बनते हैं ॥ २६ । १५ ॥

महीयवः । **अग्निः=विद्वान्** । निचृद्गायत्री । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

उ॒च्चा ते॑ जा॒तमन्ध॑सो दि॒वि सद्भूम्या द॑दे । उ॒ग्रꣳ शर्म॒ महि॒ श्रवः॑ ॥ १६ ॥

पदार्थः--(**उच्चा**) उच्चम् (**ते**) तव (**जातम्**) निष्पन्नम् (**अन्धसः**) अन्नात् (**दिवि**) प्रकाशे (**सत्**) वर्त्तमानम् (**भूमि**) **अत्र सुपां सुलुगिति विभक्तेर्लुक्** । (**आ, ददे**) गृह्णामि (**उग्रम्**) उत्कृष्टम् (**शर्म**) गृहम् (**महि**) महत् (**श्रवः**) प्रशंसनीयम् ॥ १६ ॥

प्रमाणार्थ--(**भूमि**) यहाँ 'सुपां सुलुक्०' (७ । १ । ३९) इस सूत्र से विभक्ति का लुक् है ॥

अन्वयः--हे विद्वन्नहं ते यदुच्चाऽन्धसो जातं दिवि सदुग्रं महि श्रवः शर्माददे तद् भूमीव भवतु ॥ १६ ॥

सपदार्थान्वयः--**हे विद्वन् ! अहं ते** तव **यदुच्चा** उच्चम् **अन्धसः** अन्नात् **जातं** निष्पन्नं **दिवि** प्रकाशे **सद्** वर्त्तमानम् **उग्रम्** उत्कृष्टं **महि** महत् **श्रवः** प्रशंसनीयं **शर्म** गृहम् **आ+ददे** गृह्णामि, **तद् भूमीव भवतु** ॥ २६ । १६ ॥

भाषार्थ--हे विद्वान् ! मैं (ते) तेरा जो (उच्चा) ऊँचा, (अन्धसः) अन्न से (जातम्) निष्पन्न=युक्त, (दिवि) प्रकाश में (सत्) वर्तमान (उग्रम्) उत्कृष्ट=उत्तम, (महि) महान्=विशाल, (श्रवः) प्रशंसनीय (शर्म) घर को (आ+ददे) ग्रहण करता हूँ; वह (भूमि) भूमि के समान सुखदायक हो ॥ २६ । १६ ॥

भावार्थः--अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । विद्वद्भिर्मनुष्यैः सूर्यकिरणवायुमन्त्यन्नादियुक्तानि महान्त्युच्चानि गृहाणि रचयित्वा तत्र निवासेन सुखं भोक्तव्यम् ॥ २६ । १६ ॥

भावार्थ--इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है । विद्वान् मनुष्य सूर्य-किरण, वायु वाले एवं अन्न आदि से युक्त महान्=विशाल, ऊँचे घर बनावें तथा वहाँ निवास करके सुख को भोगें ॥ २६ । १६ ॥

भाष्यसार--१. **विद्वान् क्या करें**--विद्वान् मनुष्य ऊँचे, अन्न आदि से युक्त, प्रकाश में वर्त्तमान अर्थात् सूर्य-किरण और वायु वाले, उत्कृष्ट, महान्=विशाल और प्रशंसनीय घर बनावें । वे घर भूमि के समान सुखदायक हों अर्थात् उनमें निवास करके सुख को भोगें ।

२. **अलङ्कार**--इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि मन्त्रोक्त घर भूमि के समान सुखदायक हों ॥ २६ । १६ ॥

महीयवः । **इन्द्रः=परमैश्वर्यम्** । निचृद्गायत्री । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

स न ऽ इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः । वरिवोवित्परि स्रव ॥ १७ ॥

पदार्थः—(**सः**) (**नः**) अस्माकम् (**इन्द्राय**) परमैश्वर्याय (**यज्यवे**) संगताय (**वरुणाय**) श्रेष्ठाय (**मरुद्भ्यः**) मनुष्येभ्यः (**वरिवोवित्**) परिचरणवेत्ता (**परि**) (**स्रव**) प्राप्नुहि ॥ १७ ॥

अन्वयः—हे विद्वन्त्स मरुद्भ्यो न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय वरिवोवित् संस्त्वं परिस्रव ॥१७॥

सपदार्थान्वयः — हे विद्वन्! स **मरुद्भ्यः** मनुष्येभ्यः **नः** अस्माकम् **इन्द्राय** परमैश्वर्याय **यज्यवे** सङ्गताय **वरुणाय** श्रेष्ठाय **वरिवोवित्** परिचरणवेत्ता **संस्त्वं परिस्रव** प्राप्नुहि ॥ २६।१७ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान्! (सः) वह=उक्त गुणों से युक्त तू (मनुष्येभ्यः) मनुष्यों के लिए—(नः) हमारे (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य, (यज्यवे) संगत व्यवहार तथा (वरुणाय) श्रेष्ठ पुरुष के लिए (वरिवोवित्) परिचरण=सेवा का ज्ञाता होकर (परिस्रव) प्राप्त हो ॥ २६ । १७ ॥

भावार्थः—येन विदुषा यावत्सामर्थ्यं प्राप्येत तेन तावता सर्वेषां सुखं वर्द्धनीयम् ॥ २६ । १७ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् जितना सामर्थ्य प्राप्त करे वह उतने सामर्थ्य से सब के सुख को बढ़ावें ॥ २६ । १७ ॥

भाष्यसार—**विद्वान् क्या करें**—विद्वान् साधारण मनुष्य, परम ऐश्वर्य, संगति तथा श्रेष्ठ पुरुषों के लिए सेवा का ज्ञाता हो । उक्त सेवा के लिए प्राप्त हो । यथासामर्थ्य सब के सुख को बढ़ावे ॥ २६ । १७ ॥ ●

महीयवः । **विद्वान्=स्पष्टम्** । स्वराड्गायत्री । षड्जः ॥

ईश्वरः कथमुपास्य इत्याह ॥

ईश्वर की उपासना क्यों करनी चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

एना विश्वान्यर्य ऽ आ द्युम्नानि मानुषाणाम् । सिषासन्तो वनामहे ॥ १८ ॥

पदार्थः—(**एना**) एनानि (**विश्वानि**) सर्वाणि (**अर्यः**) ईश्वरः (**आ**) (**द्युम्नानि**) प्रदीप्तानि यशांसि (**मानुषाणाम्**) मनुष्याणाम् (**सिषासन्तः**) सेवितुमिच्छन्तः (**वनामहे**) याचामहे ॥ १८ ॥

अन्वयः—योऽर्यो मानुषाणामेना विश्वानि द्युम्नानि शास्ति तं सिषासन्तो वयं सुखान्यावनामहे ॥ १८ ॥

सपदार्थान्वयः—**योऽर्यः** ईश्वरः **मानुषाणां** मनुष्याणाम् **एना** एनानि **विश्वानि** सर्वाणि **द्युम्नानि** प्रदीप्तानि यशांसि **शास्ति, तं सिषासन्तः** सेवितुमिच्छन्तः **वयं सुखान्यावनामहे**

भाषार्थ—जो (अर्यः) ईश्वर (मानुषाणाम्) मनुष्यों के (एना) इन (विश्वा) सब (द्युम्नानि) प्रकाशित यशों को (शास्ति) उत्पन्न करता है; उसकी (सिषासन्तः) सेवा=उपासना

याचामहे ॥ २६ । १८ ॥

करते हुए हम सब सुखों की (आवनामहे) याचना=कामना करते हैं ॥ २६ । १८ ॥

भावार्थः—येनेश्वरेण मनुष्याणां सुखाय धनानि वेदा भोज्यादीनि वस्तूनि चोत्पादितानि तस्यैवोपासना सर्वैर्मनुष्यैः सदा कर्त्तव्या ॥२६।१८॥

भावार्थ—जिस ईश्वर ने मनुष्यों के सुख के लिए धन, वेद और भोज्य आदि वस्तुएँ उत्पन्न की हैं; उसकी ही उपासना सब मनुष्य सदा करें ॥ २६ । १८ ॥

भाष्यसार—**ईश्वर की उपासना क्यों करें**—जिस ईश्वर ने मनुष्यों के सुख के लिए यश को बढ़ाने वाले धन, वेद तथा भक्ष्य पदार्थ आदि उत्पन्न किए हैं अतः सब मनुष्य उस ईश्वर की सेवा=उपासना की इच्छा करें; उसकी सदा उपासना करें तथा सुखों की प्राप्ति के लिए याचना=प्रार्थना करें ॥ २६ । १८ ॥

मुद्गलः । **विद्वांसः=स्पष्टम्** । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

अनु॑ वी॒रैरनु॑ पुष्यास्म॒ गोभि॒रन्वश्वै॒रनु॒ सर्वे॑ण पु॒ष्टैः ।
अनु॒ द्विप॒दानु॒ चतु॑ष्पदा व॒यं दे॒वा नो॑ य॒ज्ञमृ॑तु॒था न॑यन्तु ॥ १९ ॥

पदार्थः—(**अनु**) (**वीरैः**) प्रशस्तबलैः (**अनु**) (**पुष्यास्म**) पुष्टा भवेम (**गोभिः**) धेनुभिः (**अनु**) (**अश्वैः**) (**अनु**) (**सर्वेण**) (**पुष्टैः**) (**अनु**) (**द्विपदा**) मनुष्यादिना (**अनु**) (**चतुष्पदा**) गवादिना (**वयम्**) (**देवाः**) विद्वांसः (**नः**) अस्माकम् (**यज्ञम्**) धर्म्यं व्यवहारम् (**ऋतुथा**) ऋतुभिः (**नयन्तु**) प्रापयन्तु ॥ १६ ॥

अन्वयः—हे विद्वांसो यथा वयं पुष्टैर्वीरैरनु पुष्यास्म पुष्टैर्गोभिरनुपुष्याम पुष्टैरश्वैरनुपुष्याम सर्वेणानुपुष्याम द्विपदाऽनुपुष्याम चतुष्पदानुपुष्याम तथा देवा नो यज्ञमृतुथा नयन्तु ॥ १६ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे विद्वांसः ! यथा वयं पुष्टैर्वीरैः** प्रशस्तबलैः **अनु पुष्यास्म** पुष्टा भवेम, **पुष्टैर्गोभिः** धेनुभिः **अनुपुष्याम, पुष्टैरश्वैरनुपुष्याम, सर्वेणानुपुष्याम, द्विपदा** मनुष्यादिना **अनुपुष्याम, चतुष्पदा** गवादिना **अनुष्याम, तथा देवाः** विद्वांसः **नः** अस्माकं **यज्ञं** धर्म्यं व्यवहारम् **ऋतुथा** ऋतुभिः **नयन्तु** प्रापयन्तु ॥ २६ । १६ ॥

भाषार्थ—हे विद्वानो ! जैसे हम—(पुष्टैः) पुष्ट (वीरैः) प्रशस्त बल वाले वीरों के (अनु) पश्चात् (पुष्यास्म) पुष्ट होवें; (पुष्टैः) पुष्ट (गोभिः) गौवों के पश्चात् पुष्ट होवें, (पुष्टैः) पुष्ट (अश्वैः) अश्वों के पश्चात् पुष्ट होवें; (सर्वेण) सब के पश्चात् पुष्ट होवें, (द्विपदा) दो पाँव वाले मनुष्य आदि के पश्चात् पुष्ट होवें, (चतुष्पदा) चार पाँव वाले गौ आदि के पश्चात् पुष्ट होवें; वैसे (देवाः) विद्वान् लोग (नः) हमारे (यज्ञम्) धर्म-युक्त व्यवहार को (ऋतुथा) ऋतु अनुकूल (नयन्तु) प्राप्त करावें ॥ २६ । १६ ॥

भावार्थः—मनुष्यैर्वीरपुरुषान् पशूंश्च

भावार्थ—सब मनुष्य—वीर पुरुषों और

सम्पोष्यानुपोषणीयम् । सदा ऋत्वनुकूलो व्यवहारः कर्त्तव्यश्च ॥ २६ । १९ ॥

पशुओं का संपोषण करने के पश्चात् स्वयं पुष्ट होवें और सदा ऋतु के अनुकूल व्यवहार करें ॥ २६ । १९ ॥

भाष्यसार—**मनुष्य क्या करें**—विद्वान् मनुष्य वीर पुरुष, गौ, घोड़े आदि पशु तथा सब मनुष्यों को प्रथम पुष्ट करके पुनः स्वयं पुष्टि को प्राप्त करें । सदा ऋतु अनुसार धर्म युक्त व्यवहार करें ॥ २६ । १९ ॥ ●

मेधातिथिः । **विद्वान्**=**स्पष्टम्** । गायत्री । षड्जः ।

कथमपत्यानि प्रशस्तानि स्युरित्याह ॥

सन्तान कैसे उत्तम हों, यह उपदेश किया है ॥

अग्ने पत्नीरिहा वह देवानामुशतीरुप । त्वष्टारꣳ सोमपीतये ॥ २० ॥

पदार्थः—(**अग्ने**) अध्यापकाऽध्यापिके वा (**पत्नीः**) (**इह**) (**आ**) (**वह**) प्रापय (**देवानाम्**) विदुषाम् (**उशतीः**) कामयमानाः (**उप**) (**त्वष्टारम्**) देदीप्यमानम् (**सोमपीतये**) सोमस्य पानाय ॥ २० ॥

अन्वयः—हे अग्ने त्वमिह स्वसदृशान् पतीरुशतीर्देवानां पत्नीः सोमपीतये त्वष्टारमुपा वह ॥ २० ॥

सपदार्थान्वयः—**अग्ने** ! अध्यापकाऽध्यापिके वा ! **त्वमिह स्वसदृशान् पतीरुशतीः** कामयमानाः **देवानां** विदुषां **पत्नीः सोमपीतये** सोमस्य पानाय **त्वष्टारं** देदीप्यमानं **उप**+**आ**+**वह** प्रापय ॥ २६ । २० ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) अध्यापक वा अध्यापिका ! तू—(इह) यहाँ अपने सदृश पतियों की (उशतीः) कामना करने वाली (देवानाम्) विद्वानों की (पत्नीः) पत्नियों को (सोमपीतये) सोम-पान के लिए (त्वष्टारम्) देदीप्यमान=प्रशंसनीय सन्तान को (उप+आ+वह) प्राप्त करा ॥ २६ । २० ॥

भावार्थः—यदि मनुष्याः कन्याः सुशिक्ष्य विदुषीः कृत्वा स्वयंवृतान् हृद्यान् पतीन् प्रापय्य प्रेम्णा सन्तानानुत्पादयेयुस्तर्हि तान्यपत्यान्यतीव प्रशंसितानि भवन्ति ॥ २६ । २० ॥

भावार्थ—यदि मनुष्य कन्याओं को सुशिक्षित करके, उन्हें विदुषी बनाकर, स्वयं वरण किए हुए प्रिय पतियों को प्राप्त कराकर सन्तानों को उत्पन्न करावें तो वे सन्तान अत्यन्त प्रशंसनीय होती हैं ॥ २६ । २० ॥

भाष्यसार—**सन्तान उत्तम कैसे हों**—अध्यापक वा अध्यापिका लोग—कन्याओं को सुशिक्षित कर उन्हें विदुषी बना कर स्वयं वरण किए हुए प्रिय पतियों को प्राप्त करावें । विद्वानों की पत्नियाँ बनें । प्रेम से सन्तानों को उत्पन्न करें । सोम-पान के लिए शुभ गुणों से देदीप्यमान सन्तानों को प्राप्त करें । इस प्रकार से सन्तान अति प्रशंसित होते हैं ॥ २६ । २० ॥ ●

मेधातिथिः । **विद्वान्**=**स्पष्टम्** । गायत्री । षड्जः ॥

के विद्वांसो भवेयुरित्याह ॥

कौन विद्वान् होते हैं, यह उपदेश किया है ॥

अभि यज्ञं गृणीहि नो ग्नावो नेष्टः पिब ऽ ऋतुना । त्वꣳ हि रत्नधा ऽ असि ॥ २१ ॥

पदार्थः—(**अभि**) आभिमुख्ये (**यज्ञम्**) प्रशस्तव्यवहारम् (**गृणीहि**) स्तुहि (**नः**) अस्माकम् (**ग्नावः**) प्रशस्तवाग्मिन् । ग्नेति वाङ्ना० । निघं० १ । ११ । (**नेष्टः**) नेतः (**पिब**) (**ऋतुना**) वसन्ताद्येन सह (**त्वम्**) (**हि**) (**रत्नधाः**) रमणीयवस्तुधर्त्ता (**असि**) ॥ २१ ॥

प्रमाणार्थ—(ग्नावः) प्रशस्तवाग्मिन् । 'ग्ना' यह पद निघण्टु (१ । ११) में वाक्-नामों में पठित है । वाक्=वाणी ॥

अन्वयः—हे ग्नावो नेष्टस्त्वमृतुना सह नो यज्ञमभि गृणीहि यतस्त्वं हि रत्नधा असि तस्मात् सदोषधिरसान् पिब ॥ २१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे ग्नावः प्रशस्तवाग्मिन् नेष्टः नेतः ! **त्वमृतुना** वसन्ताद्येन **सह नः** अस्माकं **यज्ञं** प्रशस्तव्यवहारम् **अभि+गृणीहि** आभिमुख्येन स्तुहि ।

यतस्त्वं हि रत्नधाः रमणीयवस्तुधर्त्ता **असि, तस्मात्सदोषधिरसान् पिब** ॥ २६ । २१ ॥

भाषार्थ—हे (ग्नावः) प्रशस्त वाग्मी (नेष्टः) नेता ! तू—(ऋतुना) वसन्त आदि ऋतुओं के साथ (नः) हमारे (यज्ञम्) प्रशस्त व्यवहार की (अभि+गृणीहि) मुख्य रूप से स्तुति कर ।

क्योंकि (त्वम्) तू (हि) निश्चय से (रत्नधाः) रमणीय वस्तुओं को धारण करने वाला (असि) है; अतः सदा औषधि-रसों का (पिब) पान कर ॥ २६ । २१ ॥

भावार्थः—ये सुशिक्षिताया वाचः सङ्गतं व्यवहारं ज्ञातुमिच्छेयुस्ते विद्वांसो भवेयुः ॥ २१ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सुशिक्षित वाणी के संगत व्यवहार को जानना चाहें वे विद्वान् बनें ॥ २६ । २१ ॥

भाष्यसार—**कौन विद्वान् होते हैं**—प्रशस्त वाग्मी, नेता, विद्वान्—वसन्त आदि ऋतुओं के साथ जिन शिष्यों के प्रशस्त व्यवहार की स्तुति करता है एवं उनके व्यवहार को प्रशस्त बनाता है, और स्वयं रत्न=रमणीय वस्तुओं को धारण करता तथा सदा ओषधि-रसों का पान करता है वह विद्वान् कहलाता है । और जो सुशिक्षित वाणी के संगत व्यवहार को जानना चाहते हैं वे विद्वान् होते हैं ॥ २६ । २१ ॥ ●

मेधातिथिः । **सोमः=सद्वैद्यः** । गायत्री । षड्जः ॥

पुनर्विद्वद्भिर्मनुष्यैः किं कार्यमित्याह ॥

फिर विद्वान् मनुष्यों को क्या करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत । नेष्ट्रादृतुभिरिष्यत ॥ २२ ॥

पदार्थः—(**द्रविणोदाः**) यो द्रविणो=धनं यशो वा ददाति सः (**पिपीषति**) पातुमिच्छति (**जुहोत**) (**प्र, च**) (**तिष्ठत**) प्रतिष्ठां लभध्वम् (**नेष्ट्रात्**) विनयात् (**ऋतुभिः**) वसन्तादिभिः सह (**इष्यत**) प्राप्नुत ॥ २२ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा द्रविणोदा ऋतुभिः सह नेष्ट्राद्रसं पिपीषति तथा यूयं रसमिष्यत जुहोत प्रतिष्ठत च ॥ २२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! यथा **द्रविणोदाः** यो द्रविणो=धनं यशो वा ददाति सः **ऋतुभिः** वसन्तादिभिः **सह नेष्ट्राद्** विनयाद् **रसं पिपीषति** पातुमिच्छति, **तथा यूयं रसमिष्यत** प्राप्नुत, **जुहोत, प्र+तिष्ठत** प्रतिष्ठां लभध्वं **च** ॥ २६ । २२ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे—(द्रविणोदाः) धन वा यश प्रदान करने वाला वैद्य (ऋतुभिः) वसन्त आदि ऋतुओं के साथ (नेष्ट्रात्) विनय से रस को (पिपीषति) पीना चाहता है; वैसे—तुम रस को (इष्यत) प्राप्त करो; (जुहोत) होम करो। और (प्र+तिष्ठत) प्रतिष्ठा को प्राप्त करो ॥२२॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे विद्वांसो मनुष्या यथा सद्वैद्याः पथ्येनोत्तमविद्यया स्वयमरोगाः सन्तोऽन्यान् रोगात्पृथक्कृत्य प्रशंसां लभन्ते तथैव युष्माभिरप्याचरणीयम् ॥ २६ । २२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। हे विद्वान् मनुष्यो ! जैसे श्रेष्ठ वैद्य लोग पथ्य एवं उत्तम विद्या से स्वयं नीरोग होकर अन्यों को रोग से पृथक् करके प्रशंसा को प्राप्त करते हैं; वैसे ही तुम भी आचरण करो ॥ २२ ॥

भाष्यसार—१. **विद्वान् क्या करें**—जैसे धन वा यश प्रदान करने वाला वैद्य वसन्त आदि ऋतुओं के साथ विनय से सोमरस का पान करता है अर्थात् पथ्य सेवन एवं उत्तम विद्या से स्वयं नीरोग होकर अन्य जनों को भी रोग से पृथक् करता है और प्रशंसा को प्राप्त होता है; वैसे विद्वान् लोग सोम रस को प्राप्त करें; होम करें और प्रतिष्ठा को प्राप्त करें।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि वैद्य के समान विद्वान् लोग सोमरस का पान करें ॥ २६ । २२ ॥

मेधातिथिः । **विद्वान्**=स्पष्टम् । भुरिक्पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

तवायꣳ सोमस्त्वमेह्यर्वाङ् शश्वत्तमꣳ सुमना ऽ अस्य पाहि ।
अस्मिन्यज्ञे बर्हिष्या निषद्या दधिष्वेमं जठर ऽ इन्दुमिन्द्र ॥ २३ ॥

पदार्थः—(**तव**) (**अयम्**) (**सोमः**) ऐश्वर्ययोगः (**त्वम्**) (**आ, इहि**) समन्तात्प्राप्नुहि (**अर्वाङ्**) आभिमुख्यं प्राप्तः (**शश्वत्तमम्**) अतिशयेन शश्वदनादिभूतम् (**सुमनाः**) धर्मकार्ये प्रसन्नमनाः (**अस्य**) (**पाहि**) (**अस्मिन्**) (**यज्ञे**) संगन्तव्ये (**बर्हिषि**) उत्तमे=साधुनि (**आ**) (**निषद्य**) नितरां स्थित्वा। अत्र संहितायामिति दीर्घः। (**दधिष्व**) धर (**इमम्**) (**जठरे**) उदराग्नौ (**इन्दुम्**) रोगहरौषधिरसम् (**इन्द्र**) परमैश्वर्यमिच्छो ॥ २३ ॥

प्रमाणार्थ—(**निषद्य**) यहाँ 'संहितायाम्' (६ । ३ । ११४) इस सूत्र से संहिता में दीर्घ है [**निषद्या**] ॥

अन्वयः—हे इन्द्र विद्वन्यस्तवायं सोमोऽस्ति तं त्वमेहि सुमना अर्वाङ् सन्नस्य शश्वत्तमं पाहि। अस्मिन्बर्हिषि यज्ञे निषद्य जठर इममिन्दुं चादधिष्व ॥ २३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **इन्द्र** विद्वन् परमैश्वर्यमिच्छो ! **यस्तवायं सोमः** ऐश्वर्ययोगः

भाषार्थ—हे (इन्द्र) परम ऐश्वर्य के इच्छुक विद्वान् ! जो (तव) तेरा (अयम्) यह

अस्ति, तं त्वमेहि समन्तात्प्राप्नुहि । **सुमनाः** धर्मकार्ये प्रसन्नमनाः **अर्वाङ्** आभिमुख्यं प्राप्तः सन्नस्य **शश्वत्तमं** अतिशयेन शश्वदनादिभूतं **पाहि । अस्मिन् बर्हिषि** उत्तमे=साधुनि **यज्ञे** सङ्गन्तव्ये **निषद्य** नितरां स्थित्वा **जठरे** उदराग्नौ **इममिन्दुं** रोगहरौषधिरसं **चादधिष्व** धर ॥ २६ । २३ ॥

(सोमः) ऐश्वर्ययोग है; उसे तू (एहि) सब ओर से प्राप्त कर। (सुमनाः) धर्म-कार्य में प्रसन्न मन वाला तथा (अर्वाङ्) सबके सम्मुख होकर (अस्य) इस धर्म के (शश्वत्तमम्) सर्वथा अनादि स्वरूप की (पाहि) रक्षा कर। (अस्मिन्) इस (बर्हिषि) उत्तम (यज्ञे) संगति में (निषद्य) बैठकर (जठरे) जठराग्नि में (इमम्) इस (इन्दुम्) रोगों को हरण करने वाले ओषधियों के रस को (आदधिष्व) धारण कर ॥ २६ । २३ ॥

भावार्थः—विद्वांसः सर्वैः सहाभिमुख्यं प्राप्य प्रसन्नमनसः सन्तः सनातनं धर्मं विज्ञानञ्चोपदिशेयुः; पथ्यमन्नादि सेवेरन् सदैव पुरुषार्थे प्रयतेरँश्च ॥ २६ । २३ ॥

भावार्थ—विद्वान् लोग सबके सम्मुख होकर तथा प्रसन्न मन वाले होकर सनातन धर्म और विज्ञान का उपदेश करें; पथ्य अन्न आदि का सेवन करें और सदैव पुरुषार्थ में प्रयत्न करें ॥ २६ । २३ ॥

भाष्यसार—विद्वान् क्या करें—परम ऐश्वर्य का इच्छुक विद्वान् ऐश्वर्य को सब ओर से प्राप्त करे। सब मनुष्यों के सम्मुख होकर धर्म-कार्यों में प्रसन्न मन से प्रवृत्त हो। अनादि=सनातन धर्म और विज्ञान की रक्षा करे अर्थात् उसका उपदेश करे। उत्तम संगति में रहकर जठराग्नि में रोगहर औषधि-रस को स्थापित करे अर्थात् पथ्य अन्न आदि का सेवन करे, और सदा पुरुषार्थ में प्रयत्नशील रहे ॥ २६ । २३ ॥ ●

गृत्समदः । **विद्वान्**=स्पष्टम् । जगती । निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

अमेवं नः सुहवा ऽ आ हि गन्तन नि बर्हिषि सदतना रणिष्टन ।
अथा मदस्व जुजुषाणो ऽ अन्धसस्त्वष्टर्देवेभिर्जनिभिः सुमद्गणः ॥ २४ ॥

पदार्थः—(**अमेव**) उत्तमं गृहमिव (**नः**) अस्मान् (**सुहवाः**) शोभनाह्वानाः (**आ**) (**हि**) किल (**गन्तन**) गच्छत (**नि**) नितराम् (**बर्हिषि**) उत्तमे व्यवहारे (**सदतन**) सीदत (**रणिष्टन**) वदत (**अथ**) अनन्तरम् । अत्र निपातस्य चेति दीर्घः । (**मदस्व**) आनन्द (**जुजुषाणः**) प्रसन्नः, सेवमानः (**अन्धसः**) अन्नादेर्मध्ये (**त्वष्टः**) देदीप्यमान (**देवेभिः**) दिव्यगुणैः (**जनिभिः**) जन्मभिः (**सुमद्गणः**) सुहर्षगणः ॥ २४ ॥

प्रमाणार्थ—(**अथ**) यहाँ 'निपातस्य च' (६ । ३ । १३६) इस सूत्र से संहिता में दीर्घ है [**अथा**] ॥ २४ ॥

अन्वयः—हे त्वष्टो जुजुषाणः सुमद्गणः संस्त्वं देवेभिर्जनिभिः सहाऽन्धसो मदस्वाथाऽमेवान्यानानन्दय । हे विद्वांसः सुहवा यूयममेव बर्हिषि न आ गन्तन । अत्र हि निषदतन रणिष्टन च ॥ २४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे त्वष्टः ! देदीप्यमान ! **जुजुषाणः** प्रसन्नः; सेवमानः **सुमद्गणः** सुहर्षगणः **संस्त्वं देवेभिः** दिव्यगुणैः **जनिभिः** जन्मभिः **सहाऽन्धसः** अन्नादेर्मध्ये **मदस्व** आनन्द, **अथ** अनन्तरम् **अमेव** उत्तमं गृहमिव **अन्यानानन्दय** ।

भाषार्थ—हे (त्वष्टः) विद्या से देदीप्यमान विद्वान् ! (जुजुषाणः) प्रसन्न एवं सेवक, (सुमद्गणः) सुहर्ष का गण बन कर तू—(देवेभिः) दिव्य गुणों वाले (जनिभिः) सन्तानों के साथ (अन्धसः) अन्न आदि मध्य में (मदस्व) आनन्द कर; (अथ) और (अमेव) उत्तम घर के समान अन्यों को भी आनन्दित कर ।

हे **विद्वांसः** ! **सुहवाः** शोभनाह्वानाः **यूयममेव** उत्तमं गृहमिव **बर्हिषि** उत्तमे व्यवहारे **नः** अस्मान् **आगन्तन** गच्छत; **अत्र हि** किल **निषदतन** नितरां सीदत **रणिष्टन** वदत **च** ॥ २६ । २४ ॥

हे विद्वानो ! (सुहवाः) उत्तम आह्वान=निमन्त्रण वाले तुम लोग—(अमेव) उत्तम घर के समान (बर्हिषि) उत्तम व्यवहार में (नः) हमें (आगन्तन) प्राप्त होओ; यहाँ (हि) ही (निषदतन) बैठो और (रणिष्टन) उपदेश करो ॥ २६ । २४ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः । ये स्वयमुत्तमे व्यवहारे स्थित्वाऽन्यान् स्थापयेयुस्ते सदाऽऽनन्देयुः । स्त्रीपुरुषाः प्रीत्या संयुज्य यान्यपत्यानि जनयेयुस्तानि दिव्यगुणानि जायन्ते ॥ २६ । २४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है । जो विद्वान् स्वयं उत्तम व्यवहार में स्थित होकर अन्यों को स्थापित करते हैं वे सदा आनन्दित रहते हैं । स्त्री-पुरुष प्रीति से संयुक्त होकर जिन सन्तानों को उत्पन्न करते हैं वे सन्तान दिव्य गुणों वाले होते हैं ॥ २६ । २४ ॥

भाष्यसार—१. **विद्वान् क्या करें**—विद्वान् विद्या से देदीप्यमान हो, सदा प्रसन्न रहे तथा विद्या आदि से सेवा करने वाला हो, सुहर्ष का गण=वृन्द हो अर्थात् स्वयं हर्षित रहे तथा अन्यों को भी हर्षित रखे । विदुषी स्त्री तथा विद्वान् पुरुष प्रीति से संयुक्त होकर दिव्य गुणों से युक्त सन्तानों को उत्पन्न करें तथा अन्न आदि पदार्थों के मध्य में आनन्दित रहें । जैसे उत्तम घर आनन्द देता है वैसे सब मनुष्यों को आनन्द प्रदान करें । सब मनुष्य मन्त्रोक्त विद्वानों को अच्छे प्रकार आह्वान करें अर्थात् उन्हें निमन्त्रित करें और वे उनके यज्ञ आदि उत्तम व्यवहारों में पधारें । वे स्वयं उत्तम व्यवहार में स्थित होकर अन्यों को भी स्थापित करें । उन्हें उत्तम उपदेश करें तथा सदा आनन्द में रहें ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' पद है अतः उपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि विद्वान् उत्तम घर के समान उत्तम व्यवहार में स्थित रहें तथा अन्यों को भी स्थापित करें ॥ २६ । २४ ॥ ❁

मधुच्छन्दाः । **सोमः=ऐश्वर्ययुक्तो विद्वान्** । निचृद्गायत्री । षड्जः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया । इन्द्राय पातवे सुतः ॥ २५ ॥

पदार्थः—(**स्वादिष्ठया**) अतिशयेन स्वादुयुक्तया (**मदिष्ठया**) अतिशयेनानन्दप्रदया (**पवस्व**) पवित्रो भव (**सोम**) ऐश्वर्ययुक्त (**धारया**) धारणकर्त्र्या (**इन्द्राय**) ऐश्वर्याय (**पातवे**) पातुं, रक्षितुम् (**सुतः**) निष्पादितः ॥ २५ ॥

अन्वयः—हे सोम विद्वँस्त्वं य इन्द्राय पातवे सुतोऽस्ति तस्य स्वादिष्ठया मदिष्ठया धारया पवस्व ॥ २५ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे सोम**=**विद्वन्** ! ऐश्वर्ययुक्त ! **त्वं य इन्द्राय** ऐश्वर्याय **पातवे** पातुं, रक्षितुं **सुतः** निष्पादितः **अस्ति; तस्य स्वादिष्ठया** अतिशयेन स्वादयुक्तया **मदिष्ठया** अतिशयेनानन्दप्रदया **धारया** धारणकर्त्र्या **पवस्व** पवित्रो भव ॥ २६ । २५ ॥

भाषार्थ—हे (सोम) ऐश्वर्य से युक्त विद्वान् ! तू–जो रस (इन्द्राय) ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए तथा (पातुम्) पीने एवं रोग आदि से रक्षा के लिए (सुतः) निष्पादित=तैयार किया है; उसकी (स्वादिष्ठया) अत्यन्त स्वाद से युक्त (मदिष्ठया) अत्यन्त आनन्द प्रदान करने वाली, (धारया) धारण करने वाली धारा से (पवस्व) पवित्र हो ॥ २६ । २५ ॥

भावार्थः—ये विद्वांसो मनुष्याः सर्वरोगप्रणाशकमानन्दप्रदमोषधिरसं पीत्वा शरीरात्मानौ पवित्रयन्ति ते धनाढ्या जायन्ते ॥ २६ । २५ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् मनुष्य—सब रोगों के नाशक, आनन्द प्रदान करने वाले ओषधि-रस को पीकर शरीर और आत्मा को पवित्र करते हैं वे धनाढ्य होते हैं ॥ २६ । २५ ॥

भाष्यसार—**विद्वान् क्या करें**—विद्वान् मनुष्य—ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए सब रोगों के नाशक, आनन्ददायक ओषधि-रस का पान करें। इस रस की अत्यन्त स्वादिष्ठ, आनन्दप्रद धारा से शरीर और आत्मा को पवित्र करें। जो विद्वान् ऐसा करते हैं वे ऐश्वर्य से युक्त अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं ॥ २६ । २५ ॥ ●

मधुच्छन्दाः । **अग्निः**=**अविद्याहन्ता विद्वान्** । गायत्री । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहते । द्रोणे सधस्थमासदत् ॥ २६ ॥

पदार्थः—(**रक्षोहा**) यो रक्षांसि=दुष्टान् प्राणिनो हन्ति सः (**विश्वचर्षणिः**) विश्वस्याऽखिलस्य प्रकाशकः (**अभि**) अभितः (**योनिम्**) गृहम् (**अपोहते**) अपसा=सुवर्णेन प्राप्ते । **अप इति हिरण्यना० । निघं० १ । २ ॥** (**द्रोणे**) पात्रविशेषे (**सधस्थम्**) समानस्थानम् (**आ**) (**असदत्**) तिष्ठेत् ॥ २६ ॥

प्रमाणार्थ—(**अपोहते**) अपसा=सुवर्णेन प्राप्ते । 'अपः' यह पद निघण्टु (१ । २) में हिरण्य-नामों में पठित है । हिरण्य=सुवर्ण ॥

अन्वयः—यो रक्षोहा विश्वचर्षणिर्विद्वानपोहते द्रोणे सधस्थं योनिमभ्यासदत्स सर्वं सुखमाप्नुयात् ॥ २६ ॥

सपदार्थान्वयः — **यो रक्षोहा** यो रक्षांसि=दुष्टान् प्राणिनो हन्ति सः **विश्वचर्षणिः**= **विद्वान्** विश्वस्याऽखिलस्य प्रकाशकः **अपोहते** अपसा=सुवर्णेन प्राप्ते **द्रोणे** पात्रविशेषे **सधस्थं**

भाषार्थ—जो (रक्षोहाः) दुष्ट प्राणियों का हनन करने वाला, (विश्वचर्षणिः) सब का प्रकाशक विद्वान्—(अपोहते) अप=सुवर्ण से प्राप्त (द्रोणे) द्रोण नामक पात्र विशेष होने पर

समानस्थानं **योनिं** गृहम् **अभ्यासदत्** अभितः तिष्ठेत्, **स सर्वं सुखमाप्नुयात्** ॥ २६ । २६ ॥

(सधस्थम्) सबके समान स्थान (योनिम्) घर में (अभ्यासदत्) स्थित होता है; वह सब सुखों को प्राप्त करता है ॥ २६ । २६ ॥

भावार्थः—येऽविद्याहन्तारो विद्याप्रकाशकाः सर्वर्त्तुसुखकरेषु सुवर्णादियुक्तेषु गृहेषु स्थित्वा विचारं कुर्युस्ते सुखिनो जायन्त इति ॥ २६ । २६ ॥

भावार्थ—जो अविद्या का हनन करने वाले, विद्या के प्रकाशक विद्वान् लोग—सब ऋतुओं में सुखकारक, सुवर्ण आदि से युक्त घरों में स्थित होकर विचार करते हैं वे सुखी होते हैं; ऐसा निश्चय है ॥ २६ । २६ ॥

भाष्यसार—विद्वान् क्या करें—विद्वान् लोग दुष्ट प्राणियों का हनन करें; अविद्या के घातक हों, सब के प्रकाशक हों अर्थात् सब को विद्या से प्रकाशित करें; उनके पास सुवर्ण से प्राप्त द्रोण आदि पात्र विशेष हों। वे सब ऋतुओं में सुखकारी, सुवर्ण आदि से युक्त घरों में बैठकर विद्या-विचार करें तथा सब सुख को प्राप्त करें ॥ २६ । २६ ॥

[पूर्वापराध्यायार्थसंगतिमाह—]

अस्मिन्नध्याये पुरुषार्थफलवर्णनं, सर्वेषां मनुष्याणां वेदपठनश्रवणाधिकारः, परमेश्वर-विद्वत्सत्यनिरूपणमग्न्यादिपदार्थकथनं, यज्ञवर्णनं, सुन्दरगृहनिर्माणमुत्तमस्थाने स्थितिश्चोक्ताऽत एतदर्थस्य पूर्वाध्यायोक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति वेद्यम् ॥ २६ ॥

इस अध्याय में पुरुषार्थ के फल का वर्णन (१), सब मनुष्यों को वेद पढ़ने और सुनने का अधिकार (२), परमेश्वर, विद्वान् और सत्य का निरूपण (३, ६, १३), अग्नि आदि पदार्थों का कथन (६-८), यज्ञ का वर्णन (१४), सुन्दर घरों का निर्माण (१६) और उत्तम स्थान में स्थिति का उपदेश किया है; अतः इस अध्याय में प्रतिपादित अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति है, ऐसा जानें ॥२६॥

इति श्रीयुतपण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते दयानन्दयजुर्वेदभाष्य-भास्करे षड्विंशोऽध्यायः सम्पूर्णः ॥

॥ ओ३म् ॥

अथ सप्तविंशोऽध्याय आरभ्यते

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआसु॑व ॥ १ ॥

॥ य० ३० । ३ ॥

अग्निः । **अग्निः=विद्वान्** । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथाप्तैः कथमाचरणीयमित्याह ॥

अब सत्ताईसवें अध्याय का प्रारम्भ है । इसके प्रथम मन्त्र में आप्तों को कैसा आचरण करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

समा॑स्त्वाग्नऽऋ॒तवो॑ वर्द्धयन्तु संवत्स॒राऽऋष॑यो॒ यानि॑ स॒त्या ।
सं दि॒व्येन॑ दीदिहि रोच॒नेन॒ विश्वा॒ऽआ भा॑हि प्र॒दिश॒श्चत॑स्रः ॥ १ ॥

पदार्थः—(**समाः**) वर्षाणि (**त्वा**) त्वाम् (**अग्ने**) विद्वन् (**ऋतवः**) शरदादयः (**वर्द्धयन्तु**) (**संवत्सराः**) (**ऋषयः**) मंत्रार्थविदः (**यानि**) (**सत्या**) सत्सु साधूनि त्रैकाल्याबाध्यानि कर्माणि (**सम्**) (**दिव्येन**) अतिशुद्धेन (**दीदिहि**) कामय (**रोचनेन**) प्रदीपनेन (**विश्वाः**) अखिलाः (**आ**) समन्तात् (**भाहि**) प्रकाशय (**प्रदिशः**) प्रकृष्टगुणयुक्ता दिशः (**चतस्रः**) एतत्संख्याप्रमिताः ॥ १ ॥

अन्वयः—हे अग्ने ! समा ऋतवः संवत्सरा ऋषयो यानि सत्या सन्ति ते त्वा वर्द्धयन्तु । यथाऽग्निर्दिव्येन रोचनेन विश्वाश्चतस्रः प्रदिशः प्रकाशयति तथा विद्यां संदीदिहि । न्याय्यं धर्ममाभाहि ॥ १ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने** ! विद्वन् ! **समाः** वर्षाणि, **ऋतवः** शरदादयः, **संवत्सरा, ऋषयः** मन्त्रार्थविदः, **यानि सत्या** सत्सु साधूनि त्रैकाल्याबाध्यानि कर्माणि **सन्ति; ते त्वा** त्वां **वर्द्धयन्तु** ।

भाषार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् ! (समाः) वर्ष, (ऋतवः) शरद् आदि ऋतुएँ, (संवत्सर) संवत्, (ऋषयः) मन्त्रार्थ के ज्ञाता ऋषि, और (यानि) जो (सत्या) सत्य तीन कालों में अबाध्य कर्म हैं वे (त्वा) तुझे (वर्द्धयन्तु) बढ़ावें ।

यथाऽग्निर्दिव्येन अतिशुद्धेन **रोचनेन** प्रदीपनेन **विश्वाः** अखिलाः **चतस्रः** एतत्संख्याप्रमिताः **प्रदिशः** प्रकृष्टगुणयुक्ता दिशः **प्रकाशयति, तथा विद्यां संदीदिहि** कामय; **न्याय्यं धर्मम् आ-भाहि** समन्तात् प्रकाशय ॥ २७ । १ ॥

जैसे अग्नि (दिव्येन) अति शुद्ध (रोचनेन) प्रकाश से (विश्वाः) सब (चतस्रः) चार (प्रदिशः) उत्तम गुण युक्त दिशाओं को प्रकाशित करती है; वैसे विद्या की (संदीदिहि) कामना कर तथा न्याय-युक्त धर्म को (आ+भाहि) सब ओर प्रकाशित कर ॥ २७ । १ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । आप्तैः सर्वदा सत्या विद्याः कर्माणि चोपदिश्य सर्वेषां शरीरिणामारोग्यपुष्टीर्विद्यासुशीले च वर्द्धनीये ।

यथा सूर्यः स्वसंनिहितान् प्रकाशयति तथा सर्वे मनुष्याः सुशिक्षया सदैवानन्दयितव्याः ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । आप्त विद्वान्—सर्वदा सत्य विद्या और कर्मों का उपदेश करके सब प्राणियों के आरोग्य, पुष्टि, विद्या और सुशीलता को बढ़ावें ।

जैसे सूर्य अपने समीपस्थ पदार्थों को प्रकाशित करता है; वैसे सब मनुष्य सुशिक्षा से सदा सबको आनन्दित करें ॥ २७ । १ ॥

भा० पदार्थः—सत्या=सत्या विद्याः कर्माणि च । अग्ने=सूर्यः ॥

भाष्यसार—**१. आप्त विद्वान् कैसा आचरण करें**—आप्त विद्वान् ऐसा आचरण करें कि जिससे वर्ष, शरद् आदि ऋतु, मन्त्रार्थ के ज्ञाता ऋषि लोग सत्य विद्या एवं तीनों कालों में निर्बाध कर्म उन्हें बढ़ावें और वे स्वयं सदा सत्य विद्या और शुभ कर्मों का उपदेश करके सब प्राणियों के आरोग्य एवं पुष्टि, विद्या और सुशीलता को बढ़ावें ।

जैसे अग्नि=सूर्य अति शुद्ध प्रकाश से सब दिशाओं को प्रकाशित करता है अर्थात् अपने समीपस्थ पदार्थों को प्रकाशित करता है वैसे आप्त विद्वान् विद्या की कामना करें; न्याय-युक्त धर्म को प्रकाशित करें और सुशिक्षा से सब मनुष्यों को सदा आनन्दित करें ।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । उपमा यह है कि आप्त विद्वान् लोग सूर्य के समान सबको सुशिक्षा एवं विद्या से प्रकाशित करें ॥ २७ । १ ॥ ●

अग्निः । **सामिधेन्यः**=**विद्यादिप्रदीप्ता विद्वांसः** । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

विद्वांस एवोत्तमाधिकारे योजनीया इत्याह ॥

विद्वानों को ही उत्तम अधिकार में नियुक्त करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

सं चे॒ध्यस्वा॑ग्ने॒ प्र च॑ बोधयैन॒मुच्च॑ तिष्ठ मह॒ते सौभ॑गाय ।
मा च॑ रिषदुपस॒त्ता ते॑ ऽ अग्ने ब्र॒ह्माण॑स्ते य॒शस॑: सन्तु॒ माऽन्ये ॥ २ ॥

पदार्थः—(**सम्**) सम्यक् (**च**) (**इध्यस्व**) प्रदीप्तो भव (**अग्ने**) अग्निवद्वर्त्तमान (**प्र**) (**च**) (**बोधय**) (**एनम्**) जिज्ञासुम् (**उत्**) (**च**) (**तिष्ठ**) (**महते**) (**सौभगाय**) शोभनस्य भगस्यैश्वर्यस्य भावाय (**मा**) (**च**) (**रिषत्**) हिंस्यात् (**उपसत्ता**) य उपसीदति सः (**ते**) तव (**अग्ने**) (**ब्रह्माणः**) चतुर्वेदविदः (**ते**) (**यशसः**) कीर्त्तेः (**सन्तु**) (**मा**) निषेधे (**अन्ये**) ॥ २ ॥

अन्वयः—हे अग्ने त्वं समिध्यस्वैनं प्रबोधय च महते सौभगाय चोत्तिष्ठ। उपसत्ता भवान् सौभगं मा रिषत्। हे अग्ने ते ब्रह्माणोऽन्ये च मा सन्तु ते यशस उन्नतिं च मा रिषत्॥ २॥

सपदार्थान्वयः—**हे अग्ने!** अग्निवद्वर्त्तमान! **त्वं समिध्यस्व** सम्यग् प्रदीप्तो भव, **एनं** जिज्ञासुं **प्रबोधय च; महते सौभगाय** शोभनस्य भगस्यैश्वर्यस्य भावाय **चोत्तिष्ठ; उपसत्ता** य उपसीदति सः **भवान् सौभगं मा न रिषद्** हिंस्यात्।

भाषार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य विद्या से प्रकाशित विद्वान्! तू—(समिध्यस्व) विद्या से अच्छे प्रकार प्रदीप्त हो; और (एनम्) इस जिज्ञासु को (प्रबोधय) शिक्षित कर; और (महते) महान् (सौभगाय) उत्तम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए (उत्तिष्ठ) खड़ा हो; प्रयत्न कर। (उपसत्ता) श्रेष्ठ जनों के समीप रहने वाला तू उत्तम ऐश्वर्य की (मा, रिषत्) हिंसा मत कर।

हे **अग्ने**! अग्निवद्वर्त्तमान विद्वन्! **ते** तव **ब्रह्माणः** चतुर्वेदविदः **अन्ये च मा न सन्तु; ते** तव **यशसः** कीर्त्तेः **उन्नतिं च मा न रिषत्** हिंस्यात् ॥ २७। २॥

हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य विद्या से प्रकाशित विद्वान्! (ते) तेरे (ब्रह्माणः) चारों वेदों के ज्ञाता विद्वान् हों, (अन्ये) दूसरे (मा, सन्तु) न हों; (ते) तेरी (यशसः) यश की उन्नति की कोई (मा, रिषत्) हिंसा न करे॥ २७। २॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये विद्वद्भ्यो भिन्नाञ्जनानुत्तमाधिकारे न योजयन्ति, सदोन्नतये प्रयतन्ते, अन्यायेन कञ्चिन्न हिंसन्ति च, ते कीर्त्यैश्वर्ययुक्ता भवन्ति॥ २७। २॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। जो विद्वानों से भिन्न लोगों को उत्तम अधिकार में नियुक्त नहीं करते हैं; सदा उन्नति के लिए प्रयत्न करते हैं, और अन्याय से किसी की हिंसा नहीं करते वे कीर्ति से ऐश्वर्य-युक्त होते हैं॥ २७। २॥

भाष्यसार—१. **विद्वान् को ही उत्तम अधिकार में नियुक्त करें**—विद्वान् विद्या से अग्नि के समान प्रकाशित हो। वह जिज्ञासु जनों को विद्या का बोध करावे और उत्तम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करे। विद्वान् ऐसे विद्वान् को ही ऊँचे आसन पर बैठावें अर्थात् उत्तम अधिकार में नियुक्त करें। वह किसी के ऐश्वर्य का विनाश न करे। वह ब्रह्मा=चारों वेदों के ज्ञाता विद्वानों को अपने समीप रखे अन्य अज्ञों को नहीं। विद्वान् के यश की उन्नति का कोई विनाश न करे।

जो प्रजा विद्वानों से भिन्न जनों को उत्तम अधिकार में नियुक्त नहीं करती, सदा उन्नति के लिए प्रयत्न करती है, अन्याय से किसी की हिंसा नहीं करती वह कीर्ति और ऐश्वर्य से युक्त होती है।

२. अलंकार—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि विद्वान् विद्या से अग्नि के समान प्रकाशित हो॥ २७। २॥ ●

अग्निः। **अग्निः=विद्वान्**। विराट्त्रिष्टुप्। धैवतः॥

जिज्ञासुभिः किं कर्त्तव्यमित्याह॥

जिज्ञासु लोगों को क्या करना चाहिए, यह उपदेश किया है॥

त्वामग्ने वृणते ब्राह्मणा ऽ इमे शिवो ऽ अग्ने संवरणे भवा नः ।
सपत्नहा नो ऽ अभिमातिजिच्च स्वे गये जागृह्यप्रयुच्छन् ॥ ३ ॥

पदार्थः—(त्वाम्) (**अग्ने**) विद्वन् (**वृणते**) स्वीकुर्वन्ति (**ब्राह्मणाः**) ब्रह्मविदः (**इमे**) (**शिवः**) मङ्गलकारी (**अग्ने**) पावकवत् प्रकाशमान (**संवरणे**) सम्यक् स्वीकरणे (**भव**) **अत्र द्वयचोऽतस्तिङ इति दीर्घः** । (**नः**) अस्माकम् (**सपत्नहा**) शत्रुदोषहन्ता (**नः**) अस्मान् (**अभिमातिजित्**) अभिमानजित् (**च**) (**स्वे**) स्वकीये (**गये**) गृहे (**जागृहि**) (**अप्रयुच्छन्**) प्रमादमकुर्वन् ॥ ३ ॥

प्रमाणार्थ—(भव) यहाँ 'द्वयचोऽतस्तिङः' (६ । ३ । १३५) इस सूत्र से संहिता में दीर्घ है । [भवा] ॥

अन्वयः—अग्ने पावकवद्वर्त्तमान य इमे ब्राह्मणास्त्वां वृणते तान् प्रति त्वं संवरणे शिवो भव नोऽस्माकं सपत्नहा भव । हे अग्नेऽप्रयुच्छन्नभिमातिजिच्च त्वं स्वे गये जागृहि नोऽस्मांश्च जागृतान् कुरु ॥ ३ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे अग्ने पावकवद्वर्त्तमान** विद्वन् ! **य इमे ब्राह्मणाः** ब्रह्मविदः **त्वां वृणते** स्वीकुर्वन्ति, **तान् प्रति त्वं संवरणे** सम्यक् स्वीकरणे **शिवः** मङ्गलकारी **भव, नः**= **अस्माकं सपत्नहा** शत्रुदोषहन्ता **भव** ।

भाषार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान विद्या से प्रकाशित विद्वान् ! जो (इमे) ये (ब्राह्मणाः) ब्रह्मज्ञानी (त्वाम्) तुझे (वृणते) वरण करते हैं; स्वीकार करते हैं, उनके प्रति तू (संवरणे) वरण होने पर (शिवः) मंगलकारी (भव) हो; तथा (नः) हमारे (सपत्नहा) शत्रु रूप दोषों का हन्ता हो ।

हे अग्ने ! पावकवत् प्रकाशमान ! **अप्रयुच्छन्** प्रमादमकुर्वन् **अभिमातिजित्** अभिमानजित् **च त्वं स्वे** स्वकीये **गये** गृहे **जागृहि, नः अस्मांश्च जागृतान् कुरु** ॥ २७ । ३ ॥

हे (अग्ने) अग्नि के समान विद्या से प्रकाशित जिज्ञासु ! तू—(अप्रयुच्छन्) प्रमाद न करता हुआ, (अभिमातिजित्) अभिमान को जीतने वाला हो; और तू—(स्वे) अपने (गये) घर में (जागृहि) जाग और (नः) हमें भी जागृत कर ॥ २७ । ३ ॥

भावार्थः—यथा विद्वांसो ब्रह्म स्वीकृत्य मंगलमाप्नुवन्ति, दोषान् घ्नन्ति, तथा—जिज्ञासवो ब्रह्मविदः प्राप्य मंगलाचरणाः सन्तः कुशीलतां घ्नन्तु, आलस्यं विहाय विद्यामुन्नयन्तु च ॥२७।३॥

भावार्थ—जैसे विद्वान् ब्रह्म को स्वीकार करके मंगल को प्राप्त करते हैं, दोषों का हनन करते हैं; वैसे जिज्ञासु ब्रह्मज्ञानियों को प्राप्त करके, मंगल आचरण वाले होकर कुशीलता को नष्ट करें और आलस्य को छोड़कर विद्या को उन्नत करें ॥ २७ । ३ ॥

भा० पदार्थः—शिवः=मङ्गलाचरणः । सपत्नहा=कुशीलहन्ता । अप्रयुच्छन्=आलस्यं विहाय । जागृहि=विद्यामुन्नय ॥

भाष्यसार—**जिज्ञासु क्या करें**—विद्या से अग्नि के समान प्रकाशित जिज्ञासु विद्वान् ब्राह्मण=ब्रह्म के ज्ञाता विद्वानों को प्राप्त करें; मंगल आचरण वाले हों, शत्रु रूप कुशीलता आदि दोषों का हनन करें । प्रमाद न करें; आलस्य का परित्याग करें, अभिमान को जीतें । अपने घर में विद्या आदि की उन्नति में जागरूक रहें तथा अन्यों को भी जागरित करें ॥ २७ । ३ ॥ ●

अग्निः । **अग्निः**=राजा । स्वराट्त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथ राजधर्मविषयमाह ॥

अब राजधर्म विषय का उपदेश किया जाता है ॥

इहैवाग्ने ऽ अधि धारया रयिं मा त्वा नि क्रन् पूर्वचितो निकारिणः ।
क्षत्रमग्ने सुयममस्तु तुभ्यमुपसत्ता वर्द्धतां ते ऽ अनिष्टृतः ॥ ४ ॥

पदार्थः—(**इह**) अस्मिन्संसारे (**एव**) (**अग्ने**) विद्युद्वद्वर्त्तमान (**अधि**) उपरिभावे (**धारय**) अत्र संहितायामिति दीर्घः । (**रयिम्**) श्रियम् (**मा**) (**त्वा**) त्वाम् (**नि**) नीचैः ((**क्रन्**) कुर्युः (**पूर्वचितः**) पूर्वैः प्राप्तविज्ञानादिभिर्वृद्धाः (**निकारिणः**) नितरां कर्तुं स्वभावाः (**क्षत्रम्**) धनं राज्यं वा (**अग्ने**) विनयप्रकाशित (**सुयमम्**) सुष्ठु यमा यस्मात्तत् (**अस्तु**) (**तुभ्यम्**) (**उपसत्ता**) उपसीदन् (**वर्द्धताम्**) (**ते**) तव (**अनिष्टृतः**) अनुपहिंसितः ॥ ४ ॥

प्रमाणार्थ—(**धारय**) यहाँ 'संहितायाम्' (६ । ३ । १४४) इस इस सूत्र से संहिता में दीर्घ है [**धारया**] ॥

अन्वयः—हे अग्ने त्वमिह रयिं धारय पूर्वचितो निकारिणस्त्वा मा नि क्रन् । हे अग्ने ते सुयमं क्षत्रमस्तु येनोपसत्ता सन्ननिष्टृतो भूत्वैव भवान्नधिवर्धताम् । तुभ्यं क्षत्रं सुखदातृ भवतु ॥ ४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने** ! विद्युद्वद्वर्त्तमान ! **त्वमिह** अस्मिन्संसारे **रयिं** श्रियं **धारय, पूर्वचितः** पूर्वैः प्राप्तविज्ञानादिभिर्वृद्धाः **निकारिणः** नितरां कर्त्तुं स्वभावाः **त्वा** त्वां **मा नि+क्रन्** नीचैः कुर्युः ।

हे **अग्ने** ! विनयप्रकाशित ! **ते** तव **सुयमं** सुष्ठु यमा यस्मात्तत् **क्षत्रं** धनं राज्यं वा **अस्तु, येनोपसत्ता** उपसीदन् **सन्ननिष्टृतः** अनुपहिंसितः **भूत्वैव भवानधि+वर्धताम्** उपरिवर्द्धताम् । **तुभ्यं क्षत्रं** धनं राज्यं वा **सुखदातृ भवतु** ॥ २७ । ४ ॥

भावार्थः—हे राजन् ! एवं विनयं धरेः, येन पूर्ववृद्धा जनास्त्वां बहु मन्येरन् । राज्ये सुनियमान् प्रवर्त्तय, येन स्वयं स्वराज्यं च विघ्नविरहं भूत्वा सर्वतो वर्द्धेत, भवन्तं सर्वोपरि प्रजा मन्येत च ॥ २७ । ४ ॥

भाषार्थ—(अग्ने) विद्युत् के समान प्रकाशमान राजन् ! तू—(इह) इस संसार में (रयिम्) विनय श्री को (धारय) धारण कर; (पूर्वचितः) पूर्व प्राप्त विज्ञान आदि से वृद्ध जन जो (निकारिणः) सर्वथा शुभ कर्म करने वाले हैं वे (त्वा) तुझे (मा, नि+क्रन्) नीचा न करें, अपितु तेरा मान करें ।

हे (अग्ने) विनय से प्रकाशित राजन् ! (ते) तेरा (सुयमम्) नियमित (क्षत्रम्) धन वा राज्य (अस्तु) हो; जिससे (उपसत्ता) सर्वोपरि विराजमान तथा (अनिष्टृतः) हिंसा=विघ्न रहित होकर तू—(अधि+वर्द्धताम्) सब ओर बढ़; तथा (तुभ्यम्) तेरे लिए (क्षत्रम्) धन वा राज्य सुखदायक हो ॥४॥

भावार्थ—हे राजन् ! इस प्रकार विनय धारण कर जिससे पूर्वज वृद्ध लोग तेरा बहुत मान करें । राज्य में उत्तम नियमों को प्रवृत्त=चालू कर, जिससे तू स्वयं और स्वराज्य विघ्न रहित होकर सब ओर बढ़े और आपको प्रजा सर्वोपरि माने ॥ २७ । ४ ॥

भा० पदार्थः—अग्ने=हे राजन्! रयिम्=विनयम्। धारय=धरेः। पूर्वचितः=पूर्ववृद्धा जनाः। सुयमम्=सुनियमम्। क्षत्रम्=स्वराज्यम्। अनिष्टृतः=विघ्नविरहः॥

भाष्यसार—**राजधर्म**—विद्युत् के समान तेजस्वी राजा इस संसार में इस प्रकार से विनय रूप श्री को धारण करे जिससे पूर्वज विज्ञान आदि की प्राप्ति से वृद्ध लोग नीचा न मानें अपितु बहुत मान करें। विनय से प्रकाशित राजा का उत्तम नियमों से युक्त राज्य हो, धन हो। वह राज्य में उत्तम नियमों को चलावे। जिससे ऊँचे आसन पर बैठ कर स्वयं को और स्वराज्य को निर्विघ्न होकर सब ओर बढ़ावे। राजा का धन और राज्य सुखदायक हो। प्रजा राजा को सर्वोपरि माने॥ २७। ४॥

अग्निः। **अग्निः**=**राजा**। स्वराट्पङ्क्तिः। पञ्चमः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

राजधर्म का फिर उपदेश किया है॥

क्षत्रेणाग्ने स्वायुः सᳬं रभस्व मित्रेणाग्ने मित्रधेये यतस्व।
सजातानां मध्यमस्था ऽ एधि राज्ञामग्ने विहव्यो दीदिहीह॥ ५॥

पदार्थः—(**क्षत्रेण**) राज्येन धनेन वा (**अग्ने**) पावकवत्तेजस्विन् (**स्वायुः**) शोभनं च तदायुश्च (**सम्**) सम्यक् (**रभस्व**) आरम्भं कुरु (**मित्रेण**) धार्मिकैर्विद्वद्भिर्मित्रैः सह (**अग्ने**) विद्याविनयप्रकाशक (**मित्रधेये**) मित्रैर्धर्त्तव्ये व्यवहारे (**यतस्व**) (**सजातानाम्**) समानजन्मनाम् (**मध्यमस्थाः**) मध्ये भवा मध्यमा=पक्षपातरहितास्तेषु तिष्ठतीति (**एधि**) भव (**राज्ञाम्**) धार्मिकाणां राजाधिराजानां मध्ये (**अग्ने**) न्यायप्रकाशक (**विहव्यः**) विशेषेण स्तोतुं योग्यः (**दीदिहि**) प्रकाशितो भव (**इह**) अस्मिन् संसारे राज्याधिकारे वा॥ ५॥

अन्वयः—हे अग्ने! त्वमिह क्षत्रेण सह स्वायुः संरभस्व। हे अग्ने! मित्रेण सह मित्रधेये यतस्व। हे अग्ने! सजातानां राज्ञां मध्ये मध्यमस्था एधि। विहव्यः सन् दीदिहि च॥ ५॥

सपदार्थान्वयः—**हे अग्ने!** पावकवत् तेजस्विन्! **त्वमिह** अस्मिन् संसारे राज्याधिकारे वा **क्षत्रेण** राज्येन धनेन वा **सह स्वायुः** शोभनं च तदायुश्च **संरभस्व** सम्यगारम्भं कुरु।

हे अग्ने! विद्याविनयप्रकाशक! **मित्रेण** धार्मिकैर्विद्वद्भिर्मित्रैः **सह मित्रधेये** मित्रैर्धर्त्तव्ये व्यवहारे **यतस्व**।

हे अग्ने! न्यायप्रकाशक! **सजातानां** समानजन्मनां **राज्ञां** धार्मिकाणां राजाधिराजानां **मध्ये मध्यमस्थाः** मध्ये भवा मध्यमा=पक्षपातरहितास्तेषु तिष्ठतीति **एधि** भव; **विहव्यः** विशेषेण स्तोतुं योग्यः **सन् दीदिहि** प्रकाशितो भव **च**॥ २७। ५॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्वी राजन्! तू—(इह) इस संसार में वा राज्याधिकार में (क्षत्रेण) राज्य वा धन के साथ (स्वायुः) उत्तम आयु को (संरभस्व) आरम्भ कर प्राप्त कर।

हे (अग्ने) विद्या और विनय के प्रकाशक राजन्! (मित्रेण) धार्मिक विद्वान् मित्रों के साथ (मित्रधेये) मित्रों के धारण करने योग्य व्यवहार में (यतस्व) प्रयत्न कर।

हे (अग्ने) न्याय के प्रकाशक राजन्! तू—(सजातानाम्) समान जन्म वाले (राज्ञाम्) धार्मिक राजाधिराजाओं में (मध्यमस्थ) मध्यमस्थ अर्थात् पक्षपात रहित (एधि) हो, और (विहव्यः) विशेष स्तुति के योग्य होकर (दीदिहि) प्रकाशित हो॥ २७। ५॥

भावार्थः—राजा सदा ब्रह्मचर्येण दीर्घायुः, सत्यधर्मप्रियैरमात्यैः सह मन्त्रयिता, अन्यै राजभिः सह सुसन्धिः; पक्षपातं विहाय न्यायाधीशः, सर्वैः सुलक्षणैर्युक्तः सन् दुष्टव्यसनविरहो भूत्वा, धर्मार्थकाममोक्षान् धैर्येण, शान्त्या, अप्रमादेन च शनैश्शनैः साधयेत् ॥ २७ । ५ ॥

भावार्थ—राजा सदा ब्रह्मचर्य से दीर्घायु, सत्य धर्म के प्रिय अमात्यों=मन्त्रियों के साथ मन्त्रणा करने वाला, अन्य राजाओं के साथ श्रेष्ठ सन्धि करने वाला, पक्षपात रहित न्यायाधीश तथा सब उत्तम लक्षणों से युक्त और दुष्ट व्यसनों से रहित होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को धैर्य, शान्ति और अप्रमाद से शनैः शनैः सिद्ध करें ॥ २७ । ५ ॥

भा० पदार्थः—स्वायुः=ब्रह्मचर्येण दीर्घायुः । मित्रेण=सत्यधर्मप्रियेणामात्येन सह । मित्रधेये=मन्त्रे, सुसन्धौ । मध्यस्थाः=न्यायाधीशाः । विहव्यः=सर्वैः सुलक्षणैर्युक्तः सन् दुष्टव्यसन-विरहः ॥

भाष्यसार—**राजधर्म**—अग्नि के समान तेजस्वी राजा इस संसार में एवं राज्याधिकार में राज्य और धन के साथ-साथ उत्तम आयु को प्राप्त करे अर्थात् ब्रह्मचर्य से दीर्घायु हो। विद्या और विनय का प्रकाशक राजा धार्मिक, विद्वान्, मित्र रूप अमात्यों के साथ मन्त्रणा करे। मित्रों के द्वारा धारण करने योग्य व्यवहार में प्रयत्न करे। न्याय का प्रकाशक राजा समान जन्म (आयु) वाले धार्मिक राजाधिराजाओं के मध्य में मध्यस्थ बने। अन्य राजाओं के साथ सन्धि करे। पक्षपात को छोड़कर न्यायाधीश हो। सब उत्तम लक्षणों से युक्त होकर विशेष स्तुति के योग्य हो। दुष्ट व्यसनों से रहित होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को धैर्य, शान्ति और अप्रमाद से शनैः शनैः सिद्ध करे ॥ २७ । ५ ॥ ●

अग्निः । **अग्निः**=**राजा** । भुरिग्बृहती । मध्यमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजधर्म विषय का फिर उपदेश किया है ॥

अति॒ निहो॒ ऽ अति॒ स्रिधो॒ऽत्यचि॑त्ति॒मत्यरा॑तिमग्ने ।
विश्वा॒ ह्य॑ग्ने दु॒रि॒ता सह॒स्वाथा॒स्मभ्य॒ꣳ स॒हवी॑राꣳ र॒यिं दाः॑ ॥ ६ ॥

पदार्थः—(**अति**) अतिशयेन (**निहः**) योऽसत्यं नितरां जहाति सः (**अति**) (**स्रिधः**) दुष्टाचारान् (**अति**) अतिक्रम्य (**अचित्तिम्**) अज्ञानम् (**अति**) (**अरातिम्**) अदानम् (**अग्ने**) तेजस्विन् सभापते (**विश्वाः**) सर्वाणि (**हि**) खलु (**अग्ने**) दृढविद्य (**दुरिता**) दुष्टाचरणानि (**सहस्व**) (**अथ**) (**अस्मभ्यम्**) (**सहवीराम्**) वीरैः सह वर्त्तमानां सेनाम् (**रयिम्**) धनम् (**दाः**) दद्याः ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे अग्ने त्वमति निहः सन् स्रिधोऽति सहस्वाचित्तिमत्यरातिं सहस्व । हे अग्ने त्वं हि विश्वा दुरिताऽतिसहस्वाऽथाऽस्मभ्यं सहवीरां रयिं च दाः ॥ ६ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे अग्ने** ! तेजस्विन् सभापते ! **त्वम् अति** अतिशयेन **निहः** योऽसत्यं नितरां जहाति सः **सन् स्रिधः** दुष्टाचारान् **अति** अतिशयेन **सहस्व**, **अचित्तिं** अज्ञानम् **अति**= **अरातिम्** अदानम् [**अति**]=अतिक्रम्य **सहस्व** ।

भाषार्थ—हे (अग्ने) तेजस्वी सभापते ! तू—(अति) अत्यन्त (निहः) असत्य का त्याग करने वाला होकर (स्रिधः) दुष्ट आचरण वाले पुरुषों को (अति) सर्वथा (सहस्व) नष्ट कर, अति अत्यन्त (अचित्तिम्) अज्ञान, (अति) अत्यन्त

(अरातिम्) अदान भाव को (सहस्व) नष्ट कर।

हे अग्ने ! दृढविद्य ! **त्वं हि** खलु **विश्वा** सर्वाणि **दुरिता** दुष्टाचरणानि **अति** अतिशयेन **सहस्व, अथ—अस्मभ्यं सहवीरां** वीरैः सह वर्त्तमानां सेनां **रयिं** धनं **च दाः** दद्याः ॥ २७ । ६ ॥

हे (अग्ने) दृढ़ विद्या वाले सभापते ! तू (हि) निश्चय से (विश्वा) सब (दुरिता) दुष्ट आचरणों को (अति) अत्यन्त (सहस्व) नष्ट कर; (अथ) और (अस्मभ्यम्) हमें (सहवीराम्) वीरों से युक्त सेना और (रयिम्) धन (दद्याः) दे ॥ २७ । ६ ॥

भावार्थः—ये दुष्टाचारत्यागिनः कुत्सितानां निरोधका, अज्ञानमदानं च पृथक् कुर्वाणाः, दुर्व्यसनेभ्यः पृथग्भूताः, सुखदुःखयोः सोढारः, वीरसेनप्रिया यथागुणानां जनानां योग्यं सत्कारं कुर्वन्तः सन्तो, न्यायेन राज्यं पालयेयुस्ते सदा सुखिनो भवेयुरिति ॥ २७ । ६ ॥

भावार्थ—जो दुष्ट आचरण का त्याग करने वाले, कुत्सित=निन्दनीय कार्यों को रोकने वाले, अज्ञान और अदान को दूर करने वाले, दुर्व्यसनों से पृथक्, सुख-दुःख को सहन करने वाले वीर-सेना के प्रिय, गुणों के अनुसार जनों का योग्य सत्कार करते हुए न्याय से राज्य का पालन करते हैं; वे सदा सुखी रहते हैं ॥ २७ । ६ ॥

भा० पदार्थः—निहः=दुष्टाचारत्यागी । स्रिधः=कुत्सितानां निरोधकः । दुरिता=दुर्व्यसनानि ।

भाष्यसार—**राजधर्म**—अग्नि के समान तेजस्वी सभापति राजा—असत्य का सर्वथा परित्याग करने वाला हो; दुष्ट आचार वालों को नष्ट करे; अज्ञान और अदान को भी नष्ट करे। दृढ़ विद्या वाला राजा सब दुष्ट आचरण=दुर्व्यसनों से पृथक् रहे। सुख-दुःख को सहन करने वाला हो। प्रजा को वीरसेना और धन प्रदान करे अर्थात् वीरसेना का प्रिय हो तथा गुणों के अनुसार प्रजा का यथायोग्य सत्कार करे। न्याय राज्य की रक्षा करे। ऐसे आचरण से राजा सदा सुखी रहता है ॥२७।६॥

अग्निः । **अग्निः=राजा** । निचृज्जगती । निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजधर्म विषय का फिर उपदेश किया है ॥

अनाधृष्यो जातवेदा ऽ अनिष्टृतो विराडग्ने क्षत्रभृद्दीदिहीह ।
विश्वा ऽ आशाः प्रमुञ्चन्मानुषीर्भियः शिवेभिरद्य परि पाहि नो वृधे ॥ ७ ॥

पदार्थः—(**अनाधृष्यः**) अन्यैर्धर्षितुमयोग्यः (**जातवेदाः**) जातविद्यः (**अनिष्टृतः**) दुःखात् पृथग्भूतः (**विराट्**) विशेषेण राजमानः (**अग्ने**) सुसंगृहीतराजनीते (**क्षत्रभृत्**) यः क्षत्रं=राज्यं बिभर्त्ति सः (**दीदिहि**) कामय (**इह**) अस्मिन् राज्यव्यवहारे (**विश्वाः**) सकलाः (**आशाः**) दिशः (**प्रमुञ्चन्**) प्रकर्षेण मुक्ताः कुर्वन् (**मानुषीः**) मनुष्यसम्बन्धिनीः (**भियः**) रोगदोषादिकाः (**शिवेभिः**) कल्याणकारिभिः सभ्यैः (**अद्य**) इदानीम् (**परि**) सर्वतः (**पाहि**) रक्ष (**नः**) अस्मान् (**वृधे**) वर्धनाय ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे अग्ने योऽद्येह मानुषीर्भियो नाशयति शिवेभिश्च सहानिष्टृतोऽनाधृष्यो जातवेदा विराट् क्षत्रभृदस्ति स त्वं नो दीदिहि विश्वा आशाः प्रमुञ्चँस्त्वं नो वृधे परि पाहि ॥ ७ ॥

सपदार्थान्वयः--हे **अग्ने** ! सुसंगृहीतराजनीते ! **योऽद्य** इदानीम् **इह** अस्मिन् राज्यव्यवहारे **मानुषीः** मनुष्यसम्बन्धिनीः **भियः** रोगदोषादिकाः **नाशयति**; **शिवेभिः** कल्याणकारिभिः सभ्यैः **च सहानिष्टृतः** दुःखात्पृथग्भूतः, **अनाधृष्यः** अन्यैर्धर्षितुमयोग्यः, **जातवेदाः** जातविद्यः, **विराट्** विशेषेण राजमानः, **क्षत्रभृद्** यः क्षत्रं=राज्यं बिभर्त्ति सः **अस्ति, स त्वं नः** अस्मान् **दीदिहि** कामय । **विश्वाः** सकलाः **आशाः** दिशः **प्रमुञ्चन्** प्रकर्षेण मुक्ताः कुर्वन् **त्वं नः** अस्मान् **वृधे** वर्धनाय **परि+पाहि** सर्वतो रक्ष ॥ २७ । ७ ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) राजनीति का अच्छे प्रकार संग्रह करने वाले राजन् ! जो (अद्य) अब (इह) इस राज्य-व्यवहार में (मानुषीः) मनुष्य सम्बन्धी (भियः) रोग, दोष आदि भयों को नष्ट करता है; (शिवेभिः) कल्याणकारी सभ्य जनों के साथ (अनिष्टृतः) दुःख से पृथक् (अनाधृष्यः) अन्यों से धर्षण के अयोग्य, (जातवेदाः) विद्या से युक्त, (विराट्) विशेष रूप से प्रकाशमान (क्षत्रभृत्) राज्य को धारण-पोषण करने वाला है; सो तू—(नः) हमारी (दीदिहि) कामना कर ! (विश्वाः) सब (आशाः) दिशाओं को (प्रमुञ्चन्) सर्वथा मुक्त करता हुआ तू (नः) हमारी (वृधे) वृद्धि के लिए (परि+पाहि) सब ओर से रक्षा कर ॥ २७ । ७ ॥

भावार्थः—ये राजराजपुरुषाः प्रजाः सन्तोष्य मङ्गलाचरणाः सर्वविद्यान्यायप्रियाः सन्तः प्रजाः पालयेयुः ते सर्वदिक् प्रवृत्तकीर्त्तयः स्युः ॥ २७ । ७॥

भावार्थ—जो राजा एवं राजपुरुष प्रजा को सन्तुष्ट करके मङ्गल आचरण वाले, सब विद्या और न्याय के प्रेमी होकर प्रजा का पालन करते हैं; वे सब दिशाओं में कीर्ति वाले होते हैं ॥२७।७॥

भा० पदार्थः—शिवेभिः=मङ्गलाचरणैः । अनाधृष्यः=न्यायप्रियः । जातवेदाः=सर्वविद्याप्रियः । क्षत्रभृत्=प्रजापालकः ।

भाष्यसार—**राजधर्म**—राजनीति को स्वीकार करने वाला राजा—अपने वर्तमान काल में एवं इस राज्य-व्यवहार में मनुष्यों के रोगों और दोष आदि को नष्ट करे। राजा कल्याणकारी सभ्य जनों के साथ दुःख से पृथक् रहे, अन्यों से धर्षित न हो; विद्या से युक्त हो, विशेष रूप से राजमान=प्रकाशमान हो, राज्य को धारण-पोषण करने वाला हो। वह प्रजा की कामना करे। तात्पर्य यह है कि राज और राजपुरुष प्रजा को सन्तुष्ट करके स्वयं मंगल आचरण वाले सकल विद्या और न्याय के प्रिय होकर प्रजा का पालन करें। सब दिशाओं में कीर्ति को फैलावें ॥ २७ । ७ ॥

प्रजापतिः । **विश्वेदेवाः=राजसभोपदेशकाः** । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजधर्म विषय का फिर उपदेश किया है ॥

बृहस्पते सवितर्बोधयैनꣳ सꣳशितं चित्सन्तराꣳ सꣳ शिशाधि ।
वर्धयैनं महते सौभगाय विश्वऽएनमनु मदन्तु देवाः ॥ ८ ॥

पदार्थः—(**बृहस्पते**) बृहतां पालक (**सवितः**) विद्यैश्वर्ययुक्त (**बोधय**) सचेतनं कुरु (**एनम्**) राजानम् (**संशितम्**) तीक्ष्णबुद्धिस्वभावम् (**चित्**) (**सन्तराम्**) अतितराम् (**सं, शिशाधि**) सम्यक् शिक्षस्व (**वर्द्धय**) (**एनम्**) (**महते**) (**सौभगाय**) उत्तमैश्वर्यभावाय (**विश्वे**) सर्वे (**एनम्**) (**अनु**) पश्चात् (**मदन्तु**) आनन्दन्तु (**देवाः**) सुसभ्या विद्वांसः ॥ ८ ॥

अन्वयः--हे बृहस्पते ! सवितः पूर्णविद्योपदेशक त्वमेनं संशितं कुर्वन् बोधय संशिशाधि चिदपि प्रजाः सन्तरां शिशाध्येनं महते सौभगाय वर्धय विश्वे देवा एनमनु मदन्तु ॥ ८ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे बृहस्पते** ! बृहतां पालक **सवितः पूर्णविद्योपदेशक** विद्यैश्वर्ययुक्त ! **त्वमेनं** राजानं **संशितं** तीक्ष्णबुद्धिस्वभावं **कुर्वन् बोधय** सचेतनं कुरु; **संशिशाधि** सम्यक् शिक्षस्व; **चित्=अपि प्रजाः सन्तराम्** अतितरां **शिशाधि** सम्यक् शिक्षस्व; **एनं** राजानं **महते सौभगाय** उत्तमैश्वर्यभावाय **वर्धय** ।

विश्वे सर्वे **देवाः** सुसभ्या विद्वांसः **एनं** राजानम् **अनु+पश्चात् मदन्तु** आनन्दन्तु ॥ २७ । ८ ॥

भावार्थः—यो राजसभोपदेशकः स एतान् दुर्व्यसनेभ्यो निवर्त्य, सुशीलान् संपाद्य, महैश्वर्यवृद्धये प्रवर्त्तयेत् ॥ २७ । ८ ॥

भाषार्थ—हे (बृहस्पते) बड़ों के पालक, (सवितः) पूर्ण विद्या के उपदेशक एवं विद्या-ऐश्वर्य से युक्त विद्वान् ! तू—(एनम्) इस राजा को (संशितम) तीक्ष्ण बुद्धि और स्वभाव वाला बनाकर (बोधय) सचेत कर; तथा (संशिशाधि) उत्तम रीति से शिक्षा कर; (चित्) और (प्रजाः) प्रजा को (सन्तराम्) सर्वथा (शिशाधि) उत्तम रीति से शिक्षा कर; (एनम्) इस राजा को (महते) महान् (सौभगाय) उत्तम ऐश्वर्य के लिए (वर्धय) बढ़ा ।

(विश्वे) सब (देवाः) सुसभ्य विद्वान् (एनम्) इस राजा के (अनु) पश्चात् (मदन्तु) आनन्दित रहें ॥ २७ । ८ ॥

भावार्थ--जो राजसभा का उपदेशक हो वह इन्हें दुर्व्यसनों से हटाकर, सुशील बनाकर महान् ऐश्वर्य की वृद्धि के लिए प्रवृत्त करे ॥२७।८॥

भाष्यसार—**राजधर्म**—बृहस्पति अर्थात् बड़ों का पालक, विद्या-ऐश्वर्य से युक्त, पूर्ण-विद्या का उपदेशक विद्वान्—राजा को तीक्ष्ण बुद्धि वाला एवं तीक्ष्ण स्वभाव वाला बनावे; और उसे सचेत करे, उत्तम शिक्षा करे अर्थात् दुर्व्यसनों से हटाकर सुशील बनावे । प्रजा को भी उत्तम शिक्षा करे। राजा को महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए आगे बढ़ावे । सब सुसभ्य विद्वान् लोग उक्त राजा के अनुकूल आचरण से आनन्दित रहें ॥ २७ । ८ ॥

प्रजापतिः । **अश्व्यादयः**=**अध्यापकोदेशकादयः** । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथाऽध्यापकोपदेशकैः किं कार्यमित्याह ॥

अब अध्यापक और उपदेशकों को क्या करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

अमुत्रभूयादध यद्यमस्य बृहस्पते ऽ अभिशस्तेरमुञ्चः ।
प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्माद्देवानामग्ने भिषजा शचीभिः ॥ ९ ॥

पदार्थः—**(अमुत्रभूयात्)** परजन्मनि भाविनः । **अत्रामुत्रोपपदाद् भूधातोः क्यप्** **(अध)** अथ **(यत्)** **(यमस्य)** नियन्तुः **(बृहस्पते)** महतां पालक **(अभिशस्तेः)** सर्वतोऽपराधात् **(अमुञ्चः)** मुच्याः **(प्रति)** **(औहताम्)** वितर्केण साध्नुताम् **(अश्विना)** अध्यापकोपदेशकौ **(मृत्युम्)** **(अस्मात्)** **(देवानाम्)** **(अग्ने)** सद्वैद्य **(भिषजा)** औषधानि **(शचीभिः)** कर्मभिः प्रज्ञाभिर्वा ॥ ६ ॥

प्रमाणार्थ—**(अमुत्रभूयात्)** यहाँ 'अमुत्र' उपपद 'भू' धातु से 'क्यप्' प्रत्यय है । अमुत्र+भू+क्यप्=अमुत्रभूय+ङसि=अमुत्रभूयात् ॥

अन्वयः—हे बृहस्पते त्वममुत्रभूयादभिशस्तेरेनममुञ्चः । अथ यद्यो यमस्य शासने तिष्ठेत्तस्य मृत्युममुञ्चः । हे अग्ने त्वं यथाऽश्विना शचीभिर्भिषजा प्रत्यौहतां तथाऽस्माद्देवानामारोग्यं सम्पादय ॥ ९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **बृहस्पते** ! महतां पालक ! **त्वममुत्रभूयात्** परजन्मनि भाविनः **अभिशस्तेः** सर्वतोऽपराधात् **एनममुञ्चः** मुच्याः ।

अथ अथ **यत्**=**यो यमस्य** नियन्तुः **शासने तिष्ठेत्तस्य मृत्युममुञ्चः** मुच्याः ।

हे **अग्ने** ! सद्वैद्य ! **त्वं यथाऽश्विना** अध्यापकोपदेशकौ **शचीभिः** कर्मभिः प्रज्ञाभिर्वा **भिषजा** औषधानि **प्रत्यौहतां** वितर्केण साध्नुतां, **तथाऽस्माद्देवानामारोग्यं सम्पादय** ॥ २७ । ९ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । त एव श्रेष्ठा अध्यापकोपदेशका येऽत्र परत्र च सुखाय सर्वान् सुशिक्षयेयुः, येन ब्रह्मचर्यादीनि कर्माणि सेवयित्वा मनुष्या अल्पमृत्युमानन्दहानिं च नाप्नुयुः ॥ २७ । ९ ॥

भाषार्थ—हे (बृहस्पते) बड़ों के पालक विद्वान् ! तू—(अमुत्रभूयात्) परजन्म में होने वाले (अभिशस्तेः) सब अपराध से इसे (अमुञ्चः) मुक्त कर ।

(अथ) और (यत्) जो (यमस्य) नियन्ता के शासन में है उसकी (मृत्युम्) मृत्यु को (अमुञ्चः) मुक्त कर ॥

हे (अग्ने) श्रेष्ठ वैद्य ! तू—जैसे (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक (शचीभिः) कर्म वा प्रज्ञाओं से (भिषजा) औषधों को (प्रत्यौहताम्) विचारपूर्वक सिद्ध करते हैं; वैसे इस औषध से विद्वानों के आरोग्य को सिद्ध कर ॥ २७ । ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है । वे ही श्रेष्ठ अध्यापक और उपदेशक हैं जो इस जन्म और परजन्म में सुख के लिए सब को सुशिक्षा करते हैं; जिससे ब्रह्मचर्य आदि कर्मों का सेवन करके मनुष्य अल्पायु में मृत्यु और आनन्द-हानि को प्राप्त न हो ॥ २७ । ९ ॥

भा० पदार्थः—अमुत्रभूयात्=अत्र परत्र च सुखाय । मृत्युम्=अल्पमृत्युमानन्दहानिं च ।

भाष्यसार—१. **अध्यापक और उपदेशक क्या करें**—बृहस्पति—महापुरुषों का पालक विद्वान्—सब मनुष्यों को पर-जन्म और इस जन्म में होने वाले अपराधों से मुक्त करे; इस लोक और परलोक में सुख-प्राप्ति के लिए सब मनुष्यों को उत्तम शिक्षा करे । जो यम के शासन में रहे उसे मृत्यु-दुःख से मुक्त करे । ब्रह्मचर्य आदि कर्मों का सेवन करके मनुष्य अल्पायु में मृत्यु को प्राप्त न हों । आनन्द की हानि न करें ।

जैसे अध्यापक और उपदेशक लोग कर्म एवं बुद्धि से औषधों को विचारपूर्वक सिद्ध करते हैं वैसे श्रेष्ठ वैद्य औषधों को सिद्ध करे तथा विद्वानों को आरोग्य प्रदान करे ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचकलुप्तोपमा अलंकार है । उपमा यह है कि श्रेष्ठ वैद्य अध्यापक और उपदेशक के समान सबको आरोग्य प्रदान करे ॥ २७ । ९ ॥ ●

अग्निः । **सूर्यः**=ईश्वरः । विराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

अथेश्वरोपसनाविषयमाह ॥

अब ईश्वर की उपासना का उपदेश किया जाता है ॥

उद्वयन्तम॑सस्परि स्वः॒ पश्य॑न्त॒ ऽ उत्त॑रम् । दे॒वं दे॑व॒त्रा सूर्य॒मग॑न्म॒ ज्योति॑रुत्त॒मम् ॥ १० ॥

पदार्थः—(**उत्**) उत्कर्षे (**वयम्**) (**तमसः**) अन्धकारात्पृथग्वर्त्तमानम् (**परि**) सर्वतः (**स्वः**) सुखसाधकम् (**पश्यन्तः**) प्रेक्षमाणाः (**उत्तरम्**) सर्वेषां लोकानामुत्तारकम् (**देवम्**) द्योतमानम् (**देवत्रा**) देवेषु वर्त्तमानम् (**सूर्यम्**) चराऽचरात्मानम् (**अगन्म**) प्राप्नुयाम (**ज्योतिः**) प्रकाशमानम् (**उत्तमम्**) अतिश्रेष्ठम् ॥ १० ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा वयं तमसः पृथग्भूतं ज्योतिः सवितृमण्डलं पश्यन्तः स्वरुत्तरं देवत्रोत्तमं सूर्यं जगदीश्वरं देवं पर्युदगन्म तथा यूयमपि प्राप्नुत ॥ १० ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यथा वयं तमसः** अन्धकारात् पृथग्वर्त्तमानं **पृथग्भूतं ज्योतिः=सवितृमण्डलं** प्रकाशमानं **पश्यन्तः** प्रेक्षमाणाः, **स्वः** सुखसाधकम् **उत्तरं** सर्वेषां लोकानामुत्तारकं **देवत्रा** देवेषु वर्त्तमानम् **उत्तमम्** अतिश्रेष्ठं **सूर्यं=जगदीश्वरं** चराऽचरात्मानं **देवं** द्योतमानं, **पर्युदगन्म** सर्वत उत्कर्षं प्राप्नुयाम; **तथा यूयमपि प्राप्नुत** ॥ २७ । १० ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम—(तमसः) अन्धकार से पृथक् रहने वाले (ज्योतिः) प्रकाशमान सूर्यमण्डल को (पश्यन्तः) देखते हुए—(स्वः) सुख-साधक, (उत्तरम्) सब लोगों को दुःख से पार करने वाले (देवत्रा) देवों में विद्यमान महादेव (उत्तमम्) अति श्रेष्ठ (सूर्यम्) चराचर के आत्मा जगदीश्वर (देवम्) देव को (पर्युदगन्म) सब ओर उत्तम रीति से प्राप्त करते हैं, वैसे तुम भी प्राप्त करो ॥ २७ । १० ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । ये मनुष्याः सूर्यमिवाऽविद्यान्धकारात्पृथग्भूतं, स्वप्रकाशं, महादेवं, सर्वोत्कृष्टं, सर्वान्तर्यामिणं परमात्मानमेवोपासते; ते मुक्तिसुखमपि लभन्ते ॥ २७ । १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । जो मनुष्य सूर्य के समान अविद्या-अन्धकार से पृथक्, स्वप्रकाशस्वरूप, महादेव, सब से उत्कृष्ट, सर्वान्तर्यामी परमात्मा की ही उपासना करते हैं, वे मुक्ति सुख को भी प्राप्त होते हैं ॥१०॥

भा० पदार्थः—तमसः=अविद्यान्धकारात् पृथग्भूतम् । स्वः=स्वप्रकाशम् । देवत्रा=महादेवम् । उत्तमम्=सर्वोत्कृष्टम् । सूर्यम्=सर्वान्तर्यामिणम् । सूर्यमिवाविद्यान्धकारात् पृथग्भूतं स्वप्रकाशम् । देवम्=परमात्मानम् ॥ पर्युदगन्म=मुक्तिसुखमपि प्राप्नुयाम ॥

भाष्यसार—**१. ईश्वर की उपासना**—विद्वान लोग सूर्य के समान अन्धकार से पृथक्, प्रकाशमान परमात्मा को देखते हैं । वे स्वप्रकाश स्वरूप, सब सुखों के साधक, सब लोगों को दुःख से पार करने वाले, देव के देव महादेव, अति श्रेष्ठ एवं सर्वोत्कृष्ट, चराचर जगत् के आत्मा अर्थात् सर्वान्तर्यामी, प्रकाशमान जगदीश्वर को सब ओर से प्राप्त करते हैं; उसकी उपासना करते हैं और वे मुक्ति सुख को भी प्राप्त करते हैं ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । उपमा यह है कि सब सब मनुष्य विद्वानों के समान जगदीश्वर की उपासना करें ॥ २७ । १० ॥

अग्निः । **अग्निः**=**भौतिकः** । उष्णिक् । ऋषभः ॥

अथाऽग्निः कीदृश इत्याह ॥

अब अग्नि कैसा है, यह उपदेश किया है ॥

ऊ॒र्ध्वा ऽ अ॑स्य स॒मिधो॑ भवन्त्यू॒र्ध्वा शु॒क्रा शो॒चीᳬंष्य॒ग्नेः । द्यु॒मत्त॑मा सु॒प्रती॑कस्य सू॒नोः ॥ ११ ॥

पदार्थः—(**ऊर्ध्वाः**) उत्तमाः (**अस्य**) (**समिधः**) सम्यक् प्रदीपिकाः (भवन्ति) (**ऊर्ध्वा**) ऊर्ध्वानि (**शुक्रा**) शुद्धानि (**शोचींषि**) तेजांसि (**अग्नेः**) पावकस्य (**द्युमत्तमा**) अतिशयेन प्रशस्तप्रकाशयुक्तानि (**सुप्रतीकस्य**) शोभनानि प्रतीकानि=प्रतीतिकराणि कर्माणि यस्य तस्य (**सूनोः**) प्राणिगर्भविमोचकस्य ॥ ११ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यस्याऽस्य सुप्रतीकस्य सूनोरग्नेरूर्ध्वाः समिध ऊर्ध्वा द्युमत्तमा शुक्रा शोचींषि भवन्ति तं विजानीत ॥ ११ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **यस्याऽस्य सुप्रतीकस्य** शोभनानि प्रतीकानि=प्रतीतिकराणि कर्माणि यस्य तस्य **सूनोः** प्राणिगर्भविमोचकस्य **अग्नेः** पावकस्य, **ऊर्ध्वा** उत्तमाः **समिधः** सम्यक् प्रदीपिकाः, **ऊर्ध्वा** ऊर्ध्वानि **द्युमत्तमा** अतिशयेन प्रशस्तप्रकाशयुक्तानि **शुक्रा** शुद्धानि **शोचींषि** तेजांसि **भवन्ति**; **तं विजानीत** ॥ २७ । ११ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! इस (सुप्रतीकस्य) उत्तम प्रतीति=प्रसिद्धि कारक कर्मों वाले (सुनोः) प्राणियों को गर्भ से विमुक्त करने वाले (अग्नेः) अग्नि की (ऊर्ध्वा) उत्तम (समिधः) प्रदीप्त करने वाली समिधाएँ; (ऊर्ध्वा) ऊँचे (द्युमत्तमा) अत्यन्त प्रशस्त प्रकाश से युक्त (शुक्रा) शुद्ध (शोचींषि) तेज होते हैं; उस अग्नि को जानो ॥ २७ । ११ ॥

भावार्थः—हे मनुष्याः ! योऽयमूर्ध्वगन्ता, सर्वदर्शनहेतुः, सर्वेषां पालननिमित्तोऽग्निरस्ति; तं विज्ञाय कार्याणि सततं साध्नुत ॥ २७ । ११ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो यह ऊपर जाने वाला, सब पदार्थों के दर्शन का हेतु, सबके पालन का निमित्त अग्नि है उसे जानकर तुम कार्यों को सदा सिद्ध करो ॥ २७ । ११ ॥

भा० पदार्थः—ऊर्ध्वा=ऊर्ध्वगन्ता (अग्निः) ।

भाष्यसार—**अग्नि कैसा है**—अग्नि उत्तम प्रतीति=प्रसिद्धि कारक कर्मों वाला, प्राणियों को गर्भ से विमुक्त करने वाला, ऊपर को गति करने वाला, सब का प्रकाशक, अत्यन्त प्रशस्त प्रकाश से युक्त, शुद्ध एवं सबके पालन का निमित्त है। इस अग्नि को जानकर कार्यों को सदा सिद्ध करें ॥ २७। ११ ॥

अग्निः । **विश्वेदेवाः**=वायुः । उष्णिक् । ऋषभः ॥

अथ वायुः किंवत् कार्यसाधकोऽस्तीत्याह ॥

अब वायु किस के समान कार्यसाधक है, यह उपदेश किया है ॥

तनू॒नपा॑दसु॒रो वि॒श्ववे॑दा दे॒वो दे॒वेषु॑ दे॒वः । प॒थो अ॑नक्तु॒ मध्वा॑ घृ॒तेन॑ ॥ १२ ॥

पदार्थः—(**तनूनपात्**) यस्तनूषु=शरीरेषु न पतति सः (**असुरः**) प्रकाशरहितो वायुः (**विश्ववेदाः**) यो विश्वं विन्दति सः (**देवः**) दिव्यगुणः (**देवेषु**) दिव्यगुणेषु वस्तुषु (**देवः**) कमनीयः (**पथः**) मार्गान् (**अनक्तु**) (**मध्वा**) मधुरेण (**घृतेन**) उदकेन सह ॥ १२ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यो देवेषु देवोऽसुरो विश्ववेदास्तनूनपाद्देवो मध्वा घृतेन सह पथोऽनक्तु तं यूयं विजानीत ॥ १२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! **यो देवेषु** दिव्यगुणेषु वस्तुषु **देवः** दिव्यगुणः, **असुरः** प्रकाशरहितो वायुः, **विश्ववेदाः** यो विश्वं विन्दति सः, **तनूनपात्** यस्तनूषु=शरीरेषु न पतति सः, **देवः** कमनीयः, **मध्वा** मधुरेण **घृतेन** उदकेन **सह पथः** मार्गान् **अनक्तु**; **तं यूयं विजानीत** ॥ २७ । १२ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो (देवेषु) दिव्य गुणों वाली वस्तुओं में (देवः) दिव्य गुण वाला, (असुरः) प्रकाश रहित, (विश्ववेदाः) सब को प्राप्त होने वाला, (तनूनपात्) शरीरों में पतित न होने वाला, (देवः) कामना करने योग्य वायु—(मध्वा) मधुर (घृतेन) जल के साथ (पथः) मार्गों को (अनक्तु) प्राप्त होता है; उसे तुम जानो ॥२७।१२॥

भावार्थः—यथा परमेश्वरो महादेवो विश्वव्यापी सर्वेषां सुखकरोऽस्ति, तथा वायुरप्यस्ति । न ह्यनेन विना कश्चिदपि कुत्रचिद् गन्तुं शक्नोति ॥ २७ । १२ ॥

भावार्थ—जैसे परमेश्वर महादेव, विश्व-व्यापी सब के लिए सुखकारी है; वैसे वायु भी है । क्योंकि इसके विना कोई भी कहीं नहीं जा सकता है ॥ २७ । १२ ॥

भा० पदार्थः—देवेषु देवः=महादेवः । विश्ववेदाः=विश्वव्यापी । तनूनपात्=सर्वेषां सुखकरः ।

भाष्यसार—**वायु किसके तुल्य कार्य-साधक है**—वायु दिव्य गुणों वाली वस्तुओं में अधिक दिव्य गुण वाला, प्रकाश रहित, सबको प्राप्त होने वाला, शरीरों में पतित न होने वाला, कामना करने के योग्य तथा मधुर जल के साथ मार्गों को प्राप्त होने वाला है ।

जैसे परमेश्वर देवों का देव अर्थात् महादेव, विश्व में व्यापक और सबके लिए सुखकारी है वैसे वायु भी है । इसके विना कोई कहीं गति नहीं कर सकता ॥ २७ । १२ ॥

अग्निः । **यज्ञः=अग्निहोत्रम्** । निचृदुष्णिक् । ऋषभः ॥

पुनः कीदृशा जनाः सुखिनः स्युरित्याह ॥

फिर कैसे मनुष्य सुखी होते हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

मध्वा॑ य॒ज्ञं न॑क्षसे प्रीणा॒नो न॒राश॑ꣳसो॑ऽअग्ने । सु॒कृद्दे॒वः स॑वि॒ता वि॒श्ववा॑रः ॥ १३ ॥

पदार्थः—(**मध्वा**) मधुरेण वचनेन (**यज्ञम्**) संगतं व्यवहारम् (**नक्षसे**) प्राप्नोषि (**प्रीणानः**) कामयमानः (**नराशंसः**) यो नरान् शंसति सः (**अग्ने**) विद्वन् (**सुकृत्**) यः सुष्ठु करोति सः (**देवः**) व्यवहर्ता (**सविता**) ऐश्वर्यमिच्छुकः (**विश्ववारः**) यो विश्वं वृणोति सः ॥ १३ ॥

अन्वयः—हे अग्ने यो नराशंसः सुकृद्विश्ववारः प्रीणानः सविता देवस्त्वं मध्वा यज्ञं नक्षसे तं वयं प्रसादयेम ॥ १३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने** ! विद्वन् ! **यो नराशंसः** यो नरान् शंसति सः, **सुकृत्** यः सुष्ठु करोति सः, **विश्ववारः** यो विश्वं वृणोति सः, **प्रीणानः** कामयमानः, **सविता** ऐश्वर्यमिच्छुकः **देवः** व्यवहर्त्ता **त्वं मध्वा** मधुरेण वचनेन **यज्ञं** संगतं व्यवहारं **नक्षसे** प्राप्नोषि; **तं वयं प्रसादयेम** ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् जो तू—(नराशंसः) नरों की प्रशंसा करने वाला, (सुकृत्) उत्तम कर्म करने वाला, (विश्ववारः) विश्व का वरण करने वाला, (प्रीणानः) कामना करने वाला, (सविता) ऐश्वर्य का इच्छुक (देवः) शुद्ध व्यवहार करने वाला है—सो तू (मध्वा) मधुर

वचन से (यज्ञम्) यज्ञ रूप संगत व्यवहार को (नक्षसे) प्राप्त करता है; तुझे हम प्रसन्न करते हैं ॥ २७ । १३ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या यज्ञे सुगन्धादिहोमेन वायुजले शोधयित्वा सर्वान् सुखयन्ति, ते सर्वाणि सुखानि प्राप्नुवन्ति ॥ २७ । १३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य यज्ञ में सुगन्ध आदि पदार्थों के होम से वायु और जल को शुद्ध करके सब को सुखी करते हैं, वे सब सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ २७ । १३ ॥

भाष्यसार—**कैसे जन सुखी होते हैं**—जो विद्वान् नरों की प्रशंसा करने वाला, उत्तम कर्म करने वाला, विश्व का वरण करने वाला, कामना करने वाला, ऐश्वर्य का इच्छुक और व्यवहारी है, और मधुर वचन से यज्ञ=संगत व्यवहार को प्राप्त होता है; तथा यज्ञ में सुगन्ध आदि पदार्थों के होम से वायु और जल को शुद्ध करके सब को सुखी करता है; वह सब सुखों को प्राप्त होता है ॥ २७ । १३ ॥

अग्निः । **वह्निः**=अग्निः (भौ०) । भुरिगुष्णिक् । ऋषभः ॥

अथाऽग्निनोपकारो ग्राह्य इत्याह ॥

अब अग्नि से उपकार लेना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

अच्छायमेति शवसा घृतेनेडानो वह्निर्नमसा । अग्निꣳ स्रुचोऽअध्वरेषु प्रयत्सु ॥ १४ ॥

पदार्थः—(**अच्छ**) (**अयम्**) (**एति**) गच्छति (**शवसा**) बलेन (**घृतेन**) जलेन सह (**ईडानः**) स्तुवन् (**वह्निः**) विद्याया वोढा (**नमसा**) पृथिव्याद्यन्नेन (**अग्निम्**) पावकम् (**स्रुचः**) होमसाधनानि (**अध्वरेषु**) अहिंसनीयेषु (**प्रयत्सु**) प्रयत्नसाध्येषु वर्त्तमानेषु ॥ १४ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या योऽयमीडानो वह्निः प्रयत्स्वध्वरेषु शवसा घृतेन नमसा सह वर्त्तमानमग्निं स्रुचश्चाच्छैति तं यूयं सत्कुरुत ॥ १४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! **योऽयमीडानः** स्तुवन् **वह्निः** विद्याया वोढा **प्रयत्सु** प्रयत्नसाध्येषु वर्त्तमानेषु **अध्वरेषु** अहिंसनीयेषु **शवसा** बलेन **घृतेन** जलेन **नमसा** पृथिव्याद्यन्नेन **सह वर्त्तमानमग्निं** पावकं **स्रुचः** होमसाधनानि **चाच्छैति** गच्छति, **तं यूयं सत्कुरुत** ॥ २७ । १४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो यह (ईडानः) स्तुति के योग्य, (वह्निः) विद्या को प्राप्त करने वाला विद्वान् (प्रयत्सु) प्रयत्न साध्य (अध्वरेषु) हिंसा रहित यज्ञों में (शवसा) बल (घृतेन) जल और (नमसा) पृथिवी आदि के अन्न के साथ विद्यमान (अग्निम्) अग्नि को और (स्रुचः) होम के साधन स्रुवा आदि को (अच्छ) अच्छे प्रकार से (एति) प्राप्त करता है; उसका तुम सत्कार करो ॥ २७ । १४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । हे मनुष्याः ! योऽग्निरिन्धनैर्जलेन युक्तो, यानेषु प्रयुक्तः सन् बलेन सद्यो गमयति, तं विज्ञायोप-

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो अग्नि इन्धन और जल से युक्त हुआ यानों में प्रयुक्त होकर बल से

कुरुत ॥ २७ १४ ॥

तत्काल देशान्तर में पहुँचाता है; उसे जानकर उपकार ग्रहण करो ॥ २७ । १४ ॥

भा० पदार्थः—अच्छ=सद्यः । एति=गमयति ॥

भाष्यसार—**अग्नि से उपकार ग्रहण करें**—जो अग्नि की स्तुति करने वाला, एवं अग्नि-विद्या को प्राप्त करने वाला विद्वान्—प्रयत्न-साध्य, हिंसा-रहित यज्ञों में बल, जल और पृथिवी आदि के अन्न के साथ वर्तमान अग्नि को तथा होम के साधन स्रुवा आदि को अच्छे प्रकार प्राप्त करता है; उस विद्वान् का सब सत्कार करें ।

जो अग्नि इन्धन और जल के साथ यानों में प्रयुक्त किया हुआ बल से शीघ्र देशान्तर में पहुँचाता है; उसे उक्त विद्वान् से जानकर उपकार ग्रहण करें ॥ २७ । १४ ॥

अग्निः । **अग्निः**=अग्निः (भौ०) । स्वराडुष्णिक् । ऋषभः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

अग्नि से उपकार लेना चाहिए, इसका फिर उपदेश किया है ॥

स य॑क्षदस्य म॒हि॒मान॑म॒ग्नेः स ऽ ईं॑ म॒न्द्रा सु॑प्र॒यसः॑ । वसु॒श्चेति॑ष्ठो वसु॒धात॑मश्च ॥ १५ ॥

पदार्थः—(**सः**) (**यक्षत्**) यजेत्सङ्गच्छेत (**अस्य**) (**महिमानम्**) महत्त्वम् (**अग्नेः**) पावकस्य (**सः**) (**ईम्**) जलम् (**मन्द्रा**) आनन्दप्रदानि हवींषि (**सुप्रयसः**) शोभनानि प्रयांसि=प्रीतान्यन्नादीनि यस्मात्तस्य (**वसुः**) वासयिता (**चेतिष्ठः**) अतिशयेन चेता=संज्ञाता (**वसुधातमः**) योऽतिशयेन वसूनि दधाति सः (**च**) समुच्चये ॥ १५ ॥

अन्वयः—स मनुष्यः सुप्रयसोऽस्याग्नेर्महिमानं यक्षत्स वसुश्चेतिष्ठो वसुधातमश्च सन्नीं मन्द्रा यक्षत् ॥ १५ ॥

सपदार्थान्वयः—**स मनुष्यः सुप्रयसः** शोभनानि प्रयांसि=प्रीतान्यन्नादीनि यस्मात्तस्य **अस्याग्नेः** पावकस्य **महिमानं** महत्त्वं **यक्षत्** यजेत्=सङ्गच्छेत; **स वसुः** वासयिता **चेतिष्ठः** अतिशयेन चेता=संज्ञाता **वसुधातमः** योऽतिशयेन वसूनि दधाति सः **च सन्, ईं** जलं **मन्द्रा** आनन्दप्रदानि हवींषि **यक्षत्** यजेत्सङ्गच्छेत ॥ २७ । १५ ॥

भाषार्थ—(सः) वह मनुष्य (सुप्रयसः) उत्तम प्रसन्नताकारक अन्न आदि पदार्थों के हेतु (अस्य) इस (अग्नेः) अग्नि के (महिमानम्) महत्त्व को (यक्षत्) समझता है; (सः) वह (वसुः) अन्यों को बसाने वाला, (चेतिष्ठः) अत्यन्त सचेत (च) और (वसुधातमः) अत्यन्त धनों को धारण करने वाला होकर (ईम्) जल एवं (मन्द्रा) आनन्द-दायक हवियों को (यक्षत्) प्राप्त करता है ॥ १५ ॥

भावार्थः—य इत्थमग्नेर्महत्त्वं विजानीयात्, सोऽतिधनी स्यात् ॥ २७ । १५ ॥

भावार्थ—जो इस प्रकार अग्नि के महत्त्व को जान लेता है वह अति धनवान् होता है ॥ २७ । १५ ॥

भा० पदार्थः—वसुधातमः=अतिधनी ॥

भाष्यसार—**अग्नि से उपकार ग्रहण करें**—जो मनुष्य उत्तम अन्न आदि के हेतु इस अग्नि के महत्त्व से संगति करता है अर्थात् इसके महत्त्व को समझ लेता है; सब को बसाने वाला, अत्यन्त

सचेत, अत्यन्त धनों को धारण करने वाला अर्थात् धनवान् होकर जल को तथा आनन्ददायक हवियों को प्राप्त करता है ॥ २७ । १५ ॥

अग्निः । **देव्यः**=**देदीप्यमानाग्नयः** । निचृदुष्णिक् । ऋषभः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

अग्नि से उपकार लेना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

द्वारो॑ दे॒वीरन्व॑स्य॒ विश्वे॑ व्र॒ता द॑दन्ते ऽ अ॒ग्नेः । उ॒रु॒व्यच॑सो॒ धाम्ना॒ पत्य॑मानाः ॥ १६ ॥

पदार्थः—(द्वारः) द्वाराणि (**देवीः**) देदीप्यमानानि (**अनु**) (**अस्य**) (**विश्वे**) सर्वे (**व्रता**) सत्यभाषणादीनि (**ददन्ते**) (**अग्नेः**) पावकस्य (**उरुव्यचसः**) बहुव्यापकस्य (**धाम्ना**) स्थानेन (**पत्यमानाः**) स्वामित्वं कुर्वाणाः ॥ १६ ॥

अन्वयः—ये विश्वे पत्यमाना उरुव्यचसोऽस्याग्नेर्धाम्ना देवीर्द्वारो व्रताऽनु ददन्ते ते स्वैश्वर्या जायन्ते ॥ १६ ॥

सपदार्थान्वयः—**ये विश्वे** सर्वे **पत्यमानाः** स्वामित्वं कुर्वाणाः **उरुव्यचसः** बहुव्यापकस्य **अस्याग्नेः** पावकस्य **धाम्ना** स्थानेन **देवीः** देदीप्यमानानि **द्वारः** द्वाराणि **व्रता** सत्यभाषणादीनि **अनु+ददन्ते**; **ते स्वैश्वर्या जायन्ते** ॥ २७ । १६ ॥

भाषार्थ—जो (विश्वे) सब (पत्यमानाः) स्वामित्व करने वाले विद्वान् हैं; वे—(उरुव्यचसः) बहुत व्यापक (अस्य) इस (अग्नेः) अग्नि के (धाम्ना) धाम=स्थान से (देवीः) देदीप्यमान (द्वारः) द्वारों एवं (व्रता) सत्यभाषण आदि व्रतों को (अनु+ददन्ते) अनुकूलतापूर्वक प्रदान करते हैं, वे उत्तम ऐश्वर्य वाले होते हैं ॥ २७ । १६ ॥

भावार्थः—येऽग्निविद्याया द्वाराणि जानन्ति, ते सत्याचाराः सन्तोऽनुमोदन्ते ॥ २७ । १६ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् अग्नि-विद्या के द्वारों को जानते हैं वे सत्य आचरण वाले होकर प्रसन्न होते हैं ॥ २७ । १६ ॥

भा० पदार्थः—अग्नेः=अग्निविद्यायाः । व्रता=सत्याचरणम् ॥

भाष्यसार—**अग्नि से उपकार ग्रहण करें**—जो अग्नि के स्वामित्व की कामना करने वाले विद्वान्—बहुत व्यापक इस अग्नि के धाम (स्थान विशेष) से देदीप्यमान द्वारों को जानते हैं; तथा सत्यभाषण आदि व्रतों को धारण करते हैं; वे उत्तम ऐश्वर्य वाले होते हैं तथा प्रसन्न रहते हैं ॥ २७ । १६ ॥

अग्निः । **यज्ञः**=**सर्वव्यवहारः** । विराडुष्णिक् । ऋषभः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

अग्नि से उपकार लेना चाहिए, इसका फिर उपदेश किया है ॥

ते ऽ अ॑स्य॒ योष॑णे दि॒व्ये न योना॑ ऽ उ॒षासा॒नक्ता॑ । इ॒मं य॒ज्ञम॑वताम॒ध्वरं॑ नः ॥ १७ ॥

पदार्थः—(ते) (अस्य) (योषणे) भार्य्ये वर्त्तमाने (दिव्ये) दिव्यस्वरूपे (न) इव (योनौ) गृहे (उषासानक्ता) रात्रिन्दिवौ (इमम्) (यज्ञम्) (अवताम्) रक्षेताम् (अध्वरम्) अहिंसनीयम् (नः) अस्माकम् ॥ १७ ॥

अन्वयः—हे मनुष्यास्ते उषासानक्ताऽस्य योनौ दिव्ये योषणे न नो यमिममध्वरं यज्ञमवतां तं यूयं विजानीत ॥ १७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! ते **उषासानक्ता** रात्रिन्दिवौ **अस्य योनौ** गृहे **दिव्ये** दिव्यस्वरूपे **योषणे** भार्य्ये वर्त्तमाने **न** इव, **नः** अस्माकं **यमिममध्वरम्** अहिंसनीयं **यज्ञमवतां** रक्षेतां, **तं यूयं विजानीत** ॥ २७ । १७ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! (ते) वे (उषासा-नक्ता) रात और दिन (अस्य) इस अग्नि के (योनौ) घर में (दिव्यै) दिव्य स्वरूप वाली (योषणे) दो स्त्रियों के (न) समान (नः) हमारे जिस (इमम्) इस (अध्वरम्) हिंसा रहित (यज्ञम्) यज्ञ की (अवताम्) रक्षा करते हैं; उसे अग्नि तुम जानो ॥ २७ । १७ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः । यथा विदुषी पत्नी गृहकृत्यानि साध्नोति तथा वह्निना जाते रात्र्यह्नी सर्वं व्यवहारं साध्नुतः ॥ २७ । १७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलंकार है । जैसे विदुषी पत्नी गृह-कार्यों को सिद्ध करती है वैसे अग्नि से उत्पन्न रात और दिन सब व्यवहार को सिद्ध करते हैं ॥ २७ । १७ ॥

भा० पदार्थः—उषासानक्ता=वह्निना जाते रात्र्यह्नी । योनौ=गृहकृत्ये । दिव्ये=विदुष्यौ । योषणे=पत्न्यौ । यज्ञम्=सर्वव्यवहारम् ।

भाष्यसार—१. **अग्नि से उपकार ग्रहण करें**—इस अग्नि के घर में दिन और रात दो दिव्य स्वरूप वाली स्त्रियों के समान कार्य करते हैं । तात्पर्य यह है कि जैसे विदुषी पत्नी गृह-कृत्यों को सिद्ध करती है वैसे अग्नि से उत्पन्न रात और दिन यज्ञ=सब व्यवहार की रक्षा करते हैं; सब व्यवहार को सिद्ध करते हैं ।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में 'न' पद उपमा-वाचक है; अतः उपमा अलंकार है । उपमा यह है कि दिन-रात दो दिव्यस्वरूप वाली स्त्रियों के समान कार्य-साधक हैं ॥ २७ । १७ ॥ ●

अग्निः । **अग्निः**=**अग्निविद्या** । भुरिग्गायत्री । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

अग्नि से उपकार लेना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

दैव्या॑ होतारा ऽ ऊ॒र्ध्वम॑ध्व॒रं नो॒ऽग्नेर्जि॒ह्वाम॒भि गृ॑णीतम् । कृ॒णु॒तं नः॒ स्वि॒ष्टिम् ॥ १८ ॥

पदार्थः—(**दैव्या**) देवेषु=विद्वत्सु भवौ विद्वांसौ (**होतारा**) सुखस्य दातारौ (**ऊर्ध्वम्**) प्राप्तोन्नतिम् (**अध्वरम्**) अहिंसनीयं व्यवहारम् (**नः**) अस्माकम् (**अग्नेः**) पावकस्य (**जिह्वाम्**) ज्वालाम् (**अभि**) (**गृणीतम्**) प्रशंसेताम् (**कृणुतम्**) कुरुतम् (**नः**) (**स्विष्टिम्**) शोभना इष्टिर्यस्यास्ताम् ॥ १८ ॥

अन्वयः—यो दैव्या होतारा न ऊर्ध्वमध्वरमभिगृणीतं तौ नः स्विष्टिमग्नेर्जिह्वां कृणुतम् ॥ १८ ॥

सपदार्थान्वयः—**यौ दैव्या** देवेषु=विद्वत्सु भवौ विद्वांसौ **होतारा** सुखस्य दातारौ **नः** अस्माकम् **ऊर्ध्वं** प्राप्तोन्नतिम् **अध्वरम्** अहिंसनीयं व्यवहारम् **अभिगृणीतं** प्रशंसेताम्, **तौ नः** अस्माकं **स्विष्टि** शोभना इष्टिर्यस्यास्ताम् **अग्नेः** पावकस्य **जिह्वां** ज्वालां **कृणुतं** कुरुतम् ॥ २७ । १८ ॥

भाषार्थ—जो (दैव्या) विद्वानों में रहने वाले, (होतारा) सुख के दाता जिज्ञासु और अध्यापक—(नः) हमारे (ऊर्ध्वम्) उन्नति को प्राप्त (अध्वरम्) हिंसा रहित व्यवहार की (अभिगृणीतम्) प्रशंसा करते हैं; वे (नः) हमारी (स्विष्टिम्) उत्तम इष्टि वाली (अग्नेः) अग्नि की (जिह्वाम्) ज्वाला को (कृणुतम्) सिद्ध करें ॥१८॥

भावार्थः—यदि जिज्ञास्वध्यापकावग्निविद्यां जानीयातां, तर्हि विश्वस्योन्नतिं कुर्याताम् ॥ १८ ॥

भावार्थ—यदि जिज्ञासु और अध्यापक दोनों अग्नि-विद्या को जानें तो विश्व की उन्नति कर सकते हैं ॥ २७ । १८ ॥

भा० पदार्थः—देव्या=जिज्ञास्वध्यापकौ। [अग्नेः]—जिह्वाम्=अग्निविद्याम्। ऊर्ध्वम्==उन्नतिम् ॥

भाष्यसार—अग्नि से उपकार ग्रहण करें—विद्वानों में रहने वाले, सुख के दाता जिज्ञासु और अध्यापक लोग मनुष्यों की उन्नति तथा उत्तम व्यवहार की प्रशंसा करें। उत्तम यज्ञ की हेतु अग्नि-ज्वाला को सिद्ध करें अर्थात् अग्नि-विद्या को जानें तथा विश्व की उन्नति करें ॥ २७ । १८ ॥

अग्निः । **इडादयो लिङ्गोक्ताः=विविधा वाणी** । गायत्री । षड्जः ॥

पुनर्मनुष्यैः कीदृशी वाणी सेवनीया इत्याह ॥

फिर मनुष्यों को कैसी वाणी का सेवन करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

ति॒स्रो दे॒वीर्ब॒र्हिरे॒दꣳ स॑द॒न्त्विडा॒ सर॑स्वती॒ भार॑ती । म॒ही गृ॑णा॒ना ॥ १९ ॥

पदार्थः—(**तिस्रः**) त्रित्वसंख्याकाः (**देवीः**) कमनीयाः (**बर्हिः**) अन्तरिक्षम् (**आ**) समन्तात् (**इदम्**) (**सदन्तु**) प्राप्नुवन्तु (**इडा**) स्तोतुमर्हा (**सरस्वती**) प्रशस्तविज्ञानवती (**भारती**) सर्वशास्त्रधारिणी (**मही**) महती (**गृणाना**) स्तुवन्ती ॥ १९ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यूयं या मही गृणानेडा सरस्वती भारती च तिस्रो देवीरिदं बर्हिरासदन्तु ताः सम्यग्विजानीत ॥ १९ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यूयं**—**या मही** महती **गृणाना** स्तुवन्ती **इडा** स्तोतुमर्हा **सरस्वती** प्रशस्तविज्ञानवती **भारती** सर्वशास्त्रधारिणी **च, तिस्रः** त्रित्वसंख्याकाः **देवीः** कमनीयाः, **इदं बर्हिः** अन्तरिक्षम् **आ+सदन्तु** समन्तात् प्राप्नुवन्तु; **ताः सम्यग्विजानीत** ॥ २७ । १९ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—जो (महती) बड़ी (गृणाना) स्तुति करने वाली—(इडा) स्तुति योग्य, (सरस्वती) प्रशस्त विज्ञान वाली और (भारती) सब शास्त्रों को धारण करने वाली (तिस्रः) तीन (देवीः) कामना के योग्य वाणियाँ हैं वे (इदम्) इस (बर्हिः) आकाश में (आ+सदन्तु) सब ओर प्राप्त होती हैं; उन्हें अच्छे प्रकार जानो ॥ २७ । १९ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या व्यवहारकुशलां, सर्वशास्त्रविद्यान्वितां, सत्यादिव्यवहारधर्त्रीं वाणीं प्राप्नुयुः, ते स्तुत्याः सन्तो महान्तो भवेयुः ॥ १६ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य व्यवहार कुशल, सब शास्त्रों की विद्या से युक्त एवं सत्य आदि व्यवहार को धारण करने वाली वाणी को प्राप्त करते हैं, वे स्तुति के योग्य होकर महान् होते हैं ॥२७।१६॥

भा० पदार्थः—इडा=व्यवहारकुशला वाणी । सरस्वती=सर्वशास्त्रविद्यान्विता वाणी । भारती=सत्यादिव्यवहारधर्त्री वाणी ॥

भाष्यसार—**मनुष्य कैसी वाणी का सेवन करें**—सब मनुष्य—स्तुति के योग्य व्यवहार कुशल (इडा) वाणी का, प्रशस्त विज्ञान वाली अर्थात् सब शास्त्रों की विद्या से युक्त (सरस्वती) वाणी का, सब शास्त्रों एवं सत्य आदि व्यवहार को धारण करने वाली (भारती) वाणी का सेवन करें। ये तीन वाणियाँ कामना के योग्य हैं; जो अन्तरिक्ष में सब ओर प्राप्त हैं । जो इन वाणियों का सेवन करते हैं वे स्तुत्य और महान् होते हैं ॥ २७ । १६ ॥

अग्निः । **त्वष्टा**=ईश्वरः । निचृदुष्णिक् । ऋषभः ॥

ईश्वरात् किं प्रार्थनीयमित्याह ॥

ईश्वर से क्या प्रार्थना करनी चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु त्वष्टा सुवीर्यम् । रायस्पोषं वि ष्यतु नाभिमस्मे ॥ २० ॥

पदार्थः—(**तम्**) प्रसिद्धम् (**नः**) अस्मान् (**तुरीपम्**) यत्तुरः=सद्य आप्नोति तम् (**अद्भुतम्**) आश्चर्यगुणकर्मस्वभावम् (**पुरुक्षु**) यत् पुरुषु=बहुषु क्षियति=वसति तत् (**त्वष्टा**) विद्यया प्रकाशित ईश्वरः (**सुवीर्य**) सुष्ठु बलम् (**रायः**) धनस्य (**पोषम्**) पुष्टिम् (**वि, स्यतु**) विमुञ्चतु (**नाभिम्**) मध्यप्रदेशम् (**अस्मे**) अस्माकम् ॥ २० ॥

अन्वयः—त्वष्टाऽस्मे नाभिं प्रति तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु सुवीर्यं तं रायस्पोषं ददातु नो दुःखाद्विष्यतु च ॥ २० ॥

सपदार्थान्वयः — **त्वष्टा** विद्यया प्रकाशित ईश्वरः **अस्मे** अस्माकं **नाभिं** मध्यप्रदेशं **प्रति तुरीपं** यत्तुरः=सद्य आप्नोति तम्, **अद्भुतं** आश्चर्यगुणकर्मस्वभावं, **पुरुक्षु** यत् पुरुषु=बहुषु क्षियति=वसति तत्, **सुवीर्यं** सुष्ठु बलं, **तं** प्रसिद्धं **रायस्पोषं** धनस्य पुष्टिं **ददातु**; **नः** अस्मान् **दुःखाद् विष्यतु** विमुञ्चतु **च** ॥ २७ । २० ॥

भाषार्थ — (त्वष्टा) विद्या से प्रकाशित ईश्वर—(अस्मे) हमारे (नाभिम्) मध्य प्रदेश के प्रति (तुरीपम्) शीघ्र प्राप्त होने वाले एवं शीघ्रकारी, (अद्भुतम्) अद्भुत गुण, कर्म, स्वभाव वाले, (पुरुक्षु) बहुतों में व्यापक, (सुवीर्यम्) उत्तम बल तथा (तम्) उस प्रसिद्ध (रायस्पोषम्) धन की पुष्टि को प्रदान करें, और (नः) हमें दुःख से (विष्यतु) विमुक्त करे ॥ २७ । २० ॥

भावार्थः—हे मनुष्या ! यच्छीघ्रकार्याश्चर्यभूतं, बहुव्यापकं, धनं बलं वाऽस्ति, तद् यूयमीश्वरप्रार्थनया प्राप्यानन्दिता भवत ॥ २७ । २० ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो शीघ्रकारी, आश्चर्यरूप, बहुतों में व्यापक धन वा बल है तुम उसे ईश्वर-प्रार्थना से प्राप्त करके आनन्दित रहो ॥ २७ । २० ॥

भा० पदार्थः—तुरीपम्=शीघ्रकारि । अद्‌भुतम्=आश्चर्यभूतम् । पुरुक्षु=बहुव्यापकम् ।

भाष्यसार—**ईश्वर से क्या प्रार्थना करें**—सब मनुष्य विद्या से प्रकाशित ईश्वर से—जो शीघ्रकारी, अद्‌भुत गुण, कर्म, स्वभाव वाला, बहुतों में व्यापक, उत्तम बल वा धन है उसकी प्रार्थना करें । उक्त बल वा धन को प्राप्त करके दुःख से विमुक्त हों एवं आनन्दित रहें ॥ २७ । २० ॥

प्रजापतिः । **विद्वांसः=जिज्ञासवः** । विराडुष्णिक् । ऋषभः ॥

जिज्ञासुः कीदृशो भवेदित्याह ॥

जिज्ञासु कैसा हो, इस विषय का उपदेश किया है ॥

वन॑स्पतेऽव॑ सृ॒जा रर॑ाणस्त्मन॑ा दे॒वेषु॑ । अ॒ग्निर्ह॒व्यꣳ श॑मि॒ता सू॑दयाति ॥ २१ ॥

पदार्थः—(**वनस्पते**) वनस्य=सम्भजनीयस्य शास्त्रस्य पालक (**अव**) (**सृज**) । अत्र द्वयचोऽतस्तिङ इति दीर्घः । (**रराणः**) रममाणः (**त्मना**) आत्मना (**देवेषु**) दिव्यगुणेष्विव विद्वत्सु (**अग्निः**) पावकः (**हव्यम्**) आदातुमर्हम् (**शमिता**) यज्ञसम्बन्धी (**सूदयाति**) सूक्ष्मीकृत्य वायौ प्रसारयति ॥ २१ ॥

प्रमाणार्थ—(**सृज**) यहाँ 'द्वयचोऽतस्तिङः' (६ । ३ । १३५) इस सूत्र से संहिता में दीर्घ है ॥ २७ । २१ ॥

अन्वयः—हे वनस्पते यथा शमिताऽग्निर्हव्यं सूदयाति तथा त्मना देवेषु रराणः सन् हव्यमवसृज ॥ २१ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे वनस्पते** ! वनस्य=सम्भजनीयस्य शास्त्रस्य पालक ! **यथा शमिता** यज्ञसम्बन्धी **अग्निः** पावकः **हव्यम्** आदातुमर्हं **सूदयाति** सूक्ष्मीकृत्य वायौ प्रसारयति, **तथा त्मना** आत्मना **देवेषु** दिव्यगुणेष्विव विद्वत्सु **रराणः** रममाणः **सन् हव्यम्** आदातुमर्हम् **अवसृज** ॥ २१ ॥

भाषार्थ—हे (वनस्पते) वन=सेवन करने योग्य शास्त्र के पालक जिज्ञासु तू—जैसे (शमिता) यज्ञ सम्बन्धी (अग्निः) अग्नि (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य होम के द्रव्य को (सूदयाति) सूक्ष्म करके वायु में फैलाता है; वैसे (त्मना) आत्मा से (देवेषु) दिव्य गुणों के तुल्य विद्वानों में (रराणः) रमण करता हुआ (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य होम के द्रव्य को (अवसृज) तैयार कर ॥२१॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यथा दिव्येष्वन्तरिक्षादिषु वह्नी राजते, तथा विद्वत्सु स्थितो जिज्ञासुः सुप्रकाशितात्मा भवति ॥२७।२१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । जैसे दिव्य अन्तरिक्ष आदि में अग्नि प्रकाशमान है, वैसे विद्वानों में स्थित हुआ जिज्ञासु भी अच्छे प्रकार प्रकाशित आत्मा वाला हो जाता है ॥ २७ । २१ ॥

भा० पदार्थः—वनस्पते=जिज्ञासो । अग्निः=वह्निः । सूदयाति=राजते । त्मना=सुप्रकाशितात्मना । देवेषु=दिव्येष्वन्तरिक्षादिषु । विद्वत्सु । रराणः=स्थितः ॥

भाष्यसार—१. **जिज्ञासु कैसा हो**—सेवन करने योग्य शास्त्र का पालक जिज्ञासु—जैसे यज्ञ सम्बन्धी अग्नि हव्य को सूक्ष्म करके वायु में फैलाता है; वैसे अपने आत्मा से दिव्य गुणों वाले विद्वानों में स्थित होकर ग्रहण करने योग्य होम के द्रव्य को तैयार करे तथा अपने आत्मा को प्रकाशित करे ।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि जिज्ञासु अग्नि के समान प्रकाशित आत्मा वाला हो ॥ २७ । २१ ॥

प्रजापतिः । **इन्द्रः=परमैश्वर्यम्** । निचृदुष्णिक् । ऋषभः ॥

पुनर्मनुष्यैः किं कार्यमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेद ऽ इन्द्राय हव्यम् । विश्वे देवा हविरिदं जुषन्ताम् ॥ २२ ॥

पदार्थः—(**अग्ने**) विद्वन् (**स्वाहा**) सत्यां वाचम् (**कृणुहि**) कुरु (**जातवेदः**) प्रकटविद्य (**इन्द्राय**) परमैश्वर्याय (**हव्यम्**) आदातुमर्हम् (**विश्वे**) सर्वे (**देवाः**) विद्वांसः (**हविः**) ग्राह्यं वस्तु (**इदम्**) (**जुषन्ताम्**) सेवन्ताम् ॥ २२ ॥

अन्वयः—हे जातवेदोऽग्ने ! त्वमिन्द्राय स्वाहा हव्यं कृणुहि विश्वे देवा इदं हविर्जुषन्ताम् ॥ २२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **जातवेदः** प्रकटविद्य **अग्ने** ! विद्वन् ! **त्वमिन्द्राय** परमैश्वर्याय **स्वाहा** सत्यां वाचं **हव्यं** आदातुमर्हं **कृणुहि** कुरु ।

विश्वे सर्वे **देवाः** विद्वांसः **इदं हविः** ग्राह्यं वस्तु **जुषन्तां** सेवन्ताम् ॥ २७ । २२ ॥

भाषार्थ—हे (जातवेदः) प्रकट विद्या वाले (अग्ने) विद्वान् ! तू—(इन्द्राय) परम ऐश्वर्य के लिए (स्वाहा) सत्य वाणी एवं (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य होम के द्रव्य को (कृणुहि) प्राप्त कर एवं बना ।

(विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् (इदम्) इस (हविः) ग्रहण करने योग्य हवि का (जुषन्ताम्) सेवन करें ॥ २७ । २२ ॥

भावार्थः—यदि मनुष्या ऐश्वर्यवर्द्धनाय प्रयतेरंस्तर्हि—सत्यं, परमात्मानं, विदुषश्च सेवेरन् ॥ २७ । २२ ॥

भावार्थ—यदि मनुष्य ऐश्वर्य की वृद्धि के लिए प्रयत्न करें तो—सत्य, परमात्मा और विद्वानों की सेवा करें ॥ २७ । २२ ॥

भा० पदार्थः—इन्द्राय=ऐश्वर्यवर्द्धनाय । कृणुहि=प्रयतस्व । स्वाहा=सत्यम् ।

भाष्यसार—**मनुष्य क्या करें**—प्रकट विद्या वाला विद्वान्—परम ऐश्वर्य की प्राप्ति एवं वृद्धि के लिए सत्य वाणी तथा ग्रहण करने योग्य पदार्थों को प्राप्त करे । परमात्मा और विद्वानों की सेवा करें । सब विद्वान् लोग हवि=ग्राह्य वस्तु का सेवन करें ॥ २७ । २२ ॥

वसिष्ठः । **वायुः=जीवनमूलं वायुः** । निचृत्त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

कीदृशं सन्तानं सुखयतीत्याह ॥

कैसी सन्तान सुख देती है, यह उपदेश किया है ॥

पीवो ऽ अन्ना रयिवृधः सुमेधाः श्वेतः सिषक्ति नियुतामभिश्रीः ।
ते वायवे समनसो वि तस्थुर्विश्वेन्नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥ २३ ॥

पदार्थः—(**पीवोअन्ना**) पीवांसि=पुष्टिकराण्यन्नानि येषु (**रयिवृधः**) ये रयिं वर्धयन्ति ते (**सुमेधाः**) शोभना मेधा=प्रज्ञा येषान्ते (**श्वेतः**) गन्ता वर्द्धको वा (**सिषक्ति**) सिञ्चति (**नियुताम्**) निश्चितगतीनाम् (**अभिश्रीः**) अभितः शोभा यस्य सः (**ते**) (**वायवे**) वायुविद्यायै (**समनसः**) समानविज्ञानाः (**वि, तस्थुः**) तिष्ठेयुः (**विश्वा**) अखिलानि (**इत्**) एव (**नरः**) नायकाः (**स्वपत्यानि**) शोभनानि च तान्यपत्यानि (**चक्रुः**) कुर्युः ॥ २३ ॥

अन्वयः—ये समनसो रयिवृधः सुमेधा नरः पीवोअन्ना विश्वा स्वपत्यानि चक्रुः। त इद्वायवे वितस्थुर्यदा नियुतामभिश्रीः श्वेतो वायुः सर्वान् सिषक्ति तदा स श्रीमान् जायते ॥ २३ ॥

सपदार्थान्वयः—**ये समनसः** समानविज्ञानाः, **रयिवृधः** ये रयिं वर्धयन्ति ते, **सुमेधाः** शोभना मेधा=प्रज्ञा येषान्ते, **नरः** नायकाः **पीवोअन्ना**, पीवांसि=पुष्टिकराण्यन्नानि येषु, **विश्वा** अखिलानि **स्वपत्यानि** शोभनानि च तान्यपत्यानि **चक्रुः** कुर्युः, **ते इत्** एव **वायवे** वायुविद्यायै **वितस्थुः** तिष्ठेयुः।

यदा नियुतां निश्चितगतीनां **अभिश्रीः** अभितः शोभा यस्य सः, **श्वेतः=वायुः** गन्ता वर्द्धको वा **सर्वान् सिषक्ति** सिञ्चति; **तदा स श्रीमान् जायते** ॥ २७ । २३ ॥

भाषार्थ—जो (समनसः) समान विज्ञान वाले, (रयिवृधः) धन को बढ़ाने वाले, (सुमेधाः) उत्तम मेधा=बुद्धि वाले, (नराः) नायक, (पीवोअन्नाः) पुष्टिकारक अन्नों वाले विद्वान्—(विश्वा) सब (स्वपत्यानि) उत्तम सन्तानों को (चक्रुः) उत्पन्न करते हैं; (ते) वे (इत्) ही (वायवे) वायु-विद्या के लिए (वितस्थुः) विशेष रूप से स्थित होते हैं।

जब (नियुताम्) निश्चित गतियों की (अभिश्रीः) सब ओर शोभा वाला, (श्वेतः) गतिशील, एवं वर्द्धक वायु सब को (सिषक्ति) सींचता है; तब वह श्रीमान् होता है ॥ २७ । २३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा—वायुः सर्वेषां जीवनमूलमस्ति, तथोत्तमान्यपत्यानि सर्वेषां सुखनिमित्तानि जायन्ते ॥२७।२३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। जैसे—वायु सब के जीवन का मूल है; वैसे उत्तम सन्तान सब के सुखों का निमित्त होते हैं ॥ २७ । २३ ॥

भा० पदार्थः—सिषक्ति=जीवनमूलमस्ति। स्वपत्यानि=उत्तमान्यपत्यानि। वायवे=सुखनिमित्ताय ॥

भाष्यसार—१. **कैसी सन्तान सुख देती है**—तुल्य विज्ञान वाले, धन को बढ़ाने वाले, उत्तम मेधा बुद्धि वाले, नायक, पुष्टिकारक अन्नों वाले विद्वान्—सब उत्तम सन्तानों को उत्पन्न करें। उन्हें वायु-विद्या के लिए स्थिर करें अर्थात् उन्हें विशेष रूप से वायु-विद्या पढ़ावें।

वायु निश्चित गतियों की सब ओर शोभा करने वाला, गतिशील और बढ़ने वाला है। जब वह सब को सींचता है तब श्रीमान् कहलाता है अर्थात् वायु से वर्षा और वर्षा से श्री प्राप्ति होती है। इस प्रकार वायु सब के जीवन का मूल है। उक्त वायु के तुल्य उत्तम सन्तान सब को सुख देती हैं।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि वायु के समान उत्तम सन्तान सबके जीवन का मूल एवं सुखदायक बनें ॥ २७ । २३ ॥ ●

वसिष्ठः । **वायुः**=प्राणः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनर्मनुष्यैः किं कार्यमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

राये नु यं जज्ञतू रोदसीमे राये देवी धिषणा धाति देवम् ।
अध वायुं नियुतः सश्चत स्वा ऽ उत श्वेतं वसुधितिं निरेके ॥ २४ ॥

पदार्थः—(**राये**) धनाय (**नु**) सद्यः (**यम्**) (**जज्ञतुः**) जनयतः (**रोदसी**) द्यावापृथिव्यौ (**इमे**) प्रत्यक्षे । अत्र वाच्छन्दसि सर्वे विधयो भवन्तीति प्रकृतिभावाऽभावः (**राये**) धनाय (**देवी**) दिव्यगुणा (**धिषणा**) प्रज्ञेव वर्त्तमाना (**धाति**) दधाति (**देवम्**) दिव्यं पतिम् (**अध**) अथ (**वायुम्**) (**नियुतः**) निश्चयेन मिश्रणाऽमिश्रणकर्त्तारः (**सश्चत**) प्राप्नुवन्ति । अत्र व्यत्ययः (**स्वाः**) सम्बन्धिनः (**उत**) (**श्वेतम्**) वृद्धम् (**वसुधितिम्**) पृथिव्यादिवसूनां धितिर्यस्मात्तम् (**निरेके**) निर्गतशङ्के स्थाने ॥ २४ ॥

प्रमाणार्थ—(**रोदसीमे**) यहाँ 'वा छन्दसि सर्वे विधयो भवन्ति' इस परिभाषा से प्रकृतिभाव का अभाव है। रोदसी+इमे=रोदसीमे । (सश्चत) यहाँ व्यत्यय है अर्थात् प्रथम पुरुष बहुवचन के स्थान में मध्यम पुरुष बहुवचन है ॥

अन्वयः—हे मनुष्या इमे रोदसी राये यं जज्ञतुर्देवी धिषणा यं देवं राये नु धाति । अध निरेके स्वा नियुतः श्वेतमुत वसुधितिं वायुं सश्चत तं यूयं विजानीत ॥ २४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **इमे** प्रत्यक्षे **रोदसी** द्यावापृथिव्यौ **राये** धनाय **यं जज्ञतुः** जनयतः, **देवी** दिव्यगुणा **धिषणा** प्रज्ञेव वर्त्तमाना **यं देवं** दिव्यं पतिं **राये** धनाय **नु** सद्यः **धाति** दधाति, **अध** अथ—**निरेके** निर्गत-शङ्के स्थाने **स्वाः** सम्बन्धिनः **नियुतः** निश्चयेन मिश्रणाऽमिश्रणकर्त्तारः **श्वेतं** वृद्धम्, **उत**—**वसुधितिं** पृथिव्यादिवसूनां धितिर्यस्मात्तं **वायुं सश्चत** प्राप्नुवन्ति, तं **यूयं विजानीत** ॥ २७ । २४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! (इमे) ये (रोदसी) द्युलोक और भूलोक (राये) धन के लिए (यम्) जिस वायु को (जज्ञतुः) उत्पन्न करते हैं;—(देवी) दिव्य गुणों वाली (धिषणा) बुद्धि के तुल्य वर्त्ताव वाली स्त्रीजिस (देवम्) दिव्य पति को (राये) धन के लिए (नु) शीघ्र (धाति) धारण करती है; (अध) और (निरेके) निःशंक स्थान में (स्वाः) सम्बन्धी लोग (नियुतः) निश्चय से मेल-मिलाप करने वाले होकर (श्वेतम्) वृद्ध पुरुष को (उत) और (वसुधिति) पृथिवी आदि वसुओं को धारण करने वाले वायु को (सश्चत) प्राप्त करते हैं; उसे तुम जानो ॥ २७ । २४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । हे मनुष्या ! भवन्तो बलादिगुणयुक्तं, सर्वस्य धर्त्तारं वायुं विज्ञाय धनप्रज्ञे वर्धयन्तु, यदि—एकान्ते स्थित्वाऽस्य प्राणस्य द्वारा स्वात्मानं परमात्मानं च ज्ञातुमिच्छेयुस्तर्हि — अनयोः साक्षात्कारो भवति ॥ २७ । २४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । हे मनुष्यो ! आप बल आदि गुणों से युक्त, सबको धारण करने वाले वायु को जान कर धन और बुद्धि को बढ़ाओ । यदि एकान्त में स्थित होकर इस प्राण के द्वारा अपने आत्मा और परमात्मा को जानना चाहें तो इनका साक्षात्कार होता है ॥ २७ । २४ ॥

भा० पदार्थः—ग्रध=यदि। निरेके=एकान्ते।

भाष्यसार—**१. मनुष्य क्या करें**—जैसे ये द्युलोक ग्रौर भूलोक धन के लिए वायु को उत्पन्न करते हैं, दिव्य गुणों से युक्त, बुद्धि के समान वर्ताव करने वाली स्त्री दिव्य पति को धन के लिए धारण करती है, वैसे बल ग्रादि गुणों से युक्त, सब का धारण करने वाले वायु को जान कर सब मनुष्य धन ग्रौर बुद्धि को बढ़ावें।

परस्पर मेल-मिलाप करने वाले सब मनुष्य एकान्त में स्थित होकर वायु=प्राण के द्वारा वृद्ध-ग्रात्मा ग्रौर परमात्मा को जानने की कामना करें तो इनका साक्षात्कार कर सकते हैं।

२. ग्रलङ्कार—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' ग्रादि पद लुप्त है; ग्रतः वाचक लुप्तोपमा ग्रलंकार है। उपमा यह है कि सब मनुष्य वायु के समान बल ग्रादि गुणों को बढ़ावें।। २७। २४।। ●

हिरण्यगर्भः। **प्रजापतिः**=सृष्टिकर्त्तेश्वरः। स्वराट्त्रिष्टुप्। धैवतः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

मनुष्यों को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है॥

आपो ह यद्बृहतीर्विश्वमायन् गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम्।
ततो देवानाᳬं समवर्त्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ २५॥

पदार्थः—(**ग्रापः**) व्यापिकास्तन्मात्राः (ह) खलु (**यत्**) यम् (**बृहतीः**) बृहत्यः (**विश्वम्**) कृतप्रवेशम् (**ग्रायन्**) गच्छन्ति (**गर्भम्**) मूलं=प्रधानम् (**दधानाः**) धरन्त्यः सत्यः (**जनयन्तीः**) प्रकटयन्त्यः (**ग्रग्निम्**) सूर्याद्याख्यम् (**ततः**) तस्मात् (**देवानाम्**) दिव्यानां पृथिव्यादीनाम् (**सम्**) सम्यक् (**ग्रवर्तत**) वर्तये (**ग्रसुः**) प्राणः (**एकः**) ग्रसहायः (**कस्मै**) सुखनिमित्ताय (**देवाय**) दिव्यगुणाय (**हविषा**) धारणेन (**विधेम**) परिचरेम॥ २५॥

अन्वयः—बृहतीर्जनयन्तीर्यद्विश्वं गर्भं दधानाः सत्य ग्राप ग्रायंस्ततोऽग्निं देवानामेकोऽसुः समवर्त्तत तस्मै ह कस्मै देवाय वयं हविषा विधेम॥ २५॥

सपदार्थान्वयः—**बृहतीः** बृहत्यः **जनयन्तीः** प्रकटयन्त्यः **यद्** यं **विश्वं** कृतप्रवेशं **गर्भं** मूलं=प्रधानं **दधानाः** धरन्त्यः **सत्य ग्रापः** व्यापिकास्तन्मात्राः **ग्रायन्** गच्छन्ति, **ततः** तस्माद् **ग्रग्नि** सूर्याद्याख्यं **देवानां** दिव्यानां पृथिव्यादीनाम् **एकः** ग्रसहायः **ग्रसुः** प्राणः **समवर्त्तत** सम्यग् वर्तते, **तस्मै ह** खलु **कस्मै** सुखनिमित्ताय **देवाय** दिव्य-गुणाय **वयं हविषा** धारणेन **विधेम** परिचरेम॥२५॥

भाषार्थ—(बृहती) बड़ी, (जनयन्तीः) जगत् को प्रकट करने वाली (यम्) जिस (विश्वम्) सब में प्रविष्ट (गर्भम्) मूल रूप प्रधान=प्रकृति को (दधानाः) धारण करती हुई (ग्रापः) व्यापक तन्मात्राएँ (ग्रायन्) प्राप्त होती हैं; (ततः) उससे (ग्रग्निम्) सूर्य ग्रादि नामक ग्रग्नि तथा (देवानाम्) दिव्य गुणों वाले पृथिवी ग्रादि में से (एकः) एक (ग्रसुः) व प्राण=वायु (समवर्त्तत) है, उस (ह) निश्चय से (कस्मै) सुख के निमित्त (देवाय) दिव्य गुण वाले वायु का हम (हविषा) धारण पूर्वक (विधेम) सेवन करें॥ २७। २५॥

भावार्थः—हे मनुष्याः ! यानि स्थूलानि पञ्चतत्त्वानि दृश्यन्ते तानि सूक्ष्मात् प्रकृतिकार्यात् पञ्चतन्मात्राख्यादुत्पन्नानि विजानीत,

तेषां मध्ये य एकः सूत्रात्मा वायुरस्ति, स सर्वेषां धर्त्तेति बुध्यध्वम् ।

यदि—तद्द्वारा योगाभ्यासेन परमात्मानं ज्ञातुमिच्छेत तर्हि तं साक्षाद् विजानीत ॥२७।२५॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो स्थूल पाँच तत्त्व दिखाई देते हैं उन्हें सूक्ष्म, प्रकृति के कार्य, पंच तन्मात्रा नामक तत्त्व से उत्पन्न जानो ।

उनके मध्य में जो एक सूक्ष्म वायु है, वह सबको धारण करने वाला है; ऐसा समझो ।

यदि तुम उस वायु=प्राण के द्वारा योगाभ्यास से परमात्मा को जानना चाहो तो उसे साक्षात् जानो ॥ २७ । २५ ॥

भा० पदार्थः—बृहतीः=स्थूलानि पञ्चतत्त्वानि । आपः=सूक्ष्मं प्रकृतिकार्यं पञ्च-तन्मात्राख्यम् । असुः=सूत्रात्मा वायुः । हविषा=योगाभ्यासेन ॥

भाष्यसार—**मनुष्य क्या करें**—बड़ी, जगत् को प्रकट करने वाली, सब में प्रविष्ट, प्रधान=प्रकृति को धारण करने वाली, व्यापक, तन्मात्राएँ हैं । तात्पर्य यह है कि जो स्थूल पाँच तत्त्व दिखाई देते हैं वे सूक्ष्म प्रकृति के कार्य पंच तन्मात्रा से उत्पन्न होते हैं । उन्हीं से सूर्य आदि की उत्पत्ति होती है । पृथिवी आदि तत्त्वों में एक सूक्ष्म वायु भी है जो सब को धारण करने वाला है । यदि मनुष्य वायु=प्राण के द्वारा योगाभ्यास से सुख के निमित्त, दिव्य गुणों से युक्त परमात्मा को जानना चाहें तो उसे साक्षात् जान सकते हैं ॥ २७ । २५ ॥

हिरण्यगर्भः । **प्रजापतिः=ईश्वरः** । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

के जना मोदन्त इत्याह ॥

कौन मनुष्य आनन्दित होते हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम् ।
यो देवेष्वधि देव ऽ एक ऽ आसीत् कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ २६ ॥

पदार्थः—(**यः**) परमेश्वरः (**चित्**) (**आपः**) व्याप्तिशीलाः सूक्ष्मास्तन्मात्राः (**महिना**) स्वस्य महिम्ना=व्यापकत्वेन (**पर्यपश्यत्**) सर्वतः पश्यति (**दक्षम्**) बलम् (**दधानाः**) धरन्त्यः (**जनयन्तीः**) उत्पादयन्त्यः (**यज्ञम्**) सङ्गतं संसारम् (**यः**) (**देवेषु**) प्रकृत्यादिजीवेषु (**अधि**) उपरिभावे (**देवः**) दिव्यगुण-कर्मस्वभावः (**एकः**) अद्वितीयः (**आसीत्**) अस्ति (**कस्मै**) सुखस्वरूपाय (**देवाय**) सर्वसुखप्रदाय (**हविषा**) तदाज्ञायोगाभ्यासधारणेन (**विधेम**) सेवेमहि ॥ २६ ॥

अन्वयः—यो महिना दक्षं दधाना यज्ञं जनयन्तीरापः सन्ति ताः पर्यपश्यद्यो देवेष्वेकोऽधि देव आसीत्तस्मै चित् कस्मै देवाय वयं हविषा विधेम ॥ २६ ॥

सपदार्थान्वयः—**यः** परमेश्वरः **महिना** स्वस्य महिम्ना=व्यापकत्वेन **दक्षं** बलं **दधानाः** धरन्त्यः, **यज्ञं** सङ्गतं संसारं **जनयन्तीः** उत्पादयन्त्यः **आपः** व्याप्तिशीलाः सूक्ष्मास्तन्मात्राः **सन्ति; ताः पर्यपश्यत्** सर्वतः पश्यति **यः** परमेश्वरः **देवेषु** प्रकृ-

भाषार्थ—(यः) जो परमेश्वर—(महिम्ना) अपनी महिमा एवं व्यापकता से (दक्षम्) बल को (दधानाः) धारण करने वाली, (यज्ञम्) संगत संसार को (जनयन्तीः) उत्पन्न करने वाली (आपः) व्याप्ति-शील सूक्ष्म तन्मात्राएँ हैं; उन्हें (पर्यपश्यत्) सब

त्यादिजीवेषु **एकः** अद्वितीयः **अधि+देवः** उपरि-दिव्यगुणकर्मस्वभावः **आसीद्** अस्ति, **तस्मै चित् कस्मै** सुखस्वरूपाय **देवाय** सर्वसुखप्रदाय **वयं हविषा** तदाज्ञायोगाभ्यासधारणेन **विधेम** सेवेमहि ॥ २६ ॥

ओर से देखता है। (यः) जो परमेश्वर (देवेषु) प्रकृति आदि तथा जीवों में (एकः) एक अद्वितीय (अधि+देवः) सब से ऊपर दिव्य गुण, कर्म, स्वभाव वाला (आसीत्) है; उस (चित्) ही (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) सब सुखों के दाता परमेश्वर की हम (हविषा) उसकी आज्ञा एवं योगाभ्यास के धारण से (विधेम) सेवा करें ॥२६॥

भावार्थः—हे मनुष्याः ! ये भवन्तः सर्वस्य द्रष्टारं, धर्त्तारमद्वितीयमधिष्ठातारं परमात्मानं ज्ञातुं योगं नित्यमभ्यस्यन्ति त आनन्दिता भवन्ति ॥ २७ । २६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो आप सब के द्रष्टा, धर्त्ता, अद्वितीय, अधिष्ठाता परमात्मा को जानकर योग का नित्य अभ्यास करते हैं; वे ही आनन्दित होते हैं ॥ २७ । २६ ॥

भाष्यसार—**कौन मनुष्य आनन्दित रहते हैं**—जो परमेश्वर अपनी महिमा एवं व्यापकता से—बल को धारण करने वाली, संसार को उत्पन्न करने वाली, व्यापक, सूक्ष्म तन्मात्राओं को सब ओर से देखता है, अर्थात् सबका द्रष्टा एवं धर्त्ता है; जो परमेश्वर प्रकृति आदि में तथा जीवों में एक अद्वितीय सर्वोपरि दिव्य गुण, कर्म, स्वभाव वाला है अर्थात् अधिष्ठाता है; जो मनुष्य—सुखस्वरूप, सब सुखों के दाता परमात्मा को जानने के लिए उसकी आज्ञा और योगाभ्यास को धारण करते हैं; वे सदा आनन्दित रहते हैं ॥ २७ । २६ ॥

वसिष्ठः । **वायुः**=**वायुरिव वर्त्तमानो विद्वान्** । स्वराट्पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

विदुषा कथं भवितव्यमित्याह ॥

विद्वान् को कैसा होना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

प्र याभिर्यासि दाश्वाꣳसमच्छा नियुद्भिर्वायविष्टये दुरोणे ।
नि नो रयिꣳ सुभोजसं युवस्व नि वीरं गव्यमश्व्यं च राधः ॥ २७ ॥

पदार्थः—(**प्र**) (**याभिः**) कमनीयाभिः (**यासि**) प्राप्नोषि (**दाश्वांसम्**) सुखस्य दातारम् (**अच्छ**) अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (**नियुद्भिः**) नियतैर्गुणैः (**वायो**) वायुरिव वर्त्तमान (**इष्टये**) अभीष्टसुखाय (**दुरोणे**) गृहे (**नि**) नितराम् (**नः**) अस्माकम् (**रयिम्**) धनम् (**सुभोजसम्**) सुष्ठु भोजांसि=भोजनानि यस्मात्तम् (**युवस्व**) मिश्रयस्व (**नि**) (**वीरम्**) प्राप्तविज्ञानादिगुणम् (**गव्यम्**) गोभ्यो हितम् (**अश्व्यम्**)अश्वेभ्यो हितम् (**च**) (**राधः**) धनम् ॥ २७ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् वायो वायुरिव त्वं प्रयाभिर्नियुद्भिरिष्टयेऽच्छ यासि दुरोणे नः सुभोजसं दाश्वांसं रयिं नियुवस्व वीरं गव्यमश्व्यं च राधो नि युवस्व ॥ २७ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे विद्वन् ! वायो**=**वायुरिव** वायुरिव वर्तमान ! **त्वं प्रयाभिः** कमनीयाभिः **नियुद्भिः** नियतैर्गुणैः **इष्टये** अभीष्टसुखाय **अच्छ यासि** प्राप्नोषि; **दुरोणे** गृहे **नः** अस्माकं **सुभोजसं** सुष्ठु भोजांसि=भोजनानि यस्मात्तं

भाषार्थ—हे विद्वान् ! (वायो) वायु के समान वर्त्ताव वाला तू—(प्रयाभिः) कामना करने योग्य (नियुद्भिः) नियत गुणों से (इष्टये) अभीष्ट सुख के लिए (अच्छ) अच्छे प्रकार (यासि) प्राप्त होता है; और—(दुरोणे) घर में (नः) हमारे

दाश्वांसं सुखस्य दातारं **रयिं** धनं **नि+युवस्व** नितरां मिश्रयस्व, **वीरं** प्राप्तविज्ञानादिगुणं **गव्यं** गोभ्यो हितम् **अश्व्यम्** अश्वेभ्यो हितं **च राधः** धनं **नि+युवस्व** नितरां मिश्रयस्व ॥ २७ । २७ ॥

(सुभोजसम्) उत्तम भोजन के हेतु, (दाश्वांसम्) सुख के दाता, (रयिम्) धन को (नियुवस्व) सर्वथा प्राप्त कर; और—(वीरम्) विज्ञान आदि गुणों को प्राप्त कराने वाले, (गव्यम्) गौ के लिए हितकारी और (अश्व्यम्) घोड़ों के लिए हितकारी (राधः) धन को (नि+युवस्व) सर्वथा प्राप्त कर ॥ २७ । २७ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यथा वायुः सर्वाणि जीवनादीनीष्टानि कर्माणि साध्नोति; तथा विद्वानस्मिन् संसारे वर्त्तेत ॥ २७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । जैसे वायु सब जीवन आदि इष्ट कर्मों को सिद्ध करती है; वैसे विद्वान् इस संसार में वर्त्ताव करे ॥ २७ । २७ ॥

भाष्यसार—१. **विद्वान् कैसा हो**—वायु के समान वर्त्ताव करने वाला विद्वान्—कामना करने योग्य, नियत गुणों से अभीष्ट सुख के लिए मनुष्यों को अच्छे प्रकार प्राप्त हो । घर में—उत्तम भोजनों के हेतु, सुख के दाता धन को सर्वथा प्राप्त करावे । विज्ञान आदि गुणों को प्राप्त कराने वाले, गौवों तथा घोड़ों के लिए हितकारी धन को भी प्राप्त करावें । तात्पर्य यह है कि जैसे वायु सब जीवन आदि इष्ट कर्मों को सिद्ध करता है; वैसे विद्वान् इस संसार में वर्त्ताव करें ।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । उपमा यह है कि विद्वान् वायु के समान वर्त्ताव करें ॥ २७ । २७ ॥

वसिष्ठः । **वायुः**=**वायुरिव वर्त्तमानो विद्वान्** । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वान् को कैसा होना चाहिए, इसका फिर उपदेश किया है ॥

आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरꣳ सहस्रिणीभिरुप याहि यज्ञम् ।
वायोऽअस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ २८ ॥

पदार्थः—(**आ**) (**नः**) अस्माकम् (**नियुद्भिः**) निश्चितैर्मिश्रणामिश्रणैर्गमनागमनैः (**शतिनीभिः**) शतं=बहूनि कर्माणि विद्यन्ते यासु ताभिः (**अध्वरम्**) अहिंसनीयम् (**सहस्रिणीभिः**) सहस्राण्यसंख्या वेगा विद्यन्ते यासु गतिषु ताभिः (**उप**) (**याहि**) प्राप्नुहि (**यज्ञम्**) सङ्गन्तव्यं व्यवहारम् (**वायो**) वायुरिव बलवन् विद्वन् ! (**अस्मिन्**) (**सवने**) उत्पत्त्यधिकरणे जगति (**मादयस्व**) आनन्दयस्व (**यूयम्**) (**पात**) रक्षत (**स्वस्तिभिः**) सुखैः सह (**सदा**) सर्वस्मिन् काले (**नः**) अस्मान् ॥ २८ ॥

अन्वयः—हे वायो यथा वायुर्नियुद्भिश्शतिनीभिः सहस्रिणीभिर्गतिभिरस्मिन्सवने नोऽध्वरं यज्ञमुपगच्छति तथा त्वमेतमायाहि मादयस्व । हे विद्वांसो यूयमेतद्विद्यया स्वस्तिभिर्नः सदा पात ॥ २८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **वायो** ! वायुरिव बलवन् विद्वन् ! **यथा वायुर्नियुद्भिः** निश्चितैर्मिश्रणामिश्रणैर्गमनागमनैः **शतिनीभिः** शतं=

भाषार्थ—हे (वायो) वायु के समान बलवान् विद्वान् ! जैसे वायु (नियुद्भिः) निश्चित मिश्रित-अमिश्रित गमनागमन, (शतिनीभिः) शत=

बहूनि कर्माणि विद्यन्ते यासु ताभिः **सहस्रिणीभिः** सहस्राण्यसंख्या वेगा विद्यन्ते यासु गतिषु ताभिः **गतिभिः**, **अस्मिन्सवने** उत्पत्त्यधिकरणे जगति **नः** अस्माकम् **अध्वरम्** अहिंसनीयं **यज्ञं** सङ्गन्तव्यं व्यवहारम् **उपगच्छति; तथा त्वमेतमायाहि** प्राप्नुहि, **मादयस्व** आनन्दयस्व ।

बहुत कर्मों वाली, (सहस्रिणीभिः) सहस्र=असंख्य वेग से युक्त गतियों से (अस्मिन्) इस (सवने) उत्पत्ति के आधार जगत् में (नः) हमारे (अध्वरम्) हिंसा रहित (यज्ञम्) संगति के योग्य व्यवहार को (उप+गच्छति) प्राप्त होता है; वैसे तू इसे (आयाहि) प्राप्त कर; और (मादयस्व) आनन्द कर ।

हे विद्वांसः ! यूयमेतद्विद्यया स्वस्तिभिः सुखैः सह **सदा** सर्वस्मिन् काले **नः** अस्मान् **पात** रक्षत ।। २७ । २८ ।।

हे विद्वानो ! तुम—इस वायु-विद्या से (स्वस्तिभिः) सुखों से (सदा) सब काल में (नः) हमारी (पात) रक्षा करो ।। २७ । २८ ।।

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । विद्वांसो, यथा वायवो विविधाभिर्गतिभिः सर्वान् पुष्णन्ति, तथैव—सुशिक्षया सर्वान् पोषयन्तु ।।२८।।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है । विद्वान् लोग—जैसे वायु विविध गतियों से सब को पुष्ट करती है; वैसे ही सुशिक्षा से सब को पुष्ट करें ।। २७ । २८ ।।

भाष्यसार—१, विद्वान् कैसा हो—जैसे वायु निश्चित मिश्रित-अमिश्रित गमन-आगमन से बहुत कर्म एवं असंख्य वेग वाली गतियों से इस जगत् में हमारे हिंसा रहित, संगत व्यवहार को प्राप्त करता है अर्थात् हमें पुष्ट करता है, वैसे वायु के समान बलवान् विद्वान् मनुष्यों को प्राप्त हों एवं उन्हें आनन्दित करें अर्थात् सुशिक्षा से पुष्ट करें । विद्वान् लोग वायु-विद्या की शिक्षा से एवं सुख प्रदान से सदा रक्षा करें ।

२. अलंकार—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । उपमा यह है कि विद्वान् लोग वायु के समान सब को पुष्ट करें ।। २७ । २८ ।।

गृत्समदः । **वायुः=ईश्वरः** । निचृद्गायत्री । षड्जः ।।

अथेश्वरः कीदृश इत्याह ।।

अब ईश्वर कैसा है, इस विषय का उपदेश किया जाता है ।।

नियुत्वान् वायवा गह्ययᳬ शुक्रोᳬ अयामि ते । गन्तासि सुन्वतो गृहम् ।। २९ ।।

पदार्थः—(**नियुत्वान्**) नियन्ता (**वायो**) पवन इव (**आ**) (**गहि**) समन्तात् प्राप्नुहि (**अयम्**) (**शुक्रः**) पवित्रकर्त्ता (**अयामि**) प्राप्नोमि (**ते**) तव (**गन्ता**) (**असि**) (**सुन्वतः**) अभिषवं कुर्वतः (**गृहम्**) ।। २९ ।।

अन्वयः—हे वायो नियुत्वानीश्वरस्त्वं यथाऽयं शुक्रो गन्ता वायुः सुन्वतो गृहं गच्छति तथा मामागहि । यतस्त्वमीश्वरोऽसि तस्मात्ते स्वरूपमहमयामि ।। २९ ।।

सपदार्थान्वयः—**हे वायो !** पवन इव **नियुत्वान्** नियन्ता **ईश्वरस्त्वं, यथाऽयं शुक्रः** पवित्रकर्त्ता, **गन्ता, वायुः; सुन्वतः** अभिषवं कुर्वतः

भाषार्थ—हे (वायो) वायु के समान (नियुत्वान्) नियन्ता ईश्वर ! जैसे यह (शुक्रः) पवित्र करने वाला, (गन्ता) गतिशील, वायु

गृहं गच्छति; तथा माम्, आ+गहि समन्तात् प्राप्नुहि ।

(सुन्वतः) सोम-रस निकालने वाले के (गृहम्) घर जाता है; वैसे (माम्) मुझे (आ+गहि) सब ओर से प्राप्त हो ।

यतस्त्वमीश्वरोऽसि, तस्मात्ते तव **स्वरूप-महमयामि** प्राप्नोमि ॥ २७ । २६ ॥

क्योंकि तू ईश्वर है अतः (ते) तेरे स्वरूप को मैं (अयामि) प्राप्त करता हूँ ॥ २७ । २६ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यथा वायुः सर्वशोधकः, सर्वत्र गन्ता, सर्वप्रियोऽस्ति; तथेश्वरोऽपि वर्त्तते ॥ २७ । २६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है । जैसे वायु सब का शोधक, सर्वत्र गति करने वाला एवं सब का प्रिय है; वैसे ईश्वर भी है ॥ २७ । २६ ॥

भा० पदार्थः—शुक्रः=सर्वशोधकः [वा० / ई०] ॥ गन्ता=सर्वत्र गन्ता । गृहम्=सर्वप्रियः ॥

भाष्यसार—**१. ईश्वर कैसा है**—ईश्वर—वायु के समान नियन्ता, पवित्र-कर्त्ता अर्थात् सब का शोधक, सर्वत्र गन्ता और सर्वप्रिय है। जैसे सोम-रस निकालने वाले के घर में वायु प्राप्त होता है वैसे उपासक को ईश्वर भी प्राप्त होता है । उपासक ईश्वर के स्वरूप को प्राप्त कर लेता है ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि ईश्वर वायु के समान नियन्ता, पवित्र-कर्त्ता, सर्वत्र गन्ता और सर्वप्रिय है ॥ २७ । २६ ॥

पुरुमीढः । **वायुः**=**वायुरिव वर्त्तयिता मनुष्यः** । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनर्मनुष्येण किं कार्य्यमित्याह ॥

फिर मनुष्य को क्या करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

वायो शुक्रो ऽ अयामि ते मध्वो ऽ अग्रं दिविष्टिषु ।
आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥ ३० ॥

पदार्थः—(**वायो**) वायुरिव वर्त्तमान (**शुक्रः**) शुद्धिकरः (**अयामि**) प्राप्नोमि (**ते**) तव (**मध्वः**) मधुरस्य (**अग्रम्**) उत्तमं भागम् (**दिविष्टिषु**) दिव्यासु सङ्गतिषु (**आ, याहि**) (**सोमपीतये**) सदौषधिरसपानाय (**स्पार्हः**) यः स्पृहयति तस्याऽयम् (**देव**) दिव्यगुणसम्पन्न (**नियुत्वता**) वायुना सह ॥३०॥

अन्वयः—हे वायो यो वायुरिव शुक्रस्त्वमसि ते मध्वोग्रं दिविष्टिष्वहमयामि । हे देव स्पार्हस्त्वं नियुत्वता सह सोमपीतय आयाहि ॥ ३० ॥

सपदार्थान्वयः—**हे वायो**=**यो वायुरिव** वायुरिव वर्त्तमान ! **शुक्रः** शुद्धिकरः **त्वमसि, ते** तव **मध्वः** मधुरस्य **अग्रम्** उत्तमं भागं **दिविष्टिषु** दिव्यासु सङ्गतिषु **अहमयामि** प्राप्नोमि ।

भाषार्थ—हे (वायो) वायु के तुल्य वर्त्ताव करने वाले मनुष्य ! तू—(शुक्रः) शुद्धि करने वाला है, (ते) तेरे (मध्वः) मधु के (अग्रम्) उत्तम भाग को (दिविष्टिषु) दिव्य संगतियों में मैं (अयामि) प्राप्त करता हूँ ।

हे **देव** ! दिव्यगुणसम्पन्न ! **स्पार्हः** यः स्पृहयति तस्यायं **त्वं नियुत्वता** वायुना **सह सोमपीतये** सदौषधिरसपानाय **आयाहि** ॥ २७ । ३० ॥

हे (देव) दिव्य गुणों से सम्पन्न विद्वान् ! तू—(स्पार्हः) स्पृहा करने वाला होकर (नियुत्वता) वायु के साथ (सोमपीतये) सदा ओषधि-रस के पान के लिए (आयाहि) आ ॥ २७ । ३० ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । हे मनुष्य ! यथा वायुः सर्वान् रसगन्धादीन् पीत्वा सर्वान् पोषयति, तथा त्वं सर्वान् पुषाण ॥२७।३०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। हे मनुष्य ! जैसे वायु सब रस गन्ध आदि को पीकर सब को पुष्ट करता है वैसे तू सबको पुष्ट कर ॥ २७ । ३० ॥

भा० पदार्थः—सोमपीतये=रसगन्धादीन् पातुम् ॥

भाष्यसार—१. **मनुष्य क्या करे**—मनुष्य वायु के समान शुद्धि करने वाला हो। वह मधु के उत्तम भाग को दिव्य इष्टि=यज्ञों में प्राप्त करे। दिव्य गुणों से सम्पन्न, स्पृहा के योग्य विद्वानों को सोमपान के लिए बुलावें। जैसे वायु, सब रस, गन्ध आदि को पीकर सब को पुष्ट करता है; वैसे मनुष्य विद्वानों का पोषण करे।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि मनुष्य वायु के समान विद्वानों का पोषण करें ॥ २७ । ३० ॥

अजमीढः । **वायुः=वायुरिवव र्त्तयिता विद्वान्** । गायत्री । षड्जः ॥

अथ विद्वद्भिः किं कार्यमित्याह ॥

अब विद्वानों को क्या करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

वा॒युर॑ग्रे॒गा य॑ज्ञ॒प्रीः सा॒कं ग॒न्मन॑सा य॒ज्ञम् । शि॒वो नि॒युद्भिः॑ शि॒वाभिः॑ ॥ ३१ ॥

पदार्थः—(**वायुः**) पवनः (**अग्रेगाः**) योऽग्रे गच्छति सः (**यज्ञप्रीः**) यो यज्ञं प्राति=पूरयति सः (**साकम्**) सह (**गन्**) गच्छति (**मनसा**) (**यज्ञम्**) (**शिवः**) मङ्गलमयः (**नियुद्भिः**) निश्चिताभिः क्रियाभिः (**शिवाभिः**) मङ्गलकारिणीभिः ॥ ३१ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यथा वायुर्नियुद्भिः शिवाभिर्यज्ञं गन् तथा शिवोऽग्रेगा यज्ञप्रीः संस्त्वं मनसा साकं यज्ञमायाहि ॥ ३१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! **यथा वायुः** पवनः **नियुद्भिः** निश्चिताभिः क्रियाभिः **शिवाभिः** मङ्गलकारिणीभिः **यज्ञं गन्** गच्छति, **तथा शिवः** मङ्गलमयः **अग्रेगाः** योऽग्रे गच्छति सः, **यज्ञप्रीः** यो यज्ञं प्राति=पूरयति सः, **संस्त्वं मनसा साकं** सह **यज्ञमायाहि** ॥ २७ । ३१ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् ! जैसे (वायुः) वायु (नियुद्भिः) निश्चित (शिवाभिः) मंगलकारी क्रियाओं से (यज्ञम्) यज्ञ को (गन्) प्राप्त करता है; वैसे (शिवः) मंगलमय, (अग्रेगाः) अग्रगामी और (यज्ञप्रीः) यज्ञ को पूरा करने वाला होकर तू—(मनसा) विज्ञान (साकम्) साथ (यज्ञम्) यज्ञ को (आयाहि) प्राप्त कर ॥ २७ । ३१ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । अत्र 'आयाहि' इति पदं पूर्वमन्त्रादनुवर्त्तते ।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। यहाँ पूर्व मन्त्र से 'आयाहि' इस पद की अनुवृत्ति है।

यथा वायुरनेकैः पदार्थैस्सह गच्छत्यागच्छति तथा विद्वांसो धर्म्याणि कर्माणि विज्ञानेन प्राप्नुवन्तु ॥ २७ । ३१ ॥

जैसे वायु अनेक पदार्थों के साथ जाता-आता है; वैसे विद्वान् लोग धर्म-युक्त कर्मों को विज्ञान से प्राप्त करें ॥ २७ । ३१ ॥

भा० पदार्थः—गन्=गच्छति, आगच्छति । मनसा=विज्ञानेन । यज्ञम्=धर्म्याणि कर्माणि ॥

भाष्यसार—**१. विद्वान् क्या करें**—जैसे वायु निश्चित, मंगलकारी क्रियाओं से यज्ञ को प्राप्त होता है, अनेक पदार्थों के सहित आता-जाता है; वैसे विद्वान् लोग मंगलमय, अग्रगामी, यज्ञ को पूरा करने वाले हों तथा धर्म-युक्त कर्मों को विज्ञान से प्राप्त करें ।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । उपमा यह है कि विद्वान् लोग वायु के समान कर्मों को विज्ञान से प्राप्त करें ॥२७।३१॥

गृत्समदः । **वायुः=वायुरिव वर्त्तमानो विद्वान्** । गायत्री । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वानों को क्या करना चाहिए, इसका फिर उपदेश किया है ॥

वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरा गहि । नियुत्वान्त्सोमपीतये ॥ ३२ ॥

पदार्थः—(**वायो**) पवनवद्वर्त्तमान (**ये**) (**ते**) तव (**सहस्रिणः**) प्रशस्ताः सहस्रं जना विद्यन्ते येषु ते (**रथासः**) रमणीयानि यानानि (**तेभिः**) तैः (**आ**) (**गहि**) प्राप्नुहि (**नियुत्वान्**) समर्थः सन् (**सोमपीतये**) सोमस्य पानाय ॥ ३२ ॥

अन्वयः—हे वायो वायुरिव वर्त्तमान विद्वन् ! ये ते सहस्रिणो रथासः सन्ति तेभिः सह नियुत्वान्त्संस्त्वं सोमपीतय आ गहि ॥ ३२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **वायो=वायुरिव वर्त्तमान विद्वन्** पवनवद्वर्त्तमान ! **ये—ते** तव **सहस्रिणः** प्रशस्ताः सहस्रं जना विद्यन्ते येषु ते **रथासः** रमणीयानि यानानि **सन्ति, तेभिः** तैः **सह नियुत्वान्** समर्थः **संस्त्वं सोमपीतये** सोमस्य पानाय **आ-गहि** प्राप्नुहि ॥ २७ । ३२ ॥

भाषार्थ—हे (वायो) वायु के समान वर्त्ताव करने वाले विद्वान् ! (ये) जो (ते) तेरे (सहस्रिणः) प्रशस्त सहस्र जनों वाले (रथासः) रमणीय यान हैं; (तेभिः) उनसे (नियुत्वान्) समर्थ होकर तू—(सोमपीतये) सोम-पान के लिए (आ+गहि) प्राप्त हो; आ ॥ २७ । ३२ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । हे मनुष्याः ! यथा वायोरसंख्या रमणीया गतयः सन्ति, तथा विविधाभिर्गतिभिः समर्था भूत्वैश्वर्यं भुङ्ग्ध्वम् ॥ २७ । ३२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । हे मनुष्यो ! जैसे वायु की असंख्य रमणीय गतियाँ हैं; वैसे विविध गतियों से समर्थ होकर तुम ऐश्वर्य का भोग करो ॥ २७ । ३२ ॥

भा० पदार्थः—सहस्रिणः=असंख्याः । रथासः रमणीया=गतयः । सोमपीतये=ऐश्वर्य-भोगाय ॥

भाष्यसार—**१. विद्वान् क्या करें**—वायु के समान असंख्य रमणीय गतियों वाले विद्वानों के पास, सहस्र जनों को ले जाने वाले यान हों । उनसे वे समर्थ होकर सोम-पान के लिए पधारें; ऐश्वर्य का उपभोग करें ।

२. अलंकार—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि वायु के समान विद्वान् लोग यानों से असंख्य गतियों वाले हों ॥ २७। ३२ ॥

गृत्समदः । **वायुः**=वायुरिव वर्त्तमानो विद्वान् । निचृत्त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वानों को क्या करना चाहिए, इसका फिर उपदेश किया है ॥

एकया च दशभिश्च स्वभूते द्वाभ्यामिष्टये विंशती च ।
तिसृभिश्च वहसे त्रिंशता च नियुद्भिर्वायविह ता वि मुञ्च ॥ ३३ ॥

पदार्थः—(**एकया**) गत्या (**च**) (**दशभिः**) दशविधाभिर्गतिभिः (**च**) (**स्वभूते**) स्वकीयैश्वर्य (**द्वाभ्याम्**) विद्यापुरुषार्थाभ्याम् (**इष्टये**) विद्यासङ्गतये (**विंशती**) चत्वारिंशत् (**च**) (**तिसृभिः**) (**च**) (**वहसे**) प्राप्नोषि (**त्रिंशता**) एतत्संख्याकैः (**च**) (**नियुद्भिः**) (**वायो**) (**इह**) (**ता**) तानि (**वि, मुञ्च**) विशेषेण त्यज ॥ ३३ ॥

अन्वयः—हे स्वभूते वायो ! यथा पवन इहेष्टये एकया च दशभिश्च द्वाभ्यामिष्टये विंशती च तिसृभिश्च त्रिंशता च नियुद्भिः सह यज्ञं वहति तथा वहसे स त्वं ता वि मुञ्च ॥ ३३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **स्वभूते** स्वकीयैश्वर्य **वायो** ! **यथा पवन इहेष्टये** विद्यासङ्गतये **एकया** गत्या **च**, **दशभिः** दशविधाभिर्गतिभिः **च**, **द्वाभ्यां** विद्यापुरुषार्थाभ्याम्, **इष्टये** विद्यासङ्गतये **विंशती** चत्वारिंशत् **च**, **तिसृभिश्च त्रिंशता** एतत्संख्याकैः **च नियुद्भिः सह, यज्ञं वहति; तथा वहसे** प्राप्नोषि; **स त्वं ता** तानि **वि+मुञ्च** विशेषेण त्यज ॥ २७। ३३ ॥

भाषार्थ—हे (स्वभूते) अपने ऐश्वर्य वाले वायु के समान विद्वान् ! जैसे पवन (इह) इस संसार में (इष्टये) विद्या-संगति के लिए (एकया) एक गति से, (च) और (दशभिः) दस प्रकार की गतियों से, (च) और (द्वाभ्याम्) विद्या और पुरुषार्थ दोनों से—(इष्टये) विद्या-संगति के लिए (विंशती) २०×२=४० चालीस (च) और (तिसृभिः) तीन और (त्रिंशता) तीस अर्थात् तैंतीस (च) और (नियुद्भिः) निश्चित गतियों के साथ यज्ञ को प्राप्त करता है; वैसे तू (वहसे) प्राप्त कर और तू (ता) उन्हें (वि+मुञ्च) विमुक्त कर ॥ २७। ३३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यथा वायुरिन्द्रियैः, प्राणैरनेकाभिर्गतिभिः, पृथिव्यादिलोकैश्च सह सर्वस्येष्टं साध्नोति, तथा विद्वांसोऽपि साध्नुयुः ॥ २७। ३३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है। जैसे वायु—इन्द्रिय, प्राण, अनेक गति और पृथिवी आदि लोकों के साथ सबके इष्ट को सिद्ध करता है; वैसे विद्वान् भी सिद्ध करे ॥ २७। ३३ ॥

भा० पदार्थः—दशभिः=इन्द्रियैः ॥

भाष्यसार—१. **विद्वान् क्या करें**—अपने ऐश्वर्य से युक्त वायु के तुल्य विद्वान्—विद्या-प्राप्ति के लिए एक मन और दस इन्द्रियों एवं प्राणों से, विद्या और पुरुषार्थ से, तैंतीस पृथिवी आदि लोकों से यज्ञ=सब का इष्ट सिद्ध करें ॥

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक इव आदि पद लुप्त है अतः वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि विद्वान् लोग वायु के तुल्य इन्द्रियों, प्राणों एवं अनेक गतियों तथा पृथिवी आदि लोकों से सबका इष्ट सिद्ध करें॥ २७। ३३॥ ●

आङ्गिरसः। **वायुः**=स्पष्टम्। निचृद्गायत्री। षड्जः॥

अथ किंवद्वायुः स्वीकर्त्तव्य इत्याह॥

अब किसके तुल्य वायु स्वीकार करने योग्य है, इसका उपदेश किया है॥

तव॑ वायवृतस्पते त्वष्टु॑र्जामातरद्भुत। अवा॒ꣳस्या वृ॑णीमहे॥ ३४॥

पदार्थः—(**तव**) (**वायो**) बहुबल (**ऋतस्पते**) सत्यपालक (**त्वष्टुः**) विद्यया प्रदीप्तस्य (**जामातः**) कन्यापतिवद्वर्त्तमान (**अद्भुत**) आश्चर्यकर्मन् (**अवांसि**) रक्षणादीनि (**आ**) (**वृणीमहे**) स्वीकुर्महे॥ ३४॥

अन्वयः—हे ऋतस्पते जामातरद्भुत वायो वयं यानि त्वष्टुस्तवाऽवांस्या वृणीमहे तानि त्वमपि स्वीकुरु॥ ३४॥

सपदार्थान्वयः—**हे ऋतस्पते** सत्यपालक! **जामातः** कन्यापतिवद्वर्तमान! **अद्भुत** आश्चर्यकर्मन् **वायो**! बहुबल! **वयं यानि त्वष्टुः** विद्यया प्रदीप्तस्य **तवाऽवांसि** रक्षणादीनि **आवृणीमहे** स्वीकुर्महे; **तानि त्वमपि स्वीकुरु**॥ २७। ३४॥

भाषार्थ—हे (ऋतस्पते) सत्य के पालक, (जामातः) कन्या-पति के तुल्य वर्त्ताव करने वाले, (अद्भुतः) आश्चर्य युक्त कर्म वाले, (वायो) बहुत बल वाले विद्वान्! हम लोग (त्वष्टुः) विद्या से प्रदीप्त आपके (अवांसि) जिन रक्षा आदि गुणों को (आवृणीमहे) स्वीकार करते हैं; उन्हें तू भी स्वीकार कर॥ २७। ३४॥

भावार्थः—यथा जामाताऽऽश्चर्यगुणः, सत्यसेवकः, स्वीकर्त्तव्योऽस्ति, तथा वायुरपि वरणीयोऽस्ति॥ २७। ३४॥

भावार्थ—जैसे जामाता (जमाई) अद्भुत गुणों वाला, सत्य का सेवक एवं स्वीकार करने योग्य होता है; वैसे वायु भी वरण (स्वीकार) करने योग्य है॥ २७। ३४॥

भा० पदार्थः—ऋतस्पते=सत्यसेवक। अद्भुत=आश्चर्यगुणः।

भाष्यसार—**किस के तुल्य वायु स्वीकर्त्तव्य है**—जैसे सत्य का पालक, अद्भुत गुण, कर्म, स्वभाव वाला, बहुत बलवान् विद्या से प्रदीप्त जमाई (कन्या-पति) वरण करने योग्य होता है; वैसे वायु भी वरण (स्वीकार) करने योग्य है॥ २७। ३४॥ ●

वसिष्ठः। **वायुः**=**राजा**। स्वराडनुष्टुप्। गान्धारः॥

अथ राजधर्ममाह॥

अब राजधर्म विषय का उपदेश किया जाता है॥

अ॒भि त्वा॑ शूर नोनु॒मोऽदु॑ग्धाऽइव धे॒नवः॑।
ईशा॑नम॒स्य जग॑तः स्व॒र्दृश॒मीशा॑नमिन्द्र त॒स्थुषः॑॥ ३५॥

पदार्थः—(**अभि**) (**त्वा**) त्वाम् (**शूर**) निर्भय (**नोनुमः**) भृशं सत्कुर्य्याम=प्रशंसेम (**अदुग्धा इव**) अविद्यमानपयस इव (**धेनवः**) गावः (**ईशानम्**) ईशनशीलम् (**अस्य**) (**जगतः**) जङ्गमस्य (**स्वर्दृशम्**) सुखेन द्रष्टुं योग्यम् (**ईशानम्**) (**इन्द्र**) सभेश (**तस्थुषः**) स्थावरस्य ॥ ३५ ॥

अन्वयः—हे शूरेन्द्र धेनवोऽदुग्धा इव वयमस्य जगतस्तस्थुष ईशानं स्वर्दृशमिवेशानं त्वाऽभिनोनुमः ॥ ३५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **शूर** निर्भय **इन्द्र**! सभेश! **धेनवः** गावः **अदुग्धा इव** अविद्यमानपयस इव **वयमस्य जगतः** जङ्गमस्य **तस्थुषः** स्थावरस्य **ईशानम्** ईशनशीलं **स्वर्दृशं** सुखेन द्रष्टुं योग्यम् **इवेशानम्** ईशनशीलं **त्वा** त्वाम् **अभिनोनुमः** भृशं सत्कुर्य्याम=प्रशंसेम ॥ २७ । ३५ ॥

भाषार्थ—हे (शूर) निर्भय (इन्द्र) सभापति! जैसे—(धेनवः) गौवें (अदुग्धा, इव) विना दूध वाली हों वैसे—हम लोग (अस्य) इस (जगतः) जंगम एवं (तस्थुषः) स्थावर जगत् के (ईशानम्) ईशन=शासन करने वाले, (स्वर्दृशम्) सुख से देखने योग्य पदार्थ के तुल्य (त्वा) तुझ (ईशानम्) राजा का (अभिनोनुमः) अत्यन्त सत्कार करते हैं; प्रशंसा करते हैं ॥ २७ । ३५ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः। हे राजन्! यदि भवान् पक्षपातं विहायेश्वरवन्न्यायाधीशो भवेत्, यदि कदाचिद् वयं करमपि न दद्याम तथाऽप्यस्मान् रक्षेत्, तर्हि त्वदनुकूला वयं सदा भवेम ॥ २७ । ३५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलंकार है। हे राजन्! यदि आप पक्षपात को छोड़कर ईश्वर के समान न्यायाधीश हों, यदि कभी हम कर भी न दें, फिर भी हमारी रक्षा करो; तो आप के अनुकूल हम सदा रहें ॥ २७ । ३५ ॥

भा० पदार्थः—इन्द्र=राजन्। ईशानम्=पक्षपातं विहाय ईश्वरवन्न्यायाधीशम्। अभिनोनुमः=त्वदनुकूला भवेम ॥

भाष्यसार—१. **राजधर्म**—जो निर्भय, सभापति राजा—पक्षपात छोड़कर ईश्वर के तुल्य न्यायाधीश हो; जैसे दुग्ध-रहित गौओं की भी रक्षा की जाती है वैसे कर न देने पर भी प्रजा की रक्षा करने वाला हो, राज्य के स्थावर और जंगम दोनों का स्वामी हो, सुख से देखने योग्य हो; उस राजा का प्रजा अत्यन्त सत्कार करे, उसकी प्रशंसा करे, एवं सदा उसके अनुकूल रहे।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' पद है; अतः उपमा अलंकार है। उपमा यह है कि जैसे दुग्ध रहित (दूध न देने वाली) गौओं की रक्षा की जाती है वैसे राजा कर न देने पर भी प्रजा की रक्षा करे ॥ २७ । ३५ ॥ ●

शम्युर्बार्हस्पत्यः। **परमेश्वरः=स्पष्टम्**। स्वराट् पङ्क्तिः। पञ्चमः ॥

ईश्वर एवोपासनीय इत्याह ॥

ईश्वर ही उपासना करने योग्य है, इस विषय का उपदेश किया है ॥

न त्वावाँ२ऽ अन्यो दि॒व्यो न पार्थिवो॒ न जा॒तो न जनिष्यते।
अ॒श्वा॒यन्तो॑ मघवन्निन्द्र वा॒जिनो॑ ग॒व्यन्त॑स्त्वा हवामहे ॥ ३६ ॥

पदार्थः—(**न**) (**त्वावान्**) त्वत्सदृशः (**अन्यः**) भिन्नः (**दिव्यः**) शुद्धः (**न**) (**पार्थिवः**) पृथिव्यां विदितः (**न**) (**जातः**) उत्पन्नः (**न**) (**जनिष्यते**) उत्पत्स्यते (**अश्वायन्तः**) आत्मनोऽश्वमिच्छन्तः (**मघवन्**) परमपूजितैश्वर्य (**इन्द्र**) सर्वदुःखविदारक (**वाजिनः**) वेगवन्तः (**गव्यन्तः**) गां=वाणीं चक्षाणाः (**त्वा**) (**हवामहे**) स्तुवीमः ॥ ३६ ॥

अन्वयः—हे मघवन्निन्द्रेश्वर वाजिनो गव्यन्तोऽश्वायन्तो वयं त्वा हवामहे यतः कश्चिदन्यः पदार्थो न त्वावान् दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते तस्माद्भवानेवाऽस्माकमुपास्यो देवोऽस्ति ॥ ३६ ॥

सपदार्थान्वयः — **हे मघवन्** परमपूजितैश्वर्य **इन्द्र=ईश्वर** ! सर्वदुःखविदारक ! **वाजिनः** वेगवन्तः **गव्यन्तः** गां=वाणीं चक्षाणाः **अश्वायन्तः** आत्मनोऽश्वमिच्छन्तः **वयं, त्वा हवामहे** स्तुवीमः ।

यतः कश्चिदन्यः भिन्नः **पदार्थो न त्वावान्** त्वत्सदृशः **दिव्यः** शुद्धः **न पार्थिवः** पृथिव्यां विदितः, **न जातः** उत्पन्नः, **न जनिष्यते** उत्पत्स्यते; **तस्माद्भवानेवाऽस्माकमुपास्यो देवोऽस्ति** ॥ २७ । ३६ ॥

भाषार्थ—हे (मघवन्) परम पूजित ऐश्वर्य वाले (इन्द्र) सब दुःखों का विदारण करने वाले ईश्वर ! (वाजिनः) वेगवान्, (गव्यन्तः) गौ=वाणी का उपदेश करने वाले और (अश्वायन्तः) अपने अश्व की इच्छा करने वाले हम लोग—(त्वा) तेरी (हवामहे) स्तुति करते हैं ।

क्योंकि कोई (अन्यः) दूसरा पदार्थ (न, त्वावान्) तेरे सदृश (दिव्यः) शुद्ध है, (न, पार्थिवः) न पृथिवी में प्रसिद्ध है; (न, जातः) न उत्पन्न हुआ है; (न, जनिष्यते) न उत्पन्न होगा; अतः आप ही हमारे उपास्य देव हो ॥ २७ । ३६ ॥

भावार्थः—न कोऽपि परमेश्वरेण सदृशः शुद्धो, जातो, वा जनिष्यमाणो, वर्त्तमानो वाऽस्ति ।

अतएव सर्वैर्मनुष्यैरेतं विहायान्यस्य कस्याप्युपासनाऽस्य स्थाने नैव कार्या ।

इदमेव कर्मेहामुत्र चानन्दप्रदं विज्ञेयम् ॥२७।३६॥

भावार्थ—परमेश्वर के सदृश न कोई शुद्ध है, न कोई उत्पन्न हुआ है और न उत्पन्न होगा और न वर्तमान है ।

इसलिए ही सब मनुष्य इसको छोड़कर अन्य किसी की उपासना इसके स्थान में न करें ।

इसी कर्म को इस लोक और परलोक में आनन्ददायक समझें ॥ २७ । ३६ ॥

भा० पदार्थः—त्वावान्=परमेश्वरेण सदृशः ।

भाष्यसार—**ईश्वर ही उपासनीय है**—वेगवान् (बलवान्), वेद-वाणी का उपदेश करने वाले, अपने अश्व आदि पशुओं की कामना करने वाले विद्वान्—परम पूजित ऐश्वर्य वाले, सब दुःखों के विदारक ईश्वर की स्तुति करें; क्योंकि ईश्वर के सदृश शुद्ध कोई पदार्थ नहीं है; न ईश्वर के सदृश पृथिवी पर कोई प्रसिद्ध है; न ईश्वर के तुल्य कोई पहले उत्पन्न हुआ है; न उत्पन्न होगा और न है; अतः सब मनुष्य ईश्वर को छोड़कर अन्य किसी की उपासना इसके स्थान में न करें । ईश्वर को ही इस लोक और परलोक में आनन्दप्रद समझें ॥ २७ । ३६ ॥ ●

शम्युबार्हस्पत्यः । **इन्द्रः=सेनेशः सभेशश्च** । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुना राजधर्मविषयमाह ॥

राजधर्म विषय का फिर उपदेश किया है ॥

त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥ ३७ ॥

पदार्थः—(त्वाम्) (इत्) एव (हि) (हवामहे) गृह्णीमः (सातौ) सङ्ग्रामे (वाजस्य) विद्या-विज्ञानजन्यस्य कार्यस्य (कारवः) कर्त्तारः (त्वाम्) (वृत्रेषु) घनेषु (इन्द्र) सूर्य इव जगत्पालक (सत्पतिम्) सत्यस्य प्रचारेण पालकम् (नरः) नेतारः (त्वाम्) (काष्ठासु) दिक्षु (अर्वतः) आशुगामिनोऽश्वस्येव ॥३७॥

अन्वयः—हे इन्द्र वाजस्य हि कारवो नरो वयं सातौ त्वां वृत्रेषु सूर्यमिव सत्पतिं त्वामर्वत इव सेनायां पश्येम काष्ठासु त्वामिद्धवामहे ॥ ३७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे इन्द्र सूर्य इव जगत्पालक ! **वाजस्य** विद्या-विज्ञानजन्यस्य कार्यस्य **हि कारवः** कर्त्तारः **नरः** नेतारः **वयं, सातौ** सङ्ग्रामे **त्वां वृत्रेषु** घनेषु **सूर्यमिव सत्पतिं** सत्यस्य प्रचारेण पालकं **त्वामर्वतः** आशुगामिनोऽश्वस्य **इव सेनायां पश्येम; काष्ठासु** दिक्षु **त्वामिद्** एव **हवामहे** गृह्णीमः ॥ २७ । ३७ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । हे सेनासभेशौ ! युवां सूर्यवन्न्यायाभयप्रकाशकौ, शिल्पिनां संगृहीतारौ, सत्यस्य प्रचारकौ भवेतम् ॥

भाषार्थ—हे (इन्द्र) सूर्य के समान जगत् के पालक सेनापति ! (वाजस्य) विद्या और विज्ञान से उत्पन्न कार्य के (हि) ही (कारवः) कर्त्ता (नरः) नायक हम लोग—(सातौ) संग्राम में तुझ को; (वृत्रेषु) मेघों में सूर्य के समान (सत्पतिम्) प्रचार से सत्य के पालक तुझ को, (अर्वतः) शीघ्र गामी घोड़े के समान सेना में देखते हैं; (काष्ठासु) दिशाओं में तुझे (इत्) ही (हवामहे) सेनापति स्वीकार करते हैं ।। २७ । ३७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । हे सेनापति और सभापति ! तुम दोनों—सूर्य के समान न्याय और अभय के प्रकाशक, शिल्पियों को ग्रहण करने वाले और सत्य के प्रचारक बनो ॥ २७ । ३७ ॥

भा० पदार्थः—इन्द्र=हे सेनासभेशौ ! कारवः=शिल्पिनः । सत्पतिम्=सत्यस्य प्रचारकम् ॥

भाष्यसार—**१. राजधर्म**—सेनापति और सभापति दोनों सूर्य के समान जगत् के पालक हों; न्याय और अभय के प्रकाशक हों; विद्या और विज्ञान से उत्पन्न कार्य के करने वाले अर्थात् शिल्पी लोगों को ग्रहण करने वाले हों । शिल्पी आदि प्रजाजन-सत्य के प्रचारक उक्त सेनापति और सभापति को संग्राम में—बादलों मेंसू र्य के समान देखें; और सेना में शीघ्रगामी घोड़े के समान देखें । सब दिशाओं में उक्त राजा को ही ग्रहण करें ।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । उपमा यह है कि प्रजाजन राजा को संग्राम में बादलों में सूर्य के समान तथा सेना में शीघ्र-गामी अश्व के समान देखें ॥ २७ । ३७ ॥

शम्युबार्हस्पत्यः । **इन्द्रः=विद्वान्** । स्वराड्बृहती । निषादः ॥

विद्वान् किं करोतीत्याह ॥

विद्वान् क्या करता है, इस विषय का उपदेश किया है ॥

स त्वं नंश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो ऽ अंद्रिवः ।
गामश्वंꣳ रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषें ॥ ३८ ॥

पदार्थः—(सः) पूर्वोक्तः (त्वम्) (नः) अस्मभ्यम् (चित्र) आश्चर्यस्वरूप (वज्रहस्त) (धृष्णुया) प्रगल्भतया (महः) महत् (स्तवानः) स्तुवन् (अद्रिवः) प्रशस्ताश्ममयवस्तुयुक्त (गाम्) वृषभम् (अश्वम्) (रथ्यम्) रथस्य वोढारम् (इन्द्र) (सम्) (किर) प्रापय (सत्रा) सत्यम् (वाजम्) विज्ञानम् (न) इव (जिग्युषे) जयशीलाय ॥ ३८ ॥

अन्वयः—हे चित्र वज्रहस्ताद्रिव इन्द्र धृष्णुया महः स्तवानः स त्वं जिग्युषे नः सत्रा वाजं न गां रथ्यमश्वं संकिर ॥ ३८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **चित्र** आश्चर्यस्वरूप ! **वज्रहस्त** ! **अद्रिवः** प्रशस्ताश्ममयवस्तुयुक्त ! **इन्द्र** ! **धृष्णुया** प्रगल्भतया **महः** महत् **स्तवानः** स्तुवन्, **सः** पूर्वोक्तः **त्वं जिग्युषे** जयशीलाय **नः** अस्मभ्यं **सत्रा** सत्यं **वाजं** विज्ञानं **न** इव, **गां** वृषभं **रथ्यं** रथस्य वोढारम् **अश्वं संकिर** प्रापय ॥ २७ । ३८ ॥

भाषार्थ—हे (चित्र) अद्‌भुत स्वरूप वाले, (वज्रहस्त) हाथ में वज्र रखने वाले, (अद्रिवः) प्रशस्त अश्ममय=पथरीली वस्तुओं से युक्त, (इन्द्र) विद्वान् ! (धृष्णुया) दृढ़ता से (महः) महान् (स्तवानः) स्तुति वाला (सः) पूर्वोक्त तू—(जिग्युषे) जयशील होने के लिए (नः) हमारे लिए (सत्रा) सत्य (वाजम्) विज्ञान के (न) समान; (गाम्) बैल और (रथ्यम्) रथ के वोढा अश्व को प्राप्त कर ॥ २७ । ३८ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः । यथा मेघसम्बन्धी सूर्यो वृष्टचा सर्वान् सम्बध्नाति, तथा विद्वान् सत्यविज्ञानेन सर्वैश्वर्यं प्रकाशयति ॥२७।३८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलंकार है । जैसे मेघ सम्बन्धी सूर्य वर्षा से सबसे सम्बन्ध रखता है; वैसे विद्वान् सत्य विज्ञान से सब ऐश्वर्य को प्रकाशित करता है ॥ २७ । ३८ ॥

भा० पदार्थः—अद्रिवः=मेघसम्बन्धी [सूर्यः]। इन्द्र=सूर्यः । गाम्+अश्वम्=सर्वैश्वर्यम् ॥

भाष्यसार—१. **विद्वान् क्या करता है**—अद्‌भुत स्वरूप वाला, हाथ में वज्र को धारण करने वाला, प्रशस्त अश्ममय (पथरीली) वस्तुओं वाला, विद्वान्—शुभ कर्मों में दृढ़ होकर महान् स्तुति को प्राप्त करता है; और जयशील होने के लिए मनुष्यों को सत्य विज्ञान को प्राप्त कराता है । बैल और रथ में जुड़ने वाले घोड़े को प्राप्त कराता है। सूर्य के तुल्य सत्य विज्ञान से सब ऐश्वर्य को प्रकाशित करता है ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' पद है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । उपमा यह है कि विद्वान् सत्य विज्ञान के तुल्य बैल और अश्व आदि को प्राप्त करावे; सूर्य के समान सत्य विज्ञान से सब ऐश्वर्य को प्रकाशित करे ॥ २७ । ३८ ॥ ●

वामदेवः । **अग्निः=विद्वान्** । गायत्री । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वान् क्या करता है, इसका फिर उपदेश किया है ॥

कया॑ नश्चि॒त्र ऽ आ भु॑वदू॒ती स॒दावृ॑धः॒ सखा॑ । कया॒ शचि॑ष्ठया वृ॒ता ॥ ३९ ॥

पदार्थः—(**कया**) (**नः**) अस्मान् (**चित्रः**) अद्भुतः (**आ, भुवत्**) भवेत् (**ऊती**) रक्षणादि-क्रियया । अत्र सुपामिति पूर्वसवर्णादेशः (**सदावृधः**) यः सदा वर्धते तस्य (**सखा**) (**कया**) (**शचिष्ठया**) अतिशयितया क्रियया (**वृता**) या वर्त्तते तया ॥ ३९ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! चित्रः सदावृधः सखाऽऽभुवत्कयोती नो रक्षेः कया शचिष्ठया वृताऽऽस्मान्नियोजयेः ॥ ३९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **विद्वन्** ! **चित्रः** अद्भुतः **सदावृधः** यः सदा वर्धते तस्य **सखा आ+भुवत्** भवेत्; **कया ऊती** रक्षणादिक्रियया **नः** अस्मान् **रक्षेः**, **कया शचिष्ठया** अतिशयितया क्रियया **वृता** या वर्त्तते तया **अस्मान्नियोजयेः** ॥ २७ । ३९ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् ! (चित्रः) अद्भुत गुण, कर्म, स्वभाव वाला तू—(सदावृधः), सदा बढ़ने वाले पुरुष का (सखा) मित्र (आ+भुवत्) बन । (कया) किसी (ऊती) रक्षा आदि क्रिया से (नः) हमारी रक्षा कर । (कया) किसी (शचिष्ठया) अत्यन्त श्रेष्ठ (वृता) वर्ताव रूप क्रिया से हमें नियुक्त कर ॥ २७ । ३९ ॥

भावार्थः—योऽद्भुतगुणकर्मस्वभावो विद्वान् सर्वस्य मित्रं भूत्वा, कुकर्माणि निवर्त्य, सुकर्मभिरस्मान् योजयेत्; सोऽस्माभिः सत्कर्त्तव्यः ॥ २७ । ३९ ॥

भावार्थ—जो अद्भुत गुण, कर्म, स्वभाव वाला विद्वान् सब का मित्र होकर, कुकर्मों से हटा कर हमें सुकर्मों से युक्त करता है; वह हमारे लिए सत्कार के योग्य है ॥ २७ । ३९ ॥

अन्यत्र व्याख्यात—(**क**) (कया) जो किस उपासना रीति (शचिष्ठया) और सत्य धर्म के आचरण से सभासद् सहित (वृता) सत्य विद्यादिगुणों में प्रवर्त्तमान (कया) सुख रूप वृत्ति सहित सभा से प्रकाशित (चित्रः) अद्भुत स्वरूप (सदावृधः) आनन्दस्वरूप और आनन्द बढ़ाने वाला परमेश्वर है; वह (नः) हमारे आत्माओं में (आभुवत्) प्रकाशित हो (ऊती) तथा किस प्रकार वह जगदीश्वर हमारा सदा सहायक होकर कृपा से नित्य रक्षा करे। (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, अधिकारानधिकारविषयः) ॥

(**ख**) देखो ग्रहों का चक्र कैसा चलाया है कि जिसने विद्याहीन मनुष्यों को ग्रस लिया है ···। शनि 'कया नश्चित्र आभुवै०···। ग्रहों के वाचक नहीं । अर्थ न जानने से भ्रम-जाल में पड़े हैं । (सत्यार्थ-प्रकाश समु० ११) ॥

भा० पदार्थः—चित्रः=अद्भुतगुणकर्मस्वभावः । सखा=सर्वस्य मित्रम् । शचिष्ठया=सुकर्मभिः ।

भाष्यसार—**विद्वान् क्या करता है**—अद्भुत गुण, कर्म, स्वभाव वाला विद्वान् सदा वृद्धि करने वाले सब मनुष्यों का मित्र हो । कुकर्मों से निवृत्त करके उनकी रक्षा करे तथा उन्हें शुभ कर्मों में लगावे । इस विद्वान् का सब सत्कार करें ॥ २७ । ३९ ॥ ●

वामदेवः । **इन्द्रः=विद्वान्** । निचृद्गायत्री । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वान् क्या करता है, इसका फिर उपदेश किया है ॥

कस्त्वा॑ स॒त्यो मदा॑ना॒ं मंहि॑ष्ठो मत्स॒दन्ध॑सः । दृ॒ढा चि॑दा॒रुजे॒ वसु॑ ॥ ४० ॥

पदार्थः—(**कः**) सुखप्रदः (**त्वा**) त्वाम् (**सत्यः**) सत्सु साधुः (**मदानाम्**) हर्षाणाम् (**मंहिष्ठः**) अतिशयेन महत्त्वयुक्तः (**मत्सत्**) आनन्दयेत् (**अन्धसः**) अन्नात् (**दृढा**) दृढानि (**चित्**) इव (**आरुजे**) समन्ताद्रोगाय (**वसु**) वसूनि=द्रव्याणि । अत्र सुपां सुलुगिति जसो लुक् ॥ ४० ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! यः कः सत्यो मंहिष्ठो विद्वांस्त्वान्धसो मदानां मध्ये मत्सदारुजे औषधानि चिदिव दृढा वसु संचिनुयात्सोऽस्माभिः पूजनीयः ॥ ४० ॥

सपदार्थान्वयः—हे **विद्वन्** ! **यः कः** सुखप्रदः, **सत्यः** सत्सु साधुः, **मंहिष्ठः** अतिशयेन महत्त्वयुक्तः **विद्वान्**, **त्वा** त्वाम् **अन्धसः** अन्नात् **मदानां** हर्षाणां **मध्ये मत्सद्** आनन्दयेद्; **आरुजे** समन्ताद्रोगाय **औषधानि चिद्=इव दृढा** दृढानि **वसु** वसूनि=द्रव्याणि **संचिनुयात्; सोऽस्माभिः पूजनीयः** ॥ २७ । ४० ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् ! जो (कः) सुखदायक, (सत्यः) सज्जनों में श्रेष्ठ, (मंहिष्ठः) अत्यन्त महत्त्व से नियुक्त विद्वान् ! (त्वा) तुझे (अन्धसः) अन्न=भोजन से (मदानाम्) हर्षों के मध्य में (मत्सद्) आनन्दित करता है; (आरुजे) रोग के लिए औषधों के (चित्) तुल्य—(दृढा) दृढ़ (वसु) द्रव्यों का संचय करता है—वह हमारा पूजनीय है ॥ २७ । ४० ॥

भावार्थः — अत्रोपमालङ्कारः । यः सत्यप्रियः आनन्दप्रदो विद्वान् परोपकाराय रोगनिवारणायौषधमिव वस्तूनि संचिनुयात्, स एव सत्कारमर्हेत् ॥ २७ । ४० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है । जो सत्य से प्रेम करने वाला, आनन्ददायक विद्वान् परोपकार के लिए—रोग-निवारण के लिए ओषध के तुल्य—वस्तुओं का संचय करता है, वही सत्कार के योग्य है ॥ २७ । ४० ॥

भा० पदार्थः—सत्यः=सत्यप्रियः । कः=आनन्दप्रदः । आरुजे=परोपकाराय रोगनिवारणाय । वसु=वस्तूनि ॥

भाष्यसार—१. विद्वान् क्या करता है—विद्वान् सुख प्रदान करने वाला, सज्जनों में श्रेष्ठ एवं सत्य से प्रेम करने वाला, और अत्यन्त महत्त्व वाला हो । वह अन्न=भोजन आदि से विविध हर्षों के मध्य में आनन्दित रहे । जैसे रोग-निवारण के लिए औषधों का संचय करे वैसे परोपकार के लिए दृढ़ वस्तुओं का संग्रह करे । इस विद्वान् की सब पूजा करें; सत्कार करें ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'चित्' पद है; अतः उपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि विद्वान् रोग-निवारक औषधियों के समान अन्य वस्तुओं का भी परोपकार के लिए संचय करे ॥ २७ । ४० ॥

वामदेवः । **इन्द्रः=विद्वान्** । पादनिचृद्गायत्री । षड्जः ॥

कीदृशा जना धनं लभन्त इत्याह ॥

कैसे जन धन को प्राप्त करते हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

अ॒भी षु ण॒ः सखी॑नामवि॒ता ज॑रितॄ॒णाम् । श॒तं भ॑वास्यू॒तये॑ ॥ ४१ ॥

पदार्थः—(**अभि**) सर्वतः । अत्र निपातस्य चेति दीर्घः । (**सु**) शोभने (**नः**) अस्माकम् (**सखीनाम्**) मित्राणाम् (**अविता**) रक्षकः (**जरितॄणाम्**) स्तोतॄणाम् (**शतम्**) (**भवासि**) भवेः (**ऊतये**) प्रीत्याद्याय ॥ ४१ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! यस्त्वं नः सखीनां जरितॄणां चावितोतये शतं सु भवासि सोऽभिपूज्यः स्याः ॥ ४१ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे विद्वन् ! यतस्त्वं नः** अस्माकं **सखीनाम्** मित्राणां **जरितॄणां** स्तोतॄणां **चाविता** रक्षकः **ऊतये** प्रीत्याद्याय **शतं सु** शोभनं **भवासि** भवेः **सोऽभि** सर्वतः **पूज्यः स्याः** ॥ २७।४१ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् ! क्योंकि तू (नः) हमारे (सखीनाम्) मित्रों और (जरितॄणाम्) स्तुति करने वालों का (अविता) रक्षक है; और (ऊतये) प्रीति आदि के लिए (शतम्) असंख्य (सु) उत्तम सुख प्रदान करता (भवासि) है; अतः (अभि) सब ओर से पूज्य है ॥ २७ । ४१ ॥

भावार्थः—ये मनुष्याः सुहृदां रक्षका, असंख्यसुखप्रदा, अनाथानां रक्षणे प्रवर्त्तन्ते, तेऽसंख्यं धनं लभन्ते ॥ २७ । ४१ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य मित्रों के रक्षक, असंख्य सुख प्रदान करने वाले एवं अनाथों की रक्षा में प्रवृत्त होते हैं; वे असंख्य धन प्राप्त करते हैं ॥ २७ । ४१ ॥

भा० पदार्थः—सखीनाम्=सुहृदाम् । जरितॄणाम्=अनाथानाम् । शतम्=असंख्यं धनम् ॥

भाष्यसार—कैसे मनुष्य धन को प्राप्त करते हैं—जो विद्वान् मित्रों के तथा स्तुति करने वाले अनाथों के रक्षक और मनुष्यों को प्रीति आदि के लिए असंख्य सुख प्रदान करने वाले होते हैं वे सबके पूज्य होकर असंख्य धन प्राप्त करते हैं ॥ २७ । ४१ ॥

शम्युः । **यज्ञः**=**यज्ञानुष्ठानम्** । बृहती । मध्यमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

कैसे जन धन को प्राप्त करते हैं, इसका फिर उपदेश किया है ॥

यज्ञायज्ञा वो ऽ अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।
प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंꣳसिषम् ॥ ४२ ॥

पदार्थः—(**यज्ञायज्ञा**) यज्ञे यज्ञे । अत्र सुपां सुलुगित्याकारादेशः । (**वः**) युष्मान् (**अग्नये**) पावकाय (**गिरागिरा**) वाण्यावाण्या (**च**) (**दक्षसे**) बलाय (**प्रप्र**) प्रकर्षेण (**वयम्**) (**अमृतम्**) नाशरहितम् (**जातवेदसम्**) जातविज्ञानम् (**प्रियम्**) प्रीतिविषयम् (**मित्रम्**) सखायम् (**न**) इव (**शंसिषम्**) प्रशंसेयम् ॥४२॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथाऽहमग्नये गिरागिरा दक्षसे च यज्ञायज्ञा वो युष्मान् प्रप्रशंसिषम् । वयं जातवेदसममृतं प्रियं मित्रं न वो युष्मान् प्रशंसेम तथा यूयमप्याचरत ॥ ४२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **यथाऽहमग्नये** पावकाय **गिरागिरा** वाण्यावाण्या **दक्षसे** बलाय **च यज्ञायज्ञा** यज्ञे यज्ञे **वः** युष्मान्

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (अग्नये) अग्नि के लिए (गिरागिरा) प्रत्येक वाणी से, और (दक्षसे) बल के लिए (यज्ञायज्ञा) प्रत्येक यज्ञ में

प्रप्र+शंसिषम् प्रकर्षेण प्रशंसेयम्; **वयं जातवेदसं** जातविज्ञानम् **अमृतं** नाशरहितं, **प्रियं** प्रीतिविषयं, **मित्रं** सखायं **न** इव **वः=युष्मान् प्रशंसेम; तथा यूयमप्याचरत** ॥ २७ । ४२ ॥

(वः) तुम्हारी (प्रप्र+शंसिषम्) अत्यन्त प्रशंसा करता हूँ; और हम (जातवेदसम्) विज्ञान से युक्त (अमृतम्) नाश रहित, (प्रियम्) प्रीति वाले (मित्रम्) मित्र के (न) समान (वः) तुम्हारी प्रशंसा करते हैं; वैसे तुम भी करो ॥ २७ । ४२ ॥

भावार्थः — अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ । ये मनुष्याः सुशिक्षितया वाण्या यज्ञानुष्ठाय, बलं वर्द्धयित्वा, मित्रवद् विदुषः सत्कृत्य, संगच्छन्ते; ते बहुज्ञा धन्याश्च जायन्ते ॥ २७ । ४२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । जो मनुष्य सुशिक्षित वाणी से यज्ञों का अनुष्ठान करके, बल को बढ़ा कर, मित्रों के तुल्य विद्वानों का सत्कार करके उनका संग करते हैं; वे बहुज्ञ और धन्य होते हैं ।।२७।४२।।

भा० पदार्थः—गिरागिरा=सुशिक्षितया वाण्या । दक्षसे=बलं वर्द्धयितुम् ।

भाष्यसार—१. **कैसे मनुष्य धन को प्राप्त करते हैं**—जो मनुष्य अग्नि-विद्या की प्राप्ति के लिए सुशिक्षित वाणी से तथा बलवृद्धि के लिए प्रत्येक यज्ञ में विद्वानों की प्रशंसा करते हैं; और विज्ञान से युक्त, स्वरूप से नाश-रहित, प्रिय मित्र के तुल्य विद्वानों का सत्कार करके उनका संग करते हैं वे बहुत ज्ञान वाले होकर धन को प्राप्त करने वाले (धन्य) होते हैं ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'न' पद है; अतः उपमा अलंकार है । उपमा-वाचक पद को लुप्त मानकर वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । उपमा यह है कि सब मनुष्य मित्र के समान विद्वानों का सत्कार करें। लुप्तोपमा यह है कि सब मनुष्य विद्वान् के समान मन्त्रोक्त आचरण करें ॥ २७ । ४२ ॥

भार्गवः । **अग्निः=आप्तजनः** । स्वराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

आप्ताः किं कुर्युरित्याह ॥

आप्त धर्मात्मा जन क्या करें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

पाहि नों ऽ अग्न ऽ एकया पाह्युत द्वितीयया ।

पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥ ४३ ॥

पदार्थः—(**पाहि**) रक्ष (**नः**) अस्मान् (**अग्ने**) पावकवद्विद्वन् (**एकया**) सुशिक्षया (**पाहि**) (**उत**) अपि (**द्वितीयया**) अध्यापनक्रियया (**पाहि**) (**गीर्भिः**) वाग्भिः (**तिसृभिः**) कर्मोपासनाज्ञानज्ञापिकाभिः (**ऊर्जाम्**) बलानाम् (**पते**) पालक (**पाहि**) (**चतसृभिः**) धर्मार्थकाममोक्षविज्ञापिकाभिः (**वसो**) सुवासप्रद ॥ ४३ ॥

अन्वयः—हे वसो अग्ने त्वमेकया नोऽस्मान् पाहि द्वितीयया पाहि तिसृभिर्गीर्भिः पाहि । हे ऊर्जांपते ! त्वं नोऽस्मान् चतसृभिरुत पाहि ॥ ४३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **वसो** सुवासप्रद ! **अग्ने** पावकवद्विद्वन् ! **त्वमेकया** सुशिक्षया **नः** अस्मान् **पाहि** रक्ष; **द्वितीयया** अध्यापनक्रियया

भाषार्थ—हे (वसो) उत्तम निवास देने वाले (अग्ने) अग्नि के तुल्य विद्वान् ! तू—(एकया) सुशिक्षा से (नः) हमारी (पाहि) रक्षा कर;

पाहि रक्ष; **तिसृभिः** कर्मोपासनाज्ञानज्ञापिकाभिः **गीर्भिः** वाग्भिः **पाहि** रक्ष।

(द्वितीयया) अध्यापन क्रिया से (पाहि) रक्षा कर; (तिसृभिः) कर्म, उपासना और ज्ञान की ज्ञापक (गीर्भिः) वाणियों से (पाहि) रक्षा कर।

हे **ऊर्जां** बलानां **पते** पालक ! **त्वं नः**=**अस्मान् चतसृभिः** धर्मार्थकाममोक्षविज्ञापिकाभिः **उत** अपि **पाहि** रक्ष ॥ २७। ४३॥

हे (ऊर्जाम्) बलों के (पते) पालक ! तू—(नः) हमारी (चतसृभिः) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की विज्ञापक वाणियों से (उत) भी (पाहि) रक्षा कर ॥ २७। ४३॥

भावार्थः—आप्ता नान्यदुपदेशादध्यापनाद्वा मनुष्यकल्याणकरं विजानन्ति, अतोऽहर्निशमज्ञाननुकम्प्य सदोपदिशन्त्यध्यापयन्ति च ॥ २७। ४३॥

भावार्थ—आप्त विद्वान् उपदेश और अध्यापन के अतिरिक्त मनुष्य के लिए कल्याणकारी नहीं समझते; अतः दिन-रात अज्ञ लोगों पर अनुकम्पा करके सदा उपदेश करते और पढ़ाते हैं ॥ २७। ४३॥

भाष्यसार—आप्त विद्वान् क्या करें—उत्तम निवास प्रदान करने वाले, अग्नि के तुल्य विद्यादि से प्रकाशित आप्त विद्वान्—सुशिक्षा से और अध्यापन से मनुष्यों की रक्षा करें; ज्ञान, कर्म और उपासना को बतलाने वाली वाणियों से मनुष्यों की रक्षा करें। बलों के पालक विद्वान्—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को बतलाने वाली वाणियों से भी मनुष्यों की रक्षा करें। उपदेश और अध्यापन से बढ़ कर मनुष्यों के लिए कल्याणकारी किसी को न समझें। दिन-रात अज्ञानियों पर अनुकम्पा करके उन्हें सदा उपदेश करें और पढ़ावें ॥ २७। ४३॥

शंयुः। **वायुः**=**आप्तजनः**। स्वराड्बृहती। मध्यमः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

आप्त जन क्या करें, इसका फिर उपदेश किया है॥

ऊर्जो नपातꣳ स हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये।
भुवद्वाजेष्वविता भुवद्वृध ऽ उत त्राता तनूनाम् ॥ ४४॥

पदार्थः—(**ऊर्जः**) पराक्रमस्य (**नपातम्**) अपातितारं विद्याबोधनम् (**सः**) (**हिन**) हिनु= वर्द्धय। अत्र हि गतौ वृद्धौ चेत्यस्माल्लोण्मध्यमैकवचने वर्णव्यत्ययेन उकारस्य अकारः। (**अयम्**) (**अस्मयुः**) योऽस्मान् कामयते (**दाशेम**) स्वीकुर्याम (**हव्यदातये**) दातव्यानां दानाय (**भुवत्**) भवेत् (**वाजेषु**) सङ्ग्रामेषु (**अविता**) रक्षिता (**भुवत्**) भवेत् (**वृधे**) वर्धनाय (**उत**) अपि (**त्राता**) (**तनूनाम्**) शरीराणाम् ॥ ४४॥

अन्वयः—हे विद्यार्थिन् ! स त्वमूर्जो नपातं हिन यतोऽयं भवानस्मयुर्वाजेष्वविता भुवदुतापि तनूनां वृधे त्राता भुवत्। ततस्त्वां हव्यदातये वयं दाशेम ॥ ४४॥

सपदार्थान्वयः—**हे विद्यार्थिन् ! स त्वमूर्जः** पराक्रमस्य **नपातम्** अपातितारं विद्याबोधनं **हिन** हिनु=वर्द्धय, **यतोऽयं भवानस्मयुः**

भाषार्थ—हे विद्यार्थी ! तू—(ऊर्जः) पराक्रम को (नपातम्) पतित न करने वाले विद्या-बोध को (हिन) बढ़ा; जिससे यह (अस्मयुः)

योऽस्मान् कामयते **वाजेषु** सङ्ग्रामेषु **अविता** रक्षिता **भुवद्** भवेत् ।

उत=**अपि तनूनां** शरीराणां **वृधे** वर्धनाय **त्राता भुवत्** भवेत् । **ततस्त्वां हव्यदातये** दातव्यानां दानाय **वयं दाशेम** स्वीकुर्याम ।। २७ । ४४ ।।

हमारी कामना वाला होकर (वाजेषु) संग्रामों में (अविता) रक्षक (भुवत्) हो ।

(उत) और (तनूनाम्) शरीरों के (वृधे) वृद्धि के लिए (त्राता) रक्षक (भुवत्) हो, अतः तुझे (हव्यदातये) देने योग्य पदार्थों के दान के लिए हम (दाशेम) स्वीकार करते हैं ।। २७ । ४४ ।।

भावार्थः—यः पराक्रमं वीर्यं च न हन्यात्, शरीरात्मनोर्वर्द्धकः सन् रक्षकः स्यात्, आप्तास्तस्मै विद्यां दद्युः ।

योऽस्माद् विपरीतोऽजितेन्द्रियो दुष्टाचारी निन्दको भवेत् स विद्याग्रहणेऽधिकारी न भवतीति वेद्यम् ।। २७ । ४४ ।।

भावार्थ—जो विद्यार्थी पराक्रम और वीर्य का नाश न करे, शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाने वाला होकर रक्षक बने; आप्त विद्वान् उसे विद्या प्रदान करें ।

जो इससे विपरीत, अजितेन्द्रिय, दुष्टाचारी, निन्दक हो; वह विद्या के ग्रहण में अधिकारी नहीं होता; ऐसे समझें ।। २७ । ४४ ।।

भा० पदार्थः—ऊर्जः=पराक्रमस्य वीर्यस्य च । तनूनाम्=शरीरात्मनोः । हव्यदातये=विद्यादानाय ।।

भाष्यसार—**आप्त विद्वान् क्या करें**—जो विद्यार्थी पराक्रम और वीर्य को पतित न करने वाला हो, शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाने वाला हो, आप्त विद्वान् लोग—उसे विद्या प्रदान करें जिससे यह हमारी कामना करने वाला होकर संग्रामों में हमारा रक्षक बने । जो विद्यार्थी इससे विपरीत अजितेन्द्रिय, दुष्टाचारी और निन्दक हो उसे विद्या-ग्रहण में अनधिकारी समझें । विद्यार्थी लोग उत्तम शिक्षा से शरीर की वृद्धि एवं रक्षा करने वाले उक्त विद्वानों को उत्तम पदार्थों के दान के लिए उन्हें स्वीकार करें ।। २७ । ४४ ।। ●

शम्युः । **अग्निः**=**आप्तो जनः** । निचृदभिकृतिः । ऋषभः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

आप्तजन क्या करें, यह फिर उपदेश किया है ।।

संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसीदावत्सरोऽसीद्वत्सरोऽसि वत्सरोऽसि । उषसस्ते कल्पन्तामहोरात्रास्ते कल्पन्तामर्द्धमासास्ते कल्पन्तां मासास्ते कल्पन्तामृतवस्ते कल्पन्ताᳬं संवत्सरस्ते कल्पताम् । प्रेत्या ऽ एत्यै सं चाञ्च प्र च सारय । सुपर्णचिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवः सीद ।। ४५ ।।

पदार्थः—(**संवत्सरः**) संवत्सर इव नियमेन वर्त्तमानः (**असि**) (**परिवत्सरः**) वर्जितव्यो वत्सर इव दुष्टाचारत्यागी (**असि**) (**इदावत्सरः**) निश्चयेन समन्ताद्वर्त्तमानः संवत्सर इव (**असि**) (**इद्वत्सरः**) निश्चितसंवत्सर इव (**असि**) (**वत्सरः**) वर्ष इव (**असि**) (**उषसः**) प्रभाताः (**ते**) तुभ्यम् (**कल्पन्ताम्**) समर्था भवन्तु (**अहोरात्राः**) रात्रिदिनानि (**ते**) (**कल्पन्ताम्**) (**अर्द्धमासाः**) सितासिताः पक्षाः (**ते**) (**कल्पन्ताम्**) (**मासाः**) चैत्रादयः (**ते**) (**कल्पन्ताम्**) (**ऋतवः**) वसन्ताद्याः (**ते**) (**कल्पन्ताम्**) (**संवत्सरः**) (**ते**)

(**कल्पताम्**) (**प्रेत्यै**) प्रकृष्टेन प्राप्त्यै (**एत्यै**) समन्ताद्गत्यै (**सम्**) सम्यक् (**च**) (**अञ्च**) प्राप्नुहि (**प्र**) (**च**) (**सारय**) (**सुपर्णचित्**) यः शोभनानि पर्णानि पालनानि चिनोति सः (**असि**) (**तया**) (**देवतया**) दिव्यगुणयुक्तया समयरूपया (**अङ्गिरस्वत्**) सूत्रात्मप्राणवत् (**ध्रुवः**) दृढः (**सीद**) स्थिरो भव ॥ ४५ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् जिज्ञासो ! वा यतस्त्वं संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसीदावत्सरोऽसीद्वत्सरोऽसि वत्सरोऽसि तस्मात्ते कल्याणकर्य्य उषसः कल्पन्तां ते मङ्गलप्रदा अहोरात्राः कल्पन्तां तेऽर्द्धमासाः कल्पन्तां ते मासाः कल्पन्तां न ऋतवः कल्पन्तां ते संवत्सरः कल्पतां त्वं च प्रेत्यै समञ्च त्वमेत्यै स्वप्रभावं प्रसारय च यतस्त्वं सुपर्णचिदसि तस्मात्तया देवतया सहाङ्गिरस्वद् ध्रुवः सीद ॥ ४५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! जिज्ञासो वा ! यतस्त्वं संवत्सरः संवत्सर इव नियमेन वर्त्तमानः **असि; परिवत्सरः** वर्जितव्यो वत्सर इव दुष्टाचारत्यागी **असि, इदावत्सरः** निश्चयेन समन्ताद्वर्त्तमानः संवत्सर इव **असि, इद्वत्सरः** निश्चित-संवत्सर इव **असि, वत्सरः** वर्ष इव **असि, तस्मात्ते** तुभ्यं **कल्याणकर्य्य उषसः** प्रभाताः **कल्पन्तां** समर्था भवन्तु, **ते** तुभ्यं **मङ्गलप्रदा अहोरात्राः** रात्रिदिनानि **कल्पन्तां** समर्था भवन्तु, **ते** तुभ्यम् **अर्द्धमासाः** सितासिताः पक्षाः **कल्पन्तां** समर्था भवन्तु, **ते** तुभ्यं **मासाः** चैत्रादयः **कल्पन्तां** समर्था भवन्तु, **ते** तुभ्यं **ऋतवः** वसन्ताद्याः **कल्पन्तां** समर्था भवन्तु, **ते** तुभ्यं **संवत्सरः** वर्षः **कल्पतां** समर्थो भवतु, **त्वं च प्रेत्यै** प्रकृष्टेन प्राप्त्यै **समञ्च** सम्यक् प्राप्नुहि, **त्वमेत्यै** समन्ताद् गत्यै **स्वप्रभावं प्रसारय च, यतस्त्वं सुपर्णचित्** यः शोभनानि पर्णानि पालनानि चिनोति सः **असि, तस्मात्तया देवतया** दिव्यगुणयुक्तया समयरूपया **सह अङ्गिरस्वत्** सूत्रात्मप्राणवत् **ध्रुवः** दृढः **सीद** स्थिरो भव ॥ २७ । ४५ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् ! वा जिज्ञासु ! क्योंकि तू—(संवत्सरः) वर्ष के समान नियम से वर्त्ताव करने वाला (असि) है; (परिवत्सरः) त्याज्य वर्ष के समान दुष्ट आचरण का त्याग करने वाला (असि) है; (इदावत्सरः) निश्चय से सब ओर वर्तमान वर्ष के समान (असि) है; (इद्वत्सरः) निश्चित वर्ष के समान (असि) है; (वत्सरः) वर्ष के समान (असि) है, अतः (ते) तेरे लिए कल्याणकारी (उषसः) प्रभात वेलाएँ (कल्पन्ताम्) समर्थ उत्तम हों, (ते) तेरे लिए मङ्गलकारी (अहोरात्राः) दिन-रात (कल्पन्ताम्) समर्थ हों; (ते) तेरे लिए (अर्द्धमासाः) शुक्ल और कृष्ण पक्ष (कल्पन्ताम्) समर्थ हों, (ते) तेरे लिए (मासाः) चैत्र आदि मास (कल्पन्ताम्) समर्थ हों; (ते) तेरे लिए (ऋतवः) वसन्त आदि ऋतुएँ (कल्पन्ताम्) समर्थ हों; (ते) तेरे लिए (संवत्सरः) वर्ष (कल्पताम्) समर्थ हो; और तू (प्रेत्यै) उत्कृष्ट प्राप्ति के लिए (समञ्च) प्रयत्न कर, और तू (एत्यै) सब ओर गति के लिए अपने प्रभाव का प्रसार कर। क्योंकि तू—(सुपर्णचित्) उत्तम पालनों का चयन करने वाला (असि) है; अतः (तया) उस (देवतया) दिव्य गुणों से युक्त समय रूप देवता के साथ (अङ्गिरस्वत्) सूक्ष्म प्राण के तुल्य (ध्रुवः) दृढ़ एवं (सीद) स्थिर हो ॥ २७ । ४५ ॥

भावार्थः—य आप्ता मनुष्या व्यर्थं कालं न क्षयन्ति, सुनियमैर्वर्तमानाः कर्त्तव्यानि कुर्वन्ति, त्यक्तव्यानि त्यजन्ति तेषां—सुप्रभातः, शोभना अहोरात्रा, अर्द्धमासा, मासा, ऋतवश्च गच्छन्ति । तस्मात्—प्रकर्षगतये प्रयत्य सुमार्गेण गत्वा शुभान्

भावार्थ—जो आप्त मनुष्य वृथा काल नष्ट नहीं करते, उत्तम नियमों से वर्त्ताव करते हुए कर्त्तव्य कर्म करते हैं एवं त्याज्य कर्म का त्याग करते हैं; उनकी उत्तम प्रभात वेलाएँ उत्तम दिन-रात, अर्द्धमास (शुक्ल पक्ष एवं कृष्ण पक्ष), मास

गुणान् सुखानि च प्रसारयेयुः। सुलक्षणया वाचा, पत्न्या च सहिता धर्मग्रहणेऽधर्मत्यागे च दृढोत्साहाः सदा भवेयुरिति ॥ २७ । ४५ ॥

और ऋतुएँ व्यतीत होती हैं; अतः उत्कृष्ट गति के लिए प्रयत्न करके, सुमार्ग से चलकर; शुभगुणों और सुखों का प्रसार करें। उत्तम लक्षण वाली वाणी और पत्नी के साथ धर्म के ग्रहण करने और अधर्म के छोड़ने में दृढ़ उत्साही सदा हों ।।२७।४५।।

भा० पदार्थः—उषसः=सुप्रभातः। प्रेत्यै=प्रकर्षगतये प्रयत्या। एत्यै=सुमार्गे गत्वा। देवतया=सुलक्षणया वाचा, पत्न्या च सह। ध्रुवः=धर्मग्रहणेऽधर्मत्यागे च दृढोत्साहः। सीद=सदा भव ॥

भाष्यसार—**आप्त विद्वान् क्या करें**—जो आप्त विद्वान् वा जिज्ञासु लोग—संवत्सर के समान नियम से वर्त्ताव करने वाले, दुष्ट आचार का परित्याग करने वाले होकर समय को व्यर्थ नहीं गंवाते हैं, नियमानुसार कर्त्तव्य कर्म करते हैं और त्याज्य कर्मों का त्याग करते हैं; उनके प्रभात, मंगलकारी दिन-रात, अर्द्धमास= शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष, चैत्र आदि मास, वसन्त आदि ऋतु और वर्ष सुखपूर्वक व्यतीत होते हैं।

अतः आप्त विद्वान्—उत्तम गति के लिए प्रयत्न करें, सुमार्ग से चलें, शुभगुणों और सुखों का प्रसार करें। दिव्य गुण से युक्त समय रूप देवता, सुलक्षणा वाणी और पत्नी के साथ उत्तम रीति से पालन करने वाले धर्म के ग्रहण में और अधर्म के परित्याग में सूक्ष्म प्राण के समान दृढ़ोत्साही सदा हों ॥ २७ । ४५ ॥

[पूर्वापराध्यायार्थसंगतिमाह—]

अस्मिन्नध्याये सत्यप्रशंसाविज्ञापनं, सद्गुणस्वीकारो, राज्यवर्धनमनिष्टनिवारणं, जीवनवृद्धिर्मित्रविश्वासः, सर्वत्र कीर्तिकरणमैश्वर्यवर्द्धनमल्पमृत्युनिवारणं, शुद्धिकरणं, सुकृतानुष्ठानं, यज्ञकरणं, बहुधनधारणं, स्वामित्वप्रतिपादनं, सुवाग्ग्रहणं, सद्गुणेच्छाऽग्निप्रशंसा, विद्याधनवर्धनं, कारणवर्णनं, धनोपयोगः, परस्परेषां रक्षणं, वायुगुणवर्णनमाधाराऽऽत्रेयकथनमीश्वरगुणवर्णनं, शूरवीरकृत्यकथनं, प्रसन्नतासम्पादनं, मित्ररक्षणं, विद्वदाश्रयः, स्वात्मपालनं, वीर्यरक्षणं, युक्ताहारविहारश्चोक्तमत एतदध्यायोक्तार्थस्य पूर्वाध्यायोक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति वेद्यम् ॥ २७ । ४५ ॥

इस अध्याय में—सत्य की प्रशंसा का जनाना (१), सद्गुणों को स्वीकार करना (३), राज्य को बढ़ाना (४), अनिष्ट का निवारण (६), जीवन की वृद्धि (६), मित्र का विश्वास (५), सर्वत्र कीर्ति करना (६), ऐश्वर्य को बढ़ाना (८), अल्पमृत्यु का निवारण (६), शुद्धि करना (११), सुकृत का अनुष्ठान (१३), यज्ञ करना (१४), बहुत धन को धारण करना (१५), स्वामित्व का प्रतिपादन (१६), उत्तम वाणी का ग्रहण (१६), सद् गुणों की इच्छा (२०), अग्नि की प्रशंसा (२१), विद्या और धन को बढ़ाना (२४), कारण का वर्णन (२५), धन का उपयोग (२७), परस्पर की रक्षा (२८), वायु के गुणों का वर्णन (२६-३५), आधार और आधेय का वर्णन (२४), ईश्वर के गुणों का

वर्णन (३६), शूरवीर के कृत्य का कथन (३७), प्रसन्नता को प्राप्त करना (४०), मित्रों की रक्षा (४१), विद्वानों का आश्रय (४२), अपने आत्मा का पालन (४३), वीर्यरक्षा (४४) और युक्त आहार-विहार (४५) का उपदेश है, अतः इस अध्याय में प्रतिपादित अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति है; ऐसा समझें ॥ २७ ॥

इति श्रीयुतपण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते दयानन्दयजुर्वेदभाष्य-भास्करे सप्तविंशोऽध्यायः सम्पूर्णः ॥

॥ ओ३म् ॥

※ अथाष्टाविंशोऽध्याय आरभ्यते ※

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रं तन्नऽआसुव॥ १॥

य० ३०। ३॥

बृहदुक्थो वामदेवः। इन्द्रः=अग्निः। निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

अथ मनुष्यैर्यज्ञेन कथं बलं वर्द्धनीयमित्याह॥

अब अट्ठाईसवें अध्याय का आरम्भ है। इसके पहले मन्त्र में मनुष्यों को यज्ञ से कैसे बल बढ़ाना चाहिए, यह उपदेश किया है॥

होता यक्षत्समिधेन्द्रमिडस्पदे नाभा पृथिव्या ऽ अधि।
दिवो वर्ष्मन्त्समिध्यत ऽ ओजिष्ठश्चर्षणीसहां वेत्वाज्यस्य होतर्यज॥ १॥

पदार्थः—(**होता**) आदाता (**यक्षत्**) यजेत् (**समिधा**) ज्ञानप्रकाशेन (**इन्द्रम्**) विद्युदाख्यमग्निम् (**इडः**) वाण्याः। **अत्र जसादिषु छन्दसि वा वचनमिति याडभावः।** (**पदे**) प्राप्तव्ये (**नाभा**) नाभौ मध्ये (**पृथिव्याः**) भूमेः (**अधि**) उपरि (**दिवः**) प्रकाशस्य (**वर्ष्मन्**) वर्षके मेघमण्डले (**सम्**) (**इध्यते**) प्रदीप्यते (**ओजिष्ठः**) अतिशयेन बली (**चर्षणीसहाम्**) ये चर्षणीन्=मनुष्यसमूहान् सहन्ते तेषाम् (**वेतु**) प्राप्नोतु (**आज्यस्य**) घृतादिकम्। **अत्र कर्मणि षष्ठी** (**होतः**) यजमान (**यज**) संगच्छस्व॥ १॥

प्रमाणार्थ—(**इडः**) यहाँ 'जसादिषु छन्दसि वा वचनम्' इस वार्त्तिक से 'याट्' आगम का अभाव है। (**आज्यस्य**) यहाँ कर्म में षष्ठी विभक्ति है॥

अन्वयः—हे होतस्त्वं यथा होता समिधेडस्पदे पृथिव्या नाभा दिवोऽधि वर्ष्मन्निन्द्रं यक्षत्तेनौजिष्ठः सन् चर्षणीसहां मध्ये समिध्यत आज्यस्य वेतु यथा यज॥ १॥

सपदार्थान्वयः—हे होतः! यजमान! त्वं, **यथा होता** आदाता **समिधा** ज्ञानप्रकाशेन **इडः** वाण्याः **पदे** प्राप्तव्ये **पृथिव्याः** भूमेः **नाभा** नाभौ मध्ये **दिवः** प्रकाशस्य **अधि** उपरि **वर्ष्मन्** वर्षके

भाषार्थ—हे (होतः) यजमान! तू—जैसे (होता) विद्यादि शुभ गुणों को ग्रहण करने वाला विद्वान् (समिधा) ज्ञान के प्रकाश से, (इडः) वाणी से (पदे) प्राप्त करने योग्य, (पृथिव्याः) भूमि के

मेघमण्डले **इन्द्रं** विद्युदाख्यमग्निं **यक्षत्** यजेत्, **तेनौजिष्ठः** अतिशयेन बली **सन् चर्षणीसहां** ये चर्षणीन्=मनुष्यसमूहान् सहन्ते तेषां **मध्ये समिध्यते** प्रदीप्यते; **आज्यस्य** घृतादिकं **वेतु** प्राप्नोतु, **तथा यज** सङ्गच्छस्व ॥ २८ । १ ॥

(नाभौ) मध्य में वर्तमान, तथा (दिवः) प्रकाश के (अधि) ऊपर एवं (वर्ष्मन्) वर्षा करने वाले मेघ-मण्डल में स्थित (इन्द्रम्) विद्युत् नामक अग्नि में (यक्षत्) यज्ञ करता है; और उससे (ओजिष्ठः) अत्यन्त बलवान् होकर (चर्षणीसहाम्) मनुष्यों के समूह को सहन करने वाले पुरुषों के मध्य में (समिध्यते) प्रकाशित होता है; (आज्यस्य) घृत आदि को (वेतु) प्राप्त करता है; वैसे (यज) यज्ञ कर; विद्वानों का संग कर ॥ २८ । १ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । मनुष्यैर्वेदमन्त्रैः सुगन्ध्यादिद्रव्यमग्नौ प्रक्षिप्य, मेघमण्डलं प्रापय्य, जलं शोधयित्वा, सर्वार्थं बलं वर्द्धनीयम् ॥ २८ । १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । मनुष्य वेद-मन्त्रों से सुगन्धि आदि द्रव्य का अग्नि में होम करके, उसे मेघ-मण्डल में पहुँचा कर, जल को शुद्ध करके, सबके लिए बल को बढ़ावें ॥ २८ । १ ॥

भाष्यसार—१. **मनुष्य यज्ञ से कैसे बल बढ़ावें**—विद्या आदि शुभ गुणों को ग्रहण करने वाला विद्वान् ज्ञान के प्रकाश से वाणी से प्राप्त करने योग्य, भूमि के मध्य में वर्तमान, प्रकाश के ऊपर एवं वर्षा करने वाले मेघ-मण्डल में स्थित विद्युत् नामक अग्नि में यज्ञ करे अर्थात् वेद-मन्त्रों के द्वारा सुगन्धि आदि द्रव्यों को अग्नि में होम करके मेघ-मण्डल में पहुँचावें; जल को शुद्ध करे; उससे स्वयं बलवान् बने तथा सबके लिए बल को बढ़ावे ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । उपमा यह है कि विद्या आदि शुभ गुणों को ग्रहण करने वाले विद्वान् के समान यजमान मन्त्रोक्त यज्ञ का अनुष्ठान करे ॥ २८ । १ ॥

बृहदुक्थो वामदेवः । **इन्द्रः=राजा** । निचृज्जगती । निषादः ॥

राजपुरुषाः कीदृशाः स्युरित्याह ॥

राजपुरुष कैसे हों, यह उपदेश किया है ॥

होता यक्षत्तनूनपातमूतिभिर्जेतारमपराजितम् ।
इन्द्रं देवꣳ स्वर्विदं पथिभिर्मधुमत्तमैर्नराशꣳसेन तेजसा वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २ ॥

पदार्थः—(होता) सुखस्य प्रदाता (**यक्षत्**) संगच्छेत (**तनूनपातम्**) यः शरीराणि पाति तम् (ऊतिभिः) रक्षादिभिः (**जेतारम्**) जयशीलम् (**अपराजितम्**) अन्यैः पराजेतुमशक्यम् (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्यकारकं राजानम् (**देवम्**) विद्याविनयाभ्यां सुशोभितम् (**स्वर्विदम्**) प्राप्तसुखम् (**पथिभिः**) धर्म्यैर्मार्गैः (**मधुमत्तमैः**) अतिशयेन मधुरजलादियुक्तैः (**नराशंसेन**) नरैराशंसितेन (**तेजसा**) प्रागल्भ्येन (**वेतु**) प्राप्नोतु (**आज्यस्य**) विज्ञेयम् । **अत्र कर्मणि षष्ठी** । (**होतः**) (**यज**) ॥ २ ॥

प्रमाणार्थ—(**आज्यस्य**) यहाँ कर्म में षष्ठी विभक्ति है ॥

अन्वयः—हे होतर्भवान् यथा होतोतिभिर्मधुमत्तमैः पथिभिस्तनूनपातं जेतारमपराजितं स्वर्विदं देवमिन्द्रं यक्षत् नराशंसेन तेजसाऽऽज्यस्य वेतु तथा यज ॥ २ ॥

सपदार्थान्वयः—हे होतः ! भवान् **यथा होता** सुखस्य प्रदाता **ऊतिभिः** रक्षादिभिः **मधुमत्तमैः** अतिशयेन मधुरजलादियुक्तैः **पथिभिः** धर्म्यैर्मार्गैः, **तनूनपातं** यः शरीराणि पाति तं **जेतारं** जयशीलम्, **अपराजितम्** अन्यैः पराजेतुमशक्यं, **स्वर्विदं** प्राप्तसुखं, **देवं** विद्याविनयाभ्यां सुशोभितम्, **इन्द्रं** परमैश्वर्यकारकं राजानं **यक्षत्** सङ्गच्छेत्, **नराशंसेन** नरैराशंसितेन **तेजसा** प्रागल्भ्येन **आज्यस्य** विज्ञेयं **वेतु** प्राप्नोतु; **तथा यज** ॥ २८ । २ ॥

भाषार्थ—हे (होतः) यजमान ! तू—जैसे (होता) सुख का दाता विद्वान्—(ऊतिभिः) रक्षा आदि एवं (मधुमत्तमैः) अत्यन्त मधुर जल आदि एवं (पथिभिः) धर्मयुक्त मार्गों से (तनूनपातम्) शरीरों की रक्षा करने वाले, (जेतारम्) जयशील, (अपराजितम्) अन्यों से पराजित न होने वाले, (स्वर्विदम्) सुख को प्राप्त, (देवम्) विद्या और विनय से सुशोभित, (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाले राजा का (यक्षत्) संग करता है; (नराशंसेन) नरों से प्रशंसित (तेजसा) तेज से (आज्यस्य) विज्ञान को (वेतु) प्राप्त करता है—वैसे (यज) संग कर ॥ २८ । २ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यदि राजानः स्वयं न्यायमार्गेषु गच्छन्तः प्रजानां रक्षां विदध्युः, तेऽपराजितारः सन्तः शत्रूणां विजेतारः स्युः ॥ २८ । २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है । यदि राजा स्वयं न्याय-मार्गों पर चलते हुए प्रजा की रक्षा करें तो वे अपराजित होकर शत्रुओं को जीतने वाले होते हैं ॥ २८ । २ ॥

भाष्यसार—१. **राजपुरुष कैसे हों**—सुख प्रदान करने वाला विद्वान्—रक्षादि एवं धर्मयुक्त मार्गों से शरीर को पतित न करने वाले, जयशील, शत्रुओं से पराजित न होने वाले, सुख को प्राप्त करने वाले, विद्या और विनय से सुशोभित, परम ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाले राजा का संग करे । नरों से प्रशंसित तेज से विज्ञान को प्राप्त करे । यदि राजा लोग स्वयं न्याय-मार्गों पर चलते हुए प्रजा की रक्षा करें तो वे सदा अपराजित होकर शत्रुओं के विजेता हों ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि विद्वान् के समान यजमान मन्त्रोक्त यज्ञ का अनुष्ठान करे ॥ २८ । २ ॥

बृहदुक्थो वामदेवः । **इन्द्रः=राजा** । स्वराट्पङ्क्तिः । पञ्चमः ।

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजपुरुष कैसे हों, यह फिर उपदेश किया है ।

होता॑ यक्ष॒दिडा॑भि॒रिन्द्र॒मीडि॒तमा॒जुह्वा॑न॒मम॑र्त्यम् ।
दे॒वो दे॒वैः सवी॑र्यो॒ वज्र॑हस्तः पुरन्द॒रो वे॒त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥ ३ ॥

पदार्थः—(**होता**) (**यक्षत्**) (**इडाभिः**) सुशिक्षिताभिर्वाग्भिः (**इन्द्रम्**) परमविद्यैश्वर्यसम्पन्नम् (**ईडितम्**) प्रशस्तम् (**आजुह्वानम्**) स्पर्द्धमानम् (**अमर्त्यम्**) साधारणैर्मनुष्यैरसदृशम् (**देवः**) विद्वान् (**देवैः**) विद्वद्भिः सह (**सवीर्यः**) बलोपेतः (**वज्रहस्तः**) वज्राणि=शस्त्रास्त्राणि हस्ते यस्य सः

(**पुरन्दरः**) योऽरिपुराणि दृणाति सः (**वेतु**) प्राप्नोतु (**आज्यस्य**) विज्ञानेन रक्षितुं योग्यस्य राज्यस्य (**होतः**) (**यज**) ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे होतस्त्वं यथा होतेडाभिरमर्त्यमाजुह्वानमीडितमिन्द्रं यक्षद्यथाऽयं वज्रहस्तः पुरन्दरः सवीर्यो देवो देवैः सहाज्यस्यावयवान् वेतु तथा यज ॥ ३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे होतः ! त्वं यथा **होतेडाभिः** सुशिक्षिताभिर्वाग्भिः **अमर्त्यं** साधारणैर्मनुष्यैरसदृशम् **आजुह्वानं** स्पर्द्धमानम् **ईडितं** प्रशस्तम् **इन्द्रं** परमविद्यैश्वर्यसम्पन्नं **यक्षत्, यथाऽयं वज्रहस्तः** वज्राणि=शस्त्रास्त्राणि हस्ते यस्य सः **पुरन्दरः** योऽरिपुराणि दृणाति सः **सवीर्यः** बलोपेतः **देवः** विद्वान्, **देवैः** विद्वद्भिः **सह आज्यस्य** विज्ञानेन रक्षितुं योग्यस्य राज्यस्य **अवयवान् वेतु** प्राप्नोतु; **तथा यज** ॥ २८ । ३ ॥

भाषार्थ—हे (होतः) यजमान ! तू—जैसे (होता) सुख का दाता राजपुरुष (इडाभिः) सुशिक्षित वाणियों से (अमर्त्यम्) साधारण मनुष्यों के असदृश, (आजुह्वानम्) स्पर्द्धा करने वाले, (ईडितम्) प्रशंसित (इन्द्रम्) परम विद्यारूप ऐश्वर्य से सम्पन्न राजा का (यक्षत्) संग करता है; और जैसे यह—(वज्रहस्तः) वज्र=शस्त्र-अस्त्रों को हाथ में रखने वाला, (पुरन्दरः) अरि-पुरों का विदारण करने वाला, (सवीर्यः) बलवान्, (देवः) विद्वान् राजा (देवैः) विद्वानों के साथ (आज्यस्य) विज्ञान से रक्षा करने योग्य राज्य के अवयवों को (वेतु) प्राप्त करता है;—वैसे (यज) यज कर ॥ २८ । ३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यथा राजराजपुरुषाः पितृवत् प्रजाः पालयेयुस्तथैव प्रजा एतान् पितृवत् सेवेरन् । य आप्तविद्वदनुमत्या सर्वाणि कार्याणि कुर्युस्ते भ्रमं नाप्नुयुः ॥ २८ । ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । जैसे राजा और राजपुरुष पिता के समान प्रजा का पालन करते हैं; वैसे ही प्रजा इनकी पिता के समान सेवा करे । जो आप्त विद्वानों की अनुमति से सब कार्य करते हैं; वे भ्रम को प्राप्त नहीं होते ॥ २८ । ३ ॥

भाष्यसार—१. **राजपुरुष कैसे हों**—सुख प्रदान करने वाला राजपुरुष सुशिक्षित वाणियों से—साधारण मनुष्यों के असदृश, स्पर्द्धा करने वाले, प्रशस्त, परम विद्या रूप ऐश्वर्य से सम्पन्न राजा का संग करे । और यह राजा वज्र=शस्त्रास्त्रों को हाथों में धारण करने वाला, अरि-पुरों का विदारण करने वाला, बलवान् और विद्वान् हो । राजा और राजपुरुष पिता के समान प्रजा का पालन करें, प्रजा भी इनकी पिता के समान सेवा करे । ये राजा और राजपुरुष आप्त विद्वानों की अनुमति से विज्ञान से रक्षा करने योग्य राज्य के सब कार्य किया करें जिससे भ्रम को प्राप्त न हों ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । उपमा यह है कि राजा और राजपुरुष के समान यजमान मन्त्रोक्त यज्ञ का अनुष्ठान करें ॥ २८ । ३ ॥ ●

बृहदुक्थो वामदेवः । **रुद्रः=राजा** । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजपुरुष कैसे हों, इसका फिर उपदेश किया है ॥

होता यक्षद् बर्हिषीन्द्रं निषद्वरं वृषभं नर्यापसम् ।
वसुभी रुद्रैरादित्यैः सयुग्भिर्बर्हिरासदद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ४ ॥

पदार्थः—(**होता**) (**यक्षत्**) (**बर्हिषि**) उत्तमायां विद्वत्सभायाम् (**इन्द्रम्**) नीत्या सुशोभमानम् (**निषद्वरम्**) निषीदन्ति वराः=श्रेष्ठा मनुष्या यस्य समीपे तम् (**वृषभम्**) सर्वोत्कृष्टं बलिष्ठम् (**नर्यापसम्**) नृषु साधून्यपांसि=कर्माणि यस्य तम् (**वसुभिः**) प्रथमकल्पैः (**रुद्रैः**) मध्यकक्षास्थैः (**आदित्यैः**) उत्तमकल्पैश्च विद्वद्भिः (**सयुग्भिः**) ये युञ्जन्ते तैः (**बर्हिः**) उत्तमां सभाम् (**आसदत्**) आसीदति (**वेतु**) प्राप्नोतु (**आज्यस्य**) कर्त्तव्यस्य न्यायस्य (**होतः**) (**यज**) ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे होतर्होता यथा सयुग्भिर्वसुभी रुद्रैरादित्यैः सह बर्हिषि निषद्वरं वृषभं नर्यापसमिन्द्रं यक्षदाज्यस्य बर्हिरासदत्सुखं वेतु तथा यज ॥ ४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे होतः ! **होता यथा सयुग्भिः** ये युञ्जन्ते तैः **वसुभिः** प्रथमकल्पैः **रुद्रैः** मध्यकक्षास्थैः **आदित्यैः** उत्तमकल्पैश्च विद्वद्भिः **सह, बर्हिषि** उत्तमायां विद्वत्सभायां **निषद्वरं** निषीदन्ति वराः=श्रेष्ठा मनुष्या यस्य समीपे तं, **वृषभं** सर्वोत्कृष्टं बलिष्ठं, **नर्यापसं** नृषु साधून्यपांसि=कर्माणि यस्य तम्, **इन्द्रं** नीत्या सुशोभमानं **यक्षत्; आज्यस्य** कर्त्तव्यस्य न्यायस्य **बर्हिः** उत्तमां सभाम् **आसदत्** आसीदति, सुखं **वेतु** प्राप्नोतु; **तथा यज** ॥ २८ । ४ ॥

भाषार्थ—हे (होतः) यजमान ! जैसे (होता) सुख का दाता प्रजाजन (सयुग्भिः) संयुक्त रहने वाले, (वसुभिः) प्रथम कोटि के 'वसु' नामक विद्वानों, (रुद्रैः) मध्यम कक्षा के 'रुद्र' नामक विद्वानों (आदित्यैः) उत्तम कोटि के 'आदित्य' नामक विद्वानों के साथ वर्तमान (बर्हिषि) उत्तम विद्वत्सभा में, (निषद्वरम्) जिसके समीप श्रेष्ठ मनुष्य बैठते हैं उस (वृषभम्) सर्वोत्कृष्ट बलवान् (नर्यापसम्) सब नरों में श्रेष्ठ कर्म करने वाले (इन्द्रम्) नीति से सुशोभित राजा का (यक्षत्) संग करता है; (आज्यस्य) कर्त्तव्य न्याय की (बर्हिः) उत्तम सभा में (आसदत्) बैठता है; और सुख को (वेतु) प्राप्त करता है; वैसे (यज) यज्ञ कर ॥ २८ । ४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यथा पृथिव्यादयो लोकाः, प्राणादयो वायवः, कालावयवा मासाः सह वर्त्तन्ते; तथा ये राजप्रजाजनाः परस्परानुकूल्ये वर्त्तित्वा सभया प्रजापालनं कुर्युस्ते श्रेष्ठां प्रशंसां प्राप्नुवन्ति ॥ २८ । ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। जैसे पृथिवी आदि लोक, प्राण आदि वायु, काल के अवयव मास सब साथ वर्तमान हैं; वैसे जो राजा और प्रजाजन परस्पर अनुकूल वर्ताव करके सभा प्रजा का पालन करते हैं; वे श्रेष्ठ प्रशंसा को प्राप्त होते हैं ॥ २८ । ४ ॥

भा० पदार्थः—वसुभिः=पृथिव्यादिलोकैः । रुद्रैः=प्राणादिवायुभिः । आदित्यैः=कालावयवमासैः ।

भाष्यसार—१. **राजपुरुष कैसे हों**—सुख के दाता प्रजाजन से संयुक्त रहने वाले, वसु, रुद्र और आदित्य नामक विद्वानों के साथ उत्तम विद्वत्सभा में जिसके समीप श्रेष्ठ मनुष्य बैठते हैं उस राजा का तथा सबसे उत्कृष्ट एवं बलिष्ठ, नरों में श्रेष्ठ कर्म करने वाले, नीति से सुशोभित राजा का संग करें। कर्त्तव्य न्याय की उत्तम सभा में बैठें और सुख को प्राप्त करें।

जैसे वसु=पृथिवी आदि लोक, रुद्र=प्राण आदि वायु, आदित्य=कालावयव रूप चैत्र आदि मास मिलकर चलते हैं वैसे राजा और प्रजाजन परस्पर अनुकूलता में रहकर सभा के द्वारा प्रजा का पालन करते हैं वे श्रेष्ठ प्रशंसा को प्राप्त करते हैं।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि पृथिवी आदि लोकों के समान सब राजा और प्रजाजन परस्पर अनुकूलता में रहें ॥ २८ । ४ ॥

बृहदुक्थो वामदेवः । **इन्द्रः=ऐश्वर्यवान्** । निचृदतिजगती । निषादः ॥

पुनः कीदृशो जनाः सुखिनो भवन्तीत्याह ॥

फिर कैसे मनुष्य सुखी होते हैं, यह उपदेश किया है ॥

होता यक्षदोजो न वीर्यं सहो द्वार ऽ इन्द्रमवर्द्धयन् ।
सुप्रायणाऽअस्मिन् यज्ञे वि श्रयन्तामृतावृधो द्वार ऽ इन्द्राय मीढुषे व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥५॥

पदार्थः—(होता) (यक्षत्) (ओजः) जलवेगः । ओज इत्युदकना० । निघं० १ । १२ ॥ (न) इव (वीर्यम्) बलम् (सहः) सहनम् (द्वारः) द्वाराणि (इन्द्रम्) ऐश्वर्यम् (अवर्द्धयन्) वर्धयन्तु (सुप्रायणाः) शोभनानि=प्रकृष्टान्ययनानि यासु ताः (अस्मिन्) वर्त्तमाने (यज्ञे) संगन्तव्ये संसारे (वि) (श्रयन्ताम्) सेवन्ताम् (ऋतावृधः) या ऋतं=सत्यं वर्द्धयन्ति ताः (द्वारः) विद्याविनयद्वाराणि (इन्द्राय) परमैश्वर्ययुक्ताय (मीढुषे) स्निग्धाय सेचनसमर्थाय (व्यन्तु) प्राप्नुवन्तु (आज्यस्य) विज्ञेयस्य राज्यविषयस्य (होतः) (यज) ॥ ५ ॥

प्रमाणार्थ—(ओजः) जलवेगः । 'ओजः' यह पद निघं० (१ । १२) में उदक-नामों में पठित है। उदक=जल ॥

अन्वयः—हे होतर्यथा याः सुप्रायणा द्वार ओजो न वीर्यं सह इन्द्रं चावर्द्धयन् ता ऋतावृधो द्वारो मीढुष इन्द्रायास्मिन् यज्ञे विद्वांसो विश्रयन्तामाज्यस्य व्यन्तु होता च यक्षत्तथा यज ॥ ५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे होतः ! **यथा याः सुप्रायणाः** शोभनानि प्रकृष्टान्ययनानि यासु ताः **द्वारः** द्वाराणि, **ओजः** जलवेगः **न** इव **वीर्यं** बलं, **सहः** सहनम्, **इन्द्रम्** ऐश्वर्यं **चावर्द्धयन्** वर्धयन्तु; **ता ऋतावृधः** या ऋतं=सत्यं वर्द्धयन्ति **ता द्वारः** विद्याविनयद्वाराणि **मीढुषे** स्निग्धाय सेचनसमर्थाय **इन्द्राय** परमैश्वर्ययुक्ताय **अस्मिन्** वर्त्तमाने **यज्ञे** सङ्गन्तव्ये संसारे **विद्वांसो विश्रयन्तां** सेवन्ताम्; **आज्यस्य** विज्ञेयस्य राज्यविषयस्य **व्यन्तु** प्राप्नुवन्तु, **होता च यक्षत्, तथा यज** ॥ २८ । ५ ॥

भाषार्थ—हे (होतः) यजमान ! तू—जैसे (सुप्रायणाः) अति उत्तम अयन वाले (द्वारः) द्वार (ओजः) जल के वेग के (न) समान (वीर्यम्) बल, (सहः) सहनशक्ति और (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को (अवर्द्धयन्) बढ़ाते हैं; वे (ऋतावृधः) ऋत=सत्य को बढ़ाने वाले (द्वारः) विद्या और विनय रूप द्वारों को (मीढुषे) स्निग्ध=प्रिय, एवं वीर्यसेचन में समर्थ (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य से युक्त पुरुष के लिए (अस्मिन्) इस (यज्ञे) संगति के योग्य संसार में विद्वान् लोग (विश्रयन्ताम्) सेवन करते हैं (आज्यस्य) विज्ञान के योग्य राज्य के विषय को (व्यन्तु) प्राप्त करता है; और (होता) सुखदाता

पुरुष (यक्षत्) उनका संग करता है; वैसे (यज) यज्ञ कर ॥ २८ । ५ ॥

भावार्थः — अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ । ये मनुष्या अस्मिन् संसारे विद्याधर्मद्वाराण्युदघाटच पदार्थविद्यां संसेव्य, ऐश्वर्यं वर्द्धयन्ति तेऽतुलानि सुखानि प्राप्नुवन्ति ।। २८ । ५ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। जो मनुष्य इस संसार में विद्या और धर्म के द्वारों को खोल कर, पदार्थ-विद्या का सेवन करके ऐश्वर्य को बढ़ाते हैं; वे अतुल सुखों को प्राप्त करते हैं ।। २८ । ५ ।।

भा० पदार्थः—सुप्रायणाः=उद्घटिताः ।

भाष्यसार—**१. कैसे मनुष्य सुखी होते हैं**—जो मनुष्य इस संसार में सुन्दर एवं उत्तम मार्गों वाले विद्या और धर्म के द्वारों को खोलते हैं; वे पदार्थ-विद्या का सेवन करके जल के वेग के समान बल, सहनशक्ति और ऐश्वर्य को बढ़ाते हैं। सत्य को बढ़ाने वाले विद्या और विनय के द्वारों को स्निग्ध प्रिय, वीर्य-सेचन में समर्थ (युवक), परम ऐश्वर्य से युक्त राजा के लिए इस संसार में विद्वान् लोग सेवन करते हैं, वे राज्य को प्राप्त करते हैं।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'न' पद है; अतः उपमा अलंकार है। उपमा यह है कि विद्या और धर्म के द्वार जल के वेग के समान वीर्य (बल) आदि को बढ़ाते हैं। उपमा-वाचक पद को लुप्त मानकर वाचक लुप्तोपमा अलंकार भी है। उपमा यह है कि विद्या और धर्म के द्वारों के समान यजमान मन्त्रोक्त यज्ञ का अनुष्ठान करे ।। २८ । ५ ।।

बृहदुक्थो वामदेवः । **इन्द्रः=परमैश्वर्यम्** । त्रिष्टुप् । धैवतः ।।

पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह ।।

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए, यह उपदेश किया है ।।

होता॑ यक्षदु॒षे ऽ इन्द्र॑स्य धे॒नू सु॒दुघे॒ मा॒तरा॑ म॒ही ।
स॒वा॒तरौ॒ न तेज॑सा व॒त्समिन्द्र॑मवर्द्धतां वी॒तामाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ।। ६ ।।

पदार्थः—(**होता**) (**यक्षत्**) (**उषे**) प्रतापयुक्ते (**इन्द्रस्य**) विद्युतः (**धेनू**) दुग्धदात्र्यौ गावौ (**सुदुघे**) सुष्ठु कामप्रपूरिके (**मातरा**) मातृवद्वर्त्तमाने (**मही**) महत्यौ (**सवातरौ**) वायुना सह वर्त्तमानौ (**न**) इव (**तेजसा**) तीक्ष्णप्रतापेन (**वत्सम्**) (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्यम् (**अवर्द्धताम्**) वर्द्धेत (**वीताम्**) प्राप्नुताम् (**आज्यस्य**) प्रक्षेप्तुं योग्यस्य (**होतः**) (**यज**) ।। ६ ।।

अन्वयः—हे होतस्त्वं यथेन्द्रस्य सुदुघे मातरा मही धेनू सवातरौ नोषे भौतिकसूर्य्याऽग्न्योस्तेजसेन्द्रं वत्सं वीतां होताऽऽज्यस्य यक्षदवर्द्धतां तथा यज ।। ६ ।।

सपदार्थान्वयः — हे होतः ! त्वं **यथेन्द्रस्य** विद्युतः **सुदुघे** सुष्ठु कामप्रपूरिके **मातरा** मातृवद्वर्त्तमाने **मही** महत्यौ **धेनू** दुग्धदात्र्यौ गावौ **सवातरौ** वायुना सह वर्त्तमानौ **न** इव **उषे** प्रतापयुक्ते **भौतिकसूर्य्याऽग्न्योस्तेजसा** तीक्ष्णप्रतापेन **इन्द्रं**

भाषार्थ—हे (होतः) यजमान ! तू—जैसे (इन्द्रस्य) विद्युत् की—(सुदुघे) अच्छे प्रकार कामनाओं को पूरण करने वाले, (मातरा) माता के तुल्य, (मही) महती, (धेनू) दो दुधारू गौवों के (न) समान (सवातरौ) वायु के साथ वर्तमान (उषे)

परमैश्वर्यं **वत्सं वीतां** प्राप्नुताम्; **होता आज्यस्य** प्रक्षेप्तुं योग्यस्य **यक्षदवर्द्धतां** वर्द्धेत; **तथा यज** ॥ २८ । ६ ॥

प्रताप से युक्त दोनों उषा वेला भौतिक अग्नि और सूर्य रूप अग्नि के तेज से (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य रूप (वत्सम्) बछड़े को (वीताम्) प्राप्त करें। (होता) सुख का दाता पुरुष (आज्यस्य) होम में प्रक्षेप के योग्य पदार्थ का (यक्षत्) होम करे एवं (अवर्धताम्) वृद्धि को प्राप्त करे; वैसा (यज) यज्ञ कर ॥२८।६॥

भावार्थः — अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। हे मनुष्या ! यूयं यथा वायुना प्रेरितौ भौमविद्युतावग्नी सूर्यलोकतेजो वर्द्धयतः, यथा धेनुवद् वर्त्तमाने उषे सर्वेषां व्यवहाराणामारम्भनिवर्त्तिके भवतः, तथा प्रयतध्वम् ॥ २८ । ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। हे मनुष्यो ! तुम—जैसे वायु से प्रेरित भूमि-सम्बन्धी अग्नि और विद्युत् रूप अग्नि सूर्य-लोक के तेज को बढ़ाते हैं; जैसे धेनु= दुधारू गौ के समान दोनों उषा वेला सब व्यवहारों का आरम्भ और निवृत्ति कराने वाले होते हैं; वैसा प्रयत्न करो ॥ २८ । ६ ॥

भा० पदार्थः—सवातरौ=वायुना प्रेरितौ। धेनू=धेनूवद्वर्त्तमाने (उषे)। यज= प्रयतस्व ॥

भाष्यसार—१. **मनुष्यों को क्या करना चाहिए**—उत्तम रीति से कामना को पूरण करने वाली, माता के तुल्य, महान्, दुधारु गौ के समान वायु के सहित प्रताप-युक्त उषा वेला भौतिक सूर्य और अग्नि के तीक्ष्ण प्रताप से परम ऐश्वर्य रूप वत्स (बछड़ा) को प्राप्त कराती है। सुख प्रदान करने वाला मनुष्य होम के योग्य पदार्थों का यज्ञ करे, जैसे वायु से प्रेरित भौम और विद्युत् रूप अग्नि सूर्यलोक के तेज को बढ़ाती हैं वैसे वृद्धि को प्राप्त हो। दुधारु गाय के समान उषा (प्रातः, सायं) वेला सब व्यवहारों का आरम्भ और निवृत्ति का हेतु हैं वैसे सब लोग प्रयत्न करें; पुरुषार्थ करें।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'न' पद है; अतः उपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि उषा वेला दुधारु गाय के समान सुखदायक हैं। उपमा-वाचक पद को लुप्त मानकर वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार भी है। उपमा यह है कि भौम और विद्युत् रूप अग्नि के समान यजमान मन्त्रोक्त यज्ञ का अनुष्ठान करे ॥ २८ । ६ ॥

बृहदुक्थो गोतमः। **अश्विनौ**=सद्वैद्यौ। जगती। निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को क्या करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

होता यक्षद्दैव्या होतारा भिषजा सखाया हविषेन्द्रं भिषज्यतः।
कवी देवौ प्रचेतसाविन्द्राय धत्त ऽ इन्द्रियं वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥ ७ ॥

पदार्थः—(**होता**) सुखप्रदाता (**यक्षत्**) (**दैव्या**) देवेषु=विद्वत्सु साधू (**होतारा**) रोगं निवर्त्य सुखस्य प्रदातारौ (**भिषजा**) चिकित्सकौ (**सखाया**) सुहृदौ (**हविषा**) यथायोग्येन ग्रहीतव्यव्यवहारेण (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्यमिच्छुकं जीवम् (**भिषज्यतः**) चिकित्सां कुरुतः (**कवी**) प्राज्ञौ (**देवौ**) वैद्यकविद्यया प्रकाशमानौ (**प्रचेतसौ**) प्रकृष्टविज्ञानयुक्तौ (**इन्द्राय**) परमैश्वर्याय (**धत्तः**) दध्याताम् (**इन्द्रियम्**) धनम् (**वीताम्**) प्राप्नुताम् (**आज्यस्य**) निदानादेः (**होतः**) युक्ताहारविहारकृत् (**यज**) प्राप्नुहि ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे होतस्त्वं यथा होताऽऽज्यस्य यक्षद्दैव्या होतारा सखाया कवी प्रचेतसौ देवौ भिषजा हविषेन्द्रं भिषज्यत इन्द्रायेन्द्रियं धत्त आयुर्वीतां तथा यज ॥ ७ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे होतः** ! युक्ताहार-विहारकृत् ! **त्वं, यथा होता** सुखप्रदाता **आज्यस्य** निदानादेः **यक्षत्**; **दैव्या** देवेषु=विद्वत्सु साधू, **होतारा** रोगं निवर्त्य सुखस्य प्रदातारौ, **सखाया** सुहृदौ, **कवी** प्राज्ञौ, **प्रचेतसौ** प्रकृष्टविज्ञानयुक्तौ, **देवौ** वैद्यकविद्यया प्रकाशमानौ, **भिषजा** चिकित्सकौ; **हविषा** यथायोग्येन ग्रहीतव्यव्यवहारेण **इन्द्रं** परमैश्वर्यमिच्छुकं जीवं **भिषज्यतः** चिकित्सां कुरुतः; **इन्द्राय** परमैश्वर्याय **इन्द्रियं** धनं **धत्तः** दध्याताम्; **आयुर्वीतां** प्राप्नुतां; **तथा यज** प्राप्नुहि ॥ २८ । ७ ॥

भाषार्थ—हे (होतः) युक्त आहार-विहार करने वाले मनुष्य तू—जैसे (होता) सुख का दाता वैद्य (आज्यस्य) निदान आदि का (यक्षत्) संग करता है; (दैव्या) विद्वानों में श्रेष्ठ, (होतारा) रोग को निवृत्त कर सुख प्रदान करने वाले, (सखाया) मित्र (कवी) प्राज्ञ, (प्रचेतसौ) उत्तम विज्ञान से युक्त, (देवौ) वैद्यक विद्या से प्रकाशमान (भिषजा) दो चिकित्सक—(हविषा) यथायोग्य ग्रहीतव्य व्यवहार से (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य के इच्छुक जीव की (भिषज्यतः) चिकित्सा करते हैं, (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य के लिए (इन्द्रियम्) धन को (धत्तः) धारण करते हैं, (आयुः) आयु को (वीताम्) प्राप्त करते हैं; वैसे (यज) आयु को प्राप्त कर ॥ २८ । ७ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । हे मनुष्याः ! यथा—सद्वैद्या रोगिणोऽनुकम्प्यौ-षधादिना रोगान् निवार्यैश्वर्यायुषी वर्द्धयन्ति, तथा—यूयं सर्वेषु मैत्रीं भावयित्वा, सर्वेषां सुखायुषी वर्द्धयत ॥ २८ । ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे श्रेष्ठ वैद्य लोग रोगियों पर अनुकम्पा करके, औषध आदि से रोगों का निवारण कर, ऐश्वर्य और आयु को बढ़ाते हैं; वैसे तुम लोग सब लोगों में मैत्री कराके, सब के सुख और आयु को बढ़ाओ ॥ २८ । ७ ॥

भा० पदार्थः—भिषजा=सद्वैद्यौ । हविषा=औषधादिना । भिषज्यतः=रोगान् निवारयतः ॥

भाष्यसार—१. **मनुष्यों को क्या करना चाहिए**—युक्त आहार-विहार करने वाला, सुख प्रदान करने वाला वैद्य निदान आदि का संग करे और उक्त विद्या को जाने । विद्वानों में श्रेष्ठ, रोग को निवृत्त करके सुख प्रदान करने वाले, मित्र, कवि (प्राज्ञ), उत्तम विज्ञान से युक्त, वैद्यक-विद्या से प्रकाशमान दो चिकित्सक—यथायोग्य ग्रहीतव्य व्यवहार से इन्द्र अर्थात् परम ऐश्वर्य के इच्छुक जीव की चिकित्सा करें; उसके लिए धन को धारण करें; उसकी आयु को बढ़ावें ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि सब मनुष्य श्रेष्ठ वैद्यों के समान सब में मैत्री करके सब के सुख और आयु को बढ़ावें ॥ २८ । ७ ॥ ●

बृहदुक्थो वामदेव्यः । **इन्द्रः=जीवः** । निचृज्जगती । निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

**होता यक्षत्तिस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपस ऽ इडा सरस्वती भारती महीः ।
इन्द्रपत्नीर्हविष्मतीर्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ८ ॥**

पदार्थः—(**होता**) विद्याया दाताऽऽदाता वा (**यक्षत्**) (**तिस्रः**) त्रित्वसङ्ख्याकाः (**देवीः**) सकलविद्याप्रकाशिकाः (**न**) इव (**भेषजम्**) औषधम् (**त्रयः**) अध्यापकोपदेशकवैद्याः (**त्रिधातवः**) त्रयोऽस्थिमज्जवीर्याणि धातवो येभ्यस्ते (**अपसः**) कर्मठाः (**इडा**) प्रशंसितुमर्हा (**सरस्वती**) बहुविज्ञानयुक्ता (**भारती**) सुष्ठुविद्याया धारिका पोषिका वा वाणी (**महीः**) महतीः=पूज्याः (**इन्द्रपत्नीः**) इन्द्रस्य=जीवस्य पत्नीः स्त्रीवद्वर्त्तमानाः (**हविष्मतीः**) विविधविज्ञानसहिताः (व्यन्तु) प्राप्नुवन्तु (**आज्यस्य**) प्राप्तुं योग्यस्याऽध्यापनाऽध्ययनव्यवहारस्य (**होतः**) (**यज**) ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे होतर्यथा होताऽऽज्यस्य यक्षत् । यथा त्रिधातवोऽपसस्त्रयस्तिस्रो देवीर्न भेषजं मही इडा सरस्वती भारती च हविष्मतीरिन्द्रपत्नीर्व्यन्तु तथा यज ॥ ८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **होतः** ! **यथा होता** विद्याया दाताऽऽदाता वा **आज्यस्य** प्राप्तुं योग्यस्याऽध्यापनाऽध्ययनव्यवहारस्य **यक्षत्**; **यथा त्रिधातवः** त्रयोऽस्थिमज्जवीर्याणि धातवो येभ्यस्ते, **अपसः** कर्मठाः, **त्रयः** अध्यापकोपदेशकवैद्याः, **तिस्रः** त्रित्वसङ्ख्याकाः **देवीः** सकलविद्याप्रकाशिकाः **न** इव, **भेषजम्** औषधं, **महीः** महतीः=पूज्याः **इडा** प्रशंसितुमर्हा **सरस्वती** बहुविज्ञानयुक्ता **भारती** सुष्ठुविद्याया धारिका पोषिका वा वाणी, **च हविष्मतीः** विविधविज्ञानसहिताः **इन्द्रपत्नीः** इन्द्रस्य=जीवस्य पत्नीः स्त्रीवद्वर्त्तमानाः **व्यन्तु** प्राप्नुवन्तु; **तथा यज** ॥ २८ । ८ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोमालङ्कारः । यथा प्रशस्ता विज्ञानवत्यः सुमेधाश्च स्त्रियः स्वसदृशान् पतीन् प्राप्य मोदन्ते, तथा—अध्यापकोपदेशकवैद्या मनुष्याः स्तुतिविज्ञानयोगधारणायुक्तास्त्रिविधा वाचः प्राप्याऽऽनन्दन्ति ॥ २८ । ८ ॥

भाषार्थ—हे (होतः) यजमान ! जैसे (होता) विद्या का दाता वा ग्रहण करने वाला विद्वान्=(आज्यस्य) प्राप्त करने योग्य पठन-पाठन रूप व्यवहार का (यक्षत्) संग करता है; जैसे—(त्रिधातवः) तीन अस्थि, मज्जा और वीर्य इनको बढ़ाने वाले, (अपसः) कर्मठ लोग, (त्रयः) तीन अध्यापक, उपदेशक और वैद्य, (त्रयः) तीन (देवीः) सकल विद्या की प्रकाशक देवियों के (न) समान (भेषजम्) औषध, (महीः) पूजा के योग्य, (इडा) प्रशंसा के योग्य (सरस्वती) बहुत विज्ञान से युक्त और (भारती) उत्तम विद्या की धारक वा पोषक वाणी—(हविष्मतीः) विविध विज्ञान से युक्त (इन्द्रपत्नीः) इन्द्र=जीव की पत्नी=स्त्री के तुल्य वर्ताव करने वाली देवियों को (व्यन्तु) प्राप्त हों; वैसे (यज) यज्ञ कर ॥ २८ । ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । जैसे प्रशंसनीय, विज्ञानवती और उत्तम मेधा वाली स्त्रियाँ अपने सदृश पतियों को प्राप्त करके प्रसन्न रहती हैं; वैसे अध्यापक, उपदेशक और वैद्य लोग स्तुति, विज्ञान, योग्य धारणा से युक्त वाणियों को प्राप्त करके आनन्दित रहते हैं ॥ २८ । ८ ॥

भा० पदार्थः—हविष्मतीः=प्रशस्ता विज्ञानवत्य सुमेधाश्च स्त्रियः । इडा=स्तुतियुक्ता वाक् । सरस्वती=विज्ञानयुक्ता वाक् । भारती=योगधारणायुक्ता वाक् ।

भाष्यसार—**१. मनुष्यों को क्या करना चाहिए**—विद्या को देने वा लेने वाला विद्वान्—

प्राप्त करने योग्य पठन-पाठन रूप व्यवहार का संग करे। सब मनुष्य अस्थि, मज्जा और वीर्य को बढ़ाने वाले कर्मठ लोग, अध्यापक, उपदेशक और वैद्य लोग तथा सकल विद्याओं को प्रकाशित करने वाली देवियों के समान औषध को प्राप्त करें। जैसे प्रशस्त विज्ञान से युक्त श्रेष्ठ मेधा वाली स्त्रियाँ स्वसदृश पतियों को प्राप्त करके आनन्द करती हैं वैसे अध्यापक, उपदेशक और वैद्य लोग—पूजा एवं प्रशंसा (स्तुति) के योग्य (इडा), बहुत विज्ञान से युक्त (सरस्वती), उत्तम विद्या की धारक वा पोषक (भारती), वाणी को प्राप्त करके आनन्दित रहें।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि विज्ञानवती स्त्रियों के समान यजमान मन्त्रोक्त यज्ञ का अनुष्ठान करे ॥२८। ८॥

प्रजापतिः। **इन्द्रः**=जीवः। निचृदतिजगती। निषादः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

मनुष्यों को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है॥

होता यक्षत्त्वष्टारमिन्द्रं देवं भिषजꣳ सुयजं घृतश्रियम्।
पुरुरूपꣳ सुरेतसं मघोनमिन्द्राय त्वष्टा दधदिन्द्रियाणि वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ९ ॥

पदार्थः—(**होता**) (**यक्षत्**) (**त्वष्टारम्**) दोषविच्छेदकम् (**इन्द्रम्**) ऐश्वर्यवन्तम् (**देवम्**) देदीप्यमानम् (**भिषजम्**) वैद्यम् (**सुयजम्**) सुष्ठुसङ्गन्तारम् (**घृतश्रियम्**) घृतेनोदकेन शोभमानम् (**पुरुरूपम्**) बहुरूपम् (**सुरेतसम्**) सुष्ठुवीर्यम् (**मघोनम्**) परमपूजितधनम् (**इन्द्राय**) जीवाय (**त्वष्टा**) प्रकाशकः (**दधत्**) धरन् सन् (**इन्द्रियाणि**) श्रोत्रादीनि धनानि वा (**वेतु**) प्राप्नोतु (**आज्यस्य**) ज्ञातुं योग्यस्य (**होतः**) (**यज**)॥ ९॥

अन्वयः—हे होतर्यथा होता त्वष्टारं सुरेतसं मघोनं पुरुरूपं घृतश्रियं सुयजं भिषजं देवमिन्द्रं यक्षदाज्यस्येन्द्रायेन्द्रियाणि दधत्सन् त्वष्टा वेतु तथा यज॥ ९॥

सपदार्थान्वयः—**हे होतः! यथा**—**होता त्वष्टारं** दोषविच्छेदकं **सुरेतसं** सुष्ठुवीर्यं **मघोनं** परमपूजितधनं **पुरुरूपं** बहुरूपं **घृतश्रियं** घृतेनोदकेन शोभमानं **सुयजं** सुष्ठु सङ्गन्तारं **भिषजं** वैद्यं **देवं** देदीप्यमानम् **इन्द्रम्** ऐश्वर्यवन्तं **यक्षत्; आज्यस्य** ज्ञातुं योग्यस्य **इन्द्राय** जीवाय **इन्द्रियाणि** श्रोत्रादीनि धनानि वा **दधत्** धरन् **सन् त्वष्टा** प्रकाशकः **वेतु** प्राप्नोतु, **तथा यज**॥ २८। ९॥

भाषार्थ—हे (होतः) यजमान! जैसे (होता) सुख का दाता विद्वान्—(त्वष्टारम्) दोषों का विच्छेद करने वाले (सुरेतसम्) उत्तम वीर्य वाले, (मघोनम्) परम पूजित धन वाले, (पुरुरूपम्) बहुत रूप वाले, (घृतश्रियम्) घृत=जल से शोभायमान, (सुयजम्) उत्तम संग करने वाले, (भिषजम्) वैद्य (देवम्) शुभ गुणों से देदीप्यमान (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् पुरुष का (यक्षत्) संग करता है; (आज्यस्य) जानने योग्य (इन्द्राय) जीव के लिए (इन्द्रियाणि) श्रोत्र आदि इन्द्रियों वा धनों को (दधत्) धारण करता हुआ (त्वष्टा) विद्या का प्रकाशक विद्वान् (वेतु) प्राप्त करे; वैसे (यज) यज्ञ कर॥ २८। ९॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः ! यूयमाप्तं, रोगनिवारकं, श्रेष्ठौषधदायकं, धनैश्वर्यवर्द्धकं वैद्यं सेवित्वा, शरीरात्मान्तःकरणेन्द्रियाणां बलं वर्द्धयित्वा, परमैश्वर्यं प्राप्नुत ॥ २८ । ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। हे मनुष्यो ! तुम—आप्त, रोग-निवारक, श्रेष्ठ औषध देने वाले, धन एवं ऐश्वर्य को बढ़ाने वाले वैद्य की सेवा करके; शरीर, आत्मा, अन्तःकरण और इन्द्रियों के बल को बढ़ाकर, परम ऐश्वर्य को प्राप्त करो ॥ २८ । ९ ॥

भा० पदार्थः—त्वष्टारम्=रोगनिवारकम्। देवम्=श्रेष्ठौषधदायकम्। मघोनम्=धनैश्वर्यवर्द्धकम्।

भाष्यसार—१. **मनुष्यों को क्या करना चाहिए**—सुख का दाता विद्वान्—दोषों के छेदक, उत्तम वीर्य वाले, परम पूजित धन वाले, जल से शोभायमान, उत्तम संग करने वाले, वैद्यक-विद्या से देदीप्यमान, ऐश्वर्य से युक्त वैद्य का संग करे, उसकी सेवा करे। जानने के योग्य जीव के श्रोत्र आदि इन्द्रियों एवं धनों को धारण करे अर्थात् शरीर, आत्मा और इन्द्रियों के बल को बढ़ाकर परम ऐश्वर्य को प्राप्त करे।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि विद्वान् के समान यजमान मन्त्रोक्त यज्ञ का अनुष्ठान करें ॥ २८ । ९ ॥

प्रजापतिः। **बृहस्पतिः**=विद्वान्। स्वराडतिजगती। निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

होता यक्षद्वनस्पतिँ शमितारँ शतक्रतुं धियो जोष्टारमिन्द्रियम्।
मध्वा समञ्जन् पथिभिः सुगेभिः स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ १० ॥

पदार्थः—(**होता**) (**यक्षत्**) (**वनस्पतिम्**) वनानां=किरणानां स्वामिनं सूर्यम् (**शमितारम्**) यजमानम् (**शतक्रतुम्**) असंख्यातप्रज्ञम् (**धियः**) प्रज्ञायाः कर्मणो वा (**जोष्टारम्**) प्रीतं सेवमानम् (**इन्द्रियम्**) धनम् (**मध्वा**) मधुरेण विज्ञानेन (**समञ्जन्**) सम्यक् प्रकटयन् (**पथिभिः**) मार्गैः (**सुगेभिः**) सुखेन गमनाधिकरणैः (**स्वदाति**) आस्वदेत। **अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदम्।** (**यज्ञम्**) संगतं व्यवहारम् (**मधुना**) मधुरेण (**घृतेन**) आज्येनोदकेन वा (**वेतु**) व्याप्नोतु (**आज्यस्य**) विज्ञेयस्य संसारस्य (**होतः**) दातर्जन (**यज**) प्राप्नुहि ॥ १० ॥

प्रमाणार्थ—(**स्वदाति**) यहाँ व्यत्यय से परस्मैपद है ॥

अन्वयः—हे होतर्यथा होता वनस्पतिमिव शमितारं शतक्रतुं धियो जोष्टारं यक्षन्मध्वा सुगेभिः पथिभिराज्यस्येन्द्रियं समञ्जन् स्वदाति मधुना घृतेन यज्ञं वेतु तथा यज ॥ १० ॥

सपदार्थान्वयः—हे होतः ! दातर्जन! **यथा होता वनस्पतिं** वनानां=किरणानां स्वामिनं सूर्यम् **इव शमितारं** यजमानं **शतक्रतुम्** असंख्यातप्रज्ञं **धियः** प्रज्ञायाः कर्मणो वा **जोष्टारं** प्रीतं सेवमानं

भाषार्थ—हे (होतः) दाता मनुष्य ! जैसे—(होता) सुख का दाता विद्वान् ! (वनस्पतिम्) वन=किरणों के स्वामी सूर्य के तुल्य (शमितारम्) यजमान; (शतक्रतुम्) असंख्यात प्रज्ञा वाले,

यक्षत्, मध्वा मधुरेण विज्ञानेन **सुगेभिः** सुखेन गमनाधिकरणैः **पथिभिः** मार्गैः **आज्यस्य** विज्ञेयस्य संसारस्य **इन्द्रियं** धनं **समञ्जन्** सम्यक् प्रकटयन् **स्वदाति** आस्वदेत, **मधुना** मधुरेण **घृतेन** आज्येनोदकेन वा **यज्ञं** सङ्गतं व्यवहारं **वेतु** व्याप्नोतु; **तथा यज** प्राप्नुहि ॥ २८ । १० ॥

(धियः) प्रज्ञा वा कर्म का (जोष्टारम्) प्रीतिपूर्वक सेवन करने वाले विद्वान् का (यक्षत्) संग करता है; (मध्वा) मधुर विज्ञान से एवं (सुगेभिः) सुखपूर्वक गमन के आधार (पथिभिः) मार्गों से (आज्यस्य) जानने योग्य संसार के (इन्द्रियम्) धन को (समञ्जन्) ठीक प्रकट करता हुआ उसका (स्वदाति) आस्वादन करता है; (मधुना) मधुर (घृतेन) घृत वा जल से (यज्ञम्) संगत व्यवहार को (वेतु) प्राप्त करता है; वैसे (यज) तू प्राप्त कर ॥ २८ । १० ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपालङ्कारः। ये मनुष्याः सूर्यवद् विद्याप्रज्ञाधर्मैश्वर्यप्रापका, धर्म्यमार्गैर्गच्छन्तः, सुखानि भुंजीरन्, तेऽन्येषामपि सुखप्रदा भवन्ति ॥ २८ । १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। जो मनुष्य सूर्य के समान विद्या, प्रज्ञा, धर्म और ऐश्वर्य के प्रापक होकर धर्म-युक्त मार्गों से चलते हुए सुखों को भोगते हैं; वे अन्यों को भी सुख प्रदान करने वाले होते हैं ॥ २८ । १०॥

भाष्यसार—**१. मनुष्यों को क्या करना चाहिए**—सुख का दाता विद्वान्—सूर्य के समान यज्ञ करने वाले, असंख्य प्रज्ञा वाले, प्रज्ञा वा कर्म का प्रीतिपूर्वक सेवन करने वाले विद्वान् का संग करे। मधुर विज्ञान के द्वारा सुख से जाने योग्य, धर्म-युक्त मार्गों से संसार के धन को प्राप्त करके उसका आस्वादन करे; सुखों को भोगे। मधुर घृत वा जल से यज्ञ को प्राप्त करे, सबको सुख प्रदान करे।

२. अलंकार—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि यजमान सूर्य के समान मन्त्रोक्त यज्ञ का अनुष्ठान करे ॥ २८ । १० ॥

प्रजापतिः। **इन्द्रः=परमैश्वर्यम्**। निचृच्छक्वरी। धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

होता यक्षदिन्द्रꣳ स्वाहाज्यस्य स्वाहा मेदसः स्वाहा स्तोकानाꣳ स्वाहा स्वाहाकृतीनाꣳ स्वाहा हव्यसूक्तीनाम्। स्वाहा देवाऽआज्यपा जुषाणाऽ इन्द्र आज्यस्य व्यन्तु होतर्यज ॥ ११ ॥

पदार्थः—(होता) (यक्षत्) (इन्द्रम्) परमैश्वर्यम् (स्वाहा) सत्यां वाचम् (आज्यस्य) ज्ञातुमर्हस्य (स्वाहा) सत्यक्रियया (मेदसः) स्निग्धस्य (स्वाहा) (स्तोकानाम्) अपत्यानाम् (स्वाहा) (स्वाहाकृतीनाम्) सत्यवाक्क्रियाऽनुष्ठानानाम् (स्वाहा) (हव्यसूक्तीनाम्) बहूनि हव्यानां सूक्तानि यासु तासाम् (स्वाहा) (देवाः) विद्वांसः (आज्यपाः) य आज्यं पिबन्ति वाऽऽज्येन रक्षन्ति ते (जुषाणाः) प्रीताः (इन्द्रः) परमैश्वर्यप्रदः (आज्यस्य) (व्यन्तु) (होतः) (यज) ॥ ११ ॥

अन्वयः—हे होतर्यथेन्द्रो होताऽऽज्यस्य स्वाहा मेदसः स्वाहा स्तोकानां स्वाहा स्वाहाकृतीनां स्वाहा हव्यसूक्तीनां स्वाहेन्द्रं यक्षद्यथा स्वाहाऽऽज्यस्य जुषाणा आज्यपा देवा इन्द्रं व्यन्तु तथा यज ॥ ११ ॥

सपदार्थान्वयः—हे होतः ! यथेन्द्रः परमैश्वर्यप्रदः **होताऽऽज्यस्य** ज्ञातुमर्हस्य **स्वाहा** सत्यया क्रियया, **मेदसः** स्निग्धस्य **स्वाहा, स्तोकानाम्** अपत्यानां **स्वाहा, स्वाहाकृतीनाम्** सत्यवाक्-क्रियानुष्ठानानां **स्वाहा, हव्यसूक्तीनां** बहूनि हव्यानां सूक्तानि यासु तासां **स्वाहा, इन्द्रं** परमैश्वर्यं **यक्षत्;** **यथा—स्वाहा** सत्यां वाचम् **आज्यस्य जुषाणाः** प्रीताः **आज्यपाः** य आज्यं पिबन्ति वाऽऽज्येन रक्षन्ति ते **देवाः** विद्वांसः **इन्द्रं** परमैश्वर्यं **व्यन्तु;** तथा **यज** ॥ २८ । ११ ॥

भाषार्थ—हे (होतः) यजमान—जैसे (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य प्रदान करने वाला, (होता) सुखदाता पुरुष (आज्यस्य) जानने योग्य शास्त्र की (स्वाहा) सत्य क्रिया से, (मेदसः) स्निग्ध पदार्थ की (स्वाहा) सत्य क्रिया से, (स्तोकानाम्) सन्तानों की (स्वाहा) सत्य क्रिया से, (स्वाहाकृतीनाम्) सत्य भाषण एवं सत्याचरण की (स्वाहा) सत्य क्रिया से, (हव्यसूक्तीनाम्) बहुत हव्य पदार्थों के सूक्त वाली बुद्धियों की (स्वाहा) सत्य क्रिया से, (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य को (यक्षत्) प्राप्त होता है; और जैसे (स्वाहा) सत्य वाणी तथा (आज्यस्य) जानने योग्य शास्त्र से (जुषाणाः) प्रसन्न हुए (आज्यपाः) घृत का पान करने वाले वा राज्य से रक्षा करने वाले (देवाः) विद्वान्—(इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य को (व्यन्तु) प्राप्त करते हैं; वैसे (यज) यज्ञ कर ॥ २८ । ११ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । ये पुरुषाः शरीरात्मापत्यसत्क्रियाविद्यानां वृद्धिं चिकीर्षन्ति; ते सर्वतः सुखापन्ना भवन्ति ॥२८।११॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । जो पुरुष शरीर, आत्मा, सन्तान, सत्य आचरण और विद्या की वृद्धि करना चाहते हैं; वे सब ओर से सुख युक्त होते हैं ॥ २८ । ११ ॥

भा० पदार्थः—मेदसः=शरीरस्य । आज्यस्य=आत्मनः । स्वाहाकृतीनाम्=सत्क्रियाणाम् । हव्यसूक्तीनाम्=विद्यानाम् ।

भाष्यसार—**१. मनुष्यों को क्या करना चाहिए**—परम ऐश्वर्य को प्रदान करने वाले, सुख के दाता मनुष्य--जानने योग्य शास्त्र का अध्ययन करें, उसके अनुसार सत्य आचरण करें । घृत आदि स्निग्ध पदार्थों का होम करें । सन्तानों की वृद्धि करें । सत्यभाषण आदि उत्तम क्रियाओं को बढ़ावें । हव्य पदार्थों का बहुत उपदेश करने वाली बुद्धियों को निर्मल बनावें । परम ऐश्वर्य को प्राप्त करें । घृत आदि उत्तम पदार्थों का पान करने वाले एवं राज्य की रक्षा करने वाले विद्वान् परम ऐश्वर्य को प्राप्त करें ।

२. अलंकार—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । उपमा यह है कि विद्वान् के समान यजमान मन्त्रोक्त यज्ञ का अनुष्ठान करें ॥ २८ । ११ ॥

अश्विनौ । **इन्द्रः=परमैश्वर्यकारको विद्वान्** । निचृदतिजगती । निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

दे॒वं ब॒र्हिरिन्द्र॑ꣳ सु॒दे॒वं दे॒वैर्वी॒रव॑त् स्ती॒र्णं वेद्या॑मवर्द्धयत् ।
वस्तो॑र्वृ॒तं प्राक्तो॑र्भृ॒तꣳ रा॒या ब॒र्हिष्म॑तो॒ऽत्य॑गाद्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वे॒तु यज॑ ॥ १२ ॥

पदार्थः—(**देवम्**) दिव्यगुणम् (**बर्हिः**) अन्तरिक्षमिव। **बर्हिरित्यन्तरिक्षना०। निघं० १। ३॥** (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्यकारकम् (**सुदेवम्**) शोभनं विद्वांसम् (**देवैः**) विद्वद्भिः। (**वीरवत्**) वीरैस्तुल्यम् (**स्तीर्णम्**) काष्ठैर्हविषा चाऽऽच्छादनीयम् (**वेद्याम्**) हवनाधारे कुण्डे (**अवर्द्धयत्**) वर्द्धयेत् (**वस्तोः**) दिने (**वृतम्**) स्वीकृतम् (**प्र**) (**अक्तोः**) रात्रौ (**भृतम्**) धृतम् (**राया**) धनेन (**बर्हिष्मतः**) अन्तरिक्षस्य सम्बन्धो विद्यते येषां तान् (**अति**) उल्लङ्घने (**अगात्**) गच्छति (**वसुवने**) धनानां संविभागे (**वसुधेयस्य**) वसूनि धेयानि यस्मिँस्तस्य जगतः (**वेतु**) (**यज**)॥ १२॥

प्रमाणार्थ—(**बर्हिः**) अन्तरिक्षमिव। 'बर्हिः' यह पद निघण्टु (१। ३) में अन्तरिक्ष-नामों में पठित है।

अन्वयः—हे विद्वन् यथा बर्हिष्मतोऽत्यगाद्वसुधेयस्य वसुवने वेद्यां स्तीर्णं वस्तोर्वृतमक्तोर्भृतं हुतं द्रव्यं नैरोग्यं प्रावर्द्धयत्सुखं वेतु तथा बर्हिरिव राया सह देवं देवैः सह वीरवद्वर्त्तमानं सुदेवमिन्द्रं यज॥ १२॥

सपदार्थान्वयः—हे **विद्वन्! यथा बर्हिष्मतः** अन्तरिक्षस्य सम्बन्धो विद्यते येषां तान् **अत्यगात्** उल्लङ्घ्य गच्छति, **वसुधेयस्य** वसूनि धेयानि यस्मिँस्तस्य जगतः **वसुवने** धनानां संविभागे, **वेद्यां** हवनाधारे कुण्डे **स्तीर्णं** काष्ठैर्हविषा चाऽऽच्छादनीयं, **वस्तोः** दिने **वृतं** स्वीकृतम्, **अक्तोः** रात्रौ **भृतं** धृतं **हुतं द्रव्यं नैरोग्यं प्रावर्द्धयत्** वर्द्धयेत्, **सुखं वेतु; तथा बर्हिः** अन्तरिक्षम् **इव राया** धनेन **सह देवं** दिव्यगुणं, **देवैः** विद्वद्भिः **सह वीरवत्** वीरैस्तुल्यं **वर्त्तमानं सुदेवं** शोभनं विद्वांसं **इन्द्रं** परमैश्वर्यकारकं **यज**॥ २८। १२॥

भाषार्थ—हे विद्वन्! जैसे (बर्हिष्मतः) अन्तरिक्ष से सम्बन्ध रखने वाले वायु, जल आदि को (अत्यगात्) लांघता है; (वसुवने) पृथिवी आदि वसुओं को धारण करने वाले जगत् के (वसुवने) धन के सेवन में, (वेद्याम्) हवनाधार कुण्ड में (स्तीर्णम्) काष्ठों और हवि से आच्छादित करने योग्य, (वस्तोः) दिन में (वृतम्) स्वीकृत, (अक्तोः) रात्रि में (भृतम्) धारण किया हुआ होम-द्रव्य आरोग्य को (प्रावर्द्धयत्) बढ़ाता है; सुख (वेतु) पहुँचाता है; वैसे (बर्हिः) अन्तरिक्ष के समान (राया) धन के साथ (देवम्) दिव्य गुणों वाले विद्वान् का, (देवैः) दिव्य गुणों वाले विद्वानों के साथ (वीरवत्) वीरों के तुल्य वर्ताव करने वाले (सुदेवम्) उत्तम (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य कारक विद्वान् का (यज) संग कर॥ २८। १२॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा यजमानो वेद्यां समित्सु चितं हुतघृतमग्निं वर्द्धयित्वा, ऽन्तरिक्षस्थानि वायुजलादीनि शोधयित्वा रोगनिवारणे न सर्वान् प्राणिनः प्रीणयति; तथैव सज्जना जना धनादिना सर्वान् सुखयन्ति॥२८।१२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। जैसे यजमान वेदी में समिधाओं में रखे हुए एवं घृत का होम किए हुए अग्नि को बढ़ाकर, अन्तरिक्ष में स्थित वायु और जल आदि को शुद्ध करके रोग-निवारण से सब प्राणियों को प्रसन्न करता है; वैसे ही सज्जन लोग धन आदि से सबको सुखी करते हैं॥ २८। १२॥

भाष्यसार—**१. मनुष्यों को क्या करना चाहिए**—यजमान लोग अन्तरिक्ष से सम्बन्ध रखने वाले वायु, जल आदि पदार्थों का उल्लंघन करें अर्थात् होम से उन्हें शुद्ध करें। यह जगत् वसु=धनों का आधार है। इस में यजमान धनों का संविभाग करें। यजमान वेदी अर्थात् यज्ञकुण्ड में काष्ठों और

हवियों से आच्छादन करने योग्य अग्नि को दिन में स्वीकार करें। रात्रि में भी धारण किए हुये होम-द्रव्य से आरोग्य को बढ़ावें। सुख को प्राप्त करें। आकाश के समान धन से युक्त दिव्य गुणों वाले विद्वान् को प्राप्त करें। वीरों के तुल्य परम ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाले उत्तम विद्वान् का संग करें।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त हैं; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि विद्वान् लोग यजमान के समान मन्त्रोक्त यज्ञ का अनुष्ठान करें॥ २८। १२॥

अश्विनौ। **छन्दः**=ऐश्वर्यम्। भुरिक् शक्वरी। पञ्चमः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

मनुष्यों को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है॥

दे॒वीर्द्वार॑ऽ इन्द्र॑ꣳ सङ्घा॒ते वी॒ड्वीर्याम॑न्नवर्द्धयन्। आ व॒त्सेन॒ तरु॑णेन कु॒मारे॑ण च मीव॒तापार्वा॑णꣳ रे॒णुक॑काटं नुदन्तां वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑॥ १३॥

पदार्थः—(**देवीः**) देदीप्यमानाः (**द्वारः**) द्वाराणि (**इन्द्रम्**) ऐश्वर्यम् (**सङ्घाते**) सम्बन्धे (**वीड्वीः**) विशेषेण स्तोतुं योग्याः (**यामन्**) यामनि मार्गे (**अवर्द्धयन्**) वर्द्धयन्ति (**आ**) (**वत्सेन**) वत्सवद्वर्त्तमानेन (**तरुणेन**) युवाऽवस्थेन (**कुमारेण**) अकृतविवाहेन (**च**) (**मीवता**) हिंसता (**अप**) (**अर्वाणम्**) गच्छन्तमश्वम् (**रेणुककाटम्**) रेणुकैर्युक्तं कूपम् (**नुदन्ताम्**) प्रेरयन्तु (**वसुवने**) (**वसुधेयस्य**) (**व्यन्तु**) प्राप्नुवन्तु (**यज**)॥ १३॥

अन्वयः—हे विद्वन् यथा वीड्वीर्देवीर्द्वारो रेणुककाटं यामन् वर्जयित्वा तरुणेन मीवता कुमारेण वत्सेन च सह वर्त्तमानमर्वाणमिन्द्रमावर्द्धयन् वसुवने सङ्घाते वसुधेयस्य विघ्नमप नुदन्तां व्यन्तु तथा यज॥ १३॥

सपदार्थान्वयः—हे **विद्वन्**! **यथा वीड्वीः** विशेषेण स्तोतुं योग्याः **देवीः** देदीप्यमानाः **द्वारः** द्वाराणि **रेणुककाटं** रेणुकैर्युक्तं कूपं **यामन्** यामनि=मार्गे **वर्जयित्वा, तरुणेन** युवाऽवस्थेन **मीवता** हिंसता **कुमारेण** अकृतविवाहेन **वत्सेन** वत्सवद्वर्त्तमानेन **च सह वर्त्तमानमर्वाणं** गच्छन्तमश्वम् **इन्द्रम्** ऐश्वर्यम् **आ+वर्द्धयन्** वर्द्धयन्ति, **वसुवने सङ्घाते** सम्बन्धे **वसुधेयस्य विघ्नमपनुदन्तां** प्रेरयन्तु, **व्यन्तु** प्राप्नुवन्तु; **तथा यज**॥ २८। १३॥

भाषार्थ—हे विद्वन्! जैसे—(वीड्वीः) विशेष स्तुति के योग्य, (देवीः) देदीप्यमान (द्वारः) द्वार—(रेणुककाटम्) रेणुओं से युक्त कूप को (यामन्) मार्ग में हटा कर, (तरुणेन) युवावस्था वाले, (मीवता) दुष्टों की हिंसा करने वाले, (कुमारेण) कुमार और (वत्सेन) बछड़े के तुल्य वर्तमान वाले (अर्वाणम्) गतिशील घोड़े को एवं (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को (आ+वर्द्धयन्) बढ़ाते हैं; (वसुवने) धनों के सेवन रूप (सङ्घाते) सम्बन्ध में (वसुधेयस्य) जगत् के विघ्न को (अपनुदन्ताम्) दूर करते हैं; (व्यन्तु) विद्या को प्राप्त कराते हैं; वैसे (यज) यज्ञ कर॥ २८। १३॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! यथा—पथिका मार्गे वर्त्तमानं कूपं निवार्य शुद्धं मार्गं कृत्वा प्राणिनः सुखेन गमयन्ति;

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। हे मनुष्यो! जैसे पथिक मार्ग में विद्यमान् कूप को हटाकर, शुद्ध मार्ग बनाकर प्राणियों

तथा—बाल्यावस्थायां विवाहादीन् विघ्नान् निवार्य, विद्यां प्रापय्य, स्वसन्तानान् सुखमार्गं गमयन्तु ॥१३॥

को सुख से पहुँचाते हैं; वैसे बाल्यावस्था में विवाह आदि विघ्नों को हटा कर, विद्या को प्राप्त कराके, अपने सन्तानों को सुख के मार्ग पर चलावें ॥ १३ ॥

भाष्यसार—१. **मनुष्यों को क्या करना चाहिए**—मनुष्य विशेष रूप से स्तुति करने योग्य, देदीप्यमान द्वारों का निर्माण करें। रेणुओं से युक्त कूप (झेरा) को मार्ग से हटावें, मार्ग को शुद्ध करके प्राणियों को सुख पहुँचावें। युवावस्था वाले, शत्रुओं का हिंसन करने वाले, कुमारों का विवाह करें। बाल्यावस्था में विवाह आदि विघ्नों का निवारण करें। कुमारों को विद्या प्राप्त करावें। अपने सन्तानों को सुख के मार्ग पर चलावें। शीघ्रगामी घोड़ों और ऐश्वर्य को बढ़ावें। धनों के सेवन में जगत् के विघ्नों को दूर करें। धनों को प्राप्त करें।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि पथिक लोगों के समान विद्वान् लोग मन्त्रोक्त यज्ञ का अनुष्ठान करें ॥ २८ । १३ ॥

अश्विनौ । **अहोरात्रम्**=**अहर्निशम्** । स्वराट्पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

देवी उषासानक्तेन्द्रं यज्ञे प्रयत्यह्वेताम् ।
दैवीर्विशः प्रायासिष्टाᳪं सुप्रीते सुधिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ १४ ॥

पदार्थः—(**देवी**) देदीप्यमाने (**उषासानक्ता**) रात्रिदिने (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्यवन्तं यजमानम् (**यज्ञे**) संगन्तव्ये यज्ञादिव्यवहारे (**प्रयति**) प्रयतन्ते यस्मिंस्तत्र (**अह्वेताम्**) आह्वयतः (**दैवीः**) देवानां=न्यायकारिणां विदुषामिमाः (**विशः**) प्रजाः (**प्र**) (**अयासिष्टाम्**) प्राप्नुतः (**सुप्रीते**) सुष्ठु प्रीतिर्याभ्यां ते (**सुधिते**) सुष्ठु हितकरे (**वसुवने**) धनविभागे (**वसुधेयस्य**) कोषस्य (**वीताम्**) व्याप्नुताम् (**यज**) ॥१४॥

अन्वयः—हे विद्वन् यथा सुप्रीते सुधिते देवी उषासानक्ता प्रयति यज्ञ इन्द्रमह्वेतां वसुधेयस्य वसुवने दैवीर्विशः प्रायासिष्टां सर्वं जगद्वीतां व्याप्नुतां तथा यज ॥ १४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **विद्वन्** ! **यथा सुप्रीते** सुष्ठु प्रीतिर्याभ्यां ते **सुधिते** सुष्ठु हितकरे **देवी** देदीप्यमाने **उषासानक्ता** रात्रिदिने, **प्रयति** प्रयतन्ते यस्मिंस्तत्र **यज्ञे** सङ्गन्तव्ये यज्ञादिव्यवहारे, **इन्द्रं** परमैश्वर्यवन्तं यजमानम् **अह्वेताम्** आह्वयतः; **वसुधेयस्य** कोषस्य **वसुवने** धनविभागे **दैवीः** देवानां=न्यायकारिणां विदुषामिमाः **विशः** प्रजाः **प्रायासिष्टां** प्राप्नुतः; **सर्वं जगद्वीतां**=**व्याप्नुतां**; **तथा यज** ॥ २८ । १४ ॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! जैसे—(सुप्रीते) उत्तम प्रीति के हेतु, (सुधिते) उत्तम हितकारी, (देवी) देदीप्यमान (उषासानक्ता) दिन-रात—(प्रयति) प्रयत्न के स्थान, (यज्ञे) संगति के योग्य यज्ञादि व्यवहार में (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य से युक्त यजमान को (अह्वेताम्) बुलाते हैं; और (वसुधेयस्य) कोष के (वसुवने) धन-विभाग में (दैवीः) देव=न्यायकारी विद्वानों की (विशः) प्रजा को (प्रायासिष्टाम्) प्राप्त कराते हैं; सब जगत् को

(वीताम्) व्याप्त करते हैं; वैसे (यज) यज्ञ कर ॥ २८ । १४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! यथाऽहर्निशं नियमेन वर्त्तित्वा प्राणिनो व्यवहारयति, तथा यूयं नियमेन वर्त्तित्वा प्रजा आनन्द्य सुखयत ॥ २८ । १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। हे मनुष्यो! जैसे दिन-रात नियम से वर्तमान होकर प्राणियों को व्यवहार में लगाते हैं; वैसे तुम नियम से वर्ताव करके, प्रजा को आनन्दित करके सुखी करो ॥ २८ । १४ ॥

भा० पदार्थः—उषासानक्ता=अहर्निशम्।

भाष्यसार—१. **मनुष्यों को क्या करना चाहिए**—रात और दिन उत्तम प्रीति के हेतु हैं। अत्यन्त हितकारी और देदीप्यमान हैं। वे प्रयत्न से साध्य यज्ञ आदि व्यवहार में परम ऐश्वर्यवान् यजमान को बुलाते हैं। कोष के धन-विभाग में वे न्यायकारी विद्वानों की प्रजा को प्राप्त होते हैं। सब जगत् व्याप्त करते हैं।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि सब मनुष्य दिन-रात के समान नियम में रहें तथा प्रजा को आनन्दित करें ॥ २८ । १४ ॥

अश्विनौ। **इन्द्रः**=**सूर्यः**। भुरिगतिजगती। निषादः॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है॥

दे॒वी जोष्ट्री॒ वसु॑धिती दे॒वमिन्द्र॑मवर्द्धताम्। अया॑व्य॒न्याघा द्वेषा॑ᳪ॑स्यान्या व॑क्ष॒द्वसु॒ वार्या॑णि॒ यज॑मानाय शिक्षि॒ते व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वी॒तां॒ यज॑ ॥ १५ ॥

पदार्थः—(**देवी**) देदीप्यमाने (**जोष्ट्री**) सेवमाने (**वसुधिती**) द्रव्यधारिके (**देवम्**) प्रकाशस्वरूपम् (**इन्द्रम्**) सूर्यम् (**अवर्द्धताम्**) वर्धयतः (**अयावि**) पृथक्कुरुतः (**अन्या**) भिन्ना (**अघा**) अन्धकाररूपा (**द्वेषांसि**) द्वेषयुक्तानि जन्तुजातानि (**आ**) (**अन्या**) भिन्ना प्रकाशरूपोषा (**वक्षत्**) वहेत (**वसु**) धनम् (**वार्याणि**) वारिषूदकेषु साधूनि (**यजमानाय**) पुरुषार्थिने (**शिक्षिते**) कृतशिक्षे सत्यौ (**वसुवने**) पृथिव्यादीनां संविभागे जगति (**वसुधेयस्य**) अन्तरिक्षस्य मध्ये (**वीताम्**) व्याप्नुताम् (**यज**) यज्ञं कुरु ॥ १५ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यथा वसुधिती जोष्ट्री देवी उषासानक्तेन्द्रं देवमवर्द्धतान्तयोरन्याऽघा द्वेषांस्यायाव्यन्या च वसु वार्याणि च वक्षत्। यजमानाय वसुधेयस्य वसुवने शिक्षिते वीतां तथा यज ॥ १५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन्! यथा **वसुधिती** द्रव्यधारिके **जोष्ट्री** सेवमाने **देवी** देदीप्यमाने **उषासानक्ता**, **इन्द्रं** सूर्यं **देवं** प्रकाशस्वरूपम् **अवर्द्धतां** वर्धयतः, **तयोरन्या** भिन्ना **अघा** अन्धकाररूपा **द्वेषांसि** द्वेषयुक्तानि जन्तुजातानि **आ**+**अयावि**

भाषार्थ—हे विद्वन्! जैसे—(वसुधिती) द्रव्यों को धारण करने वाले, (जोष्ट्री) सेवन करने योग्य, (देवी) देदीप्यमान (उषासानक्ता) दिन-रात (देवम्) प्रकाशस्वरूप (इन्द्रम्) सूर्य को (अवर्द्धताम्) बढ़ाते हैं; उनमें से (अन्या) एक

पृथक्कुरुतः, **अन्या** भिन्ना प्रकाशरूपोषा **च वसु** धनं **वार्याणि** वारिषूदकेषु साधूनि **च वक्षत्** वहेत, **यजमानाय** पुरुषार्थिने **वसुधेयस्य** अन्तरिक्षस्य मध्ये **वसुवने** पृथिव्यादीनां संविभागे जगति **शिक्षिते** कृतशिक्षे सत्यौ **वीतां** व्याप्नुतां; **तथा यज** यज्ञं कुरु ॥ २८ । १५ ॥

(अघा) अन्धकार रूप रात्रि (द्वेषांसि) द्वेष-युक्त जन्तुओं को (आ+अयावि) पृथक् करती है और (अन्या) दूसरी प्रकाश रूप उषा (वसु) धन और (वार्याणि) जल-सम्बन्धी व्यवहारों को (वक्षत्) प्राप्त कराती हैं; (यजमानाय) पुरुषार्थी मनुष्य के लिए (वसुधेयस्य) अन्तरिक्ष के मध्य में वर्तमान (वसुवने) पृथिवी आदि के संविभाग रूप जगत् में (शिक्षिते) शिक्षा करने वाले होकर (वीताम्) व्याप्त हों; वैसे (यज) यज्ञ कर ॥ २८ । १५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । हे मनुष्याः ! यूयं यथा—रात्रिदिने विभक्ते सती मनुष्यादीनां सर्वं व्यवहारं वर्द्धयतः; तयो रात्रिः प्राणिनः स्वापयित्वा द्वेषादीन् निवर्त्तयति; अन्य-द्दिनं च तान् द्वेषादीन् प्रापयति, सर्वान्=व्यवहारान् प्रद्योतयति च; तथा योगाभ्यासेन रागादीन् निवार्य शान्त्यादीन् गुणान् प्राप्य सुखानि प्राप्नुत ॥२८।१५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । हे मनुष्यो ! तुम—जैसे रात-दिन विभक्त होकर मनुष्य आदि के सब व्यवहार को बढ़ाते हैं; उनमें से रात्रि प्राणियों को सुलाकर द्वेष आदि को निवृत्त करती है; और दिन उन द्वेष आदिक को प्राप्त कराता है; और सब व्यवहारों को प्रकाशित करता है; वैसे योगाभ्यास से राग आदि को निवृत्त करके, शान्ति आदि गुणों को प्राप्त करके सुखों को प्राप्त करो ॥ २८ । १५ ॥

भा० पदार्थः—उषासानक्ता=रात्रिदिने । देवम्=मनुष्यादीनां सर्वं व्यवहारम् । अघा= रात्रिः । द्वेषांसि=द्वेषादीन् । अयावि=निवर्त्तयति । वक्षत्=प्रापयति ।

भाष्यसार—१. **मनुष्यों को क्या करना चाहिए**—रात और दिन द्रव्यों का धारण-पोषण करने वाले हैं; सब की सेवा करने वाले हैं। प्रकाश से देदीप्यमान हैं । वे प्रकाश स्वरूप सूर्य को बढ़ाते हैं । अन्धकार रूप रात्रि द्वेष-युक्त जन्तुओं को पृथक् करती है अर्थात् प्राणियों को सुलाकर द्वेष आदि को निवृत्त करती है । प्रकाश रूप उषा (दिन) धन और जल सम्बन्धी व्यवहारों को प्राप्त कराती है । प्राणियों को द्वेष आदि पहुँचाती और सब व्यवहारों को प्रकाशित करती है ।

अन्तरिक्ष के मध्य में पृथिवी आदि रूप में संविभक्त जगत् में ये—दिन और रात व्याप्त हैं । ये मनुष्यों को शिक्षा कर रहे हैं कि सब मनुष्य योगाभ्यास से राग-द्वेष आदि दोषों का निवारण करें तथा शान्ति आदि गुणों को प्राप्त करें । रात्रि निवृत्ति की और दिन प्रवृत्ति का द्योतक है ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । उपमा यह है कि विद्वान् लोग रात्रि और दिन के समान राग आदि दोषों से निवृत्त और शान्ति आदि गुणों में प्रवृत्त हों ॥ २८ । १५ ॥

अश्विनौ । **इन्द्रः**=ऐश्वर्यम् । भुरिगाकृतिः । निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

दे॒वी ऽ ऊ॒र्जाहु॑ती दु॒घे सु॒दु॒घे पय॒सेन्द्रं॑मवर्द्धताम् । इष॒मूर्ज॑म॒न्या व॑क्ष॒त्सग्धि॒ꣳ सपी॑तिम॒न्या नवे॑न॒ पूर्वं॒ दय॑माने पु॒रा॒णेन॒ नव॒मधा॑ता॒मूर्ज॑मू॒र्जाहु॑ती ऽ ऊ॒र्जय॑माने॒ वसु॒ वार्या॑णि॒ यज॑मानाय शिक्षि॒ते व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वीतां॒ यज॑ ॥ १६ ॥

पदार्थः—(**देवी**) दिव्यगुणप्रापिके (**ऊर्जाहुती**) बलप्राणधारिके (**दुघे**) सुखानां प्रपूरिके (**सुदुघे**) सुष्ठुकामवर्द्धिके (**पयसा**) जलेन (**इन्द्रम्**) ऐश्वर्यम (**अवर्द्धताम्**) वर्द्धयतः (**इषम्**) अन्नम् (**ऊर्जम्**) बलम् (**अन्या**) रात्रिः (**वक्षत्**) प्रापयति (**सग्धिम्**) समानं भोजनम् (**सपीतिम्**) पानेन सह वर्त्तमानम् (**अन्या**) दिनाख्या (**नवेन**) नवीनेन (**पूर्वम्**) (**दयमाने**) रात्र्यौ (**पुराणेन**) प्राचीनेन स्वरूपेण (**नवम्**) नवीनं स्वरूपम् (**अधाताम्**) दध्याताम् (**ऊर्जम्**) प्राणनम् (**ऊर्जाहुती**) बलस्यादात्र्यौ (**ऊर्जयमाने**) बलं कुर्वाणे (**वसु**) धनम् (**वार्याणि**) वरितुमर्हाणि कर्माणि (**यजमानाय**) सङ्गत्यै प्रवर्त्तमानाय जीवाय (**शिक्षिते**) विद्वद्भिरुपदिष्टे (**वसुवने**) धनदानाधिकरणे (**वसुधेयस्य**) वस्वैश्वर्यं धेयं यत्र तस्येश्वरस्य (**वीताम्**) व्याप्नुताम् (**यज**) संगच्छस्व ॥ १६ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यथा वसुधेयस्य वसुवने वर्त्तमाने विद्वद्भिर्वसु वार्याणि शिक्षिते रात्रिदिने यजमानाय व्यवहारं वीतां तथोर्जाहुता देवी पयसा दुघे सुदुघे सत्याविन्द्रमवर्द्धतां तयोरन्या इषमूर्जं वक्षदन्या सपीतिं सग्धिं वक्षद्दयमाने सत्यौ नवेन पूर्वं पुराणेन नवमधातामूर्जयमाने ऊर्जाहुती ऊर्जमधातां तथा यज ॥ १६ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे विद्वन् ! यथा वसुधेयस्य** वस्वैश्वर्यं धेयं यत्र तस्येश्वरस्य **वसुवने** धनदानाधिकरणे **वर्त्तमाने, विद्वद्भिर्वसु** धनं, **वार्याणि** वरितुमर्हाणि कर्माणि, **शिक्षिते** विद्वद्भिरुपदिष्टे **रात्रिदिने, यजमानाय** सङ्गत्यै प्रवर्त्तमानाय जीवाय **व्यवहारं वीतां** व्याप्नुतां; **तथोर्जाहुती** बलस्यादात्र्यौ **देवी** दिव्यगुणप्रापिके **पयसा** जलेन **दुघे** सुखानां प्रपूरिके **सुदुघे** सुष्ठुकामवर्द्धिके **सत्याविन्द्रम्** ऐश्वर्यम् **अवर्द्धतां** वर्द्धयतः; **तयोरन्या** रात्रिः **इषम्** अन्नम् **ऊर्जं** बलं **वक्षत्** प्रापयति, **अन्या** दिनाख्या **सपीतिं** पानेन सह वर्त्तमानं **सग्धिं** समानं भोजनं **वक्षत्** प्रापयति, **दयमाने** रात्र्यौ **सत्यौ नवेन** नवीनेन **पूर्वं पुराणेन** प्राचीनेन स्वरूपेण **नवं** नवीनम् **अधातां** दध्याताम्, **ऊर्जयमाने** बलं कुर्वाणे **ऊर्जाहुती** बलप्राणधारिके **ऊर्जं** प्राणनम् **अधातां** दध्यातां; **तथा यज** सङ्गच्छस्व ॥ २८ । १६ ॥

भाषार्थ—हे विद्वन् ! जैसे—(वसुधेयस्य) वसु=ऐश्वर्य को धारण करने वाले ईश्वर के (वसुवने) धन-दान के आधार जगत् में विद्वान् के द्वारा (वसु) धन, (वार्याणि) वरण करने योग्य कर्म (शिक्षिते) विद्वानों से उपदिष्ट रात-दिन—(यजमानाय) संगति के लिए प्रवृत्त जीव के लिए व्यवहार को (वीताम्) व्याप्त करते हैं; वैसे ही (ऊर्जाहुती) बल को ग्रहण करने वाली आहुतियाँ (देवी) दिव्य गुणों की प्रापक, (पयसा) जल से (दुघे) सुखों की पूरक, (सुदुघे) उत्तम कामनाओं की वर्द्धक होकर (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को बढ़ाती हैं; उनमें से (अन्या) एक रात्रि (इषम्) अन्न एवं (ऊर्जम्) बल को (वक्षत्) प्राप्त कराती है; (अन्या) और दूसरा दिन (सपीतिम्) पान के सहित (सग्धिम्) समान भोजन को (वक्षत्) प्राप्त कराता है; (दयमाने) सुख देने वाले होकर (नवेन) नवीन से (पूर्वम्) पुराने एवं (पुराणेन) प्राचीन स्वरूप से (नवम्) नवीन स्वरूप को (अधाताम्) धारण करते हैं; ये आहुतियाँ (ऊर्जयमाने) बल को बढ़ाती हुई (ऊर्जाहुती) बल एवं प्राणों को धारण करने वाली

होकर (ऊर्जम्) प्राण को (अधाताम्) धारण करती हैं; वैसे (यज) संग कर ॥ २८ । १६ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! यथा—रात्रिदिने वर्त्तमानस्वरूपेण पूर्वापरस्वरूपज्ञापिके आहारविहारप्रापिके वर्त्तेते, तथा—अग्नौ हुता आहुतयः सर्वसुखप्रपूरिका जायन्ते। यदि मनुष्याः कालस्य सूक्ष्मामपि वेलां व्यर्थां नयेयुर्वाय्वादिपदार्थान् न शोधयेयुरदृष्टमनुमानेन न विद्युस्तर्हि—सुखमपि नाप्नुयुः ॥ २८ । १६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे रात-दिन वर्तमान स्वरूप से पूर्वापर के स्वरूप को बतलाने वाले और आहार-विहार के प्रापक हैं; वैसे अग्नि में दी हुई आहुतियाँ सब सुखों को पूरण करने वाली होती हैं। यदि मनुष्य काल की सूक्ष्म वेला को भी व्यर्थ गंवावे, वायु आदि पदार्थों को शुद्ध न करें, अदृष्ट को अनुमान से न जानें तो सुख को भी प्राप्त नहीं हो सकते ॥ २८ । १६ ॥

भाष्यसार—१. मनुष्यों को क्या करना चाहिए—वसु अर्थात् ऐश्वर्य के आधार ईश्वर के रचे धन-दान के स्थान इस जगत् में विद्वान् लोग धन को बढ़ावें। वरण करने योग्य कर्मों का अनुष्ठान करें। जैसे संगति के लिए प्रवृत्त जीव के लिए रात और दिन व्यवहार को व्याप्त करते हैं वैसे बल को बढ़ाने वाली, अग्नि में होम की हुई आहुतियाँ दिव्य गुणों को प्राप्त कराने वाली हैं; जल से सुखों को पूरण करने वाली हैं; अच्छे प्रकार कामना को बढ़ाने वाली होकर ऐश्वर्य को बढ़ाती हैं। रात्रि अन्न और बल को प्राप्त कराती है। दिन पान के साथ भोजन को प्राप्त कराता है। ये दोनों आहार-विहार के प्रापक हैं। रात और दिन इस प्रकार सुख देने वाले होकर नवीन से प्राचीन और प्राचीन से नवीन अर्थात् पूर्वापर स्वरूप को बतलाने वाले हैं। वैसे अग्नि में होम की हुई आहुतियाँ बल को उत्पन्न करने वाली तथा बल और प्राण को धारण करने वाली हैं। यहाँ रात-दिन के वर्णन का अभिप्राय यह है कि मनुष्य काल की सूक्ष्म वेला को भी व्यर्थ न गवावें। आहुतियों का अभिप्राय यह है कि वायु आदि पदार्थों को होम से शुद्ध करें। नवीन और प्राचीन का अभिप्राय यह है कि अनुमान से अदृष्ट को जानें।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि रात और दिन के समान अग्नि में होम की हुई आहुतियाँ सब सुखों को पूरण करने वाली हैं ॥ २८। १६ ॥

अश्विनौ। **अश्विनौ**=वायुविद्युतौ। भुरिग्जगती। निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

दे॒वा दैव्या॒ होता॑रा दे॒वमिन्द्र॑मव॒र्द्ध॑ताम्।
ह॒ताघ॑शꣳसा॒वाभा॑र्ष्टां॒ वसु॒ वार्या॑णि॒ यज॑मानाय शिक्षि॒तौ व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वी॒तां यज॑ ॥ १७ ॥

पदार्थः—(**देवा**) सुखप्रदातारौ (**दैव्या**) देवेषु=दिव्येषु गणेषु भवौ (**होतारा**) धर्त्तारौ वायुपावकौ (**देवम्**) दिव्यगुणम् (**इन्द्रम्**) सूर्यम् (**अवर्द्धताम्**) वर्धयताम् (**हताघशंसौ**) हता अघशंसाः=स्तेना याभ्यान्तौ (**आ**) (**अभार्ष्टाम्**) दहताम् (**वसु**) धनम् (**वार्याणि**) वर्त्तुमर्हाण्युदकानि (**यजमानाय**) (**शिक्षितौ**) विज्ञापितौ (**वसुवने**) (**वसुधेयस्य**) (**वीताम्**) व्याप्नुताम् (**यज**) ॥ १७ ॥

अन्वयः—हे विद्वन्यथा दैव्या होतारा देवा वायुवह्नी इन्द्रं देवमवर्द्धतां हताघशंसौ रोगानाभार्ष्टां यजमानाय शिक्षितौ सन्तौ वसुधेयस्य वसुवने वसु वार्याणि च वीतां तथा यज ।। १७ ।।

सपदार्थान्वयः—**हे विद्वन् ! यथा—दैव्या** देवेषु=दिव्येषु गुणेषु भवौ **होतारा** धर्त्तारौ वायुपावकौ **देवा**=**वायुवह्नी** सुखप्रदातारौ, **इन्द्रं** सूर्यं **देवं** दिव्यगुणम् **अवर्द्धतां** वर्द्धयताम्, **हताघशंसौ** हता अघशंसाः=स्तेना याभ्यान्तौ **रोगानाभार्ष्टां** दहताम्; **यजमानाय शिक्षितौ** विज्ञापितौ **सन्तौ, वसुधेयस्य वसुवने वसु** धनं **वार्याणि** वर्त्तुमर्हाण्युदकानि **च वीतां** व्याप्नुतां; **तथा यज** ।। २८ । १७ ।।

भाषार्थ—हे विद्वन् ! जैसे—(दैव्या) दिव्य गुणों से युक्त, (होतारा) धारण करने करने वाले, (देवा) सुख प्रदान करने वाले वायु और अग्नि (देवम्) दिव्य गुणों से युक्त (इन्द्रम्) सूर्य को (अवर्द्धताम्) बढ़ाते हैं; (हताघशंसौ) पाप के प्रशंसक स्तेनों को मारने वाले वे रोगों को (अभार्ष्टाम्) दग्ध करते हैं, (यजमानाय) यजमान के लिए (शिक्षितौ) विज्ञापित होकर (वसुधेयस्य) सब ऐश्वर्य के आधार ईश्वर के (वसुवने) धन-दान के स्थान जगत् में (वसु) धन को और (वार्याणि) वरण करने योग्य जलों को (वीताम्) व्याप्त करते हैं; वैसा (यज) यज्ञ कर ।। २८ । १७ ।।

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यदि मनुष्या वायुविद्युतौ सूर्यनिमित्ते विज्ञाय, धनानि संचिनुयुस्तर्हि स्तेननाशकाः स्युः ।। १७ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । यदि मनुष्य वायु और विद्युत् को सूर्य का निमित्त जानकर, धनों का संचय करें तो स्तेन=चोरों के नाशक हों ।। २८ । १७ ।।

भा० पदार्थः—देवा=वायुविद्युतौ । हताघशंसौ=स्तेननाशकौ ।।

भाष्यसार—**१. मनुष्यों को क्या करना चाहिए**—दिव्य गुणों से युक्त, जगत् को धारण करने वाले, सुख प्रदान करने वाले वायु और अग्नि दिव्य गुणों से युक्त सूर्य को बढ़ाते हैं; सूर्य के निमित्त हैं । पाप की प्रशंसा करने वाले स्तेन=चोरों का विनाश करने वाले हैं तथा रोगों को दग्ध करते हैं । यजमान=जीव इन वायु और अग्नि की शिक्षा प्राप्त करके ईश्वर के रचने इस जगत् में इन से धन को प्राप्त करे, वरण करने योग्य जलों को प्राप्त करें तथा पापियों का विनाश करें ।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि वायु और अग्नि के समान विद्वान् मन्त्रोक्त यज्ञ का अनुष्ठान करें ।। २८ । १७ ।। ●

अश्विनौ । **इन्द्रः=सूर्य इव जीवः** । अतिजगती । निषादः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

मनुष्यों को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ।।

देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीः पतिमिन्द्रमवर्द्धयन् ।
अस्पृक्षद्भारती दिवꣳ रुद्रैर्यज्ञꣳ सरस्वतीडा वसुमती गृहान्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ।।१८।।

पदार्थः—(**देवीः**) देव्यः (**तिस्रः**) त्रित्वसंख्याकाः (**तिस्रः**) पुनरुक्तमतिशयबोधनार्थम् (**देवीः**) दिव्याः क्रियाः (**पतिम्**) पालकम् (**इन्द्रम्**) सूर्यमिव जीवम् (**अवर्द्धयन्**) वर्द्धयन्ति (**अस्पृक्षत्**) स्पृहेत् (**भारती**) धारिका (**दिवम्**) प्रकाशम् (**रुद्रैः**) प्राणैः (**यज्ञम्**) सङ्गन्तव्यं व्यवहारम् (**सरस्वती**) विज्ञानयुक्ता वाक् (**इडा**) प्रशंसनीया वाणी (**वसुमती**) बहूनि वसूनि=द्रव्याणि विद्यन्ते यस्यां सा (**गृहान्**) गृहस्थान् गृहाणि वा (**वसुवने**) (**वसुधेयस्य**) (**व्यन्तु**) (**यज**) ॥ १८ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् या रुद्रैर्भारती दिवं सरस्वती यज्ञं वसुमतीडा गृहान्धरन्त्यो देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीः पतिमिन्द्रञ्चावर्द्धयन् वसुधेयस्य वसुवने गृहान् व्यन्तु तास्त्वं यज भवानस्पृक्षत् ॥ १८ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे विद्वन् ! या रुद्रैः** प्राणैः **भारती** धारिका **दिवं** प्रकाशं; **सरस्वती** विज्ञानयुक्ता वाक् **यज्ञं** सङ्गन्तव्यं व्यवहारं, **वसुमती** बहूनि वसूनि=द्रव्याणि विद्यन्ते यस्यां सा **इडा** प्रशंसनीया वाणी **गृहान्** गृहस्थान् गृहाणि वा **धरन्त्यो देवीः** देव्यः **तिस्रः** त्रित्वसंख्याकाः **तिस्रः** पुनरुक्तमतिशयबोधनार्थं **देवीः** दिव्याः क्रियाः **पतिं** पालकम् **इन्द्रं** सूर्यमिव जीवं **चावर्द्धयन्** वर्द्धयन्ति, **वसुधेयस्य वसुवने गृहान्** गृहस्थान् गृहाणि वा **व्यन्तु; तास्त्वं यज; भवानस्पृक्षत्** स्पृहेत् ॥२८।१८॥

भाषार्थ—हे विद्वन् ! जो (रुद्रैः) प्राणों के द्वारा (भारती) धारण करने वाली वाणी (दिवम्) प्रकाश को; (सरस्वती) विज्ञान से युक्त वाणी (यज्ञम्) संगति के योग्य व्यवहार को, (वसुमती) बहुत वसु=द्रव्यों वाली (इडा) प्रशंसनीय वाणी (गृहान्) गृहस्थों वा घरों को धारण करती हुई (देवीः, तिस्रः) ये तीन दिव्य वाणियाँ (तिस्रः, देवीः) तीन दिव्य क्रियाओं को तथा (पतिम्) पालक (इन्द्रम्) सूर्य के तुल्य जीव को (अवर्द्धयन्) बढ़ाती हैं; (वसुधेयस्य) सब द्रव्यों के आधार (वसुवने) संसार में (गृहान्) गृहस्थों वा घरों को (व्यन्तु) व्याप्त करती हैं, उनका तू (यज) संग कर; आप उनकी (अस्पृक्षत्) स्पृहा=कामना करो ॥ २८ । १८ ॥

भावार्थः—यथा-जलाग्निवायुगतयो, दिव्याः क्रियाः, सूर्यप्रकाशं च वर्द्धयन्ति, तथा ये मनुष्याः सकलविद्याधारिकामखिलक्रियाहेतुं, सर्वदोषगुणविज्ञापिकां त्रिविधां वाचं विजानन्ति, तेऽस्मिन् सर्वद्रव्याकरे संसारे श्रियमाप्नुवन्ति ॥ २८ । १८ ॥

भावार्थ—जैसे जल, अग्नि और वायु की गतियाँ दिव्य क्रियाओं और सूर्य के प्रकाश को बढ़ाती हैं; वैसे जो मनुष्य सकल विद्याओं को धारण करने वाली, सब क्रियाओं की हेतु, सब दोष-गुणों की विज्ञापक, तीन प्रकार की वाणी को जानते हैं; वे इस सब द्रव्यों के आकर संसार में श्री=लक्ष्मी को प्राप्त करते हैं ॥ २८ । १८ ॥

भा० पदार्थः—देवीः=जलाग्निवायुगतयः। इन्द्रम्=सूर्यप्रकाशम्। भारती=सकलविद्याधारिका वाक्। सरस्वती=अखिलक्रियाहेतुर्वाक्। इडा=सर्वदोषगुणविज्ञापिका वाक्। वसुधेयस्य =सर्वद्रव्याकरस्य। वसुवने=संसारे। गृहान्=श्रियम्। व्यन्तु=आप्नुवन्ति। दिवम्=सूर्यप्रकाशम्।

भाष्यसार—**मनुष्यों को क्या करना चाहिए**—प्राणों के द्वारा धारक शक्ति वाली भारती नामक वाणी प्रकाश को धारण करती है। विज्ञान से युक्त सरस्वती नामक वाणी संगति के योग्य व्यवहार को धारण करती है। बहुत द्रव्यों से युक्त, प्रशंसनीय 'इडा' नामक वाणी गृहस्थों एवं घरों को धारण करती है। भारती, सरस्वती और इडा ये तीन वाणियाँ हैं। यहाँ 'तिस्रः' पद का दो बार प्रयोग उनके अधिक महत्त्व को प्रकट करता है। ये दिव्य गुणों युक्त तीन वाणियाँ पालक सूर्य के तुल्य जीव को

बढ़ाती हैं। तात्पर्य यह है कि जैसे जल, अग्नि और वायु की गतियाँ दिव्य क्रियाओं को और सूर्य के प्रकाश को बढ़ाती हैं वैसे सब मनुष्य उक्त तीनों वाणियाँ को जानें तथा इस संसार में श्री=लक्ष्मी को प्राप्त करें ॥ २८ । १८ ॥

अश्विनौ । **इन्द्रः=ऐश्वर्यमिच्छुको जीवः** । कृतिः । निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

देव ऽ इन्द्रो नराशꣳसस्त्रिवरूथस्त्रिबन्धुरो देवमिन्द्रमवर्धयत् । शतेन शितिपृष्ठानामाहितः सहस्रेण प्र वर्त्तते मित्रावरुणेदस्य होत्रमर्हतो बृहस्पति स्तोत्रमश्विनाध्वर्यवं वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ १९ ॥

पदार्थः—(**देवः**) जीवः (**इन्द्रः**) ऐश्वर्यमिच्छुकः (**नराशंसः**) यो नराञ्छंसति=स्तौति सः (**त्रिवरूथः**) त्रीणि त्रिविधसुखप्रदानि वरूथानि=गृहाणि यस्य सः (**त्रिबन्धुरः**) त्रयो बन्धुरा=बन्धनानि यस्य सः (**देवम्**) देदीप्यमानम् (**इन्द्रम्**) विद्युतम् (**अवर्द्धयत्**) वर्धयेत् (**शतेन**) एतत्सङ्ख्याकेन कर्मणा (**शितिपृष्ठानाम्**) शितयस्तीक्ष्णा गतयः पृष्ठे येषान्तेषाम् (**आहितः**) समन्ताद्धृतः (**सहस्रेण**) असङ्ख्येन पुरुषार्थेन (**प्र, वर्त्तते**) (**मित्रावरुणा**) प्राणोदानौ (**इत्**) एव (**अस्य**) जीवस्य (**होत्रम्**) अदनम् (**अर्हतः**) (**बृहस्पतिः**) बृहतां पालको विद्युद्रूपोऽग्निः (**स्तोत्रम्**) स्तुवन्ति येन तत् (**अश्विना**) सूर्याचन्द्रमसौ (**अध्वर्यवम्**) य आत्मनोऽध्वरमिच्छति तम् । **अत्र वाच्छन्दसीत्यस्यपि गुणावादेशौ ।** (**वसुवने**) यो वसूनि वनुते=याचते तस्मै (**वसुधेयस्य**) संसारस्य (**वेतु**) (**यज**) ॥ १९ ॥

प्रमाणार्थ—(**अध्वर्यवम्**) यहाँ 'वा छन्दसि' इस सूत्र से गुण और अव-आदेश हैं ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! यथा त्रिबन्धुरास्त्रिवरूथो नराशंसो देव इन्द्रः शतेनेन्द्रं देवमवर्धयद्यः शितिपृष्ठानां मध्य आहितः सहस्रेण प्रवर्त्तते मित्रावरुणास्येद्धोत्रमर्हतो वसुधेयस्य बृहस्पतिः स्तोत्रमश्विनाऽध्वर्यवं वसुवने वेतु तथा यज ॥ १९ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे विद्वन् ! यथा**—**त्रिबन्धुरः** त्रयो बन्धुरा=बन्धनानि यस्य सः, **त्रिवरूथः** त्रीणि त्रिविधसुखप्रदानि वरूथानि=गृहाणि यस्य सः, **नराशंसः** यो नराञ्छंसति=स्तौति सः, **देवः** जीवः **इन्द्रः** ऐश्वर्यमिच्छुकः; **शतेन** एतत्सङ्ख्याकेन कर्मणा **इन्द्रं** विद्युतं **देवं** देदीप्यमानम् **अवर्द्धयत्** वर्धयेत्; **यः शितिपृष्ठानां** शितयस्तीक्ष्णा गतयः पृष्ठे येषां तेषां **मध्य आहितः** समन्ताद् धृतः, **सहस्रेण** असङ्ख्येन पुरुषार्थेन **प्रवर्त्तते; मित्रावरुणा** प्राणोदानौ **अस्य** जीवस्य **इत्** एव **होत्रम्** अदनम् **अर्हतो; वसुधेयस्य** संसारस्य **बृहस्पतिः** बृहतां पालको विद्युद्रूपोऽग्निः, **स्तोत्रं** स्तुवन्ति येन तद्; **अश्विना** सूर्याचन्द्रमसौ **अध्वर्यवं**

भाषार्थ—हे विद्वन् ! जैसे—(त्रिबन्धुरः) तीन बन्धनों वाला, (त्रिवरूथः) तीन प्रकार के सुख प्रदान करने वाले घरों से युक्त, (नराशंसः) नरों की स्तुति करने वाला, (इन्द्रः) ऐश्वर्य का इच्छुक (देवः) जीव—(शतेन) सौ प्रकार के कर्म से (देवम्) देदीप्यमान (इन्द्रम्) विद्युत् को (अवर्द्धयत्) बढ़ाता है; और जो—(शितिपृष्ठानाम्) जिनकी पीठ पर बैठने से तीक्ष्ण गतियाँ होती हैं उनके मध्य में (आहितः) विद्यमान जीव (सहस्रेण) असंख्य पुरुषार्थ से (प्रवर्त्तते) प्रवृत्त होता है, और—(मित्रावरुणा) प्राण तथा उदान (अस्य) इस जीव के (इत्) ही (होत्रम्) भोजन के (अर्हतः) योग्य हैं; (वसुधेयस्य) संसार का (बृहस्पतिः)

य आत्मनोऽध्वरमिच्छति तं **वसुवने** यो वसूनि वनुते याचते तस्मै **वेतु;** **तथा यज** ।। २८ । १९ ।।

महान् पालक विद्युत् रूप अग्नि (स्तोत्रम्) स्तोत्र है; (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा (अध्वर्यवम्) अपने यज्ञ के इच्छुक को तथा (वसुवने) वसु=धन की याचना करने वाले के लिए (वेतु) प्राप्त हो; वैसा (यज) यज्ञ कर ।। २८ । १९ ।।

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । ये मनुष्यास्त्रिविधसुखकराणि त्रैकाल्यप्रबन्धानि गृहाणि रचयित्वाऽसंख्यं सुखमवाप्य, पथ्यं भोजनं, याचमानाय यथायोग्यं वस्तु ददति, ते कीर्ति लभन्ते ।। २८ । १९ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । जो मनुष्य—तीन प्रकार के सुख प्रदान करने वाले, तीन कालों के प्रबन्ध वाले घरों को बनाकर, असंख्य सुख को प्राप्त करके, भोजन करके याचक के लिए यथायोग्य वस्तु देते हैं; वे कीर्ति को प्राप्त करते हैं ।। २८ । १९ ।।

भा० पदार्थः—त्रिवरूथः=त्रिविधसुखकरः । त्रिबन्धुरः=त्रैकाल्यप्रबन्धः । शतेन=असंख्येन । इन्द्रम्=सुखम् । होत्रम्=पथ्यं भोजनम् । वसुवने=याचमानाय ।।

भाष्यसार—१. **मनुष्यों को क्या करना चाहिए**—तीन बन्धनों वाला, तीनों कालों में सुख प्रदान करने वाले घरों से युक्त, नरों की स्तुति करने वाला, ऐश्वर्य का इच्छुक जीव—असंख्य कर्मों से देदीप्यमान विद्युत् को बढ़ावे । तीन प्रकार का सुख प्रदान करने वाले, तीनों कालों के प्रबन्ध से युक्त घरों का निर्माण करके असंख्य सुख को प्राप्त करे । जिनकी पीठ पर बैठने से तीक्ष्ण गति होती है उन घोड़े आदि पशुओं के मध्य में रहकर असंख्य पुरुषार्थ से कार्यों में प्रवृत्त रहे । इस जीव का प्राण और उदान भोजन हैं; उन्हें बढ़ावें । पथ्य आहार (भोजन) करे । इस संसार का पालक विद्युत् रूप अग्नि है । उसकी स्तुति करे अर्थात् उसके गुणों को जाने । इस संसार के सूर्य और चन्द्रमा अध्वर्यु हैं; उन्हें जाने । याचक के लिए यथायोग्य वस्तु प्रदान करके कीर्ति को प्राप्त करे ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । उपमा यह है कि विद्वान् लोग मन्त्र में प्रतिपादित जीव के तुल्य यज्ञ का अनुष्ठान करें ।। २८ । १९ ।। ●

अश्विनौ । **इन्द्रः**=**विद्वान्** । निचृदतिशक्वरी । पञ्चमः ।।

पुनर्विद्वांसः किं कुर्वन्तीत्याह ।।

फिर विद्वान् लोग क्या करते हैं, यह उपदेश किया है ।।

दे॒वो दे॒वैर्वन॒स्पति॒र्हिर॑ण्यपर्णो॒ मधु॑शाखः सुपिप्प॒लो दे॒वमिन्द्र॑मवर्धयत् ।
दि॒वमग्रे॑णास्पृक्ष॒दान्तरि॑क्षं पृथि॒वीम॑दृꣳहीद्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वेतु॒ यज॑ ।। २० ।।

पदार्थः—(**देवः**) दिव्यगुणप्रदः (**देवैः**) देदीप्यमानैः (**वनस्पतिः**) किरणानां पालकः (**हिरण्यपर्णः**) हिरण्यानि=तेजांसि पर्णानि यस्य सः (**मधुशाखः**) मधुराः शाखा यस्य (**सुपिप्पलः**) सुन्दरफलः (**देवम्**) दिव्यगुणम् (**इन्द्रम्**) दारिद्र्यविदारकम् (**अवर्धयत्**) वर्धयति (**दिवम्**) प्रकाशम् (**अग्रेण**) पुरस्सरेण (**अस्पृक्षत्**) स्पृहेत् (**आ**) समन्तात् (**अन्तरिक्षम्**) अवकाशम् (**पृथिवीम्**) भूमिम् (**अदृंहीत्**) धरेत् (**वसुवने**) वसुप्रदाय जीवाय (**वसुधेयस्य**) जगतः (**वेतु**) (**यज**) ।। २० ।।

अन्वयः—हे विद्वन् ! यथा देवैः सह वर्त्तमानो हिरण्यपर्णो मधुशाखः सुपिप्पलो देवो वनस्पतिर्देवमिन्द्रमवर्द्धयदग्रेण दिवमस्पृक्षदन्तरिक्षं तत्स्थांल्लोकान् पृथिवीञ्चादृंहीद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु तथा यज ॥ २० ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! **यथा**—**देवैः** देदीप्यमानैः **सह वर्त्तमानो हिरण्यपर्णः** हिरण्यानि=तेजांसि पर्णानि यस्य सः, **मधुशाखः** मधुराः शाखा यस्य, **सुपिप्पलः** सुन्दरफलः, **देवः** दिव्यगुणप्रदः, **वनस्पतिः** किरणानां पालकः; **देवं** दिव्यगुणम् **इन्द्रं** दारिद्रयविदारकम् **अवर्द्धयद्** वर्धयति; **अग्रेण** पुरस्सरेण **दिवं** प्रकाशम् **अस्पृक्षत्** स्पृहेत्, **अन्तरिक्षम्** अवकाशं **तत्स्थांल्लोकान्, पृथिवीं** भूमिं **च आ+अदृंहीत्** समन्तात् धरेत्, **वसुवने** वसुप्रदाय जीवाय **वसुधेयस्य** जगतः **वेतु; तथा यज** ॥ २८ । २० ॥

भाषार्थ—हे विद्वन्! जैसे—(देवैः) देदीप्यमान गुणों के साथ वर्तमान, (हिरण्यपर्णः) हिरण्य=तेजस्वी पर्ण=पत्तों वाला, (मधुशाखः) मधुर शाखाओं वाला, (सुपिप्पलः) सुन्दर फलों वाला, (देवः) दिव्य गुण प्रदान करने वाला (वनस्पतिः) किरणों का पालक सूर्य एवं वनस्पति (इन्द्रम्) दरिद्रता के विदारक (देवम्) दिव्य गुणों वाले लोकों को वा मेघ को (अवर्द्धयत्) बढ़ाता है; (अग्रेण) अग्रसर होकर (दिवम्) प्रकाश की (अस्पृक्षत्) स्पृहा करता है; (अन्तरिक्षम्) आकाश एवं उसमें स्थित लोकों को और (पृथिवीम्) भूमि को (आ+अदृंहीत्) सब ओर से धारण करता है; (वसुवने) वसु=धन प्रदान करने वाले जीव के लिए (वसुधेयस्य) संसार के सब धन (वेतु) प्राप्त कराता है; वैसा (यज) यज्ञ कर ॥ २८ । २० ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यथा—वनस्पतयो मेघं वर्द्धयन्ति, सूर्यश्च लोकान् धरति, तथा विद्वांसो विद्यायाचिनं विद्यार्थिनं वर्धयन्ति ॥ २८ । २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । जैसे वनस्पतियाँ मेघों को बढ़ाती हैं और सूर्य लोकों को धारण करता है; वैसे विद्वान् लोग विद्या के याचक विद्यार्थी को बढ़ाते हैं ॥ २८ । २० ॥

भा० पदार्थः—वनस्पतिः=वनस्पतयः / सूर्यः । अदृंहीत्=धरति । वसुधेयस्य=विद्यार्थिनः । वसुवने=विद्यायाचिने ॥

भाष्यसार—**१. विद्वान् लोग क्या करते हैं**—देदीप्यमान नक्षत्रों आदि के साथ वर्तमान, हिरण्य=तेजस्वी पर्ण=पत्तों वाला, मधुर शाखाओं वाला, सुन्दर फल वाला, दिव्यगुणों को प्रदान करने वाला वनस्पति और सूर्य है । वनस्पतियाँ दिव्य गुणों से युक्त, दरिद्रता के विनाशक मेघ को बढ़ाती हैं । ये अग्रगामी होकर प्रकाश की स्पृहा करती हैं सूर्य—आकाश और आकाशस्थ लोकों एवं पृथिवी को सब ओर से धारण करता है । इसी प्रकार विद्वान् लोग विद्या की याचना करने वाले विद्यार्थियों को बढ़ाते हैं ।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । उपमा यह है कि जैसे वनस्पतियाँ मेघ को बढ़ाती हैं और सूर्य लोकों को धारण करता है वैसे विद्वान् लोग विद्यार्थियों को बढ़ाते और उनको धारण करते हैं ॥ २८ । २० ॥

अश्विनौ । **इन्द्रः=ईश्वरो जीवश्च** । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वान् क्या करते हैं, इसका फिर उपदेश किया है ॥

देवं बर्हिर्वारितीनां देवमिन्द्रमवर्द्धयत् ।
स्वासस्थमिन्द्रेणासन्नमन्या बर्हीᳬष्यभ्यभूद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ २१ ॥

पदार्थः—(**देवम्**) दिव्यम् (**बर्हिः**) अन्तरिक्षम् (**वारितीनाम्**) वरणीयानां पदार्थानां मध्ये (**देवम्**) दिव्यगुणम् (**इन्द्रम्**) विद्युतम् (**अवर्धयत्**) वर्धयति (**स्वासस्थम्**) सुष्ठ्वासते यस्मिँस्तम् (**इन्द्रेण**) ईश्वरेण (**आसन्नम्**) समीपस्थम् (**अन्या**) अन्यानि (**बर्हींषि**) अन्तरिक्षावयवाः (**अभि**) अभितः (**अभूत्**) भवेत् (**वसुवने**) पदार्थविद्यायाचिने (**वसुधेयस्य**) सर्वद्रव्याधारस्य जगतो मध्ये (**वेतु**) (**यज**) ॥ २१ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! यथा देवं वारितीनां मध्ये वर्त्तमानं स्वासस्थमिन्द्रेण सहासन्नमिन्द्रं बर्हिर्देवमवर्धयदन्या बर्हींष्यभूद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु तथा यज ॥ २१ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे विद्वन् ! यथा**—**देवं** दिव्यं, **वारितीनां** वरणीयानां पदार्थानां **मध्ये वर्त्तमानं स्वासस्थं** सुष्ठ्वासते यस्मिँस्तम् **इन्द्रेण** ईश्वरेण **सहासन्नं** समीपस्थम् **इन्द्रं** विद्युतं **बर्हिः** अन्तरिक्षं **देवं** दिव्यगुणम् **अवर्धयत्** वर्धयति, **अन्या** अन्यानि **बर्हींषि** अन्तरिक्षावयवा **अभिअभूद्** अभितो भवेत्, **वसुवने** पदार्थविद्यायाचिने **वसुधेयस्य** सर्वद्रव्याधारस्य जगतो मध्ये **वेतु; तथा यज** ॥२८।२१॥

भाषार्थ—हे विद्वन् ! जैसे—(देवम्) दिव्य, (वारितीनाम्) वरण के योग्य पदार्थों के मध्य में वर्तमान, (स्वासस्थम्) अच्छे प्रकार बैठने के आधार, (इन्द्रेण) ईश्वर के साथ (आसन्नम्) समीपस्थ, (इन्द्रम्) विद्युत् एवं (बर्हिः) (बर्हिः) अन्तरिक्ष (देवम्) दिव्य गुण को (अवर्धयत्) बढ़ाता है; (अन्या) अन्य (बर्हींषि) अन्तरिक्ष के अवयव (अभि+अभूत्) सब ओर व्याप्त हैं; (वसुवने) पदार्थविद्या के याचक के लिए (वसुधेयस्य) सब द्रव्यों के आधार जगत् के मध्य में (वेतु) पदार्थों को प्राप्त कराता है;—वैसे (यज) यज्ञ कर ॥ २८ । २१ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । हे विद्वांसो मनुष्याः ! यूयं यथाऽभिव्याप्तमाकाशं सर्वान् पदार्थानभिव्याप्नोति, सर्वेषां समीपमस्ति, तथेश्वरस्य समीपवर्त्तिनं जीवं विज्ञाय, अस्मिन् संसारे सुपात्राय याचमानाय दानं ददत ॥२८।२१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । हे विद्वान् मनुष्यो ! तुम—जैसे सब ओर व्याप्त आकाश सब पदार्थों को सब ओर से व्याप्त करता है; सब के समीप है, वैसे ईश्वर के समीपवर्त्ती जीव को जानकर इस संसार में सुपात्र याचक को दान दो ॥ २८ । २१ ॥

भा० पदार्थः—बर्हिः=अभिव्याप्तमाकाशम् । आसन्नम्=सर्वेषां समीपम् / समीपवर्त्तिनम् । इन्द्रम्=जीवम् । वसुवने=सुपात्राय याचमानाय । वसुधेयस्य=अस्य संसारस्य । अभि+अभूत्=अभिव्याप्नोति ।

भाष्यसार—१. **विद्वान् लोग क्या करते हैं**—दिव्य, वरण करने योग्य पदार्थों के मध्य में वर्तमान, बैठने का उत्तम स्थान, ईश्वर से समीप में स्थित, दिव्य गुणों से युक्त आकाश एवं विद्युत् सब

पदार्थों में व्यापक हैं तथा सबके समीपस्थ हैं। वैसे ईश्वर का समीपवर्ती जीव है। अतः विद्वान् लोग सब द्रव्यों के आधार इस जगत् में पदार्थ-विद्या की याचना करने वाले सुपात्र को उक्त विद्या का दान करते हैं।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि जैसे आकाश सब का समीपवर्ती है वैसे ईश्वर का समीपवर्ती जीव है॥ २८। २१॥

अश्विनौ। **अग्निः**=विद्वान्। निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

विद्वान् क्या करते हैं, इसका फिर उपदेश किया है॥

दे॒वो ऽ अ॒ग्निः स्वि॑ष्ट॒कृद्दे॒वमिन्द्र॑मवर्द्धयत्।
स्वि॑ष्टं कु॒र्वन्त्स्वि॑ष्ट॒कृत् स्वि॑ष्टम॒द्य क॑रोतु नो वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वेतु॒ यज॑॥ २२॥

पदार्थः—(**देवः**) दिव्यगुणः (**अग्निः**) पावकः (**स्विष्टकृत्**) यः शोभनमिष्टं करोति सः (**देवम्**) दिव्यगुणम् (**इन्द्रम्**) जीवम् (**अवर्धयत्**) वर्धयेत् (**स्विष्टम्**) शोभनञ्च तदिष्टम् (**कुर्वन्**) सम्पादयन् (**स्विष्टकृत्**) उत्तमेष्टकारी (**स्विष्टम्**) अतिशयेनाभीप्सितम् (**अद्य**) (**करोतु**) (**नः**) अस्मभ्यम् (**वसुवने**) (**वसुधेयस्य**) (**वेतु**) (**यज**)॥ २२॥

अन्वयः—हे विद्वन् यथा स्विष्टकृद्देवोऽग्निरिन्द्रं देवमवर्धयद्यथा च स्विष्टं कुर्वन् स्विष्टकृत्-सन्नग्निः स्विष्टं करोति तथाऽद्य नः सुखं करोतु धनं वेतु वसुधेयस्य वसुवने यज च॥ २२॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन्! यथा—**स्विष्टकृत्** यः शोभनमिष्टं करोति सः, **देवः** दिव्यगुणः, **अग्निः** पावकः **इन्द्रं** जीवं **देवं** दिव्यगुणम् **अवर्धयत्** वर्धयेत्; **यथा च—स्विष्टं** शोभनञ्च तदिष्टं **कुर्वन्** सम्पादयन्, **स्विष्टकृद्** उत्तमेष्टकारी **सन्नग्निः** पावकः **स्विष्टम्** अतिशयेनाभीप्सितं **करोति; तथाऽद्य नः** अस्मभ्यं **सुखं करोतु; धनं वेतु; वसुधेयस्य वसुवने यज च**॥ २८। २२॥

भाषार्थ—हे विद्वन्! जैसे—(स्विष्टकृत्) जो उत्तम इष्ट को सिद्ध करने वाला, (देवः) दिव्य गुणों से युक्त (अग्निः) अग्नि (देवम्) दिव्य गुणों वाले (इन्द्रम्) जीव को (अवर्धयत्) बढ़ाता है; और जैसे (स्विष्टम्) उत्तम इष्ट को (कुर्वन्) सिद्ध करता हुआ (स्विष्टकृत्) उत्तम इष्टकारी (अग्निः) अग्नि (स्विष्टम्) अत्यन्त अभीष्ट को सिद्ध करता है; वैसे (अद्य) आज=शीघ्र (नः) हमारे लिए सुख को (करोतु) सिद्ध करे, धन को (वेतु) प्राप्त करावे, और (वसुधेयस्य) जगत् के मध्य में (वसुवने) पदार्थ—विद्या के याचक के लिए (यज) उक्त विद्या का दान कर॥ २८। २२॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा—गुणकर्मस्वभावैर्विज्ञातः कर्मसु सं प्रयुक्तो ऽग्निरभीष्टानि कार्याणि साध्नोति, तथा विद्वद्भि-र्वर्त्तितव्यम्॥ २८। २२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। जैसे गुण, कर्म, स्वभाव से जाना हुआ, कर्मों में अच्छे प्रकार प्रयुक्त अग्नि अभीष्ट कार्यों को सिद्ध करता है; वैसे विद्वान् लोग वर्त्ताव करें॥ २८। २२॥

भा० पदार्थः—स्विष्टकृत्=अभीष्टानि कार्याणि साध्नोति [सः]

भाष्यसार—१. **विद्वान् लोग क्या करते हैं**—उत्तम अभीष्ट को सिद्ध करने वाला, दिव्य गुणों से युक्त अग्नि दिव्य गुणों वाले जीव को बढ़ाता है। गुण, कर्म और स्वभाव से विज्ञात, कर्मों में प्रयुक्त अग्नि अभीष्ट कार्यों को सिद्ध करता है। इस अग्नि के तुल्य विद्वान् लोग अभीष्ट को सिद्ध करते हैं। सब को सुख प्रदान करते हैं। धन को प्राप्त करते हैं। विद्या के याचक को विद्या का दान करते हैं।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि विद्वान् लोग अग्नि के समान सबके अभीष्ट को सिद्ध करें ॥ २८ । २२ ॥

अश्विनौ । **अग्निः**=**मन्त्रार्थद्रष्टा विद्वान्** । कृतिः । निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वान् क्या करते हैं, इसका फिर उपदेश किया है ॥

अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन् पक्तीः पचन् पुरोडाशं बध्नन्निन्द्राय छागम् ।
सूपस्था ऽ अद्य देवो वनस्पतिरभवदिन्द्राय छागेन ।
अघत्तं मेदस्तः प्रति पचताग्रभीदवीवृधत्पुरोडाशेन त्वामद्य ऽ ऋषे ॥ २३ ॥

पदार्थः—(**अग्निम्**) विद्वांसम् (**अद्य**) इदानीम् (**होतारम्**) (**अवृणीत**) वृणुयात् (**अयम्**) (**यजमानः**) (**पचन्**) (**पक्तीः**) पाकान् (**पचन्**) (**पुरोडाशम्**) पाकविशेषम् (**बध्नन्**) बद्धं कुर्वन् (**इन्द्राय**) ऐश्वर्याय (**छागम्**) छ्यति=छिनत्ति रोगान् येन तम् (**सूपस्थाः**) ये सूपतिष्ठन्ति ते (**अद्य**) (**देवः**) (**वनस्पतिः**) वनस्य=किरणसमूहस्य पालकः सूर्यः (**अभवत्**) भवेत् (**इन्द्राय**) ऐश्वर्याय (**छागेन**) छेदनेन (**अद्यत्**) अत्ति (**तम्**) (**मेदस्तः**) मेदसः=स्निग्धात् (**प्रति**) (**पचता**) (**अग्रभीत्**) गृह्णाति (**अवीवृधत्**) (**पुरोडाशेन**) (**त्वाम्**) (**अद्य**) (**ऋषे**) मन्त्रार्थवित् ॥ २३ ॥

अन्वयः—हे ऋषे विद्वन् यथाऽयं यजमानोऽद्येन्द्राय पक्तीः पचन् पुरोडाशं पचञ्छागं बध्नन्नग्निं होतारमवृणीत । यथा वनस्पतिर्देव इन्द्राय छागेनाद्याभवन्मेदस्तस्तमद्यत्पचता सूपस्थाः प्रत्यग्रभीत्पुरोडाशेनावीवृधत्तथा त्वामद्याऽहं वर्द्धयेयं यं त्वं च तथा वर्त्तस्व ॥ २३ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे ऋषे** ! मन्त्रार्थवित् **विद्वन्** ! **यथाऽयं यजमानोऽद्य** इदानीम् **इन्द्राय** ऐश्वर्याय **पक्तीः** पाकान् **पचन्**, **पुरोडाशं** पाकविशेषं **पचन्**, **छागं** छ्यति=छिनत्ति रोगान् येन तं **बध्नन्** बद्धं कुर्वन्, **अग्निं** विद्वांसं **होतारमवृणीत** वृणुयात्; **यथा**— **वनस्पतिः** वनस्य=किरणसमूहस्य पालकः सूर्यः **देव इन्द्राय** ऐश्वर्याय **छागेन** छेदनेन **अद्य** इदानीम् **अभवत्** भवेत्, **मेदस्तः** मेदसः=स्निग्धात् **तमद्यत्** अत्ति, **पचता सूपस्थाः** ये सूपतिष्ठन्ति ते स्युस्तथा **प्रत्यग्रभीत्** गृह्णाति । **पुरोडाशेनावीवृधत्तथा**

भाषार्थ—हे (ऋषे) मन्त्रार्थ के ज्ञाता विद्वन् ! जैसे—(अयम्) यह (यजमानः) यजमान (अद्य) आज (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिए (पक्तीः) पाकों को (पचन्) पकाता हुआ, (पुरोडाशम्) पाक-विशेष को (पचन्) पकाता हुआ; (छागम्) रोग-छेदक शाक को (बध्नन्) बाँधता हुआ (होतारम्) होम करने वाले (अग्निम्) विद्वान् का (अवृणीत) वरण करता है; जैसे—(वनस्पतिः) वन=किरण समूह के पालक सूर्य (देवः) देव (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिए (छागेन) छेदन से (अद्य)

त्वामद्य इदानीम् **अहं वर्द्धयेयं; त्वं च तथा वर्त्तस्व** ॥ २८ । २३ ॥

अब (अभवत्) होता है; (मेदस्तः) स्निग्ध होने से (तम्) उसे (अद्यत्) खाता है; (पचता) पाक-कर्त्ता के द्वारा (सूपस्थाः) शाक आदि अच्छे प्रकार उपस्थित होते हैं वैसे (प्रत्यग्रभीत्) सब को ग्रहण करता है; पकाता है। (पुरोडाशेन) पाक-विशेष से (अवीवृधत्) बढ़ता है; वैसे (त्वाम्) तुझे (अद्य) आज मैं बढ़ाता हूँ; और तू भी वैसा वर्त्ताव कर ॥ २८ । २३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा पाककर्त्तारश्शाकादीनि छित्त्वा, भित्त्वाऽन्न-व्यञ्जनानि पचन्ति, तथा सूर्यः सर्वान् पचति । यथा–सूर्यो वृष्टिद्वारा सर्वान् वर्द्धयति, तथा सेवादिद्वारा मन्त्रार्थद्रष्टारो विद्वांसः सर्वैर्वर्द्धनीयाः ॥ २८ । २३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। जैसे पाचक लोग शाक आदि का छेदन-भेदन करके, अन्न एवं व्यञ्जन (दाल शाक आदि) को पकाते हैं; वैसे सूर्य सबको पकाता है। जैसे सूर्य वर्षा के द्वारा सब को बढ़ाता है; वैसे सेवा आदि के द्वारा मन्त्रार्थ के द्रष्टा विद्वानों को सब लोग बढ़ावें ॥ २८ । २३ ॥

भा० पदार्थः—यजमानः=पाककर्त्ता। पुरोडाशम्=अन्नव्यञ्जनानि। पुरोडाशेन=वृष्टिद्वारा / सेवादिद्वारा । त्वाम् [ऋषे !]=मन्त्रार्थद्रष्टारं विद्वांसम् । छागम्=शाकादिकम् । सूपस्थाः=पाककर्त्तारः । छोगेन=छेदनेन, भेदनेन । ऋषे=मन्त्रार्थद्रष्टः विद्वन् ।

भाष्यसार—१. विद्वान् लोग क्या करते हैं—यजमान ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए पाकों का निर्माण करता है। पुरोडाश नामक पाक-विशेष को पकाता है। छाग=रोगनाशक शाक आदि को बाँधता है। विद्वान् को होता रूप में वरण करता है। जैसे पाचक शाक आदि को काटकर अन्न एवं व्यंजनों को पकाते हैं वैसे सूर्य भी सब को पकाता है। किरण-समूह का पालक सूर्य ऐश्वर्य-प्राप्ति के लिए छेदन=वर्षा के द्वारा सब को बढ़ाता है। जल आदि स्निग्ध पदार्थों को खाता है। पकाने से उपस्थित पदार्थों को ग्रहण करता है। पुरोडाश नामक पाक-विशेष से बढ़ता है।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है। अतः वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि उक्त सूर्य के तुल्य सब मनुष्य ऋषि=मन्त्रार्थ द्रष्टा विद्वानों को बढ़ावें ॥ २८ । २३ ॥

सरस्वती । **अग्निः**=विद्वान् । स्वराड्जगती । निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वान् क्या करते हैं, यह फिर उपदेश किया है ॥

होता यक्षत्समिधानं महद्यशः सुसमिद्धं वरेण्यमग्निमिन्द्रं वयोधसम् ।
गायत्रीं छन्द ऽ इन्द्रियं त्र्यविं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २४ ॥

पदार्थः—(**होता**) दाता (**यक्षत्**) सङ्गच्छेत (**समिधानम्**) सम्यक् प्रकाशमानम् (**महत्**) (**यशः**) कीर्त्तिम् (**सुसमिद्धम्**) सुष्ठु प्रदीप्यमानम् (**वरेण्यम्**) वर्त्तुमर्हम् (**अग्निम्**) पावकम् (**इन्द्रम्**)

परमैश्वर्यकारकम् (**वयोधसम्**) कमनीयायुर्धारकम् (**गायत्रीम्**) सदर्थान् प्रकाशयन्तीम् (**छन्दः**) स्वातन्त्र्यम् (**इन्द्रियम्**) धनं श्रोत्रादि वा (**त्र्यविम्**) या त्रिधाऽवति ताम् (**गाम्**) पृथिवीम् (**वयः**) जीवनम् (**दधत्**) धरन् (**वेतु**) (**आज्यस्य**) (**होतः**) (**यज**) ॥ २४ ॥

अन्वयः—हे होतस्त्वं यथा होताग्निमिव समिधानं सुसमिद्धं वरेण्यं महद्यशो वयोधसमिन्द्रं गायत्रीं छन्द इन्द्रियं त्र्यविं गां वयश्च दधत्सन्यक्षदाज्यस्य वेतु तथा यज ॥ २४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे होतः ! त्वं—**यथा होता** दाता **अग्निं** पावकम् **इव समिधानं** सम्यक् प्रकाशमानं **सुसमिद्धं** सुष्ठु प्रदीप्यमानं **वरेण्यं** वर्त्तुमर्हं **महद्यशः** कीर्तिं; **वयोधसं** कमनीयायुर्धारकम् **इन्द्रं** परमैश्वर्यकारकं, **गायत्रीं** सदर्थान् प्रकाशयन्तीं, **छन्दः** स्वातन्त्र्यम्, **इन्द्रियं** धनं श्रोत्रादि वा, **त्र्यविं** या त्रिधाऽवति तां **गां** पृथिवीं, **वयः** जीवनं **च दधत्** धरन् **सन् यक्षत्** सङ्गच्छेत्, **आज्यस्य वेतु तथा यज** ॥ २८ । २४ ॥

भाषार्थ—हे (होतः) यजमान ! तू—जैसे (होता) विद्यादि का दाता विद्वान्—(अग्निम्) अग्नि के समान (समिधानम्) विद्यादि से सम्यक् प्रकाशमान, (सुसमिद्धम्) अच्छे प्रकार प्रदीप्त, (वरेण्यम्) वरण करने योग्य, (महत्) महान् (यशः) यश को; (वयोधसम्) कामना करने योग्य आयु को धारण करने वाले, (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाले पदार्थ को, (गायत्रीम्) सत्य अर्थों का प्रकाश करने वाली गायत्री को, (छन्दः) स्वतन्त्रता को, (इन्द्रियम्) धन वा श्रोत्र आदि इन्द्रिय को (त्र्यविम्) तीन प्रकार से रक्षा करने वाली (गाम्) पृथिवी को और (वयः) जीवन को (दधत्) धारण करता हुआ (यक्षत्) संग करता है; (आज्यस्य) विज्ञान को (वेतु) प्राप्त करता है;—वैसे (यज) यज्ञ कर ॥ २८ । २४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । ये सद्विद्यादिपदार्थानां दानं कुर्वन्ति, तेऽतुलां कीर्तिं प्राप्य सुखयन्ति ॥ २८ । २४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । जो मनुष्य श्रेष्ठ विद्या आदि पदार्थों का दान करते हैं; वे अतुल कीर्ति को प्राप्त करके सुखी होते हैं ॥ २८ । २४ ॥

भा० पदार्थः—गायत्रीम्=सद्विद्याम् । महत्, यशः=अतुलां कीर्तिम् ॥

भाष्यसार—१. **विद्वान् लोग क्या करते हैं**—विद्या आदि के दाता विद्वान् अग्नि के तुल्य सम्यक् प्रकाशमान, उत्तम रीति से प्रदीप्त, वरण करने योग्य महान् यश को धारण करते हैं अर्थात् विद्या आदि श्रेष्ठ पदार्थों का दान करके अतुल कीर्ति को प्राप्त करते हैं। कमनीय आयु को धारण करने वाले, परम ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाले पदार्थ को धारण करते हैं। श्रेष्ठ अर्थों को प्रकाशित करने वाली गायत्री, स्वतन्त्रता, धन वा श्रोत्र आदि इन्द्रियों, तीन प्रकार से रक्षा करने वाली पृथिवी और जीवन को धारण करते हैं। सब मनुष्य मन्त्रोक्त विद्वानों का संग करें तथा विज्ञान को प्राप्त करें ।।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । उपमा यह है कि सब मनुष्य विद्वानों के तुल्य मन्त्रोक्त यज्ञ का अनुष्ठान करें ॥२८।२४॥ ●

सरस्वती । **इन्द्रः**=विद्वान् । भुरिगतिजगती । निषादः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

विद्वान् क्या करते हैं, यह फिर उपदेश किया है ।।

होता यक्षत्तनूनपातमुद्भिदं यं गर्भमदितिर्दधे शुचिमिन्द्रं वयोधसम् ।
उष्णिहं छन्द ऽ इन्द्रियं दित्यवाहं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ।। २५ ।।

पदार्थः--(**होता**) आदाता (**यक्षत्**) (**तनूनपातम्**) शरीरादिरक्षकम् (**उद्भिदम्**) य उद्भिद्य जायते तम् (**यम्**) (**गर्भम्**) गर्भ इव स्थितम् (**अदितिः**) माता (**दधे**) दधाति (**शुचिम्**) पवित्रम् (**इन्द्रम्**) सूर्यम् (**वयोधसम्**) वयोवर्धकम् (**उष्णिहम्**) उष्णिहा प्रतिपादितम् (**छन्दः**) बलकरम् (**इन्द्रियम्**) इन्द्रस्य=जीवस्य लिङ्गम् (**दित्यवाहम्**) यो दित्यान्=खण्डितान् वहति=गमयति तम् (**गाम्**) वाचम् (**वयः**) कमनीयान् (**दधत्**) (**वेतु**) (**आज्यस्य**) (**होतः**) (**यज**) ।। २५ ।।

अन्वयः—हे होतर्यथा होता तनूनपातमुद्भिदमदितिर्गर्भमिव यं दधे वयोधसं शुचिमिन्द्रं यक्षदाज्यस्योष्णिहं छन्द इन्द्रियं दित्यवाहं गां वयश्च दधत्सन् वेतु तथैतान् यज ।। २५ ।।

सपदार्थान्वयः--हे **होतः** ! **यथा**—**होता** आदाता **तनूनपातं** शरीरादिरक्षकम् **उद्भिदं** य उद्भिद्य जायते तम् **अदितिः** माता **गर्भं** गर्भ इव स्थितम् **इव यं दधे** दधाति, **वयोधसं** वयोवर्धकं **शुचिं** पवित्रम् **इन्द्रं** सूर्यं **यक्षत्; आज्यस्योष्णिहं** उष्णिहा प्रतिपादितं **छन्दः** बलकरम् **इन्द्रियम्** इन्द्रस्य=जीवस्य लिङ्गं **दित्यवाहं** यो दित्यान्=खण्डितान् वहति=गमयति तं **गां** वाचं **वयः** कमनीयान् **च दधत् सन् वेतु; तथैतान् यज** ।। २८ । २५ ।।

भाषार्थ—(होतः) यजमान ! जैसे—(होता) विद्यादि को ग्रहण करने वाला विद्वान् (तनूनपातम्) शरीर आदि के रक्षक (उद्भिदम्) उद्भिज्ज (गर्भम्) गर्भ के तुल्य (अदितिः) माता (यम्) जिसे (दधे) धारण करती है; उस (वयोधसम्) आयु के वर्द्धक, (शुचिम्) पवित्र (इन्द्रम्) सूर्य का (यक्षत्) संग करता है; (आज्यस्य) विज्ञान, (उष्णिहम्) उष्णिक् छन्द से प्रतिपादित अर्थ, (छन्दः) बलकारक पदार्थ, (इन्द्रियम्) इन्द्र=जीव के चिह्न रूप इन्द्रिय, (दित्यवाहम्) दित्य=खण्डित (इन्द्रियों) को प्राप्त कराने वाले (शरीर), (गाम्) वाणी और (वयः) कमनीय पदार्थों को (दधत्) धारण करता हुआ (वेतु) प्राप्त होता है; वैसे इनका (यज) संग कर ।। २८ । २५ ।।

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । हे मनुष्याः ! भवन्तो यथा माता गर्भं, जातंबालं च रक्षति, तथा—शरीरमिन्द्रियाणि च रक्षयित्वा विद्यायुषी वर्धयन्तु ।। २८ । २५ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । हे मनुष्यो ! आप—जैसे माता गर्भ और उत्पन्न बालक की रक्षा करती है; वैसे शरीर और इन्द्रियों की रक्षा करके विद्या और आयु को बढ़ाओ ।। २८ । २५ ।।

भा० पदार्थः—उद्भिदम्=जातं बालम् । दित्यवाहम्=शरीरम् । वाचम्=विद्याम् । वयः=आयुः ।।

भाष्यसार—१. **विद्वान् लोग क्या करते हैं**—विद्या आदि शुभ गुणों को ग्रहण करने

वाले विद्वान् लोग—शरीर आदि के रक्षक, उद्भिज्ज गर्भ के तुल्य माता जिसे धारण करती है; उस आयु के वर्धक, पवित्र, सूर्य को विद्वान् लोग प्राप्त करते हैं; विज्ञान उष्णिक् छन्द से प्रतिपादित अर्थ, बलकारी पदार्थ, इन्द्रियाँ, नाना रूप में खण्डित=विभक्त इन्द्रियों को प्राप्त करने वाले शरीर, वाणी और कमनीय पदार्थों को धारण करते हैं तथा उन्हें प्राप्त करते हैं।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि सब मनुष्य विद्वानों के समान मन्त्रोक्त यज्ञ का अनुष्ठान करें ॥२८।२५॥

सरस्वती। **इन्द्रः=विद्वान्**। निचृच्छक्वरी। धैवतः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

विद्वान् क्या करते हैं, यह फिर उपदेश किया है॥

होता यक्षदीडेन्यमीडितं वृत्रहन्तमऽमिडाभिरीड्यꣳ सहः सोममिन्द्रं वयोधसम्।
अनुष्टुभं छन्द ऽइन्द्रियं पञ्चाविं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज॥ २६॥

पदार्थः—(**होता**) आदाता (**यक्षत्**) संगच्छेत (**ईडेन्यम्**) स्तोतुमर्हम् (**ईडितम्**) प्रशस्तम् (**वृत्रहन्तमम्**) अतिशयेन वृत्रस्य=मेघस्य हन्तारं सूर्यमिव (**इडाभिः**) सुशिक्षिताभिर्वाग्भिः (**ईड्यम्**) प्रशंसितुमर्हम् (**सहः**) बलम् (**सोमम्**) सोमाद्योषधिगणम् (**इन्द्रं**) जीवम् (**वयोधसम्**) कमनीयानां प्राणानां धारकम् (**अनुष्टुभम्**) अनुस्तुम्भकम् (**छन्दः**) स्वातन्त्र्यम् (**इन्द्रियम्**) श्रोत्रादि (**पञ्चाविम्**) या पञ्चप्राणान् रक्षति ताम् (**गाम्**) पृथिवीम् (**वयः**) कमनीयं वस्तु (**दधत्**) धरत्सन् (**वेतु**) (**आज्यस्य**) विज्ञातुमर्हस्य (**होतः**) (**यज**)॥ २६॥

अन्वयः—हे होतर्यथा होता वृत्रहन्तममिवेडाभिरीडेन्यमीडितं सह ईड्यं सोमं वयोधसमिन्द्रं यक्षदिन्द्रियमनुष्टुभं छन्दः पञ्चाविं गां वयश्चाऽऽज्यस्य मध्ये दधद्वेतु तथैतान् यज॥ २६॥

सपदार्थान्वयः—हे **होतः**! **यथा**—**होता** आदाता **वृत्रहन्तमम्** अतिशयेन वृत्रस्य=मेघस्य हन्तारं सूर्यमिव, **इडाभिः** सुशिक्षिताभिर्वाग्भिः **ईडेन्यं** स्तोतुमर्हम् **ईडितं** प्रशस्तं **सहः** बलम्, **ईड्यं** प्रशंसितुमर्हं **सोमं** सोमाद्योषधिगणं, **वयोधसं** कमनीयानां प्राणानां धारकम् **इन्द्रं** जीवं **यक्षत्** सङ्गच्छेत; **इन्द्रियं** श्रोत्रादि, **अनुष्टुभम्** अनुस्तुम्भकम् **छन्दः** स्वातन्त्र्यं, **पञ्चाविं** या पञ्च प्राणान् रक्षति तां **गां** पृथिवीं, **वयः** कमनीयं वस्तु **चाज्यस्य** विज्ञातुमर्हस्य **मध्ये दधत्** धरत्सन् **वेतु**; **तथैतान् यज**॥ २८। २६॥

भावार्थ—हे (होतः) यजमान! जैसे—(होता) विद्या आदि शुभ गुणों का ग्रहण करने वाला विद्वान् (वृत्रहन्तमम्) वृत्र=मेघ हन्ता सूर्य के तुल्य, (इडाभिः) सुशिक्षित वाणियों से (ईडेन्यम्) स्तुति के योग्य, (ईडितम्) प्रशस्त (सहः) बल, (ईड्यम्) प्रशंसा के योग्य (सोमम्) सोम आदि ओषधि गण, (वयोधसम्) कमनीय प्राणों के धारक (इन्द्रम्) जीव को (यक्षत्) संग करता है; (इन्द्रियम्) श्रोत्र आदि इन्द्रिय, (अनुष्टुभम्) स्तुति के योग्य (छन्दः) स्वतन्त्रता, (पञ्चाविम्) पाँच प्राणों की रक्षा करने वाली (गाम्) पृथिवी और (वयः) कमनीय वस्तु को (आज्यस्य) विज्ञेय वस्तुओं के मध्य में (दधत्) धारण करता हुआ (वेतु) प्राप्त करता है; वैसे इन्हें (यज) प्राप्त कर॥ २८। २६॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्या न्यायेन प्रशस्तगुणेन सूर्येणोपमिताः प्रशस्ता भूत्वा, विज्ञेयानि वस्तूनि विदित्वा, स्तुतिं, बलं, जीवनं, धनं, जितेन्द्रियतां राज्यं च धरन्ति ते प्रशंसार्हा भवन्ति ॥ २८। २६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। जो मनुष्य न्याय से प्रशस्त गुण वाले सूर्य के तुल्य प्रशस्त होकर जानने योग्य वस्तुओं को जानकर; स्तुति, बल, जीवन, धन, जितेन्द्रियता और राज्य को धारण करते हैं, वे प्रशंसा के योग्य होते हैं ॥ २८। २६ ॥

भा० पदार्थः—वृत्रहन्तमम्=न्यायेन प्रशस्तगुणं सूर्यमिव। आज्यस्य=विज्ञेयस्य। ईडितम्=स्तुतिम्। वयोधसम्=जीवनम्। इन्द्रम्=धनम्। इन्द्रियम्=जितेन्द्रियताम्। गाम्=राज्यम्। दधत्=धरति ॥

भाष्यसार—१. **विद्वान् लोग क्या करते हैं**—विद्या आदि शुभ गुणों को ग्रहण करने वाले विद्वान्—वृत्र (मेघ) के हन्ता सूर्य के तुल्य प्रकाशमान, सुशिक्षित वाणियों से स्तुति करने योग्य, प्रशस्त, बल से युक्त, प्रशंसा के योग्य सोम आदि ओषधि-गण से युक्त, कमनीय पदार्थों को धारण करने वाले जीव को प्राप्त करते हैं। श्रोत्र आदि इन्द्रिय, स्थिर स्वतन्त्रता, पाँच प्राणों की रक्षा करने वाली पृथिवी, कमनीय वस्तु और विज्ञेय वस्तुओं को धारण करते हैं। अर्थात् विज्ञेय वस्तुओं को जानकर स्तुति, बल, जीवन, धन, जितेन्द्रियता और राज्य को धारण करते हैं तथा प्रशंसा के योग्य होते हैं ॥

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि यजमान विद्वानों के समान मन्त्रोक्त यज्ञ का अनुष्ठान करे ॥ २८। २६ ॥

सरस्वती। **छन्दः**=**विद्वान्**। स्वराडतिजगती। निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वान् क्या करते हैं, यह फिर उपदेश किया है ॥

होता॑ यक्षत्सु॒ब॒र्हिषं॑ पूष॒ण्वन्त॒मम॑र्त्य॒ꣳ सीद॑न्तं ब॒र्हिषि॑ प्रि॒येऽमृतेन्द्रं॑ वयो॒धस॑म् ।
बृह॒तीं छन्द॑ऽइन्द्रि॒यं त्रि॒व॒त्सं गां वयो॒ दध॒द्वेत्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥ २७ ॥

पदार्थः—(**होता**) आदाता (**यक्षत्**) (**सुबर्हिषम्**) शोभनं बर्हिरन्तरिक्षमुदकं वा यस्य तम् (**पूषण्वन्तम्**) बहुपुष्टियुक्तम् (**अमर्त्यम्**) मृत्युधर्मरहितम् (**सीदन्तम्**) तिष्ठन्तम् (**बर्हिषि**) आकाशमिव व्याप्ते (**प्रिये**) कमनीये परमात्मस्वरूपे (**अमृता**) नाशधर्मरहिते। अत्र विभक्तेराकारादेशः (**इन्द्रम्**) स्वकीयं जीवस्वरूपम् (**वयोधसम्**) (**त्रिवत्सम्**) त्रयः कर्मोपासनाज्ञानानि वत्सा इव यस्य तम् (**गाम्**) प्राप्तव्यं बोधम् (**वयः**) कमनीयं सुखम् (**दधत्**) (**वेतु**) प्राप्नोतु (**आज्यस्य**) (**होतः**) (**यज**) ॥ २७ ॥

अन्वयः—हे होतस्त्वं यथा स होताऽमृता बर्हिषि प्रिये सीदन्तममर्त्यं पूषण्वन्तं सुबर्हिषं वयोधसमिन्द्रं यक्षत्स आज्यस्य बृहतीं छन्द इन्द्रियं त्रिवत्सं गां वयश्च दधत्सन् कल्याणं वेतु तथैतानि यज ॥ २७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे होतः! त्वं यथा—स होता आदाता **अमृता** नाशधर्मरहिते **बर्हिषि** आकाशमिव व्याप्ते **प्रिये** कमनीये परमात्म-

भाषार्थ—हे (होतः) यजमान! तू—जैसे वह (होता) विद्यादि शुभ गुणों को ग्रहण करने वाला विद्वान् (अमृता) नाश धर्म से रहित

स्वरूपे **सीदन्तं** तिष्ठन्तम्, **अमर्त्यं** मृत्युधर्मरहितं **पूषण्वन्तं** बहुपुष्टियुक्तं **सुबर्हिषं** शोभनं बर्हिरन्तरिक्षमुदकं वा यस्य तं **वयोधसम् इन्द्रं** स्वकीयं जीवस्वरूपं **यक्षत्** संगच्छेत, **स आज्यस्य बृहतीं छन्द इन्द्रियं त्रिवत्सं** त्रयः कर्मोपासनाज्ञानानि वत्सा इव यस्य तं **गां** प्राप्तव्यं बोधं **वयः** कमनीयं सुखं **च दधत् सन्,** **कल्याणं** **वेतु** प्राप्नोतु; **तथैतानि यज** ॥ २८ । २७ ॥

(बर्हिषि) आकाश के तुल्य व्याप्त, (प्रिये) कमनीय परमात्मा के स्वरूप में (सीदन्तम्) स्थित, (अमर्त्यम्) मृत्यु धर्म से रहित, बहुत पुष्टि से युक्त, (सुबर्हिषम्) उत्तम बर्हि=आकाश वा जल वाले, (वयोधसम्) कमनीय प्राणों को धारण करने वाले (इन्द्रम्) अपने जीव स्वरूप को (यक्षत्) प्राप्त करता है; वह (आज्यस्य) विज्ञान की (बृहतीम्) बड़ी (छन्दः) स्वतन्त्रता, (इन्द्रियम्) धन वा श्रोत्र आदि इन्द्रियाँ, (त्रिवत्सम्) कर्म, उपासना और ज्ञान रूप तीन बछड़ों वाली (गाम्) बोध रूप गाय और (वयः) कमनीय सुख को धारण करता हुआ कल्याण को प्राप्त करता है; वैसे इन्हें (यज) प्राप्त कर ॥ २८ । २७ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्याः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं योगिनं सेवन्ते, ते—सर्वाण्यभीष्टानि सुखानि लभन्ते ॥ २८ । २७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। जो मनुष्य—श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ, योगी की सेवा करते हैं; वे सब अभीष्ट सुखों को प्राप्त करते हैं ॥ २८ । २७ ॥

भा० पदार्थः—सीदन्तम्=श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं योगिनम् ॥

भाष्यसार—१. **विद्वान् लोग क्या करते हैं**—विद्या आदि शुभ गुणों को ग्रहण करने वाले, विद्वान्—नाशधर्म से रहित, आकाश के तुल्य व्यापक, कामना करने योग्य परमात्मा के स्वरूप में स्थित, मृत्यु धर्म से रहित, बहुत पुष्टि से युक्त, उत्तम आकाश वा जल वाले, कमनीय प्राणों को धारण करने वाले, श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ योगी की सेवा करते हैं। विज्ञान, बृहती छन्द, इन्द्रिय, ज्ञान-कर्म-उपासना रूप तीन बछड़ों वाली बोध रूप गौ और कमनीय सुख को धारण करते हैं। सब अभीष्ट सुखों को प्राप्त करते हैं।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त हैं; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि यजमान विद्वानों के समान मन्त्रोक्त यज्ञ का अनुष्ठान करे ॥२८।२७॥

सरस्वती। **इन्द्रः**=**विद्वान्**। स्वराट्शक्वरी। धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वान् क्या करते हैं, यह फिर उपदेश किया है ॥

होता यक्षद्व्यचस्वतीः सुप्रायणाऽऋतावृधो द्वारो देवीर्हिरण्ययीर्ब्रह्माणमिन्द्रं वयोधसम्। पङ्क्तिं छन्दऽइहेन्द्रियं तुर्यवाहं गां वयो दधद्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २८ ॥

पदार्थः—(**होता**) (**यक्षत्**) (**व्यचस्वतीः**) गमनाऽवकाशयुक्ताः (**सुप्रायणाः**) सुष्ठु प्रायणं=प्रकर्षेण गमनं यासु ताः (**ऋतावृधः**) या ऋतं=यथायोग्यं सत्यं वर्द्धयन्ति ताः (**द्वारः**) द्वाराणि (**देवीः**) दिव्यगुणाः (**हिरण्ययीः**) सुवर्णादिभिरनुलिप्ताः (**ब्रह्माणम्**) चतुर्वेदविदम् (**इन्द्रम्**) विद्यैश्वर्यम् (**वयोधसम्**)

कमनीयानां विद्याबोधादीनां धातारम् (**पङ्क्तिम्**) (**छन्दः**) (**इह**) अस्मिन् संसारे (**इन्द्रियम्**) धनम् (**तुर्यवाहम्**) यस्तुर्यं=चतुर्गुणं भारं वहति तम् (**गाम्**) (**वयः**) गमनम् (**दधत्**) (**व्यन्तु**) प्राप्नुवन्तु (**आज्यस्य**) प्राप्तव्यस्य घृतादिसम्बन्धपदार्थस्य (**होतः**) (**यज**) ॥ २८ ॥

अन्वयः—हे होतस्त्वं यथेह होता व्यचस्वतीः सुप्रायणा ऋतावृधो हिरण्ययीदेवीर्द्वारो वयोधसं ब्रह्माणमिन्द्रं पङ्क्तिं छन्द इन्द्रियं तुर्यवाहं गां वयश्च दधदाज्यस्यैतानि यक्षत् यथा च जना व्यन्तु तथैतानि यज ॥ २८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे होतः! त्वं यथा—इह अस्मिन् संसारे **होता, व्यचस्वतीः** गमनाऽवकाशयुक्ताः, **सुप्रायणाः** सुष्ठु प्रायणं=प्रकर्षेण गमनं यासु ताः, **ऋतावृधः** या ऋतं=यथायोग्यं सत्यं वर्द्धयन्ति ताः, **हिरण्ययीः** सुवर्णादिभिरनुलिप्ताः, **देवीः** दिव्यगुणाः, **द्वारः** द्वाराणि; **वयोधसं** कमनीयानां विद्याबोधादीनां धातारं, **ब्रह्माणं** चतुर्वेदविदम्, **इन्द्रं** विद्यैश्वर्यं, **पङ्क्तिं छन्द, इन्द्रियं** धनं, **तुर्यवाहं** यस्तुर्यं=चतुर्गुणं भारं वहति तं **गां वयः** गमनं **दधद्; आज्यस्य** प्राप्तव्यस्य घृतादिसम्बन्धपदार्थस्य **एतानि यक्षत्, यथा च जना व्यन्तु** प्राप्नुवन्तु; **तथैतानि यज** ॥ २८ । २८ ॥

भाषार्थ—हे (होतः) यजमान! तू—जैसे (इह) इस संसार में (होता) विद्वान् (व्यचस्वतीः) गमन के अवकाश से युक्त, (सुप्रायणाः) उत्तम प्रायण=गमन वाले, (ऋतावृधः) ऋत=यथायोग्य सत्य को बढ़ाने वाले, (हिरण्ययीः) सुवर्ण आदि से अनुलिप्त, (देवीः) दिव्य गुणों वाले (द्वारः) द्वारों को; (वयोधसम्) कमनीय विद्याबोध आदि के धारण करने वाले, (ब्रह्माणम्) चारों वेदों के ज्ञाता ब्रह्मा को, (इन्द्रम्) विद्या रूप ऐश्वर्य को, (पंक्तिम्) प्रकट (छन्दः) स्वतन्त्रता, (इन्द्रियम्) धन, (तुर्यवाहम्) तुर्य=चौगुणे भार को वहन करने वाले (गाम्) बैल को एवं (वयः) गति को धारण करता हुआ इन (आज्यस्य) घृत आदि पदार्थों को (यक्षत्) प्राप्त करता है, और जैसे अन्य जन (व्यन्तु) प्राप्त करते हैं, वैसे इन्हें (यज) प्राप्त कर ॥ २८ । २८ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्या अत्युत्तमानि सुन्दरद्वाराणि सुवर्णादियुक्तानि गृहाणि रचयित्वा, तत्र निवासं, विद्याभ्यासं च कुर्युस्ते अरोगा जायन्ते ॥ २८ । २८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है जो मनुष्य अत्युत्तम, सुन्दर द्वारों वाले, सुवर्ण आदि से युक्त घर बनाकर, वहाँ निवास और विद्याभ्यास करते हैं; वे नीरोग रहते हैं ॥ २८ । २८ ॥

भा० पदार्थः—देवीः=अत्युत्तमानि [गृ०]। द्वारः=सुन्दरद्वाराणि [गृ०]। हिरण्ययीः=सुवर्णादियुक्तानि [गृ०]। इन्द्रम्=विद्याभ्यासम् ॥

भाष्यसार—१. **विद्वान् लोग क्या करते हैं**—इस संसार में विद्वान् लोग—गमन-अवकाश से युक्त, उत्तम प्रायण=गमन वाले, सत्य को बढ़ाने वाले, सुवर्ण आदि से अनुलिप्त, दिव्य गुणों वाले सुन्दर द्वारों से युक्त घरों का निर्माण करते हैं। उनमें निवास और विद्याभ्यास करते हैं तथा नीरोग रहते हैं। कमनीय विद्या-बोध आदि को धारण करने वाले, चारों वेदों के ज्ञाता ब्रह्मा, विद्या रूप ऐश्वर्य, पंक्ति छन्द, धन, भारवहन, करने वाले बैल और गति को धारण करते हैं। प्राप्त करने योग्य घृत आदि से सम्बन्धित पदार्थों का सेवन करते हैं।

२. अलंकार—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि यजमान विद्वानों के समान मन्त्रोक्त यज्ञ का अनुष्ठान करे ॥ २८ । २८ ॥

सरस्वती । **अहोरात्रे**=रात्रिदिने । निचृदतिशक्वरी । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वान् क्या करते हैं, इसका फिर उपदेश किया है ॥

होता यक्षत्सुपेशसा सुशिल्पे बृहती ऽ उभे नक्तोषासा न दर्शते विश्वमिन्द्रं वयोधसम् ।
त्रिष्टुभं छन्द ऽ इहेन्द्रियं पष्ठवाहं गां वयो दधद्वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥२९॥

पदार्थः—(होता) आदाता (**यक्षत्**) (**सुपेशसा**) सुन्दरस्वरूपवन्तौ विद्वांसावध्यापकौ (**सुशिल्पे**) सुन्दराणि शिल्पानि ययोस्ते (**बृहती**) महत्यौ (**उभे**) द्वे (**नक्तोषासा**) रात्रिदिने (**न**) इव (**दर्शते**) द्रष्टव्ये (**विश्वम्**) सर्वम् (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्यम् (**वयोधसम्**) कामनाधारकम् (**त्रिष्टुभम्**) एतच्छन्दोऽर्थम् (**छन्दः**) बलम् (**इह**) अस्मिञ्जगति (**इन्द्रियम्**) (**पष्ठवाहम्**) यः पष्ठेन=पृष्ठेन वहति तम् (**गाम्**) वृषम् (**वयः**) (**दधत्**) (**वीताम्**) प्राप्नुताम् (**आज्यस्य**) प्राप्तुं योग्यस्य घृतादिपदार्थस्य सम्बन्धिनम् (**होतः**) (**यज**) ॥ २९ ॥

अन्वयः—हे होतस्त्वं यथेह बृहत्युभे सुशिल्पे दर्शते नक्तोषासा न सुपेशसा विश्वं वयोधसमिन्द्रं त्रिष्टुभं छन्दो वय इन्द्रियं पष्ठवाहं गां न वीतां यथाऽऽज्यस्यैतानि दधत्सन् होता यक्षत्तथा यज ॥ २९ ॥

सपदार्थान्वयः — **हे होतः! त्वं यथा**—**इह** अस्मिञ्जगति **बृहती** महत्यौ, **उभे** द्वे, **सुशिल्पे** सुन्दराणि शिल्पानि ययोस्ते, **दर्शते** द्रष्टव्ये, **नक्तोषासा** रात्रिदिने **न** इव; **सुपेशसा** सुन्दरस्वरूपवन्तौ विद्वांसावध्यापकौ; **विश्वं** सर्वं **वयोधसं** कामनाधारकम् **इन्द्रं** परमैश्वर्यं, **त्रिष्टुभम्** एतच्छन्दोऽर्थं, **छन्दः** बलं, **वय, इन्द्रियं, पष्ठवाहं** यः पष्ठेन=पृष्ठेन वहति तं **गां** वृषभं **न** इव **वीतां** प्राप्नुताम्; **यथाऽऽज्यस्य** प्राप्तुं योग्यस्य घृतादिपदार्थस्य सम्बन्धिनम् **एतानि दधत् सन् होता** आदाता **यक्षत्; तथा यज** ॥ २८ । २९ ॥

भाषार्थ—हे (होतः) यजमान ! तू—जैसे (इह) इस जगत् में (बृहती) बड़े, (उभे) दो, (सुशिल्पे) सुन्दर शिल्प वाले, (दर्शते) दर्शनीय (नक्तोषासा) रात्रि और दिन के (न) तुल्य (सुपेशसा) सुन्दर स्वरूप वाले दो विद्वान् अध्यापक (विश्वम्) सब (वयोधसम्) कामना को धारण करने वाले (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य को, (त्रिष्टुभम्) त्रिष्टुप् नामक छन्द के अर्थ को, (छन्दः) बल, (वयः) गति, (इन्द्रियम्) धन वा श्रोत्र आदि इन्द्रिय, (पष्ठवाहम्) पीठ से भार-वहन करने वाले (गाम्) बैल के तुल्य (वीताम्) प्राप्त करते हैं, और जैसे (आज्यस्य) प्राप्त करने योग्य घृत आदि पदार्थों को धारण करता हुआ (होता) विद्वान् इन्हें (यक्षत्) प्राप्त करता है; वैसे (यज) प्राप्त कर ॥ २८ । २९ ॥

भावार्थः — अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालंकारौ। ये सकलैश्वर्यकराणि शिल्पकर्माणीह

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचक लुप्तोपमा अलंकार हैं। जो मनुष्य सकल ऐश्वर्य

साध्नुवन्ति, ते सुखिनो जायन्ते ॥ २८ । २९ ॥

को उत्पन्न करने वाले शिल्प-कर्मों को सिद्ध करते हैं; वे सुखी होते हैं ॥ २८ । २९ ॥

भा० पदार्थः—सुशिल्पे=सकलैश्वर्यकराणि शिल्पकर्माणि ॥

भाष्यसार—१. **विद्वान् लोग क्या करते हैं**—इस जगत् में महान्, दो, सुन्दर शिल्प से युक्त, दर्शनीय रात और दिन के समान सुन्दर स्वरूप वाले जो विद्वान् अध्यापक हैं वे—सब कामनाओं को धारण करने वाले परम ऐश्वर्य को तथा त्रिष्टुप् छन्द, बल, गति, धन, श्रोत्र आदि इन्द्रिय, पीठ से भारवहन करने वाले बैल को प्राप्त करते हैं। प्राप्त करने योग्य घृत आदि से सम्बन्धित पदार्थों को धारण करते हैं।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में 'न' पद उपमा-वाचक है; अतः उपमा अलङ्कार है। उपमा-वाचक पद को लुप्त मानकर वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार भी है। उपमा यह है कि यजमान विद्वानों के तुल्य मन्त्रोक्त यज्ञ का अनुष्ठान करें ॥ २८ । २९ ॥

सरस्वती । **अश्विनौ**=**अध्यापकाऽध्येतारौ** । निचृदतिशक्वरी । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वान् क्या करते हैं, यह फिर उपदेश किया है ॥

होता यक्षत्प्रचेतसा देवानामुत्तमं यशो होतारा दैव्या कवी सयुजेन्द्रं वयोधसम् ।
जगतीं छन्द ऽ इन्द्रियमनड्वाहं गां वयो दधद्वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥ ३० ॥

पदार्थः—(**होता**) (**यक्षत्**) (**प्रचेतसा**) प्रकृष्टं चेतो=विज्ञानं ययोस्तौ (**देवानाम्**) विदुषाम् (**उत्तमम्**) (**यशः**) कीर्तिम् (**होतारा**) दातारौ (**दैव्या**) देवेषु=दिव्येषु कर्मसु साधु (**कवी**) मेधाविनौ (**सयुजा**) यौ सहैव युङ्क्तस्तौ (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्यम् (**वयोधसम्**) कमनीयसुखधारकम् (**जगतीम्**) (**छन्दः**) (**इन्द्रियम्**) धनम् (**अनड्वाहम्**) शकटवाहकम् (**गाम्**) वृषभम् (**वयः**) विज्ञानम् (**दधत्**) (**वीताम्**) प्राप्नुताम् (**आज्यस्य**) विज्ञेयस्य (**होतः**) (**यज**) ॥ ३० ॥

अन्वयः—हे होतस्त्वं यथा देवानां प्रचेतसा सयुजा दैव्या होतारा कवी, अध्यापकाऽध्येतारौ श्रोतृश्रावयितारौ वोत्तमं यशो वयोधसमिन्द्रं जगतीं छन्दो वय इन्द्रियमनड्वाहं गां च वीतां यथाऽऽज्यस्य मध्य एतानि दधत् सन् होता यक्षत्तथा यज ॥ ३० ॥

सपदार्थान्वयः—हे होतः ! त्वं **यथा**—**देवानां** विदुषां **प्रचेतसा** प्रकृष्टं चेतो= विज्ञानं ययोस्तौ **सयुजा** यौ सहैव युङ्क्तस्तौ **दैव्या** देवेषु=दिव्येषु कर्मसु साधु **होतारा** दातारौ **कवी**= **अध्यापकाऽध्येतारौ श्रोताश्रावयितारौ वा** मेधाविनौ **उत्तमं यशः** कीर्तिं, **वयोधसं** कमनीयसुखधारकम् **इन्द्रं** परमैश्वर्यं, **जगतीं छन्दो वयः** विज्ञानम् **इन्द्रियं** धनम् **अनड्वाहं** शकटवाहकं **गां** वृषभं **च वीतां** प्राप्नुताम् **यथाऽऽज्यस्य** विज्ञेयस्य **मध्य एतानि**

भाषार्थ—हे (होतः) यजमान ! तू—जैसे (देवानाम्) विद्वानों में (प्रचेतसा) प्रकृष्ट विज्ञान वाले, (सयुजा) साथ सम्बद्ध रहने वाले, (दैव्या) दिव्य कर्मों में श्रेष्ठ, (होता) विद्या आदि के दाता (कवी) अध्यापक-अध्येता अथवा सुनने-सुनाने वाले हो मेधावी विद्वान्—(उत्तमम्) उत्तम (यशः) कीर्ति, (वयोधसम्) कमनीय सुख को धारण करने वाले (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य, (जगतीम्) जगत् की (छन्दः) स्वतन्त्रता (वयः) विज्ञान, (इन्द्रियम्)

दधत् सन् होता यक्षत्तथा यज ॥ २८ । ३० ॥

धन, (अनड्वाहम्) शकट=छकड़े को वहन करने वाले (गाम्) बैल को (वीताम्) प्राप्त करते हैं; और जैसे (आज्यस्य) विज्ञेय वस्तुओं के मध्य में इन्हें (दधत्) धारण करता हुआ (होता) विद्वान् (यक्षत्) प्राप्त करता है; वैसे (यज) प्राप्त कर ॥ २८ । ३० ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यदि मनुष्याः पुरुषार्थं कुर्युस्तर्हि विद्यां, कीर्त्तिं, धनं च प्राप्य, माननीया भवेयुः ॥ २८ । ३० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। यदि मनुष्य पुरुषार्थ करें तो विद्या, कीर्ति और धन को प्राप्त करके माननीय हों ॥ २८ । ३० ॥

भा० पदार्थः—वयः=विद्याम्।

भाष्यसार—१. **विद्वान् लोग क्या करते हैं**—विद्वानों के मध्य में श्रेष्ठ विज्ञान वाले, साथ सम्बद्ध रहने वाले, दिव्य कर्मों के आचरण में श्रेष्ठ, विद्या आदि के दाता मेधावी अध्यापक और अध्येता अथवा विद्या को सुनने सुनाने वाले विद्वान्—उत्तम यश को प्राप्त करते हैं। कमनीय सुख के धारक परम ऐश्वर्य, जगती छन्द, विज्ञान, धन और शकट (छकड़ा) के वाहक बैल को प्राप्त करते हैं। पुरुषार्थ करके विद्या, कीर्ति और धन को प्राप्त करके माननीय बनते हैं।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि यजमान विद्वानों के तुल्य मन्त्रोक्त यज्ञ का अनुष्ठान करे ॥ २८ । ३० ॥

सरस्वती। **वाण्यः=कर्मोपासनाज्ञानविज्ञापिका वाण्यः।** भुरिक्छक्वरी। धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वान् क्या करते हैं, यह फिर उपदेश किया है ॥

होता यक्षत्पेशस्वतीस्तिस्रो देवीर्हिरण्ययीर्भारतीर्बृहतीर्महीः पतिमिन्द्रं वयोधसम्।
विराजं छन्द ऽ इहेन्द्रियं धेनुं गां न वयो दधद्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३१ ॥

पदार्थः—(**होता**) (**यक्षत्**) (**पेशस्वतीः**) प्रशस्तसुरूपवतीः (**तिस्रः**) त्रित्वसंख्याः (**देवीः**) दात्र्यः (**हिरण्ययीः**) हिरण्यप्रकाराः (**भारतीः**) धारिकाः (**बृहतीः**) (**महीः**) महत्संयुक्ताः (**पतिम्**) पालकम् (**इन्द्रम्**) राजानम् (**वयोधसम्**) चिरायुर्धारकम् (**विराजम्**) विविधानां पदार्थानां प्रकाशकम् (**छन्दः**) बलकरम् (**इह**) (**इन्द्रियम्**) इन्द्रैर्जीवैर्जुष्टं सुखम् (**धेनुम्**) दुग्धदात्रीम् (**गाम्**) (**न**) इव (**वयः**) कमनीयम् (**दधत्**) (**व्यन्तु**) प्राप्नुवन्तु (**आज्यस्य**) (**होतः**) (**यज**) ॥ ३१ ॥

अन्वयः—हे होतर्यथेह यो होता तिस्रो हिरण्ययीः पेशस्वती भारतीर्बृहतीर्महीर्देवीस्त्रिविधा वाचो वयोधसं पतिमिन्द्रं विराजं छन्द वय इन्द्रियं च यक्षत्स धेनुं गां न व्यन्तु तथैतानि दधत्सन्नाज्यस्य फलं यज ॥ ३१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे होतः ! यथेह यो होता तिस्रः त्रित्वसंख्याः, **हिरण्ययीः** हिरण्यप्रकाशः,

भाषार्थ—हे (होतः) यजमान ! जैसे (इह) यहाँ जो (होता) विद्यादि शुभ गुणों को

पेशस्वतीः प्रशस्तसुरूपवतीः, **भारतीः** धारिकाः **बृहतीः**, **महीः** महत्संयुक्ताः **देवीः** दात्र्यः, **त्रिविधा वाचो**; **वयोधसं** चिरायुर्धारकं **पतिं** पालकम् **इन्द्रं** राजानं, **विराजं** विविधानां पदार्थानां प्रकाशकं, **छन्दः** बलकरं, **वयः** कमनीयम्, **इन्द्रियम्** इन्द्रैर्जीवैर्जुष्टं सुखं **च यक्षत्** संगच्छेत, **स धेनुं** दुग्धदात्रीं **गां न** इव **व्यन्तु** प्राप्नुवन्तु; **तथैतानि दधत् सन्नाज्यस्य फलं यज** ॥ २८ । ३१ ॥

ग्रहण करने वाला विद्वान् (तिस्रः) तीन (हिरण्ययीः) हिरण्य=सुवर्ण प्रकार वाली, (पेशस्वतीः) प्रशस्त सुरूप वाली, (भारतीः) धारण शक्ति वाली, (बृहतीः) बड़ी, (महीः) महत्त्वपूर्ण, (देवीः) सुख-दात्री तीन प्रकार की वाणियों का तथा (वयोधसम्) चिरायु को धारण करने वाले, (पतिम्) पालक (इन्द्रम्) राजा का, (विराजः) विविध पदार्थों के प्रकाशक विराट् नामक छन्द, (छन्दः) बलकारी पदार्थ, (वयः) कमनीय वस्तु और (इन्द्रियम्) इन्द्र=जीवों से सेवित सुख का (यक्षत्) संग करता है; वह (धेनुम्) दुधारु (गाम्) गौ के (न) समान (व्यन्तु) इन्हें प्राप्त करता है; वैसे इन पदार्थों को (दधत्) धारण करता हुआ (आज्यस्य) विज्ञान के फल को (यज) प्राप्त कर ॥ २८ । ३१ ॥

भावार्थः — अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। ये मनुष्याः कर्मोपासनाज्ञानविज्ञापिकां वाणीं विजानन्ति, ते महतीं कीर्तिं प्राप्नुवन्ति। यथा धेनुर्वत्सान् तर्पयति तथेह विद्वांसोऽज्ञान् बालकान् तर्पयन्ति ॥ २८ । ३१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार हैं। जो मनुष्य कर्म, उपासना और विज्ञान को बतलाने वाली वाणी को जानते हैं वे महान् कीर्ति को प्राप्त करते हैं; जैसे धेनु=दुधारु गौ बछड़ों को तृप्त करती हैं; वैसे यहाँ विद्वान् लोग अज्ञ बालकों को तृप्त करते हैं ॥ ३१ ॥

भाष्यसार—**१. विद्वान् लोग क्या करते हैं**—विद्वान् लोग हिरण्य के प्रकार वाली, प्रशस्त रूप वाली, धारण शक्ति वाली, बड़ी, महत्त्व से युक्त, सुख को देने वाली, ज्ञान-कर्म, उपासना को बतलाने वाली तीन प्रकार की वाणी को जानते हैं तथा महान् कीर्ति को प्राप्त करते हैं। चिरायु को धारण करने वाले पालक राजा, विविध पदार्थों के प्रकाशक विराट् छन्द, बलकारी पदार्थ, कमनीय वस्तु और इन्द्र=जीवों से सेवनीय सुख को प्राप्त करते हैं। जैसे धेनु=दुधारु गाय बछड़ों को तृप्त करती है वैसे इस संसार में विद्वान् लोग अज्ञ बालकों को विद्या से तृप्त करते हैं।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'न' पद है; अतः उपमा अलंकार है। उपमा-वाचक पद को लुप्त मानकर वाचक लुप्तोपमा अलंकार भी है। उपमा यह है कि यजमान विद्वानों के तुल्य मन्त्रोक्त यज्ञ का अनुष्ठान करे ॥ २८ । ३१ ॥ ●

सरस्वती । **इन्द्रः=विद्वान्** । भुरिक् छक्वरी । धैवतः ।

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वान् क्या करते हैं, इसका फिर उपदेश किया है ॥

होता यक्षत्सुरेतसं त्वष्टारं पुष्टिवर्द्धनं रूपाणि बिभ्रतं पृथक् पुष्टिमिन्द्रं वयोधसम् ।
द्विपदं छन्द ऽ इन्द्रियमुक्षाणं गां न वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३२ ॥

पदार्थः—(**होता**) (**यक्षत्**) (**सुरेतसम्**) शोभनं रेतो=वीर्यं यस्य तम् (**त्वष्टारम्**) देदीप्यमानम् (**पुष्टिवर्धनम्**) यः पुष्टचा वर्धयति तम् (**रूपाणि**) (**बिभ्रतम्**) धरन्तम् (**पृथक्**) (**पुष्टिम्**) (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्यम् (**वयोधसम्**) (**द्विपदम्**) द्वौ पादौ यस्मिन् तत् (**छन्दः**) (**इन्द्रियम्**) (**उक्षाणम्**) वीर्यसेचनसमर्थम् (**गाम्**) युवावस्थास्थं वृषभम् (**न**) इव (**वयः**) (**दधत्**) (**वेतु**) (**आज्यस्य**) (**होतः**) (**यज**) ॥ ३२ ॥

अन्वयः—हे होतस्त्वं यथा होता सुरेतसं त्वष्टारं पुष्टिवर्धनं रूपाणि पृथक् बिभ्रतं वयोधसं पुष्टिमिन्द्रं द्विपदं छन्द इन्द्रियमुक्षाणं गां न वयो दधत्सन्नाज्यस्य यक्षद्वेतु तथा यज ॥ ३२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे होतः ! त्वं **यथा**—**होता सुरेतसं** शोभनं रेतो=वीर्यं यस्य तं, **त्वष्टारं** देदीप्यमानं, **पुष्टिवर्धनं** यः पुष्टचा वर्धयति तं, **रूपाणि पृथक् बिभ्रतं** धरन्तं, **वयोधसं पुष्टिमिन्द्रं** परमैश्वर्य्यं, **द्विपदं** द्वौ पादौ यस्मिन् तत् **छन्द, इन्द्रियम्, उक्षाणं** वीर्यसेचन-समर्थं **गां** युवावस्था-स्थं वृषभं **न** इव, **वयो दधत्सन्नाज्यस्य यक्षद्वेतु; तथा यज** ॥ २८ । ३२ ॥

भाषार्थ—हे (होतः) यजमान ! तू—जैसे (होता) विद्वान् (सुरेतसम्) उत्तम रेत=वीर्य वाले, (त्वष्टारम्) देदीप्यमान, (पुष्टिवर्धनम्) पुष्टि को बढ़ाने वाले, (रूपाणि) रूपों को (पृथक्) पृथक् (बिभ्रतम्) धारण करने वाले, (वयोधसम्) चिरायु को धारण करने वाले (पुष्टिम्) पुष्टिकारक (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य को तथा (द्विपदम्) दो चरणों वाले (छन्दः) छन्द, (इन्द्रियम्) धन, (उक्षाणम्) वीर्य-सेचन में समर्थ (गाम्) युवा अवस्था वाले, सांड के (न) समान (वयः) गति को (दधत्) धारण करता हुआ (आज्यस्य) विज्ञान को (यक्षत्) संग करता है; (वेतु) उसे प्राप्त करता है; वैसे (यज) यज्ञ कर ॥ २८ । ३२ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारौ । हे मनुष्याः । यथा वृषभो गा गर्भिणीः कृत्वा पशून् वर्धयति, तथा गृहस्था स्त्रीर्गर्भवतीः कृत्वा प्रजा वर्द्धयेयुः । यदि सन्तानेच्छा स्यात् तर्हि पुष्टिः सम्पादनीया । यथा सूर्यो रूपज्ञापकोऽस्ति, तथा विद्वान् विद्यासुशिक्षे प्रकाशयति ॥ २८ । ३२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचक लुप्तोपमा अलंकार हैं । हे मनुष्यो ! जैसे सांड गौओं को गर्भिणी करके पशुओं को बढ़ाता है; वैसे गृहस्थ लोग स्त्रियों को गर्भवती करके प्रजा को बढ़ावें । यदि सन्तान की इच्छा हो तो पुष्टि को प्राप्त करें जैसे सूर्य रूप का ज्ञापक है वैसे विद्वान् विद्या और सुशिक्षा को प्रकाशित करता है ॥ २८ । ३२ ॥

भा० पदार्थः—द्विपदम्=विद्यासुशिक्षे ।

भाष्यसार—१. **विद्वान् लोग क्या करते हैं**—विद्वान् लोग उत्तम वीर्य प्रदान करने वाले, देदीप्यमान, पुष्टि को बढ़ाने वाले, रूपों को पृथक् धारण करने वाले, आयु को बढ़ाने वाले, पुष्टि-कारक, परम ऐश्वर्य को धारण करते हैं । दो पादों वाले छन्द, धन वा श्रोत्र आदि इन्द्रियों को धारण करते हैं । जैसे वीर्य सेचन में समर्थ, युवा सांड गौओं को गर्भिणी करके पशुओं को बढ़ाता है; वैसे विद्वान् गृहस्थ लोग स्त्रियों को गर्भवती करके प्रजा को बढ़ाते हैं । यदि सन्तान की इच्छा हो तो पुष्टि को प्राप्त करते हैं । जैसे सूर्य रूप का ज्ञापक है वैसे विद्वान् लोग विद्या और सुशिक्षा के प्रकाशक होते हैं ।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'न' पद है; अतः उपमा अलंकार है । उपमा-वाचक

पद को लुप्त मानकर वाचक लुप्तोपमा अलंकार भी है। उपमा यह है कि यजमान विद्वानों के तुल्य मन्त्रोक्त यज्ञ का अनुष्ठान करें ॥ २८ । ३२ ॥

सरस्वती । **छन्दः**=**विद्वान्** । निचृदत्यष्टिः । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वान् क्या करते हैं, इसका फिर उपदेश किया है ॥

होता यक्षद्वनस्पतिꣳ शमितारꣳ शतक्रतुꣳ हिरण्यपर्णमुक्थिनꣳ रशनां बिभ्रतं वशिं भगमिन्द्रं वयोधसम् । ककुभं छन्द ऽ इहेन्द्रियं वशां वेहतं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥३३॥

पदार्थः—(**होता**) (**यक्षत्**) (**वनस्पतिम्**) किरणपालकं सूर्यम् (**शमितारम्**) शान्तिकरम् (**शतक्रतुम्**) बहुप्रज्ञम् (**हिरण्यपर्णम्**) हिरण्यानि=तेजांसि पर्णानि=पालकानि यस्य तम् (**उक्थिनम्**) उक्थानि=वक्तुं योग्यानि प्रशस्तानि वचनानि यस्य तम् (**रशनाम्**) अङ्गुलिम् । **रशनेत्यस्याङ्गुलिना० ॥ निघं० ३ । ५ ॥** (**बिभ्रतम्**) धरन्तम् (**वशिम्**) वशकर्त्तारम् (भगम्) सेवनीयमैश्वर्यम् (**इन्द्रम्**) जीवम् (**वयोधसम्**) आयुर्धारकम् (**ककुभम्**) स्तम्भकम् (**छन्दः**) आह्लादकरम् (**इह**) (**इन्द्रियम्**) धनम् (**वशाम्**) वन्ध्याम् (**वेहतम्**) गर्भस्राविकाम् (**गाम्**) (**वयः**) कमनीयं वस्तु (**दधत्**) (**वेतु**) (**आज्यस्य**) (**होतः**) (**यज**) ॥ ३३ ॥

अन्वयः—हे होतस्त्वं यथेहाज्यस्य होता शमितारं हिरण्यपर्णं वनस्पतिमिव शतक्रतुमुक्थिनं रशनां बिभ्रतं वशिं भगं वयोधसमिन्द्रं ककुभं छन्द इन्द्रियं वशां वेहतं गां वयश्च दधत्सन्यक्षद्वेतु तथा यज ॥ ३३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे होतः ! त्वं यथेहाज्यस्य होता, **शमितारं** शान्तिकरं, **हिरण्यपर्णं** हिरण्यानि=तेजांसि पर्णानि=पालकानि यस्य तं, **वनस्पतिं** किरणपालकं सूर्यम् **इव, शतक्रतुं** बहुप्रज्ञम्, **उक्थिनम्** उक्थानि वक्तुं योग्यानि प्रशस्तानि वचनानि यस्य तं, **रशनाम्** अङ्गुलिं **बिभ्रतं** धरन्तं, **वशिं** वशकर्त्तारं **भगं** सेवनीयमैश्वर्यं, **वयोधसम्** आयुर्धारकम् **इन्द्रं** जीवं, **ककुभं** स्तम्भकं **छन्दः** आह्लादकरम् **इन्द्रियं** धनं, **वशां** वन्ध्यां **वेहतं** गर्भस्राविकां **गां, वयः** कमनीयं वस्तु **च दधत् सन् यक्षद् वेतु; तथा यज** ॥ २८ । ३३ ॥

भाषार्थ—हे (होतः) यजमान ! तू—जैसे (इह) यहाँ (आज्यस्य) विज्ञान का (होता) दाता विद्वान्—(शमितारम्) शान्तिकारक, (हिरण्यपर्णम्) पालक तेजों वाले, (वनस्पतिम्) किरणों के पालक सूर्य के तुल्य, (शतक्रतुम्) बहुत प्रज्ञा वाले, (उक्थिनम्) उक्थ=बोलने योग्य प्रशस्त वचनों वाले, (रशनाम्) अंगुलि को (बिभ्रतम्) धारण करने वाले, (वशिम्) वश में करने वाले (भगम्) सेवनीय ऐश्वर्य को तथा (वयोधसम्) आयु को धारण करने वाले (इन्द्रम्) जीव को, (ककुभम्) स्तम्भक=रोधक, (छन्दः) आह्लादकारक (इन्द्रियम्) धन को, (वशाम्) वन्ध्या, (वेहतम्) गर्भपातिनी (गाम्) गौ को और (वयः) कमनीय वस्तु को (दधत्) धारण करता हुआ (यक्षत्) उसका संग करता है; (वेतु) उसे प्राप्त करता है; वैसे (यज) यज्ञ कर ॥ २८ । ३३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा

ये मनुष्याः सूर्यवद्विद्याधर्मसुशिक्षाप्रकाशका धीमन्तः स्वाङ्गानि धरन्तो, विद्यैश्वर्यं प्राप्यान्येभ्यो ददति, ते प्रशंसामाप्नुवन्ति ॥ २८ । ३३ ॥

अलंकार है । जो मनुष्य सूर्य के समान विद्या धर्म और सुशिक्षा के प्रकाशक, बुद्धिमान्, अपने अङ्गों को धारण करते हुए विद्या रूप ऐश्वर्य को प्राप्त करके अन्यों को प्रदान करते हैं; वे प्रशंसा को प्राप्त होते हैं ॥ २८ । ३३ ॥

भा० पदार्थः—वनस्पतिम् [इव]=सूर्यवत् । शतक्रतुम्=विद्याप्रकाशकम् । उक्थिनम् =धर्मसुशिक्षाप्रकाशकम् । रशनाम्=स्वाङ्गम् । भगम्=विद्यैश्वर्यम् । यक्षत्=ददाति । वेतु=प्रशंसां प्राप्नोतु ॥

भाष्यसार—**विद्वानों का कर्त्तव्य**—विद्वानों को विद्या प्राप्त कर अन्यों को भी शिक्षित करना चाहिए । इसी से उनकी प्रशंसा है ॥ २८ । ३३ ॥

सरस्वती । **अग्निः=विद्वान्** । अतिशक्वरी । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वान् क्या करते हैं, यह फिर उपदेश किया है ॥

होता यक्षत् स्वाहाकृतीरग्निं गृहपतिं पृथग्वरुणं भेषजं कविं क्षत्रमिन्द्रं वयोधसम् ।
अतिच्छन्दसं छन्द ऽ इन्द्रियं बृहदृषभं गां वयो दधद्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३४ ॥

पदार्थः—(**होता**) (**यक्षत्**) (**स्वाहाकृतीः**) वाण्यादिभिः क्रियाः (**अग्निम्**) पावकमिव वर्त्तमानम् (**गृहपतिम्**) गृहस्य पालकम् (**पृथक्**) (**वरुणम्**) श्रेष्ठम् (**भेषजम्**) औषधम् (**कविम्**) मेधाविनम् (**क्षत्रम्**) राज्यम् (**इन्द्रम्**) राजानम् (**वयोधसम्**) कमनीयं जीवनधारकम् (**अतिछन्दसम्**) अतिजगत्यादिप्रतिपादितम् (**छन्दः**) (**इन्द्रियम्**) श्रोत्रादिकम् (**बृहत्**) (**ऋषभम्**) अतिश्रेष्ठम् (**गाम्**) (**वयः**) (**दधत्**) (**व्यन्तु**) (**आज्यस्य**) (**होतः**) (**यज**) ॥ ३४ ॥

अन्वयः—हे होतस्त्वं यथा होता स्वाहाकृतीरग्निमिव गृहपतिं वरुणं पृथग्भेषजं कविं वयोधसमिन्द्रं क्षत्रमतिछन्दसं छन्दो बृहदिन्द्रियमृषभं गां वयश्च दधत्सन्नाज्यस्याहुतिं यक्षद्यथा जना एतानि व्यन्तु तथा यज ॥ ३४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे होतः ! **त्वं यथा होता-स्वाहाकृतीः** वाण्यादिभिः क्रियाः, **अग्निं** पावकमिव वर्त्तमानम् **इव गृहपतिं** गृहस्य पालकं, **वरुणं** श्रेष्ठं **पृथक्, भेषजम्** औषधं, **कविं** मेधाविनं, **वयोधसं** कमनीयं जीवनधारकम् **इन्द्रं** राजानं **क्षत्रं** राज्यम्, **अतिछन्दसम्** अतिजगत्यादिप्रतिपादितं **छन्दो, बृहद्, इन्द्रियं** श्रोत्रादिकं, **ऋषभम्** अतिश्रेष्ठं **गां, वयश्च दधत्सन्नाज्यस्याहुतिं यक्षद् यथा, जना एतानि व्यन्तु; तथा यज** ॥ २८ । ३४ ॥

भाषार्थ—हे (होतः) यजमान ! तू—जैसे (होता) विद्या का दाता विद्वान्—(स्वाहाकृतीः) वाणी आदि से निष्पन्न क्रिया, (अग्निम्) अग्नि के तुल्य (गृहपतिम्) घर के पालक, (वरुणम्) श्रेष्ठ (पृथक्) पृथक् (भेषजम्) औषध, (कविम्) मेधावी, (वयोधसम्) कमनीय जीवन को धारण करने वाले (इन्द्रम्) राजा, (क्षत्रम्) राज्य, (अतिच्छन्दसम्) अतिजगती आदि छन्दों से प्रतिपादित अर्थ, (छन्दः) स्वतन्त्रता, (बृहत्) बड़ी (इन्द्रियम्) श्रोत्र आदि इन्द्रिय (ऋषभम्) अति श्रेष्ठ (गाम्) बैल, और (वयः) कमनीय वस्तु को

(दधत्) धारण करता हुआ (आज्यस्य) विज्ञान की (आहुतिम्) आहुति का (यक्षत्) संग करता है; और जैसे लोग इन्हें (व्यन्तु) प्राप्त करते हैं; वैसे (यज) यज्ञ कर ॥ २८ । ३४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्या वेदस्थानि, छन्दांस्यतिच्छन्दांसि चाधीत्यार्थविदो भवन्ति, ते सर्वा विद्याः प्राप्नुवन्ति ॥ २८ । ३४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। जो मनुष्य वेदस्थ छन्दों और अतिछन्दों को पढ़कर अर्थ के ज्ञाता होते हैं; वे सब विद्याओं को प्राप्त करते हैं ॥ २८ । ३४ ॥

भा० पदार्थः—वयः=सर्वा विद्याः। अतिछन्दसम्=वेदस्थानि छन्दांस्यतिछन्दांसि च।

भाष्यसार—१. **विद्वान् लोग क्या करते हैं**—विद्या के दाता विद्वान् वाणी आदि के द्वारा निष्पन्न क्रियाओं, अग्नि के तुल्य वर्ताव करने वाले घर के पालक, श्रेष्ठ पुरुष, औषध, मेधावी विद्वान्, कमनीय जीवन को धारण करने वाले राजा, राज्य, अतिजगती आदि छन्द, श्रोत्र आदि इन्द्रिय, अतिश्रेष्ठ बैल और कमनीय वस्तुओं को धारण करते हैं। वेदस्थ छन्दों और अतिछन्दों का अध्ययन करके अर्थ के ज्ञाता बनते हैं तथा सब विद्याओं को प्राप्त करते हैं।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि यजमान विद्वानों के तुल्य मन्त्रोक्त यज्ञ का अनुष्ठान करे ॥ २८ । ३४ ॥

सरस्वती। **इन्द्रः**=सूर्यः। भुरिक्त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

कीदृशा जना वर्धन्त इत्याह ॥

कैसे मनुष्य बढ़ते हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

दे॒वं ब॒र्हिर्व॑यो॒धसं॑ दे॒वमिन्द्र॑मवर्द्धयत्।
गा॒य॒त्र्या छन्द॑सेन्द्रि॒यं चक्षु॒रिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वेतु॒ यज॑ ॥ ३५ ॥

पदार्थः—(**देवम्**) दिव्यगुणम् (**बर्हिः**) अन्तरिक्षम् (**वयोधसम्**) वयोवर्धकम् (**देवम्**) दिव्यस्वरूपम् (**इन्द्रम्**) सूर्यम् (**अवर्धयत्**) वर्धयति (**गायत्र्या**) (**छन्दसा**) (**इन्द्रियम्**) इन्द्रस्य=जीवस्य लिंगम् (**चक्षुः**) नेत्रम् (**इन्द्रे**) जीवे (**वयः**) जीवनम् (**दधत्**) धरत् (**वसुवने**) धनविभाजकाय (**वसुधेयस्य**) द्रव्याऽऽधारस्य संसारस्य (**वेतु**) प्राप्नोतु (**यज**) संगच्छस्व ॥ ३५ ॥

अन्वयः—हे विद्वन्! यथा देवं बर्हिर्वयोधसं देवमिन्द्रमवर्धयद्यथा च गायत्र्या छन्दसा चक्षुरिन्द्रियं वयश्चेन्द्रे दधत्सद्वसुधेयस्य वसुवने वेतु तथा यज ॥ ३५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन्! **यथा देवं** दिव्यगुणं **बर्हिः** अन्तरिक्षं, **वयोधसं** वयोवर्धकं **देवं** दिव्यस्वरूपम् **इन्द्रं** सूर्यम् **अवर्धयत्** वर्धयति; **यथा च—गायत्र्या छन्दसा चक्षुः** नेत्रम् **इन्द्रियम्** इन्द्रस्य=जीवस्य लिङ्गं, **वयः** जीवनं, **च इन्द्रे** जीवे **दधत्** धरत् **सत् वसुधेयस्य** द्रव्याऽऽधारस्य संसारस्य

भाषार्थ—हे विद्वन्! जैसे—(देवम्) दिव्य गुणों वाला (बर्हिः) अन्तरिक्ष—(वयोधसम्) आयु को बढ़ाने वाले (देवम्) दिव्य स्वरूप वाले (इन्द्रम्) सूर्य को (अवर्धयत्) बढ़ाता है; और जैसे—(गायत्र्या) गायत्री (छन्दसा) छन्द से (चक्षुः) नेत्र, (इन्द्रियम्) इन्द्र=जीव के चिह्न

वसुवने धनविभाजकाय **वेतु** प्राप्नोतु; **तथा यज** सङ्गच्छस्व ॥ २८ । ३५ ॥

रूप इन्द्रियाँ, और (वयः) जीवन को (इन्द्रे) जीव में (दधत्) धारण करता हुआ (वसुधेयस्य) द्रव्यों के आधार संसार के (वसुवने) धन-विभाजक के लिए (वेतु) प्राप्त करता है, वैसे (यज) संगति कर ॥ २८ । ३५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यथाऽऽकाशे सूर्यप्रकाशो वर्धते, तथा वेदेषु प्रज्ञा वर्धते । येऽस्मिन् संसारे वेदद्वारा सर्वाः सत्यविद्या जानीयुस्ते सर्वतो वर्धेरन् ॥ २८ । ३५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । जैसे आकाश में सूर्य का प्रकाश बढ़ता है; वैसे वेदों में प्रज्ञा=बुद्धि बढ़ती है । जो इस संसार में वेद के द्वारा सब सत्य विद्याओं को जानते हैं वे सब ओर से बढ़ते हैं ॥ २८ । ३५ ॥

भा० पदार्थः—बर्हिः=आकाशम् । इन्द्रम्=सूर्यप्रकाशम् । वसुधेयस्य=अस्मिन् संसारे । गायत्र्या=वेदद्वारा । चक्षुः=सर्वाः सत्यविद्याः ।

भाष्यसार—१. **कैसे मनुष्य बढ़ते हैं**—दिव्य गुणों वाला अन्तरिक्ष (आकाश) आयु को बढ़ाने वाले, दिव्य स्वरूप वाले सूर्य को बढ़ाता है अर्थात् आकाश में सूर्य का प्रकाश बढ़ता है । जैसे आकाश में सूर्य का प्रकाश बढ़ता है वैसे वेदों के अध्ययन से मनुष्य की बुद्धि बढ़ती है । अतः मनुष्य गायत्री छन्द के द्वारा चक्षु आदि इन्द्रिय तथा जीवन को जीवात्मा में धारण करें । जो इस संसार में वेद के द्वारा सब सत्य विद्याओं को जानते हैं वे सब ओर बढ़ते हैं ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । उपमा यह है कि मनुष्य आकाश में सूर्य-प्रकाश के तुल्य वेदों में अपनी प्रज्ञा को बढ़ावें तथा विद्वानों के तुल्य मन्त्रोक्त यज्ञ का अनुष्ठान करें ॥ २८ । ३५ ॥

सरस्वती । **इन्द्रः**=शुद्धवायुः । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

मनुष्यैः कीदृशानि गृहाणि निर्मातव्यानीत्याह ॥

मनुष्यों को कैसे घर बनाने चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

दे॒वीर्द्वारो॑ वयो॒धस॒ꣳ शुचि॒मिन्द्र॑मवर्द्धयन ।
उ॒ष्णिहा॑ छन्द॑सेन्द्रि॒यं प्रा॒णमिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु यज ॥ ३६ ॥

पदार्थः—(**देवीः**) देदीप्यमानानि (**द्वारः**) गमनागमनार्थानि द्वाराणि (**वयोधसम्**) जीवनाधारकम् (**शुचिम्**) पवित्रम् (**इन्द्रम्**) शुद्धं वायुम् (**अवर्धयत्**) वर्धयन्ति (**उष्णिहा**) (**छन्दसा**) (**इन्द्रियम्**) इन्द्रेण=जीवेन जुष्टम् (**प्राणम्**) (**इन्द्रे**) जीवे (**वयः**) कमनीयं=प्रियम् (**दधत्**) धरन्त्सन् (**वसुवने**) द्रव्ययाचिने (**वसुधेयस्य**) धनाऽऽधारस्य कोषस्य (**व्यन्तु**) (**यज**) ॥ ३६ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! यथा देवीर्द्वारो वयोधसं शुचिमिन्द्रमिन्द्रियं प्राणमिन्द्रे वसुधेयस्य वसुवनेऽवर्धयत् व्यन्तु तथोष्णिहा छन्दसैतान् वयश्च दधत्सन् यज ॥ ३६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! यथा—**देवीः** देदीप्यमानानि **द्वारः** गमनागमनार्थानि

भाषार्थ—हे विद्वन् ! जैसे—(देवीः) देदीप्यमान, (द्वारः) गमन-आगमन के लिए बने

द्वाराणि, **वयोधसं** जीवनधारकं **शुचि** पवित्रम् इन्द्रं शुद्धं वायुम्, **इन्द्रियम्** इन्द्रेण=जीवेन जुष्टं **प्राणम् इन्द्रे** जीवे **वसुधेयस्य** धनाऽऽधारस्य कोषस्य **वसुवने** द्रव्ययाचिने **अवर्धयत्** वर्धयन्ति, **व्यन्तु**, **तथोष्णिहा छन्दसैतान् वयः** कमनीयं=प्रियं **च**, **दधत्** धरन् **सन् यज** ॥ २८ । ३६ ॥

द्वार—(वयोधसम्) जीवन को धारण करने वाले, (शुचिम्) पवित्र, (इन्द्रम्) शुद्ध वायु को; (इन्द्रियम्) इन्द्र=जीव से सेवित इन्द्रिय तथा (प्राणम्) प्राण को (इन्द्रे) जीव में (वसुधेयस्य) धन के आधार कोष के (वसुवने) द्रव्य याचक के लिए (अवर्धयत्) बढ़ाते हैं; (व्यन्तु) उसे प्राप्त कराते हैं; वैसे (उष्णिहा) उष्णिक् नामक (छन्दसा) छन्द से इनको और (वयः) प्रिय वस्तु को (दधत्) धारण करता हुआ (यज) प्राप्त कर ॥ २८ । ३६ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालंकारः। यानि गृहाणि सम्मुखद्वाराणि, वायुसंचारीणि सन्ति, तत्र निवासेन—जीवनं, पवित्रता, बलमारोग्यं च वर्धते। तस्मात्—बहुद्वाराणि बृहन्ति गृहाणि निर्मातव्यानि ॥ २८ । ३६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। जो घर द्वार के सम्मुख द्वार वाले वायु-संचारी होते हैं; उनमें निवास करने से जीवन, पवित्रता, बल और आरोग्य बढ़ता है; अतः बहुत द्वारों वाले बड़े घर बनावें ॥ २८ । ३६ ॥

भा० पदार्थः—द्वारः=सम्मुखद्वाराणि बहुद्वाराणि बृहन्ति [गृ]। इन्द्रम्=वायुसंचारि [गृ०]। वयोधसम्=जीवनम्। शुचिम्=पवित्रताम्। प्राणम्=बलम्। इन्द्रियम्=आरोग्यम्। अवर्धयत्=वर्धते ॥

भाष्यसार—१. **मनुष्य कैसे घर बनावें**—मनुष्य प्रकाश से देदीप्यमान, द्वार के सम्मुख द्वार वाले, वायु-संचार से युक्त द्वारों वाले घरों का निर्माण करें। ऐसे घर जीवन को धारण करने वाले, पवित्र एवं शुद्ध वायु से युक्त होते हैं। इनमें निवास करने से जीवन, पवित्रता, बल और आरोग्य बढ़ता है। मनुष्य उक्त घरों में रहकर कोष के द्रव्य-याचक मनुष्यों के लिए धन को बढ़ावें। उष्णिक् छन्द से इन बहुत द्वारों वाले विशाल घरों को तथा प्रिय वस्तुओं को धारण करें।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि विद्वान् मन्त्रोक्त घरों के समान सुख को बढ़ावें ॥ २८ । ३६ ॥

सरस्वती। **इन्द्रः**=**जीवः**। भुरिगतिजगती। निषादः ॥

पुनर्मनुष्याः कथं वर्धेरन्नित्याह ॥

फिर मनुष्य कैसे बढ़ें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

देवी ऽ उषासानक्ता देवमिन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्द्धताम्।
अनुष्टुभा छन्दसेन्द्रियं बलमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ ३७ ॥

पदार्थः—(**देवी**) देदीप्यमाने (**उषासानक्ता**) रात्रिदिने इवाध्यापिकाध्येत्र्यौ स्त्रियौ (**देवम्**) दिव्यगुणम् (**इन्द्रम्**) जीवम् (**वयोधसम्**) (**देवी**) दिव्या पतिव्रता स्त्री (**देवम्**) दिव्यं स्त्रीव्रतं पतिम् (**अवर्धताम्**) (**अनुष्टुभा**) (**छन्दसा**) (**इन्द्रियम्**) इन्द्रेण=जीवेन सेवितम् (**बलम्**) (**इन्द्रे**) जीवे (**वयः**) प्राणधारणम् (**दधत**) (**वसुवने**) (**वसुधेयस्य**) (**वीताम्**) (**यज**) ॥ ३७ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यथोषासानक्तेव देवी वयोधसं देवमिन्द्रं देवी देवमिवावर्धतां यथा च वसुधेयस्य वसुवने वीतां तथा वयोदधत्सन्ननुष्टुभा छन्दसेन्द्र इन्द्रियं बलं यज ॥ ३७ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे विद्वन्! यथोषासानक्ता** रात्रिदिने इवाध्यापिकाध्येत्र्यौ स्त्रियौ **इव, देवी** देदीप्यमाने, **वयोधसं, देवं** दिव्यगुणम्, **इन्द्रं** जीवं; **देवी** दिव्या पतिव्रता स्त्री **देवं** दिव्यं स्त्रीव्रतं पतिम् **इवाऽवर्धताम्; यथा च—वसुधेयस्य वसुवने वीतां, तथा वयः** प्राणधारणं **दधत् सन्, अनुष्टुभा छन्दसेन्द्रे** जीवे **इन्द्रियम्** इन्द्रेण=जीवेन सेवितं **बलं यज** ॥ २८ । ३७ ॥

भाषार्थ—हे विद्वन् ! जैसे—(उषासा-नक्ता) रात्रि और दिन के तुल्य (देवी) विद्यादि गुणों से देदीप्यमान अध्यापिका और अध्येत्री स्त्रियाँ—(वयोधसम्) आयु को धारण करने वाले, (देवम्) दिव्य गुणों से युक्त (इन्द्रम्) जीव को; तथा (देवी) दिव्य पतिव्रता स्त्री (देवम्) दिव्य स्त्रीव्रत पति के तुल्य (अवर्धताम्) बढ़ाती हैं; और जैसे— (वसुधेयस्य) कोष के (वसुवने) द्रव्य-याचक के लिए (वीताम्) प्राप्त होती हैं; वैसे (वयः) जीवन को (दधत्) धारण करता हुआ (अनुष्टुभा) अनुष्टुप् नामक (छन्दसा)—छन्द से (इन्द्रे) जीव में (इन्द्रियम्) इन्द्र=जीव से सेवित इन्द्रिय एवं (बलम्) बल को (यज) प्राप्त कर ॥ २८ । ३७ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । हे मनुष्याः ! यथा प्रीत्या स्त्रीपुरुषौ, व्यवस्थयाऽहोरात्रौ च वर्धेते, तथा प्रीत्या धर्मव्यवस्थया च भवन्तो वर्धन्ताम् ॥ २८ । ३७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। हे मनुष्यो ! जैसे प्रीति से स्त्री-पुरुष और व्यवस्था से दिन-रात बढ़ते हैं; वैसे प्रीति और धर्म-व्यवस्था से आप लोग बढ़ें ॥ २८ । ३७ ॥

भा० पदार्थः—उषासानक्ता=स्त्रीपुरुषौ/अहोरात्रौ । अनुष्टुभा=प्रीत्या/व्यवस्थया/धर्म-व्यवस्थया ॥

भाष्यसार—१. **मनुष्य कैसे बढ़ें**—जैसे दिन और रात्रि के तुल्य विद्या से देदीप्यमान अध्यापिका और अध्येत्री स्त्रियाँ आयु को धारण करने वाले, दिव्य गुणों से युक्त जीव को बढ़ाती हैं। जैसे दिव्य गुणों से युक्त पतिव्रता स्त्री दिव्य गुणों से युक्त स्त्रीव्रत पति को बढ़ाती है अर्थात् जैसे प्रीति से स्त्री-पुरुष और व्यवस्था से दिन-रात बढ़ते हैं वैसे सब मनुष्य प्रीति और व्यवस्था से वृद्धि को प्राप्त करें। कोष के द्रव्य-याचक पुरुष को द्रव्य प्रदान करें। प्राणों को धारण करें। अनुष्टुप् छन्द से जीव में इन्द्रिय और बल को स्थापित करें।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त हैं; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि विद्वान् मन्त्रोक्त दिन-रात के तुल्य यज्ञ का अनुष्ठान करें ॥२८।३७॥

सरस्वती । **इन्द्रः**=**अन्नदाता** । भुरिगतिजगती । निषादः ॥

अथ स्त्रीपुरुषौ किं कुर्यातामित्याह ॥

अब स्त्रीपुरुष क्या करें, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

देवी जोष्ट्री वसुधिती देवमिन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्द्धताम् ।
बृहत्या छन्दसेन्द्रियꣳ श्रोत्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ ३८ ॥

पदार्थः—(**देवी**) देदीप्यमाने (**जोष्ट्री**) प्रीतिमत्यौ (**वसुधिती**) विद्याधारिके (**देवम्**) दिव्यगुणम् सन्तानम् (**इन्द्रम्**) अन्नदातारम् (**वयोधसम्**) जीवनधारकम् (**देवी**) धर्मात्मा स्त्री (**देवम्**) धर्मात्मानं पतिम् (**अवर्धताम्**) (**बृहत्या**) (**छन्दसा**) (**इन्द्रियम्**) इन्द्रेणेश्वरेण सृष्टम् (**श्रोत्रम्**) शब्द-श्रावकम् (**इन्द्रे**) जीवे (**वयः**) कमनीयं सुखम् (**दधत्**) (**वसुवने**) (**वसुधेयस्य**) (**वीताम्**) व्याप्नुतः (**यज**) ॥ ३८ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! यथा देवी जोष्ट्री वसुधिती स्त्रियौ वयोधसमिन्द्रं देवं देवी देवमिव प्राप्याऽवर्धतां बृहत्या छन्दसेन्द्रे श्रोत्रमिन्द्रियं वीतां तथा वसुधेयस्य वसुवने वयो दधत्सन् यज ॥ ३८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **विद्वन्** ! **यथा देवी** देदीप्यमाने **जोष्ट्री** प्रीतिमत्यौ **वसुधिती** विद्या-धारिके **स्त्रियौ, वयोधसं जीवनधारकम् इन्द्रम्** अन्न-दातारं, **देवं** दिव्यगुणं सन्तानं, **देवी** धर्मात्मा स्त्री **देवं** धर्मात्मानं पतिम्, **इव प्राप्यावर्धताम् बृहत्या छन्दसेन्द्रे** जीवे **श्रोत्रं** शब्दश्रावकम् **इन्द्रियम्** इन्द्रेणेश्वरेण सृष्टं **वीतां** व्याप्नुतः, **तथा वसुधेयस्य वसुवने वयः** कम-नीयं सुखं **दधत्सन् यज** ॥ २८ । ३८ ॥

भाषार्थ—हे विद्वन् ! जैसे—(देवी) विद्या से देदीप्यमान, (जोष्ट्री) प्रीति से युक्त, (वसुधिती) विद्या को धारण करने वाली स्त्रियाँ (वयोधसम्) जीवन को धारण करने वाले, (इन्द्रम्) अन्न के दाता (देवम्) दिव्य गुणों वाले सन्तान को; तथा (देवी) धर्मात्मा स्त्री (देवम्) धर्मात्मा पति के तुल्य (अवर्धताम्) बढ़ाती हैं; और (बृहत्या) बृहती नामक (छन्दसा) छन्द से (इन्द्रे) जीव में (श्रोत्रम्) शब्द को सुनने वाले श्रोत्र नामक (इन्द्रियम्) इन्द्र=ईश्वर के रचे इन्द्रिय को (वीताम्) प्राप्त करती हैं; वैसे (वसुधेयस्य) कोष के (वसुवने) द्रव्य याचक के लिए (वयः) कमनीय सुख को (दधत्) धारण करता हुआ (यज) प्राप्त कर ॥ २८ । ३८ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । हे मनुष्य ! यथाऽध्यापिकोपदेशिके स्त्रियौ स्वसन्तानान्, अन्याः कन्याः, स्त्रियश्च विद्याशिक्षाभ्यां वर्धयतः, तथा—स्त्रीपुरुषौ परमप्रीत्या विद्या-विचारेण स्वसन्तानान् वर्द्धयेतां, स्वयं च वर्धेताम् ॥ २८ । ३८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। हे मनुष्य ! जैसे अध्यापिका और उपदेशिका स्त्रियाँ—अपने सन्तानों, अन्य कन्याओं और स्त्रियों को विद्या और शिक्षा से बढ़ाती हैं; वैसे स्त्री और पुरुष परम प्रीति से विद्या-विचार के द्वारा अपने सन्तानों को बढ़ावें और स्वयं वृद्धि को प्राप्त हों ॥ २८ । ३८ ॥

भा० पदार्थः—वसुधिती=अध्यापिकोपदेशिके स्त्रियौ । देवम्=स्वसन्तानान्, अन्याः कन्याश्च । देवी=स्त्रियः । बृहत्या=विद्याविचारेण । छन्दसा=परमप्रीत्या ॥

भाष्यसार—१. **स्त्री-पुरुष क्या करें**—विद्या से देदीप्यमान, प्रीति से युक्त, विद्या को धारण करने वाली अध्यापिका और उपदेशिका स्त्रियाँ—जीवन को धारण करने वाले, अन्न के दाता, दिव्य गुणों वाले सन्तान को बढ़ावें अर्थात् अपने सन्तानों, कन्याओं और स्त्रियों को विद्या और सुशिक्षा से बढ़ावें । देवी अर्थात् धर्मात्मा स्त्री देव अर्थात् धर्मात्मा पति को बढ़ावें अर्थात् स्त्री-पुरुष परम प्रीति से विद्या-विचार से अपने सन्तानों को बढ़ावें और स्वयं भी बढ़ें । बृहती छन्द से जीव में श्रोत्र आदि इन्द्रियों को प्राप्त करें । कोष के द्रव्य-याचक पुरुष के लिए कमनीय सुख को धारण करें ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि विद्वान् लोग मन्त्रोक्त स्त्री-पुरुष के तुल्य यज्ञ का अनुष्ठान करें ॥ २८ । ३८ ॥

सरस्वती । **इन्द्रः**=**जीवः** । निचृच्छक्वरी । धैवतः ॥

पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

मनुष्यों को क्या करना चाहिए, इस विषय का फिर उपदेश किया है ॥

देवी ऽऊर्जाहुती दुघें सुदुघे पयसेन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्द्धताम् ।
पङ्क्त्या छन्दसेन्द्रियꣳ शुक्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ ३९ ॥

पदार्थः—(**देवी**) दात्र्यौ (**ऊर्जाहुती**) सुसंस्कृतान्नाहुती (**दुघे**) पूरिके (**सुदुघे**) सुष्ठुकामप्रपूरिके (**पयसा**) जलवर्षणेन (**इन्द्रम्**) जीवम् (**वयोधसम्**) प्राणधारिणम् (**देवी**) पतिव्रता विदुषी स्त्री (**देवम्**) स्त्रीव्रतं विद्वांसम् (**अवर्धताम्**) (**पङ्क्त्या**) (**छन्दसा**) (**इन्द्रियम्**) धनम् (**शुक्रम्**) वीर्यम् (**इन्द्रे**) जीवे (**वयः**) कमनीयं सुखम् (**दधत्**) (**वसुवने**) धनसेविने (**वसुधेयस्य**) (**वीताम्**) (**यज**) ॥ ३९ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यथा दुघे सुदुघे देवी ऊर्जाहुती पयसा वयोधसमिन्द्रं देवी देवमिवावर्धतां पङ्क्त्या छन्दसा इन्द्रे शुक्रमिन्द्रियवीतां तथा वसुधेयस्य वसुवने वयो दधत्सन् यज ॥ ३९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **विद्वन्**! **यथा दुघे** पूरिके **सुदुघे** सुष्ठुकामप्रपूरिके **देवी** दात्र्यौ **ऊर्जाहुती** सुसंस्कृतान्नाहुती, **पयसा** जलवर्षणेन **वयोधसं** प्राणधारिणम् **इन्द्रं** जीवं, **देवी** पतिव्रता विदुषी स्त्री **देवं** स्त्रीव्रतं विद्वांसम् **इवाऽवर्धताम्**; **पङ्क्त्या छन्दसा इन्द्रे** जीवे **शुक्रं** वीर्यम्, **इन्द्रियं** धनं **वीतां, तथा वसुधेयस्य वसुवने** धनसेविने **वयः** कमनीयं सुखं **दधत्सन् यज** ॥ २८ । ३९ ॥

भाषार्थ—हे विद्वन्! जैसे—(दुघे) सुख से पूरण करने वाली, (सुदुघे) अच्छे प्रकार कामनाओं को पूरण करने वाली (देवी) सुखदात्री (ऊर्जाहुती) सुगन्धित अन्न की आहुतियाँ—(पयसा) जल की वर्षा से (वयोधसम्) प्राणधारी (इन्द्रम्) जीव को; (देवी) पतिव्रत विदुषी स्त्री (देवम्) स्त्रीव्रत विद्वान् के तुल्य (अवर्धताम्) बढ़ाती हैं। (पंक्त्या) पंक्ति नामक (छन्दसा) छन्द से (इन्द्रे) जीव में (शुक्रम्) वीर्य एवं (इन्द्रियम्) धन को (वीताम्) प्राप्त कराती हैं; वैसे (वसुधेयस्य) कोष के (वसुवने) धन-सेवक के लिए (वयः) कमनीय सुख को (दधत्) धारण करता हुआ (यज) प्राप्त कर ॥ २८ । ३९ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः! यथाऽग्नौ प्रास्ताऽऽहुतिः, मेघमण्डलं प्राप्य पुनरागत्य च शुद्धेन जलेन सर्वं जगत् पुष्णाति, तथा विद्याग्रहणदानाभ्यां सर्वं पोषयत ॥ २८।३९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे अग्नि में डाली हुई आहुति, मेघ-मण्डल में पहुँचकर और फिर लौट कर शुद्ध जल से सब जगत् को पुष्ट करती है; वैसे विद्या के ग्रहण और दान से सब को पुष्ट करो ॥ २८।३९ ॥

भा० पदार्थः—पयसा=शुद्धेन जलेन । इन्द्रम्=सर्वं जगत् । अवर्धताम्=पुष्णाति ।

भाष्यसार—१. **मनुष्यों को क्या करना चाहिए**—जैसे सुख से पूरण करने वाली, अच्छे प्रकार कामनाओं को पूरण करने वाली; सुख प्रदान करने वाली सुगन्धित अन्न की अग्नि में डाली हुई आहुतियाँ—जल की वर्षा से प्राणधारी जीव को बढ़ाती हैं अर्थात् मेघ-मण्डल में पहुँचकर और फिर लौट कर शुद्ध जल से सब को पुष्ट करती हैं; वैसे सब मनुष्य विद्या ग्रहण और दान से सब को पुष्ट करें। और जैसे पतिव्रता विदुषी स्त्री स्त्रीव्रत विद्वान् पुरुष को बढ़ाती है; वैसे मनुष्य सब को बढ़ावें। पंक्ति छन्द से जीव के निमित्त वीर्य और धन को प्राप्त करें। कोष के धन का सेवन करने वाले पुरुष के लिए कमनीय सुख को धारण करें।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि विद्वान् मन्त्रोक्त आहुतियाँ तथा पतिव्रता स्त्री के समान यज्ञ का अनुष्ठान करें ॥ २८ । ३९ ॥

सरस्वती । **इन्द्रः**=**जीवः** । अतिजगती । निषादः ॥

पुनः स्त्रीपुंसाभ्यां किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

स्त्री पुरुषों को क्या करना चाहिए, इस विषय का फिर उपदेश किया है ॥

दे॒वा दैव्या॒ होता॑रा दे॒वमिन्द्रं॑ व॒यो॒धसं॑ दे॒वौ दे॒वम॑वर्द्धताम् ।
त्रि॒ष्टुभा॒ छन्द॑से॒न्द्रि॒यं त्विषि॒मिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वीतां॒ यज॑ ॥ ४० ॥

पदार्थः—(**देवा**) कमनीयौ विद्वांसौ (**दैव्या**) कमनीयेषु कुशलौ (**होतारा**) दातारावध्यापकोपदेशकौ (**देवम्**) कामयमानम् (**इन्द्रम्**) जीवम् (**वयोधसम्**) आयुर्धारकम् (**देवौ**) शुभगुणान् कामयमानौ मातापितरौ (**देवम्**) कमनीयं पुत्रम् (**अवर्धताम्**) वर्धयतः (**त्रिष्टुभा**) (**छन्दसा**) (**इन्द्रियम्**) श्रोत्रादि (**त्विषिम्**) प्रकाशयुक्तम् (**इन्द्रे**) स्वात्मनि (**वयः**) (**दधत्**) (**वसुवने**) (**वसुधेयस्य**) (**वीताम्**) (**यज**) ॥४०॥

अन्वयः—हे होतारा यथा दैव्या देवा वयोधसं देवमिन्द्रं देवौ देवमिवाऽवर्द्धतां तथा वसुधेयस्य वसुवने वीताम् । हे विद्वन् ! त्रिष्टुभा छन्दसेन्द्रे त्विषिमिन्द्रियं वयो दधत्सन् त्वं यज ॥ ४० ॥

सपदार्थान्वयः—**हे होतारा !** दातारावध्यापकोपदेशकौ ! **यथा दैव्या** कमनीयेषु कुशलौ **देवा** कमनीयौ विद्वांसौ **वयोधसम्** आयुर्धारकं **देवं** कामयमानम् **इन्द्रं** जीवं, **देवौ** शुभगुणान् कामयमानौ मातापितरौ **देवं** कमनीयं पुत्रम् **इवाऽवर्द्धतां** वर्धयतः; **तथा वसुधेयस्य वसुवने वीताम् ।**

हे विद्वन् ! त्रिष्टुभा छन्दसेन्द्रे स्वात्मनि **त्विषिं** प्रकाशयुक्तम् **इन्द्रियं** श्रोत्रादि **वयो दधत्सन् त्वं यज** ॥ २८ । ४० ॥

भाषार्थ—हे (होतारा) विद्या आदि के दाता अध्यापक और उपदेशको ! जैसे—(दैव्या) कमनीय विद्वानों में कुशल, (देवा) कमनीय विद्वान्—(वयोधसम्) आयु को धारण करने वाले, (देवम्) कामना करने वाले (इन्द्रम्) जीव को; (देवौ) शुभ गुणों की कामना करने वाले माता पिता तथा (देवम्) कमनीय पुत्र के समान (अवर्धताम्) बढ़ाते हैं; वैसे (वसुधेयस्य) कोष के (वसुवने) द्रव्य-याचक के लिए (वीताम्) प्राप्त करते हैं।

हे विद्वन् ! (त्रिष्टुभा) त्रिष्टुप् नामक (छन्दसा) छन्द से (इन्द्रे) अपने आत्मा में (त्विषिम्) प्रकाश से युक्त (इन्द्रियम्) श्रोत्र आदि इन्द्रिय तथा

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथाऽध्यापकोपदेशकौ विद्यार्थिशिष्यौ, मातापितरावपत्यानि वर्धयतः; तथा—विद्वांसौ स्त्रीपुरुषौ वेदविद्यया सर्वान् वर्द्धयेताम् ॥ २८ । ४० ॥

(वयः) कमनीय वस्तु को (दधत्) धारण करता हुआ तू (यज) यज्ञ कर ॥ २८ । ४० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। जैसे अध्यापक और उपदेशक विद्यार्थी और शिष्यों को, माता-पिता अपने सन्तानों को बढ़ाते हैं; वैसे विद्वान् स्त्री-पुरुष वेद-विद्या के द्वारा सब को बढ़ाते हैं ॥ २८ । ४० ॥

भा० पदार्थः—देवा=विद्यार्थिशिष्यौ। छन्दसा=वेदविद्यया। देवम्=विद्यार्थिनम्। शिष्यम्। अपत्यम्।

भाष्यसार—१. **स्त्री पुरुषों को क्या करना करना चाहिए**—विद्या के दाता अध्यापक और उपदेशक अपने विद्यार्थियों और शिष्यों को बढ़ावें। कामना करने योग्य विद्वानों में कुशल, स्वयं कामना करने योग्य विद्वान् आयु को धारण करने वाले, कामना करने योग्य जीव को बढ़ावें। शुभ गुणों की कामना करने वाले माता-पिता कामना करने योग्य पुत्र को बढ़ावें। कोष के द्रव्य-याचक पुरुष के लिए धन को प्राप्त करें। त्रिष्टुप् छन्द से अपने आत्मा में प्रकाशयुक्त श्रोत्र आदि इन्द्रिय तथा कमनीय वस्तुओं को धारण करें।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक इव आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि विद्वान् लोग माता पिता के समान वेद-विद्या से सब को बढ़ावें एवं मन्त्रोक्त यज्ञ का अनुष्ठान करें ॥ २८ । ४० ॥

सरस्वती। **इन्द्रः=सम्राट्**। भुरिग् जगती। निषादः॥

अथ राजप्रजाधर्मविषयमाह॥

अब राजा और प्रजा-धर्म का उपदेश किया जाता है॥

देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीर्वयोधसं पतिमिन्द्रमवर्द्धयन्।
जगत्या छन्दसेन्द्रियꣳ शूषमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ४१ ॥

पदार्थः—(**देवीः**) देदीप्यमाना विदुष्यः (**तिस्रः**) त्रित्वसंख्याकाः (**तिस्रः**) अध्यापकोपदेशकपरीक्षित्र्यः (**देवीः**) अत्रादरार्थं द्विरुक्तिः (**वयोधसम्**) जीवनधारकम् (**पतिम्**) पालकं स्वामिनम् (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्यवन्तं सम्राजम् (**अवर्द्धयन्**) वर्धयेयुः (**जगत्या**) (**छन्दसा**) (**इन्द्रियम्**) (**शूषम्**) बलम् (**इन्द्रे**) स्वात्मनि (**वयः**) शत्रुबलव्यापकम् (**दधत्**) (**वसुवने**) (**वसुधेयस्य**) (**व्यन्तु**) व्याप्नुवन्तु (**यज**) ॥ ४१ ॥

अन्वयः—हे विद्वन्! यथा तिस्रो देवीस्तिस्रो देवीर्वयोधसं पतिमिन्द्रमवर्द्धयन् व्यन्तु तथा जगत्या छन्दसेन्द्रे शूषमिन्द्रियं वयो दधत्सन् वसुधेयस्य वसुवने यज ॥ ४१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन्! यथा **तिस्रः** त्रित्वसंख्याकाः **देवीः** देदीप्यमाना विदुष्यः, **तिस्रः** अध्यापकोपदेशकपरीक्षित्र्यः **देवीः** देदीप्यमाना विदुष्यः, **वयोधसं** जीवनधारकं **पतिं** पालकं

भाषार्थ—हे विद्वन्! जैसे—(तिस्रः) तीन (देवीः) विद्या से देदीप्यमान विदुषियाँ, (तिस्रः) अध्यापिका, उपदेशिका और परीक्षित्री ये तीन (देवीः) विद्या से देदीप्यमान विदुषियाँ—(वयो-

स्वामिनम् इन्द्रं परमैश्वर्यवन्तं सम्राजम् **अवर्द्धयन्** वर्धयेयुः, **व्यन्तु** व्याप्नुवन्तु **तथा जगत्या छन्दसेन्द्रे** स्वात्मनि **शूषं** बलम्, **इन्द्रियं, वयः** शत्रुबलव्यापकं, **दधत्सन् वसुधेयस्य वसुवने यज** ॥ २८ । ४१ ॥

धसम्) जीवन को धारण करने वाले, (पतिम्) पालक, स्वामी, (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्यवान् सम्राट् को (अवर्द्धयन्) बढ़ाती हैं, (व्यन्तु) उसे प्राप्त करती हैं; वैसे (जगत्या) जगती नामक (छन्दसा) छन्द से (इन्द्रे) अपने आत्मा में (शूषम्) बल (इन्द्रियम्) धन (वयः) शत्रुबल में व्यापक वस्तु को (दधत्) धारण करता हुआ (वसुधेयस्य) कोष के (वसुवने) द्रव्य-याचक के लिए (यज) प्राप्त कर ॥ २८ । ४१ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा—अध्यापकोपदेशकपरीक्षकाः स्त्रीपुरुषाः प्रजासु विद्यासदुपदेशान् प्रचारयेयुस्तथा—राजैतेषां यथावद् रक्षां कुर्यादेवं, राजप्रजाजनाः परस्परं प्रीताः सन्तः सर्वतो वृद्धिं प्राप्नुवन्तु ॥ २८ । ४१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। जैसे अध्यापक, उपदेशक और परीक्षक स्त्री-पुरुष प्रजा में विद्या और सदुपदेशों का प्रचार करते हैं; वैसे राजा इनकी यथावत् रक्षा करें; इस प्रकार राजा और प्रजाजन परस्पर प्रसन्न होकर सब ओर वृद्धि को प्राप्त हों ॥ २८ । ४१ ॥

भाष्यसार—१. **राजा और प्रजा का धर्म**—विद्या से देदीप्यमान अध्यापिका, उपदेशिका और परीक्षिका तीन विदुषी देवियाँ जीवन को धारण करने वाले, पालक, स्वामी, परम ऐश्वर्यवान् सम्राट् को बढ़ावें अर्थात् प्रजा में विद्या और सदुपदेशों का प्रचार करें। राजा भी इनकी यथावत् रक्षा करे। राजा और प्रजाजन परस्पर प्रसन्न होकर वृद्धि को प्राप्त हों।

विद्वान् लोग जगती छन्द से अपने आत्मा में बल, धन और शत्रुबल में व्यापक पदार्थ को धारण करें तथा कोष के द्रव्य-याचक पुरुष को द्रव्य प्रदान करें।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि विद्वान् लोग मन्त्रोक्त विदुषियों के तुल्य यज्ञ का अनुष्ठान करें ॥ २८ । ४१ ॥

सरस्वती । **इन्द्रः**=**विद्वान्**। निचृदतिजगती । निषादः ॥

अथ विद्वद्भिः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

अब विद्वानों को क्या करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

दे॒वो न॑रा॒शꣳसो॑ दे॒वमिन्द्रं॑ वयो॒धसं॑ दे॒वो दे॒वम॑वर्द्धयत् ।
वि॒राजा॒ छन्द॑सेन्द्रि॒यꣳ रू॒पमिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वेतु॒ यज॑ ॥ ४२ ॥

पदार्थः—(देवः) विद्वान् (**नराशंसः**) यो नरैराशंस्यते सः (**देवम्**) दिव्यगुणकर्मस्वभावम् (**इन्द्रम्**) राजानम् (**वयोधसम्**) चिरंजीविनम् (**देवः**) विद्वान् (**देवम्**) विद्वांसम् (**अवर्धयत्**) वर्धयेत् (**विराजा**) (**छन्दसा**) (**इन्द्रियम्**) (**रूपम्**) (**इन्द्रे**) (**वयः**) (**दधत्**) (**वसुवने**) (**वसुधेयस्य**) (**वेतु**) (**यज**) ॥ ४२ ॥

अन्वयः—हे विद्वन्! यथा नराशंसो देवो वयोधसं देवमिन्द्रं देवो देवमिवावर्धयद्विराजा छन्दसेन्द्रे रूपमिन्द्रियं वेतु तथा वसुधेयस्य वसुवने वयो दधत्सन् यज ॥ ४२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! यथा—**नराशंसः** यो नरैराशंस्यते सः **देवः** विद्वान्, **वयोधसं** चिरंजीविनं **देवं** दिव्यगुणकर्मस्वभावम् **इन्द्रं** राजानं; **देवः** विद्वान् **देवं** विद्वांसं **इवावर्धयत्** वर्धयेत्; **विराजा छन्दसेन्द्रे रूपमिन्द्रियं वेतु; तथा वसुधेयस्य वसुवने वयो दधत् सन् यज** ॥ २८ । ४२ ॥

भाषार्थ—हे विद्वन् ! जैसे—(नराशंसः) नरों से प्रशंसा करने योग्य, (देवः) विद्वान्—(वयोधसम्) चिरंजीव (देवम्) दिव्य गुण, कर्म, स्वभाव वाले (इन्द्रम्) राजा को; (देवः) विद्वान् (देवम्) विद्वान् के तुल्य (अवर्धयत्) बढ़ाता है; और (विराजा) विराट् नामक (छन्दसा) छन्द से (इन्द्रे) जीव में (रूपम्) रूप तथा (इन्द्रियम्) श्रोत्र आदि इन्द्रियों को (वेतु) प्राप्त करता है; वैसे (वसुधेयस्य) कोष के (वसुवने) द्रव्य-याचक के लिए (वयः) कमनीय वस्तु को (दधत्) धारण करता हुआ (यज) प्राप्त कर ॥ २८ । ४२ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। विद्वद्भिः कदाचित् परस्परस्मिन्नीर्ष्ययाऽन्योऽन्यस्य हानिर्नैव कार्या, किन्तु—सदैव प्रीत्या वृद्धिः सम्पादनीया ॥ २८ । ४२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। विद्वान् लोग कभी परस्पर ईर्ष्या से एक-दूसरे की हानि न करें; किन्तु—सदैव प्रीति पूर्वक वृद्धि को प्राप्त करें ॥ २८ । ४२ ॥

भाष्यसार—१. **विद्वानों को क्या करना चाहिए**—नरों से प्रशंसा के योग्य विद्वान्—चिरंजीव, दिव्य गुण-कर्म-स्वभाव वाले, राजा को बढ़ावें। एक विद्वान् दूसरे विद्वान् को बढ़ावे अर्थात् कभी भी परस्पर ईर्ष्या से एक-दूसरे की हानि न करें किन्तु सदैव प्रीति से वृद्धि को प्राप्त करें।

विद्वान् लोग विराट् छन्द से आत्मा में रूप और धन को प्राप्त करें। कोष के द्रव्य-याचक पुरुष के लिए कमनीय वस्तु को धारण करें।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि विद्वान् लोग मन्त्रोक्त नराशंस विद्वान् के तुल्य यज्ञ का अनुष्ठान करें ॥ २८ । ४२ ॥

सरस्वती। **इन्द्रः**=**विद्वान्**। निचृदतिजगती। निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वानों को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

देवो वनस्पतिर्देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्द्धयत्
द्विपदा छन्दसेन्द्रियं भगमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ ४३ ॥

पदार्थः—(**देवः**) दिव्यगुणः (**वनस्पतिः**) वनानां पालको वटादिः (**देवम्**) दिव्यगुणम् (**इन्द्रम्**) ऐश्वर्यम् (**वयोधसम्**) आयुर्धारकम् (**देवः**) दिव्यः सभ्यः (**देवम्**) दिव्यस्वभावं विद्वांसम् (**अवर्धयत्**) (**द्विपदा**) (**छन्दसा**) (**इन्द्रियम्**) धनम् (**भगम्**) ऐश्वर्यम् (**इन्द्रे**) (**वयः**) कमनीयं सुखम् (**दधत्**) (**वसवने**) (**वसधेयस्य**) (**वेतु**) (**यज**) ॥ ४३ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! यथा वनस्पतिर्देवो वयोधसं देवमिन्द्रं देवो देवमिवावर्द्धयत् । द्विपदा छन्दसेन्द्रे भगमिन्द्रियं वेतु तथा वसुधेयस्य वसुवने वयो दधत्सन् यज ॥ ४३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! यथा—**वनस्पतिः** वनानां पालको वटादिः **देवः** दिव्यगुणः, **वयोधसम्** आयुर्धारकं **देवं** दिव्यगुणम् **इन्द्रम्** ऐश्वर्यं, **देवः** दिव्यः सभ्यः **देवं** दिव्यस्वभावं विद्वांसम् **इवावर्द्धयत्**; **द्विपदा छन्दसेन्द्रे भगम्** ऐश्वर्यम् **इन्द्रियं** धनं **वेतु**; **तथा वसुधेयस्य वसुवने वयः** कमनीयं सुखं **दधत्सन् यज** ॥ २८ । ४३ ॥

भाषार्थ—हे विद्वन् ! जैसे—(वनस्पतिः) वनों का पालक वट आदि वृक्ष (देवः) दिव्य गुणों वाला है; वह (वयोधसम्) आयु का धारण करने वाले, (देवम्) दिव्य गुणों वाले (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को—(देवः) दिव्य, सभ्य (देवम्) दिव्य स्वभाव वाले विद्वान् के तुल्य (अवर्द्धयत्) बढ़ाता है; (द्विपदा) दो चरणों वाले (छन्दसा) छन्द से (इन्द्रे) जीव में (भगम्) ऐश्वर्य तथा (इन्द्रियम्) धन को (वेतु) प्राप्त करता है; वैसे (वसुधेयस्य) कोष के (वसुवने) द्रव्य-याचक के लिए (वयः) कमनीय सुख को (दधत्) धारण करता हुआ (यज) प्राप्त कर ॥ २८ । ४३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । विद्वांसो मनुष्याः ! युष्माभिर्यथा—वनस्पतयः पुष्कलं जलमधस्तादाकृष्य वायौ, मेघमण्डले च प्रसार्य सर्वानुद्भिज्जो रक्षन्ति, यथा च—राजपुरुषा राजपुरुषानवन्ति तथा ऐश्वर्यमुन्नेयम् ॥ २८ । ४३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। हे विद्वान् मनुष्यो ! तुम—जैसे वनस्पतियाँ पुष्कल जल को नीचे से खेंचकर, वायु और मेघ-मण्डल में फैलाकर सब उद्भिज्जों की रक्षा करती हैं; और जैसे राजपुरुष राजपुरुषों की रक्षा करते हैं; वैसे ऐश्वर्य को बढ़ावें ॥ २८ । ४३ ॥

भा० पदार्थः—अवर्धयत्=रक्षति / अवति । देवः=राजपुरुषः । देवम्=राजपुरुषम् । वेतु=उन्नयतु ॥

भाष्यसार—१. **विद्वानों को क्या करना चाहिए**—जैसे दिव्य गुणों वाला वनस्पति=वनों का पालक वट आदि वृक्ष आयु के धारक, दिव्य गुणों से युक्त ऐश्वर्य को बढ़ाता है अर्थात् पुष्कल जल को नीचे से खेंचकर वायु और मेघ-मण्डल में फैलाकर सब उद्भिज्जों (वृक्षों) की रक्षा करता है; जैसे राजपुरुष राजपुरुषों की रक्षा करते हैं; जैसे दिव्य, सभ्य विद्वान् दिव्य स्वभाव वाले विद्वान् को बढ़ाते हैं वैसे सब विद्वान् ऐश्वर्य को बढ़ावें ।

विद्वान् लोग दो पादों वाले छन्द से जीव के लिए ऐश्वर्य एवं धन को प्राप्त करें । कोष के द्रव्य-याचक पुरुष के लिए कमनीय सुख को धारण करें ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि विद्वान् लोग मन्त्रोक्त वटादि वृक्ष के तुल्य ऐश्वर्य को बढ़ावें ॥ २८ । ४३ ॥

सरस्वती । **इन्द्रः**=**विद्वान्** । भुरिगतिजगती । निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वानों को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

देवं ब॒र्हिर्वारि॑तीनां दे॒वमिन्द्रं॑ वयो॒धसं॑ दे॒वं दे॒वम॑वर्द्धयत् ।
क॒कुभा॒ छन्द॑सेन्द्रि॒यं यश॒ऽ इन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वेतु॒ यज॑ ॥ ४४ ॥

पदार्थः—(**देवम्**) दिव्यम् (**बर्हिः**) उदकम् । बर्हिरित्युदकना० । निघं० १ । १२ ॥ (**वारितीनाम्**) अन्तरिक्षस्थसमुद्राणाम् (**देवम्**) दिव्यम् (**इन्द्रम्**) राजानम् (**वयोधसम्**) बहुवयोधारकम् (**देवम्**) दिव्यगुणम् (**देवम्**) प्रकाशमानम् (**अवर्धयत्**) वर्धयेत् (**ककुभा, छन्दसा**) (**इन्द्रियम्**) इन्द्रस्य=जीवस्य लिंगम् (**यशः**) कीर्त्तिम् (**इन्द्रे**) परमैश्वर्ये (**वयः**) (**दधत्**) (**वसुवने**) (**वसुधेयस्य**) (**वेतु**) (**यज**) ॥ ४४ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! यथा वारितीनां देवं बर्हिर्वयोधसं देवमिन्द्रं देवंदेवं चावर्धयत्ककुभा छन्दसेन्द्रं यश इन्द्रियं वेतु तथा वसुधेयस्य वसुवने वयो दधद्यज ॥ ४४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! यथा **वारितीनाम्** अन्तरिक्षस्थसमुद्राणां **देवं** दिव्यं **बर्हिः** उदकं, **वयोधसं** बहुवयोधारकं **देवं** दिव्यम् **इन्द्रं** राजानं, **देवं** दिव्यगुणं **देवं** प्रकाशमानं **चावर्धयत्** वर्धयेत्, **ककुभा छन्दसेन्द्रं** राजानं **यशः** कीर्त्तिम् **इन्द्रियम्** इन्द्रस्य=जीवस्य लिङ्गं **वेतु; तथा वसुधेयस्य वसुवने वयो दधद्यज** ॥ २८ । ४४ ॥

भाषार्थ—हे विद्वन् ! जैसे—(वारितीनाम्) अन्तरिक्ष में स्थित समुद्रों का (देवम्) दिव्य (बर्हिः) जल—(वयोधसम्) बहुत आयु को धारण करने वाले, (देवम्) दिव्य (इन्द्रम्) राजा को और (देवम्) दिव्य गुण वाले (देवम्) प्रकाशमान रत्न आदि को (अवर्धयत्) बढ़ाता है; (ककुभा) ककुप् नामक (छन्दसा) छन्द से (इन्द्रम्) राजा, (यशः) कीर्ति और (इन्द्रियम्) इन्द्र=जीव के चिह्न इन्द्रिय को (वेतु) प्राप्त होता है; वैसे (वसुधेयस्य) कोष के (वसुवने) द्रव्य-याचक के लिए (वयः) कमनीय वस्तु को (दधत्) धारण करता हुआ (यज) प्राप्त कर ॥ २८ । ४४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । हे विद्वांसो मनुष्या ! यथा—उदकं समुद्रान् प्रपूर्य, जन्तून् संरक्ष्य मुक्तादीनि रत्नानि जनयति, तथा—धर्मेण धनकोषं प्रपूर्य, अन्यान् दरिद्रान् संरक्ष्य, कीर्त्ति वर्धयत ॥ २८ । ४४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । हे विद्वान् मनुष्यो ! जैसे जल समुद्रों को पूरण करके, जन्तुओं का संरक्षण करके मुक्ता आदि रत्नों को उत्पन्न करता है; वैसे धर्म से धन-कोष को पूरण कर के, अन्य दरिद्रों का संरक्षण करके कीर्ति को बढ़ाओ ॥ २८ । ४४ ॥

भा० पदार्थः—देवम्=मुक्तादिकं रत्नम् । अवर्धयत्=जनयति । छन्दसा=धर्मेण । वसुधेयस्य=धनकोषस्य । वसुवने=दरिद्राय ।

भाष्यसार—१. विद्वानों को क्या करना चाहिए—जैसे आकाशस्थ समुद्रों का दिव्य जल—बहुत आयु को धारण करने वाले, दिव्य गुणों से युक्त राजा को बढ़ाता है; दिव्य गुणों से युक्त प्रकाशमान मुक्ता आदि रत्नों को उत्पन्न करता है; जन्तुओं की रक्षा करता है; वैसे विद्वान् लोग धर्म से धन-कोष को पूरण करें ।

विद्वान् लोग ककुप् छन्द से राजा, कीर्ति और जीव के चिह्न इन्द्रियों को प्राप्त करें । कोष के द्रव्य-याचक दरिद्रों का संरक्षण करें ।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि विद्वान् लोग मन्त्रोक्त समुद्र जल के समान राजा और मुक्ता आदि रत्नों को बढ़ावें ॥ २८ । ४४ ॥

सरस्वती । **इन्द्रः**=विद्वान् । स्वराडति जगती । निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वानों को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

दे॒वो ऽ अ॒ग्निः स्वि॑ष्ट॒कृद्दे॒वमिन्द्रं॑ वयो॒धसं॑ दे॒वो दे॒वम॑वर्द्धयत् ।
अति॑च्छन्दसा॒ छन्द॑सेन्द्रि॒यं क्ष॒त्रमिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वेतु॒ यज॑ ॥ ४५ ॥

पदार्थः—(**देवः**) सर्वज्ञः (**अग्निः**) स्वप्रकाशस्वरूप ईश्वरः (**स्विष्टकृत्**) यः शोभनमिष्टं करोति सः (**देवम्**) धार्मिकम् (**इन्द्रम्**) जीवम् (**वयोधसम्**) आयुषो धर्त्तारम् (**देवः**) विद्वान् (**देवम्**) विद्यार्थिनम् (**अवर्धयत्**) वर्धयति (**अतिछन्दसा**) अतिजगत्यादिना (**छन्दसा**) आह्लादकरेण (**इन्द्रियम्**) जीवेन सेवितम् (**क्षत्रम्**) राज्यम् (**इन्द्रे**) विद्याविनयान्विते (**वयः**) कमनीयं वस्तु (**दधत्**) (**वसुधेयस्य**) (**वसुवने**) (**वेतु**) व्याप्नोतु (**यज**) ॥ ४५ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यथा स्विष्टकृद्देवोऽग्निर्वयोधसं देवमिन्द्रं देवो देवमिवावर्धयदतिछन्दसा छन्दसेन्द्रे वसुधेयस्य वसुवने वयः क्षत्रमिन्द्रियं दधत्सन् वेतु तथा यज ॥ ४५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! यथा—**स्विष्टकृत्** यः शोभनमिष्टं करोति स **देवः** सर्वज्ञः **अग्निः** स्वप्रकाशस्वरूप ईश्वरः, **वयोधसम्** आयुषो धर्त्तारं **देवं** धार्मिकम् **इन्द्रं** जीवं, **देवः** विद्वान् **देवं** विद्यार्थिनम् **इवावर्धयद्** वर्धयति; **अतिछन्दसा** अतिजगत्यादिना **छन्दसा** आह्लादकरेण **इन्द्रे** विद्याविनयान्विते **वसुधेयस्य वसुवने वयः** कमनीयं वस्तु **क्षत्रं** राज्यम् **इन्द्रियं** जीवेन सेवितं **दधत् सन् वेतु** व्याप्नोतु; **तथा यज** ॥ २८ । ४५ ॥

भाषार्थ—हे विद्वन् ! जैसे—(स्विष्टकृत्) उत्तम इष्ट को सिद्ध करने वाला, (देवः) सर्वज्ञ, (अग्निः) स्वप्रकाशस्वरूप ईश्वर—(वयोधसम्) आयु को धारण करने वाले, (देवम्) धार्मिक (इन्द्रम्) जीव को—(देवः) विद्वान् (देवम्) विद्यार्थी के तुल्य (अवर्धयत्) बढ़ाता है; और (अतिछन्दसा) अतिजगती आदि (छन्दसा) आह्लाद-कारक छन्द से (इन्द्रे) विद्या और विनय से युक्त जीव में (वसुधेयस्य) कोष के (वसुवने) द्रव्य-याचक के लिए (वयः) कमनीय वस्तु, (क्षत्रम्) राज्य और (इन्द्रियम्) जीव से सेवित इन्द्रिय को (दधत्) धारण करता हुआ (वेतु) उसे प्राप्त करता है; वैसे (यज) प्राप्त कर ॥ २८ । ४५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । हे विद्वांसो मनुष्याः ! यथा—परमेश्वरेण दयया सर्वान् पदार्थानुत्पाद्य, जीवेभ्यः समर्प्य, जगद्वृद्धिः कृता; तथा—विद्याविनयसत्संगपुरुषार्थधर्मानुष्ठानं राज्यं वर्धयत ॥ २८ । ४५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। हे विद्वान् मनुष्यो ! जैसे—परमेश्वर ने दया से सब पदार्थों को उत्पन्न करके, उन्हें जीवों को सौंप कर, जगत् की वृद्धि की है; वैसे तुम विद्या, विनय, सत्संग, पुरुषार्थ और धर्मानुष्ठान से राज्य को बढ़ाओ ॥ २८ । ४५ ॥

भा० पदार्थः—अवर्धयत्=वृद्धिः कृता । छन्दसा=धर्मानुष्ठानैः ॥

भाष्यसार—१. **विद्वानों को क्या करना चाहिए**—जैसे विद्वान् विद्यार्थी को बढ़ाता है वैसे उत्तम इष्ट को सिद्ध करने वाला, सर्वज्ञ, स्वप्रकाशस्वरूप ईश्वर—आयु को धारण करने वाले, धार्मिक जीव को बढ़ाता है अर्थात् परमेश्वर दया करके सब पदार्थों को उत्पन्न करके उन्हें जीवों को सौंप कर जगत् की वृद्धि करता है; वैसे विद्वान् लोग अतिजगती आदि छन्द से विद्या और विनय से युक्त जीवात्मा के लिए तथा कोष के द्रव्य-याचक पुरुष के लिए कमनीय वस्तु, राज्य और इन्द्रियों को धारण करें । विद्या, विनय, सत्संग और धर्मानुष्ठान से राज्य को बढ़ावें ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । उपमा यह है कि विद्वान् लोग मन्त्रोक्त ईश्वर के तुल्य राज्य की वृद्धि करें ॥२८।४५॥

सरस्वती । **इन्द्रः**=विद्वान् । आकृतिः । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वानों को क्या करना चाहिए, इसका फिर उपदेश किया है ॥

अ॒ग्निम॒द्य होता॑रमवृणीता॒यं यज॑मानः॒ पच॒न् पक्ती॒ः पच॑न् पु॒रो॒डाशं॑ ब॒ध्नन्निन्द्रा॑य व॒यो॒ध॒से॒ छाग॑म् ।
सू॒प॒स्था ऽ अ॒द्य दे॒वो वन॒स्पति॑रभव॒दिन्द्रा॑य व॒यो॒ध॒से॒ छागे॑न ।
अ॒घ॒त्तं मे॑द॒स्तः प्रति॑पच॒ताग्र॑भी॒दवी॑वृधत्पु॒रो॒डाशे॑न त्वाम॒द्य ऽ ऋ॑षे ॥ ४६ ॥

पदार्थः—(**अग्निम्**) तेजस्विनम् (**अद्य**) इदानीम् (**होतारम्**) (**अवृणीत**) वृणुयात् (**अयम्**) (**यजमानः**) यज्ञकर्त्ता (**पचन्**) (**पक्तीः**) नानाविधान् पाकान् (**पचन्**) (**पुरोडाशम्**) (**बध्नन्**) (**इन्द्राय**) परमैश्वर्याय (**वयोधसे**) सर्वेषां जीवनवर्धकाय (**छागम्**) छेदकम् (**सूपस्थाः**) ये सूप तिष्ठन्ति ते (**अद्य**) (**देवः**) विद्वान् (**वनस्पतिः**) वनानां पालकः (**अभवत्**) भवेत् (**इन्द्राय**) शत्रुविनाशकाय (**वयोधसे**) (**छागेन**) छेदनेन (**अघत्तम्**) भुञ्जीयाताम् (**मेदस्तः**) स्निग्धात् (**प्रति**) (**पचता**) परिपक्वभावं प्राप्तेन (**अग्रभीत्**) गृह्णीयात् (**अवीवृधत्**) वर्धेत (**पुरोडाशेन**) (**त्वाम्**) (**अद्य**) (**ऋषे**) मन्त्रार्थवित् ॥ ४६ ॥

अन्वयः—हे ऋषे यथाऽयं यजमानोऽद्य पक्तीः पचन्पुरोडाशं पचन्नग्निं होतारमद्यावृणीत तथा वयोधस इन्द्राय छागं बध्नन् वृणुहि । यथाऽद्य वनस्पतिर्देवो वयोधस इन्द्राय छागेनोद्यतोऽभवत्तथा सूपस्था भवन्तु । यथा पचता पुरोडाशेन मेदस्तस्त्वां प्रत्यग्रभीदवीवृधत्तथा हे यजमानहोतारौ युवां पुरोडाशमघत्तम् ॥ ४६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे ऋषे ! मन्त्रार्थवित् ! **यथाऽयं यजमानः** यज्ञकर्त्ता **अद्य** इदानीं **पक्तीः** नानाविधान् पाकान् **पचन्, पुरोडाशं पचन् अग्निं** तेजस्विनं **होतारमद्य** इदानीम् **अवृणीत्** वृणुयात्, **तथा वयोधसे** सर्वेषां जीवनवर्धकाय **इन्द्राय** परमैश्वर्याय **छागं** छेदकं **बध्नन् वृणुहि** ।

भाषार्थ—हे (ऋषे) मन्त्रार्थ के ज्ञाता ऋषि ! जैसे यह (यजमानः) यज्ञ करने वाला यजमान (अद्य) आज (पक्तीः) नाना प्रकार के पाकों को (पचन्) पकाता हुआ, (पुरोडाशम्) पुरोडाश नामक पाक विशेष को (पचन्) पकाता हुआ, (अग्निम्) तेजस्वी (होतारम्) विद्वान् को (अद्य) आज (अवृणीत्) वरण करता है; वैसे—(वयोधसे) सब के जीवन को बढ़ाने वाले (इन्द्राय)

परम ऐश्वर्य के लिए (छागम्) छेदक गुण से युक्त बकरी आदि पशु को (बध्नन्) बांधता हुआ उसे (वृणुहि) वरण कर । और—

यथाऽद्य इदानीं **वनस्पतिः** वनानां पालकः **देवः** विद्वान्, **वयोधसे** सर्वेषां जीवनवर्धकाय **इन्द्राय** शत्रुविनाशकाय **छागेन** छेदनेन **उद्यतोऽभवत्** भवेत्, **तथा सूपस्था** ये सूपतिष्ठन्ति ते **भवन्तु** ।

जैसे (अद्य) आज (वनस्पतिः) वनों का पालक (देवः) विद्वान्—(वयोधसे) सब के जीवन को धारण करने वाले (इन्द्राय) शत्रुओं के विदारक पुरुष के लिए (छागेन) छेदक गुण से युक्त बकरी आदि पशु के निमित्त उद्यत (अभवत्) होता है; वैसे—(सूपस्थाः) अच्छे प्रकार उपस्थित रहने वाले रसोइया कार्य में उद्यत रहें । और—

यथा पचता परिपक्वभावं प्राप्तेन **पुरोडाशेन मेदस्तः** स्निग्धात् **त्वां प्रत्यग्रभीद्** गृह्णीयात्, **अवीवृधत्** वर्धेत; **तथा—हे यजमानहोतारौ ! युवां पुरोडाशमघत्तं** भुञ्जीयाताम् ॥ २८ । ४६ ॥

जैसे—(पचता) परिपक्व भाव को प्राप्त (पुरोडाशेन) पुरोडाश नामक पाक विशेष तथा (मेदस्तः) स्निग्ध पदार्थ के कारण तुझे यजमान (प्रत्यग्रभीत्) स्वीकार करता है; (अवीवृधत्) बढ़ाता है; वैसे—हे यजमान और होता ! तुम दोनों भी (पुरोडाशम्) पुरोडाश को (अत्तम्) खाओ ॥ २८ । ४६ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यथा—सूदा उत्तमान्यन्नानि व्यञ्जनानि च पक्त्वा भोजयेयुस्तथैतान् भोक्तारो विद्वांसो मानयेयुः ।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । जैसे—रसोइया लोग उत्तम अन्नों और व्यंजनों को पकाकर खिलाते हैं वैसे इनका सेवन करने वाले विद्वान् भी मान करें ।

यथा—अजादयः पशवो घासादिकं भुक्त्वा सम्यक् पचन्ति, तथैव भुक्तमन्नं पाचयेयुः ॥ २८ । ४६ ॥

जैसे बकरी आदि पशु घास आदि को खाकर सम्यक् पचाते हैं; वैसे ही खाये हुए अन्न को पचावें ॥ २८ । ४६ ॥

भा० पदार्थः—पुरोडाशेन = उत्तमेनान्नेन, व्यञ्जनेन च ॥

भाष्यसार—१. **विद्वानों को क्या करना चाहिए**—जैसे यजमान नाना प्रकार के पाकों एवं पुरोडाश नामक पाकविशेष को पकाता है तथा तेजस्वी विद्वान् का वरण करता है; वैसे मन्त्रार्थ के ज्ञाता ऋषि लोग—सब के जीवन को बढ़ाने वाले परम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए छाग=दुधारु बकरी आदि पशुओं को बांधें तथा उनका वरण करें, स्वीकार करें ।

जैसे—वनों का पालक विद्वान्—सबके जीवन को बढ़ाने वाले, शत्रुओं के विनाशक वीर-पुरुष के लिए छाग आदि के दृष्टान्त से उद्यत रहते हैं; वैसे—रसोइया लोग भी अपने कार्य में सदा उद्यत रहें । उत्तम अन्न और व्यंजनों को पकाकर विद्वानों को खिलावें । विद्वान् भी उनका मान करें । और जैसे छाग=बकरी आदि पशु घास आदि को खाकर उसे सम्यक् पचाते हैं वैसे खाये हुए अन्न को पचावें ।

जैसे—यजमान लोग परिपक्व पुरोडाश एवं घृत आदि स्निग्ध पदार्थों के सेवन के निमित्त विद्वानों को स्वीकार करते हैं; वैसे यजमान और होता लोग स्वयं भी पुरोडाश नामक पाकविशेष का सेवन करें ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि मन्त्रार्थ के ज्ञाता ऋषि विद्वान् लोग—जैसे यजमान तेजस्वी विद्वान् का वरण करता है; वैसे छाग=दुधारु बकरी आदि पशुओं का वरण करें ॥ २८ । ४६ ॥

[पूर्वापराध्यायार्थसंगतिमाह—]

अत्र—होतृगुणवर्णनं, वागश्विगुणप्रतिपादनं, पुनर्होतृप्रतिपादनं, यज्ञवर्णनं, विद्वत्प्रशंसा चोक्ता ऽतः एतदर्थस्य पूर्वाध्यायार्थेन सह संगतिरस्तीति बोध्यम् ॥ २८ ॥

इस अध्याय में—होता के गुणों का वर्णन वाणी (३१) और अश्विनौ=अध्यापक और उपदेशक माता-पिता (४०) गुणों का प्रतिपादन, पुनः होता का प्रतिपादन, यज्ञ का वर्णन और विद्वानों की प्रशंसा का वर्णन (४२-४६) है; अतः इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति है; ऐसा जानो ॥ २८ ॥

इति श्रीयुतपण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते दयानन्द-यजुर्वेदभाष्य-भास्करे अष्टाविंशोऽध्यायः सम्पूर्णः ॥

॥ ओ३म् ॥

* अथैकोनत्रिंशोऽध्याय आरभ्यते *

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्नऽआसुव ॥ १ ॥

य० । ३ । ३० ॥

बृहदुक्थो वामदेव्यः । **अग्निः**=भौतिकः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथ मनुष्यैरग्निजलादिना किं साध्यमित्याह ॥

अब उनतीसवें अध्याय का आरम्भ है। इसके पहले मन्त्र में मनुष्यों को अग्नि और जलादि से क्या सिद्ध करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

समिद्धोऽअञ्जन् कृदरं मतीनां घृतमग्ने मधुमत् पिन्वमानः ।
वाजी वहन्वाजिनं जातवेदो देवानां वक्षि प्रियमा सधस्थम् ॥ १ ॥

पदार्थः—(**समिद्धः**) सम्यक् प्रदीप्तः (**अञ्जन्**) व्यक्तो भवन् (**कृदरम्**) उदरम् (**मतीनाम्**) मनुष्याणाम् (**घृतम्**) उदकमाज्यं वा (**अग्ने**) अग्निवद्वर्त्तमान (**मधुमत्**) मधुरा=बहवो गुणा विद्यन्ते यस्मिन् तत् (**पिन्वमानः**) सेवमानः (**वाजी**) वेगवान् जनः (**वहन्**) (**वाजिनम्**) वेगवन्तमश्वम् (**जातवेदः**) जातप्रज्ञ (**देवानाम्**) विदुषाम् (**वक्षि**) वहसि=प्रापयसि (**प्रियम्**) प्रीणन्ति यस्मिंस्तत् (**आ**) समन्तात् (**सधस्थम्**) सहस्थानम् ॥ १ ॥

अन्वयः—हे जातवेदोऽग्ने विद्वन् यथा समिद्धोऽञ्जन्नग्निर्मतीनां कृदरं मधुमद्घृतं पिन्वमानो वाजिनं वाजी वहन्निव देवानां सधस्थमावहति तथा प्रियं वक्षि प्रापय ॥ १ ॥

सपदार्थान्वयः—हे जातवेदः ! जातप्रज्ञ **अग्ने**=**विद्वन्** ! अग्निवद् वर्त्तमान ! **यथा**—**समिद्धः** सम्यक् प्रदीप्तः **अञ्जन्** व्यक्तो भवन् **अग्निर्मतीनां** मनुष्याणां **कृदरम्** उदरं **मधुमत्** मधुरा बहवो गुणा विद्यन्ते यस्मिन् तत् **घृतम्**

भावार्थ—हे (जातवेदः) उत्पन्न प्रज्ञा=बुद्धि वाले, (अग्ने) अग्नि के तुल्य विद्वान् ! जैसे—(समिद्धः) सम्यक् प्रदीप्त, (अञ्जन्) प्रकट होता हुआ (अग्निः) अग्नि (मतीनाम्) मनुष्यों के (कृदरम्) उदर तथा (मधुमत्) बहुत मधुर गुण

उदकमाज्यं वा **पिन्वमानः** सेवमानः, **वाजिनं** वेगवन्तमश्वं **वाजी** वेगवान् जनः **वहन्निव, देवानां** विदुषां **सधस्थं** सहस्थानम् **आ+वहति; तथा प्रियं** प्रीणन्ति यस्मिंस्तत् **वक्षि=प्रापय** वहसि=प्रापयसि ॥ २९ । १ ॥

वाले (घृतम्) जल वा घृत को (पिन्वमानः) सेवन करता हुआ; तथा (वाजिनम्) वेगवान् अश्व=घोड़े को (वाजी) वेगवान् मनुष्य (वहन्) प्राप्त करता हुआ; (देवानाम्) विद्वानों की (सधस्थम्) सभा को (आ+वहति) प्राप्त करता है; वैसे—(प्रियम्) प्रिय प्रदेश को (वक्षि) प्राप्त कर ॥ २९ । १ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यदि मनुष्या जाठराग्निं प्रदीप्तं रक्षेयुः, बाह्यमग्निं संप्रयुञ्जीरंस्तर्हि—अयमश्ववद् यानानि देशान्तरं सद्यः प्रापयेत् ॥ २९ । १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। यदि मनुष्य जाठराग्नि को प्रदीप्त रखें; तथा बाह्य अग्नि का संप्रयोग करें तो यह अग्नि अश्व के समान यानों को देशान्तर में तत्काल पहुँचा सकता है ॥ २९ । १ ॥

भा० पदार्थः—अग्ने=जाठराग्निः/बाह्याग्निः । सधस्थम्=यानम् । वक्षि=देशान्तरं सद्यः प्रापयति ॥

भाष्यसार—१. **मनुष्य अग्नि और जलादि से क्या सिद्ध करें**—उत्पन्न प्रज्ञा=बुद्धि वाले, अग्नि के तुल्य विद्या से प्रकाशमान विद्वान् लोग—जो अग्नि सम्यक् प्रदीप्त एवं प्रकट है, मनुष्यों के उदर तथा मधुर जल वा घृत का सेवन करने वाला है, वेगवान् अश्व को जैसे वेगवान् मनुष्य देशान्तर में ले जाता है; वैसे यानों को देशान्तर में शीघ्र पहुँचाने वाला है, विद्वानों की सभा को प्राप्त करने वाला है; उस अग्नि को प्राप्त करें। जाठराग्नि को प्रदीप्त रखें। बाह्य अग्नि का मन्त्रोक्त संप्रयोग करें। अग्नि और जल से शीघ्रगामी यानों को सिद्ध करें।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि विद्वान् लोग अग्नि के तुल्य प्रिय प्रदेश को प्राप्त करें ॥ २९ । १ ॥

बृहदुक्थो वामदेव्यः । **अग्निः**=भौतिकः । विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को अग्नि और जलादि से क्या सिद्ध करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

घृतेनाञ्जन्त्सं पथो देवयानान् प्रजानन्वाज्यप्येतु देवान्।
अनु त्वा सप्ते प्रदिशः सचन्ताᳬं स्वधामस्मै यजमानाय धेहि ॥ २ ॥

पदार्थः—(**घृतेन**) उदकेनान्नेन वा (**अञ्जन्**) प्रकटीभवन् (**सम्**) सम्यक् (**पथः**) मार्गान् (**देवयानान्**) देवा=विद्वांसो यान्ति=गच्छन्ति येषु तान् (**प्रजानन्**) प्रकर्षेण बुध्यमान (**वाजी**) वेगवान् (**अपि**) (**एतु**) प्राप्नोतु (**देवान्**) विदुषः (**अनु**) (**त्वा**) त्वाम् (**सप्ते**) अश्व इव वेगकारक (**प्रदिशः**) सर्वा दिशः (**सचन्ताम्**) समवयन्तु (**स्वधाम्**) अन्नम् (**अस्मै**) (**यजमानाय**) (**धेहि**) ॥ २ ॥

अन्वयः—हे सप्तेऽश्व इव वर्त्तमान विद्वन्! यथा वाज्यप्यग्निर्घृतेनाञ्जन् देवयानान्पथः समेतु तं प्रजानन्संस्त्वं देवानेहि येन त्वाऽनुप्रदिशः सचन्तां त्वमस्मै यजमानाय स्वधां धेहि ॥ २ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **सप्ते**=अश्व इव वर्त्तमान विद्वन् ! अश्व इव वेगकारक ! **यथा वाजी** वेगवान् **अप्स्वग्निर्घृतेन** उदकेनान्नेन वा [**सम्**] **अञ्जन्** सम्यक् प्रकटीभवन्, **देवयानान्** देवा=विद्वांसो यान्ति=गच्छन्ति येषु तान् **पथः** मार्गान् **समेतु** सम्यक् प्राप्नोतु, **तं प्रजानन्** प्रकर्षेण बुध्यमानः **संस्त्वं देवान्** विदुषः **एहि, येन त्वा** त्वाम् **अनुप्रदिशः** सर्वा दिशः **सचन्तां** समवयन्तु । **त्वमस्मै यजमानाय स्वधाम्** अन्नं **धेहि** ॥ २९ । २ ॥

भाषार्थ—हे (सप्ते) घोड़े के समान वेगवान् विद्वान् ! जैसे—(वाजी) वेगवान् अग्नि (घृतेन) जल वा अन्न से ([सम्] अञ्जन्) सम्यक् प्रकट होता हुआ (देवयानान्) जिन पर देव=विद्वान् चलते हैं उन (पथः) मार्गों को (समेतु) सम्यक् प्राप्त करता है; उसे (प्रजानन्) अच्छे प्रकार जानता हुआ तू—(देवान्) विद्वानों को (एहि) प्राप्त कर; जिससे (त्वा) तुझे (अनु, प्रदिशः) अनुकूल रूप से सब दिशाएँ (सचन्ताम्) प्राप्त हों। और तू (अस्मै) इस (यजमानाय) यजमान के लिए (स्वधाम्) अन्न को (धेहि) धारण कर ॥ २९ । २ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । येऽग्निजलादिप्रयुक्तैर्वाष्पयानैः सद्यो मार्गान् गत्वाऽऽगत्य सर्वासु दिक्षु भ्रमेयुः, ते तत्र पुष्कलान्यन्नादीनि संप्राप्य, प्रज्ञया कार्याणि साद्धुं शक्नुवन्ति ॥२९॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। जो मनुष्य अग्नि और जल आदि से युक्त वाष्प-यानों से शीघ्र मार्गों में यातायात करके सब दिशाओं में भ्रमण करते हैं; वे वहाँ पुष्कल अन्न आदि पदार्थों को प्राप्त करके, बुद्धि से कार्यों को सिद्ध कर सकते हैं ॥ २९ । २ ॥

भा० पदार्थः—घृतेन=जलादिप्रयोगेण । देवयानान्=वाष्पयानान् । स्वधाम्=पुष्कलान्यन्नादीनि । प्रजानन्=प्रज्ञया कार्याणि साद्धुम् ॥

भाष्यसार—**१. मनुष्य अग्नि और जलादि से क्या सिद्ध करें**—अश्व के समान वेगवान् विद्वान् लोग—जो वेगवान् अग्नि जल वा अन्न से सम्यक् प्रकट होता है, विद्वान् लोग जिन मार्गों पर चलते हैं; उन मार्गों को प्राप्त होता है; उस अग्नि को जानें अर्थात् उक्त अग्नि तथा जलादि का वाष्प-यानों में प्रयोग करें। और उनसे मार्गों में शीघ्र यातायात करें तथा सब दिशाओं में भ्रमण करें। वहाँ पुष्कल अन्न आदि पदार्थों को प्राप्त करें। बुद्धि से सब कार्यों को सिद्ध करें ॥

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि विद्वान् लोग अग्नि-विद्या से अश्व के समान वेगवान् हों ॥ २९ । २ ॥

बृहदुक्थो वामदेव्यः । **अग्निः**=**भौतिकः** । पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को अग्नि आदि से क्या सिद्ध करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

ईड्यश्चासि वन्द्यश्च वाजिन्नाशुश्चासि मेध्यश्च सप्ते ।
अग्निष्ट्वा देवैर्वसुभिः सजोषाः प्रीतं वह्निं वहतु जातवेदाः ॥ ३ ॥

पदार्थः—(**ईड्यः**) स्तोतुमर्हः (**च**) (**असि**) (**वन्द्यः**) वन्दितुं=नमस्कर्त्तुं योग्यः (**च**) (**वाजिन्**) प्रशस्तवेगवान् (**आशुः**) शीघ्रगामी (**च**) (**असि**) (**मेध्यः**) संगमनीयः (**च**) (**सप्ते**) अश्व इव

पुरुषार्थिन् (**अग्निः**) पावकः (**त्वा**) त्वाम् (**देवैः**) दिव्यगुणैः (**वसुभिः**) पृथिव्यादिभिः सह (**सजोषाः**) समानप्रीतिः (**प्रीतम्**) प्रशस्तम् (**वह्निम्**) वोढारम् (**वहतु**) (**जातवेदाः**) जातवित्तः ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे वाजिन् सप्ते शिल्पिन् विद्वन् ! यतो जातवेदाः सजोषाः सन् भवान् वसुभिर्देवैः सह प्रीतं वह्निं वहतु यं च त्वा त्वामग्निर्वहतु तस्मात्त्वमीडयश्चासि वन्द्यश्चासि आशुश्चासि मेध्यश्चासि ॥ ३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **वाजिन्** प्रशस्त-वेगवन् **सप्ते**=**शिल्पिन् विद्वन्** ! अश्व इव पुरुषार्थिन् ! **यतो जातवेदाः** जातवित्तः **सजोषाः** समानप्रीतिः **सन् भवान्**—. **वसुभिः** पृथिव्यादिभिः सह **देवैः** दिव्यगुणैः **सह, प्रीतं** प्रशस्तं **वह्निं** वोढारं **वहतु । यं च त्वा** त्वाम् **अग्निः** पावकः **वहतु, तस्मात्त्वमीडयः** स्तोतुमर्हः **चासि, वन्द्यः** वन्दितुं=नमस्कर्त्तुं योग्यः **चासि, आशुः** शीघ्रगामी **चासि, मेध्यः** संगमनीयः **चासि** ॥ २९ । ३ ॥

भाषार्थ—हे (वाजिन्) प्रशस्त वेगवान् (सप्ते) ! अश्व के समान पुरुषार्थी शिल्पी विद्वान् ! जिससे (जातवेदाः) उत्पन्न धन वाले, (सजोषाः) समान प्रीति वाले होकर आप—(वसुभिः) पृथिवी आदि (देवैः) दिव्य गुणों वाले पदार्थों के साथ (प्रीतम्) प्रशस्त (वह्निम्) वोढा अग्नि को (वहतु) प्राप्त करते हो; और (त्वा) तुझे (अग्निः) अग्नि (वहतु) प्राप्त होता है; अतः तू—(ईडयः) स्तुति के योग्य (च) भी (असि) है; (वन्द्यः) नमस्कार करने योग्य (च) भी (असि) है; (आशुः) शीघ्रगामी (च) भी (असि) है; (मेध्यः) संगम के योग्य (च) भी (असि) है ॥ २९ । ३ ॥

भावार्थः—ये मनुष्याः पृथिव्यादिविकारैर्यानादीनि रचयित्वा, तत्र वेगवन्तं वोढारमग्निं संप्रयुञ्जीरन्, ते—प्रशंसनीया मान्याः स्युः ॥२९।३॥

भावार्थ—जो मनुष्य पृथिवी आदि के विकारों से यान आदि बनाकर, उन में वेगवान्, वोढा अग्नि का संप्रयोग करते हैं; वे प्रशंसनीय एवं माननीय होते हैं ॥ २९ । ३ ॥

भा० पदार्थः—वसुभिः=पृथिव्यादिविकारैः । वह्निम्=वेगवन्तं वोढारमग्निम् । ईडयः=प्रशंसनीयः । वन्द्यः=मान्यः ॥

भाष्यसार—**मनुष्य अग्नि आदि से क्या सिद्ध करें**—जो विद्वान् प्रशस्त वेगवान् तथा अश्व के समान पुरुषार्थी हों वे—धनवान् और समान रूप से सब से प्रीति करने वाले होकर दिव्य गुणों वाले पृथिवी आदि पदार्थों सहित प्रशस्त अग्नि को प्राप्त करें; अर्थात् पृथिवी आदि के विकार भूत पदार्थों से यानों की रचना करें और उनमें वोढा अग्नि का संप्रयोग करें । यह अग्नि विद्वानों को देशान्तर में पहुँचाता है । इस प्रकार अग्नि के प्रयोग से विद्वान् स्तुति के योग्य होते हैं; वन्दना=नमस्कार करने योग्य होते हैं; शीघ्रगामी तथा संगम के योग्य होते हैं ॥ २९ । ३ ॥

बृहदुक्थो वामदेव्यः । **अग्निः=विद्युत्** । निचृत्पङ्क्तिः । पञ्चमः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को अग्नि आदि से क्या सिद्ध करना चाहिए, इसका फिर उपदेश किया है ॥

स्तीर्णं बर्हिः सुष्टरीमा जुषाणोरु पृथु प्रथमानं पृथिव्याम् ।
देवेभिर्युक्तमदितिः सजोषाः स्योनं कृण्वाना सुविते दधातु ॥ ४ ॥

पदार्थः—(**स्तीर्णम्**) सर्वतोऽङ्गोपाङ्गैराच्छादितं यानम् (**बर्हिः**) अन्तरिक्षमुदकं वा (**सुष्टरीम**) सुष्ठु स्तृणीम । अत्र संहितायामिति दीर्घः । (**जुषाणा**) सेवमाना (**उरु**) बहु (**पृथु**) विस्तीर्णम् (**प्रथमानम्**) प्रख्यातम् (**पृथिव्याम्**) भूमौ (**देवेभिः**) दिव्यैः पदार्थैः (**युक्तम्**) (**अदितिः**) नाशरहिता (**सजोषाः**) समानैः सेविता (**स्योनम्**) सुखम् (**कृण्वाना**) कुर्वती (**सुविते**) प्रेरिते (**दधातु**) ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! वयं यथा पृथिव्यामुरु पृथु प्रथमानं स्तीर्णं बर्हिर्जुषाणा सजोषा देवेभिर्युक्तं स्योनं कृण्वानाऽदितिर्विद्युत्सर्वसुविते दधातु तां सुष्टरीम तथा त्वं प्रयतस्व ॥ ४ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे विद्वन् ! वयं यथा**—पृथिव्यां भूमौ **उरु** बहु **पृथु** विस्तीर्णं **प्रथमानं** प्रख्यातं **स्तीर्णं** सर्वतोऽङ्गोपाङ्गैराच्छादितं यानं, **बर्हिः** अन्तरिक्षमुदकं वा **जुषाणा** सेवमाना **सजोषा** समानैः सेविता, **देवेभिः** दिव्यैः पदार्थैः **युक्तं स्योनं** सुखं **कृण्वाना** कुर्वती **अदितिः**=**विद्युत्** नाशरहिता, **सर्वसुविते प्रेरिते दधातु, तां सुष्टरीम** सुष्ठु स्तृणीम **तथा; त्वं प्रयतस्व** ॥ २९ । ४ ॥

भाषार्थ—हे विद्वन् ! हम लोग—(पृथिव्याम्) भूमि पर (उरु) बहुत (पृथु) विस्तृत, (प्रथमानम्) प्रख्यात, (स्तीर्णम्) सब ओर से अङ्ग-उपाङ्गों से आच्छादित यान तथा (बर्हिः) अन्तरिक्ष वा जल का (जुषाणा) सेवन करती हुई, (सजोषा) समान रूपों से सेवित, (देवेभिः) दिव्य पदार्थों से युक्त (स्योनम्) सुख को (कृण्वाना) सिद्ध करने वाली (अदितिः) नाश रहित विद्युत्—(सुविते) सब से प्रेरित यान में सब को (दधातु) धारण करती है; उसे (सुष्टरीम) अच्छे प्रकार आच्छादित करें; वैसा—तू प्रयत्न कर ॥ २९ । ४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । हे मनुष्याः ! या पृथिव्यादिषु व्याप्ताऽखण्डिता विद्युद्, विस्तीर्णानि कार्याणि संसाध्य सुखं जनयति, तां कार्येषु प्रयुज्य प्रयोजनसिद्धिं सम्पादयत ॥ २९ । ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । हे मनुष्यो ! जो पृथिवी आदि में व्याप्त, अखण्डित विद्युत् है; वह बड़े कार्यों को सिद्ध करके सुख को उत्पन्न करती है; उसे कार्यों में प्रयुक्त करके प्रयोजन की सिद्धि करो ॥ २९ । ४ ॥

भा० पदार्थः—पृथु=व्याप्ता । अदितिः=अखण्डिता विद्युत् । पृथिव्याम्=पृथिव्यादिषु ।

भाष्यसार—**१. मनुष्य अग्नि आदि से क्या सिद्ध करें**—विद्वान् लोग भूमि पर अत्यन्त विस्तृत, प्रख्यात, सब ओर से अङ्ग-उपाङ्गों से आच्छादित यान तथा आकाश वा जल का सेवन करें । और जो पृथिवी आदि में व्याप्त, अखण्डित, समान आयु वाले विद्वानों से सेवित, दिव्य पदार्थों से युक्त, सुख को उत्पन्न करने वाली नाशरहित विद्युत् है उसे सब की प्रेरणा=गति के निमित्त धारण करें तथा उसे अच्छे प्रकार विस्तृत करें अर्थात् उससे विस्तृत कार्यों को सिद्ध करें; सुख को उत्पन्न करें; उसका कार्यों में प्रयोग करके प्रयोजन को सिद्ध करें ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । उपमा यह है कि विद्वान् लोग पृथिवी आदि में व्याप्त विद्युत् के तुल्य प्रयत्न करें ॥२९।४॥

बृहदुक्थो वामदेव्यः । **अग्निः**=**भौतिकः** । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

कीदृग्द्वारवन्ति गृहाणि स्युरित्याह ॥

कैसे द्वारों वाले घर हों, इस विषय का उपदेश किया है ॥

एता ऽ उं वः सुभगा विश्वरूपा वि पक्षोभिः श्रयमाणा ऽ उदातैः ।
ऋष्वाः सतीः कवषः शुम्भमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा भवन्तु ॥ ५ ॥

पदार्थः—(**एता**) दीप्तयः (**उ**) वितर्के (**वः**) युष्मभ्यम् (**सुभगाः**) सुष्ठ्वैश्वर्यप्रदाः (**विश्वरूपाः**) विविधरूपगुणाः (**वि**) (**पक्षोभिः**) पक्षैः (**श्रयमाणाः**) सेवमानाः (**उत्**) उत्कृष्टतया (**आतैः**) सततं गमकैः (**ऋष्वाः**) महत्यः । ऋष्व इति महन्ना० ॥ निघं० ३ । ३ ॥ (**सतीः**) विद्यमानाः (**कवषाः**) शब्दं कुर्वाणाः (**शुम्भमानाः**) सुशोभिताः (**द्वारः**) (**देवीः**) देदीप्यमानाः (**सुप्रायणाः**) सुखेन गमनाधिकरणाः (**भवन्तु**) ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा व एताः सुभगा विश्वरूपा ऋष्वाः कवषा शुम्भमानाः सतीर्देवीर्द्वार उदातैः पक्षोभिः श्रयमाणाः पक्षिपङ्क्तय इव सुप्रायणा विभवन्तु तादृशीरु भवन्तो रचयन्तु ॥ ५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्या** ! **यथा**-**वः** युष्मभ्यं **एताः** दीप्तयः **सुभगाः** सुष्ठ्वैश्वर्यप्रदाः **विश्वरूपाः** विविधरूपगुणाः **ऋष्वाः** महत्यः **कवषाः** शब्दं कुर्वाणाः **शुम्भमानाः** सुशोभिताः **सतीः** विद्यमाना **देवीः** देदीप्यमानाः **द्वारः**, **उदातैः** उत्कृष्टतया सततं गमकैः **पक्षोभिः** पक्षैः **श्रयमाणाः** सेवमानाः **पक्षिपङ्क्तय इव सुप्रायणाः** सुखेन गमनाधिकरणाः **विभवन्तु**; **तादृशीरु** सवितर्कं **भवन्तो रचयन्तु** ॥ ५ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे—(वः) तुम्हारे लिए (एताः) दीप्ति से युक्त, (सुभगाः) उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करने वाले, (विश्वरूपाः) विविध रूप आदि गुणों से युक्त, (ऋष्वाः) महान् (कवषाः) शब्द करने वाले, (शुम्भमानाः) सुशोभित, (सतीः) विद्यमान रहने वाले, (देवीः) देदीप्यमान (द्वारः) गृह-द्वार (उदातैः) उत्कृष्टता से निरन्तर गमन वाले (पक्षोभिः) पक्षों से (श्रयमाणाः) सेवन करने योग्य पक्षि-पंक्तियों के तुल्य (सुप्रायणाः) सुख-पूर्वक गमन के स्थान (वि+भवन्तु) विशेष रूप से हों; वैसे गृह-द्वारों को (उ) विचारपूर्वक आप बनावें ॥ २९ । ५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । मनुष्यैरीदृशानि गृहद्वाराणि निर्मातव्यानि येभ्यो वायुनिरोधो न स्यात् । यथा—अन्तरिक्षेऽनिरुद्धाः पक्षिणः सुखेन गच्छन्ति-आगच्छन्ति, तथा—तेषु गन्तव्यमागन्तव्यं च ॥ २९ । ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । मनुष्य ऐसा गृह-द्वार बनावें जिनसे वायु का निरोध न हो । जैसे आकाश में न रुके हुए पक्षी सुख से जाते-आते हैं; वैसे उनमें जावें और आवें ॥ २९ । ५ ॥

भा० पदार्थः—द्वारः=गृहद्वाराणि । सुप्रायणाः=यथाऽन्तरिक्षेऽनिरुद्धाः पक्षिणः सुखेन गच्छन्त्यागच्छन्ति तथा तेषु गन्तव्यमागन्तव्यं च [गृहद्वारः] ॥

भाष्यसार—१. **कैसे द्वारों वाले घर हों**—मनुष्य ऐसे गृह-द्वारों का निर्माण करें जो दीप्ति=प्रकाश से युक्त, उत्तम ऐश्वर्य को प्रदान करने वाले, विविध रूपों से युक्त, महान्=विशाल, शब्द करने वाले, सुशोभित, विद्यमान रहने वाले, देदीप्यमान=चमकीले हों तथा जिनसे वायु का निरोध न हो । जैसे उत्तम रीति से सतत गति करने वाले पंखों से आकाश में गति करने वाली पक्षी-पंक्तियाँ सुख से गमनागमन करती हैं; वैसे सुख से गमनागमन के योग्य हों ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा

अलंकार है । उपमा यह है कि गृह-द्वार पक्षी-पंक्तियों के समान सुखपूर्वक गमन के योग्य हों ॥ २६ । ५ ॥

बृहदुक्थो वामदेव्यः । **मनुष्याः**=स्पष्टम् । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

कैसे द्वारों वाले घर हों, यह फिर उपदेश किया है ॥

अन्तरा मित्रावरुणा चरन्ती मुखं यज्ञानामभि संविदाने ।
उषासा वाᳬं सुहिरण्ये सुशिल्पेऽऋतस्य योनाविह सादयामि ॥ ६ ॥

पदार्थः—(**अन्तरा**) अन्तरौ (**मित्रावरुणा**) प्राणोदानौ (**चरन्ती**) प्राप्नुवत्यौ (**मुखम्**) (**यज्ञानाम्**) सङ्गन्तव्यानाम् पदार्थानाम् (**अभि**) (**संविदाने**) सम्यग्विज्ञापिके (**उषासा**) प्रातःसायंवेले (**वाम्**) युवाम् (**सुहिरण्ये**) सुष्ठुतेजोयुक्ते (**सुशिल्पे**) सुष्ठुशिल्पक्रिया ययोस्ते (**ऋतस्य**) सत्यस्य (**योनौ**) निमित्ते (**इह**) अस्मिन् गृहे (**सादयामि**) स्थापयामि ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे शिल्पविद्याप्रचारकौ विद्वांसौ! यथाहमन्तरा मित्रावरुणा चरन्ती यज्ञानां मुखमभि संविदाने सुहिरण्ये सुशिल्पे उषासा ऋतस्य योनाविह सादयामि तथा वां मह्यं स्थापयेतम् ॥ ६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे शिल्पविद्या-प्रचारकौ विद्वांसौ! यथाहम् **अन्तरा** अन्तरौ **मित्रावरुणा** प्राणोदानौ **चरन्ती** प्राप्नुवत्यौ **यज्ञानां** सङ्गन्तव्यानां पदार्थानां **मुखमभिसंविदाने** सम्यग्विज्ञापिके **सुहिरण्ये** सुष्ठुतेजोयुक्ते **सुशिल्पे** सुष्ठुशिल्पक्रिया ययोस्ते **उषासा** प्रातःसायं वेले, **ऋतस्य** सत्यस्य **योनौ** निमित्ते **इह** अस्मिन् गृहे **सादयामि** स्थापयामि; **तथा वां** युवां **मह्यं स्थापयेतम्** ॥ २६ । ६ ॥

भाषार्थ—हे शिल्प-विद्या के प्रचारक दो विद्वानो! जैसे मैं—(अन्तरा) भिन्न-भिन्न, (मित्रावरुणा) प्राण और उदान को (चरन्ती) प्राप्त कराने वाली; (यज्ञानाम्) संगतव्य पदार्थों के (मुखम्) मुख को (अभिसंविदाने) सम्यक् बतलाने वाली, (सुहिरण्ये) उत्तम तेज से युक्त, (सुशिल्पे) उत्तम शिल्प क्रिया वाली (उषासा) प्रातः और सायं वेलाओं को (ऋतस्य) सत्य के (योनौ) निमित्त (इह) इस घर में (सादयामि) स्थापित करता हूँ; वैसे (वाम्) तुम दोनों मेरे लिए उन्हें स्थापित करो ॥ २६ । ६ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालंकारः । यथा—प्रातःसायं वेले शुद्धस्थानसेविते मनुष्याणां प्राणदानवत् सुखकारिके भवतः, तथा—शुद्धदेशे निर्मितं बहुविस्तीर्णद्वारं गृहं सर्वथा सुखयति ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । जैसे प्रातः और सायं वेलाएँ शुद्ध स्थान में सेवित की हुई मनुष्यों को प्राण और उदान के समान सुखकारक होती हैं; वैसे शुद्ध देश में बना, बहुत विस्तृत द्वार वाला घर सर्वथा सुख देता है ॥ २६ । ६ ॥

भा० पदार्थः—मित्रावरुणा=प्राणोदानवत् सुखकारिके [उषासा] ।

भाष्यसार—**१. कैसे द्वारों वाले घर हों**—जैसे प्रातः और सायं वेलाएँ अन्तर से होती हैं; प्राण और उदान के समान प्राप्त होने वाली अर्थात् सुखकारक होती हैं; संगति करने योग्य पदार्थों

के मुख (स्वरूप) को सम्यक् बतलाने वाली, उत्तम तेज से युक्त, मानो उत्तम शिल्प क्रिया से बनी हुई हैं; वैसे शिल्प-विद्या के प्रचारक विद्वान् लोग शुद्ध देश में बहुत विशाल द्वार वाले सुखदायक घरों का निर्माण करें।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा है कि शिल्पविद्या के प्रचारक विद्वान् लोग प्रातः और सायं वेला के समान सुखदायक विशाल द्वारों वाले घरों का निर्माण करें॥ २९। ६॥

बृहदुक्थो वामदेव्यः। **अश्विनौ**=विद्यार्थिनौ। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

अथाऽध्ययनाध्यापने कथं स्यातामित्याह॥

अब पठन-पाठन कैसे होवे, इस विषय का उपदेश किया जाता है॥

प्रथमा वांꣳ सरथिना सुवर्णा देवौ पश्यन्तौ भुवनानि विश्वा।
अपिप्रयं चोदना वां मिमाना होतारा ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता॥ ७॥

पदार्थः—(**प्रथमा**) आदिमौ (**वाम्**) युवयोः (**सरथिना**) रथिभिः सह वर्त्तमानौ (**सुवर्णा**) शोभनो वर्णो ययोस्तौ (**देवौ**) देदीप्यमानौ (**पश्यन्तौ**) समीक्षमाणौ (**भुवनानि**) निवासाऽधिकरणानि (**विश्वा**) सर्वाणि (**अपिप्रयम्**) प्रीणामि। ण्यन्ताल्लुङ्प्रयोगोऽयम् (**चोदना**) प्रेरणानि कर्माणि (**वाम्**) युवाम् (**मिमाना**) निश्चेतारौ (**होतारा**) दातारौ (**ज्योतिः**) प्रदीप्तिः (**प्रदिशा**) प्रकर्षेण बोधयन्तौ (**दिशन्ता**) उच्चारयन्तौ॥ ७॥

प्रमाणार्थ—(**अपिप्रयम्**) यहाँ णिज़न्त 'प्री' धातु से लुङ् लकार का प्रयोग है॥

अन्वयः—हे विद्यार्थिनौ! यौ प्रथमा सरथिना सुवर्णा विश्वा भुवनानि पश्यन्तौ वां चोदना मिमाना ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता होतारा देवौ विद्वांसौ कुर्यातां यथा त्वमहमपि प्रयन्तथा त्वां युवां तौ प्राप्नुतम्॥ ७॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्यार्थिनौ! **यौ**—**प्रथमा** आदिमौ, **सरथिना** रथिभिः सह वर्त्तमानौ, **सुवर्णा** शोभनो वर्णो ययोस्तौ, **विश्वा** सर्वाणि **भुवनानि** निवासाधिकरणानि **पश्यन्तौ** समीक्षमाणौ, **वां** युवयोः **चोदना** प्रेरणानि कर्माणि **मिमाना** निश्चेतारौ, **ज्योतिः** प्रदीप्तिः **प्रदिशा** प्रकर्षेण बोधयन्तौ, **दिशन्ता** उच्चारयन्तौ, **होतारा** दातारौ **देवौ**=**विद्वांसौ** देदीप्यमानौ **कुर्याताम् यथा**—**त्वमहम् अपिप्रयम्** प्रीणामि **तथा वां**=**युवां तौ प्राप्नुतम्**॥ २९। ७॥

भाषार्थ—हे दो विद्यार्थियो! जो (प्रथमा) आदिम, (सरथिना) रथियों के साथ वर्तमान, (सुवर्णा) सुन्दर वर्ण वाले, (विश्वा) सब (भुवनानि) निवास-स्थान रूप भुवनों को (पश्यन्तौ) देखने वाले, (वाम्) तुम्हारे (चोदना) प्रेरक कर्मों का (मिमाना) निश्चय करने वाले, (ज्योतिः) प्रकाश का (प्रदिशा) उत्तम प्रकार से बोध कराने वाले, (दिशन्ता) निर्देश देने वाले, (होतारा) विद्या के दाता (देवौ) विद्या से देदीप्यमान दो विद्वान् आचरण करते हैं; और जैसे तुझे मैं (अपिप्रयम्) प्रसन्न करता हूँ; वैसे (वाम्) तुम दोनों उन्हें प्राप्त करो॥ २९। ७॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालंकारः।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा

ये विद्यार्थिनो निष्कापट्येन विदुषः सेवन्ते, ते—विद्याप्रकाशं लभन्ते। यदि विद्वांसः कपटालस्ये विहाय सर्वान् सत्यमुपदिशेयुस्तर्हि—ते सुखिनः कथं न जायेरन्॥ २९। ७॥

अलंकार है। जो विद्यार्थी लोग निष्कपटता से विद्वानों की सेवा करते हैं; वे विद्या-प्रकाश को प्राप्त करते हैं। यदि विद्वान् लोग कपट और आलस्य को छोड़कर सब को सत्य का उपदेश करें तो वे सुखी क्यों न हों॥ २९। ७॥

भा० पदार्थः—ज्योतिः=विद्याप्रकाशम्।

भाष्यसार—१. **पठन-पाठन कैसे हो**—जो विद्यार्थी—आदिम, रथी लोगों के साथ रहने वाले, सुन्दर वर्ण वाले, सब भुवनों को देखने वाले, शुभ कर्मों में प्रेरणा करने वाले, सत्य-असत्य का निश्चय करने वाले, विद्या-ज्योति का उत्तम रीति से बोध कराने वाले, उच्चारण=उपदेश करने वाले, विद्या के दाता, विद्याप्रकाश से देदीप्यमान विद्वानों की निष्कपट भाव से सेवा करते हैं; वे विद्या-प्रकाश को प्राप्त करते हैं। विद्वान् लोग भी कपट और आलस्य को छोड़कर सब को सत्य का उपदेश करें।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि जैसे विद्यार्थी लोग विद्वानों की सेवा करें वैसे विद्वान् लोग विद्यार्थियों को सत्य उपदेश करें॥ २९। ७॥ ●

बृहदुक्थो वामदेव्यः। **सरस्वती**=वाणी। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

पठन-पाठन कैसे होवे, इसका फिर उपदेश किया है॥

आदित्यैर्नो भारती वष्टु यज्ञꣳ सरस्वती सह रुद्रैर्न ऽआवीत्।
इडोपहूता वसुभिः सजोषा यज्ञं नो देवीरमृतेषु धत्त॥ ८॥

पदार्थः—(**आदित्यैः**) पूर्णविद्यावद्भिः (**नः**) अस्मभ्यम् (**भारती**) सर्वविद्याधर्त्री सर्वथा पोषिका (**वष्टु**) कामयताम् (**यज्ञम्**) सङ्गतं योग्यं बोधम् (**सरस्वती**) प्रशस्तविज्ञानवती वाक् (**सह**) (**रुद्रैः**) मध्यमैर्विद्वद्भिः (**नः**) अस्मान् (**आवीत्**) प्राप्नुयात् (**इडा**) स्ताविका वाक् (**उपहूता**) यथावत्स्पर्द्धिता (**वसुभिः**) प्रथमकल्पैर्विद्वद्भिः (**सजोषाः**) समानैः सेविताः (**यज्ञम्**) प्राप्तव्यमानन्दम् (**नः**) अस्मान् (**देवीः**) त्रिविधा वाणीः (**अमृतेषु**) नाशरहितेषु जीवादिपदार्थेषु (**धत्त**) धरत धत्त वा॥ ८॥

अन्वयः—हे विद्वन्! भवान् या आदित्यैरुपदिष्टोपहूता भारती नो यज्ञं सम्पादयति तया सह नोऽस्मान्वष्टु या रुद्रैरुपदिष्टा सरस्वती नोऽस्मानावीत् या सजोषा इडा वसुभिरुपदिष्टा सती यज्ञं साध्नोति। हे जना ता देवीरस्मानमृतेषु दध्युस्ता यूयमस्मभ्यं धत्त॥ ८॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन्! भवान्—या **आदित्यैः** पूर्णविद्यावद्भिः **उपदिष्टा, उपहूता** यथावत्स्पर्द्धिता **भारती** सर्वविद्याधर्त्री सर्वथा पोषिका, **नः** अस्मभ्यं **यज्ञं** सङ्गतं योग्यं बोधं **सम्पादयति, तया सह नः**=**अस्मान् वष्टु** कामयताम्।

भाषार्थ—हे विद्वन्! आप जो (आदित्यैः) पूर्ण विद्या वाले विद्वानों से उपदिष्ट, (उपहूता) यथावत् कामना की हुई, (भारती) सब विद्याओं को धारण करने वाली, सर्वथा पोषक वाणी (नः) हमारे लिए (यज्ञम्) संगत, योग्य बोध को

सिद्ध करती है; उस वाणी के साथ (नः) हमारी (वष्टु) कामना करो।

या रुद्रैः मध्यमैर्विद्वद्भिः **उपदिष्टा सरस्वती** प्रशस्तविज्ञानवती वाक् **नः अस्मानावीत्** प्राप्नुयात्,

जो (रुद्रैः) मध्यम कोटि के विद्वानों के द्वारा उपदिष्ट (सरस्वती) प्रशस्त विज्ञानवती वाणी है; वह (नः) हमें (आवीत्) प्राप्त कराओ।

या सजोषाः समानैः सेविता **इडा** स्ताविका वाग् **वसुभिः** प्रथमकल्पैर्विद्वद्भिः **उपदिष्टा सती, यज्ञं** प्राप्तव्यमानन्दं **साध्नोति।**

जो (सजोषाः) समान आयु वालों से सेवित (इडा) स्तुति करने वाली वाणी (वसुभिः) प्रथम कोटि के विद्वानों द्वारा उपदिष्ट है; वह (यज्ञम्) प्राप्त करने योग्य आनन्द को सिद्ध करती है।

हे जनाः! ता देवीः त्रिविधा वाणीः **अस्मानमृतेषु** नाशरहितेषु जीवादिपदार्थेषु **दध्युः, ता यूयमस्मभ्यं धत्त** धरत धत्त वा ॥ २९। ८॥

हे मनुष्यो! वे (देवीः) तीन प्रकार की वाणियाँ हमें (अमृतेषु) नाशरहित जीव आदि पदार्थों में स्थापित करें; उन्हें तुम हमारे लिए (धत्त) धारण करो॥ २९। ८॥

भावार्थः— मनुष्यैरुत्तम-मध्यम-निकृष्टानां विदुषां सकाशात्—श्रुता पठिता वा विद्यावाणी स्वीकार्या; न मूर्खाणां सकाशात् सा वाणी मनुष्याणां सर्वदा सुखसाधिका भवति॥ २९। ८॥

भावार्थ—मनुष्य उत्तम, मध्यम और निकृष्ट विद्वानों से सुनी वा पढ़ी हुई विद्या वाणी को स्वीकार करें; मूर्खों से नहीं। वह वाणी मनुष्यों के सर्वदा सुख को सिद्ध करने वाली होती है॥ २९। ८॥

भा० पदार्थः—आदित्यैः=उत्तमविद्वद्भिः। रुद्रैः=मध्यमविद्वद्भिः। वसुभिः=निकृष्टविद्वद्भिः। उपहूता=श्रुता पठिता च विद्यावाणी।

भाष्यसार—**पठन-पाठन कैसे हो**—विद्वान् लोग—पूर्ण विद्या से युक्त आदित्य नामक विद्वानों से उपदिष्ट, यथावत् स्पर्द्धा की हुई, सब विद्याओं को धारण करने वाली, सर्वथा पोषक भारती नामक वाणी को प्राप्त करें। यह वाणी मनुष्यों के लिए संगत एवं योग्य बोध को सिद्ध करने वाली है। मध्यम कोटि के रुद्र नामक विद्वानों से उपदिष्ट, प्रशस्त विज्ञान से युक्त सरस्वती नामक वाणी को प्राप्त करें। समान आयु वालों के द्वारा सेवित, स्तुति करने वाली 'इडा' नामक वाणी प्रथम कोटि के 'वसु' नामक विद्वानों से उपदिष्ट है जो यज्ञ=प्राप्त करने योग्य आनन्द को सिद्ध करती है। भारती, सरस्वती और इडा नामक तीन प्रकार की वाणी को अमृत=नाश रहित आत्माओं में स्थापित करें। सब मनुष्य उत्तम, मध्यम और प्रथम (निकृष्ट) कोटि के विद्वानों से विद्या को ग्रहण करें; मूर्खों से नहीं। उक्त वाणी मनुष्यों के लिए सदा सुख-साधक होती है॥ २९। ८॥

बृहदुक्थो वामदेव्यः। **त्वष्टा=विद्वान्।** त्रिष्टुप्। धैवतः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

पठन-पाठन कैसे होवे, यह फिर उपदेश किया है॥

त्वष्टा वीरं देवकामं जजान त्वष्टुरर्वा जायत ऽआशुरश्वः।
त्वष्टेदं विश्वं भुवनं जजान बहोः कर्त्तारमिह यक्षि होतः॥ ९॥

पदार्थः—(**त्वष्टा**) विद्यादिसद्गुणैः प्रकाशमानः (**वीरम्**) (**देवकामम्**) यो देवान्=विदुषः कामयते तम् (**जजान**) जनयति (**त्वष्टुः**) प्रदीप्ताच्छिक्षणात् (**अर्वा**) शीघ्रं गन्ता (**जायते**) (**आशुः**) तीव्रवेगः (**अश्वः**) तुरङ्गः (**त्वष्टा**) स्वात्मप्रकाशितः (**इदम्**) (**विश्वम्**) सर्वम् (**भुवनम्**) लोकजातम् (**जजान**) जनयति (**बहोः**) बहुविधस्य संसारस्य (**कर्त्तारम्**) (**इह**) अस्मिन्संसारे (**यक्षि**) यजसि=सङ्गच्छसे (**होतः**) आदातः ॥ ९ ॥

अन्वयः—हे होतस्त्वं यथा त्वष्टा विद्वान् देवकामं वीरं जजान यथा त्वष्टुराशुरर्वाश्वो जायते यथा त्वष्टेदं विश्वं भुवनं जजान तं बहोः कर्त्तारमिह यक्षि तथा वयमपि कुर्याम ॥ ९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे होतः ! आदातः ! त्वं यथा त्वष्टा=विद्वान् विद्यादिसद्गुणैः प्रकाशमानः, **देवकामं** यो देवान्=विदुषः कामयते तं **वीरं जजान** जनयति; **यथा-त्वष्टुः** प्रदीप्ताच्छिक्षणाद् **आशुः** तीव्रवेगः **अर्वा** शीघ्रं गन्ता **अश्वः** तुरङ्गः **जायते**; **यथात्वष्टा** स्वात्मप्रकाशितः **इदं विश्वं** सर्वं **भुवनं** लोकजातं **जजान** जनयति; **तं बहोः** बहुविधस्य संसारस्य **कर्त्तारमिह** अस्मिन्संसारे **यक्षि** यजसि=सङ्गच्छसे; **तथा वयमपि कुर्याम** ॥ २९।९ ॥

भाषार्थ—हे (होतः) विद्या को ग्रहण करने वाले विद्वान् ! तू—जैसे (त्वष्टा) विद्या आदि शुभ गुणों से प्रकाशमान विद्वान्—(देवकामम्) देव=विद्वानों की कामना करने वाले (वीरम्) वीर को (जजान) उत्पन्न करता है; और जैसे—(त्वष्टुः) प्रदीप्त शिक्षण से (आशुः) तीव्र वेग वाला, (अर्वा) शीघ्र गमन करने वाला (अश्वः) घोड़ा बनता है; और जैसे—(त्वष्टा) अपने आत्मा में प्रकाशित ईश्वर—(इदम्) इस (विश्वम्) सब (भुवनम्) लोक-समूह को (जजान) उत्पन्न करता है; उस (बहोः) बहुत प्रकार के संसार के (कर्त्तारम्) कर्त्ता ईश्वर का (इह) इस संसार में (यक्षि) सङ्ग करता है; वैसे हम भी करें ॥ २९ । ९ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालंकारः। ये विद्याकामान् मनुष्यान्, विदुषः कुर्युः, ये सद्योजातशिक्षोऽश्व इव तीव्रवेगेन विद्याः प्राप्नुवन्ति, यथा—बहुविधस्य संसारस्य स्रष्टेश्वरः सर्वान् व्यवस्थापयति, तथा—अध्यापकाध्येतारो भवन्तु ॥ २९ । ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। जो विद्या की कामना करने वाले मनुष्यों को विद्वान् बनाते हैं; जो शीघ्र शिक्षित घोड़े के समान तीव्र वेग से विद्याओं को प्राप्त करते हैं; जैसे बहुत प्रकार के संसार का रचयिता ईश्वर सब को व्यवस्थित करता है; वैसे अध्यापक और अध्येता=छात्र हों ॥ २९ । ९ ॥

भा० पदार्थः—देवकामम्=विद्याकामं मनुष्यम्। वीरम्=विद्वांसम्। अर्वा=सद्योजातशिक्षः [अश्वः]। कर्त्तारम्=स्रष्टारम् ॥

भाष्यसार—**१. पठन-पाठन कैसे हो**—विद्या को ग्रहण करने वाले विद्वान्—विद्यादि शुभ गुणों से प्रकाशमान, विद्वानों की कामना करने वाले वीर विद्वान् को उत्पन्न करें अर्थात् विद्या की कामना करने वाले मनुष्यों को विद्वान् बनावें। जैसे प्रदीप्त=तीव्र शिक्षण से तीव्र वेगवाला, शीघ्रगामी घोड़ा बनता है वैसे तीव्र वेग से विद्याओं को प्राप्त करके विद्वान् बनें। जैसे अपने आत्मा में प्रकाशित, ईश्वर सब लोकों को उत्पन्न करता है; वैसे विद्वानों को उत्पन्न करें। बहुविध संसार के रचयिता ईश्वर का सङ्ग करें तथा उसके तुल्य अध्यापक और छात्र लोग सब व्यवस्था करें।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि सब मनुष्य मन्त्रोक्त विद्वान् के समान आचरण करें ॥ २९ । ९ ॥

बृहदुक्थो वामदेव्यः । **सूर्य्यः=स्पष्टम्** । निचृत्त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

पठन-पाठन कैसे होवे, इसका फिर उपदेश किया है ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अश्वो॑ घृ॒तेन॑ त्म॒न्या॒ सम॑क्त॒ऽ उप॑ दे॒वाँ२ऽ ऋ॑तु॒शः पाथ॑ऽ एतु ।
वन॒स्पति॑र्देवलो॒कं प्र॑जा॒नन्न॒ग्निना॑ ह॒व्या स्व॑दि॒तानि॑ वक्षत् ॥ १० ॥

पदार्थः—(**अश्वः**) आशुगामी वह्निः (**घृतेन**) उदकेन (**त्मन्या**) आत्मना । **अत्राकारलोपो विभक्तेर्यादेशश्च** । (**समक्तः**) सम्यक् प्रकटयन् (**उप**) (**देवान्**) दिव्यान् व्यवहारान् (**ऋतुशः**) ऋतावृतौ (**पाथः**) अन्नम् (**एतु**) प्राप्नोतु (**वनस्पतिः**) वनानां=किरणानां पालकः सूर्यः (**देवलोकम्**) देवानां=विदुषां लोकं=दर्शकं व्यवहारम् (**प्रजानन्**) प्रकर्षेण विदन्त्सन् (**अग्निना**) पावकेन (**हव्या**) अत्तुमर्हाणि (**स्वदितानि**) आस्वादितानि (**वक्षत्**) वहेत्=प्रापयेत् ॥ १० ॥

प्रमाणार्थ—(**त्मन्या**) यहाँ आकार का लोप और विभक्ति को या-आदेश है ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! देवलोकं प्रजानन्त्सन् यथा घृतेन संयोजितोऽश्वस्त्मन्या ऋतुशो देवान्त्समक्तः सन् पाथ उपैतु अग्निना सह वनस्पतिः स्वदितानि हव्या वक्षत्तथा त्मन्या वर्त्तस्व ॥ १० ॥

सपदार्थान्वयः—**हे विद्वन् ! देवलोकं** देवानां=विदुषां लोकं=दर्शकं व्यवहारं **प्रजानन्** प्रकर्षेण विदन् **सन्, यथा घृतेन** उदकेन **संयोजितोऽश्वः** आशुगामी वह्निः, **त्मन्या** आत्मना **ऋतुशः** ऋतावृतौ **देवान्** दिव्यान् व्यवहारान् **समक्तः** सम्यक् प्रकटयन् **सन्, पाथः** अन्नम् **उपैतु** प्राप्नोतु; **अग्निना** पावकेन **सह वनस्पतिः** वनानां=किरणानां पालकः सूर्यः **स्वदितानि** आस्वादितानि **हव्या** अत्तुमर्हाणि **वक्षत्** वहेत्=प्रापयेत्; **तथा त्मन्या** आत्मना **वर्त्तस्व** ॥ २९ । १० ॥

भाषार्थ—हे विद्वन् ! (देवलोकम्) देव=विद्वानों के लोक=दर्शक व्यवहार को (प्रजानन्) अच्छे प्रकार जानता हुआ, जैसे (घृतेन) जल के साथ संयोजित (अश्वः) आशुगामी अग्नि (त्मन्या) आत्मा=अपने स्वरूप से (ऋतुशः) प्रत्येक ऋतु में (देवान्) दिव्य व्यवहारों को (समक्तः) सम्यक् प्रकट करता हुआ (पाथः) अन्न को (उपैतु) प्राप्त कराता है; और (अग्निना) अग्नि के साथ (वनस्पतिः) वन=किरणों का पालक सूर्य (स्वदितानि) स्वादिष्ठ, (हव्या) खाने योग्य पदार्थों को (वक्षत्) प्राप्त कराता है; वैसे—(त्मन्या) आत्मा से वर्ताव करें ॥ २९ । १० ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालंकारः। हे विद्वांसो मनुष्याः ! यथा—सूर्य ऋतून् विभज्योत्तमानि सेवितव्यानि वस्तूनि जनयति, तथा—उत्तमानधमान् विद्यार्थिनो विद्याश्चाविद्यां च पृथक् परीक्ष्य सुशिक्षितान् संपादयन्तु, अविद्यां च निवर्त्तयन्तु ॥ २९।१० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। हे विद्वान् मनुष्यो ! जैसे—सूर्य ऋतुओं को विभक्त करके, उत्तम, सेवन करने योग्य वस्तुओं को उत्पन्न करता है; वैसे—उत्तम, अधम विद्यार्थियों तथा विद्या और अविद्या की

पृथक् परीक्षा करके उन्हें सुशिक्षित करो; और अविद्या का निवारण करो ॥ २९ । १० ॥

भा० पदार्थः—हव्या=उत्तमानि सेवितव्यानि वस्तूनि । देवलोकम्=विद्यां चाविद्यां च प्रजानन्=पृथक् परीक्ष्य ।

भाष्यसार—**१. पठन-पाठन कैसे हो**—विद्वान् लोग विद्वानों के दर्शन कराने वाले व्यवहार को प्राप्त करावें । जैसे जल से संयोजित आशुगामी अग्नि आत्मा=अपने स्वरूप से प्रत्येक ऋतु में दिव्य व्यवहारों को प्रकट करता है, अन्न को उत्पन्न करता है, अग्नि के साथ वर्तमान किरणों का पालक सूर्य स्वादिष्ठ भोज्य पदार्थों को प्राप्त करता है; वैसे विद्वान् लोग उत्तम, अधम विद्यार्थियों की और विद्या तथा अविद्या की पृथक्-पृथक् परीक्षा करके उन्हें शिक्षित करें और उनकी आत्मा से अविद्या को हटावें ॥

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । उपमा यह है कि जैसे अग्नि तथा सूर्य उत्तम पदार्थों को प्राप्त कराते हैं वैसे विद्वान् लोग विद्यार्थियों को विद्या प्रदान करें ॥ २९ । १० ॥

बृहदुक्थो वामदेव्यः । **अग्निः=विद्वान्** । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥
पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥
मनुष्यों को क्या करना चाहिए, इस विषय का फिर उपदेश किया है ॥

प्रजापतेस्तपसा वावृधानः सद्यो जातो दधिषे यज्ञमग्ने ।
स्वाहाकृतेन हविषा पुरोगा याहि साध्या हविरदन्तु देवाः ॥ ११ ॥

पदार्थः—(**प्रजापतेः**) प्रजायाः पालकस्य (**तपसा**) प्रतापेन (**वावृधानः**) वर्द्धमानः (**सद्यः**, **जातः**) शीघ्रं प्रसिद्धः सन् (**दधिषे**) धरसि (**यज्ञम्**) (**अग्ने**) पावकवद्वर्त्तमान विद्वन् ! (**स्वाहाकृतेन**) सुष्ठुसंस्कारक्रियया निष्पादितेन (**हविषा**) दातुमर्हेण (**पुरोगाः**) अग्रगण्या अग्रगामिनो वा (**याहि**) प्राप्नुहि (**साध्या**) साधनसाध्याः (**हविः**) अत्तव्यमन्नम् (**अदन्तु**) भुञ्जताम् (**देवाः**) विद्वांसः ॥ ११ ॥

अन्वयः—हे अग्ने ! त्वं सद्यो जातः प्रजापतेस्तपसा वावृधानः स्वाहाकृतेन हविषा यज्ञं दधिषे ये पुरोगाः साध्या देवा हविरदन्तु तान्याहि प्राप्नुहि ॥ ११ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने** ! पावकवद्वर्त्तमान विद्वन् ! **त्वं सद्यः** शीघ्रं **जातः** प्रसिद्धः सन्, **प्रजापतेः** प्रजायाः पालकस्य **तपसा** प्रतापेन **वावृधानः** वर्द्धमानः, **स्वाहाकृतेन** सुष्ठुसंस्कारक्रियया निष्पादितेन **हविषा** दातुमर्हेण **यज्ञं दधिषे** धरसि ।

ये पुरोगाः अग्रगण्या अग्रगामिनो वा **साध्याः** साधनसाध्याः **देवाः** विद्वांसः, **हविः** अत्तव्यमन्नं

भाषार्थ—हे (अग्ने) अग्नि=सूर्य के समान प्रजापालक विद्वान् ! तू—(सद्यः) शीघ्र (जातः) प्रसिद्ध होकर (प्रजापतेः) प्रजा-पालक के (तपसा) प्रताप से (वावृधानः) बढ़ता हुआ (स्वाहाकृतेन) उत्तम संस्कार-क्रिया से निष्पादित, (हविषा) दान के योग्य द्रव्य से (यज्ञम्) यज्ञ को (दधिषे) धारण करता है ।

जो (पुरोगाः) अग्रगण्य वा अग्रगामी (साध्याः) साधनों से सम्पन्न (देवाः) विद्वान् (हविः) खाने

अदन्तु भुञ्जतां; **तान् याहि=प्राप्नुहि** ॥ २९ । ११ ॥

योग्य अन्न को (अदन्तु) खाते हैं, उनको (याहि) प्राप्त कर ॥ २९ । ११ ॥

भावार्थः—ये मनुष्याः सूर्यवत् प्रजापालकाः, धर्मेण प्राप्तस्य पदार्थस्य भोक्तारो भवन्ति; ते सर्वोत्तमा गण्यन्ते ॥ २९ । ११ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सूर्य के तुल्य प्रजा के पालक तथा धर्म से प्राप्त पदार्थ का भोग करने वाले होते हैं; वे सर्वोत्तम गिने जाते हैं ॥ २९।११ ॥

भा० पदार्थः—प्रजापतेः=सूर्यवत् प्रजापालकस्य। हविः=धर्मेण प्राप्तं पदार्थम्। पुरोगाः=ये सर्वोत्तमा गण्यन्ते ते ॥

भाष्यसार—**मनुष्यों को क्या करना चाहिए**—सूर्य के तुल्य प्रजा का पालक विद्वान् शीघ्र प्रसिद्धि को प्राप्त करे। प्रजा का पालक विद्वान् अपने प्रताप से वृद्धि को प्राप्त करे। उत्तम संस्कार-क्रिया से निष्पादित हवि से यज्ञ को धारण करे। जो अग्रगण्य वा अग्रगामी साध्य नामक विद्वान् हवि अर्थात् खाने योग्य अन्न का सेवन करते हैं उन्हें प्राप्त करे; उनका सङ्ग करे। इस प्रकार सूर्य के तुल्य प्रजा के पालक, धर्म से प्राप्त पदार्थ के भोक्ता मनुष्य सर्वोत्तम गिने जाते हैं ॥ २९ । ११ ॥

भार्गवो जमदग्निः। **यजमानः=विद्वान्**। त्रिष्टुप्। धैवतः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को क्या करना चाहिए, इसका फिर उपदेश किया है ॥

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान ऽ उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात्।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू ऽ उपस्तुत्यं महि जातं ते ऽ अर्वन् ॥ १२ ॥

पदार्थः—(**यत्**) यथा (**अक्रन्दः**) शब्दं कुरुषे (**प्रथमम्**) (**जायमानः**) (**उद्यन्**) उदयं प्राप्नुवन् (**समुद्रात्**) अन्तरिक्षात्। **समुद्र इत्यन्तरिक्षना० ॥ निघं १ । ३ ॥** (**उत**) अपि (**वा**) (**पुरीषात्**) पालकात् परमात्मनः (**श्येनस्य**) पक्षिणः (**पक्षा**) पक्षौ (**हरिणस्य**) हर्त्तुं शीलस्य वीरस्य (**बाहू**) भुजौ (**उपस्तुत्यम्**) उपगतस्तुतिविषयम् (**महि**) महत् कर्म (**जातम्**) (**ते**) तव (**अर्वन्**) अश्व इव वेगवद्विद्वन् ॥ १२ ॥

प्रमाणार्थ—(**समुद्रात्**) अन्तरिक्षात्। 'समुद्र' पद निघण्टु (१ । ३) में अन्तरिक्ष-नामों में पठित है। अन्तरिक्ष=आकाश ॥

अन्वयः—हे अर्वन् विद्वन्! यत्समुद्रादुत वा पुरीषात्प्रथमं जायमानो वायुरिवोद्यंस्त्वमक्रन्दस्तदा ते हरिणस्य बाहू श्येनस्य पक्षेव एतत् महि जातमुपस्तुत्यं भवति ॥ १२ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे अर्वन्=विद्वन्!** अश्व इव वेगवद्विद्वन्! **यत्** यदा **समुद्राद्** अन्तरिक्षाद्, **उत** अपि **वा पुरीषात्** पालकात्परमात्मनः **प्रथमं जायमानो वायुरिवोद्यन्** उदयं प्राप्नुवन् **त्वमक्रन्दः** शब्दं कुरुषे, **तदा ते** तव **हरिणस्य** हर्त्तुं शीलस्य वीरस्य **बाहू** भुजौ, **श्येनस्य** पक्षिणः **पक्षा** पक्षौ **इव, एतत् महि** महत्कर्म **जातमुपस्तुत्यम्** उपगतस्तुतिविषयं **भवति** ॥ २९ । १२ ॥

भाषार्थ—हे (अर्वन्) घोड़े के समान वेगवान् विद्वान्! (यदा) जब—(समुद्रात्) आकाश से (उत, वा) अथवा (पुरीषात्) पालक परमात्मा से (प्रथमम्) प्रथम (जायमानः) उत्पन्न होने वाले वायु के समान (उद्यन्) उदय को प्राप्त होता हुआ तू—(अक्रन्दः) शब्द करता है; तब—(ते) तेरे (हरिणस्य) हरणशील वीर के (बाहू) भुजाएँ जो (श्येनस्य) बाज पक्षी के (पक्षा) पंखों के समान

हैं, वे तथा (एतत्) यह (महि) महान् कर्म (जातम्) समूह (उपस्तुत्यम्) स्तुति विषय को प्राप्त होता है ॥ २६ । १२ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालंकारः। हे मनुष्याः ! यथाऽन्तरिक्षात् प्रकटो वायुः कर्माणि कारयति, तथा—शुभान् गुणान् यूयं स्वीकुरुत।

यथा—पशूनां मध्येऽश्वो वेगवानस्ति, तथा—शत्रूणां निग्रहे वेगवन्तः, श्येन इव वीरसेनाः प्रगल्भा भवत। यदि—एवं कुरुत, तर्हि—सर्वं युष्माकं प्रशंसितं स्यात् ॥ २६ । १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। हे मनुष्यो ! जैसे आकाश से प्रकट वायु कर्मों को कराता है; वैसे—शुभ गुणों को तुम स्वीकार करो।

जैसे—पशुओं के मध्य में घोड़ा वेगवान् है; वैसे—शत्रुओं के निग्रह (पकड़ना) में वेगवान् बाज पक्षी के समान वीर-सेना वाले एवं चतुर बनो। यदि तुम ऐसा करो तो सब काम तुम्हारा प्रशंसित हो ॥ २६ । १२ ॥

भा० पदार्थः—जायमानः=प्रकटो वायुः। उपस्तुत्यम्=प्रशंसितम् ॥

भाष्यसार—१. **मनुष्यों को क्या करना चाहिए**—अश्व के समान वेगवान् विद्वान्—अन्तरिक्ष से वा पालक परमात्मा से प्रथम उत्पन्न वायु के तुल्य उदय को प्राप्त हुआ शब्द (उपदेश) करे। अर्थात् जैसे आकाश से प्रकट वायु कर्म कराता है वैसे शुभ गुणों को स्वीकार करे। शत्रुओं को हरण करने वाले इस वीर की भुजाएँ श्येन (बाज) पक्षी के समान हों अर्थात् जैसे पशुओं के मध्य में अश्व वेगवान् है, वैसे शत्रुओं के निग्रह में वेगवान् हो तथा बाज पक्षी के समान वीर सेना वाला चतुर हो। ऐसा करने से सब महान् कर्म प्रशंसित होते हैं ॥

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि मन्त्रोक्त वीर विद्वान् की भुजाएँ श्येन पक्षी के पंखों के तुल्य प्रगल्भ हों ॥ २६ । १२ ॥

भार्गवो जमदग्निः। **अग्निः**=**विद्वान्**। भुरिक् त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को क्या करना चाहिए, इसका फिर उपदेश किया है ॥

य॒मेन॑ द॒त्तं त्रि॒त ऽ एं॑नमायुन॒गिन्द्र॑ ऽ एणं प्र॒थ॒मो ऽ अध्य॑तिष्ठत् ।
ग॒न्ध॒र्वो ऽ अ॑स्य र॒श॒नाम॑गृभ्णा॒त्सू॒रा॒दश्वं॑ वसवो॒ निर॑तष्ट ॥ १३ ॥

पदार्थः—(**यमेन**) नियन्त्रा वायुना (**दत्तम्**) (**त्रितः**) त्रिभ्यः पृथिवीजलान्तरिक्षेभ्यः (**एनम्**) वह्निम् (**आयुनक्**) युनक्ति (**इन्द्रः**) विद्युत् (**एनम्**) अत्र छान्दसं णत्वम्। (**प्रथमः**) विस्तीर्णः=प्रख्यातः (**अधि**) (**अतिष्ठत्**) उपरि तिष्ठति (**गन्धर्वः**) गोः=पृथिव्या धर्त्ता (**अस्य**) सूर्यस्य (**रशनाम्**) रशनावत्किरणगतिम् (**अगृभ्णात्**) गृह्णाति (**सूरात्**) सूर्यात् (**अश्वम्**) आशुगामिनं वायुम् (**वसवः**) विद्वांसः (**निः**) **अतष्ट**) तक्ष्णोति=तनूकरोति ॥ १३ ॥

प्रमाणार्थ—(**एणम्**) यहाँ मन्त्र में छान्दस णत्व है ॥

अन्वयः—हे वसवो य इन्द्रस्त्रितो यमेन दत्तमेनमायुनगेनं प्राप्य प्रथमोऽध्यतिष्ठद् गन्धर्वः सन्नस्य रशनामगृभ्णादस्मात्सूरादश्वं निरतष्ट तं यूयं विस्तारयत ॥ १३ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे वसवः** ! विद्वांसः! **य इन्द्रः** विद्युत् **त्रितः** त्रिभ्यः पृथिवीजलान्तरिक्षेभ्यः **यमेन** नियन्त्रा वायुना **दत्तमेनं** वह्निम् **आयुनक्** युनक्ति, **एनं** वह्निं **प्राप्य प्रथमः** विस्तीर्णः= प्रख्यातः **अध्यतिष्ठद्** उपरि तिष्ठति। **गन्धर्वः** गोः=पृथिव्या धर्त्ता **सन्नस्य** सूर्यस्य **रशनां** रशनावत् किरणगतिम् **अगृभ्णाद्** गृह्णाति; **अस्मात्सूरात्** सूर्य्यात् **अश्वम्** आशुगामिनं वायुं **निरतष्ट** तक्ष्णोति= तनूकरोति; **तं यूयं विस्तारयत** ॥ २९ । १३ ॥

भाषार्थ—हे (वसवः) विद्वानो ! जो—(इन्द्रः) विद्युत् (त्रितः) पृथिवी जल और अन्तरिक्ष तीनों से (यमेन) नियन्ता वायु से (दत्तम्) प्रदत्त (एनम्) इस वह्नि, को (आयुनक्) युक्त करता है; (एनम्) इस अग्नि को प्राप्त करके (प्रथमः) विस्तृत एवं प्रख्यात विद्युत् (अध्यतिष्ठत्) ऊपर स्थित होता है, (गन्धर्वः) गौ=पृथिवी को धारण करता हुआ (अस्य) इस सूर्य की (रशनाम्) रशना=रस्सी के तुल्य किरण गति को (अगृभ्णात्) ग्रहण करता है; इस (सूरात्) सूर्य से (अश्वम्) आशुगामी वायु को (निरतष्ट) सूक्ष्म करता है; उस विद्युत् का तुम विस्तार करो ॥ २९ । १३ ॥

भावार्थः—हे मनुष्याः ! ईश्वरेणेह यस्मिन् पदार्थे यादृशी पदार्थरचना कृता, तां यूयं विद्यया संवित्त, एतां सृष्टिविद्यां गृहीत्वाऽनेकानि सुखानि साध्नुत च ॥ २९ । १३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! ईश्वर ने यहाँ जिस पदार्थ में जैसी पदार्थ-रचना की है; उसे तुम विद्या से जानो; और इस सृष्टि-विद्या को ग्रहण करके अनेक सुखों को सिद्ध करो ॥ २९ । १३ ॥

भाष्यसार—मनुष्यों को क्या करना चाहिए—वसु नामक विद्वानों को उचित है कि वे—जो विद्युत् पृथिवी, जल और अन्तरिक्ष से, नियन्ता वायु के द्वारा प्रदत्त इस अग्नि को नियुक्त करता है; इस अग्नि को प्राप्त करके प्रख्यात होता है, सर्वोपरि स्थित होता है, गन्धर्व अर्थात् पृथिवी का धारण करने वाला बनकर सूर्य की रशना रूप किरण गति को ग्रहण करता है; सूर्य से शीघ्रगामी वायु को सूक्ष्म करता है;—उस विद्युत् का विस्तार करें। ईश्वर ने इस संसार में जिस पदार्थ में जैसी रचना की है उसे विद्या से जानें। इस सृष्टि-विद्या को ग्रहण करके अनेक सुखों को सिद्ध करें ॥ २९ । १३ ॥

भार्गवो जमदग्निः । **अग्निः=विद्वान्** । विराट्त्रिष्टुप् । धैवतः स्वरः ।

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को क्या करना चाहिए, इसका फिर उपदेश किया है ॥

असि यमो ऽ अस्यादित्यो ऽ अर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन ।
असि सोमेन समया विपृक्त ऽ आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि ॥ १४ ॥

पदार्थः—(**असि**) (**यमः**) नियन्ता न्यायाधीश इव (**असि**) (**आदित्यः**) सूर्य्यवद्विद्यया प्रकाशितः (**अर्वन्**) वेगवान् वह्निरिव वर्त्तमान जन (**असि**) (**त्रितः**) त्रिभ्यः (**गुह्येन**) गुप्तेन (**व्रतेन**) शीलेन (**असि**) (**सोमेन**) ऐश्वर्येण (**समया**) समीपे (**विपृक्तः**) विशेषेण सम्बद्धः (**आहुः**) कथयन्ति (**ते**) तव (**त्रीणि**) (**दिवि**) प्रकाशे (**बन्धनानि**) ॥ १४ ॥

अन्वयः—हे अर्वन् ! यतस्त्वं गुह्ये न व्रतेन त्रितो यम इवास्यादित्य इवासि विद्वन्निवासि सोमेन समया विपृक्तोऽसि तस्य ते दिवि त्रीणि बन्धनान्याहुः ॥ १४ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे अर्वन् !** वेगवान् वह्निरिव वर्त्तमान जन ! **यतस्त्वं गुह्ये न** गुप्तेन **व्रतेन** शीलेन **त्रितः** त्रिभ्यः **यमः** नियन्ता=न्यायाधीशः **इवासि, आदित्यः** (सूर्य्यवद्विद्यया प्रकाशितः) **इवासि=विद्वन्निवासि, सोमेन** ऐश्वर्येण **समया** समीपे **विपृक्तः** विशेषेण सम्बद्धः **असि, तस्य ते** तव **दिवि** प्रकाशे **त्रीणि बन्धनान्याहुः** कथयन्ति ॥ २६ । १४ ॥

भाषार्थ—हे (अर्वन्) वेगवान् अग्नि के तुल्य वर्तमान मनुष्य ! जिससे तू—(गुह्ये न) गुप्त (व्रतेन) शील के द्वारा (त्रितः) शरीर, वाणी और मन इन तीनों से (यमः) नियन्ता=न्यायाधीश के समान (असि) है, (आदित्यः) सूर्य के तुल्य विद्या से प्रकाशित विद्वान् के समान (असि) है; (सोमेन) ऐश्वर्य के (समया) समीप (विपृक्तः) विशेष रूप से सम्बद्ध (असि) है; सो (ते) तेरे (दिवि) प्रकाश में (त्रीणि) तीन (बन्धनानि) बन्धन (आहुः) बतलाते हैं ॥ २६ । १४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालंकारः । हे मनुष्याः ! युष्माभिर्न्यायाधीशादित्यसोमादिगुणैर्भवितव्यम् ।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है । हे मनुष्यो ! तुम—न्यायाधीश, आदित्य=सूर्य और सोम=ऐश्वर्य आदि के गुणों से युक्त होओ ।

यथाऽस्य संसारस्य मध्ये वायु-सूर्याकर्षणैर्बन्धनानि सन्ति, तथैव—परस्परस्य शरीरवाङ्मन-आकर्षणैः प्रेमबन्धनानि कर्त्तव्यानि ॥ २६ । १४ ॥

जैसे—इस संसार के मध्य में वायु और सूर्य के आकर्षणों से बन्धन हैं; वैसे ही परस्पर के शरीर, वाणी और मन के आकर्षणों से प्रेम-बन्धनों को करें ॥ २६ । १४ ॥

भा० पदार्थः—दिवि=अस्य संसारस्य मध्ये । त्रीणि=वायु-सूर्य-आकर्षणानि / शरीर-वाङ्मन आकर्षणानि । बन्धनानि=प्रेमबन्धनानि ॥

भाष्यसार—**१. मनुष्यों को क्या करना चाहिए**—अग्नि के समान वेगवान् मनुष्य को उचित है कि वह अपने गुप्त स्वभाव से न्यायाधीश के समान हो । सूर्य के तुल्य विद्या से प्रकाशित विद्वान् के समान हो । सोम अर्थात् ऐश्वर्य से सम्बद्ध हो । अर्थात् यम, आदित्य और सोम इन तीनों के गुणों से युक्त हो । जैसे इस संसार में वायु, सूर्य और आकर्षण-शक्ति रूप तीन बन्धन हैं; वैसे मनुष्य विद्या-प्रकाश की प्राप्ति में शरीर, वाणी और मन का आकर्षण रूप तीन बन्धनों को प्राप्त करे ।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । उपमा यह है कि मनुष्य यम आदि तीनों के समान गुणों से युक्त हों तथा संसार के वायु आदि तीन बन्धनों के समान शरीर आदि तीन प्रेम-बन्धनों को प्राप्त करे ॥ २६ । १४ ॥

भार्गवो जमदग्निः । **अग्निः=विद्वान्** । भुरिक्पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

त्रीणि त ऽ आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे ।
उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन्यत्रा त ऽ आहुः परमं जनित्रम् ॥ १५ ॥

पदार्थः—(**त्रीणि**) (**ते**) तव (**आहुः**) कथयन्ति (**दिवि**) विद्याप्रकाशे (**बन्धनानि**) (**त्रीणि**) (**अप्सु**) प्राणेषु (**त्रीणि**) (**अन्तः**) मध्ये (**समुद्रे**) अन्तरिक्षे (उतेव) यथोत्प्रेक्षणम् (**मे**) मम (**वरुणः**) श्रेष्ठः (**छन्त्सि**) अर्चसि । छन्दतीत्यर्चतिकर्मा० ॥ निघं० ३ । १४ ॥ (**अर्वन्**) विज्ञानयुक्त (**यत्र**) यस्मिन् जन्मनि अत्र ऋचितुनुघेति दीर्घः (**ते**) तव (**आहुः**) (**परमम्**) प्रकृष्टम् (**जनित्रम्**) ॥ १५ ॥

प्रमाणार्थ—(**छन्त्सि**) अर्चसि । यह पद निघण्टु (३ । १३) में अर्चति-अर्थक क्रियाओं में पठित है । (**यत्र**) यहाँ ऋचि तुनुघ०' (६ । ३ । ११४) से संहिता में दीर्घ है—यत्रा ॥

अन्वयः—हे अर्वन् विद्वन् ! यत्र दिवि ते त्रीणि बन्धनानि विद्वांस आहुर्यत्राप्सु त्रीणि यत्रान्तर्मध्ये समुद्रे च त्रीणि बन्धनान्याहुस्ते च परमं जनित्रमाहुः । येन वरुणः सन् विदुषः छन्त्स्युतेव तानि मे सन्तु ॥ १५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अर्वन् विद्वन्** ! विज्ञानयुक्त ! **यत्र** यस्मिन् जन्मनि **दिवि** विद्याप्रकाशे **ते** तव **त्रीणि बन्धनानि विद्वांस आहुः** कथयन्ति, **यत्र** यस्मिन् जन्मनि **अप्सु** प्राणेषु **त्रीणि, यत्र** यस्मिन् जन्मनि **अन्तः**=**मध्ये समुद्रे** अन्तरिक्षे **च त्रीणि बन्धनान्याहुः** कथयन्ति, **ते** तव **च परमं** प्रकृष्टं **जनित्रमाहुः** कथयन्ति, **येन वरुणः** श्रेष्ठः **सन् विदुषः छन्त्सि** अर्चसि; **उतेव** यथोत्प्रेक्षणं **तानि मे** मम **सन्तु** ॥ २९ । १५ ॥

भाषार्थ—हे (अर्वन्) विज्ञान से युक्त विद्वान् ! (यत्र) जिस जन्म में (दिवि) विद्या के प्रकाश में (ते) तेरे (त्रीणि) तीन (बन्धनानि) बन्धन विद्वान् लोग (आहुः) बतलाते हैं; (यत्र) जिस जन्म में (अप्सु) प्राणों में (त्रीणि) तीन बन्धन, (यत्र) जिस जन्म में (अन्तः) मध्य में और (समुद्रे) अन्तरिक्ष में (त्रीणि) तीन (बन्धनानि) बन्धन (आहुः) बतलाते हैं; और (ते) तेरा (परमम्) उत्तम (जनित्रम्) जन्म (आहुः) बतलाते हैं; जिससे (वरुणः) श्रेष्ठ होकर विद्वानों की (छन्त्सि) पूजा करता है; (उतेव) वैसे ही वे (मे) मेरे हों ॥ २९ । १५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालंकारः । हे मनुष्याः ! आत्म-मनः-शरीरैर्ब्रह्मचर्येण विद्यासु नियता भूत्वा विद्या-सुशिक्षे सञ्चिनुत । द्वितीयं विद्याजन्म प्राप्यार्चिता भवत, येन येन सह, यावान् स्वस्य सम्बन्धोऽस्ति, तं विजानीत ॥ २९ । १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । हे मनुष्यो ! आत्मा, मन और शरीर से ब्रह्मचर्य के द्वारा विद्याओं में नियत=स्थिर होकर विद्या और सुशिक्षा का संचय करो । दूसरा विद्या-जन्म प्राप्त करके पूजित बनो; जिस-जिस के साथ जितना अपना सम्बन्ध है; उसे जानो ॥१५॥

भा० पदार्थः—त्रीणि=आत्म-मनः—शरीराणि । परमम्=द्वितीयम् । जनित्रम्=विद्याजन्म ॥ २९ । १५ ॥

भाष्यसार—**१. मनुष्यों को क्या करना चाहिए**—हे विज्ञान से युक्त विद्वान्—जन्म के उपरान्त विद्या-प्रकाश की प्राप्ति में तेरे तीन बन्धन विद्वान् लोग बतलाते हैं । जन्म के उपरान्त प्राणों तथा अन्तरिक्ष में तेरे तीन बन्धन विद्वान् लोग बतलाते हैं । जिनसे तेरा जन्म प्रकृष्ट=उत्तम होता है; यह बतलाते हैं । तात्पर्य यह है कि आत्मा, मन और शरीर रूप तीन बन्धनों से ब्रह्मचर्य के द्वारा मनुष्य

विद्याओं में स्थिर होकर विद्या और सुशिक्षा का संचय करे। द्वितीय विद्या-जन्म को प्राप्त करके अर्चित= पूजित हो। पारस्परिक सम्बन्ध को भी समझे।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि सब मनुष्य विद्वान् के समान मन्त्रोक्त तीन बन्धनों से युक्त हों॥ २६। १५॥

भार्गवो जमदग्निः। **अग्निः**=सेनाधीशः। निचृत्त्रिष्टुप्। धैवतः॥

मनुष्यैरश्वरक्षणेन किं साध्यमित्याह॥

मनुष्यों को घोड़ों की रक्षा से क्या सिद्ध करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया जाता है॥

इमा ते वाजिन्नवमार्जनानीमा शफानांᳯ सनितुर्निधाना।
अत्रा ते भद्रा रशना ऽ अपश्यमृतस्य या ऽ अभिरक्षन्ति गोपाः॥ १६॥

पदार्थः—(**इमा**) इमानि प्रत्यक्षाणि (**ते**) तव (**वाजिन्**) अश्वइव वेगादिगुण सेनाधीश! (**अवमार्जनानि**) शुद्धिकरणानि (**इमा**) इमानि (**शफानाम्**) खुराणां रक्षणानि (**सनितुः**) यमस्य (**निधाना**) निधानानि=स्थानानि (**अत्र**) अस्मिन् सैन्ये। **अत्र संहितायामिति दीर्घः।** (**ते**) तव (**भद्राः**) शुभकरीः (**रशनाः**) रज्जवः (**अपश्यम्**) पश्यामि (**ऋतस्य**) यथार्थम्। **अत्र कर्मणि षष्ठी** (**याः**) (**अभिरक्षन्ति**) सर्वतः पान्ति (**गोपाः**) पालिकाः॥ १६॥

प्रमाणार्थ—(अत्र) यहाँ संहिता में दीर्घ है—अत्रा। (ऋतस्य) यहाँ कर्म में षष्ठी विभक्ति है॥

अन्वयः—हे वाजिन्! यथाऽहं ते तवेमाश्वस्यावमार्जनानीमा शफानां सनितुर्निधानाऽपश्यमत्र तेऽश्वस्य या भद्रा गोपा रशना ऋतस्याभि रक्षन्ति ता अपश्यं तथा त्वं पश्य॥ १६॥

सपदार्थान्वयः—हे **वाजिन्**! अश्व इव वेगादिगुण सेनाधीश! **यथाऽहं ते=तव इमा** इमानि प्रत्यक्षाणि **अश्वस्यावमार्जनानि** शुद्धिकरणानि, **इमा** इमानि **शफानां** खुराणां रक्षणानि **सनितुः** यमस्य **निधाना** निधानानि=स्थानानि **अपश्यं** पश्यामि, **अत्र** अस्मिन् सैन्ये **ते** तव **अश्वस्य या भद्राः** शुभकरीः **गोपाः** पालिकाः **रशनाः** रज्जवः **ऋतस्य** यथार्थम् **अभिरक्षन्ति** सर्वतः पान्ति, **ता अपश्यं** पश्यामि; **तथा त्वं पश्य**॥ २६। १६॥

भाषार्थ—हे (वाजिन्) अश्व के तुल्य वेग आदि गुणों से युक्त सेनाधीश! जैसे मैं—(ते) तेरे (इमा) इन (अश्वस्य) घोड़े के (अवमार्जनानि) शुद्धि करने वाले जल आदि, (इमा) ये (शफानाम्) खुरों की रक्षा करने वाले लोहमय तनहाल आदि, (सनितुः) नियन्ता के (निधाना) स्थानों को (अपश्यम्) देखता हूँ; और—(अत्र) इस सैन्य में (ते) तेरे (अश्वस्य) घोड़े की जो (भद्राः) कल्याणकारी, (गोपाः) पालक (रशनाः) रस्सियाँ (ऋतस्य) यथार्थ में (अभिरक्षन्ति) सब ओर से रक्षा करती हैं; उन्हें (अपश्यम्) देखता हूँ; वैसे तू भी देख॥ २६। १६॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये स्नानेनाश्वादीनां शुद्धिं, तच्छफानां रक्षणायायसो

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। जो स्नान से घोड़े आदि पशुओं की

निर्मितस्य योजनमन्यानि, रशनादीनि च संयोज्य सुशिक्ष्य रक्षन्ति; ते युद्धादिषु कार्येषु कृतसिद्धयो भवन्ति ॥ २६ । १६ ॥

शुद्धि, उनके खुरों की रक्षा के लिए लोह निर्मित तनहाल और अन्य रस्सी आदि को संयुक्त कर सुशिक्षित करके रक्षा करते हैं; वे युद्ध आदि कार्यों में सिद्धि को प्राप्त करते हैं ॥ २६ । १६ ॥

भाष्यसार—१. **मनुष्य अश्व-रक्षा से क्या सिद्ध करें**—अश्व के समान वेगादि गुणों से युक्त सेनापति—अपने घोड़े के शुद्धिकरण, खुरों की रक्षा के लिए बने लोहमय तनहाल, तथा यम=अश्व-नियन्ता के स्थानों का निरीक्षण करे। सेना में घोड़े की कल्याणकारी, और पालक जो रस्सियाँ यथार्थ में सब से रक्षा करती हैं उनको भी देखे। घोड़ों को सुशिक्षित करके उनकी रक्षा करे तथा उनसे युद्ध आदि कार्यों में सिद्धि को प्राप्त करे।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि अश्व-सेवक आदि के समान सेनापति भी घोड़ों का निरीक्षण करे ॥ २६ । १६ ॥ ●

भार्गवो जमदग्निः । **अग्निः**=**विद्वान्** । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

यानरचनेन किं कार्यमित्याह ॥

यानरचना से क्या करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

आत्मानं ते मनसारादजानामवो दिवा पतयन्तं पतङ्गम् ।
शिरो ऽअपश्यं पथिभिः सुगेभिररेणुभिर्जेहमानं पतत्रि ॥ १७ ॥

पदार्थः—(**आत्मानम्**) (**ते**) तव (**मनसा**) विज्ञानेन (**आरात्**) निकटे (**अजानाम्**) जानामि (**अवः**) अधस्तात् (**दिवा**) अन्तरिक्षेण सह (**पतयन्तम्**) पतन्तं=गच्छन्तं (**पतङ्गम्**) सूर्यं प्रति (**शिरः**) दूराच्छिर इव लक्ष्यमाणम् (**अपश्यम्**) (**पथिभिः**) मार्गैः (**सुगेभिः**) सुखेन गमनाधिकरणैः (**अरेणुभिः**) अविद्यमाना रेणवो येषु तैः (**जेहमानम्**) प्रयत्नेन गच्छन्तम् (**पतत्रि**) पतनशीलम् ॥ १७ ॥

अन्वयः—हे विद्वन्नहं यथा मनसारादवो दिवा पतङ्गं प्रति पतयन्तं ते पतत्रि शिर आत्मानमजानाम् । अरेणुभिः सुगेभिः पथिभिर्जेहमानं पतत्रि शिरोऽपश्यं तथा त्वं पश्य ॥ १७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! **अहं यथा मनसा** विज्ञानेन **आरात्** निकटे **अवः** अधस्तात् **दिवा** अन्तरिक्षेण सह **पतङ्गं** सूर्यं **प्रति पतयन्तं** पतन्तं=गच्छन्तं **ते** तव **पतत्रि** पतनशीलं **शिरः** दूराच्छिर इव लक्ष्यमाणम् **आत्मानमजानां** जानामि, **अरेणुभिः** अविद्यमाना रेणवो येषु तैः **सुगेभिः** सुखेन गमनाधिकरणैः **पथिभिः** मार्गैः, **जेहमानं** प्रयत्नेन गच्छन्तं **पतत्रि** पतनशीलं **शिरः** दूराच्छिर इव लक्ष्यमाणम् **अपश्यं; तथा त्वं पश्य** ॥ २६ । १७ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् ! मैं जैसे (मनसा) विज्ञान से (आरात्) पास एवं (अवः) नीचे, (दिवा) आकाश के साथ (पतङ्गम्) सूर्य के प्रति (पतयन्तम्) गति करने वाले (ते) तेरे (पतत्रि) पतनशील, (शिरः) दूर से शिर के तुल्य दिखाई देने वाले (आत्मानम्) स्वरूप को (अजानाम्) जानता हूँ; और (अरेणुभिः) रेणुओं से रहित (सुगेभिः) सुगम (पथिभिः) मार्गों से (जेहमानम्) प्रयत्न से चलने वाले (पतत्रि) पतनशील (शिरः) दूर से शिर के तुल्य दिखाई देने वाले विमान को (अपश्यम्) देखता हूँ; वैसे तू भी देख ॥ २६ । १७ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । हे मनुष्याः ! यूयं सर्वेभ्यो वेगवत्तमं, सद्यो गमयितारं वह्निमिव चात्मानं पश्यत, सम्प्रयुक्तैरग्न्यादिभिस्सहितेषु यानेषु स्थित्वा जलस्थलान्तरिक्षेषु प्रयत्नेन गच्छताऽवगच्छत, यथा—शिर उत्तमाङ्गमस्ति, तथैव—विमानयानमुत्तमं मन्तव्यम् ॥ २६ । १७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। हे मनुष्यो ! तुम—सब से वेगवान्, शीघ्र गमन करने वाले और अग्नि के तुल्य आत्मा को देखो। संप्रयुक्त अग्नि आदि से युक्त यानों में बैठकर जल, स्थल और अन्तरिक्ष में प्रयत्न से यातायात करो। जैसे शिर उत्तम अङ्ग है वैसे ही विमान यान को उत्तम मानो ॥ २६ । १७ ॥

भा० पदार्थः—पतङ्गम्=वह्निमिव । पतयन्तम्=सर्वेभ्यो वेगवत्तमम् । पतत्रि=सद्यो गमयितारम् । पथिभिः=जल-स्थल-अन्तरिक्षेषु । पतत्रि=यानम्; विमानयानम् । शिरः=उत्तमाङ्गम् ॥ २६ । १७ ॥

भाष्यसार—१. **यान-रचना से क्या करें**—विद्वान् लोग विज्ञान के द्वारा निकट, नीचे एवं अन्तरिक्ष के साथ सूर्य के प्रति गति करने वाले, पक्षी के समान उड़ने वाले, दूर से शिर के तुल्य दिखाई देने वाले आत्मा=सतत गतिशील यान को जानें तथा अपने आत्मा को भी पहचानें। रेणु (धूलि) से रहित, सुगम मार्गों से चलने वाले इस यान को देखें। मनुष्य संप्रयुक्त अग्नि आदि से युक्त यानों में बैठकर यातायात करें। जैसे शिर उत्तमाङ्ग है वैसे विमान नामक यान को भी उत्तम मानें।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि यान-विद्या के ज्ञाता मनुष्य के तुल्य विद्वान् लोग यान को देखें तथा आत्मा को जानें ॥ २६ । १७ ॥

भार्गवो जमदग्निः । **अग्निः=वीरः** । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथ शूरवीराः किं कुर्वन्त्वित्याह ॥

अब शूरवीर लोग क्या करें, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

अत्रा॑ ते रू॒पमु॑त्त॒मम॑पश्यं॒ जिगी॑षमाणमि॒ष ऽ आ प॒दे गोः ।
य॒दा ते॒ मर्त्तो॒ ऽ अनु॒ भोग॒मान॒डादिद्॒ ग्रसि॑ष्ठ ऽ ओष॑धीरजीगः ॥ १८ ॥

पदार्थः—(**अत्र**) अस्मिन् व्यवहारे । **अत्र संहितायामिति दीर्घः** । (**ते**) तव (**रूपम्**) (**उत्तमम्**) (**अपश्यम्**) पश्येयम् (**जिगीषमाणम्**) शत्रून् विजयमानम् (**इषः**) अन्नानि (**आ**) समन्तात् (**पदे**) प्रापणाय (**गोः**) पृथिव्याः (**यदा**) (ते) तव (**मर्त्तः**) मनुष्यः (**अनु**) आनुकूल्ये (**भोगम्**) (**आनट्**) व्याप्नोति । **आनडिति व्याप्तिकर्मा ॥ निघं० २ । १८ ॥** (**आत्**) अनन्तरम् (**इत्**) एव (**ग्रसिष्ठः**) अतिशयेन ग्रसिता (**ओषधीः**) (**अजीगः**) निगलसि ॥ १८ ॥

प्रमाणार्थ—(**अत्र**) यहाँ संहिता में मन्त्र में दीर्घ है—अत्रा । (आनट्) व्याप्नोति । 'आनट्' यह पद व्याप्ति-अर्थक धातुओं में निघण्टु (२ । १८) में पठित है ॥

अन्वयः—हे वीर ! ते जिगीषमाणमुत्तमं रूपं गोः पदेऽत्र इषश्चाऽपश्यं ते मर्त्तो यदा भोगमानट् तदाऽऽदिद्ग्रसिष्ठः संस्त्वमोषधीरन्वजीगः ॥ १८ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे वीर ! ते** तव **जिगीषमाणं** शत्रून् विजयमानम् **उत्तमं रूपं, गोः**

भाषार्थ—हे वीर ! (ते) तेरे (जिगीषमाणम्) शत्रुओं को जीतने वाले, (उत्तमम्) उत्तम

पृथिव्याः पदे प्रापणाय अत्र अस्मिन् व्यवहारे इषः अन्नानि च आ+अ पश्यं समन्तात् पश्येयम् ।

(रूपम्) रूप को और (गोः) पृथिवी को (पदे) प्राप्त करने के लिए (अत्र) इस व्यवहार में (इषः) अन्नों को (आ+अपश्यम्) सब ओर देखूं।

ते तव मर्त्तः मनुष्यः यदा भोगमानट् व्याप्नोति, तदा+आत् अनन्तरम् इत् एव ग्रसिष्ठः अतिशयेन ग्रसिता संस्त्वमोषधीरन्वजीगः अनुकूलं निगलसि ॥ २९ । १८ ॥

(ते) तेरा (मर्त्तः) मनुष्य (यदा) जब (भोगम्) भोग को (आनट्) प्राप्त करता है; तब (आत्) उसके पश्चात् (इत्) ही (ग्रसिष्ठः) अत्यन्त भक्षक होकर तू (ओषधीः) ओषधियों को (अन्वजीगः) अनुकूलतापूर्वक निगल=खा ॥ २९ । १८ ॥

भावार्थः—हे मनुष्याः ! यथा—उत्तमानि पश्वादीनि सेनाङ्गानि विजयकराणि स्युस्तथा—शूरवीरा विजयहेतवो भूत्वा, भूमिराज्ये भोगान् प्राप्नुवन्तु ॥ २९ । १८ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे—उत्तम पशु आदि सेना के अङ्ग विजय करने वाले हों; वैसे शूर-वीर लोग विजय के हेतु बनकर भूमि-राज्य में भोगों को प्राप्त करें ॥ २९ । १८ ॥

भा० पदार्थः—गोः=भूमेः । पदे=भूमिराज्ये । आनट्=प्राप्नोतु ॥

भाष्यसार—**शूरवीर लोग क्या करें**—शूरवीरों का शत्रुओं को विजय करने वाला उत्तम रूप हो। वे पृथिवी के राज्य की प्राप्ति के लिए सब ओर अन्न आदि पदार्थों को प्राप्त करें। शूरवीरों से सम्बद्ध मनुष्य जब भोग को प्राप्त करें तभी वे भोजन आदि करें तथा सोम आदि ओषधियों का सेवन करें। जैसे अश्व आदि उत्तम पशु सेना के अङ्ग विजय कराने वाले होते हैं वैसे शूरवीर लोग विजय-हेतु बनकर भूमि के राज्य में भोगों को प्राप्त करें ॥ २९ । १८ ॥ ●

भार्गवो जमदग्निः । **मनुष्याः=स्पष्टम्** । विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

मनुष्यैः कथं राजप्रजाकार्याणि साधनीयानीत्याह ॥

मनुष्यों को कैसे राजा और प्रजा के कार्य सिद्ध करने चाहिएँ, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

अनु॑ त्वा॒ रथो॒ ऽ अनु॒ मर्यो॑ ऽ अर्व॒न्ननु॒ गावोऽनु॒ भगः॑ क॒नीना॑म् ।
अनु॒ व्राता॑स॒स्तव॑ स॒ख्यमी॑यु॒रनु॑ दे॒वा म॑मिरे वी॒र्यं॒ ते ॥ १९ ॥

पदार्थः—(**अनु**) पश्चादानुकूल्ये वा (**त्वा**) त्वाम् (**रथः**) यानानि (**अनु**) (**मर्यः**) मनुष्याः (**अर्वन्**) अश्व इव वर्त्तमान (**अनु**) (**गावः**) (**अनु**) (**भगः**) ऐश्वर्यम् (**कनीनाम्**) कमनीयानां जनानाम् (**अनु**) (**व्रातासः**) मनुष्याः । व्राता इति मनुष्यना० ॥ निघं० २ । ३ ॥ (**तव**) (**सख्यम्**) मित्रस्य भावं वा (**ईयुः**) प्राप्नुयुः (**अनु**) (**देवाः**) विद्वांसः (**ममिरे**) मिनुयुः (**वीर्यम्**) पराक्रमं=बलम् (**ते**) तव ॥ १९ ॥

प्रमाणार्थ—(व्रातासः) मनुष्याः । 'व्राताः' यह पद निघण्टु (२ । ३) में मनुष्य-नामों में पठित है ॥

अन्वयः—हे अर्वन् विद्वन् ! ते कनीनां मध्ये वर्त्तमाना देवा व्रातासोऽनुवीर्यमनुममिरे तव सख्यं चान्वीयुस्त्वानु रथो त्वानु मर्यो त्वाऽनु गावो त्वाऽनु भगश्च भवतु ॥ १९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे अर्वन्=विद्वन् अश्व इव वर्त्तमान ! ते तव **कनीनां** कमनीयानां

भाषार्थ—हे (अर्वन्) अश्व के तुल्य वर्तमान विद्वान् ! (ते) तेरे (कनीनाम्) कमनीय जनों

जनानां **मध्ये वर्त्तमाना देवाः** विद्वांसः, **व्रातासः** मनुष्याः, **अनुवीर्यम्** अनुकूलं पराक्रमं बलम् **अनु+ममिरे** अनुकूलं मिनुयुः, **तव सख्यं** मित्रस्य भावे वा **च अन्वीयुः** पश्चात् प्राप्नुयुः।

के (मध्य) मध्य में वर्तमान (देवाः) विद्वान् लोग तथा (व्रातासः) मनुष्य—(अनुवीर्यम्) अनुकूल पराक्रम तथा बल को (अनु+ममिरे) अनुकूलता पूर्वक प्राप्त करें; और (तव) तेरी (सख्यम्) मित्रता को (अन्वीयुः) तत्पश्चात् प्राप्त करें।

त्वा त्वाम् **अनु** पश्चात् **रथः** यानानि, **त्वा** त्वाम् **अनु** पश्चात् **मर्यः** मनुष्याः, **त्वा** त्वाम् **अनु** पश्चात् **गावः**, **त्वा** त्वाम् **अनु** पश्चात् **भगः** ऐश्वर्यं **च भवतु** ॥ २६। १६॥

(त्वाम्) तेरे (अनु) पीछे (रथः) यान, (त्वा) तेरे (अनु) पीछे (मर्यः) मनुष्य, (त्वा) तेरे (अनु) पीछे (गावः) गाय और (त्वा) तेरे (अनु) पीछे (भगः) ऐश्वर्य हो॥ २६। १६॥

भावार्थः—यदि मनुष्याः सुशिक्षिता भूत्वाऽन्यान् सुशिक्षितान् कुर्युः, तेषां मध्यादुत्तमान् सभासदः सम्पाद्य, सभासदां मध्यादुत्तमं सभेशं स्थापयित्वा, राजप्रजाप्रधानपुरुषाणामेकानुमत्या राजकार्याणि साधयेयुः, तर्हि—सर्वेषामनुकूला भूत्वा, सर्वाणि कार्याण्यलङ्कुर्युः॥ २६। १६॥

भावार्थ—यदि मनुष्य—सुशिक्षित होकर अन्यों को सुशिक्षित करें, उनके मध्य में से उत्तम सभासदों को बनाकर, सभासदों के मध्य में से उत्तम सभापति को स्थापित करके; राजा, प्रजा और प्रधान पुरुषों की एक अनुमति से राज-कार्यों को सिद्ध करें; तो सब के अनुकूल होकर, सब कार्यों को अलंकृत कर सकते हैं॥ २६। १६॥

भा० पदार्थः—कनीनाम्=सुशिक्षितानां मनुष्याणाम्। अनुममिरे=अनुमत्या राजकार्याणि साधयेयुः। सख्यम्=आनुकूल्यम्।

भाष्यसार—मनुष्य कैसे राजा और प्रजा के कार्यों को सिद्ध करें—कामना करने योग्य विद्वानों के मध्य में वर्तमान विद्वान् मनुष्य—अश्व के समान वेगवान् विद्वान् के अनुकूल पराक्रम को स्वीकार करें, तत्पश्चात् उसकी मित्रता को प्राप्त करें। उस स्वीकृत विद्वान् के पश्चात् यान, मनुष्य, गौ आदि पशु तथा विविध ऐश्वर्य विद्यमान हों। तात्पर्य यह है कि विद्वान् मनुष्य स्वयं सुशिक्षित होकर अन्यों को सुशिक्षित करें। उनमें से उत्तम सभासद् बनावें। सभासदों में से एक उत्तम सभापति बनावें। राजा, प्रजा और प्रधान पुरुषों की अनुमति से सब राजकार्यों को सिद्ध करें। सब के अनुकूल होकर सब कार्यों को अलंकृत करें॥ २६। १६॥ ●

भार्गवो जमदग्निः। **अग्निः=भौतिकः**। निचृत्त्रिष्टुप्। धैवतः॥

मनुष्यैरग्न्यादिपदार्थगुणविज्ञानेन किं साध्यमित्याह॥

मनुष्यों को अग्न्यादि पदार्थों के गुण-ज्ञान से क्या सिद्ध करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया जाता है॥

हिरण्यशृङ्गोऽयो ऽ अस्य पादा मनोजवा ऽ अवर ऽ इन्द्र ऽ आसीत्।
देवा ऽ इदस्य हविरद्यमायन्यो ऽ अर्वन्तं प्रथमो ऽ अध्यतिष्ठत्॥ २०॥

पदार्थः—(**हिरण्यशृङ्गः**) हिरण्यानि=तेजांसि शृङ्गाणीव यस्य सः (**अयः**) सुवर्णम्। अय इति हिरण्यना०॥ निघं० १। २॥ (**अस्य**) (**पादाः**) पद्यन्ते=गच्छन्ति यैस्ते (**मनोजवाः**) मनसो जवो=वेग इव जवो=वेगो येषान्ते (**अवरः**) नवीनः (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यहेतुर्विद्युदिव सभेश (**आसीत्**) भवेत्

(**देवाः**) विद्वांसः सभासदः (**इत्**) एव (**अस्य**) (**हविरद्यम्**) दातुमर्हमत्तुं योग्यं च (**आयन्**) प्राप्नुयुः (**यः**) (**अर्वन्तम्**) अश्ववत्प्राप्नुवन्तं वह्निम् (**प्रथमः**) आदिमः (**अध्यतिष्ठत्**) उपरि तिष्ठेत् ॥ २० ॥

प्रमाणार्थ—(अयः) सुवर्णम् । 'अयः' यह पद निघण्टु (१ । २) में हिरण्य-नामों में पठित है । हिरण्य=सुवर्ण ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! योऽवरो हिरण्यशृङ्ग इन्द्र आसीद्यः प्रथमोऽर्वन्तमयश्चाध्यतिष्ठदस्य पादा मनोजवाः स्युर्देवा अस्य हविरद्यमिदायन् तं यूयमाश्रयत ॥ २० ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! **योऽवरः** नवीनः **हिरण्यशृङ्गः** हिरण्यानि=तेजांसि शृङ्गाणीव यस्य सः **इन्द्रः** परमैश्वर्यहेतुर्विद्युदिव सभेशः **आसीत्** भवेत्, **यः प्रथमः** आदिमः **अर्वन्तम्** अश्ववत्प्राप्नुवन्तं वह्निम् **अयः** सुवर्णं **चाध्यतिष्ठद्** उपरि तिष्ठेत्, **अस्य पादाः** पद्यन्ते=गच्छन्ति यैस्ते **मनोजवाः** मनसो जवो=वेग इव जवो=वेगो येषान्ते **स्युः**; **देवाः** विद्वांसः सभासदः **अस्य हविरद्यं** दातुमर्हमत्तुं योग्यं च **इद्** एव **आयन्** प्राप्नुयुः; **तं यूयमाश्रयत** ॥ २६ । २० ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो (अवरः) नवीन (हिरण्यशृंगः) शृंगों के तुल्य विविध तेज वाला, (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य की हेतु विद्युत् के तुल्य सभापति (आसीत्) हो; और जो (प्रथमः) आदिम सभापति (अर्वन्तम्) अश्व के तुल्य प्राप्त होने वाले अग्नि तथा (अयः) सुवर्ण का (अध्यतिष्ठत्) अधिष्ठाता हो, तथा (अस्य) इसके (पादाः) गति करने वाले पांव (मनोजवाः) मन के तुल्य वेगवाले हों; और (देवाः) विद्वान् सभासद् (अस्य) इसकी (हविरद्यम्) देने और खाने योग्य पदार्थ को (इत्) ही (आयन्) प्राप्त करते हैं; उसका तुम आश्रय करो ॥ २६ । २० ॥

भावार्थः—ये मनुष्या अग्न्यादिपदार्थानां गुणकर्मस्वभावान् यथावज्जानीयुस्ते बहून्यद्भुतानि कार्याणि साद्धुं शक्नुयुः । ये प्रीत्या राजकार्याणि प्राप्नुयुस्ते सत्कारं, ये नाशयेयुस्ते दण्डं चावश्यं प्राप्नुयुः ॥ २६ । २० ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अग्नि आदि पदार्थों के गुण, कर्म, स्वभाव को यथावत् जानते हैं; वे बहुत अद्भुत कार्यों को सिद्ध कर सकते हैं । जो प्रीतिपूर्वक राजकार्यों को प्राप्त करते हैं; वे सत्कार को और जो उन्हें नष्ट करते हैं वे दण्ड को अवश्य प्राप्त हों ॥ २६ । २० ॥

भा० पदार्थः—अध्यतिष्ठत्=गुणकर्मस्वभावान् यथावज्जानीयात् । हविरद्यम्=सत्कारं/दण्डम् ।

भाष्यसार—**मनुष्य अग्नि आदि पदार्थों के विज्ञान से क्या सिद्ध करें**—अग्नि आदि पदार्थों के गुण-कर्म-स्वभाव का यथावत् ज्ञाता, नवीन, शृंगों के समान विविध तेज से युक्त, परम ऐश्वर्य के हेतु विद्युत् के तुल्य तेजस्वी सभापति हो । वह विख्यात सभापति अश्व के तुल्य देशान्तर में पहुँचाने वाले अग्नि और सुवर्ण का अधिष्ठाता हो । अग्नि-विद्या के द्वारा इस सभापति के चरण मनोवेग से गति करने वाले हों । वह उक्त विद्या से बहुत अद्भुत कार्यों को सिद्ध करें । जो विद्वान् सभासद् प्रीति से इस सभापति के राजकार्यों को सिद्ध करें, उनका भोजन आदि से सत्कार करें और जो राजकार्यों को नष्ट करें उन्हें अवश्य दण्ड दें ॥ २६ । २० ॥

भार्गवो जमदग्निः । **मनुष्याः**=स्पष्टम् । भुरिक् पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

कीदृशा राजपुरुषा विजयमाप्नुवन्तीत्याह ॥

कैसे राजपुरुष विजय पाते हैं, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

ईर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः सꣳ शूरणासो दिव्यासो ऽ अत्याः ।
हꣳसा ऽ इव श्रेणिशो यतन्ते यदाक्षिषुर्दिव्यमज्ममश्वाः ॥ २१ ॥

पदार्थः—(**ईर्मान्तासः**) ईर्मः=प्रेरितः स्थितिप्रान्तो येषान्ते (**सिलिकमध्यमासः**) सिलिकः= संलग्नो मध्यदेशो येषान्ते (**सम्**) (**शूरणासः**) सद्यो रणो=युद्धविजयो येभ्यस्ते (**दिव्यासः**) प्राप्तदिव्य-शिक्षाः (**अत्याः**) सततगामिनः (**हंसा इव**) हंसवद् गन्तारः (**श्रेणिशः**) बद्धपङ्क्तयः (**यतन्ते**) (**यत्**) ये (**आक्षिषुः**) प्राप्नुयुः (**दिव्यम्**) शुद्धम् (**अज्मम्**) अजन्ति=गच्छन्ति यस्मिंस्तं मार्गम् (**अश्वाः**) आशुगामिनः ॥ २१ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यद्येऽन्यादय इवेर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः शूरणासो दिव्यासोऽत्या अश्वाः श्रेणिशो हंसा इव यतन्ते दिव्यमज्मं समाक्षिषुस्तान् यूयं प्राप्नुत ॥ २१ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यत्**= **येऽग्न्यादय इवेर्मान्तासः** ईर्मः=प्रेरितः स्थितिप्रान्तो येषान्ते **सिलिकमध्यमासः** सिलिकः=संलग्नो मध्यदेशो येषान्ते **शूरणासः** सद्यो रणो=युद्धविजयो येभ्यस्ते **दिव्यासः** प्राप्तदिव्यशिक्षाः **अत्याः** सतत-गामिनः **अश्वाः** आशुगामिनः **श्रेणिशः** बद्धपङ्क्तयः **हंसा इव** हंसवद् गन्तारः **यतन्ते, दिव्यं** शुद्धम् **अज्मम्** अजन्ति=गच्छन्ति यस्मिंस्तं मार्गं **समाक्षिषुः** प्राप्नुयुः ; **तान् यूयं प्राप्नुत** ॥ २९ । २१ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! (यत्) जो अग्नि आदि के समान (ईर्मान्तासः) ईर्म=प्रेरित स्थितिप्रान्त=पीठ वाले, (सिलिकमध्यमासः) सिलिक=संलग्न मध्य देश वाले, (शूरणासः) शीघ्र रण=युद्ध में विजय करने वाले, (दिव्यासः) दिव्य शिक्षा को प्राप्त, (अत्याः) सतत गति करने वाले, (अश्वाः) आशुगामी घोड़े हैं—वे (श्रेणिशः) पंक्तिबद्ध (हंसाः) हंसों के (इव) समान (यतन्ते) चेष्टा करते हैं; (दिव्यम्) शुद्ध (अज्मम्) मार्ग को (समाक्षिषुः) प्राप्त करते हैं; उन्हें तुम प्राप्त करो ॥ २९ । २१ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालंकारः । येषां राज-पुरुषाणां सुशिक्षिता दिव्यगतयो, विजयहेतवः, सद्योगामिनः, प्रेरणामनुगन्तारो, हंसवद् गतयोऽश्वा; अग्न्यादयः पदार्था इव कार्यसाधकाः सन्ति, ते सर्वत्र विजयमाप्नुवन्ति ॥ २९ । २१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलंकार है । जिन राजपुरुषों के पास सुशिक्षित, दिव्य गति वाले, विजय के हेतु, शीघ्रगामी, प्रेरणा के अनुसार चलने वाले, हंस के समान गति वाले घोड़े—अग्नि आदि पदार्थों के समान कार्यसाधक होते हैं; वे सर्वत्र विजय प्राप्त करते हैं ॥ २९ । २१ ॥

भा० पदार्थः—दिव्यासः=सुशिक्षिता दिव्यगतयः । शूरणासः=विजयहेतवः । अत्याः= सद्यो गामिनः । ईर्मान्तासः=प्रेरणामनुगन्तारः । हंसा=हंसवद्गतयः ॥

भाष्यसार—१. **कैसे राजपुरुष विजय प्राप्त करते हैं**—जिन राजपुरुषों के पास—अग्नि आदि तुल्य वेगवान् एवं प्रेरित स्थितिप्रान्त=पीठ वाले, संलग्न (सूक्ष्म) मध्य देश वाले, शीघ्र युद्ध-विजय करने वाले, दिव्यशिक्षा को प्राप्त, सतत गमन करने वाले, प्रेरणा के अनुसार चलने वाले, पंक्तिबद्ध

हंसों के तुल्य गति वाले— घोड़े होते हैं वे शुद्ध मार्ग को प्राप्त होते हैं तथा सर्वत्र विजय प्राप्त करते हैं।

२. अलंकार—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि राजपुरुषों के घोड़े हंसों के समान सुन्दर गति वाले हों ॥ २९ । २१ ॥

भार्गवो जमदग्निः । **वायवः**=**वाताः** । विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

मनुष्यैरनित्यं शरीरं प्राप्य किं कार्यमित्याह ॥

मनुष्यों को अनित्य शरीर पाके क्या करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

तव शरीरं पतयिष्ण्वर्वन्तवं चित्तं वातऽइव ध्रजीमान् ।
तव शृङ्गाणि विष्ठिता पुरुत्रारण्येषु जर्भुराणा चरन्ति ॥ २२ ॥

पदार्थः—(**तव**) (**शरीरम्**) (**पतयिष्णु**) पतनशीलम् (**अर्वन्**) अश्व इव वर्त्तमान (**तव**) (**चित्तम्**) अन्तःकरणम् (**वात इव**) वायुवत् (**ध्रजीमान्**) वेगवान् (**तव**) (**शृङ्गाणि**) शृङ्गाणी-वोच्छ्रतानि सेनाङ्गानि (**विष्ठिता**) विशेषेण स्थितानि (**पुरुत्रा**) पुरुष=बहुषु (**अरण्येषु**) जङ्गलेषु (**जर्भुराणा**) भृशं पोषकानि धारकाणि (**चरन्ति**) गच्छन्ति ॥ २२ ॥

अन्वयः—हे अर्वन् वीर ! यस्य तव पतयिष्णु शरीरं तव चित्तं वात इव ध्रजीमान् तव पुरुत्रारण्येषु जर्भुराणा विष्ठिता शृङ्गाणि चरन्ति स त्वं धर्ममाचर ॥ २२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे अर्वन् ! वीर अश्व इव वर्त्तमान ! **यस्य तव पतयिष्णु** पतनशीलं **शरीरं, तव चित्तम्** अन्तःकरणं **वात इव** वायुवद् **ध्रजीमान्** वेगवान्, **तव पुरुत्रा** पुरुषु=बहुषु **अरण्येषु** जङ्गलेषु **जर्भुराणा** भृशं पोषकानि धारकाणि **विष्ठिता** विशेषेण स्थितानि **शृङ्गाणि** शृङ्गाणी-वोच्छ्रतानि सेनाङ्गानि **चरन्ति** गच्छन्ति; **स त्वं धर्ममाचर** ॥ २९ । २२ ॥

भाषार्थ—हे (अर्वन्) अश्व के तुल्य वेगवान् वीर ! जो (तव) तेरा (पतयिष्णु) पतन-शील=अनित्य (शरीरम्) शरीर है; जो (तव) तेरा (चित्तम्) अन्तःकरण (वातऽइव) वायु के समान (ध्रजीमान्) वेगवान् है; (तव) तेरा (पुरुत्रा) बहुत (अरण्येषु) जंगलों में (जर्भुराणा) अत्यन्त पोषक एवं धारक, (विष्ठिता) विशेष रूप से स्थित, (शृंगाणि) शृंगों के तुल्य ऊँचे सेना-अङ्ग (चरन्ति) चलते हैं; सो तू—धर्म का आचरण कर ॥२९।२२॥

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः । ये मनुष्या अनित्येषु शरीरेषु स्थित्वा नित्यानि कार्याणि साध्नुवन्ति, तेऽतुलसुखमाप्नुवन्ति । ये वनस्थाः पशव इव भृत्याः सेनाश्च वर्त्तन्ते तेऽश्ववत् सद्योगामिनो भूत्वा, शत्रून् विजेतुं शक्नुवन्ति ॥ २९ । २२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलंकार है। जो मनुष्य अनित्य शरीरों में रहकर नित्य कार्यों को सिद्ध करते हैं, वे अतुल सुख को प्राप्त करते हैं। जो वनस्थ पशुओं के तुल्य भृत्य लोग और सेनाएँ हैं वे अश्व के समान शीघ्रगामी होकर शत्रुओं को विजय कर सकती हैं ॥ २९ । २२ ॥

भा० पदार्थः—पतयिष्णु=अनित्यं शरीरम् ।

भाष्यसार—१. **मनुष्य अनित्य शरीर को प्राप्त करके क्या करें**—हे अश्व के समान वेगवान् वीर ! तेरा शरीर पतनशील है; अनित्य है। तेरा चित्त वायु के समान वेगवान है। तू अनित्य शरीर में स्थित होकर नित्य कार्यों को सिद्ध कर तथा अतुल सुख को प्राप्त कर। नाना जंगलों में

अत्यन्त पोषण एवं धारण करने वाले, विशेष रूप से स्थित, शृङ्गों के तुल्य तेरे सेना-अङ्ग विचरण करते हैं। अतः तू धर्म का आचरण कर। और जो वनस्थ पशुओं के तुल्य तेरे भृत्य और सेनाएँ हैं वे शीघ्रगामी होकर शत्रुओं को विजय करें।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' पद है; अतः उपमा अलंकार है। उपमा यह है कि चित्त वायु के समान वेगवान् है ॥ ॥ २९ । २२ ॥

भार्गवो जमदग्निः । **मनुष्याः**=**विद्वांसः** । भुरिक् पंक्तिः । पञ्चमः ॥

कीदृशा विद्वांसो हितैषिण इत्याह ॥

कैसे विद्वान् हितैषी होते हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

उप प्रागाच्छसनं वाज्यर्वा देवद्रीचा मनसा दीध्यानः ।
अजः पुरो नीयते नाभिरस्यानु पश्चात्कवयो यन्ति रेभाः ॥ २३ ॥

पदार्थः—(**उप**) सामीप्ये (**प्र**) (**अगात्**) गच्छति (**शसनम्**) शंसन्ति=हिंसन्ति यस्मिँस्तद्युद्धम् (**वाजी**) वेगवान् (**अर्वा**) गन्ताऽश्वः (**देवद्रीचा**) देवानञ्चता=प्राप्नुवता (**मनसा**) (**दीध्यानः**) दीप्यमानः सन् (**अजः**) क्षेपणशीलः (**पुरः**) (**नीयते**) (**नाभिः**) मध्यभागः (**अस्य**) (**अनु**) आनुकूल्ये (**पश्चात्**) (**कवयः**) मेधाविनः (**यन्ति**) प्राप्नुवन्ति (**रेभाः**) सर्वविद्यास्तोतारः । **रेभ इति स्तोतृना०** ॥ **निघं० ३ ॥ १६ । २३ ॥**

प्रमाणार्थ—(रेभाः) सर्वविद्यास्तोतारः । 'रेभ' यह पद निघण्टु (३ । १६) में स्तोतृ-नामों में पठित है ॥

अन्वयः—यो दीध्यानोऽजो वाज्यर्वा देवद्रीचा मनसा शसनमुपमागात् विद्वद्भिरस्य नाभिः पुरो नीयते तं पश्चात् रेभाः कवयः अनुयन्ति ॥ २३ ॥

सपदार्थान्वयः—**यो दीध्यानः** दीप्यमानः सन् **अजः** क्षेपणशीलः **वाजी** वेगवान् **अर्वा** गन्ताऽश्वः, **देवद्रीचा** देवानञ्चता=प्राप्नुवता **मनसा**, **शसनं** शंसन्ति=हिंसन्ति यस्मिँस्तद्युद्धम् **उपप्रागात्** समीपे गच्छति, **विद्वद्भिरस्य नाभिः** मध्यभागः **पुरो नीयते, तं पश्चात् रेभाः** सर्वविद्यास्तोतारः **कवयः** मेधाविनः **अनु+यन्ति** अनुकूलं प्राप्नुवन्ति ॥ २९ । २३ ॥

भाषार्थ—जो (दीध्यानः) चमकता हुआ, (अजः) फेंकने वाला, (वाजी) वेगवान्, (अर्वा) गतिशील घोड़ा है; वह—(देवद्रीचा) देवों को प्राप्त (मनसा) विचार से (शसनम्) हिंसा के स्थल युद्ध को (उपप्रागात्) प्राप्त होता है; विद्वान् लोग (अस्य) इसके (नाभिः) मध्य भाग को (पुरः) आगे (नीयते) ले जाते हैं; उसके (पश्चात्) पीछे (रेभाः) सब विद्याओं के स्तोता (कवयः) मेधावी लोग—(अनु+यन्ति) अनुकूलतापूर्वक प्राप्त होते हैं ॥ २९ । २३ ॥

भावार्थः—ये विद्वांसो दिव्येन विचारेण तुरङ्गान् सुशिक्ष्य, अग्न्यादीन् संसाध्यैश्वर्यं प्राप्नुवन्ति, ते जगद्धितैषिणो भवन्ति ॥ २९ । २३ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् दिव्य विचार से घोड़ों को सुशिक्षित करके, अग्नि आदि पदार्थों को सिद्ध करके ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं; वे जगत् के हितैषी होते हैं ॥ २९ । २३ ॥

भा० पदार्थः—दीध्यानः=विद्वान् । देवद्रीचा=दिव्येन मनसा=विचारेण । शसनम्=ऐश्वर्यम् । उपप्रागात्=प्राप्नोति । कवयः=जगद्धितैषिणः ॥

भाष्यसार—**कैसे विद्वान् हितैषी होते हैं**—जो विद्वान् लोग—देदीप्यमान (चमकीला), फेंकने वाले, वेगवान्, घोड़े को दिव्य विचार से सुशिक्षित करते हैं तथा युद्ध में ले जाते हैं। इसकी नाभि अर्थात् मध्य भाग को अग्रसर करते हैं, और सब विद्याओं के स्तोता मेधावी विद्वान् इसका अनुसरण करते हैं; तथा अग्नि आदि पदार्थों को सिद्ध करके ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं, वे जगत् के हितैषी होते हैं ॥ २९ । २३ ॥

भार्गवो जमदग्निः । **मनुष्याः**=**जनाः** । निचृत्त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

के जना राज्यं शासितुमर्हन्तीत्याह ॥

कौन जन राज्यशासन करने योग्य होते हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

उप प्रागात्परमं यत्सधस्थमर्वाँ२ऽ अच्छा पितरं मातरं च ।
अद्या देवाञ्जुष्टतमो हि गम्या ऽ अथा शास्ते दाशुषे वार्याणि ॥ २४ ॥

पदार्थः—(**उप**) (**प्र**) (**अगात्**) प्राप्नोति (**परमम्**) (**यत्**) यः (**सधस्थम्**) सहस्थानम् (**अर्वान्**) ज्ञानी जनः । **अत्र नलोपाभावश्छान्दसः ।** (**अच्छ**) सम्यक् । **अत्र निपातस्य चेति दीर्घः ।** (**पितरम्**) जनकम् (**मातरम्**) जननीम् (**च**) (**अद्य**) इदानीम् । **अत्र निपातस्य चेति दीर्घः ।** (**देवान्**) विदुषः (**जुष्टतमः**) अतिशयेन सेवितः (**हि**) खलु (**गम्याः**) प्राप्नुहि (**अथ**) (**आ**) समन्तात् (**शास्ते**) इच्छति (**दाशुषे**) दात्रे (**वार्याणि**) स्वीकार्याणि भोग्यवस्तूनि ॥ २४ ॥

प्रमाणार्थ—(**अर्वान्**) ज्ञानी जनः । यहाँ प्रथमा के एकवचन में नलोप का अभाव छान्दस=वैदिक है । (**अच्छ**) यहाँ मन्त्र में 'निपातस्य च' (६ । ३ । १३६) से दीर्घ है—[**अच्छा**] । (**अद्य**) यहाँ मन्त्र में 'निपातस्य च' (६ । ३ । १३६) से दीर्घ है—[**अद्या**] ।

अन्वयः—हे विद्वन् ! यद्योऽर्वान् जुष्टतमस्सन् परमं सधस्थं पितरं मातरं देवांश्चाद्याशास्तेऽथ दाशुषे वार्याण्युपप्रागात् तं हि त्वमच्छ गम्याः ॥ २४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **विद्वन्** ! **यद्**=**योऽर्वान्** ज्ञानी जनः **जुष्टतमः** अतिशयेन सेवितः **सन्, परमं सधस्थं** सहस्थानं **पितरं** जनकं **मातरं** जननीं **देवान्** विदुषः **चाद्य** इदानीम् **आ+शास्ते** समन्तादिच्छति; **अथ—दाशुषे** दात्रे **वार्याणि** स्वीकार्याणि भोग्यवस्तूनि **उपप्रागात्** प्राप्नोति; **तं हि** खलु **अच्छ** सम्यक् **गम्याः** प्राप्नुहि ॥ २९।२४॥

भाषार्थ—हे विद्वान् ! (यत्) जो (अर्वान्) ज्ञानी जन (जुष्टतमः) अत्यन्त सेवित होकर—(परमम्) उत्तम (सधस्थम्) जन्म (पितरम्) जनक, (मातरम्) जननी और (देवान्) विद्वानों की (अद्य) अब (आ+शास्ते) सब ओर से इच्छा करता है; (अथ) और—(दाशुषे) विद्या के दाता विद्वान् के लिए (वार्याणि) स्वीकार करने योग्य भोग्य वस्तुओं को (उपप्रागात्) प्राप्त कर; (तम्) उसे (हि) निश्चय से (अच्छ) अच्छे प्रकार (गम्याः) प्राप्त कर ॥ २९ । २४ ॥

भावार्थः—ये न्यायविनयाभ्यां परोपकारान्

भावार्थ—जो मनुष्य न्याय और विनय

कुर्वन्ति, ते उत्तमं-उत्तमं जन्म, श्रेष्ठान् पदार्थान्, विद्वांसं पितरं, विदुषीः मातृश्च प्राप्य, विद्वद्भक्ता भूत्वा महत्सुखं प्राप्नुयुस्ते राज्यमनुशासितुं शक्नुयुः ॥ २९ । २४ ॥

से परोपकार करते हैं; वे उत्तम-उत्तम जन्म, श्रेष्ठ पदार्थ, विद्वान् पिता और विदुषी माता को प्राप्त कर, विद्वानों के भक्त होकर महान् सुख को प्राप्त करते हैं; वे राज्य का अनुशासन कर सकते हैं ॥ २९ । २४ ॥

भा० पदार्थः—जुष्टतमः=न्यायविनयाभ्यां परोपकारी । परमम्=उत्तमं—उत्तमम् । सधस्थम्=जन्म । वार्याणि=श्रेष्ठान् पदार्थान् । पितरम्=विद्वांसं पितरम् । मातरम्=विदुषीं मातरम् ।

भाष्यसार—**कौन राज्यशासन कर सकते हैं**—जो ज्ञानी मनुष्य अत्यन्त सेवा से युक्त अर्थात् न्याय और विनय से परोपकार करता है, उत्तम-उत्तम जन्म, विद्वान् पिता, विदुषी माता और विद्वानों की इच्छा करता है; विद्या के दाता विद्वान् के लिए स्वीकार के योग्य भोग्य वस्तुओं एवं श्रेष्ठ पदार्थों को प्राप्त करता है अर्थात् विद्वानों का भक्त होकर महान् सुख को प्राप्त करता है; वह राज्य का शासन कर सकता है ॥ २९ । २४ ॥

जमदग्निः । **विद्वान्**=**धार्मिक विद्वान्** । निचृत्त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

धार्मिकाः किं कुर्वन्त्वित्याह ॥

धर्मात्मा लोग क्या करें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

समिद्धो ऽ अद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान्यजसि जातवेदः ।
आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान्त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः ॥ २५ ॥

पदार्थः—(**समिद्धः**) सम्यक् प्रकाशितः (**अद्य**) इदानीम् (**मनुषः**) मननशीलः (**दुरोणे**) गृहे (**देवः**) विद्वान् (**देवान्**) विदुषो दिव्यगुणान् वा (**यजसि**) सङ्गच्छसे (**जातवेदः**) प्राप्तप्रज्ञ (**आ**) (**च**) (**वह**) प्राप्नुहि (**मित्रमहः**) मित्राणि महयति=पूजयति तत्संबुद्धौ (**चिकित्वान्**) विज्ञानवान् (**त्वम्**) (**दूतः**) यो दुनोति=तापयति दुष्टान्सः (**कविः**) क्रान्तप्रज्ञो मेधावी (**असि**) (**प्रचेताः**) प्रकृष्टञ्चेतः=संज्ञानमस्य सः ॥ २५ ॥

अन्वयः—हे जातवेदो मित्रमहो विद्वंस्त्वमद्य समिद्धोऽग्निरिव मनुषो देवः सन् यजसि चिकित्वान्दूतः प्रचेताः कविर्दुरोणेऽसि स त्वं देवांश्चावह ॥ २५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **जातवेदः** प्राप्तप्रज्ञ ! **मित्रमहः**=मित्राणि महयति=पूजयति तत्सम्बुद्धौ ! विद्वन् **त्वमद्य** इदानीं **समिद्धः**=**अग्निरिव** सम्यक् प्रकाशितः **मनुषः** मननशीलः **देवः** विद्वान् **सन् यजसि** सङ्गच्छसे; **चिकित्वान्** विज्ञानवान्, **दूतः** यो दुनोति=तापयति दुष्टान् सः, **प्रचेताः** प्रकृष्टं चेतः=संज्ञानमस्य सः, **कविः** क्रान्तप्रज्ञो मेधावी **दुरोणे** गृहे **असि; स त्वं देवान्** विदुषो दिव्यगुणान् वा **चाऽऽवह** प्राप्नुहि ॥ २९ । २५ ॥

भाषार्थ—हे (जातवेदः) प्रज्ञा को प्राप्त करने वाले, (मित्रमहः) मित्रों की पूजा करने वाले विद्वान् ! तू—(अद्य) अब (समिद्धः) सम्यक् प्रकाशित अग्नि के समान, (मनुषः) मननशील, (देवः) विद्वान् होकर (यजसि) विद्वानों का संग करता हैं; (चिकित्वान्) विज्ञानवान्, (दूतः) दुष्टों को तपाने वाला; (प्रचेताः) उत्तम ज्ञान वाला (कविः) क्रान्त प्रज्ञा वाला एवं मेधावी—(दुरोणे) घर में (असि) है; सो तू—(देवान्) विद्वानों वा दिव्य गुणों को (आवह) प्राप्त कर ॥ २९ । २५ ॥

भावार्थः—यथाग्निर्दीपादिरूपेण गृहाणि प्रकाशयति तथा धार्मिका विद्वांसः स्वानि कुलानि प्रदीपयन्ति, ये सर्वैः सह मित्रवद् वर्त्तन्ते त एव धार्मिकाः सन्ति ॥ २९ । २५ ॥

भावार्थ—जैसे अग्नि दीप आदि रूप में घरों को प्रकाशित करता है; वैसे धार्मिक विद्वान् अपने कुलों को प्रकाशित करते हैं। जो सब के साथ मित्रवत् वर्ताव करते हैं; वे ही धार्मिक हैं ॥२९।२५॥

भा० पदार्थः—मित्रमहः=सर्वैः सह मित्रवत् वर्त्तयितः! धार्मिकः। समिद्धः=अग्निरिव। देवः=धार्मिको विद्वान्।

भाष्यसार--**धार्मिक लोग क्या करें**—प्रज्ञा को प्राप्त, मित्रों की पूजा करने वाले धार्मिक विद्वान्--जैसे अग्नि द्वीप आदि रूप से घरों को प्रकाशित करती है; वैसे अपने कुलों को विद्या से प्रकाशित करें। उक्त विद्वान् मननशील होकर अन्य मनुष्यों का संग करे। घर में विज्ञानवान् दुष्टों को तपाने वाला, उत्तम ज्ञान वाला, क्रान्त प्रज्ञा वाला, मेधावी हो। विद्वानों वा दिव्य गुणों को प्राप्त करे। सब के साथ मित्र के समान व्यवहार करे ॥ २९ । २५ ॥

जमदग्निः। **विद्वान्=धार्मिकमनुष्यः**। निचृत्त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

धर्मात्मा लोग क्या करें, इस विषय का फिर उपदेश किया है ॥

तनू॑नपात्प॒थ ऽ ऋ॒तस्य॒ याना॒न्मध्वा॑ सम॒ञ्जन्त्स्व॑दया सुजिह्व।
मन्मा॑नि धी॒भिरु॒त य॒ज्ञमृ॒न्धन्दे॑व॒त्रा च॑ कृणुह्यध्व॒रं नः॑ ॥ २६ ॥

पदार्थः—(**तनूनपात्**) यस्तनूर्विस्तृतान् पदार्थान् न पातयति तत्सम्बुद्धौ (**पथः**) (**ऋतस्य**) सत्यस्य जलस्य वा (**यानान्**) यान्ति येषु तान् (**मध्वा**) माधुर्येण (**समञ्जन्**) सम्यक् प्रकटीकुर्वन् (**स्वदय**) आस्वादय। अत्र संहितायामिति दीर्घः। (**सुजिह्व**) शोभना जिह्वा वाग्वा यस्य तत्सम्बुद्धौ (**मन्मानि**) यानानि (**धीभिः**) प्रज्ञाभिः कर्मभिर्वा (**उत**) अपि (**यज्ञम्**) सङ्गमनीयं व्यवहारम् (**ऋन्धन्**) संसाधयन् (**देवत्रा**) देवेषु=विद्वत्सु स्थित्वा (**च**) (**कृणुहि**) कुरु (**अध्वरम्**) अहिंसनीयम् (**नः**) अस्माकम् ॥२६॥

प्रमाणार्थ—(स्वदय) यहाँ संहिता में दीर्घ है-[**स्वदया**] ॥

अन्वयः—हे सुजिह्व तनूनपात्! त्वमृतस्य यानान्पथोऽग्निरिव मध्वा समञ्जन्स्वदय धीभिर्मन्मान्युत नोध्वरं यज्ञमृन्धन्देवत्रा च कृणुहि ॥ २६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **सुजिह्व**! शोभना जिह्वा वाग्वा यस्य तत्सम्बुद्धौ! **तनूनपात्**! यस्तनूर्विस्तृतान् पदार्थान् न पातयति तत्—सम्बुद्धौ! **त्वमृतस्य** सत्यस्य जलस्य वा **यानान्** यान्ति येषु तान् **पथः=अग्निरिव मध्वा** माधुर्येण **समञ्जन्** सम्यक् प्रकटीकुर्वन् **स्वदय** आस्वादय। **धीभिः** प्रज्ञाभिः कर्मभिर्वा **मन्मानि** यानानि **उत** अपि **नः** अस्माकम् **अध्वरम्** अहिंसनीयं **यज्ञं सङ्गमनीयं** व्यवहारं **ऋन्धन्** संसाधयन्, **देवत्रा** देवेषु=विद्वत्सु स्थित्वा **च कृणुहि** कुरु ॥ २९ । २६ ॥

भाषार्थ—हे (सुजिह्व) उत्तम जिह्वा अथवा वाणी वाले, (तनूनपात्) तनू=विस्तृत पदार्थों को पतित न करने वाले धार्मिक मनुष्य–तू--(ऋतस्य) सत्य अथवा जल के (यानान्) यानों को (पथः) अग्नि के तुल्य (मध्वा) माधुर्य से (समञ्जन्) सम्यक् प्रकट करता हुआ (स्वदय) आस्वादन कर। (धीभिः) प्रज्ञा वा कर्मों के द्वारा (मन्मानि) यानों को (उत) तथा (नः) हमारे (अध्वरम्) हिंसा के अयोग्य, (यज्ञम्) संगम के योग्य व्यवहार को (ऋन्धन्) सिद्ध करता हुआ

(देवत्रा) विद्वानों में बैठकर उसका सेवन (कृणुहि) कर ॥ २६ । २६ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। धार्मिकैर्मनुष्यैः पथ्यौषधसेवनेन सुप्रकाशितैर्भवितव्यम्। आप्तेषु विद्वत्सु स्थित्वा, प्रज्ञाः प्राप्याहिंसाख्यो धर्मः सेवितव्यः ॥ २६ । २६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। धार्मिक मनुष्य पथ्य औषध के सेवन से सुप्रकाशित हों। आप्त विद्वानों में बैठकर, प्रज्ञा को प्राप्त करके, अहिंसा नामक धर्म का सेवन करें ॥ २६ । २६ ॥

भा० पदार्थः—सुजिह्व=धार्मिकमनुष्य !। तनूनपात्=धार्मिकमनुष्यः !। पथः=पथ्यम्। मध्वा=औषधसेवनेन। समञ्जन्=सुप्रकाशितो भवन्। देवत्रा=आप्तेषु विद्वत्सु स्थित्वा। अध्वरम्=अहिंसाख्यम्। यज्ञम्=धर्मम् ॥

भाष्यसार—**१. धार्मिक लोग क्या करें**—उत्तम जिह्वा वा वाणी वाले, विस्तृत पदार्थों को पतित न करने वाले धार्मिक विद्वान्—सत्य के मार्गों को अग्नि के तुल्य मधुरता से प्रकट करें, और स्वयं भी उनका आस्वादन करें। पथ्य एवं सोम आदि औषध के सेवन से सुप्रकाशित हों। प्रज्ञा वा कर्मों से यानों का निर्माण करें। आप्त विद्वानों में स्थित होकर प्रज्ञा को प्राप्त करें तथा अहिंसा नामक यज्ञ=धर्म को सिद्ध करें; उसका सेवन करें।

२. अलंकार—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि धार्मिक विद्वान् लोग सत्य के मार्गों को अग्नि के समान प्रकाशित करें ॥ २६ । २६ ॥

जमदग्निः। **विद्वान्=धार्मिक विद्वान्**। त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

धार्मिक लोग क्या करें, इसका फिर उपदेश किया है ॥

नराशꣳसस्य महिमानमेषामुप स्तोषाम यजतस्य यज्ञैः।
ये सुक्रतवः शुचयो धियन्धाः स्वदन्ति देवाऽउभयानि हव्या ॥ २७ ॥

पदार्थः—(**नराशंसस्य**) नरैः प्रशंसितस्य (**महिमानम्**) महत्वम् (**एषाम्**) (**उप**) (**स्तोषाम**) प्रशंसेम। लेट् उत्तमबहुवचने रूपम्। (**यजतस्य**) सङ्गन्तुं योग्यस्य (**यज्ञैः**) सङ्गादिलक्षणैः (**ये**) (**सुक्रतवः**) शोभनप्रज्ञाकर्माणः (**शुचयः**) पवित्राः (**धियन्धाः**) ये श्रेष्ठां प्रज्ञामुत्तमं कर्म दधति ते (**स्वदन्ति**) भुञ्जते (**देवाः**) विद्वांसः (**उभयानि**) शरीरात्मसुखकराणि (**हव्या**) हव्यानि=अत्तुमर्हाणि ॥ २७ ॥

प्रमाणार्थ—(**स्तोषाम**) यह लेट् लकार उत्तम पुरुष बहुवचन में रूप है ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा वयं ये सुक्रतवः शुचयो धियन्धा देवा उभयानि हव्या स्वदन्त्येषां यज्ञैर्नराशंसस्य यजतस्य व्यवहारस्य महिमानमुप स्तोषाम तथा यूयमपि कुरुत ॥ २७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **यथा वयं**—**ये सुक्रतवः** शोभनप्रज्ञाकर्माणः, **शुचयः** पवित्राः **धियन्धाः** ये श्रेष्ठां प्रज्ञामुत्तमं कर्म दधति ते, **देवाः**

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग—जो (सुक्रतवः) उत्तम प्रज्ञा और कर्म वाले, (शुचयः) पवित्र, (धियन्धाः) श्रेष्ठ प्रज्ञा और उत्तम

विद्वांसः, **उभयानि** शरीरात्मसुखकराणि **हव्या** हव्यानि=अत्तुमर्हाणि **स्वदन्ति** भुञ्जते, **एषां यज्ञैः** सङ्गादिलक्षणैः **नराशंसस्य** नरैः प्रशंसितस्य **यजतस्य**=**व्यवहारस्य** सङ्गन्तुं योग्यस्य, **महिमानं** महत्त्वम् **उपस्तोषाम** प्रशंसेम; **तथा यूयमपि कुरुत** ।। २६ । २७ ।।

कर्म को धारण करने वाले (देवाः) विद्वान् लोग—(उभयानि) शरीर और आत्मा दोनों के सुखकारी (हव्या) खाने योग्य पदार्थों को (स्वदन्ति) खाते हैं; जिनके (यज्ञैः) संग आदि यज्ञों के द्वारा (नराशंसस्य) नरों से प्रशंसित (यजतस्य) संगति के योग्य व्यवहार के (महिमानम्) महत्त्व की (उपस्तोषाम) प्रशंसा करते हैं;—वैसे तुम भी करो ।। २६ । २७ ।।

भावार्थः--अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये स्वयं शुद्धाः प्राज्ञा वेदशास्त्रविदो न भवन्ति, तेऽन्यानपि विदुषः, पवित्रान् कर्त्तुं न शक्नुवन्ति।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। जो स्वयं शुद्ध, विद्वान् एवं वेद-शास्त्र के ज्ञाता नहीं होते; वे अन्यों को भी विद्वान् एवं पवित्र नहीं कर सकते।

येषां यादृशा गुणा, यादृशानि कर्माणि स्युस्तानि धर्मात्मभिर्यथावत् प्रशंसितव्यानि ।। २६ । २७ ।।

जिनके जैसे गुण एवं जैसे कर्म हों उन कर्मों की धर्मात्मा लोग यथावत् प्रशंसा करें ।। २६।२७ ।।

भा० पदार्थः—शुचयः=शुद्धाः। सुक्रतवः=प्राज्ञाः। देवाः=वेदशास्त्रविदः।

भाष्यसार—१. **धार्मिक लोग क्या करें**—धार्मिक विद्वानों को चाहिए कि वे--जो उत्तम प्रज्ञा वा कर्मों वाले, पवित्र, श्रेष्ठ प्रज्ञा एवं उत्तम कर्म को धारण करने वाले विद्वान् शरीर और आत्मा के लिए सुखकारी भोज्य पदार्थों का भक्षण करते हैं; उनके संग आदि रूप यज्ञ से, नरों से प्रशंसित व्यवहार की प्रशंसा करें। ये धार्मिक विद्वान् स्वयं शुद्ध, प्राज्ञ=विद्वान् और वेदशास्त्र के ज्ञाता होकर अन्यों को भी विद्वान् तथा पवित्र बनावें ।।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि धार्मिक विद्वानों के तुल्य अन्य मनुष्य भी मन्त्रोक्त विद्वानों की प्रशंसा करें ।। २६ । २७ ।।

जमदग्निः। **अग्निः**=**पवित्रात्मा विद्वान्**। स्वराड्बृहती। मध्यमः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

धार्मिक लोग क्या करें, इसका फिर उपदेश किया है ।।

आजुह्वा॑न ऽ ईड्यो॒ वन्द्य॒श्चा या॑ह्यग्ने॒ वसु॑भिः स॒जोषा॑ः।
त्वं दे॒वाना॑मसि यह्व होता॒ स ऽ ए॑नान्यक्षीषि॒तो यजी॑यान् ।। २८ ।।

पदार्थः—(**आजुह्वानः**) समन्तात् स्पर्द्धमानः (**ईड्यः**) प्रशंसितुं योग्यः (**वन्द्यः**) नमस्करणीयः (**च**) (**आ**) (**याहि**) आगच्छ (**अग्ने**) पावकवत्पवित्र विद्वन्! (**वसुभिः**) वासहेतुभूतैर्विद्वद्भिस्सह (**सजोषाः**) समानप्रीतिसेविनः (**त्वम्**) (**देवानाम्**) विदुषाम् (**असि**) (**यह्व**) महागुणविशिष्ट। **यह्व इति महन्नाम० ।। निघं० ३ । ३ ।।** (**होता**) दाता (**सः**) (**एनान्**) (**यक्षि**) सङ्गच्छ (**इषितः**) प्रेरितः (**यजीयान्**) अतिशयेन यष्टा=सङ्गन्ता ।। २८ ।।

प्रमाणार्थ—(यह्व) महागुणविशिष्ट 'यह्व' यह पद निघण्टु (३ । ३) में महत्-नामों में पठित है—महत्=महान् ॥

अन्वयः—हे यह्वाग्ने ! यस्त्वं देवानां होता यजीयानसि । इषितः सन्नेनान् यक्षि स त्वं वसुभिः सह सजोषा आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्चैतानायाहि ॥ २८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **यह्व** महागुण-विशिष्ट ! **अग्ने** पावकवत्पवित्र—विद्वन् ! **यस्त्वं देवानां** विदुषां **होता** दाता **यजीयान्** अतिशयेन यष्टा=सङ्गन्ता **असि, इषितः** प्रेरितः **सन्नेनान् यक्षि** सङ्गच्छ, **स त्वं वसुभिः** वासहेतुभूतैर्विद्वद्भिस्सह **सजोषाः** समानप्रीतिसेविनः **आजुह्वानः** समन्तात् स्पर्द्धमानः, **ईड्यः** प्रशंसितुं योग्यः, **वन्द्यः** नमस्करणीयः **चैतानायाहि** आगच्छ ॥ २६ । २८ ॥

भाषार्थ—हे (यह्व) महान् गुणों से युक्त, (अग्ने) अग्नि के तुल्य पवित्र विद्वान् ! जो तू—(देवानाम्) विद्वानों को (होता) विद्या को दान करने वाला तथा (यजीयान्) अत्यन्त यष्टा=सङ्ग करने वाला है; (इषितः) प्रेरित होकर (एनान्) इनका (यक्षि) संग करता है; सो तू—(वसुभिः) वास के हेतु 'वसु' नामक विद्वानों के साथ—(सजोषाः) समान रूप से प्रीति सेवा करने वाले, (आजुह्वानः) सब ओर से कामना करने वाले (ईड्यः) प्रशंसा के योग्य और (वन्द्यः) नमस्कार करने योग्य पुरुष हैं; उनके पास (आयाहि) आ ॥ २६ । २८ ॥

भावार्थः—ये मनुष्याः पवित्रात्मनां प्रशंसितानां विदुषां संगेन स्वयं पवित्रात्मानो भवेयुः, ते धर्मात्मानः सन्तः सर्वत्र सत्कृताः स्युः ॥२६।२८॥

भावार्थ—जो मनुष्य पवित्र आत्मा वाले, प्रशंसित विद्वानों के संग से स्वयं पवित्र-आत्मा होते हैं; वे धर्मात्मा होकर सर्वत्र सत्कृत होते हैं ॥ २६ । २८ ॥

भा० पदार्थः—अग्ने=पवित्रात्मन् ! । देवानाम्=प्रशंसितानां विदुषाम् । सजोषाः=धर्मात्मानः । ईड्यः=सत्कृतः ॥

भाष्यसार—**धार्मिक लोग क्या करें**—महान् गुणों से युक्त, अग्नि के तुल्य पवित्र धार्मिक विद्वान्—विद्वानों को दान करने वाला तथा उनका अत्यन्त सङ्ग करने वाला हो । इनसे शुभ कर्मों में प्रेरणा प्राप्त करे । और जो 'वसु' नामक विद्वानों के साथ प्रीति और उनकी सेवा करने वाले, सब ओर से स्पर्द्धा=कामना करने वाले, प्रशंसा के योग्य तथा नमस्कार करने योग्य मनुष्य हैं उन को प्राप्त करे । जो मनुष्य पवित्रात्मा, प्रशंसित विद्वानों के सङ्ग से स्वयं पवित्रात्मा होते हैं; वे धर्मात्मा होकर सर्वत्र सत्कार को प्राप्त होते हैं ॥ २६ । २८ ॥ ●

जमदग्निः । **अन्तरिक्षः**=**आकाशवद् व्यापकं ब्रह्म** । भुरिक् पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

धर्मात्मा लोग क्या करें, इसका फिर उपदेश किया है ॥

प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते ऽ अग्रे ऽ अह्नाम् ।
व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो ऽ अदितये स्योनम् ॥ २९ ॥

पदार्थः—(**प्राचीनम्**) प्राक्तनम् (**बर्हिः**) अन्तरिक्षवद्व्यापकं ब्रह्म (**प्रदिशा**) प्रकृष्टया दिशा=निर्देशेन (**पृथिव्याः**) भूमेः (**वस्तोः**) दिनात् (**अस्याः**) (**वृज्यते**) त्यज्यते (**अग्रे**) प्रातःसमये (**अह्नाम्**) दिनानाम् (**वि**) (**उ**) (**प्रथते**) प्रकटयति (**वितरम्**) विशेषेण सन्तारकम् (**वरीयः**) अतिशयेन वरणीयं=वरम् (**देवेभ्यः**) विद्वद्भ्यः (**अदितये**) अविनाशिने (**स्योनम्**) सुखम् ॥ २९ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यदस्याः पृथिव्या मध्ये प्राचीनं बर्हिर्वस्तोर्वृज्यते अह्नामग्रे देवेभ्य उ अदितये वितरं वरीयः स्योनं विप्रथते तद्यूयं प्रदिशा विजानीत प्राप्नुत च ॥ २९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! **यदस्याः पृथिव्याः** भूमेः **मध्ये प्राचीनं** प्राक्तनं **बर्हिः** अन्तरिक्षवद् व्यापकं ब्रह्म, **वस्तोः** दिनाद् **वृज्यते** त्यज्यते, **अह्नां** दिनानाम् **अग्रे** प्रातः समये **देवेभ्यः** विद्वद्भ्यः **उ अदितये** अविनाशिने **वितरं** विशेषेण सन्तारकं **वरीयः** अतिशयेन वरणीयं=वरं **स्योनं** सुखं **विप्रथते** प्रकटयति, **तद्यूयं प्रदिशा** प्रकृष्टया दिशा=निर्देशेन **विजानीत; प्राप्नुत च** ॥ २९।२९ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो (अस्याः) इस (पृथिव्याः) पृथिवी के मध्य में (प्राचीनम्) पुराना, (बर्हिः) आकाश के समान व्यापक ब्रह्म है, जो (वस्तोः) दिन आदि काल से (वृज्यते) त्यक्त है, वह (अह्नाम्) दिनों की (अग्रे) प्रातः वेला में (देवेभ्यः) विद्वानों (उ) और (अदितये) अविनाशी आत्मा के लिए (वितरम्) विशेष रूप से दुःख से तारने वाले (वरीयः) अत्यन्त वरण करने योग्य (स्योनम्) सुख को (वि+प्रथते) प्रकट करता है; उसे तुम (प्रदिशा) उत्तम निर्देश से जानो और प्राप्त करो ॥ २९ । २९ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । ये विद्वद्भ्यः सुखं दद्युस्ते सर्वोत्तमं सुखं लभेरन् । यथाऽऽकाशं सर्वासु दिक्षु, पृथिव्यादिषु च व्याप्तमस्ति, तथा जगदीश्वरः सर्वत्र व्याप्तोऽस्ति ।

ये—तमीदृशं परमात्मानं प्रातरुपासते ते धर्मात्मानः सन्तो विस्तीर्णसुखा जायन्ते ॥२९।२९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । जो विद्वानों को सुख देते हैं; वे सर्वोत्तम सुख को प्राप्त करते हैं । जैसे आकाश सब दिशाओं और पृथिवी आदि में व्याप्त है; वैसे जगदीश्वर सर्वत्र व्याप्त है ।

जो उस उक्त परमात्मा की प्रातः उपासना करते हैं; वे धर्मात्मा होकर विस्तीर्ण सुख वाले होते हैं ॥ २९ । २९ ॥

भा० पदार्थः—बर्हिः=यथाऽऽकाशं सर्वासु दिक्षु व्याप्तमस्ति तथा जगदीश्वरः सर्वत्र व्याप्तोऽस्ति ।

भाष्यसार—१. **धार्मिक लोग क्या करें**—जो इस पृथिवी पर प्राचीन, आकाश के समान सब दिशाओं में और पृथिवी आदि में व्यापक ब्रह्म है; वह दिन आदि काल-बन्धन से पृथक् है । दिनों के अग्र भाग अर्थात् प्रातः वेला में उपासना करने से विद्वानों और अविनाशी आत्मा के लिए भवसागर से तारने वाले, वरण करने योग्य सुख को प्रकट करता है । धार्मिक लोग इस ब्रह्म की प्रातः उपासना करके विस्तीर्ण सुख को प्राप्त करें । विद्वानों को भी सुख देकर इस सर्वोत्तम सुख को प्राप्त करें ।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । उपमा यह है कि ब्रह्म आकाश के समान सर्वत्र व्यापक है ॥ २९ । २९ ॥

जमदग्निः । स्विष्टम्ः=स्पष्टम् । निचृत्त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनः स्त्रीपुरुषौ किं कुर्यातामित्याह ॥

फिर स्त्री पुरुष क्या करें, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

व्यचस्वतीरुर्विया वि श्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः ।
देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः ॥ ३० ॥

पदार्थः—(**व्यचस्वतीः**) शुभगुणेषु व्याप्तिमतीः (**उर्विया**) बहुत्वेन (**वि**) (**श्रयन्ताम्**) सेवन्ताम् (**पतिभ्यः**) गृहीतपाणिभ्यः (**न**) इव (**जनयः**) जायाः (**शुम्भमानाः**) सुशोभायुक्ताः (**देवीः**) देदीप्यमानाः (**द्वारः**) द्वारोऽवकाशरूपाः (**बृहतीः**) महतीः (**विश्वमिन्वाः**) विश्वव्यवहारव्यापिन्यः (**देवेभ्यः**) दिव्यगुणेभ्यः (**भवत**) (**सुप्रायणाः**) सुष्ठुप्रकृष्टमयनं=गृहं यासु ताः ॥ ३० ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा उर्विया व्यचस्वतीर्बृहतीर्विश्वमिन्वाः सुप्रायणा देवीर्द्वारो नेव पतिभ्यो देवेभ्यः शुम्भमाना जनयः सर्वान् स्वस्वपतीन् विश्रयन्तां तथा यूयं सर्वविद्यासु व्यापका भवत ॥३०॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यथा उर्विया** बहुत्वेन **व्यचस्वतीः** शुभगुणेषु व्याप्तिमतीः, **बृहतीः** महतीः, **विश्वमिन्वाः** विश्वव्यवहारव्यापिन्यः, **सुप्रायणाः** सुष्ठुप्रकृष्टमयनं=गृहं यासु ताः, **देवीः** देदीप्यमानाः, **द्वारः** द्वारोऽवकाशरूपाः **न=इव**, **पतिभ्यः** गृहीतपाणिभ्यः **देवेभ्यः** दिव्यगुणेभ्यः, **शुम्भमानाः** सुशोभायुक्ताः **जनयः** जायाः, **सर्वान् स्वस्वपतीन् विश्रयन्तां** सेवन्तां, **तथा यूयं सर्वविद्यासु व्यापका भवत** ॥ २९ । ३० ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे—(उर्विया) अधिकता से (व्यचस्वतीः) शुभगुणों में व्याप्ति वाली, (बृहतीः) महान्, (विश्वमिन्वाः) सब व्यवहार में व्यापक, (सुप्रायणाः) अत्युत्तम घरों से युक्त, (देवीः) प्रकाश से देदीप्यमान (द्वारः) अवकाश रूप दिशाओं के (न) तुल्य—(पतिभ्यः) पाणि-ग्रहण करने वाले (देवभ्यः) दिव्यगुणों से युक्त पतियों के लिए (शुम्भमानाः) सुशोभा से युक्त (जनयः) जाया=पत्नियाँ—अपने-अपने सब पतियों की (विश्रयन्ताम्) सेवा करती हैं; वैसे तुम—सब विद्याओं में व्यापक बनो ॥ २९ । ३० ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारः यथा—व्यापिका दिशोऽवकाशप्रदानेन सर्वेषां व्यवहारसाधकत्वेनानन्दप्रदाः सन्ति, तथैव—परस्परस्मिन् प्रीताः स्त्रीपुरुषा दिव्यानि सुखानि लब्ध्वाऽन्येषां हितकराः स्युः ॥ २९ । ३० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। जैसे—व्यापक दिशाएँ अवकाश प्रदान से सब मनुष्यों के व्यवहार की साधक होने से आनन्द प्रदान करने वाली हैं; वैसे ही—परस्पर में प्रसन्न स्त्री-पुरुष दिव्य सुखों को प्राप्त करके अन्यों के हितकर बनें ॥ २९ । ३० ॥

भा० पदार्थः—व्यचस्वतीः=व्यापिकाः । द्वारः=अवकाशप्रदाः । विश्वमिन्वाः=सर्वेषां व्यवहारसाधिकाः ।

भाष्यसार—**१. स्त्री-पुरुष क्या करें**—दिशाएँ अधिकता से शुभगुणों में व्याप्तिमान्, महान् सब व्यवहारों में व्यापक, अत्युत्तम घरों से युक्त, प्रकाश से देदीप्यमान और द्वार अर्थात् अवकाश रूप हैं। इन दिशाओं के तुल्य दिव्य गुणों से युक्त अपने पतियों के लिए सुशोभा से युक्त होकर सेवा करें। परस्पर प्रीतियुक्त होकर दिव्य सुखों को प्राप्त करें तथा अन्यों के लिए भी हितकारी हों।

२. अलंकार—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि स्त्रियाँ दिशाओं के तुल्य व्यवहार-साधक तथा आनन्द प्रदान करने वाली हों ॥ २९ । ३० ॥

जमदग्निः । स्त्रियः=स्त्रियाविव राजप्रजे । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथ राजप्रजाधर्ममाह ॥

अब राजा और प्रजा के धर्म का उपदेश किया जाता है ॥

आ सुष्वयन्ती यजते ऽ उपाके ऽ उषासानक्ता सदतां नि योनौ ।
दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे ऽ अधि श्रियꣳ शुक्रपिशं दधाने ॥ ३१ ॥

पदार्थः—(**आ**) समन्तात् (**सुष्वयन्ती**) सुष्ठुशयाने इव । अत्र वर्णव्यत्ययेन पस्य स्थाने यः । (**यजते**) सङ्गच्छते (**उपाके**) सन्निहिते (**उषासानक्ता**) रात्रिदिने (**सदताम्**) गच्छतः (**नि**) नितराम् (**योनौ**) कालाख्ये कारणे (**दिव्ये**) दिव्यगुणकर्मस्वभावे (**योषणे**) स्त्रियाविव (**बृहती**) महान्त्यौ (**सुरुक्मे**) सुशोभमाने (**अधि**) उपरि (**श्रियम्**) शोभां लक्ष्मीं वा (**शुक्रपिशम्**) शुक्रं=भास्वरं पिशं=तद्विपरीतं कृष्णं च (**दधाने**) धारयन्त्यौ ॥ ३१ ॥

प्रमाणार्थ—(**सुस्वयन्ती**) सुष्ठु शयाने इव । यहाँ वर्णव्यत्यय से 'प' के स्थान में 'य' है । [**सुष्वपन्ती**] ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! यदि दिव्ये योषणे इव सुरुक्मे बृहती अधिश्रियं शुक्रपिशं च दधाने सुष्वयन्ती उपाके उषासानक्ता योनौ न्या सदतां ते भवान् यजते तहर्यतुलां श्रियं प्राप्नुयात् ॥ ३१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! यदि दिव्ये दिव्यगुणकर्मस्वभावे **योषणे** स्त्रियौ **इव**, **सुरुक्मे** सुशोभमाने, **बृहती** महान्त्यौ, **अधि** उपरि **श्रियं** शोभां लक्ष्मीं वा **शुक्रपिशं** शुक्रं=भास्वरं पिशं=तद्विपरीतं कृष्णं च **च दधाने** धारयन्त्यौ, **सुष्वयन्ती** सुष्ठुशयाने इव, **उपाके** सन्निहिते **उषासानक्ता** रात्रिदिने **योनौ** कालाख्ये कारणे **नि+आ+सदतां** नितरां समन्ताद् गच्छतः; **ते भवान् यजते** सङ्गच्छते, **तहर्यतुलां श्रियं** शोभां लक्ष्मीं वा **प्राप्नुयात्** ॥ २९ । ३१ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् ! यदि—(दिव्ये) दिव्य गुण-कर्म-स्वभाव वाले, (योषणे) दो स्त्रियों के तुल्य, (सुरुक्मे) सुशोभित, (बृहती) बड़े, (अधि) उच्च (श्रियम्) शोभा वा लक्ष्मी को और (शुक्रपिशम्) शुक्र=श्वेत तथा पिश=कृष्ण रूप को (दधाने) धारण करने वाले, (सुष्वयन्ती) अच्छे प्रकार मानो शयन करने वाले, (उपाके) सन्निहित=निकट (उषासानक्ता) रात और दिन—(योनौ) काल नामक कारण में (नि+आ+सदताम्) सर्वथा सब ओर से जाते हैं;—उनका आप (यजते) संग करते हो तो अतुल (श्रियम्) शोभा वा लक्ष्मी को प्राप्त कर सकते हो ॥२९।३१॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । हे मनुष्याः ! यथा—कालेन सह वर्त्तमाने रात्रिदिने परस्परेण सम्बद्धे विलक्षकस्वरूपेण वर्त्तेते तथा—राजप्रजे परस्परं प्रीत्या वर्त्तेयाताम् ॥ २९ । ३१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे काल के साथ वर्तमान रात और दिन परस्पर सम्बद्ध होकर विलक्षक=अद्भुत स्वरूप से वर्तमान हैं; वैसे—

राजा और प्रजा परस्पर प्रीतिपूर्वक वर्ताव करें ॥ २९ । ३१ ॥

भा० पदार्थः—उपाके=कालेन सह वर्त्तमाने / परस्परेण सम्बद्धे ॥

भाष्यसार—१. राजा और प्रजा का धर्म—जैसे दिव्य गुण, कर्म, स्वभाव वाली दो स्त्रियों के तुल्य, सुशोभा से युक्त, महान्, उच्च शोभा वा लक्ष्मी को तथा श्वेत और कृष्ण रूप को धारण करने वाले, उत्तम शयन के तुल्य सुखदायक, सन्निहित (निकटवर्ती) रात और दिन—काल नामक कारण में निरन्तर गति करते हैं, काल के साथ वर्तमान हैं; परस्पर सम्बद्ध हैं, अपने विलक्षण (अद्भुत) स्वरूप के साथ वर्तमान हैं; वैसे राजा और प्रजाजन परस्पर प्रीति से वर्ताव करें।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त हैं; अतः वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि राजा और प्रजाजन दिन और रात्रि के समान परस्पर सम्बद्ध होकर प्रीतिपूर्वक वर्ताव करें ॥ २९ । ३१ ॥

जमदग्निः । **विद्वांसः**=शिल्पिनः । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथ शिल्पिभिः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

अब शिल्पी लोगों को क्या करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै ।
प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥ ३२ ॥

पदार्थः—(**दैव्या**) देवेषु कुशलौ (**होतारा**) दातारौ (**प्रथमा**) प्रख्यातौ (**सुवाचा**) प्रशस्तवाचौ (**मिमाना**) विदधतौ (**यज्ञम्**) सङ्गतिमयम् (**मनुषः**) मनुष्यान् (**यजध्यै**) यष्टुम् (**प्रचोदयन्ता**) प्रेरयन्तौ (**विदथेषु**) विज्ञानेषु (**कारू**) शिल्पिनौ (**प्राचीनम्**) प्राक्तनम् (**ज्योतिः**) शिल्पविद्याप्रकाशम् (**प्रदिशा**) वेदादिशास्त्रप्रदेशेन=निर्देशेन प्रमाणेन (**दिशन्ता**) उपदिशन्तौ ॥ ३२ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः यौ दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं यजध्यै मनुषो विदथेषु प्रचोदयन्ता प्रदिशा प्राचीनं ज्योतिर्दिशन्ता कारू भवेतां ताभ्यां शिल्पविज्ञानशास्त्रमध्येयम् ॥ ३२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **यौ दैव्या** देवेषु कुशलौ, **होतारा** दातारौ, **प्रथमा** प्रख्यातौ, **सुवाचा** प्रशस्तवाचौ, **मिमाना** विदधतौ, **यज्ञं** सङ्गतिमयं **यजध्यै** यष्टुं, **मनुषः** मनुष्यान् **विदथेषु** विज्ञानेषु **प्रचोदयन्ता** प्रेरयन्तौ, **प्रदिशा** वेदादिशास्त्रप्रदेशेन=निदेशेन प्रमाणेन **प्राचीनं** प्राक्तनं **ज्योतिः** शिल्पविद्याप्रकाशं **दिशन्ता** उपदिशन्तौ **कारू** शिल्पिनौ **भवेतां; ताभ्यां शिल्पविज्ञानशास्त्रमध्येयम्** ॥ २९ । ३२ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो—(दैव्या) देवों में कुशल, (होतारा) दाता, (प्रथमा) विख्यात, (सुवाचा) प्रशस्त वाणी वाले (मिमाना) निर्माण करने वाले, (यज्ञम्) संगति मय (यजध्यै) यज्ञ करने के लिए (मनुषः) मनुष्यों को (विदथेषु) विज्ञानों में (प्रचोदयन्ता) प्रेरणा करने वाले—(प्रदिशा) वेदादि शास्त्रों के प्रमाण से (प्राचीनम्) प्राचीन (ज्योतिः) शिल्प-विद्या के प्रकाश का (दिशन्ता) उपदेश करने वाले (कारू) शिल्पी लोग हों; उनसे शिल्प-विज्ञानशास्त्र का अध्ययन करो ॥ २९ । ३२ ॥

भावार्थः—अत्र कारुशब्दे द्विवचनमध्यापक-हस्तक्रियाशिक्षकाभिप्रायम् ।

भावार्थ—यहाँ 'कारू' शब्द में द्विवचन—अध्यापक और हस्त-क्रिया के शिक्षक के अभिप्राय से है ।

ये शिल्पिनः स्युस्ते यावद् विजानीयुस्तावत्सर्व-मन्येभ्यः शिक्षयेयुः, यतः—उत्तरोत्तरं विद्या-सन्ततिर्वर्धेत ।। २९ । ३२ ।।

जो शिल्पी लोग हैं वे जितना जानते हैं उतना सब अन्य लोगों को सिखलावें; जिससे उत्तरोत्तर विद्यासन्तति की वृद्धि हो ।। २९ । ३२ ।।

भाष्यसार—**शिल्पी लोग क्या करें**—देवों में कुशल; शिल्प-विद्या के दाता; शिल्प कार्य में प्रख्यात; प्रशस्त वाणी वाले; भवन आदि का निर्माण करने वाले; संगतिमय यज्ञ को करने के लिए मनुष्यों को विज्ञानों में प्रेरणा करने वाले; वेदादि शास्त्रों के प्रमाण से, प्राचीन शिल्प-विद्या के प्रकाश का उपदेश करने वाले दो शिल्पी जन—जितना शिल्प जानें उस सब का अन्यों को उपदेश करें, सिखलावें जिससे उत्तरोत्तर विद्या-सन्तति की वृद्धि हो ।

यहाँ 'कारू' शब्द में जो द्विवचन है उसका अभिप्राय यह है कि एक शिल्पी अध्यापक हो और एक हस्त-क्रिया का शिक्षक हो ।। २९ । ३२ ।। ●

जमदग्निः । **वाक्**=**शिल्पविद्या** । भुरिक् पङ्क्तिः । पञ्चमः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

शिल्पी लोगों को क्या करना चाहिए, उसका फिर उपदेश किया है ।।

आ नो॑ य॒ज्ञं भार॑ती॒ तूय॑मे॒त्विडा॑ मनु॒ष्वदि॒ह चे॒तय॑न्ती ।
ति॒स्रो दे॒वीर्ब॒र्हिरेद॑ᳫं स्यो॒नᳪं सर॑स्वती॒ स्वप॑सः सदन्तु ।। ३३ ।।

पदार्थः—(**आ**) समन्तात् (**नः**) अस्मभ्यम् (**यज्ञम्**) शिल्पविद्याप्रकाशमयम् (**भारती**) एतद्विद्याधारिका क्रिया (**तूयम्**) वर्द्धकम् (**एतु**) प्राप्नोतु (**इडा**) सुशिक्षिता मधुरा वाक् (**मनुष्वत्**) मानववत् (**इह**) अस्मिन् शिल्पविद्याग्रहणव्यवहारे (**चेतयन्ती**) प्रज्ञापयन्ती (**तिस्रः**) (**देवीः**) देदीप्यमानाः (**बर्हिः**) प्रवृद्धम् (**आ**) (**इदम्**) (**स्योनम्**) सुखकारकम् (**सरस्वती**) विज्ञानवती प्रज्ञा (**स्वपसः**) सुष्ठ्वपांसि=कर्माणि येषान्तान् (**सदन्तु**) प्रापयन्तु ।। ३३ ।।

अन्वयः—हे मनुष्याः ! या भारती इडा सरस्वतीह नस्तूयं यज्ञं मनुष्वच्चेतयन्त्यस्मानैतु इमास्तिस्रो देवीरिदं बर्हिः स्योनं स्वपसोऽस्मानासदन्तु ।। ३३ ।।

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **या भारती** एतद्विद्याधारिका क्रिया, **इडा** सुशिक्षिता मधुरा वाक्, **सरस्वती** विज्ञानवती प्रज्ञा, **इह** अस्मिन् शिल्पविद्याग्रहणव्यवहारे **नः** अस्मभ्यं **तूयं** वर्द्धकं **यज्ञं** शिल्पविद्याप्रकाशमयं **मनुष्वत्** मानववत् **चेतयन्ती** प्रज्ञापयन्ती **अस्मानैतु** समन्तात् प्राप्नोतु ! **इमास्तिस्रो देवीः** देदीप्यमानाः **इदं बर्हिः** प्रवृद्धं **स्योनं** सुखकारकं **स्वपसः** सुष्ठ्वपांसि=कर्माणि

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो—(भारती) शिल्प-विद्या को धारण करने वाली क्रिया, (इडा) सुशिक्षित मधुर वाणी, (सरस्वती) विज्ञानवती प्रज्ञा=बुद्धि—(इह) इस शिल्प विद्या के ग्रहण रूप व्यवहार में (नः) हमारे लिए (तूयम्) वर्द्धक (यज्ञम्) शिल्प-विद्या के प्रकाशमय यज्ञ को (मनुष्वत्) मानव के समान (चेतयन्ती) बतलाती हुई हमें (आ+एतु) सब ओर से प्राप्त करावे ।

येषान्तान् **अस्मान्** **आ+सदन्तु** समन्तात्प्रापयन्तु ॥ २६ । ३३ ॥

ये (तिस्रः) तीन (देवीः) विद्या से देदीप्यमान वाणियाँ (इदम्) इस (बर्हिः) बड़े (स्योनम्) सुखकारक पदार्थ को (स्वपसः) उत्तम कर्मों वाले हम लोगों को—(आ+सदन्तु) सब ओर से प्राप्त करावें ॥ २६ । ३३ ॥

भावार्थः—अत्र शिल्पव्यवहारे, सुष्ठूपदेश—क्रियाविधिज्ञापनं विद्याधारणं चेष्यते, यदीमाः—तिस्रो रीतीर्मनुष्या गृह्णीयुस्तर्हि महत्सुखमश्नुवीरन् ॥ २६ । ३३ ॥

भावार्थ—इस शिल्प व्यवहार में उत्तम उपदेश, क्रिया-विधि का बतलाना और विद्या को धारण करना अभीष्ट है। यदि इन तीन रीतियों को मनुष्य ग्रहण करें तो महान् सुख को प्राप्त कर सकते हैं ॥ २६ । ३३ ॥

भा० पदार्थः—इह=शिल्पव्यवहारे । इडा=सुष्ठूपदेशः । सरस्वती=क्रियाविधिज्ञापनम् । भारती=विद्याधारणम् । देवीः=रीतीः । बर्हिः=महत् । स्योनम्=सुखम् । आसदन्तु=अश्नुवीरन् ॥

भाष्यसार—**शिल्पी लोग क्या करें**—विद्वान् शिल्पी लोग—शिल्प-विद्या की धारक क्रिया, सुशिक्षित मधुर वाणी, विज्ञानवती प्रज्ञा=बुद्धि को इस शिल्प-विद्या के ग्रहण रूप व्यवहार में मनुष्यों को प्राप्त करावें। क्योंकि ये वर्द्धक, शिल्प-विद्या के प्रकाशमय यज्ञ को एक मनुष्य के तुल्य बतलाने वाली हैं। इस शिल्प व्यवहार में उत्तम उपदेश (इडा), क्रियाविधि का ज्ञाप (सरस्वती) और शिल्प-विद्या का धारण (भारती) अभीष्ट है; आवश्यक है। शिल्प-विद्या से देदीप्यमान इन तीन वाणियों एवं रीतियों को मनुष्य ग्रहण करें जिससे महान् सुख और उत्तम कर्म करने वाले शिल्पी विद्वानों को प्राप्त हों ॥ २६ । ३३ ॥ ●

जमदग्निः । **विद्वान्=शिल्पी** । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

शिल्पी लोगों को क्या करना चाहिए, इसका फिर उपदेश किया है ॥

यऽइमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिꣳशद्भुवनानि विश्वा ।
तमद्य होतरिषितो यजीयान्देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान् ॥ ३४ ॥

पदार्थः—(**यः**) विद्वान् (**इमे**) प्रत्यक्षे (**द्यावापृथिवी**) विद्युद्भूमी (**जनित्री**) अनेककार्योत्पादिके (**रूपैः**) विचित्राभिराहुतिभिः (**अपिंशत्**) अवयवयति (**भुवनानि**) लोकान् (**विश्वा**) विश्वानि=सर्वान् (**तम्**) (**अद्य**) इदानीम् (**होतः**) आदातः (**इषितः**) प्रेरितः (**यजीयान्**) अतिशयेन यष्टा=सङ्गन्ता (**देवम्**) (**त्वष्टारम्**) वियोगसंयोगादिकर्त्तारम् (**इह**) अस्मिन् व्यवहारे (**यक्षि**) सङ्गच्छसे (**विद्वान्**) सर्वतो विद्याप्तः ॥ ३४ ॥

अन्वयः—हे होतर्यो यजीयानिषितो विद्वान्यथेश्वर इह रूपैरिमे जनित्री द्यावापृथिवी विश्वा भुवनान्यपिंशत् तथा तं त्वष्टारं देवमद्य त्वं यक्षि तस्मात्सत्कर्त्तव्योऽसि ॥ ३४ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे होतः** ! आदातः ! **यः** विद्वान् **यजीयान्** अतिशयेन यष्टा=सङ्गन्ता

भाषार्थ—हे (होतः) शिल्प विद्या को ग्रहण करने वाले विद्वान् ! (यः) जो (यजीयान्)

इषितः प्रेरितः **विद्वान्** सर्वतो विद्याप्तः, **यथेश्वर इह** अस्मिन् व्यवहारे **रूपैः** विचित्राभिराहुतिभिः **इमे** प्रत्यक्षे **जनित्री** अनेककार्योत्पादिके **द्यावापृथिवी** विद्युद्भूमी **विश्वा** विश्वानि=सर्वान् **भुवनानि** लोकान् **अपिंशत्** अवयवयति; **तथा तं त्वष्टारं** वियोगसंयोगादिकर्त्तारं **देवमद्य** इदानीं **त्वं यक्षि** सङ्गच्छसे; **तस्मात् सत्कर्त्तव्योऽसि** ॥ २९ । ३४ ॥

अत्यन्त संगति करने वाला, (इषितः) प्रेरणा से युक्त (विद्वान्) सब ओर से विद्या को प्राप्त विद्वान्—जैसे ईश्वर (इह) इस रचना व्यवहार में (रूपैः) विचित्र आहुतियों से (इमे) इन (जनित्री) अनेक कार्यों की उत्पादक (द्यावापृथिवी) विद्युत् और भूमि तथा (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकों को (अपिंशत्) अवयव रूप में बनाता है--वैसे (तम्) उस (त्वष्टारम्) वियोग-संयोग आदि के कर्त्ता (देवम्) विद्वान् का (अद्य) अब तू (यक्षि) संग करता है; अतः सत्कार के योग्य है ॥ २९।३४ ॥

भावार्थः — अत्र वाचकलुप्तोपमालंकारः । मनुष्यैरस्यां सृष्टौ परमात्मनो रचनाविशेषान् विज्ञाय, तथैव शिल्पविद्या संप्रयोज्या ॥ २९ । ३४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। मनुष्य इस सृष्टि में परमात्मा के रचना-विशेषों को जानकर वैसे ही शिल्प-विद्या का संप्रयोग करें ॥ २९ । ३४ ॥

भा० पदार्थः—इह=अस्यां सृष्टौ ।

भाष्यसार—**१. शिल्पी लोग क्या करें**—शिल्प-विद्या को ग्रहण करने वाले विद्वान् अत्यन्त सङ्गति करने वाले, प्रेरणा से युक्त, सब ओर से विद्या को प्राप्त करने वाले हों। जैसे ईश्वर इस सृष्टि में विचित्र आहुतियों से—इन अनेक कार्यों के उत्पादक विद्युत् और भूमि का तथा सब लोकों का अवयव रूप में निर्माण करता है--वैसे वे वियोग-संयोग करने वाले विद्वान् का सङ्ग करें। परमात्मा के रचना विशेषों को जानकर शिल्प-विद्या का संप्रयोग करें। उक्त शिल्पी विद्वानों का सब सत्कार करें।

२. **अलंकार**--इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि शिल्पी विद्वान् ईश्वर की रचना को जानकर उसके तुल्य रचना विशेष करें ॥ २९ । ३४ ॥

जमदग्निः । **अग्निः**=**पावकः** । निचृत्त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

प्रत्यृतु होतव्यमित्याह ॥

प्रत्येक ऋतु में होम करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

उपावसृज त्मन्या समञ्जन्देवानां पाथऽ ऋतुथा हवींषि ।
वनस्पतिः शमिता देवोऽ अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन ॥ ३५ ॥

पदार्थः—(**उपावसृज**) यथावद्देहि (**त्मन्या**) आत्मना (**समञ्जन्**) सम्यक् मिश्रीकुर्वन् (**देवानाम्**) विदुषाम् (**पाथः**) भोग्यमन्नादिकम् (**ऋतुथा**) ऋतौ (**हवींषि**) आदातव्यानि (**वनस्पतिः**) किरणानां स्वामी (**शमिता**) शान्तिकरः (**देवः**) दिव्यगुणो मेघः (**अग्निः**) पावकः (**स्वदन्तु**) प्राप्नुवन्तु (**हव्यम्**) अत्तव्यम् (**मधुना**) मधुरादिरसेन (**घृतेन**) घृतादिना ॥ ३५ ॥

अन्वयः—हे विद्वंस्त्वं देवानां पाथो मधुना घृतेन समञ्जन् त्मन्या हवींषि ऋतुथोपावसृज तेन त्वया दत्तं हव्यं वनस्पतिः शमिता देवोऽग्निश्च स्वदन्तु ॥ ३५ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे विद्वन् ! त्वं देवानां** विदुषां **पाथः** भोग्यमन्नादिकं **मधुना** मधुरादि-रसेन **घृतेन** घृतादिना **समञ्जन्** सम्यक् मिश्रीकुर्वन्, **त्मन्या** आत्मना **हवींषि** आदातव्यानि **ऋतुथा** ऋतौ **उपावसृज** यथावद्देहि, **तेन त्वया दत्तं हव्यम्** अत्तव्यं, **वनस्पतिः** किरणानां स्वामी **शमिता** शान्तिकरः **देवः** दिव्यगुणो मेघः **अग्निः** पावकः **च स्वदन्तु** प्राप्नुवन्तु ॥ २९ । ३५ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् ! तू—(देवानाम्) विद्वानों के (पाथः) भोग्य अन्न आदि को (मधुना) मधुर आदि रस एवं (घृतेन) घृत आदि से (समञ्जन्) सम्यक् मिलाता हुआ—(त्मन्या) आत्मा से (हवींषि) ग्रहण करने योग्य हवियों का (ऋतुथा) ऋतु अनुसार (उपावसृज) यथावत् होम कर जिससे तुझसे प्रदत्त (हव्यम्) खाने योग्य पदार्थ को (वनस्पतिः) किरणों का स्वामी सूर्य, (शमिता) शान्ति करने वाला (देवः) दिव्य गुणों से युक्त मेघ और (अग्निः) अग्नि भी (स्वदन्तु) प्राप्त करें ॥ २५ । ३५ ॥

भावार्थः—मनुष्यैः शुद्धानां पदार्थाना-मृतावृतौ होमः कर्त्तव्यो येन तद्धुतं द्रव्यं सूक्ष्मं भूत्वा, क्रमेणाग्निसूर्य-मेघान् प्राप्य, वृष्टिद्वारा सर्वोपकारि स्यात् ॥ २९ । ३५ ॥

भावार्थ—मनुष्य शुद्ध पदार्थों का प्रत्येक ऋतु में होम करें। जिससे वह होम किया हुआ द्रव्य सूक्ष्म होकर क्रमशः अग्नि, सूर्य और मेघ को प्राप्त होकर वर्षा के द्वारा सब का उपकारी हो ॥ २९ । ३५ ॥

भा० पदार्थः—पाथः=शुद्धं पदार्थम् । ऋतुथा=ऋतावृतौ । हव्यम्=हुतं द्रव्यम् । वनस्पतिः=सूर्यः ।

भाष्यसार—**प्रत्येक ऋतु में होम करें**—विद्वान् मनुष्यों को उचित है कि वे—विद्वानों के भोज्य अन्न आदि पदार्थों को मधुर आदि रस तथा घृतादि के साथ मिश्रित करके आत्मिक भावना से हवियों को प्रत्येक ऋतु में प्रदान करें, शुद्ध पदार्थों का प्रत्येक ऋतु में होम करें। अग्नि में होम किया हुआ द्रव्य सूक्ष्म हो जाता है तथा वह क्रम में किरणों के स्वामी सूर्य तथा शान्तिकारक दिव्य गुणों से युक्त मेघ को प्राप्त होता है और वर्षा के द्वारा सब का उपकारक होता है ॥ २९ । ३५ ॥

जमदग्निः । **अग्निः= विद्वान्** । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

कीदृग्जनः सर्वानानन्दयतीत्याह ॥

कैसा मनुष्य सब को आनन्दित करता है, यह उपदेश किया है ॥

सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत्पुरोगाः ।
अस्य होतुः प्रदिश्यृतस्य वाचि स्वाहाकृतꣳ हविरदन्तु देवाः ॥ ३६ ॥

पदार्थः—(**सद्यः**) शीघ्रम् (**जातः**) प्रकटीभूतः सन् (**वि**) विशेषेण (**अमिमीत**) मिमीते (**यज्ञम्**) अनेकविधव्यवहारम् (**अग्निः**) विद्याप्रकाशितो विद्वान् (**देवानाम्**) विदुषाम् (**अभवत्**) भवति (**पुरोगाः**) अग्रगामी (**अस्य**) (**होतुः**) आदातुः (**प्रदिशि**) प्रदिशन्ति यया तस्याम् (**ऋतस्य**) सत्यस्य (**वाचि**)

वाण्याम् (**स्वाहाकृतम्**) सत्येन निष्पादितं कृतहोमं वा (**हविः**) अत्तव्यमन्नादिकम् (**अदन्तु**) भुञ्जताम् (**देवाः**) विद्वांसः ।। ३६ ।।

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यस्सद्यो जातोऽग्निर्होतुर्ऋतस्य प्रदिशि वाचि यज्ञं व्यमिमीत देवानां पुरोगा अभवदस्य स्वाहाकृतं हविर्देवा अदन्तु तं सर्वोपरि विराजमानं मन्यध्वम् ।। ३६ ।।

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **यस्सद्यः** शीघ्रं **जातः** प्रकटीभूतः सन् **अग्निः** विद्या-प्रकाशितो विद्वान्, **होतुः** आदातुः **ऋतस्य** सत्यस्य **प्रदिशि** प्रदिशन्ति यया तस्यां **वाचि** वाण्यां **यज्ञम्** अनेकविधव्यवहारं **वि+मिमीत** विशेषेण मिमीते, **देवानां** विदुषां **पुरोगाः** अग्रगामी **अभवत्** भवति, **अस्य स्वाहाकृतं** सत्येन निष्पादितं कृतहोमं वा **हविः** अत्तव्यमन्नादिकं **देवाः** विद्वांसः **अदन्तु** भुञ्जतां, **तं सर्वोपरि विराजमानं मन्यध्वम्** ।। २९ । ३६ ।।

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो (सद्यः) शीघ्र (जातः) प्रकट हुआ (अग्निः) विद्या से प्रकाशित विद्वान्—(होतुः) ग्रहण करने योग्य (ऋतस्य) सत्य की (प्रदिशि) निर्देश करने वाली (वाचि) वाणी में (यज्ञम्) अनेक प्रकार के व्यवहार का (वि+मिमीत) विशेष निर्माण करता है;—(देवानाम्) विद्वानों का (पुरोगाः) अग्रगामी (अभवत्) होता है;—(अस्य) इसके (स्वाहाकृतम्) सत्य से निष्पादित कर्म वा होम किए हुए (हविः) भोज्य अन्नादि का (देवाः) विद्वान् लोग (अदन्तु) भक्षण करते हैं;—उसे सर्वोपरि विराजमान मानो ।। २९ । ३६ ।।

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यथा सूर्यः सर्वेषां प्रकाशकानां मध्ये प्रकाशकोऽस्ति, तथा यो विद्वत्सु विद्वान् सर्वोपकारी जनो भवति, स एव सर्वेषामानन्दस्य भोजयिता भवति ।। २९।३६ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । जैसे सूर्य सब प्रकाशकों के मध्य में प्रकाशक है; वैसे जो विद्वानों में विद्वान् सर्वोपकारी मनुष्य है; वही सब को आनन्द का भोग कराने वाला होता है ।। २९ । ३६ ।।

भा० पदार्थः—अग्निः=सूर्यः । विद्वान् सर्वोपकारी जनः ।

भाष्यसार—१. **कैसा मनुष्य सब को आनन्दित करता है**—जो शीघ्र प्रकट होने वाला, विद्या से प्रकाशित विद्वान्—ग्रहण करने योग्य सत्य की निर्देशक वाणी में अनेक प्रकार के व्यवहार रूप यज्ञ का विशेष निर्माण करता है; जो सब देवों=विद्वानों का अग्रगामी होता है; अर्थात् जैसे सूर्य सब प्रकाशकों के मध्य में प्रकाशक है; वैसे जो विद्वानों में सर्वोपरि विद्वान् मनुष्य होता है; उसके सत्य से निष्पादित वा होम किए हुए अन्न आदि को विद्वान् लोग खाते हैं; अर्थात् वही सब को आनन्द का भोग कराने वाला होता है । ऐसे विद्वान् को सब मनुष्य सर्वोपरि विराजमान मानें ।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । उपमा यह है कि मन्त्रोक्त विद्वान् को सब मनुष्य सूर्य के तुल्य सर्वोपरि विराजमान मानें ।। २९। ३६ ।।

मधुच्छन्दाः । **विद्वांसः=आप्ताः** । गायत्री । षड्जः ।।

आप्ताः कीदृशा इत्याह ।।

आप्त लोग कैसे होते हैं, यह उपदेश किया है ।।

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या ऽ अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥ ३७ ॥

पदार्थः—(**केतुम्**) प्रज्ञाम् । केतुरिति प्रज्ञाना० ॥ निघं० ३ । ९ ॥ (**कृण्वन्**) कुर्वन् (**अकेतवे**) अविद्यमानप्रज्ञाय जनाय (**पेशः**) हिरण्यम् । पेश इति हिरण्यना० ॥ निघं० १ । २ ॥ (**मर्याः**) मनुष्याः (**अपेशसे**) अविद्यमानं पेशः=सुवर्णं यस्य तस्मै नराय (**सम्**) सम्यक् (**उषद्भिः**) य उषन्ति=हविर्दहन्ति तैर्यजमानैः (**अजायथाः**) ॥ ३७ ॥

प्रमाणार्थ—(**केतुम्**) प्रज्ञाम् । 'केतु' यह पद निघण्टु (३ । ९) में प्रज्ञा—नामों में पठित है; प्रज्ञा=बुद्धि । (**पेशः**) हिरण्यम् । 'पेश' यह पद निघण्टु (१ । २) में हिरण्य-नामों में पठित है; हिरण्य=सुवर्ण ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! यथा मर्या अपेशसे पेशोऽकेतवे केतुं कुर्वन्ति तैरुषद्भिः सह प्रज्ञां श्रियं च कृण्वन् सँस्त्वं समजायथाः ॥ ३७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **विद्वन्** ! **यथा मर्याः** मनुष्याः **अपेशसे** अविद्यमानं पेशः=सुवर्णं यस्य तस्मै नराय **पेशः** हिरण्यम्, **अकेतवे** अविद्यमान-प्रज्ञाय जनाय **केतुं** प्रज्ञां **कुर्वन्ति**, **तैरुषद्भिः** य उषन्ति=हविर्दहन्ति तैर्यजमानैः **सह प्रज्ञां श्रियं च कृण्वन्** कुर्वन् **सँस्त्वं सम्+अजायथाः** सम्यक् (अजायथाः) ॥ २९ । ३७ ॥

भाषार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (मर्याः) मनुष्य (अपेशसे) पेश=सुवर्ण से रहित नर के लिए (पेशः) सुवर्ण, (अकेतवे) प्रज्ञा से रहित जन के लिए (केतुम्) प्रज्ञा को (कुर्वन्ति) सिद्ध करते हैं; उन (उषद्भिः) हवि का दहन करने वाले यजमानों के साथ प्रज्ञा और श्री को (कृण्वन्) सिद्ध करता हुआ तू—(सम्+अजायथाः) अच्छे प्रकार तैय्यार हो ॥ २९ । ३७ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । त एव आप्ता ये स्वात्मवदन्येषामपि सुखमिच्छन्ति तेषामेव संगेन विद्याप्राप्तिरविद्याहानिः, श्रियो लाभो, दरिद्रताया विनाशश्च भवति ॥ २९ । ३७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । वे ही आप्त पुरुष हैं; जो अपने आत्मा के तुल्य अन्यों के भी सुख की इच्छा करते हैं; उन्हीं के संग से विद्या की प्राप्ति, अविद्या की हानि, श्री=लक्ष्मी का लाभ, और दरिद्रता का विनाश होता है ॥ २९ । ३७ ॥

भा० पदार्थः—पेशः=दरिद्रताया विनाशः ।

अन्यत्र व्याख्यात— हे विज्ञान स्वरूप, अज्ञान के दूर करनेहारे ब्रह्मन् ! आप (केतुं कृण्वन्) हम सब मनुष्यों के आत्माओं में ज्ञान का प्रकाश करते रहिए; तथा (अकेतवे) अज्ञान और (अपेशसे) दरिद्रता के दूर करने के अर्थ, विज्ञान, धन और चक्रवर्ती राज्य धर्मात्माओं को देते रहिए, कि जिससे (मर्य्याः) जो आप के उपासक लोग हैं वे कभी दुःख को न प्राप्त हों ।

(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, अधिकारानधिकारविषयः) ॥

भाष्यसार—**१. आप्त लोग कैसे होते हैं**—आप्त मनुष्य—जिसके पास सुवर्ण आदि पदार्थ नहीं होते उस नर को उक्त पदार्थ प्रदान करते हैं । जिसके पास प्रज्ञा=बुद्धि नहीं होती उस जन को बुद्धि प्रदान करते हैं । जो अपने आत्मा के समान अन्यों को भी सुख देना चाहते हैं वे ही मनुष्य आप्त कहलाते हैं । उन्हीं के संग से विद्या की प्राप्ति और अविद्या की हानि होती है । श्री=लक्ष्मी का लाभ और दरिद्रता का विनाश होता है ।

२. अलंकार—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है, अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि सब विद्वान् मन्त्रोक्त आप्त विद्वानों के समान आचरण करें ॥२९।३७॥

भारद्वाजः । **विद्वान्**=स्पष्टम् । निचृत्त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

वीरा राजपुरुषा किं कुर्युरित्याह ॥

वीर राजपुरुष क्या करें, यह उपदेश किया है ॥

जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद्वर्मी याति समदामुपस्थे ।
अनाविद्धया तन्वा जय त्वꣳ स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्त्तु ॥ ३८ ॥

पदार्थः—(**जीमूतस्येव**) यथा मेघस्य (**भवति**) (**प्रतीकम्**) येन प्रत्येति तल्लिङ्गम् (**यत्**) (**वर्मी**) कवचवान् (**याति**) प्राप्नोति (**समदाम्**) सह मदेन=हर्षेण वर्त्तन्ते यत्र युद्धेषु तेषाम् (**उपस्थे**) समीपे (**अनाविद्धया**) अप्राप्तक्षतया (**तन्वा**) शरीरेण (**जय**) (**त्वम्**) (**सः**) (**त्वा**) त्वाम् (**वर्मणः**) रक्षणस्य (**महिमा**) महत्त्वम् (**पिपर्त्तु**) पालयतु ॥ ३८ ॥

अन्वयः—यद्यो वर्म्यनाविद्धया तन्वा समदामुपस्थे प्रतीकं याति स जीमूतस्येव विद्युद्भवति । हे विद्वन् ! यत्त्वा वर्मणो महिमा पिपर्त्तु स त्वं शत्रून् जय ॥ ३८ ॥

सपदार्थान्वयः — यत्=**यो वर्मी** कवचवान् **अनाविद्धया** अप्राप्तक्षतया **तन्वा** शरीरेण, **समदां** सह मदेन=हर्षेण वर्त्तन्ते यत्र युद्धेषु तेषाम् **उपस्थे** समीपे, **प्रतीकं** येन प्रत्येति तल्लिङ्गं **याति** प्राप्नोति, **स जीमूतस्येव** यथा मेघस्य **विद्युद् भवति** ।

हे **विद्वन्** ! **यत्त्वा** त्वां **वर्मणः** रक्षणस्य **महिमा** महत्त्वं **पिपर्त्तु** पालयतु, **स त्वं शत्रून् जय** ॥२९।३८॥

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः । यथा मेघस्य सेना सूर्य प्रकाशमावृणोति तथा कवचादिना शरीरमावृणुयात् ।

यथा समीपस्थयोः सूर्यमेघयोः संग्रामो भवति, तथैव वीरै राजपुरुषैर्योद्धव्यम् । सर्वतो रक्षाऽपि विधेया ॥ २९ । ३८ ॥

भाषार्थ—(यत्) जो (वर्मी) कवच वाला वीर—(अनाविद्धया) क्षत=घाव से रहित (तन्वा) शरीर से (समदाम्) मद=हर्ष से युक्त युद्धों में विद्यमान सैनिकों के (उपस्थे) समीप (प्रतीकम्) प्रतीति कारक चिह्न विशेष को (याति) प्राप्त करता है;—वह (जीमूतस्येव) मेघ की विद्युत् के तुल्य होता है ।

हे विद्वन् ! जो (त्वा) तुझे (वर्मणः) रक्षा का (महिमा) महत्त्व (पिपर्त्तु) पालित करता है; सो तू शत्रुओं को जीत ॥ २९ । ३८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है। जैसे मेघ की सेना सूर्य के प्रकाश को आवृत करती है; वैसे कवच आदि से शरीर को आवृत करें।

जैसे समीपस्थ सूर्य और मेघ का संग्राम होता है; वैसे ही वीर राजपुरुष युद्ध करें। सब ओर से रक्षा भी करें ॥ २९ । ३८ ॥

भा० पदार्थः—जीमूतस्येव=यथा मेघस्य सेना सूर्यमावृणोति तथा ॥

भाष्यसार—१. **वीर राजपुरुष क्या करें**—कवच को धारण करने वाले वीर राजपुरुष—क्षत=घाव आदि को अप्राप्त शरीर के द्वारा युद्धों में प्रतीक=चिह्न विशेष को प्राप्त करें तथा मेघ की विद्युत् के समान हों। तात्पर्य यह है कि जैसे मेघ की सेना सूर्य के प्रकाश को आवृत कर लेती है;

वैसे कवच ग्रादि से शरीर को ग्रावृत करें। जैसे समीपस्थ सूर्य ग्रौर मेघ का संग्राम होता है; वैसे ही वीर राजपुरुष युद्ध करें। रक्षा के महत्त्व की पालना करें ग्रर्थात् सब ग्रोर से रक्षा भी करें ॥

२. **ग्रलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' पद है; ग्रतः वाचक लुप्तोपमा ग्रलङ्कार है। उपमा यह है कि वीर राजपुरुष—मेघ के समान कवच ग्रादि से शरीर को ग्राच्छादित करें ॥२६।३८॥

भारद्वाजः। **वीराः**=वीरराजपुरुषाः। त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

वीर राजपुरुष क्या करें, यह फिर उपदेश किया है ॥

धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम।
धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥ ३९ ॥

पदार्थः—(**धन्वना**) धनुरादिशस्त्रास्त्रविशेषेण (**गाः**) पृथिवीः (**धन्वना**)(**ग्राजिम्**) सङ्ग्रामम् ग्राजाविति सङ्ग्रामना० ॥ निघं० २। १७ ॥ (**जयेम**) (**धन्वना**) शतघ्न्यादिभिः शस्त्रास्त्रैः (**तीव्राः**) तीव्रवेगवतीः शत्रूणां सेनाः (**समदः**) मदेन सह वर्त्तमानाः (**जयेम**) (**धनुः**) शस्त्रास्त्रम् (**शत्रोः**) ग्ररेः (**ग्रपकामम्**) ग्रपगतश्चासौ कामश्च तम् (**कृणोति**) करोति (**धन्वना**) (**सर्वाः**) (**प्रदिशः**) दिशोपदिशः (**जयेम**) ॥ ३६ ॥

प्रमाणार्थ—(**ग्राजिम्**) संग्रामम्। 'ग्राजि' यह पद निघण्टु (२। १७) में संग्राम-नामों में पठित है; संग्राम=युद्ध।

अन्वयः—हे वीराः! यथा वयं यद्धनुः शत्रोरपकामं कृणोति तेन धन्वना गा धन्वनाऽऽजिं च जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम धन्वना सर्वा प्रदिशो जयेम तथा यूयमप्येतेन जयत ॥ ३६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **वीराः! यथा वयं यद् धनुः** शस्त्रास्त्रं **शत्रोः** ग्ररेः **ग्रपकामम्** ग्रपगतश्चासौ कामश्च तं **कृणोति** करोति, **तेन धन्वना** धनुरादिशस्त्रास्त्रविशेषेण **गाः** पृथिवीः **ग्राजिं** सङ्ग्रामं **च जयेम, धन्वना** शतघ्न्यादिभिः शस्त्रास्त्रैः **तीव्राः** तीव्रवेगवतीः शत्रूणां सेनाः **समदः** मदेन सह वर्त्तमानाः **जयेम, धन्वना सर्वाः प्रदिशः** दिशोपदिशः **जयेम, तथा यूयमप्येतेन जयत** ॥ २६। ३६ ॥

भाषार्थ—हे वीरो! जैसे हम लोग—जो (धनुः) शस्त्र-ग्रस्त्र (शत्रोः) शत्रु को (ग्रपकामम्) कामना रहित (कृणोति) करता है; उस (धन्वना) धनुष ग्रादि शस्त्र-ग्रस्त्र विशेष से (गाः) पृथिवी ग्रौर (ग्राजिम्) संग्राम को जीतते हैं;—(धन्वना) शतघ्नी [तोप] ग्रादि शस्त्र-ग्रस्त्रों से (तीव्राः) तीव्र वेग वाली शत्रुग्रों की (समदः) हर्षित सेनाग्रों को (जयेम) जीतते हैं;—(धन्वना) उक्त शस्त्र-ग्रस्त्रों से (सर्वाः) सब (प्रदिशः) दिशा उपदिशाग्रों को (जयेम) जीतते हैं;—वैसे तुम भी इस धनुष ग्रादि से शत्रुग्रों को जीतो ॥ २६। ३६ ॥

भावार्थः—यदि मनुष्या धनुर्वेदविज्ञान-क्रियाकुशला भवेयुस्तर्हि सर्वत्रैव तेषां विजयः प्रकाशेत।

भावार्थ—यदि मनुष्य धनुर्वेद के विज्ञान ग्रौर क्रिया में कुशल हों तो सर्वत्र ही उनका विजय प्रकाशित हो।

यदि विद्या-विनय-शौर्यादिगुणैर्भूगोलैकराज्यमिच्छेयुस्तर्हि किमप्यशक्यं न स्यात् ॥ २९ । ३९ ॥

यदि विद्या, विनय और शौर्य आदि गुणों से भूगोल के एक राज्य की इच्छा करें तो कुछ भी अशक्य नहीं है ॥ २९ । ३९ ॥

भाष्यसार—**वीर राजपुरुष क्या करें**—वीर राजपुरुष धनुष अर्थात् शस्त्र-अस्त्रों से शत्रुओं को कामना-रहित करें; गौ=पृथिवी और संग्राम को जीतें; शतघ्नी (तोप) आदि शस्त्र-अस्त्रों से तीव्र गति वाली शत्रु-सेनाओं को मस्त होकर जीतें; उक्त शस्त्र-अस्त्रों से सब दिशाओं और उपदिशाओं को जीतें।

यदि वीर राजपुरुष धनुर्वेद के विज्ञान और क्रिया में कुशल हों तो सर्वत्र ही उनका विजय हो। वे विद्या, विनय और शौर्य आदि गुणों से भूगोल के एक छत्र राज्य की कामना करें तो वह भी अशक्य नहीं है ॥ २९ । ३९ ॥ ●

भारद्वाजः । **वीराः**=वीरराजपुरुषाः । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

वीर राजपुरुष क्या करें, यह फिर उपदेश किया है ॥

वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं प्रियꣳ सखायं परिषस्वजाना ।
योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वञ्ज्या इयꣳ समने पारयन्ती ॥ ४० ॥

पदार्थः—(**वक्ष्यन्तीव**) यथा वदिष्यन्ती विदुषी स्त्री तथा (**इत्**) एव (**आगनीगन्ति**) भृशं बोधं प्रापयन्ती (**कर्णम्**) श्रुतस्तुतिम् (**प्रियम्**) कमनीयम् (**सखायम्**) सुहृद्वद्वर्त्तमानम् (**परिषस्वजाना**) परितः=सर्वतः संगं कुर्वाणा (**योषेव**) स्त्री (**शिङ्क्ते**) शब्दयति (**वितता**) विस्तृता (**अधि**) उपरि (**धन्वन्**) धन्वनि (**ज्या**) प्रत्यञ्चा (**इयम्**) (**समने**) सङ्ग्रामे (**पारयन्ती**) विजयं प्रापयन्ती ॥ ४० ॥

अन्वयः—हे वीराः ! येयं वितता धन्वन्नधि ज्या वक्ष्यन्तीवेदागनीगन्ति कर्णं प्रियं सखायं पतिं परिषस्वजाना योषेव शिङ्क्ते समने पारयन्ती वर्त्तते तान्निर्मातुं बद्धुं चालयितुं च विजानीत ॥ ४० ॥

सपदार्थान्वयः—हे **वीराः** ! **येयं वितता** विस्तृता **धन्वन्** धन्वनि **अधि** उपरि **ज्या** प्रत्यञ्चा **वक्ष्यन्तीव** यथा वदिष्यन्ती विदुषी स्त्री तथा **इत्** एव **आगनीगन्ति** भृशं बोधं प्रापयन्ती, **कर्णं** श्रुतस्तुतिं **प्रियं** कमनीयं **सखायं** सुहृद्वद्वर्त्तमानं **पतिं परिषस्वजाना** परितः=सर्वतः संगं कुर्वाणा **योषा** स्त्री **इव शिङ्क्ते** शब्दयति, **समने** सङ्ग्रामे **पारयन्ती** विजयं प्रापयन्ती **वर्त्तते, तां निर्मातुं, बद्धुं, चालयितुं च विजानीत** ॥ २९ । ४० ॥

भाषार्थ—हे वीरो ! जो यह—(वितता) विस्तृत, (धन्वनि) धनुष के (अधि) ऊपर चढ़ी हुई (ज्या) प्रत्यञ्चा=डोरी—(वक्ष्यन्तीव) उपदेश करने वाली विदुषी स्त्री के तुल्य (इत्) ही (आगनीगन्ति) अत्यन्त बोध को प्राप्त कराती हुई, (कर्णम्) स्तुति युक्त, (प्रियम्) कामना करने योग्य, (सखायम्) मित्र के तुल्य (पतिम्) पति का (परिषस्वजाना) आलिंगन करती हुई (योषा) स्त्री के तुल्य (शिङ्क्ते) शब्द करती है—(समने) संग्राम में (पारयन्ती) विजय को प्राप्त कराने वाली है; उसके निर्माण, बन्धन और चालन को तुम जानो ॥ २९ । ४० ॥

भावार्थः—अत्र द्व्युपमालङ्कारौ । यदि मनुष्या धनुर्ज्यादिशस्त्रास्त्र-रचन-सम्बन्ध-चालन-क्रिया विज्ञायेरन्, तर्हीमामुपदेशिकां मातरमिव, सुखप्रदां पत्नीं विजयसुखं च प्राप्नुयुः ॥ २९। ४० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमा अलंकार हैं। यदि मनुष्य धनुष की ज्या=डोरी आदि शस्त्र-अस्त्रों की रचना, सम्बन्ध और चालन क्रिया को जानें; तो इस उपदेशिका माता के तुल्य सुखदायक पत्नी और विजय सुख को प्राप्त हों ॥ २९ । ४० ॥

भा० पदार्थः—वक्ष्यन्तीव=उपदेशिकां मातरमिव । योषा=पत्नी ।

अन्यत्र व्याख्यात—इस मन्त्र को पढ़ के दूसरे वाम कर्ण का वेध करे; तत्पश्चात् वही वैद्य उन छिद्रों में शलाका रखे कि जिससे छिद्र पूर न जावें और ऐसी ओषधी उस पर लगावे जिससे कान पकें नहीं और शीघ्र अच्छे हो जावें (संस्कारविधि कर्णवेधसंस्कार)।

भाष्यसार—१. **वीर राजपुरुष क्या करें**—जैसे उपदेश करने वाली विदुषी स्त्री अत्यन्त बोध को प्राप्त कराती हुई शब्द करती है; अथवा कोई स्त्री स्तुति सुने हुए, कामना करने योग्य, मित्र के तुल्य पति का सब ओर से आलिंगन करती हुई शब्द करती है;—वैसे धनुष के ऊपर विस्तृत प्रत्यञ्चा (डोरी) शब्द करती है। संग्राम में विजय प्राप्त कराती है। वीर राजपुरुष उक्त प्रत्यञ्चा का निर्माण, बाँधना और चलाना सीखें। जिससे उपदेशिका माता के समान सुखदायक पत्नी और विजयसुख को प्राप्त हों।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' पद का दो बार प्रयोग है; अतः दो उपमा अलंकार हैं। प्रथम उपमा यह है कि उपदेश करने वाली विदुषी स्त्री के तुल्य धनुष की ज्या (डोरी) शब्द करती है। दूसरी उपमा यह है कि पति का आलिंगन करने वाली स्त्री के तुल्य धनुष की ज्या शब्द करती है ॥ २९ । ४० ॥

भारद्वाजः । **वीराः**=वीरराजपुरुषाः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

वीर राजपुरुष क्या करें, यह फिर उपदेश किया है ॥

ते ऽआचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे ।
अप शत्रून्विध्यताᳬ संविदाने ऽआर्त्नी ऽइमे विष्फुरन्ती ऽअमित्रान् ॥ ४१ ॥

पदार्थः—(ते) धनुर्ज्ये (**आचरन्ती**) समन्तात्प्राप्नुवत्यौ (**समनेव**) सम्यक् प्राण इव प्रिया (**योषा**) विदुषी स्त्री (**मातेव**) जननीव (**पुत्रम्**) सन्तानम् (**बिभृताम्**) धरेताम् (**उपस्थे**) समीपे (**अप**) दूरीकरणे (**शत्रून्**) अरीन् (**विध्यताम्**) ताडयेताम् (**संविदाने**) सम्यग्विज्ञाननिमित्ते (**आर्त्नी**) प्राप्यमाणे (**इमे**) (**विष्फुरन्ती**) विशेषेण चालयन्त्यौ (**अमित्रान्**) मित्रभावरहितान् ॥ ४१ ॥

अन्वयः—हे वीराः ! ये योषा समनेव पतिं मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे आचरन्ती शत्रूनप विध्यतामिमे संविदाने आर्त्नी अमित्रान् विस्फुरन्ती वर्त्तेते ते यथावत् संप्रयुङ्ग्ध्वम् ॥ ४१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे वीराः ! ये—योषा विदुषी स्त्री समनेव सम्यक् प्राण इव प्रिया पतिं, मातेव जननीव पुत्रं सन्तानं बिभृतां धरेताम्;

भाषार्थ—हे वीरो ! जो (योषा) विदुषी (समनेव) सम्यक् प्राण के तुल्य प्रिया स्त्री पति को, (मातेव) जननी के तुल्य (पुत्रम्) सन्तान को

उपस्थे समीपे **आचरन्ती** समन्तात्प्राप्नुवत्यौ **शत्रून्** अरीन् **अप+विध्यताम्** दूरे ताडयेताम् ।

इमे संविदाने सम्यग्विज्ञाननिमित्ते **आर्त्नी** प्राप्यमाणे **अमित्रान्** मित्रभावरहितान् **विष्फुरन्ती** विशेषेण चालयन्त्यौ **वर्त्तेते, ते** धनुर्ज्ये **यथावत् संप्रयुङ्ग्ध्वम्** ॥ २९ । ४१ ॥

भावार्थः—अत्र द्वावुपमालङ्कारौ । यथा हृद्या स्त्री पतिं, विदुषी च माता पुत्रं सम्पोषयतः, तथा—धनुर्ज्ये संविदितक्रिये शत्रून् पराजित्य वीरान् प्रसादयतः ॥ २९ । ४१ ॥

(बिभृताम्) धारण करती हैं; (उपस्थे) समीप में (आचरन्त्यौ) प्राप्त होती हुई (शत्रून्) शत्रुओं को (अप+विध्यताम्) दूर हटाती हैं । और—

(इमे) ये (संविदाने) सम्यक् विज्ञान की निमित्त (आर्त्नी) प्राप्त होने वाली (अमित्रान्) मित्रभाव से रहित=शत्रुओं को (विष्फुरन्ती) विचलित करने वाली हैं; (ते) उन धनुष की ज्या=डोरियों का यथावत् संप्रयोग करो ॥ ४१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमा अलंकार हैं । जैसे—प्रिया स्त्री पति का और विदुषी माता पुत्रों का संपोषण करती हैं; वैसे—संविदित क्रिया वाली धनुष की डोरियाँ शत्रुओं को पराजित करके वीरों को प्रसन्न करती हैं ॥ २९ । ४१ ॥

भा० पदार्थः—योषा=हृद्या स्त्री । माता=विदुषी माता । बिभृताम्=सम्पोषयतः । संविदाने=संविदितक्रिये [धनुर्ज्ये] अमित्रान्=शत्रून् ॥

भाष्यसार—१. वीर राजपुरुष क्या करें— जैसे प्राण के तुल्य प्रिया विदुषी स्त्री अपने पति को तथा माता अपने सन्तान को धारण करती है; वैसे समीप में सब ओर से प्राप्त हुई धनुष की ज्या (डोरी) शत्रुओं को दूर ताडित करती है । सम्यक्-विज्ञान की निमित्त, प्राप्त की हुई धनुष की ज्या शत्रुओं को विचलित करती हैं । वीर राजपुरुष उनका यथावत् प्रयोग करें ।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' शब्द का दो बार प्रयोग है; अतः दो उपमा अलंकार हैं । उपमा यह है कि जैसे प्राणों के समान प्रिय विदुषी स्त्री पति का धारण-पोषण करती है, तथा विदुषी माता पुत्र का धारण-पोषण करती है; वैसे वीर राजपुरुष धनुष की ज्या को धारण करें, शत्रुओं को पराजित करके वीरों को प्रसन्न करें ॥ २९ । ४१ ॥

भारद्वाजः । **वीराः**=वीरराजपुरुषाः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

वीरराजपुरुष क्या करें, इसका फिर उपदेश किया है ॥

बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चा कृणोति समनावगत्य ।
इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः ॥ ४२ ॥

पदार्थः—(**बह्वीनाम्**) ज्यानाम् (**पिता**) पितृवद्रक्षकः (बहुः) बहुगुणः (**अस्य**) (**पुत्रः**) सन्तान इव सम्बन्धी (**चिश्चा**) चिश्चिश्चेति शब्दं (**कृणोति**) करोति (**समना**) संग्रामान् । **अत्राकारादेशः** (**अवगत्य**) (**इषुधिः**) इषवो धीयन्ते यस्मिन्त्सः (**संकाः**) समवेता विकीर्णा वा (**पृतनाः**) सेनाः (**च**) (**सर्वाः**) (**पृष्ठे**) पश्चाद्भागे (**निनद्धः**) निश्चयेन नद्धो=बद्धः (**जयति**) (**प्रसूतः**) उत्पन्नः ॥ ४२ ॥

प्रमाणार्थ—(**समना**) संग्रामान् । यहाँ विभक्ति के स्थान में आकार-आदेश है ॥

अन्वयः—हे वीराः ! यो बह्वीनां पितेवास्य बहुः पुत्र इव पृष्ठे निनद्ध इषुधिः प्रसूतः सन् समनावगत्य चिश्चा कृणोति येन वीरः सर्वाः संकाः पृतनाश्च जयति तं यथावद्रक्षत ॥ ४२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **वीराः ! यो बह्वीनां** ज्यानां **पिता** पितृवद् रक्षकः **इवास्य बहुः** बहुगुणः **पुत्रः** सन्तान इव सम्बन्धी **इव पृष्ठे** पश्चात् भागे **निनद्धः** निश्चयेन नद्धो=बद्धः **इषुधिः** इषवो धीयन्ते यस्मिन्सः **प्रसूतः** उत्पन्नः **सन्, समना** सङ्ग्रामान् **अवगत्य चिश्चा** चिश्चिश्चेति शब्दं **कृणोति** करोति, **येन वीरः सर्वाः सङ्काः** समवेता विकीर्णा वा **पृतनाः** सेनाः **च जयति, तं यथावद्रक्षत** ॥२६। ४२ ॥

भाषार्थ—हे वीरो ! जो (बह्वीनाम्) ज्या=डोरियों का (पिता) पिता के समान रक्षक (अस्य) इसके (बहुः) बहुत गुणों से युक्त (पुत्रः) सन्तान के तुल्य (पृष्ठे) पीठ पर (निनद्धः) निश्चय से बंधा हुआ (इषुधिः) बाणों का धारक=तूणीर (प्रसूतः) उत्पन्न होकर, (समना) संग्रामों को प्राप्त करके (चिश्चा) चिश-चिश-च इत्यादि विविध शब्द (कृणोति) करता है; जिससे वीर सब (सङ्काः) समवेत=संघठित वा विकीर्ण=बिखरी हुई (पृतनाः) सेनाओं को जीतता है;—उसकी यथावत् रक्षा करो ॥ २६ । ४२ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यथा—अनेकासां कन्यानां बहूनां पुत्राणां च पिताऽपत्यशब्दैः संकीर्णो भवति, तथैव धनुर्ज्येषुधयः संमिलिता अनेकविधशब्दान् जनयन्ति ।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है । जैसे—अनेक कन्याओं और बहुत पुत्रों का पिता सन्तानों के शब्दों से संकीर्ण=घिरा हुआ होता है; वैसे ही धनुष की ज्या=डोरी और इषुधि सम्मिलित होकर अनेक प्रकार के शब्दों को उत्पन्न करती हैं ।

यस्य वामहस्ते धनुः, पृष्ठे इषुधिः, यो दक्षिणेन हस्तेनेषुं निःसार्य धनुर्ज्यया संयोज्य, विमुच्याऽभ्यासेन शीघ्रकारित्वं करोति, स एव विजयी भवति ॥ २६ । ४२ ॥

जिसके वाम हस्त में धनुष, पीठ पर इषुधि है, जो दक्षिण हाथ से वाम को निकाल कर धनुष की डोरी से संयुक्त करके तथा उसे छोड़कर अभ्यास से शीघ्रकारित्व को उत्पन्न करता है; वही विजयी होता है ॥ २६ । ४२ ॥

भा० पदार्थः—बह्वीनाम्=अनेकासां कन्यानाम् । चिश्चा=अनेकविधशब्दान् ।

भाष्यसार—१. **वीर राजपुरुष क्या करें**—वीर राजपुरुष धनुष की ज्या=डोरी की पिता के तुल्य रक्षा करें ! जैसे अनेक कन्याओं तथा बहुत पुत्रों का पिता सन्तान-शब्दों से घिरा रहता है; वैसे धनुष की ज्या और इषुधि मिलकर, अनेक प्रकार के (चिश-चिश आदि) शब्द करती हैं । राजपुरुष वाम हाथ में धनुष, पीठ पर इषुधि, रखें । दक्षिण हाथ से बाण को निकाल कर, उसे धनुष की ज्या से संयुक्त करके छोड़ें । इस प्रकार अभ्यास से शीघ्रकारी हों । समवेत वा विकीर्ण सेनाओं को जीतें ।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचकलुप्तोपमा अलंकार है । उपमा यह है कि वीर राजपुरुष धनुष-ज्या की पिता के समान रक्षा करें । बहुत सन्तान वाले पिता के समान ज्या-शब्दों से आक्रान्त रहें ॥ २६ । ४२ ॥ ●

भारद्वाजः । **वीराः**=वीरराजपुरुषाः । जगती । निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

वीर राजपुरुष क्या करें, यह फिर उपदेश किया है ॥

रथे तिष्ठन्नयति वाजिनः पुरो यत्रयत्र कामयते सुषारथिः ।
अभीशूनां महिमानं पनायत मनः पश्चादनु यच्छन्ति रश्मयः ॥ ४३ ॥

पदार्थः—(**रथे**) रमणीये भूजलान्तरिक्षगमके याने (**तिष्ठन्**) (**नयति**) गमयति (**वाजिनः**) अश्वानग्न्यादीन्वा (**पुरः**) अग्रे (**यत्रयत्र**) यस्मिन्यस्मिन्सङ्ग्रामे देशे वा (**कामयते**) (**सुषारथिः**) शोभनश्चासौ सारथिश्चाऽश्वानामग्न्यादीनां वा नियन्ता (**अभीशूनाम्**) अभितः=सद्यो गन्तॄणाम् (**महिमानम्**) महत्त्वम् (**पनायत**) प्रशंसत (**मनः**) (**पश्चात्**) (**अनु**) (**यच्छन्ति**) निगृह्णन्ति (**रश्मयः**) रज्जवः किरणा वा ॥ ४३ ॥

अन्वयः—हे विद्वांस ! सुषारथी रथे तिष्ठन् यत्रयत्र कामयते तत्र तत्र वाजिनः पुरो नयति येषां मनः सुशिक्षितं हस्तगता रश्मयः पश्चादश्वाननुयच्छन्ति तेषामभीशूनां महिमानं यूयं पनायत ॥ ४३ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे विद्वांसः ! सुषारथिः** शोभनश्चासौ सारथिश्चाऽश्वानामग्न्यादीनां वा नियन्ता **रथे** रमणीये भूजलान्तरिक्षगमके याने **तिष्ठन्, यत्रयत्र** यस्मिन्यस्मिन्सङ्ग्रामे देशे वा **कामयते, तत्र तत्र वाजिनः** अश्वानग्न्यादीन्वा **पुरः** अग्रे **नयति** गमयति ।

येषां मनः सुशिक्षितं, हस्तगता रश्मयः रज्जवः किरणा वा **पश्चादश्वाननुयच्छन्ति** निगृह्णन्ति, **तेषामभीशूनाम्** अभितः=सद्यो गन्तॄणां **महिमानं** महत्त्वं **यूयं पनायत** प्रशंसत ॥ २९ । ४३ ॥

भाषार्थ—हे विद्वानो ! (सुषारथिः) उत्तम सारथि अर्थात् घोड़ों अथवा अग्नि आदि का नियन्ता (रथे) रमणीय भू, जल और अन्तरिक्ष में चलने वाले यान में (तिष्ठन्) बैठा हुआ, (यत्रयत्र) जिस-जिस संग्राम वा देश में (कामयते) कामना करता है; (तत्र तत्र) वहाँ-वहाँ (वाजिनः) घोड़ों वा अग्नि आदि को (पुरः) आगे (नयति) ले जाता है ।

जिनका (मनः) मन सुशिक्षित है; हस्तगत (रश्मयः) रस्सियाँ वा किरणें पीछे से घोड़ों का अग्नियों का (अनुयच्छन्ति) निग्रह करती हैं; उन (अभीशूनाम्) सब ओर शीघ्र गति करने वालों के (महिमानम्) महत्त्व की तुम (पनायत) प्रशंसा करो ॥ २९ । ४३ ॥

भावार्थः—यदि राजराजपुरुषाः साम्राज्यं, ध्रुवं विजयं चेच्छेयुस्तर्हि—सुशिक्षितानमात्यान्, अश्वादि, अन्या चालयित्री अलंसामग्री, अध्यक्षान्, शस्त्राऽस्त्राणि, शरीरात्मबलं चावश्यं सम्पादयेयुः ॥ २९ । ४३ ॥

भावार्थ—यदि राजा और राजपुरुष साम्राज्य और ध्रुव विजय को चाहें तो सुशिक्षित मन्त्री, घोड़े आदि, अन्य संचालन सम्बन्धी पर्याप्त सामग्री, अध्यक्ष, शस्त्र-अस्त्र और शरीर तथा आत्मा के बल को अवश्य सिद्ध करें ॥ २९ । ४३ ॥

भाष्यसार—**वीर राजपुरुष क्या करें**—घोड़ों वा अग्नि आदि का नियन्ता, उत्तम सारथि—भूमि, जल और अन्तरिक्ष में गमन करने वाले रमणीय रथ=यान में बैठ कर जहाँ-जहाँ कामना करता है; वहाँ-वहाँ घोड़ों वा अग्नि आदि को ले जाता है ।

जिन वीर राजपुरुषों का मन सुशिक्षित है, घोड़ों की रस्सी तथा अग्नि की किरणें हाथ में हैं, वे पीछे से घोड़ों तथा अग्नियों का नियन्त्रण करते हैं। विद्वान् लोग उन शीघ्रगामी वीरों के महत्त्व की प्रशंसा करें। साम्राज्य और 'ध्रुव' विजय के इच्छुक राजा और राजपुरुष मन्त्रोक्त साधनों को अवश्य सिद्ध करें ॥ २९ । ४३ ॥ ●

भारद्वाजः । **वीराः**=वीरराजपुरुषाः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

वीर राजपुरुष क्या करें, इसका फिर उपदेश किया है ॥

तीव्रान् घोषा॑न् कृण्वते वृष॑पाणयोऽश्वा॒ रथे॑भिः स॒ह वा॒जय॑न्तः ।
अ॒व॒क्राम॑न्तः प्रप॑दै॒रमित्रा॑न् क्षि॒णन्ति॒ शत्रूँ॒१ऽ॑रन॑पव्ययन्तः ॥ ४४ ॥

पदार्थः—(**तीव्रान्**) तीक्ष्णान् (**घोषान्**) शब्दान् (**कृण्वते**) कुर्वन्ति (**वृषपाणयः**) रक्षका वृषा=बलिष्ठा वृषभादय उत्तमाः प्राणिनः पाणिवद्येषां ते (**अश्वाः**) आशुगमयितारः (**रथेभिः**) रमणीयैर्यानैः (**सह**) (**वाजयन्तः**) वीरादीन् सद्यो गमयन्तः (**अवक्रामन्तः**) धर्षयन्तः (**प्रपदैः**) प्रकृष्टैः पारगमनैः (**अमित्रान्**) मित्रभावरहितान् (**क्षिणन्ति**) क्षयं प्रापयन्ति (**शत्रून्**) अरीन् (**अनपव्ययन्तः**) अपव्ययमप्रापयन्तः ॥ ४४ ॥

अन्वयः—हे वीराः ! ये वृषपाणयो रथेभिः सह वाजयन्तः प्रपदैरमित्रानवक्रामन्तोऽश्वास्तीव्रान् घोषान्कृण्वतेऽनपव्ययन्तः सन्तः शत्रून् क्षिणन्ति तान् यूयं प्राणवत्पालयत ॥ ४४॥

सपदार्थान्वयः—हे वीराः ! ये **वृषपाणयः** रक्षका वृषा=बलिष्ठा वृषभादय उत्तमाः प्राणिनः पाणिवद्येषां ते **रथेभिः** रमणीयैर्यानैः **सह** **वाजयन्तः** वीरादीन् सद्यो गमयन्तः, **प्रपदैः** प्रकृष्टैः पारगमनैः **अमित्रान्** मित्रभावरहितान् **अवक्रामन्तः** धर्षयन्तः, **अश्वाः** आशुगमयितारः **तीव्रान्** तीक्ष्णान् **घोषान्** शब्दान् **कृण्वते** कुर्वन्ति, **अनपव्ययन्तः** अपव्ययमप्रापयन्तः **सन्तः**, **शत्रून्** अरीन् **क्षिणन्ति** क्षयं प्रापयन्ति **तान् यूयं प्राणवत् पालयत** ॥२९।४४॥

भाषार्थ—हे वीरो ! जो (वृषपाणयः) रक्षक, बलिष्ठ, वृषभ आदि उत्तम प्राणी जिनके पाणि=हाथ के तुल्य हैं; वे—(रथेभिः) रमणीय यानों के साथ (वाजयन्तः) वीर आदि जनों को शीघ्र पहुँचाने वाले (प्रपदैः) उत्तम पारगमन से (अमित्रान्) मित्र भाव से रहित=शत्रुओं को (अवक्रामन्तः) धर्षित करने वाले (अश्वाः) शीघ्रगामी घोड़े (तीव्रान्) तीक्ष्ण (घोषान्) शब्द (कृण्वते) करते हैं; (अनपव्ययन्तः) अपव्यय को न प्राप्त कराते हुए (शत्रून्) शत्रुओं को (क्षिणन्ति) नष्ट करते हैं; उनका तुम प्राणों के समान पालन करो ॥ २९ । ४४ ॥

भावार्थः—यदि राजपुरुषा हस्ति-अश्व-वृषभादीन्, भृत्यान् अध्यक्षांश्च सुशिक्ष्यानेकविधानि यानानि निर्माय, शत्रून् विजेतुमभिलषन्ति तर्हि तेषां ध्रुवो विजयो भवति ॥ २९ । ४४ ॥

भावार्थ—यदि राजपुरुष—हाथी, घोड़े, बैल आदि पशु; भृत्य, और अध्यक्षों को सुशिक्षित करके अनेक प्रकार के यानों का निर्माण करके शत्रुओं को जीतना चाहते हैं; तो उनका निश्चित विजय होता है ॥ २९ । ४४ ॥

भाष्यसार—१. वीर राजपुरुष क्या करें—जो रक्षक एवं बलिष्ठ बैल आदि प्राणी जिनके

हाथ के समान हैं, वे घोड़े रमणीय यानों से वीरों को शीघ्र देशान्तर में पहुँचाने वाले हैं; उत्तम पारगमन से शत्रुओं को धर्षित करने वाले हैं, तीक्ष्ण शब्द करने वाले हैं, अपव्यय को प्राप्त कराने वाले नहीं हैं; शत्रुओं का विनाश करने वाले हैं; उन घोड़ों की वीर राजपुरुष प्राणों के समान पालना करें।

वीर राजपुरुष हाथी, घोड़े, बैल, भृत्य और अध्यक्षों को सुशिक्षित करके, अनेक प्रकार के यानों का निर्माण करके, शत्रुओं को जीतकर ध्रुव विजय को प्राप्त करें ॥ २९ । ४४ ॥

भारद्वाजः । **वीराः**=वीरराजपुरुषाः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

वीर राजपुरुष क्या करें, इसका फिर उपदेश किया है ॥

रथवाहनꣳ हविरस्य नाम यत्रायुधं निहितमस्य वर्म ।
तत्रा रथमुप शग्मꣳ सदेम विश्वाहा वयꣳ सुमनस्यमानाः ॥ ४५ ॥

पदार्थः—(**रथवाहनम्**) रथान्वहन्ति=गमयन्ति येन तत् (**हविः**) आदातव्याग्नीन्धनजल-काष्ठधात्वादि (**अस्य**) योद्धुः (**नाम**) (**यत्र**) याने (**आयुधम्**) भुशुण्डिशतघ्न्यसिधनुर्बाणशक्तिपद्मपाशादि (**निहितम्**) धृतम् (**अस्य**) योद्धुः (**वर्म**) कवचम् (**तत्र**) तस्मिन् । अत्र ऋचि तुनु० इति दीर्घः । (**रथम्**) रमणसाधनं यानम् (**उप**) (**शग्मम्**) सुखम् । शग्ममिति सुखना० ॥ निघं० ३ । ६ ॥ (**सदेम**) प्राप्नुयाम (**विश्वाहा**) सर्वेष्वहस्सु (**वयम्**) (**सुमनस्यमानाः**) सुष्ठु विचारयन्तः ॥ ४५ ॥

प्रमाणार्थ—(**तत्र**) यहाँ 'ऋचि तुनु०' (६ । ३ । ११४) इस सूत्र से संहिता में दीर्घ है। (**शग्मम्**) 'शग्म' यह पद निघण्टु (३ । ६) में सुख-नामों में पठित है।

अन्वयः—हे वीराः ! अस्य यत्र रथवाहनं हविरायुधमस्य वर्म च नाम च निहितं तत्र सुमनस्यमाना वयं शग्मं रथं विश्वाहोप सदेम ॥ ४५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **वीराः**! **अस्य** योद्धुः **यत्र** याने **रथवाहनं** रथान्वहन्ति=गमयन्ति येन तत् **हविः** आदातव्याग्नीन्धनजलकाष्ठधात्वादि **आयुधं** भुशुण्डिशतघ्न्यसिधनुर्बाणशक्तिपद्मपाशादि **अस्य** योद्धुः **वर्म** कवचं **च नाम च निहितं** धृतं, **तत्र** तस्मिन् **सुमनस्यमानाः** सुष्ठु विचारयन्तः **वयं शग्मं** सुखं **रथं** रमणसाधनं यानं **विश्वाहा** सर्वेष्व-हस्सु **उप+सदेम** प्राप्नुयाम ॥ २९ । ४५ ॥

भाषार्थ—हे वीरो ! (अस्य) इस योद्धा के (यत्र) जिस यान में—(रथवाहनम्) रथ चलाने के साधन रूप (हविः) हवि अर्थात् ग्रहण करने योग्य अग्नि, इन्धन, जल, काष्ठ और धातु आदि पदार्थ; (आयुधम्) भुशुण्डी=बन्दूक, शतघ्नी=तोप, तलवार, धनुष, बाण, शक्ति, पद्मपाश आदि तथा (अस्य) इस योद्धा के (वर्म) कवच और (नाम) नाम=प्रसिद्ध वस्तुएँ (निहितम्) रखी हुई हैं; (तत्र) उस यान में (सुमनस्यमानाः) उत्तम विचार करते हुए हम लोग—(शग्मम्) सुखदायक (रथम्) रमण के साधन रथ को (विश्वाहा) सब दिन (उप+सदेम) प्राप्त करें ॥ २९ । ४५ ॥

भावार्थः—हे मनुष्याः ! यस्मिन् यानेऽग्न्यादिरश्वादिश्च युज्यते तत्र युद्धसामग्रीः संस्थाप्य,

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस यान में अग्नि आदि और घोड़े आदि युक्त किए जाते हैं; उसमें

नित्यमन्वीक्ष्य, स्थित्वा, सुविचारेण शत्रुभिः सह संयुद्ध्य नित्यं सुखं प्राप्नुत ।। २९ । ४५ ।।

युद्धसामग्री को रखकर, नित्य निरीक्षण करके, उस में बैठकर, सुविचार से शत्रुओं के साथ युद्ध करके, नित्य सुख को प्राप्त करो ।। २९ । ४५ ।।

भाष्यसार—**वीर राजपुरुष क्या करें**—जिस योद्धा के यान में रथ को चलाने वाले इन्धन, जल, काष्ठ, धातु आदि पदार्थ; बन्दूक, तोप, धनुष, बाण, शक्ति पद्मपाश आदि शस्त्रास्त्र; कवच तथा अन्य प्रसिद्ध सामग्री रखी हो; उसमें वीर राजपुरुष उत्तम विचार करें तथा उस सुखदायक रथ=यान को प्राप्त करें। मन्त्रोक्त विधि से यान के द्वारा तथा सुविचार से शत्रुओं के साथ युद्ध करके नित्य सुख को प्राप्त करें ।। २९ । ४५ ।। ●

भारद्वाजः । **वीराः=वीरराजपुरुषाः** । त्रिष्टुप् । धैवतः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

वीर राजपुरुष क्या करें, यह फिर उपदेश किया है ।।

स्वादुषꣳसदः पितरो वयोधाः कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तो गभीराः ।
चित्रसेना ऽ इषुबला ऽ अमृध्राः सतोवीरा ऽ उरवो व्रातसाहाः ।। ४६ ।।

पदार्थः—(**स्वादुषꣳसदः**) ये स्वादुषु=भोज्याद्यन्नेषु सम्यक् सीदन्ति ते (**पितरः**) पालनक्षमाः (**वयोधाः**) ये दीर्घं वयो=जीवनं दधति ते (**कृच्छ्रेश्रितः**) ये कृच्छ्रे=कष्टे श्रितः कष्टं सेवमानाः (**शक्तीवन्तः**) सामर्थ्ययुक्ताः । **अत्र छन्दसीर इति वत्वम्** । (**गभीराः**) अगाधाशयाः (**चित्रसेनाः**) अद्‌भुतसैन्याः (**इषुबलाः**) इषुभिः=शस्त्रास्त्रैस्सह बलं=सैन्यं येषान्ते (**अमृध्राः**) अकोमलाङ्गा=दृढाङ्गाः (**सतोवीराः**) सतो=विद्यमानस्य सैन्यस्य मध्ये वीराः=प्राप्तयुद्धविद्याशिक्षाः (**उरवः**) विशालजघनोरस्काः (**व्रातसाहाः**) ये व्रातान्=वीराणां समूहान्सहन्ते ते ।। ४६ ।।

प्रमाणार्थ—(**शक्तीवन्तः**) यहाँ 'छन्दसीर' (८ । २ । १५) इस सूत्र से वत्व है ।।

अन्वयः—हे योद्धारो वीरा यूयं ये स्वादुषंसदो वयोधाः कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तो गभीराश्चित्रसेना इषुबला अमृध्रा उरवो व्रातसाहाः सतोवीराः पितरः स्युस्तानाश्रित्य युद्धं कुरुत ।। ४६ ।।

सपदार्थान्वयः—**हे योद्धारो वीराः ! यूयं ये स्वादुषंसदः** ये स्वादुषु=भोज्याद्यन्नेषु सम्यक् सीदन्ति ते, **वयोधाः** ये दीर्घं वयो=जीवनं दधति ते, **कृच्छ्रेश्रितः** ये कृच्छ्रे=कष्टे श्रितः कष्टं सेवमानाः, **शक्तीवन्तः** सामर्थ्ययुक्ताः, **गभीराः** अगाधाशयाः, **चित्रसेनाः** अद्‌भुतसैन्याः, **इषुबलाः** इषुभिः=शस्त्रास्त्रैस्सह बलं=सैन्यं येषान्ते, **अमृध्राः** अकोमलाङ्गा=दृढाङ्गाः, **उरवः** विशालजघनोरस्काः, **व्रातसाहाः** ये व्रातान्=वीराणां समूहान् सहन्ते ते, **सतोवीराः** सतो=विद्यमानस्य सैन्यस्य मध्ये वीराः=प्राप्त युद्धविद्याशिक्षाः **पितरः** पालनक्षमाः **स्युस्तानाश्रित्य युद्धं कुरुत** ।। २९ । ४६ ।।

भाषार्थ—हे योद्धा वीरो ! तुम—जो (स्वादुषंसदः) स्वादु=भोज्य आदि अन्नों में सम्यक् बैठने वाले, (वयोधाः) दीर्घ जीवन को धारण करने वाले, (कृच्छ्रेश्रितः) कष्ट में विद्यमान अर्थात् कष्ट सेवन करने वाले, (शक्तीवन्तः) सामर्थ्य से युक्त, (गभीराः) अगाध आशय वाले, (चित्रसेनाः) अद्‌भुत सेना वाले, (इषुबलाः) इषु=शस्त्रास्त्रों सहित बल=सेना वाले, (अमृध्राः) अकोमल=दृढ़ अंगों वाले, (उरवः) विशाल जघन तथा उरःस्थल [छाती] वाले, (व्रातसाहाः) व्रात=वीरों के समूहों को सहन करने वाले, (सतोवीराः) विद्यमान सेना के मध्य में वीरों एवं युद्ध की विद्या और शिक्षा

भावार्थः—तेषामेव सदा विजयो, राज्यश्रीः, प्रतिष्ठा, दीर्घमायुः, बलं विद्याश्च भवन्ति, ये स्वाधिष्ठातॄणामाप्तानां शासने तिष्ठन्ति ॥ २९ ॥

से युक्त (पितरः) पालन करने वाले पितर=आप्त लोग हैं—उनका आश्रय करके युद्ध करो ॥२९।४६॥

भावार्थ—उन को ही सदा विजय, राज्यश्री, प्रतिष्ठा, दीर्घ आयु, बल और विद्याएँ प्राप्त होती हैं, जो अपने अधिष्ठाता आप्त लोगों के शासन में रहते हैं ॥ २९ । ४६ ॥

भा० पदार्थः—पितरः=अधिष्ठातारः, आप्ताः ॥

भाष्यसार—**वीर राजपुरुष क्या करें**—वीर योद्धा लोग—जो स्वादु भोज्य पदार्थों के सेवन में सम्यक् बैठने वाले, दीर्घ जीवन को धारण करने वाले, कष्ट सेवन करने वाले, सामर्थ्य से युक्त, अगाध आशय वाले, अद्भुत सेना वाले, शस्त्र-अस्त्रों से युक्त सेना वाले, दृढ़ अंगों वाले, विशाल जघन (जाँघ) और उरःस्थल (छाती) वाले, वीरों के समूहों को सहन करने वाले, विद्यमान सेना के मध्य में वीर अर्थात् युद्ध की विद्या और शिक्षा को प्राप्त पितर लोग हैं—उनका आश्रय करके युद्ध करें। जो अपने अधिष्ठाता आप्त जनों के शासन में रहते हैं उन्हें ही सदा विजय, राज्यश्री, प्रतिष्ठा दीर्घायु, बल और विद्या प्राप्त होती है ॥ २९ । ४६ ॥

भारद्वाजः । **धनुर्वेदाऽध्यापकाः**=स्पष्टम् । विराट्जगती । निषादः ॥

के सत्कर्त्तव्या इत्याह ॥

किन का सत्कार करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवी ऽ अनेहसा ।
पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो रक्षा माकिर्नो ऽ अघशंसः ऽ ईशत ॥ ४७ ॥

पदार्थः—(**ब्राह्मणासः**) वेदेश्वरविदः (**पितरः**) पालकाः (**सोम्यासः**) ये सोमगुणानर्हन्ति ते (**शिवे**) कल्याणकरे (**नः**) अस्मभ्यम् (**द्यावापृथिवी**) प्रकाशभूमी (**अनेहसा**) अविनाशिनौ (**पूषा**) पुष्टिकरः (**नः**) अस्मान् (**पातु**) (**दुरितात्**) दुष्टान्यायाचरणात् (**ऋतावृधः**) य ऋतं=सत्यं वर्द्धयन्ति ते (**रक्ष**) । अत्र द्वयचोतस्तिङ इति दीर्घः । (**माकिः**) निषेधे (**नः**) अस्मान् (**अघशंसः**) पापप्रशंसी स्तेनः (**ईशत**) समर्थो भवेत् ॥ ४७ ॥

प्रमाणार्थ—(रक्ष) यहाँ 'द्वयचोऽतस्तिङः' (६ । ३ । १३५) इस सूत्र से संहिता में दीर्घ है—[रक्षा] ॥

अन्वयः—हे मनुष्य ! ये सोम्यास ऋतावृधः पितरो ब्राह्मणासो विद्वांसो नः कल्याणकरा अनेहसा द्यावापृथिवी च शिवे भवतः । पूषा परमात्मा नो दुरितात् पातु यतो नो हिंसितुमघशंसो माकिरीशत तान् रक्ष स्तेनाञ्जहि ॥ ४७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! ये **सोम्यासः** ये सोमगुणानर्हन्ति ते **ऋतावृधः** य ऋतं=सत्यं वर्द्धयन्ति ते **पितरः** पालकाः **ब्राह्मणासो=विद्वांसो** वेदेश्वरविदः **नः** अस्मभ्यं

भाषार्थ—हे मनुष्य ! जो—(सोम्यासः) सोम-गुणों से युक्त, (ऋतावृधः) ऋत=सत्य को बढ़ाने वाले, (पितरः) पालक, (ब्राह्मणासः) वेद और ईश्वर के ज्ञाता विद्वान् हैं वे (नः) हमारे लिए

कल्याणकरा अनेहसा अविनाशिनौ **द्यावापृथिवी** प्रकाशभूमी **च शिवे** कल्याणकरे **भवतः; पूषा** पुष्टिकरः **परमात्मा नः** अस्मान् **दुरितात्** दुष्टान्यायाचरणात् **पातु, यतो नः** अस्मान् **हिंसितुमघशंसः** पापप्रशंसी स्तेनः **माकिः** न **ईशत** समर्थो भवेत्। **तान् रक्ष स्तेनाञ्जहि** ॥ २६ । ४७ ॥

कल्याणकारी हैं; और (अनेहसा) अविनाशी (द्यावा-पृथिवी) आकाश और भूमि (शिवे) कल्याणकारी हों। (पूषा) पुष्टि करने वाला परमात्मा (नः) हमारी (दुरितात्) दुष्ट अन्यायाचरण से (पातु) रक्षा करें, जिससे (नः) हमारी हिंसा करने में (अघशंसः) पाप का प्रशंसक चोर (माकिः) न (ईशत) समर्थ हो। उक्त विद्वानों की रक्षा कर तथा चोरों का विनाश कर ॥ २६ । ४७ ॥

भावार्थः—हे मनुष्याः! ये विद्वांसो युष्मान् धर्म्ये कृत्ये प्रवर्त्य दुष्टाचारात् पृथक् रक्षन्ति, दुष्टाचारिणां बलं निरुन्धन्ति, अस्माकं पुष्टिं च जनयन्ति, ते सदा सत्कर्त्तव्याः ॥ २६ । ४७ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! जो विद्वान् तुम्हें धर्म-युक्त कर्म में प्रवृत्त करके दुष्ट आचरण से पृथक् रखते हैं; दुष्ट आचरण वालों के बल को रोकते हैं; और हमारी पुष्टि करते हैं, वे सदा सत्कार के योग्य हैं ॥ २६ । ४७ ॥

भा० पदार्थः—दुरितात्=दुष्टाचारात्। अघशंसः=दुष्टाचारी।

भाष्यसार—**किनका सत्कार करें**—जो सोम्य गुणों से युक्त, सत्य को बढ़ाने वाले, पितर (पालक), ब्राह्मण=वेद और ईश्वर के ज्ञाता विद्वान्—कल्याणकारी हों; अर्थात् धर्मयुक्त कर्म में प्रवृत्त करके, दुष्ट आचरण से पृथक् रखें उनका सदा सत्कार करें। पूषा=पुष्टि करने वाला परमात्मा हमें दुष्ट अन्याय आचरण से बचाता है; अतः उसकी स्तुति करें। धर्मात्मा पुरुषों की हिंसा करने में पाप का प्रशंसक स्तेन=चोर कभी समर्थ न हो; इस प्रकार जो दुष्टाचारी लोगों के बल को रोकते हैं, तथा धर्मात्माओं को पुष्ट करते हैं उन वीरों का सदा सत्कार करें ॥ २६ । ४७ ॥ ●

भारद्वाजः। **वीराः=वीरराजपुरुषाः**। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

पुना राजधर्ममाह॥

फिर राजधर्म का उपदेश किया है॥

सुपर्णं वस्ते मृगो ऽ अस्या दन्तो गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूता।
यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यंसन् ॥ ४८ ॥

पदार्थः—(**सुपर्णम्**) शोभनानि पर्णानि=पालनानि पूरणानि यस्य तं रथादिकम् (**वस्ते**) धरति (**मृगः**) यो मार्ष्टि कस्तूर्या सः (**अस्याः**) (**दन्तः**) दाम्यते जनैः सः (**गोभिः**) धेनुभिस्सह (**सन्नद्धा**) सम्यग्बद्धा (**पतति**) (**प्रसूता**) प्रेरिता सती (**यत्र**) यस्याम्। **अत्र ऋचि तुनु० इति दीर्घः**। (**नरः**) नायकाः (**सम्**) सम्यक् (**च**) (**वि**) विशेषेण (**च**) (**द्रवन्ति**) गच्छन्ति (**तत्र**) (**अस्मभ्यम्**) (**इषवः**) बाणाद्याः शस्त्रविशेषाः (**शर्म**) सुखम् (**यंसन्**) यच्छन्तु=ददतु ॥ ४८ ॥

प्रमाणार्थ—(**यत्र**) यहाँ 'ऋचि तुनु०' (६ । ३ । ११४) इस सूत्र से संहिता में दीर्घ है—[**यत्रा**]॥

अन्वयः—हे वीरा यत्र सेनायां नरो नायकाः स्युर्या सुपर्णं वस्ते यत्र गोभिस्सह दन्तो मृग इव

इषवो धावन्ति या सन्नद्धा प्रसूता शत्रुषु पतति इतस्ततश्चास्या वीराः संद्रवन्ति विद्रवन्ति च तत्रास्मभ्यं भवन्तः शर्म यंसन् ॥ ४८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे वीराः ! **यत्र**=सेनायां यस्यां **नरः**=नायकाः स्युः या **सुपर्णं** शोभनानि पर्णानि=पालनानि पूरणानि यस्य तं रथादिकं **वस्ते** धरति, **यत्र** यस्यां **गोभिः** धेनुभिः **सह दन्तः** दाम्यते जनैः सः **मृगः** यो मार्ष्टि कस्तूर्या सः **इव इषवः** बाणाद्याः शस्त्रविशेषाः **धावन्ति, या सन्नद्धा** सम्यग्बद्धा **प्रसूता** प्रेरिता सती **शत्रुषु पतति, इतस्ततश्चास्याः वीराः सं+द्रवन्ति** सम्यग्गच्छन्ति **वि+द्रवन्ति** विशेषेण गच्छन्ति **च, तत्रास्मभ्यं भवन्तः शर्म** सुखं **यंसन्** यच्छन्तु=ददतु ॥२९।४८॥

भाषार्थ—हे वीरो ! (यत्र) जिस सेना में (नरः) नायक हों; जो (सुपर्णम्) उत्तम पर्ण=पालन और पूरण के हेतु रथ आदि को (वस्ते) धारण करती है; (यत्र) जिसमें (गोभिः) दुधारु गौओं के साथ (दन्तः) जनों से दमन करने योग्य (मृगः) कस्तूरी-मृग के तुल्य (इषवः) बाण आदि शस्त्र-विशेष दौड़ते हैं; (जो सन्नद्धा) सम्यक् बंधी हुई (प्रसूता) सेनापति से प्रेरित होकर (शत्रुओं) पर (पतति) गिरती है; और इधर-उधर इसके वीर (सं+द्रवन्ति) सम्यक् गति करते हैं; और (वि+द्रवन्ति) विशेष गति करते हैं; उस सेना में (अस्मभ्यम्) हमारे लिए आप (शर्म) सुख (यंसन्) प्रदान करो ॥ २९ । ४८ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । हे राजपुरुषाः ! युष्माभिः शत्रुभिरप्रधर्षिणी रुष्टा, पुष्टा, सेना संपादनीया; तस्यां सुपरीक्षिता योद्धारो ऽध्यक्षाश्च रक्षणीयाः, तैः शस्त्रास्त्रप्रक्षेपणेषु कुशलैर्जनैर्विजयः प्राप्तव्यः ॥ २९ । ४८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है । हे राजपुरुषो ! तुम—शत्रुओं से प्रधर्षित न होने वाली, रुष्ट तथा पुष्ट सेना का संपादन करो । उसमें सुपरीक्षित योद्धा और अध्यक्षों को रखो । उन शस्त्र-अस्त्रों के चलाने में कुशल जनों से विजय प्राप्त करो ॥ २९ । ४८ ॥

भा० पदार्थः—नरः=सुपरीक्षिता योद्धारोऽध्यक्षाश्च ।

भाष्यसार—**राजधर्म**—जिस सेना में नायक हैं; जो पालन और पूरण के हेतु रथ आदि साधनों को धारण करने वाली है; जिसमें दुधारु गौओं के साथ कस्तूरी मृग के समान बाण आदि शस्त्र विशेष दौड़ते हैं; जो सम्यक् बंधी हुई है तथा प्रेरित की हुई शत्रुओं पर गिरती है; जिसके वीर इधर-उधर विशेष गति करते हैं; वह सेना मनुष्यों को सुख प्रदान करती है ।

राजपुरुष शत्रुओं से प्रधर्षित न होने वाली, रुष्ट, पुष्ट सेना तैयार करें । उसमें सुपरीक्षित योद्धा और अध्यक्ष रखें । शस्त्र-अस्त्रों के संचालन में कुशल वीर-जनों से विजय प्राप्त करें ॥ २९ । ४८ ॥ ●

भारद्वाजः । **वीराः=वीरराजपुरुषाः** । विराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

ऋजीते परि वृङ्धि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः । सोमो ऽ अधि ब्रवीतु नोऽदितिः शर्म यच्छतु ॥४९॥

पदार्थः—**(ऋजीते)** सरले व्यवहारे **(परि)** सर्वतः **(वृङ्धि)** वर्त्तय **(नः)** अस्माकम्

(**अश्मा**) यथा पाषाणः (**भवतु**) (**नः**) अस्माकम् (**तनूः**) शरीरम् (**सोमः**) ओषधिराजः (**अधि**) (**ब्रवीतु**) (**नः**) अस्मभ्यम् (**अदितिः**) पृथिवी (**शर्म**) गृहं सुखं वा (**यच्छतु**) ददातु ॥ ४९ ॥

अन्वयः—हे विद्वंस्त्वमृजीते नोऽस्माकं शरीराद्रोगान् परिवृङ्ग्धि यतो नस्तनूरश्मा भवतु यः सोमोऽस्ति तं याचादितिरस्ति ते भवान्नोऽधि ब्रवीतु नः शर्म च यच्छतु ॥ ४९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! त्वमृजीते सरले व्यवहारे **नः अस्माकं शरीराद्रोगान् परि+वृङ्ग्धि** सर्वतः वर्त्तय; **यतो नः** अस्माकं **तनूः** शरीरम् **अश्मा** यथा पाषाणः **भवतु**।

यः सोमः ओषधिराजः **अस्ति तं, या चादितिः** पृथिवी **अस्ति, ते भवान् नः** अस्मभ्यम् **अधि+ब्रवीतु, नः** अस्मभ्यं **शर्म** गृहं सुखं वा **च यच्छतु** ददातु ॥ २९ । ४९ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् ! तू—(ऋजीते) सरल व्यवहार में (नः) हमारे शरीर से रोगों को (परि+वृङ्धि) सब ओर से हटा; जिससे (नः) हमारा (तनूः) शरीर (अश्मा) पाषाण=पत्थर के तुल्य (भवतु) हो।

जो (सोमः) ओषधियों का राजा सोम है; और जो (अदितिः) पृथिवी है; उन दोनों का आप (नः) हमारे लिए (अधि+ब्रवीतु) उपदेश करो; (नः) हमारे लिए (शर्म) घर वा सुख (यच्छतु) प्रदान करो ॥ २९ । ४९ ॥

भावार्थः—यदि मनुष्या ब्रह्मचर्यौषधपथ्यसुनियमसेवनेन शरीराणि रक्षेयुस्तर्हि तेषां शरीराणि दृढानि भवेयुः।

यथा शरीराणां पार्थिवादिगृहमस्ति, तथा जीवस्येदं गृहम् ॥ २९ । ४९ ॥

भावार्थ—यदि मनुष्य ब्रह्मचर्य, औषध, पथ्य और उत्तम नियमों के सेवन से शरीरों की रक्षा करें तो उनके शरीर दृढ़ होवें।

जैसे शरीरों का पार्थिव आदि घर है; वैसे जीव का यह घर है ॥ २९ । ४९ ॥

भा० पदार्थः—शर्म=पार्थिवादिगृहम्/जीवस्येदं गृहम् ॥

भाष्यसार—**मनुष्य क्या करें**—विद्वान् सरल व्यवहार से लोगों के शरीर से रोगों का निवारण करें। अर्थात् ब्रह्मचर्य, औषध, पथ्य और उत्तम नियमों के सेवन से शरीरों की रक्षा करें जिससे शरीर पाषाण=पत्थर के समान दृढ़ हों। सोम अर्थात् ओषधियों के राजा तथा पृथिवी के उपयोग का मनुष्यों को उपदेश करें। मनुष्यों को घर तथा सुख प्रदान करें। जैसे शरीरों का पार्थिव (मिट्टी आदि से बना) घर होता है; वैसे जीव का घर यह शरीर है; इसकी पूर्ण रक्षा करें ॥ २९ । ४९ ॥ ●

भारद्वाजः। **वीराः**=**वीरराजपुरुषाः**। विराडनुष्टुप्। गान्धारः ॥

पुना राजधर्ममाह ॥

राजधर्म का फिर उपदेश किया है ॥

आ जङ्घन्ति सान्वेषां जघनाँ२ऽ उप जिघ्नते। अश्वाजनि प्रचेतसोऽश्वान्त्समत्सु चोदय ॥ ५० ॥

पदार्थः—(**आ**) समन्तात् (**जङ्घन्ति**) भृशं घ्नन्ति=ताडयन्ति (**सानु**) अवयवम् (**एषाम्**) अश्वादीनाम् (**जघनान्**) यूनः (**उप**) (**जिघ्नते**) घ्नन्ति=गमयन्ति (**अश्वाजनि**) या अश्वान् जनयति=सुशिक्षितान् करोति तत्सम्बुद्धौ (**प्रचेतसः**) शिक्षया प्रकर्षेण विज्ञापितान् (**अश्वान्**) तुरङ्गान् (**समत्सु**) सङ्ग्रामेषु (**चोदय**) प्रेरय ॥ ५० ॥

अन्वयः—अश्वाजनि विदुषि राज्ञि ! यथा वीरा एषां सानु आजङ्घन्ति जघनानुप जिघ्नते तथा त्वं समत्सु प्रचेतसोऽश्वान्चोदय ॥ ५० ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अश्वाजनि**=**विदुषि राज्ञि** ! या अश्वान् जनयति=सुशिक्षितान् करोति तत्सम्बुद्धौ ! **यथा वीरा एषाम्** अश्वादीनां **सानु** अवयवम् **आ+जङ्घन्ति** समन्ताद् भृशं घ्नन्ति=ताडयन्ति; **जघनान्** यूनः **उपजिघ्नते** घ्नन्ति=गमयन्ति, **तथा त्वं समत्सु** सङ्ग्रामेषु **प्रचेतसः** शिक्षया प्रकर्षेण विज्ञापितान् **अश्वान्** तुरङ्गान् **चोदय** प्रेरय ॥ २९ । ५० ॥

भाषार्थ—हे (अश्वाजनि) घोड़ों को सुशिक्षित करने वाली विदुषी रानी ! जैसे—वीर लोग (एषाम्) इन घोड़े आदि पशुओं के (सानु) अवयव =अंग को (आ+जङ्घन्ति) सब ओर से अत्यन्त ताड़ना करते हैं; (जघनान्) युवकों को (उप+जिघ्नते) चलाते हैं; वैसे तू (समत्सु) संग्रामों में (प्रचेतसः) शिक्षा से अत्यन्त सुशिक्षित (अश्वान्) घोड़ों को (चोदय) प्रेरित कर; चला ॥ २९ । ५० ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यथा राजा राजपुरुषाश्च यानाश्वचालनयुद्धव्यवहारान् जानीयुस्तथा तत्स्त्रियोऽपि विजानन्तु ॥ २९ । ५० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । जैसे राजा और राजपुरुष यान, अश्वचालन तथा युद्ध व्यवहार को जानते हैं; वैसे उनकी स्त्रियाँ भी जानें ॥ २९ । ५० ॥

भाष्यसार—१. **राजधर्म**—घोड़ों को सुशिक्षित करने वाली विदुषी रानी को उचित है कि वह—जैसे वीर राजपुरुष इन घोड़ों आदि के अवयवों का सब ओर से अत्यन्त ताड़न करते हैं अर्थात् यान, अश्व-चालन और युद्ध व्यवहार की शिक्षा ग्रहण करते हैं; वैसे उक्त शिक्षा ग्रहण करें ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । उपमा यह है कि विदुषी रानी भी राजपुरुषों के समान अश्व-चालन आदि की शिक्षा प्राप्त करे ॥ २९ । ५० ॥ ●

भारद्वाजः । **महावीरः**=**सेनापतिः** । **स्पष्टम्** । त्रिष्टुप् धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजधर्म का फिर उपदेश किया है ॥

अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः ।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान् पुमांसं परि पातु विश्वतः ॥ ५१ ॥

पदार्थः—(**अहिरिव**) मेघ इव गर्जन् । **अहिरिति मेघना० ॥ निघं० १ । १० ॥** (**भोगैः**) (**परि**) सर्वतः (**एति**) प्राप्नोति (**बाहुम्**) बाधकं शत्रुम् (**ज्यायाः**) प्रत्यञ्चायाः (**हेतिम्**) बाणम् (**परिबाधमानः**) सर्वतो निवारयन् (**हस्तघ्नः**) यो हस्ताभ्यां हन्ति सः (**विश्वा**) सर्वाणि (**वयुनानि**) विज्ञानानि (**विद्वान्**) (**पुमान्**) पुरुषार्थी (**पुमांसम्**) पुरुषार्थिनम् (**परि**) सर्वथा (**पातु**) रक्षतु (**विश्वतः**) संसारे भवाद्विघ्नात् ॥ ५१ ॥

प्रमाणार्थ—(**अहिरिव**) मेघ इव गर्जन् ! 'अहि' यह पद निघण्टु (१ । १०) में मेघ-नामों में पठित है । मेघ=बादल ॥

अन्वयः—हे मनुष्य ! यो हस्तघ्नो विद्वान् पुमान् भवान् ज्याया हेतिं प्रक्षिप्य बाहुं परिबाधमानः पुमांसं विश्वतः परि पातु सोऽहिरिव भोगैर्विश्वा वयुनानि पर्येति ॥ ५१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्य ! **यो हस्तघ्नः** यो हस्ताभ्यां हन्ति सः **विद्वान् पुमान्** पुरुषार्थी **भवान्, ज्यायाः** प्रत्यञ्चायाः **हेतिं** बाणं **प्रक्षिप्य बाहुं** बाधकं शत्रुं **परिबाधमानः** सर्वतो निवारयन्, **पुमांसं** पुरुषार्थिनं **विश्वतः** संसारे भवाद्विघ्नात् **परि+पातु** सर्वथा रक्षतु, **सोऽहिरिव** मेघ इव गर्जन् **भोगैर्विश्वा** सर्वाणि **वयुनानि** विज्ञानानि **परि+एति** सर्वतः प्राप्नोति ॥ २९।५१॥

भाषार्थ—हे मनुष्य ! जो (हस्तघ्नः) हाथों से मारने वाले (विद्वान्) विद्वान् (पुमान्) पुरुषार्थी आप—(ज्यायाः) प्रत्यंचा=डोरी से (हेतिम्) बाण को फैंक कर (बाहुम्) बाधक शत्रु को (परिबाधमानः) सब ओर से निवारण करते हुए (पुमांसम्) पुरुषार्थी मनुष्य की (विश्वतः) सांसारिक विघ्न से (परि+पातु) सर्वथा रक्षा करते हो, सो—(अहिरिव) मेघ के समान गर्जते हुए (भोगैः) सुख भोगों से (विश्वा) सब (वयुनानि) विज्ञानों को (परि+एति) सब ओर से प्राप्त करते हो ॥ २९ । ५१ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः । यो विद्वान् बाहुबलः, शस्त्रास्त्रप्रक्षेपणवित्, शत्रून् निवारयन्, पुरुषार्थेन सर्वान् सर्वस्माद् रक्षन्, मेघवत् सुखभोगवर्द्धकः स्यात्, स सर्वान् मनुष्यान् विद्याः प्रापयितुं समर्थो भवेत् ॥ २९ । ५१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलंकार है । जो विद्वान् बाहु-बल वाला, शस्त्र-अस्त्रों को चलाने वाला, शत्रुओं का निवारण करता हुआ, पुरुषार्थ से सब की सब से रक्षा करता हुआ, मेघ के समान सुख-भोग को बढ़ाने वाला होता है; वह सब मनुष्यों को विद्या प्राप्त कराने में समर्थ होता है ।।२९। ५१।।

भा० पदार्थः—हस्तघ्नः=बाहुबलः शस्त्रास्त्रप्रक्षेपणवित् । विश्वतः=सर्वस्मात् । अहिरिव=मेघवत् । भोगैः=सुखभोगैः । वयुनानि=विद्याः । पर्येति=प्रापयितुं समर्थो भवति ॥

भाष्यसार—१. **राजधर्म**—हाथों से मारने वाला, पुरुषार्थी, महावीर सेनापति विद्वान्—धनुष की प्रत्यंचा से बाण को फैंक कर बाधक शत्रु का सब ओर से निवारण करे; पुरुषार्थी पुरुष की सांसारिक विघ्न से सर्वथा रक्षा करे; मेघ के समान सुखदायक भोगों को बढ़ाने वाला हो । सब मनुष्यों को विद्या प्राप्त करने में समर्थ हो ।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' पद है; अतः उपमा अलंकार है । उपमा यह है कि महावीर सेनापति विद्वान्—मेघ के समान सुखद भोगों को बढ़ाने वाला हो ॥ २९ । ५१ ॥ ●

भारद्वाजः । **सुवीरः**=स्पष्टम् । भुरिक् पंक्तिः । पञ्चमः ॥

पुना राजप्रजाधर्मविषयमाह ॥

राजा और प्रजा धर्म का फिर उपदेश किया है ॥

वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया ऽ अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः ।
गोभिः सन्नद्धो ऽ असि वीडयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि ॥ ५२ ॥

पदार्थः—(**वनस्पते**) किरणानां रक्षकः सूर्य इव वनादीनां पालक विद्वन् राजन् ! (**वीड्वङ्गः**) प्रशंसिताङ्गः (**हि**) (**भूयाः**) भवेः (**अस्मत्सखा**) अस्माकं मित्रम् (**प्रतरणः**)

शत्रुबलस्योल्लङ्घकः (**सुवीरः**) शोभना वीरा यस्य सः (**गोभिः**) पृथिव्यादिभिः (**सन्नद्धः**) तत्परः=सम्बद्धः (**असि**) (**वीडयस्व**) दृढान् कुरु (**आस्थाता**) समन्तात् स्थिरः सेनापतिः (**ते**) तव (**जयतु**) (**जेत्वानि**) जेतुं योग्यानि शत्रुसैन्यानि ॥ ५२ ॥

अन्वयः—हे वनस्पते ! त्वमस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरो वीड्वङ्गो हि भूयाः। यतो गोभिः सन्नद्धोऽस्यतोऽस्मान् वीडयस्व त आस्थाता वीरो जेत्वानि जयतु ॥ ५२ ॥

सपदार्थान्वयः — **हे वनस्पते !** किरणानां रक्षकः सूर्य इव वनादीनां पालक विद्वन् राजन् ! **त्वमस्मत्सखा** अस्माकं मित्रं, **प्रतरणः** शत्रुबलस्योल्लङ्घकः, **सुवीरः** शोभना वीरा यस्य सः, **वीड्वङ्गः** प्रशंसिताङ्गः, **हि भूयाः** भवेः, **यतो गोभिः** पृथिव्यादिभिः **सन्नद्धः** तत्परः=सम्बद्धः **अस्यतोऽस्मान् वीडयस्व** दृढान् कुरु। **ते** तव **आस्थाता** समन्तात् स्थिरः सेनापतिः **वीरो जेत्वानि** जेतुं योग्यानि शत्रुसैन्यानि **जयतु** ॥ २६ । ५२ ॥

भाषार्थ—हे (वनस्पते) किरणों के रक्षक सूर्य के तुल्य वन आदि के पालक विद्वान् राजन् ! तू—(अस्मत्सखा) हमारा मित्र, (प्रतरणः) शत्रु बल का उल्लंघन करने वाला, (सुवीरः) श्रेष्ठ वीरों वाला, (वीड्वङ्गः) प्रशंसित अङ्गों वाला (हि) निश्चय से (भूयाः) है; क्योंकि तू—(गोभिः) पृथिवी आदि से (सन्नद्धः) तत्पर एवं सम्बद्ध (असि) है; अतः हमें (वीडयस्व) दृढ़ कर। और—(ते) तेरा (आस्थाता) सब ओर स्थिर सेनापति वीर (जेत्वानि) जीतने योग्य शत्रु-सैन्य को (जयतु) जीते ॥ २६ । ५२ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा सूर्येण किरणानां, किरणैः सूर्यस्य नित्यः सम्बन्धोऽस्ति तथा राजसेनाप्रजानां सम्बन्धो भवितुं योग्यः।

यदि सेनेशादयो जितेन्द्रियाः शूरवीराः स्युस्तर्हि सेनाः प्रजा अपि तादृश्यो भवेयुः ॥ २६ । ५२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। जैसे—सूर्य से किरणों का तथा किरणों से सूर्य का नित्य सम्बन्ध है; वैसे—राज-सेना और प्रजा का सम्बन्ध होना योग्य है।

यदि सेनापति आदि लोग जितेन्द्रिय एवं शूरवीर हों तो सेना एवं प्रजा भी वैसी ही हों ॥ २६ । ५२ ॥

भाष्यसार—१. राजा और प्रजा का धर्म—किरणों के रक्षक सूर्य के समान वन आदि का पालक विद्वान् राजा—धार्मिक जनों का मित्र, शत्रु के बल का उल्लंघन करने वाला, उत्तम वीरों वाला, प्रशंसित अङ्गों वाला हो। वह पृथिवी आदि पदार्थों से तत्पर एवं सम्बद्ध हो। अपने राजपुरुषों को दृढ़ करे। उसका सब ओर स्थिर रहने वाला सेनापति वीर जीतने योग्य शत्रु-सेनाओं को जीते।

सूर्य और किरणों के सम्बन्ध के तुल्य राज-सेना और प्रजा का नित्य सम्बन्ध है। सेनापति आदि के तुल्य प्रजा भी शूरवीर तथा जितेन्द्रिय हो।

२. अलंकार—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त हैं; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि राज-सेना और प्रजा का सूर्य और किरणों के समान नित्य सम्बन्ध है ॥ २६ । ५२ ॥

भारद्वाजः। **वीरः=स्पष्टम्**। विराड् जगती। निषादः ॥

पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

दि॒वः पृ॑थि॒व्याः पर्योज॒ ऽ उद्भृ॑तं॒ वन॒स्पति॑भ्यः॒ पर्य्याभृ॑त॒ꣳ सहः॑ ।
अ॒पामो॒ज्मान॒ं परि॒ गोभि॒रावृ॑त॒मिन्द्र॑स्य॒ वज्र॑ꣳ ह॒विषा॒ रथं॑ यज ॥ ५३ ॥

पदार्थः—(**दिवः**) सूर्यात् (**पृथिव्याः**) भूमेः (**परि**) (**ओजः**) पराक्रमम् (**उद्भृतम्**) उत्कृष्टतया धृतम् (**वनस्पतिभ्यः**) वटादिभ्यः (**परि**) (**आभृतम्**) समन्तात् पोषितम् (**सहः**) बलम् (**अपाम्**) जलानां सकाशात् (**ओज्मानम्**) पराक्रमयुक्तं रसम् (**परि**) (**गोभिः**) किरणैः (**आवृतम्**) आच्छादितम् (**इन्द्रस्य**) सूर्यस्य (**वज्रम्**) कुलिशमिव (**हविषा**) आदानेन (**रथम्**) यानम् (**यज**) ॥ ५३ ॥

अन्वयः—हे विद्वंस्त्वं दिवः पृथिव्या उद्भृतमोजः परि यज वनस्पतिभ्य आभृतं सहः परि यज । अपां सकाशादोज्मानं परि यज । इन्द्रस्य गोभिरावृतं वज्रं रथं हविषा यज ॥ ५३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **विद्वन्** ! **त्वं दिवः** सूर्यात् **पृथिव्याः** भूमेः **उद्भृतम्** उत्कृष्टतया धृतम् **ओजः** पराक्रमं **परि+यज, वनस्पतिभ्यः** वटादिभ्यः **आभृतं** समन्तात्पोषितं **सहः** बलं **परि+यज; अपां** जलानां **सकाशादोज्मानं** पराक्रमयुक्तं रसं **परि+यज; इन्द्रस्य** सूर्यस्य **गोभिः** किरणैः **आवृतम्** आच्छादितं **वज्रं** कुलिशमिव **रथं** यानं **हविषा** आदानेन यज ॥ २९ । ५३ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् ! तू—(दिवः) सूर्य से तथा (पृथिव्याः) भूमि से (उद्भृतम्) उत्कृष्टतापूर्वक धारण किये हुए (ओजः) पराक्रम को (परि+यज) प्राप्त कर; (वनस्पतिभ्यः) वट आदि वनस्पतियों से (आभृतम्) सब ओर से पोषित (बलम्) बल को (परि+यज) प्राप्त कर; (अपाम्) जलों से (ओज्मानं) पराक्रम से युक्त रस को (परि+यज) प्राप्त कर; (इन्द्रस्य) सूर्य की (गोभिः) किरणों से (आवृतम्) आच्छादित (वज्रम्) वज्र के तुल्य (रथम्) यान को (हविषा) आदानपूर्वक (यज) प्राप्त कर ॥ २९ । ५३ ॥

भावार्थः—मनुष्यैः पृथिव्यादिभ्यो भूतेभ्यस्तज्जायाः सृष्टेश्च सकाशाद् बल-पराक्रमौ वर्द्धनीयौ, तद्योगेन च विमानादीनि यानानि निर्मातव्यानि ॥ २९ । ५३ ॥

भावार्थ—मनुष्य पृथिवी आदि भूतों से तथा उससे उत्पन्न सृष्टि से बल और पराक्रम को बढ़ावें; और उसके योग से विमान आदि यानों का निर्माण करें ॥ २९ । ५३ ॥

भा० पदार्थः—रथम्=विमानादियानम् । पृथिव्याः=पृथिव्यादिभ्यः भूतेभ्यस्तज्जायाः सृष्टेश्च सकाशात् ।

भाष्यसार—मनुष्य क्या करें—विद्वान् मनुष्य—सूर्य तथा पृथिवी से उत्कृष्टतापूर्वक धारण किये हुए पराक्रम को प्राप्त करें । वट आदि वनस्पतियों से सब ओर से पोषित बल को प्राप्त करें । जलों से पराक्रम-युक्त रस को प्राप्त करें । सूर्य की किरणों से आच्छादित वज्र के तुल्य विमान आदि यानों का उक्त सामग्री के ग्रहण से निर्माण करें ॥ २९ । ५३ ॥

भारद्वाजः । **वीरः**=स्पष्टम् । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को क्या करना चाहिए, इसका फिर उपदेश किया है ॥

इन्द्र॑स्य॒ वज्रो॑ म॒रुता॒मनी॑कं मि॒त्रस्य॒ गर्भो॒ वरु॑णस्य॒ नाभिः॑ ।
सेमां नो॑ ह॒व्यदा॑तिं जुषा॒णो देव॑ रथ॒ प्रति॑ ह॒व्या गृ॑भाय ॥ ५४ ॥

पदार्थः—(**इन्द्रस्य**) विद्युतः (**वज्रः**) निपातः (**मरुताम्**) मनुष्याणाम् (**अनीकम्**) सैन्यम् (**मित्रस्य**) सख्युः (**गर्भः**) अन्तस्थ आशयः (**वरुणस्य**) श्रेष्ठस्य (**नाभिः**) आत्मनो मध्यवर्ती विचारः (**सः**) (**इमाम्**) प्रत्यक्षाम् (**नः**) अस्मान् (**हव्यदातिम्**) दातव्यानां दानम् (**जुषाणः**) सेवमानः (**देव**) दिव्यविद्य (**रथ**) रमणीयस्वरूप (**प्रति**) (**हव्या**) आदातुमर्हाणि वस्तूनि (**गृभाय**) गृहाण ॥ ५४ ॥

अन्वयः—हे देव ! यथेमां हव्यदातिं जुषाणस्स त्वं य इन्द्रस्य वज्रो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिरस्य तं नोऽस्मान् हव्या च प्रति गृभाय ॥ ५४ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे देव** ! दिव्यविद्य [**रथ**] रमणीयस्वरूप ! **यथेमां** प्रत्यक्षां **हव्यदातिं** दातव्यानां दानं **जुषाणः** सेवमानः, **स त्वं य इन्द्रस्य** विद्युतः **वज्रः** निपातः, **मरुतां** मनुष्याणाम् **अनीकं** सैन्यं, **मित्रस्य** सख्युः **गर्भः** अन्तस्थ आशयः, **वरुणस्य** श्रेष्ठस्य **नाभिः** आत्मनो मध्यवर्ती विचारः, **अस्य तं नः**=**अस्मान् हव्या** आदातुमर्हाणि वस्तूनि **च प्रति-गृभाय** गृहाण ॥ २९ । ५४ ॥

भाषार्थ—हे (देव) दिव्य विद्या से युक्त, [रथ] रमणीय स्वरूप वाले वीर ! जैसे—(इमाम्) इस (हव्यदातिम्) देने योग्य पदार्थों के दान का (जुषाणः) सेवन करने वाला है; सो तू—जो (इन्द्रस्य) विद्युत् का (वज्रः) गिरना, (मरुताम्) मनुष्यों की (अनीकम्) सेना, (मित्रस्य) मित्र का (गर्भः) आन्तरिक अभिप्राय (वरुणस्य) श्रेष्ठ पुरुष का (नाभिः) आत्मा का मध्यवर्ती विचार है; अतः (नः) हमें और (हव्या) ग्रहण करने योग्य वस्तुओं को (प्रति+गृभाय) ग्रहण कर ॥ २९ । ५४ ॥

भावार्थः—येषां मनुष्याणां सेनाऽतिश्रेष्ठा, विद्युद्विद्या, मित्राशयः, आप्तविचारो, विद्यादिदानं च स्वीकृतानि सन्ति, अन्येभ्यो देयानि च, ते सर्वतो-मङ्गलावृताः स्युः ॥ २९ । ५४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अति श्रेष्ठ सेना, विद्युत्, विद्या, मित्रों का आशय, आप्त विचार और विद्या आदि दान को स्वीकृत करते हैं; तथा अन्यों को देने योग्य पदार्थों को भी स्वीकार करते हैं; वे सब ओर से मंगल से आवृत होते हैं ॥ २९ । ५४ ॥

भा० पदार्थः—अनीकम्=सेनाऽतिश्रेष्ठा । हव्यदातिम्=विद्यादिदानम् ।

भाष्यसार—**मनुष्य क्या करें**—दिव्य विद्या से युक्त, रमणीय स्वरूप वाला वीर—देने योग्य पदार्थों के दान का सेवन करे । वीर मनुष्य—दुष्टों पर विद्युत् का निपात करे, आप्त=श्रेष्ठ मनुष्यों की सेना बनावे, मित्र के आन्तरिक आशय को समझे, श्रेष्ठ पुरुषों के आत्मा के मध्यवर्ती विचारों को जाने । ग्रहण करने योग्य विद्या आदि को ग्रहण करे तथा अन्यों को देने योग्य पदार्थ प्रदान करे ॥ २९ । ५४ ॥ ●

भारद्वाजः । **वीराः=स्पष्टम्** । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को क्या करना चाहिए, इसका फिर उपदेश किया है ॥

उप श्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत् ।
स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद्दवीयो ऽ अप सेध शत्रून् ॥ ५५ ॥

पदार्थः—(उप) (श्वासय) प्राणय (पृथिवीम्) अन्तरिक्षम् (उत) अपि (द्याम्) विद्युत्प्रकाशम् (पुरुत्रा) बहुविधम् (ते) तव (मनुताम्) विजानातु (विष्ठितम्) व्याप्तम् (जगत्) (सः) (दुन्दुभे) दुन्दुभिरिव गम्भीरगर्जन ! (सजूः) संयुक्तः (इन्द्रेण) ऐश्वर्येण युक्तैः (देवैः) दिव्यैर्विद्वद्भिर्गुणैर्वा (दूरात्) (दवीयः) अतिदूरम् (अप) (सेध) दूरीकुरु (शत्रून्) ॥ ५५ ॥

अन्वयः—हे दुन्दुभे ! त्वमिन्द्रेण देवैः सजूर्दूराच्छत्रून् दवीयोपसेध पुरुत्रा पृथिवीमुत द्यामुपश्वासय भवान् ताभ्यां विष्ठितं जगन्मनुतां तस्य ते राज्यमानन्दितं स्यात् ॥ ५५ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे दुन्दुभे** ! दुन्दुभिरिव गम्भीरगर्जन ! **त्वमिन्द्रेण** ऐश्वर्येण युक्तैः **देवैः** दिव्यैर्विद्वद्भिर्गुणैर्वा **सजूः** संयुक्तः **दूराच्छत्रून् दवीयः** अतिदूरम् **अपसेध** दूरीकुरु; **पुरुत्रा** बहुविधं **पृथिवीम्** अन्तरिक्षम् **उत** अपि **द्यां** विद्युत्प्रकाशम् **उपश्वासय** प्राणय; **भवान् ताभ्यां विष्ठितं** व्याप्तं **जगन्मनुतां** विजानातु; **तस्य ते** तव **राज्यमानन्दितं स्यात्** ॥ २९ । ५५ ॥

भाषार्थ—हे (दुन्दुभे) दुन्दुभि=ढोल के समान गम्भीर गर्जना करने वाले वीर ! तू—(इन्द्रेण) ऐश्वर्य से युक्त (देवैः) विद्वानों वा दिव्य गुणों के साथ (सजूः) संयुक्त होकर (दूरात्) दूर से (शत्रून्) शत्रुओं को (दवीयः) अत्यन्त दूर (अपसेध) कर; (पुरुत्रा) विविध (पृथिवीम्) अन्तरिक्ष (उत) और (द्याम्) विद्युत्-प्रकाश को (उपश्वासय) सबल बना, आप अन्तरिक्ष और विद्युत् से (विष्ठितम्) व्याप्त जगत् को (मनुताम्) जानो; सो (ते) तेरा राज्य आनन्दित हो ॥२९।५५॥

भावार्थः—ये मनुष्या विद्युद्विद्याजैरस्त्रैः शत्रून् दुरे प्रक्षिप्यैश्वर्येण विदुषो दूरादाहूय सत्कुर्युः, अन्तरिक्षविद्युद्भ्यां व्याप्तं सर्वं जगद् विज्ञाय विविधा विद्याः क्रियाः साधयेयुः, ते जगदानन्दयितारः स्युः ॥ २९ । ५५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्युत् विद्या से उत्पन्न अस्त्रों से शत्रुओं को दूर भगाकर, ऐश्वर्य से विद्वानों को दूर से बुलाकर सत्कार करते हैं; अन्तरिक्ष और विद्युत् से व्याप्त सब जगत् को जानकर विविध विद्याओं एवं क्रियाओं को सिद्ध करते हैं; वे जगत् को आनन्दित करने वाले होते हैं ॥ २९ । ५५ ॥

भाष्यसार—मनुष्य क्या करें—दुन्दुभि (ढोल) के समान गम्भीर गर्जना करने वाला वीर—ऐश्वर्य से युक्त दिव्य विद्वानों वा दिव्य गुणों से संयुक्त होकर दूर से शत्रुओं को अत्यन्त दूर करे और ऐश्वर्य के द्वारा विद्वानों का दूर से बुलाकर सत्कार करे। बहुत प्रकार के अन्तरिक्ष तथा विद्युत् के प्रकाश को सबल बनावे तथा उनसे व्याप्त जगत् को जाने। उनसे विविध विद्याओं और क्रियाओं को सिद्ध करे। ऐसे वीर पुरुष का राज्य सदा आनन्दित रहता है ॥ २९ । ५५ ॥ ●

भारद्वाजः । **वादयितारो वीराः=गर्जितसेना वीराः** । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

राजपुरुषैः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

राजपुरुषों को क्या करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

आ क्रन्दय बलमोजो न ऽ आधा निष्टनिहि दुरिता बाधमानः ।
अप प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुना ऽ इत ऽ इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीडयस्व ॥ ५६ ॥

पदार्थः—(**आ**) (**क्रन्दय**) समन्तादाह्वय रोदय वा (**बलम्**) (**ओजः**) पराक्रमम् (**नः**) अस्मभ्यम् (**आ**) (**धाः**) धेहि (**निः**) नितराम् (**स्तनिहि**) विस्तृणीहि (**दुरिता**) दुष्टानि व्यसनानि (**बाधमानः**) निवारयन् (**अप**) (**प्रोथ**) परि प्राप्नुहि (**दुन्दुभे**) दुन्दुभिरिव गर्जितसेन ! (**दुच्छुनाः**) दुष्टाः श्वान इव वर्त्तमानाः (**इतः**) सेनायाः (**इन्द्रस्य**) विद्युतः (**मुष्टिः**) मुष्टिरिव (**असि**) (**वीडयस्व**) दृढय ॥ ५६ ॥

अन्वयः—हे दुन्दुभे ! दुरिता बाधमानस्त्वं नो बलमाक्रन्दयौज आधाः सैन्यं निष्टनिहि ये दुच्छुनास्तानपाक्रन्दय यतस्त्वं मुष्टिरसि तस्मादित इन्द्रस्य वीडयस्व सुखानि प्रोथ ॥ ५६ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे दुन्दुभे** ! दुन्दुभिरिव गर्जितसेन ! **दुरिता** दुष्टानि व्यसनानि **बाधमानः** निवारयन् **त्वं नः** अस्मभ्यं **बलमाक्रन्दय** समन्तादाह्वय रोदय वा, **ओजः** पराक्रमं **आधाः** धेहि, **सैन्यं निः+स्तनिहि** नितरां विस्तृणीहि । **ये दुच्छुनाः** दुष्टा श्वान इव वर्त्तमानाः **तानपाक्रन्दय** समन्तादाह्वय रोदय वा **यतस्त्वं मुष्टिः** मुष्टिरिव **असि, तस्मादितः** सेनायाः **इन्द्रस्य** विद्युतः **वीडयस्व** दृढय, **सुखानि प्रोथ** परिप्राप्नुहि ॥ २९ । ५६ ॥

भाषार्थ—हे (दुन्दुभे) दुन्दुभि=ढोल के समान गर्जित सेना वाले वीर ! (दुरिता) दुष्ट व्यसनों को (बाधमानः) निवारण करता हुआ तू—(नः) हमारे लिए (बलम्) बल=सेना को सब ओर से बुला अथवा शत्रु-सेना को रुला, (ओजः) पराक्रम को (आधाः) धारण कर, सेना का (निः+स्तनिहि) सर्वथा विस्तार कर। जो (दुच्छुनाः) दुष्ट श्वा=कुत्तों के तुल्य मनुष्य हैं; उन्हें (अपाक्रन्दय) सब ओर से बुला वा रुला । क्योंकि तू—(मुष्टिः) मुष्टि=मुट्ठी के समान दृढ़ (असि) है; अतः (इतः) सेना तथा (इन्द्रस्य) विद्युत् के अवयवों को (वीडयस्व) दृढ़ कर और सुखों को (प्रोथ) प्राप्त कर ॥ २९ । ५६ ॥

भावार्थः—राजपुरुषैः श्रेष्ठाः सत्कर्त्तव्याः, दुष्टा रोदनीयाः, सर्वेषां दुर्व्यसनानि दूरीकारयित्वा, सुखानि प्राप्तव्यानि ॥ २९ । ५६ ॥

भावार्थ—राजपुरुष श्रेष्ठों का सत्कार करें और दुष्टों को रुलावें, सब दुर्व्यसनों को दूर कराकर सुखों को प्राप्त करावें ॥ २९ । ५६ ॥

भा० पदार्थः—दुच्छुनाः=दुष्टाः । दुरिता=दुर्व्यसनानि । बाधमानः=दूरी कारयन् ।

भाष्यसार—**राजपुरुष क्या करें**—दुन्दुभि के समान गर्जना करने वाली सेना से युक्त वीर राजपुरुष—दुष्ट व्यसनों का निवारण करें । सब ओर से बल को आमन्त्रित करें । शत्रु-सेना को रुलावें । पराक्रम को धारण करें । सेना का विस्तार करें । जो दुष्ट श्वान=कुत्तों के समान वर्त्ताव करने वाले हों उनका आह्वान करें तथा उन्हें रुलावें । वीर राजपुरुष मुष्टि मुट्ठी के समान दृढ़ हों; अतः सेना एवं विद्युत् के अवयवों को दृढ़ करें । सुखों को प्राप्त करें ॥ २९ । ५६ ॥

भारद्वाजः । **वादयितारो वीराः**=स्पष्टम् । भुरिक् पंक्तिः । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजपुरुषों को क्या करना चाहिए, इसका फिर उपदेश किया है ॥

आमूरज प्रत्यावर्त्तयेमाः केतुमद्दुन्दुभिर्वावदीति ।
समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥ ५७ ॥

पदार्थः—(**आ**) समन्तात् (**अमूः**) शत्रूसेनाः ((**अज**) प्रक्षिप (**प्रत्यावर्त्तय**) (**इमाः**) स्वसेनाः (**केतुमत्**) केतुः=प्रशस्ता ध्वजा यासु ताः । **अत्र स्त्रीप्रत्ययस्य लुक् ।** (**दुन्दुभिः**) (**वावदीति**) (**सम्**) (**अश्वपर्णाः**) अश्वानां पर्णानि=पालनानि यासु सेनासु ताः (**चरन्ति**) गच्छन्ति (**नः**) अस्मान् (**नरः**) नायकाः (**अस्माकम्**) (**इन्द्र**) परमैश्वर्य्ययुक्त (**रथिनः**) प्रशस्तरथयुक्ता वीराः (**जयन्तु**) ॥ ५७ ॥

प्रमाणार्थ—(**केतुमत्**) यहाँ स्त्री-प्रत्यय का लुक् है ।

अन्वयः—हे इन्द्र ! त्वममूराज इमाः केतुमत् प्रत्यावर्त्तय यथा दुन्दुभिर्वावदीति तथा नोऽश्वपर्णाः सञ्चरन्ति येऽस्माकं रथिनो नरः शत्रूञ्जयन्तु ते सत्कृताः स्युः ॥ ५७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **इन्द्र** ! परमैश्वर्य्ययुक्त ! त्वममूः शत्रुसेनाः **आ+अज** समन्तात्प्रक्षिप । **इमाः** स्वसेनाः **केतुमत्** केतुः=प्रशस्ता ध्वजा यासु ताः **प्रत्यावर्त्तय** ।

यथा दुन्दुभिर्वावदीति तथा नः अस्मान् **अश्वपर्णाः** अश्वानां पर्णानि=पालनानि यासु सेनासु ताः **सञ्चरन्ति** गच्छन्ति ।

येऽस्माकं रथिनः प्रशस्तरथयुक्ता वीराः **नरः** नायकाः **शत्रूञ्जयन्तु, ते सत्कृताः स्युः** ॥ २६। ५७॥

भाषार्थ—हे (इन्द्र) परम ऐश्वर्य से युक्त वीर ! तू—(अमूः) उन शत्रु-सेनाओं को (आ+अज) सब ओर फैंक । (इमाः) इन अपनी (केतुमत्) प्रशस्त ध्वजा वाली सेनाओं को (प्रत्यावर्त्तय) लौटा ।

जैसे—(दुन्दुभिः) ढोल (वावदीति) बजता है; वैसे—(नः) हमारी (अश्वपर्णाः) घोड़ों का पालन करने वाली सेनाएँ (संचरन्ति) चलती हैं ।

जो (अस्माकम्) हमारे (रथिनः) प्रशस्त रथों वाले वीर (नरः) नायक शत्रुओं को (जयन्तु) जीतते हैं; उनका सत्कार हो ॥ २६ । ५७ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । ये राजपुरुषाः शत्रुसेना निवर्त्तयितुं स्वसेना योधयितुं समर्थाः स्युस्ते, ते सर्वत्र शत्रून् जेतुं शक्नुयुः ॥ २६ । ५७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है । जो राजपुरुष शत्रु-सेनाओं के निवारण और अपनी सेनाओं को युद्ध कराने में समर्थ होते हैं; वे सर्वत्र शत्रुओं को जीत सकते हैं ॥ २६ । ५७ ॥

भा० पदार्थः—आ+अजः=निवर्त्तय ।

भाष्यसार—१. **राजपुरुष क्या करें**—परम ऐश्वर्य से युक्त वीर राजपुरुष—शत्रु की सेनाओं को सब ओर अस्त-व्यस्त करें । प्रशस्त ध्वजा वाली अपनी सेनाओं को लौटावें । जैसे दुन्दुभि बजे वैसे अपनी सेनाओं को चलावें । प्रशस्त रथ वाले वीर नायक शत्रुओं को जीतें । जो वीर राजपुरुष मन्त्रोक्त प्रकार से शत्रु-सेनाओं का निवारण तथा अपनी सेनाओं को युद्ध कराने में समर्थ होते हैं; वे सर्वत्र शत्रुओं को जीत सकते हैं ।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि जैसे दुन्दुभि बजे वैसे वीर राजपुरुष अपनी सेना का संचालन करें ॥ २६ । ५७ ॥

भारद्वाजः । **विद्वांसः**=स्पष्टम् । भुरिगत्यष्टिः । गान्धारः ।।

अथ कीदृशाः पशवः किंगुणा इत्याह ।।

अब कैसे पशु कैसे गुणों वाले होते हैं, यह उपदेश किया है ।।

आग्नेयः कृष्णग्रीवः सारस्वती मेषी बभ्रुः सौम्यः पौष्णः श्यामः शितिपृष्ठो बार्हस्पत्यः शिल्पो वैश्वदेव ऽ ऐन्द्रोऽरुणो मारुतः कल्माष ऽ ऐन्द्राग्नः सꣳहितोऽधोरामः सावित्रो वारुणः कृष्ण ऽ एकशितिपात्पेत्वः ॥ ५८ ॥

पदार्थः—(**आग्नेयः**) अग्निदेवताकः (**कृष्णग्रीवः**) कृष्णा ग्रीवा यस्य सः (**सारस्वती**) सरस्वतीदेवताका (**मेषी**) (**बभ्रुः**) धूम्रवर्णः (**सौम्यः**) सोमदेवताकः (**पौष्णः**) पूषदेवताकाः (**श्यामः**) श्यामवर्णः (**शितिपृष्ठः**) कृष्णपृष्ठः (**बार्हस्पत्यः**) बृहस्पतिदेवताकः (**शिल्पः**) नानावर्णः (**वैश्वदेवः**) विश्वदेवदेवताकः (**ऐन्द्रः**) इन्द्रदेवताकः (**अरुणः**) रक्तवर्णः (**मारुतः**) मरुद्देवताकः (**कल्माषः**) श्वेतकृष्णवर्णः (**ऐन्द्राग्नः**) इन्द्राग्निदैवत्यः (**संहितः**) दृढाङ्गः (**अधोरामः**) अधाक्रीडी (**सावित्रः**) सवितृदेवताकः (**वारुणः**) वरुणदैवत्यः (**कृष्णः**) (**एकशितिपात्**) एकः शितिः पादोऽस्य (**पेत्वः**) पतनशीलः ।। ५८ ।।

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यूयं य आग्नेयः स कृष्णग्रीवो या सारस्वती सा मेषी यः सौम्यः स बभ्रुर्यः पौष्णः स श्यामो बार्हस्पत्यः स शितिपृष्ठो यो वैश्वदेवः स शिल्पो य ऐन्द्रः सोऽरुणो यो मारुतः स कल्माष य ऐन्द्राग्नः स संहितो यः सावित्रः सोऽधोरामो य एकशितिपात्पेत्वः कृष्णः स वारुणश्चेत्येतान् विजानीत ।। ५८ ।।

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यूयं य आग्नेयः** अग्निदेवताकः **स कृष्णग्रीवः** कृष्णा ग्रीवा यस्य सः, **या सारस्वती** सरस्वतीदेवताका **सा मेषी यः सौम्यः** सोमदेवताकः **स बभ्रुः** धूम्रवर्णः, **यः पौष्णः** पूषदेवताकाः **स श्यामः** श्यामवर्णः, **यो बार्हस्पत्यः** बृहस्पतिदेवताकः **स शितिपृष्ठः** कृष्णपृष्ठः, **यो वैश्वदेवः** विश्वदेवदेवताकः **स शिल्पः** नानावर्णः, **य ऐन्द्रः** इन्द्रदेवताकः **सोऽरुणः** रक्तवर्णः, **यो मारुतः** मरुद्देवताकः **स कल्माषः** श्वेतकृष्णवर्णः, **य ऐन्द्राग्नः** इन्द्राग्निदैवत्यः **स संहितः** दृढाङ्गः, **यः सावित्रः** सवितृदेवताकः **सोऽधोरामः** अधाक्रीडी, **य एकशितिपात्** एकः शितिः पादोऽस्य **पेत्वः** पतनशीलः **कृष्णः स वारुणः** वरुणदैवत्यः **चेत्येतान् विजानीत** ।। २९ । ५८ ।।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—जो (आग्नेयः) अग्नि देवता वाला पशु है वह (कृष्णग्रीवः) कृष्ण ग्रीवा वाला है; जो (सारस्वती) सरस्वती देवता वाली है; वह (मेषी) भेड़ है; जो (सौम्यः) सोम देवता वाला पशु है वह (बभ्रुः) धूम्र वर्ण वाला है; जो (पौष्णः) पूषा देवता वाला पशु है वह (श्यामः) श्याम वर्ण वाला है; जो (बार्हस्पत्यः) बृहस्पति देवता वाला पशु है वह (शितिपृष्ठः) कृष्ण पृष्ठ वाला है, जो (वैश्वदेवः) विश्वदेव देवता वाला पशु है वह (शिल्पः) नाना वर्ण वाला है; जो (ऐन्द्रः) इन्द्र देवता वाला पशु है वह (अरुणः) रक्त वर्ण वाला है; जो (मारुतः) मरुत् देवता वाला पशु है; वह (कल्माषः) श्वेत और कृष्ण वर्ण वाला है; जो (ऐन्द्राग्नः) इन्द्र और अग्नि देवता वाला पशु है वह (संहितः) दृढ़ अंगों वाला है; जो (सावित्रः) सविता देवता वाला पशु है वह (अधोरामः) नीचे क्रीडा करने वाला है; जो

(एकशितिपात्) एक काले पग वाला पशु है वह (पेत्वः) पतनशील है; और जो (कृष्णः) कृष्ण वर्ण वाला पशु है; वह (वारुणः) वरुण देवता वाला है; ऐसा जानो ॥ २९ । ५८ ॥

भावार्थः—हे मनुष्याः ! युष्माभिर्यद्दैवत्या ये पशवो विख्यातास्ते तत्तद्गुणाऽतिदिष्टाः सन्तीति वेद्यम् ॥ २९ । ५८ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—जिस देवता वाले जो जो पशु विख्यात हैं; उन उन गुणों से युक्त बतलाए हैं; ऐसा जानो ॥ २९ । ५८ ॥

भाष्यसार—**कैसे पशु किन गुणों वाले होते हैं**—कृष्ण ग्रीवा=गर्दन वाले पशु अग्नि के गुणों से युक्त हैं, भेड़ सरस्वती के गुणों से युक्त है। धूम्र वर्ण वाले पशु सोम के गुणों से युक्त हैं। श्याम वर्ण वाले पशु पूषा के गुणों से युक्त हैं। काली पीठ वाले पशु बृहस्पति के गुणों से युक्त हैं। नाना वर्ण वाले पशु विश्वदेव के गुणों से युक्त हैं। रक्त वर्ण वाले पशु इन्द्र के गुणों से युक्त हैं। श्वेत और कृष्ण वर्ण वाले पशु मरुत्=वायु के गुणों से युक्त हैं। दृढ़ अंगों वाले पशु इन्द्र और अग्नि के गुणों से युक्त हैं। नीचे क्रीडा करने वाले पशु सविता=सूर्य के गुणों से युक्त हैं। जिनका एक पांव श्वेत है; वे पतनशील कृष्ण वर्ण वाले पशु वरुण (जल) के गुणों से युक्त हैं। सब मनुष्य पशुओं के इस मन्त्रोक्त गुण विज्ञान को समझें ॥ २९ । ५८ ॥

भारद्वाजः । **अग्न्यादयः=अग्न्यादिगुणाः पशवः** । भुरिगतिशक्वरी । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

कैसे पशु किन गुणों वाले होते हैं, यह फिर उपदेश किया है ॥

अ॒ग्नयेऽनी॑कवते॒ रोहि॑ताञ्जिरन॒ड्वान॒धोरा॑मौ सावि॒त्रौ पौ॒ष्णौ र॑ज॒तना॑भी वैश्वदे॒वौ पि॒शङ्गौ॑ तूप॒रौ मा॑रु॒तः क॒ल्माष॑ऽआग्ने॒यः कृ॒ष्णोऽजः सा॑रस्व॒ती मे॒षी वा॑रु॒णः पेत्व॒ः ॥ ५९ ॥

पदार्थः—(**अग्नये**) विज्ञानादिगुणप्रकाशाय (**अनीकवते**) प्रशस्तसेनायुक्ताय (**रोहिताञ्जिः**) रोहिताः=रक्ता अञ्जयो=लक्षणानि यस्य सः (**अनड्वान्**) वृषभः (**अधोरामौ**)) अधोभागे श्वेतवर्णौ (**सावित्रौ**) सवितृगुणौ (**पौष्णौ**) पूषदैवत्यौ (**रजतनाभी**) रजतवर्णनाभियुक्तौ (**वैश्वदेवौ**) (**पिशङ्गौ**) पीतवर्णौ (**तूपरौ**) अविद्यमानशृङ्गौ (**मारुतः**) मरुद्दैवत्यः (**कल्माषः**) (**आग्नेयः**) अग्निदैवत्यः (**कृष्णः**) (**अजः**) (**सारस्वती**) वाक्गुणः (**मेषी**) (**वारुणः**) जलगुणः (**पेत्वः**) शीघ्रगामी ॥ ५९ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः यूयं येऽनीकवतेऽग्नये रोहिताञ्जिरनड्वान् सावित्रावधोरामौ पौष्णौ रजतनाभी वैश्वदेवौ तूपरौ पिशङ्गौ मारुतः कल्माषः आग्नेयः कृष्णोऽजः सारस्वती मेषो वारुणः पेत्वश्चास्ति तान्यथा गुणं संप्रयोजयत ॥ ५९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः ! यूयं योऽनीकवते** प्रशस्तसेनायुक्ताय **अग्नये** विज्ञानादिगुणप्रकाशाय, **रोहिताञ्जिः** रोहिताः=रक्ता अञ्जयो=लक्षणानि यस्य सः **अनड्वान्** वृषभः, **सावित्रौ** सवितृगुणौ **अधोरामौ** अधोभागे श्वेतवर्णौ, **पौष्णौ** पूषदैवत्यौ **रजतनाभी** रजतवर्णनाभियुक्तौ,

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जो—(अनीकवते) प्रशस्त सेना से युक्त, (अग्नये) विज्ञान आदि गुणों के प्रकाश वाले सेनापति के लिए—(रोहिताञ्जिः) रोहित=लाल अञ्जि=लक्षणों वाला (अनड्वान्) बैल, (सावित्रौ) सविता के गुणों से युक्त (अधोरामौ) अधोभाग में श्वेत वर्ण

वैश्वदेवौ तूपरौ अविद्यमानशृङ्गौ **पिशङ्गौ** पीतवर्णौ, **मारुतः** मरुद्दैवत्यः **कल्माषः, आग्नेयः** अग्निदैवत्यः **कृष्णोऽजः, सारस्वती** वाक्गुणः **मेषी, वारुणः** जलगुणः **पेत्वः** शीघ्रगामी **चास्ति; तान्यथा गुणं संप्रयोजयत** ॥ २९ । ५९ ॥

वाले पशु, (पौष्णौ) पूषा देवता वाले (रजतनाभी) रजत=चाँदी के तुल्य श्वेत नाभि से युक्त पशु, (वैश्वदेवौ) विश्वदेव देवता वाले (तूपरौ) शृङ्ग-रहित (पिशङ्गौ) पीत वर्ण वाले पशु, (मारुतः) मरुत् देवता वाला (कल्माषः) श्वेत और कृष्ण वर्ण वाला पशु; (आग्नेयः) अग्नि देवता वाला (कृष्णः) कृष्ण=काला (अजः) बकरा; (सारस्वती) वाणी के गुणों वाली (मेषी) भेड़; और (वारुणः) जल के गुणों वाला (पेत्वः) शीघ्रगामी पशु है; उनका यथागुण संप्रयोग करो ॥ २९ । ५९ ॥

भावार्थः—अत्र पशूनां यावन्तो गुणा उक्तास्ते सर्वे गुणा एकस्मिन्नग्नौ संहिताः सन्तीति वेद्यम् ॥ २९ । ५९ ॥

भावार्थ—यहाँ पशुओं के जितने गुण कहे हैं; वे सब गुण एक अग्नि में इकट्ठे हैं; ऐसा जानो ॥ २९ । ५९ ॥

भाष्यसार—**कैसे पशु किन गुणों वाले होते हैं**—सब मनुष्य—प्रशस्त सेना से युक्त, विज्ञान आदि गुणों का प्रकाश करने वाले सेनापति के लिए—लाल लक्षण=चिह्नों से युक्त वृषभ का प्रयोग करें। अधोभाग में श्वेत वर्ण वाले पशु सविता=सूर्य के गुणों से युक्त हैं। रजत=चाँदी के वर्ण की नाभि से युक्त पशु पूषा के गुणों से युक्त हैं। शृङ्ग रहित पीले वर्ण वाले पशु विश्वदेव के गुणों से युक्त हैं। कल्माष=श्वेत और कृष्ण वर्ण वाले पशु मरुत्=वायु के गुणों से युक्त हैं। कृष्ण वर्ण वाला अज=बकरा अग्नि के गुणों से युक्त है। भेड़ (स्त्री) सरस्वती (वाणी) के गुणों से युक्त है। शीघ्रगामी पशु जल के गुणों से युक्त हैं। सब मनुष्य इन्हें यथागुण व्यवहार में प्रयोग करें ॥ २९ । ५९ ॥

भारद्वाजः। **अग्न्यादयः**=अग्न्यादिप्रयोगः। पूर्वस्य विराट् प्रकृतिः,
वैराजाभ्यामित्युत्तरस्य प्रकृतिः। धैवतः ॥

कीदृशा जनाः कार्याणि साद्धुं शक्नुवन्तीत्याह ॥

कैसे मनुष्य कार्यसिद्धि कर सकते हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

अग्नये गायत्राय त्रिवृते राथन्तरायाष्टाकपाल ऽ इन्द्राय त्रैष्टुभाय पञ्चदशाय बार्हतायैकादशकपालो विश्वेभ्यो देवेभ्यो जागतेभ्यः सप्तदशेभ्यो वैरूपेभ्यो द्वादशकपालो मित्रावरुणाभ्यामानुष्टुभाभ्यामेकविꣳशाभ्यां वैराजाभ्यां पयस्या बृहस्पतये पाङ्क्ताय त्रिणवाय शाक्वराय चरुः सवित्र ऽ औष्णिहाय त्रयस्त्रिꣳशाय रैवताय द्वादशकपालः प्राजापत्यश्चरुरदित्यै विष्णुपत्न्यै चरुरग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालोऽनुमत्या ऽ अष्टाकपालः ॥ ६० ॥

पदार्थः—(**अग्नये**) पावकाय (**गायत्राय**) गायत्रादिछन्दोविज्ञापिताय (**त्रिवृते**) यस्त्रिभिः सत्त्वरजस्तमोगुणैर्युक्तस्तस्मै (**राथन्तराय**) यो रथैः समुद्रादींस्तरति तस्मै (**अष्टाकपालः**) अष्टसु कपालेषु संस्कृतः (**इन्द्राय**) ऐश्वर्याय (**त्रैष्टुभाय**) त्रिष्टुप्छन्दसा प्रख्याताय (**पञ्चदशाय**) पञ्चदश च यस्मिन्

सन्ति तस्मै (**बार्हताय**) बृहतां सम्बन्धिने (**एकादशकपालः**) एकादशसु कपालेषु संस्कृतः पाकः (**विश्वेभ्यः**) समस्तेभ्यः (**देवेभ्यः**) दिव्यगुणेभ्यो जनेभ्यः (**जागतेभ्यः**) जगतीबोधितेभ्यः (**सप्तदशेभ्यः**) एतत्सङ्ख्यया सङ्ख्यातेभ्यः (**वैरूपेभ्यः**) विविधस्वरूपेभ्यः (**द्वादशकपालः**) द्वादशसु कपालेषु संस्कृतः (**मित्रावरुणाभ्याम्**) प्राणोदानाभ्याम् (**आनुष्टुभाभ्याम्**) (**एकविंशाभ्याम्**) एतत्सङ्ख्यायुक्ताभ्याम् (**वैराजाभ्याम्**) विराट्-छन्दोज्ञापिताभ्याम् (**पयस्या**) पयसि=जले कुशलौ (**बृहस्पतये**) बृहतां पालकाय (**पाङ्क्ताय**) पङ्क्तिषु साधवे (**त्रिणवाय**) त्रिभिः कर्मोपासनाज्ञानैः स्तुताय (**शाक्वराय**) शक्तिजाय (**चरुः**) पाकः (**सवित्रे**) ऐश्वर्योत्पादकाय (**औष्णिहाय**) उष्णिग्बोधिताय (**त्रयस्त्रिंशाय**) एतत्सङ्ख्याताय (**दैवताय**) धनसम्बन्धिने (**द्वादशकपालः**) द्वादशसु कपालेषु संस्कृतः (**प्राजापत्यः**) प्रजापतिदेवताकः (**चरुः**) स्थालीपाकः (**अदित्यै**) अखण्डिताया अन्तरिक्षरूपायै (**विष्णुपत्न्यै**) विष्णुना=व्यापकेन पालितायै (**चरुः**) पाकः (**अग्नये**) विद्युद्रूपाय (**वैश्वानराय**) विश्वेषु=सर्वेषु नरेषु राजमानाय (**द्वादशकपालः**) (**अनुमत्यै**) यानुमन्यते तस्यै (**अष्टाकपालः**) अष्टसु कपालेषु संसाधितः ॥ ६० ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! युष्माभिस्त्रिवृते राथन्तराय गायत्रायाग्नयेऽष्टाकपालः पञ्चदशाय त्रैष्टुभाय बार्हतायेन्द्रायैकादशकपालो विश्वेभ्यो जागतेभ्यो सप्तदशेभ्यो वैरूपेभ्यो देवेभ्यो द्वादशकपाल आनुष्टुभाभ्यामेकविंशाभ्यां वैराजाभ्यां मित्रावरुणाभ्यां पयस्या बृहस्पतये पाङ्क्ताय त्रिणवाय शाक्वराय चरूरौष्णिहाय त्रयस्त्रिंशाय दैवताय सवित्रे द्वादशकपालः प्राजापत्यश्चरुरदित्यै विष्णुपत्न्यै चरुर्वैश्वानरायाग्नये द्वादशकपालोनुमत्या अष्टाकपालश्च निर्मातव्यः ॥ ६० ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! **युष्माभिस्त्रिवृते** यस्त्रिभिः सत्वरजस्तमोगुणैर्युक्तस्तस्मै **राथन्तराय** यो रथैः समुद्रादींस्तरति तस्मै **गायत्राय** गायत्रादिछन्दोविज्ञापिताय **अग्नये** पावकाय **अष्टाकपालः** अष्टसु कपालेषु संस्कृतः, **पञ्चदशाय** पञ्च दश च यस्मिन् सन्ति तस्मै **त्रैष्टुभाय** त्रिष्टुप्-छन्दसा प्रख्याताय **बार्हताय** बृहतां सम्बन्धिने **इन्द्राय** ऐश्वर्याय **एकादशकपालः** एकादशसु कपालेषु संस्कृतः पाकः, **विश्वेभ्यः** समस्तेभ्यः **जागतेभ्यः** जगतीबोधितेभ्यः **सप्तदशेभ्यः** एतत्सङ्ख्यया सङ्ख्यातेभ्यः **वैरूपेभ्यः** विविधस्वरूपेभ्यः **देवेभ्यः** दिव्यगुणेभ्यो जनेभ्यः **द्वादशकपालः** द्वादशसु कपालेषु संस्कृतः, **आनुष्टुभाभ्यामेकविंशाभ्याम्** एतत्सङ्ख्यायुक्ताभ्यां **वैराजाभ्यां** विराट्छन्दोज्ञापिताभ्यां **मित्रावरुणाभ्यां** प्राणोदानाभ्यां **पयस्या** पयसि=जले कुशलौ, **बृहस्पतये** बृहतां पालकाय **पाङ्क्ताय** पङ्क्तिषु साधवे **त्रिणवाय** त्रिभिः कर्मोपासनाज्ञानैः स्तुताय **शाक्वराय** शक्तिजाय **चरुः** पाकः, **औष्णिहाय** उष्णिग्बोधिताय **त्रयस्त्रिंशाय** एतत्सङ्ख्याताय **दैवताय** धनसम्बन्धिने **सवित्रे** ऐश्वर्योत्पादकाय **द्वादशकपालः** द्वादशसु

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—(त्रिवृते) तीन सत्व, रज, तम गुणों से युक्त, (राथन्तराय) रथ=यानों से समुद्र आदि को तरने वाले, (गायत्राय) गायत्री आदि छन्दों से विज्ञापित (अग्नये) अग्नि के लिए (अष्टाकपालः) आठ कपालों में संस्कृत पाक; (पञ्चदशाय) ५+१०=१५ पन्द्रह, (त्रैष्टुभाय) त्रिष्टुप् छन्द से विज्ञापित (बार्हताय) बड़ों से सम्बन्धित (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिए (एकादशकपालः) ग्यारह कपालों में संस्कृत पाक; (विश्वेभ्यः) सब (जागतेभ्यः) जगती छन्द से बोधित (सप्तदेशभ्यः) सतरह (वैरूपेभ्यः) विविध रूप वाले (देवेभ्यः) दिव्य गुणों से युक्त जनों के लिए (द्वादशकपालः) बारह कपालों में संस्कृत पाक, (आनुष्टुभाभ्याम्) अनुष्टुप् छन्द से विज्ञापित (एकविंशाभ्याम्) इक्कीस (वैराजाभ्याम्) विराट् छन्द से विज्ञापित (मित्रावरुणाभ्याम्) प्राण और उदान के लिए (पयस्या) जल में कुशल, (बृहस्पतये) बड़ों के पालक; (पाङ्क्ताय) पंक्तियों में श्रेष्ठ (त्रिणवाय) कर्म, उपासना और ज्ञान तीनों से स्तुति करने योग्य (शाक्वराय) शक्तिशाली पुरुष के लिए (चरुः) चरु नामक पाक, (औष्णिहाय) उष्णिक्

कपालेषु संस्कृतः **प्राजापत्यः** प्रजापतिदेवताकः **चरुः** स्थालीपाकः, **अदित्यै** अखण्डिताया अन्तरिक्षरूपायै **विष्णुपत्न्यै** विष्णुना=व्यापकेन पालितायै **चरुः** पाकः, **वैश्वानराय** विश्वेषु=सर्वेषु नरेषु राजमानाय **अग्नये** विद्युद्रूपाय **द्वादशकपालोऽनुमत्यै** यानुमन्यते तस्यै **अष्टाकपालः** अष्टसु कपालेषु संसाधितः **च निर्मातव्यः** ॥ २६ । ६० ॥

छन्द से बोधित (त्रयस्त्रिंशाय) तैंतीस (दैवताय) धन-सम्बन्धी (सवित्रे) ऐश्वर्य के उत्पादक पुरुष के लिए (द्वादशकपालः) बारह कपालों में संस्कृत पाक (प्राजापत्यः) प्रजापति देवता वाला (चरुः) चरु नामक स्थाली पाक—(अदित्यै) अखण्डित अन्तरिक्ष रूप वाली (विष्णुपत्न्यै) विष्णु=व्यापक गुण से पालित विद्युत् के लिए (चरुः) उक्त चरु नामक पाक, (वैश्वानराय) सब नरों में राजमान (अग्नये) विद्युत् रूप अग्नि के लिए (द्वादशकपालः) बारह कपालों में संस्कृत पाक; और (अनुमत्यै) अनुमति के लिए (अष्टाकपालः) आठ कपालों में संस्कृत पाक बनाओ ॥ २६ । ६० ॥

भावार्थः—येऽग्न्यादिप्रयोगायाष्टाविधादीनि यन्त्राणि निर्मिमीरंस्ते सृष्टैर्व्यक्तैः पदार्थैरनेकानि कार्याणि साद्धुं शक्नुयुरिति ॥ २६ । ६० ॥

भावार्थ—जो अग्नि आदि के प्रयोग के लिए अष्टाविध आदि यन्त्रों का निर्माण करते हैं; वे रचे हुए प्रसिद्ध पदार्थों से अनेक कार्यों को सिद्ध कर सकते हैं ॥ २६ । ६० ॥

भा० पदार्थः—अग्नये=अग्निप्रयोगाय । अष्टाकपालः=अष्टाविधानि यन्त्राणि ॥

भाष्यसार—कैसे लोग कार्यों को सिद्ध कर सकते हैं—जो मनुष्य—सत्त्व, रज और तम तीन गुणों से युक्त, रथों के द्वारा समुद्रों को तरने वाले, गायत्री छन्द से विज्ञापित अग्नि के लिए—आठ कपालों में संस्कृत पाक का निर्माण करते हैं; पन्द्रह गुणों से युक्त, त्रिष्टुप् छन्द से प्रख्यात, बड़ों से सम्बन्धित ऐश्वर्य के लिए—ग्यारह कपालों में संस्कृत पाक का निर्माण करते हैं; समस्त गुणों से युक्त, जगती छन्द से बोधित, सतरह विविध स्वरूप वाले, दिव्य गुणों से युक्त जनों के लिए—बारह कपालों में संस्कृत पाक का निर्माण करते हैं; अनुष्टुप् छन्द से विज्ञापित इक्कीस गुणों से युक्त, विराट् छन्द से विज्ञापित प्राण और उदान के लिए—पयस्य (जल-कुशल) पाकविशेष का निर्माण करते हैं; बड़ों के पालक, पंक्तियों में श्रेष्ठ, ज्ञान-कर्म-उपासना से स्तुति को प्राप्त शक्तिमान् पुरुष के लिए 'चरु' नामक पाकविशेष का निर्माण करते हैं; उष्णिक् छन्द से बोधित, तैंतीस गुणों से युक्त, धन-सम्बन्धी, ऐश्वर्य के उत्पादक पुरुष के लिए—बारह कपालों में संस्कृत, प्रजापति के गुणों से युक्त 'चरु' नामक स्थालीपाक का निर्माण करते हैं; अखण्डित, अन्तरिक्ष रूप वाली, व्यापक गुण से पालित विद्युत् के लिए 'चरु' नामक पाक विशेष का निर्माण करते हैं; सब नरों में विराजमान, विद्युत् रूप अग्नि के लिए—बारह कपालों में संस्कृत पाक का निर्माण करते हैं; अनुकूल मति की प्राप्ति के लिए—आठ कपालों में संस्कृत पाक का निर्माण करते हैं—वे सब कार्यों को सिद्ध कर सकते हैं ॥ २६ । ६० ॥

[पूर्वापराध्यायार्थसंगतिमाह—]

अस्मिन्नध्याये अग्निविद्वद्गृहप्राणापानाऽध्यापकोपदेशकवागश्वाग्निविद्वत्प्रशंसनीयपदार्थगृह-

इस अध्याय में—अग्नि (१-३), विद्वान् (४), घर (५), प्राण-अपान (६), अध्यापक-उपदेशक (७),

द्वाररात्रिदिनशिल्पिश्रीशस्त्रास्त्रसेनाज्ञानिरक्षासृष्ट्-युपकारग्रहणविघ्ननिवारणशत्रुसेनापराजयस्वसेना-साङ्गरक्षणपशुगुणयज्ञानां निरूपणादेतदर्थस्य पूर्वाऽध्यायोक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति बोध्यम् ॥ २९ ॥

वाणी (८), अश्व (९), अग्नि (१०), विद्वानों से प्रशंसनीय पदार्थ (११), गृहद्वार (३०), रात-दिन (३१), शिल्पी (३२), श्री (३१), शस्त्र-अस्त्र (३९-४५), सेना (४६), ज्ञानी (४७), रक्षा (४८), सृष्टि से उपकार ग्रहण (५३), विघ्ननिवारण (५६), शत्रु-सेना का पराजय तथा अपने सेना के अंगों की रक्षा (५७), पशु गुण (५८-५९) और यज्ञ (६०) के निरूपण से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति है; ऐसा जानो ॥ २९ ॥

इति श्रीयुतपण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते दयानन्द-यजुर्वेदभाष्यभास्करे
एकोनत्रिंशोऽध्यायः सम्पूर्णः ॥

॥ ओ३म् ॥

अथ त्रिंशोऽध्याय आरभ्यते

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्नऽआसुव ॥ १ ॥

य० ३० । ३ ॥

नारायणः । **सविता**=जगदीश्वरः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

तत्रादावीश्वरात्कि प्रार्थनीयमित्याह ॥

अब तीसवें अध्याय का आरम्भ है । इसके प्रथम मन्त्र में ईश्वर से क्या प्रार्थना करनी चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

देव सवितः प्र सुव यज्ञं प्र सुव यज्ञपतिं भगाय ।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥ १ ॥

पदार्थः—(देव) दिव्यस्वरूप (सवितः) सकलैश्वर्ययुक्त जगदुत्पादक (प्र) प्रकर्षेण (सुव) संपादय (यज्ञम्) राजधर्माख्यम् (प्र) (सुव) उत्पादय (यज्ञपतिम्) यज्ञस्य=राज्यस्य पालकम् (भगाय) ऐश्वर्ययुक्ताय धनाय । भग इति धनना० ॥ निघं० २ । १० ॥ (दिव्यः) दिवि=शुद्धस्वरूपे भवः (गन्धर्वः) यो गां=पृथिवीं धरति सः (केतपूः) यः केतं=विज्ञानं पुनाति सः (केतम्) प्रज्ञानम् । केत इति प्रज्ञाना० ॥ निघं० ३ । ९ ॥ (नः) अस्माकम् (पुनातु) पवित्रयतु (वाचस्पतिः) वाण्याः पालकः (वाचम्) वाणीम् (नः) अस्माकम् (स्वदतु) आस्वादयतु ॥ १ ॥

प्रमाणार्थ—(भगाय) ऐश्वर्ययुक्ताय धनाय । 'भग' यह पद निघण्टु (२ । १०) में धन-नामों में पठित है । (केतम्) प्रज्ञानम् । 'केत' यह पद निघण्टु (३ । ९) में प्रज्ञा-नामों में पठित है ॥

अन्वयः—हे देव सवितर्जगदीश्वर ! त्वं यो दिव्यो गन्धर्वः केतपू राजा नः केतं पुनातु यो वाचस्पतिर्नो वाचं स्वदतु तं यज्ञपतिं भगाय प्रसुव यज्ञञ्च प्रसुव ॥ १ ॥

सपदार्थान्वयः—हे देव दिव्य स्वरूप **सवितः=जगदीश्वर !** सकलैश्वर्ययुक्त जगदुत्पादक ! **त्वं यो दिव्यः** दिवि=शुद्धस्वरूपे

भाषार्थ—हे (देव) दिव्य स्वरूप वाले, (सवितः) सकल ऐश्वर्य से युक्त, जगत् के उत्पादक जगदीश्वर ! तू—जो (दिव्यः) शुद्ध स्वरूप में

भवः, **गन्धर्वः** यो गां=पृथिवीं धरति सः, **केतपूः**= **राजा** यः केतं=विज्ञानं पुनाति सः, **नः** अस्माकं **केतं** प्रज्ञानं **पुनातु** पवित्रयतु, **यो वाचस्पतिः** वाण्याः पालकः **नः** अस्माकं **वाचं** वाणीं **स्वदतु** आस्वादयतु, **तं यज्ञपतिं** यज्ञस्य=राज्यस्य पालकं **भगाय** ऐश्वर्ययुक्ताय धनाय **प्र+सुव** प्रकर्षेण सम्पादय **यज्ञं** राजधर्माख्यं **च प्र+सुव** प्रकर्षेण उत्पादय ॥३०।१॥

वर्तमान, (गन्धर्वः) गौ=पृथिवी को धारण करने वाला, (केतपूः) केत=विज्ञान को पवित्र करने वाला राजा (नः) हमारे (केतम्) विज्ञान को (पुनातु) पवित्र करे; जो (वाचस्पतिः) वाणी का पालक राजा (नः) हमारी (वाचम्) वाणी को (स्वदतु) विद्या से आस्वादित करे; उस (यज्ञपतिम्) यज्ञ=राज्य के पालक राजा को (भगाय) ऐश्वर्य से युक्त धन के लिए (प्र+सुव) उत्तम रीति से तैयार कर; और (यज्ञम्) राजधर्म नामक यज्ञ को (प्र+सुव) उत्तम रीति से उत्पन्न कर ॥ ३० । १ ॥

भावार्थः—यो विद्याशिक्षावर्द्धकः, शुद्ध-गुणकर्मस्वभावो, राज्यं पातुं यथायोग्यैश्वर्यवर्द्धकः, धार्मिकाणां पालकः, परमेश्वरोपासकः, सकलशुभ-गुणाढ्यो भवेत्; स एव राजा भवितुं योग्यो भवति ॥ ३० । १ ॥

भावार्थ—जो विद्या और शिक्षा को बढ़ाने वाला, शुद्ध गुण-कर्म-स्वभाव वाला, राज्य की रक्षा के लिए यथायोग्य ऐश्वर्य को बढ़ाने वाला, धार्मिकों का पालक, परमेश्वर का उपासक, सकल शुभ गुणों से भरपूर हो; वही राजा बनने योग्य है ॥ ३० । १ ॥

भा० पदार्थः—वाचस्पतिः=विद्याशिक्षावर्द्धकः । दिव्यः=शुद्धगुणकर्मस्वभावः । सवितः= यथायोग्यैश्वर्यवर्द्धकः ।

भाष्यसार—१. **ईश्वर से क्या प्रार्थना करें**—हे दिव्य स्वरूप वाले, सकल ऐश्वर्य से युक्त, जगत् के उत्पादक जगदीश्वर ! तू—जो शुद्धस्वरूप में वर्तमान, गौ=पृथिवी को धारण करने वाला, विज्ञान को पवित्र करने वाला राजा है; वह हमारी प्रज्ञा को पवित्र करे। जो वाचस्पति अर्थात् वाणी का पालक विद्वान् है; वह हमारी वाणी को विद्या से आस्वादित करे। तू—यज्ञ अर्थात् राज्य के पालक राजा को ऐश्वर्ययुक्त धन की प्राप्ति की लिए समर्थ बना और राजधर्म नामक यज्ञ को उत्पन्न कर।

२. **राजा के गुण**—विद्या और शिक्षा का वर्द्धक, शुद्ध गुण, कर्म, स्वभाव वाला, राज्य की रक्षा के लिए यथायोग्य ऐश्वर्य को बढ़ाने वाला, धार्मिकों का पालक, परमेश्वर का उपासक और सकल शुभ गुणों से भरपूर हो वही राजा बनने के योग्य है ॥ ३० । १ ॥ ●

नारायणः । **सविता**=ईश्वरः । निचृद्गायत्री । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

ईश्वर से क्या प्रार्थना करनी चाहिए, इसका फिर उपदेश किया है ॥

तत्स॑वि॒तुर्वरे॑ण्यं॒ भर्गो॑ दे॒वस्य॑ धीमहि । धियो॒ यो नः॑ प्रचो॒दया॑त् ॥ २ ॥

पदार्थः—(तत्) (सवितुः) समग्रस्य जगदुत्पादकस्य सर्वैश्वर्यप्रदस्य (**वरेण्यम्**) वर्त्तुमर्हमत्युत्तमम् (**भर्गः**) भृज्जन्ति दुःखानि यस्मात्तत् (**देवस्य**) सुखप्रदातुः (**धीमहि**) धरेम (**धियः**) प्रज्ञाः कर्माणि वा (यः) (नः) अस्माकम (**प्रचोदयात्**) प्रेरयेत् ॥ २ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यो नो धियः प्रचोदयात् तस्य सवितुर्देवस्य यद्वरेण्यं भर्गो यथा वयं धीमहि तथा तद्यूयमपि दधेध्वम् ॥ २ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यो नः** अस्माकं **धियः** प्रज्ञाः कर्माणि वा **प्रचोदयात्** प्रेरयेत्; **तस्य सवितुः** समग्रस्य जगदुत्पादकस्य सर्वैश्वर्यप्रदस्य **देवस्य** सुखप्रदातुः **यद् वरेण्यं** वर्त्तुमर्हमत्युत्तमं **भर्गः** भृज्जन्ति दुःखानि यस्मात्तत् **यथा वयं धीमहि** धरेम; **तथा तद्यूयमपि दधेध्वम्** ॥ ३० । २ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो (नः) हमारी (धियः) प्रज्ञा वा कर्मों को (प्रचोदयात्) प्रेरित करता है; उस (सवितुः) सकल जगत् के उत्पादक, समग्र ऐश्वर्य के दाता (देवस्य) सुख प्रदान करने वाले परमेश्वर का—जो (वरेण्यम्) वरण करने योग्य अत्युत्तम, (भर्गः) दुःखों को भस्म करने वाला स्वरूप है; उसको जैसे हम लोग (धीमहि) धारण करते हैं; वैसे तुम भी धारण करो ॥ ३० । २ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यथा परमेश्वरो जीवानशुभाचरणान्निवर्त्य शुभाचरणे प्रवर्त्तयति, तथा राजाऽपि कुर्यात् ।

यथा परमेश्वरे पितृभावं कुर्वन्ति तथा राजन्यपि कुर्युः । यथा परमेश्वरो जीवेषु पुत्रभावमाचरति तथा राजाऽपि प्रजासु पुत्रभावमाचरेत् ।

यथा परमेश्वरः सर्वदोषक्लेशाऽन्यायेभ्यो निवृत्तोऽस्ति तथैव राजाऽपि भवेत् ॥ ३० । २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । जैसे परमेश्वर जीवों को अशुभ आचरण से निवत्त करके शुभ आचरण में प्रवृत्त करता है; वैसे राजा भी करे ।

जैसे परमेश्वर में पितृभाव करते हैं, वैसे राजा में भी करें । जैसे परमेश्वर जीवों में पुत्रभाव करता है, वैसे राजा भी प्रजा में पुत्रभाव करे ।

जैसे परमेश्वर सब दोष, क्लेश एवं अन्याय से निवृत्त है; वैसे ही राजा भी हो ॥ ३० । २ ॥

भा० पदार्थः—प्रचोदयेत्=अशुभाचरणान्निवर्त्य शुभाचरणे प्रवर्त्तयेत् । सवितुः=पितुः । भर्गः=सर्वदोषक्लेशान्यायेभ्यो निवृत्तः परमेश्वरः ॥

भाष्यसार—१. **ईश्वर से क्या प्रार्थना करें**—हे जगदीश्वर ! तू—हमारी प्रज्ञा को शुभ कर्मों में प्रेरित कर । सकल जगत् के उत्पादक, समग्र ऐश्वर्य प्रदान करने वाले, सब सुखों के दाता परमेश्वर का जो वरण करने योग्य, दुःखों को भस्म करने वाला शुद्ध स्वरूप है; उसको हम धारण करें ।

ईश्वर का स्वरूप और राजा—जैसे परमेश्वर जीवों को अशुभ आचरण से निवृत्त करके शुभ आचरण में प्रवृत्त करता है; वैसे राजा भी प्रजा को अशुभ आचरण से निवृत्त करके शुभ आचरण में प्रवृत्त करे । जैसे जीव परमेश्वर में पितृभाव रखते हैं वैसे वैसे प्रजा राजा में भी पितृभाव रखें । जैसे परमेश्वर जीवों में पुत्रभाव रखता है; वैसे राजा भी प्रजा में पुत्रभाव रखे । जैसे परमेश्वर सब दोष, क्लेश और अन्याय से दूर है; वैसे राजा भी उक्त दोषों से दूर रहे ॥

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । उपमा यह है कि राजा परमेश्वर के तुल्य गुण, कर्म, स्वभाव से युक्त हो ॥ ३० । २ ॥

नारायणः । **सविता**=ईश्वरः । गायत्री । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

ईश्वर से क्या प्रार्थना करनी चाहिए, इसका फिर उपदेश किया है ॥

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ ऽ आ सु॑व ॥ ३ ॥

पदार्थः—(**विश्वानि**) समग्राणि (**देव**) दिव्यगुणकर्मस्वभाव (**सवितः**) उत्तमगुणकर्मस्वभावेषु प्रेरक परमेश्वर ! (**दुरितानि**) दुष्टाचरणानि दुःखानि वा (**परा**) दूरार्थे (**सुव**) गमय (**यत्**) (**भद्रम्**) भन्दनीयं धर्म्याचरणं सुखं वा (**तत्**) (**नः**) (**अस्मभ्यम्**) (**आ**) समन्तात् (**सुव**) जनय ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे देव सवितस्त्वमस्मद्विश्वानि दुरितानि परा सुव यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥ ३ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे देव** दिव्यगुणकर्मस्वभाव ! **सवितः** उत्तमगुणकर्मस्वभावेषु प्रेरक परमेश्वर ! **त्वमस्मद् विश्वानि** समग्राणि **दुरितानि** दुष्टाचरणानि दुःखानि वा **परा+सुव** दूरे गमय; **यद्भद्रं** भन्दनीयं धर्म्याचरणं सुखं वा **तन्नः** अस्मभ्यम् **आ+सुव** समन्ताज्जनय ॥ ३० । ३ ॥

भाषार्थ—हे (देव) दिव्य गुण-कर्म-स्वभाव वाले (सवितः) उत्तम गुण-कर्म-स्वभाव में प्रेरणा करने वाले परमेश्वर ! तू—हमसे (विश्वानि) सब (दुरितानि) दुष्ट आचरणों वा दुःखों को (परा+सुव) दूर भगा; और (यत्) जो (भद्रम्) धर्माचरण वा सुख है (तत्) उसे (नः) हमारे लिए (आ+सुव) सब ओर उत्पन्न कर ॥ ३० । ३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यथोपासितो जगदीश्वरस्स्वभक्तान् दुष्टाचारान्निवर्त्य श्रेष्ठाचारे प्रवर्त्तयति, तथा राजाऽपि प्रजा अधर्मान्निवर्त्य धर्मे प्रवर्त्तयेत्, स्वयमपि तथा स्यात् ॥ ३० । ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । जैसे उपासना किया हुआ जगदीश्वर अपने भक्तों को दुष्ट आचरण से निवृत्त करके श्रेष्ठ आचरण में प्रवृत्त करता है; वैसे राजा भी प्रजा को अधर्म से निवृत्त करके धर्म में प्रवृत्त करे; और स्वयं भी वैसा ही करे ॥ ३० । ३ ॥

भा० पदार्थः—दुरितानि=दुष्टाचारम् । परासुव=निवर्त्तय । भद्रम्=श्रेष्ठाचारम् । आसुव=प्रवर्त्तय ।

अन्यत्र व्याख्यात—[**क**] हे (सवितः) सकल जगत् के उत्पत्ति कर्ता, समग्र ऐश्वर्ययुक्त (देवः) शुद्धस्वरूप, सब सुखों के दाता परमेश्वर ! आप कृपा करके (नः) हमारे (विश्वानि) संपूर्ण (दुरितानि) दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को (परा, सुव) दूर कर दीजिए (यत्) जो (भद्रम्) कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं (तत्) वह सब हमको (आ, सुव) प्राप्त कीजिए । (संस्कारविधि, ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासना) ॥

[**ख**] हे सत्यस्वरूप, हे विज्ञानमय, हे सदानन्दस्वरूप, हे अनन्तसामर्थ्ययुक्त, हे परम कृपालो, हे अनन्तविद्यामय, हे विज्ञानविद्याप्रद (देव) हे परमेश्वर ! आप सूर्य्यादि सब जगत् का और विद्या का प्रकाश करने वाले हो, तथा सब आनन्दों के देने वाले हो, (सवितः) हे सर्वजगदुत्पादक सर्वशक्तिमन् ! आप सबको उत्पन्न करने वाले हो, (नः) हमारे (विश्वानि) सबके (दुरितानि) दुःख हैं उनको और हमारे सब दुष्ट गुणों को कृपा से आप (परासुव) दूर कर दीजिए अर्थात् हम से उनको सदा दूर रखिए (यद्भद्रं) और जो सब दुःखों से रहित कल्याण है जो कि सब सुखों से युक्त भोग है उसको हमारे लिए सब दिनों में प्राप्त कीजिए । सो सुख दो प्रकार का है—एक जो सत्यविद्या की प्राप्ति में अभ्युदय अर्थात् चक्रवर्त्ति राज्य, इष्ट, मित्र, धन, पुत्र, स्त्री और शरीर से अत्युत्तम सुख का होना; और दूसरा जो निःश्रेयस सुख है कि जिसको मोक्ष कहते हैं; और जिसमें ये दोनों सुख होते हैं उसी को भद्र कहते हैं (तन्न आसुव) उस सुख

को आप हमारे लिए सब प्रकार से प्राप्त करिए और आप की कृपा के सहाय से सब विघ्न हम से दूर रहें। (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, ईश्वरप्रार्थनाविषयः) ॥

भाष्यसार—१. **ईश्वर से क्या प्रार्थना करें**—हे दिव्य गुण-कर्म-स्वभाव वाले, उत्तम गुण-कर्म-स्वभाव में प्रेरणा करने वाले परमेश्वर ! तू—हमारे सब दुष्ट आचरणों तथा दुःखों को दूर कर; और जो धर्माचरण तथा सुख है उसे हमारे लिए सब ओर उत्पन्न कर।

ईश्वर और राजा—जैसे उपासित जगदीश्वर अपने भक्तों को दुष्ट आचरण से निवृत्त तथा श्रेष्ठ आचरण में प्रवृत्त करता है; वैसे राजा भी प्रजा को अधर्म से निवृत्त तथा धर्म में प्रवृत्त करे और स्वयं भी धर्म में प्रवृत्त रहे।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि जगदीश्वर के समान राजा भी प्रजा को अधर्म से निवृत्त करके धर्म में प्रवृत्त करे ॥ ३० । ३ ॥

मेधातिथिः । **सविता**=ईश्वरः । गायत्री । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

ईश्वर से क्या प्रार्थना करनी चाहिए, इसका फिर उपदेश किया है ॥

विभक्तारꣳ हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः । सवितारं नृचक्षसम् ॥ ४ ॥

पदार्थः—(**विभक्तारम्**) विभाजयितारम् (**हवामहे**) प्रशंसेम (**वसोः**) सुखानां वासहेतोः (**चित्रस्य**) अद्भुतस्य (**राधसः**) धनस्य (**सवितारम्**) जनयितारम् (**नृचक्षसम्**) नृणां द्रष्टारं परमात्मानम् ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यं वसोश्चित्रस्य राधसो विभक्तारं सवितारं नृचक्षसं वयं हवामहे तं यूयमप्याह्वयत ॥ ४ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यं वसोः** सुखानां वासहेतोः **चित्रस्य** अद्भुतस्य **राधसः** धनस्य **विभक्तारं** विभाजयितारं **सवितारं** जनयितारं **नृचक्षसं** नृणां द्रष्टारं परमात्मानं **वयं हवामहे** प्रशंसेम, **तं यूयमप्याह्वयत** ॥ ३० । ४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जिस—(वसोः) सुखों के वास-हेतु, (चित्रस्य) अद्भुत (राधसः) धन का (विभक्तारम्) विभाग करने वाले, तथा (सवितारम्) उत्पन्न करने वाले (नृचक्षसम्) नरों के द्रष्टा परमात्मा की हम (हवामहे) प्रशंसा करते हैं; वैसे तुम भी प्रशंसा करो ॥ ३० । ४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । हे राजन् ! यथा परमेश्वरः स्वस्वकर्मानुकूलं सर्वजीवेभ्यः फलं ददाति तथा भवानपि ददातु ।

यथा जगदीश्वरो यादृशं यस्य कर्म, पापं पुण्यं यावच्चास्ति तावदेव तादृशं तस्मै ददाति, तथा त्वमपि यस्य यावद् वस्तु यादृशं कर्म च, तावत्तादृशं च तस्मै देहि ।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। हे राजन् ! जैसे परमेश्वर अपने-अपने कर्मों के अनुकूल सब जीवों को फल देता है; वैसे आप भी प्रदान करो।

जैसे जगदीश्वर—जैसा जिसका कर्म, और जितना पाप-पुण्य है उतना ही—वैसा फल उसे देता है; वैसे तू भी जिसकी जितनी वस्तु और जैसा कर्म है, उतना और वैसा फल उसे प्रदान कर।

यथा परमेश्वरः पक्षपातं विहाय सर्वेषु जीवेषु वर्त्तते तथा त्वमपि भव ॥ ३० । ४ ॥

जैसे परमेश्वर पक्षपात को छोड़कर सब जीवों में वर्तमान है; वैसे तू भी हो ॥ ३० । ४ ॥

भा० पदार्थः—विभक्तारम्=कर्मानुकूलं फलदातारम् ।

भाष्यसार—१. **ईश्वर से क्या प्रार्थना करें**—हे जगदीश्वर ! सुखों के वास हेतु, अद्भुत धन का विभाग करने वाले, सकल जगत् के उत्पादक, नरों के द्रष्टा परमात्मा की विद्वानों के समान स्तुति करें ।

ईश्वर और राजा—जैसे परमेश्वर अपने-अपने कर्मों के अनुसार जीवों को फल देता है वैसे राजा भी कर्मानुसार प्रजा को फल प्रदान करे । और जैसे जगदीश्वर जिसका जैसा-कर्म एवं जितना पाप और पुण्य होता है उसे वैसा एवं उतना ही फल देता है वैसे राजा भी जिसकी जितनी वस्तु और जैसा कर्म हो उसको उतनी ही वस्तु तथा वैसा ही फल प्रदान करे । परमेश्वर के तुल्य पक्षपात छोड़कर वर्त्ताव करे ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है । उपमा यह है कि राजा परमेश्वर के समान मन्त्रोक्त आचरण करे ॥ ३० । ४ ॥

नारायणः । **परमेश्वरः**=स्पष्टम् । स्वराडतिशक्वरी । पञ्चमः ॥

ईश्वरवद्राज्ञापि कर्त्तव्यमित्याह ॥

ईश्वर के तुल्य राजा को भी करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रं तमसे तस्करं नारकाय वीरहणं पाप्मने क्लीबमाक्रयायाऽ अयोगूं कामाय पुँश्चलूमतिक्रुष्टाय मागधम् ॥ ५ ॥

पदार्थः—(**ब्रह्मणे**) वेदेश्वरविज्ञानप्रचाराय (**ब्राह्मणम्**) वेदेश्वरविदम् (**क्षत्राय**) राज्याय पालनाय वा (**राजन्यम्**) राजपुत्रम् (**मरुद्भ्यः**) पश्वादिभ्यः प्रजाभ्यः (**वैश्यम्**) विक्षु=प्रजासु भवम् (**तपसे**) सन्तापजन्याय सेवनाय (**शूद्रम्**) प्रीत्या सेवकं शुद्धिकरम् (**तमसे**) अन्धकाराय प्रवृत्तम् (**तस्करम्**) चोरम् (**नारकाय**) नरके=दुखबन्धने भवाय कारागाराय (**वीरहणम्**) यो वीरान् हन्ति तम् (**पाप्मने**) पापाचरणाय प्रवृत्तम् (**क्लीबम्**) नपुंसकम् (**आक्रयायै**) आक्रमन्ति प्राणिनो यस्यां तस्यै हिंसायै प्रवर्त्तमानम् (**अयोगूम्**) अयसा=शस्त्रविशेषेण सह गन्तारम् (**कामाय**) विषयसेवनाय प्रवृत्ताम् (**पुंश्चलूम्**) पुंभिः सह चलितचित्तां व्यभिचारिणीम् (**अतिक्रुष्टया**) अत्यन्तनिन्दनाय प्रवर्त्तकम् (**मागधम्**) नृशंसम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे परमेश्वर राजन् ! वा त्वमत्र ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रं सर्वतो जनय तमसे तस्करं नारकाय वीरहणं पाप्मने क्लीबमाक्रयाया अयोगूं कामाय पुंश्चलूमतिक्रुष्टाय मागधञ्च दूरे गमय ॥ ५ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे परमेश्वर राजन् वा ! त्वमत्र ब्रह्मणे** वेदेश्वरविज्ञानप्रचाराय **ब्राह्मणं** वेदेश्वरविदं, **क्षत्राय** राज्याय पालनाय वा **राजन्यं** राजपुत्रं, **मरुद्भ्यः** पश्वादिभ्यः प्रजाभ्यः **वैश्यं** विक्षु=प्रजासु भवं, **तपसे** सन्तापजन्याय सेवनाय

भाषार्थ—हे परमेश्वर वा राजन् ! तू—यहाँ (ब्रह्मणे) वेद, ईश्वर और विज्ञान के प्रचार के लिए (ब्राह्मणं) वेद और ईश्वर के ज्ञाता ब्राह्मण को; (क्षत्राय) राज्य वा रक्षा के लिए (राजन्यम्) राजपुत्र=क्षत्रिय को, (मरुद्भ्यः)

शूद्रं प्रीत्या सेवकं, शुद्धिकरं **सर्वतो जनय; तमसे** अन्धकाराय प्रवृत्तं **तस्करं** चोरं, **नारकाय** नरके=दुःखबन्धने भवाय=कारागाराय **वीरहणं** यो वीरान् हन्ति तं, **पाप्मने** पापाचरणाय प्रवृत्तं **क्लीबं** नपुंसकम्, **आक्रयायै** आक्रमन्ति प्राणिनो यस्यां तस्यै हिंसायै प्रवर्त्तमानम् **अयोगूम्** अयसा=शस्त्रविशेषेण सह गन्तारं, **कामाय** विषयसेवनाय प्रवृत्ताम् **पुंश्चलूं** पुंभिः सह चलितचित्तां व्यभिचारिणीम्, **अतिक्रुष्टाय** अत्यन्तनिन्दनाय प्रवर्त्तकं **मागधं** नृशंसं **च दूरे गमय** ।। ३० । ५ ।।

पशु आदि प्रजा के लिए (वैश्यम्) प्रजा में वर्तमान वैश्य को; (तपसे) सन्ताप जन्य सेवा के लिए (शूद्रम्) प्रीतिपूर्वक सेवा करने वाले एवं शुद्धि करने वाले शूद्र को सब ओर उत्पन्न कर। और (तमसे) अन्धकार के लिए प्रवृत्त (तस्कर) चोर को, (नारकाय) दुःख रूप बन्धन अर्थात् कारागार के लिए (वीरहणम्) वीरों के घातक को, (पाप्मने) पापाचरण में प्रवृत्त (क्लीबम्) नपुंसक को, (आक्रयायै) प्राणियों के आक्रमण रूप हिंसा के लिए प्रवृत्त (अयोगूम्) शस्त्र-विशेष के साथ गति करने वाले को, (कामाय) विषय-सेवन के लिए प्रवृत्त, (पुंश्चलूम्) पुरुषों के साथ चलचित्त वाली व्यभिचारिणी को; (अतिक्रुष्टाय) अत्यन्त निन्दा के लिए प्रवृत्त (मागधम्) नीच पुरुष को दूर भगा ।।३०।५।।

भावार्थः—हे राजन्! यथा जगदीश्वरो जगति परोपकाराय पदार्थान् जनयति, दोषान् निवर्त्तयति, तथा—त्वमिह राज्ये सज्जनानुत्कर्षय, दुष्टान् निःसारय, दण्डय, ताडय च। यतः—शुभगुणानां प्रवृत्तिर्दुर्व्यसनानां च निवृत्तिः स्यात् ।। ३० । ५ ।।

भावार्थ—हे राजन्! जैसे जगदीश्वर जगत् में परोपकार के लिए पदार्थों को उत्पन्न करता है, दोषों को हटाता है; वैसे तू इस राज्य में सज्जनों को बढ़ा, दुष्टों को निकाल, दण्ड दे और ताड़न कर। जिससे शुभ गुणों की प्रवृत्ति और दुर्व्यसनों की निवृत्ति हो ।। ३० । ५ ।।

भाष्यसार—ईश्वर के तुल्य राजा का आचरण—राजा को उचित है कि वह—वेद और ईश्वर विज्ञान के प्रचार के लिए, ब्राह्मण अर्थात् वेद और ईश्वर के ज्ञाता विद्वान् को उत्पन्न करे। राज्य-पालन के लिए क्षत्रिय को उत्पन्न करे। पशु आदि प्रजा की रक्षा के लिए वैश्य को उत्पन्न करे। सन्तापजन्य सेवा कार्य के लिए शूद्र को उत्पन्न करे।

अन्धकार के लिए प्रवृत्त चोरों को दूर करे। वीरों के घातक को नरक एवं दुःखमय बन्धन रूप कारागार में डाले। पापाचरण में प्रवृत्त नपुंसक को दूर हटावे। हिंसा में प्रवृत्त शस्त्र-अस्त्र को साथ लेकर चलने वाले पुरुष को दूर करे। विषय-सेवन में प्रवृत्त व्यभिचारिणी स्त्री को तथा अत्यन्त निन्दक नीच को भी दूर रखे।

राजा—परमेश्वर के तुल्य परोपकार के लिए पदार्थों को उत्पन्न करे। दोषों का निवारण करे। सज्जनों को बढ़ावे। दुष्टों को निकाले तथा उन्हें दण्ड दे और उनका ताडन करे। इससे शुभ गुणों की प्रवृत्ति और दुर्व्यसनों की निवृत्ति होती है ।। ३० । ५ ।। ●

नारायणः । **परमेश्वरः**=स्पष्टम् । निचृदष्टिः । मध्यमः ।।

पुनः राजपुरुषैः किं कर्त्तव्यमित्याह ।।

फिर राजपुरुषों को क्या करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ।।

नृत्ताय सूतं गीताय शैलूषं धर्माय सभाचरं नरिष्ठायै भीमलं नर्माय रेभꣳ हसाय कारिमानन्दाय स्त्रीषखं प्रमदे कुमारीपुत्रं मेधायै रथकारं धैर्याय तक्षाणम् ॥ ६ ॥

पदार्थः—(**नृत्ताय**) नृत्याय (**सूतम्**) क्षत्रियाद् ब्राह्मण्यां जातम् (**गीताय**) गानाय (**शैलूषम्**) गायनम् (**धर्माय**) धर्मरक्षणाय (**सभाचरम्**) यः सभायां चरति तम् (**नरिष्ठायै**) अतिशयिता दुष्टाः नरः सन्ति यस्यां तस्यै प्रवृत्तम् (**भीमलम्**) यो भीमान्=भयङ्करान् लात्याददाति तम् (**नर्माय**) कोमलत्वाय (**रेभम्**) स्तोतारम् । रेभ इति स्तोतृना० ॥ निघं० ३ । १६ ॥ (**हसाय**) हसनाय प्रवृत्तम् (**कारिम्**) उपहास-कर्त्तारम् (**आनन्दाय**) (**स्त्रीषखम्**) स्त्रिया मित्रं पतिम् (**प्रमदे**) प्रमादाय प्रवृत्तम् (**कुमारीपुत्रम्**) विवाहात्पूर्वं व्यभिचारेणोत्पन्नम् (**मेधायै**) प्रज्ञायै (**रथकारम्**) विमानादिरचकं शिल्पिनम् (**धैर्याय**) (**तक्षाणम्**) तनूकर्त्तारम् ॥ ६ ॥

प्रमाणार्थ—(रेभम्) स्तोतारम् । 'रेभ' यह पद निघण्टु (३ । १६) में स्तोतृ-नामों में पठित है । स्तोता=स्तुति करने वाला ॥

अन्वयः—हे जगदीश्वर राजन् वा त्वं नृत्ताय सूतं गीताय शैलूषं धर्माय सभाचरं नर्माय रेभमानन्दाय स्त्रीषखं मेधायै रथकारं धैर्याय तक्षाणमासुव । नरिष्ठायै भीमलं हसाय कारिं प्रमदे कुमारी-पुत्रं परासुव ॥ ६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **जगदीश्वर** ! **राजन् वा** ! **त्वं नृत्ताय** नृत्याय **सूतं** क्षत्रियाद् ब्राह्मण्यां जातं, **गीताय** गानाय **शैलूषं** गायनं, **धर्माय** धर्मरक्षणाय **सभाचरं** यः सभायां चरति तं, **नर्माय** कोमलत्वाय **रेभं** स्तोतारम्, **आनन्दाय स्त्रीषखं** स्त्रिया मित्रं पतिं, **मेधायै** प्रज्ञायै **रथकारं** विमानादिरचकं शिल्पिनं, **धैर्याय तक्षाणं** तनू-कर्त्तारम् **आसुव** समन्ताज्जनय ।

नरिष्ठायै अतिशयिता दुष्टा नराः सन्ति यस्यां तस्यै प्रवृत्तं **भीमलं** यो भीमान्=भयङ्करान् लात्याददाति तं, **हसाय** हसनाय प्रवृत्तं **कारिम्** उपहास-कर्त्तारं, **प्रमदे** प्रमादाय प्रवृत्तं **कुमारीपुत्रं** विवाहात्पूर्वं व्यभिचारेणोत्पन्नं **परासुव** दूरङ्गमय ॥ ३० । ६ ॥

भाषार्थ—हे जगदीश्वर वा राजन् ! तू—(नृत्ताय) नाच के लिए (सूतम्) क्षत्रिय से ब्राह्मणी में उत्पन्न सूत को, (गीताय) गान के लिए (शैलूषम्) गायक को, (धर्माय) धर्म की रक्षा के लिए (सभाचरम्) सभा में विचरण करने वाले सभापति को; (नर्माय) कोमलता के लिए (रेभम्) स्तोता को, (आनन्दाय) आनन्द के लिए (स्त्री-षखम्) स्त्री के मित्र पति को, (मेधायै) प्रज्ञा के लिए (रथकारम्) विमान आदि के रचयिता, शिल्पी को, (धैर्याय) धैर्य के लिए (तक्षाणम्) तक्षक को (आ+सुव) सब ओर उत्पन्न कर । और—

(नरिष्ठायै) जिसमें अत्यन्त दुष्ट नर हैं उस हिंसा के लिए प्रवृत्त, (भीमलम्) भयंकर लोगों को ग्रहण करने वाले पुरुष को, (हसाय) हंसी के लिए प्रवृत्त (कारिम्) उपहास करने वाले पुरुष को (प्रमदे) प्रमाद के लिए प्रवृत्त (कुमारीपुत्रम्) विवाह से पूर्व व्यभिचार से उत्पन्न कुमारी-पुत्र को (परा+सुव) दूर कर ॥ ३० । ६ ॥

भावार्थः—राजपुरुषैः परमेश्वरोपदेशेन राजाज्ञया च सर्वे श्रेष्ठा धार्मिका जना उत्सहनीयाः,

भावार्थ—राजपुरुष—परमेश्वर के उपदेश और राजा की आज्ञा से सब श्रेष्ठ धार्मिक जनों

हास्य-भयप्रदा निवारणीयाः, अनेकाः सभा निर्माय, सर्वा व्यवस्थाः, शिल्पविद्योन्नतिश्च कार्या ॥३०।६॥

को उत्साहित करें। हास्य और भय प्रदान करने वालों का निवारण करें, अनेक सभाएँ बनाकर सब व्यवस्था और शिल्पविद्या की उन्नति करें ॥ ३० । ६ ॥

भा० पदार्थः–भीमलम्=भयप्रदम् ।

भाष्यसार—**राजा का कर्त्तव्य**—राजा को उचित है कि वह—नृत्य के लिए सूत अर्थात् क्षत्रिय से ब्राह्मणी में उत्पन्न पुरुष को, गान के लिए शैलूष को, धर्म के लिए सभापति को, कोमलता के लिए स्तोता को, आनन्द के लिए स्त्री-मित्र को, प्रज्ञा के लिए रथकार अर्थात् विमान आदि के रचयिता शिल्पी को और धैर्य के लिए तक्षा=तरखान को—उत्पन्न करे।

हिंसा आदि दुष्ट कार्यों में प्रवृत्त, भयङ्कर लोगों को रखने वाले पुरुष को, हंसी में प्रवृत्त उपहास-कर्त्ता पुरुष को, प्रमाद में प्रवृत्त कुमारी-पुत्र को—दूर करे। तात्पर्य यह है कि राजा—सब श्रेष्ठ धार्मिक जनों को उत्साहित करे और हास्य तथा भय प्रदान करने वाले पुरुषों का निवारण करे। अनेक सभाओं का निर्माण करके सब व्यवस्था करे तथा शिल्प-विद्या की उन्नति करे ॥ ३० । ६ ॥

नारायणः । **विद्वांसः**=स्पष्टम् । निचृदष्टिः । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजपुरुषों को क्या करना चाहिए, इसका फिर उपदेश किया है ॥

तप॑से कौला॒लं मा॒यायै॑ क॒र्मार॒ꣳ रू॒पाय॑ मणिका॒रꣳ शु॒भे व॒पꣳ श॑र॒व्या॒याऽइषुका॒रꣳ हे॒त्यै ध॑नुष्का॒रं कर्म॑णे ज्याका॒रं दि॒ष्टाय॑ रज्जुस॒र्जं मृ॒त्यवे॑ मृग॒युमन्त॑काय॒ श्व॒निन॑म् ॥ ७ ॥

पदार्थः—(**तपसे**) तपनाय (**कौलालम्**) कुलालपुत्रम् (**मायायै**) प्रज्ञावृद्धये। **मायेति प्रज्ञाना०** ॥ निघं० ३ । ६ ॥ (**कर्मारम्**) यः कर्माण्यलंकरोति तम् (**रूपाय**) सुरूपनिर्मापकाय (**मणिकारम्**) यो मणीन् करोति तम् (**शुभे**) शुभाचरणाय (**वपम्**) यो वपति क्षेत्राणि कृषीवल इव विद्यादिशुभान् गुणाँस्तम् (**शरव्यायै**) शराणां निर्माणाय (**इषुकारम्**) य इषून्=बाणान् करोति तम् (**हेत्यै**) वज्रादि-शस्त्रनिर्माणाय (**धनुष्कारम्**) यो धनुरादीनि करोति तम् (**कर्मणे**) क्रियासिद्धये (**ज्याकारम्**) यो ज्यां=प्रत्यञ्चां करोति तम् (**दिष्टाय**) दिशत्यतिसृजति येन तस्मै (**रज्जुसर्जम्**) यो रज्जुं सृजति तम् (**मृत्यवे**) मृत्युकरणाय प्रवृत्तम् (**मृगयुम्**) य आत्मनो मृगान् हन्तुमिच्छति तं व्याधम् (**अन्तकाय**) यो ऽन्तं करोति तस्मै हितकरम् (**श्वनिनम्**) बहुश्वपालम् ॥ ७ ॥

प्रमाणार्थ—(**मायायै**) प्रज्ञावृद्धये। 'माया' यह पद निघण्टु (३ । ६) में प्रज्ञा-नामों में पठित है ॥

अन्वयः—हे जगदीश्वर नरेश ! वा त्वं तपसे कौलालं मायायै कर्मारं रूपाय मणिकारं शुभे वपं शरव्यायै इषुकारं हेत्यै धनुष्कारं कर्मणे ज्याकारं दिष्टाय रज्जुसर्जमासुव। मृत्यवे मृगयुमन्त-काय श्वनिनं परासुव ॥ ७ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे जगदीश्वर ! नरेश वा ! त्वं तपसे** तपनाय **कौलालं** कुलालपुत्रं,

भाषार्थ—हे जगदीश्वर वा नरेश ! तू—(तपसे) तपन के लिए (कौलालम्) कुलाल=

मायायै प्रज्ञावृद्धये **कर्मारं** यः कर्माण्यलंकरोति तं, **रूपाय** सुरूपनिर्मापकाय **मणिकारं** यो मणीन् करोति तं, **शुभे** शुभाचरणाय **वपं** यो वपति क्षेत्राणि कृषीवल इव विद्यादिशुभान् गुणाँस्तं **शरव्यायै** शराणां निर्माणाय **इषुकारं** य इषून=बाणान् करोति तं, **हेत्यै** वज्रादिशस्त्रनिर्माणाय **धनुष्कारं** यो धनुरादीनि करोति तं, **कर्मणे** क्रियासिद्धये **ज्याकारं** यो ज्यां=प्रत्यञ्चां करोति तं, **दिष्टाय** दिशत्यतिसृजति येन तस्मै **रज्जुसर्जं** यो रज्जुं सृजति तम् **आसुव** समन्ताज्जनय; **मृत्यवे** मृत्युकरणाय प्रवृत्तं **मृगयुं** य आत्मनो मृगान् हन्तुमिच्छति तं व्याधम् **अन्तकाय** यो ऽन्तं करोति तस्मै हितकरं **श्वनिनं** बहुश्वपालं **परासुव** दूरं गमय ॥ ३० । ७ ॥

कुम्हार के पुत्र को, (मायायै) प्रज्ञा-वृद्धि के लिए (कर्मारम्) कर्मों को अलंकृत करने वाले लुहार को, (रूपाय) सुरूप के निर्मापक के लिए (मणिकारम्) जौहरी को, (शुभे) शुभ आचरण के लिए (वपम्) खेतों को बोने वाले किसान के तुल्य विद्यादि शुभ गुणों को, (शरव्यायै) शर=बाणों के निर्माण के लिए (इषुकारम्) बाण बनाने वाले को, (हेत्यै) वज्र आदि शस्त्रों के निर्माण के लिए (धनुष्कारम्) धनुष आदि के कर्त्ता को, (कर्मणे) क्रिया की सिद्धि के लिए (ज्याकारम्) ज्या=धनुष की डोरी के निर्माता को, (दिष्टाय) अतिरचना के लिए (रज्जुसर्जम्) रज्जु=रस्सी के स्रष्टा को (आसुव) सब ओर उत्पन्न कर। और (मृत्यवे) मृत्यु करने के लिए प्रवृत्त, (मृगयुम्) मृगों के घातक व्याध=शिकारी को, (अन्तकाय) अन्त करने वाले के लिए हितकारी (श्वनिनम्) बहुत श्वा=कुत्तों के पालक पुरुष को (परा+सुव) दूर कर ॥ ३० । ७ ॥

भावार्थः—राजपुरुषैर्यथा परमेश्वरेण सृष्टौ रचनाविशेषा दर्शितास्तथा शिल्पविद्यया सृष्टिदृष्टान्तेन च रचनाविशेषाः कर्त्तव्याः। हिंसकाः श्वपालिनश्चाण्डालादयो दूरे निवासनीयाः ॥ ३० । ७ ॥

भावार्थ—राजपुरुष=जैसे परमेश्वर ने सृष्टि में रचना विशेष दर्शाई है, वैसे शिल्प-विद्या के द्वारा और सृष्टि के दृष्टान्त से रचना विशेष करें। हिंसक कुत्तों के पालक, चाण्डाल आदि को दूर बसावें ॥ ३० । ७ ॥

भा० पदार्थः—मृगयुम्=हिंसकम्। श्वनिनम्=श्वपालिनं चाण्डालादिकम्।

भाष्यसार—राजा का कर्त्तव्य—राजा को उचित है कि वह—तपन के लिए कुम्हार को, प्रज्ञा की वृद्धि के लिए लुहार को, सुरूप के निर्माण के लिए मणिकार=जौहरी को, शुभ आचरण के लिए किसान को तथा उसके तुल्य विद्यादि शुभ गुणों को, शरों के निर्माण के लिए इषुकार=बाणों के कर्त्ता को, वज्र आदि शस्त्रों के निर्माण के लिए धनुष्कार को, क्रिया की सिद्धि के लिए ज्या=धनुष की डोरी के निर्माता को, अति रचना के लिए रज्जु=रस्सी के स्रष्टा को उत्पन्न करे। अर्थात् मन्त्रोक्त कार्यों की सिद्धि के लिए मनुष्यों को प्रशिक्षित करे।

मृत्यु के लिए प्रवृत्त व्याध=शिकारी को, और अन्त करने वाले पुरुष के हितकारी, कुत्तों के पालक पुरुष को दूर करे।

राजा—परमेश्वर के तुल्य शिल्पविद्या और सृष्टि के दृष्टान्त से रचना विशेष करे। हिंसक, श्वपालक चाण्डाल आदि लोगों को दूर बसावे ॥ ३० । ७ ॥

नारायणः। **विद्वांसः**=**स्पष्टम्**। कृतिः। निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजपुरुषों को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

नदीभ्यः पौञ्जिष्ठमृक्षीकाभ्यो नैषादं पुरुषव्याघ्राय दुर्मदं गन्धर्वाप्सरोभ्यो व्रात्यं प्रयुग्भ्य ऽ उन्मत्तꣳ सर्पदेवजनेभ्योऽप्रतिपदमयेभ्यः कितवमीर्यताया ऽ अकितवं पिशाचेभ्यो विदलकारीं यातुधानेभ्यः कण्टकीकारीम् ॥ ८ ॥

पदार्थः—(**नदीभ्यः**) सरिद्विनाशाय प्रवृत्तम् (**पौञ्जिष्ठम्**) पुक्कसम् (**ऋक्षीकाभ्यः**) या ऋक्षा=गतीः कुर्वन्ति ताभ्यः प्रवृत्तम् (**नैषादम्**) निषादस्य पुत्रम् (**पुरुषव्याघ्राय**) व्याघ्र इव पुरुषस्तस्मै हितम् (**दुर्मदम्**) दुर्गतो=दुष्टो मदोऽभिमानं यस्य तम् (**गन्धर्वाप्सरोभ्यः**) गन्धर्वाश्चाप्सरसश्च ताभ्यः प्रवृत्तम् (**व्रात्यम्**) असंस्कृतम् (**प्रयुग्भ्यः**) ये प्रयुञ्जते तेभ्यः प्रवृत्तम् (**उन्मत्तम्**) उन्मादरोगिणम् (**सर्पदेवजनेभ्यः**) सर्पाश्च देवजनाश्च तेभ्यो हितम् (**अप्रतिपदम्**) अनिश्चितबुद्धिम् (**अयेभ्यः**) य अय्यन्ते=प्राप्यन्ते पदार्थास्तेभ्यः प्रवृत्तम् (**कितवम्**) द्यूतकारिणम् (**ईर्य्यतायै**) कम्पनाय प्रवृत्तम् (**अकितवम्**) अद्यूतकारिणम् (**पिशाचेभ्यः**) पिशिता=नष्टाऽऽशा येषां ते पिशाचाः, अथवा पिशितमवयवीभूतं सरक्तं वा मांसमाचामन्ति=भक्षयन्तीति पिशाचाः। उभयथा पृषोदरादित्वात्सिद्धिः। (**विदलकारीम्**) या विगतान् दलान् करोति ताम् (**यातुधानेभ्यः**) यान्ति येषु ते यातवो=मार्गास्तेभ्यो धनं येषान्तेभ्यः, प्रवृत्तम् (**कण्टकीकारीम्**) या कण्टकीं करोति ताम् ॥ ८ ॥

प्रमाणार्थ—(**पिशाचेभ्यः**) दोनों प्रकार के निर्वचन में 'पृषोदरादि' से 'पिशाच' पद की सिद्धि करें ॥

अन्वयः—हे जगदीश्वर नृप वा त्वं नदीभ्यः पौञ्जिष्ठमृक्षीकाभ्यो नैषादं पुरुषव्याघ्राय दुर्मदं गन्धर्वाप्सरोभ्यो व्रात्यं प्रयुग्भ्य उन्मत्तं सर्पदेवजनेभ्योऽप्रतिपदमयेभ्यः कितवमीर्य्यताया अकितवं पिशाचेभ्यो विदलकारीं यातुधानेभ्यः कण्टकीकारीं परासुव ॥ ८ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे जगदीश्वर नृप वा! त्वं नदीभ्यः** सरिद्विनाशाय प्रवृत्तं **पौञ्जिष्ठं** पुक्कसम्, **ऋक्षीकाभ्यः** या ऋक्षा=गतीः कुर्वन्ति ताभ्यः प्रवृत्तं **नैषादं** निषादस्य पुत्रं, **पुरुषव्याघ्राय** व्याघ्र इव पुरुषस्तस्मै हितं **दुर्मदं** दुर्गतो=दुष्टो मदोऽभिमानं यस्य तं, **गन्धर्वाप्सरोभ्यः** गन्धर्वाश्चाप्सरसश्च ताभ्यः प्रवृत्तं **व्रात्यम्** असंस्कृतं, **प्रयुग्भ्यः** ये प्रयुञ्जते तेभ्यः प्रवृत्तम् **उन्मत्तम्** उन्मादरोगिणं, **सर्पदेवजनेभ्यः** सर्पाश्च देवजनाश्च तेभ्यो हितम् **अप्रतिपदम्** अनिश्चितबुद्धिम्, **अयेभ्यः** य अय्यन्ते=प्राप्यन्ते पदार्थास्तेभ्यः प्रवृत्तं **कितवं** द्यूतकारिणं, **ईर्य्यतायै** कम्पनाय प्रवृत्तम् **अकितवम्** अद्यूतकारिणं, **पिशाचेभ्यः** पिशिता=नष्टाऽऽशा येषां ते पिशाचाः, अथवा पिशितमवयवीभूतं सरक्तं वा मांसमाचामन्ति=भक्षयन्तीति पिशाचाः [तेभ्यः प्रवृत्तां] **विदलकारीं** या विगतान् दलान् करोति तां, **यातुधानेभ्यः** यान्ति येषु ते यातवो=

भाषार्थ—हे जगदीश्वर ! वा राजन् ! तू—(नदीभ्यः) नदी के विनाश के लिए प्रवृत्त (पौञ्जिष्ठम्) पुक्कस=नीच पुरुष को; (ऋक्षीकाभ्यः) ऋक्षा=गति करने वाली रीछनियों के लिए प्रवृत्त (नैषादम्) निषाद के पुत्र को, (पुरुषव्याघ्राय) व्याघ्र के तुल्य पुरुष के लिए हितकारी (दुर्मदम्) दुष्ट अभिमानी को, (गन्धर्वाप्सरोभ्यः) गन्धर्व जनों और अप्सराओं के लिए प्रवृत्त (व्रात्यम्) असंस्कृत=अशुद्ध पुरुष को; (प्रयुग्भ्यः) हल जोतने वालों के लिए प्रवृत्त (उन्मत्तम्) उन्माद के रोगी को; (सर्पदेवजनेभ्यः) सर्प और देवजनों के लिए हितकारी (अप्रतिपदम्) अनिश्चित बुद्धि वाले को; (अयेभ्यः) प्राप्त करने योग्य पदार्थों के लिए प्रवृत्त (कितवम्) द्यूतकारी=जुआरी को; (ईर्य्यतायै) कम्पन=भय के लिए प्रवृत्त (अकितवम्) जूआ न खेलने वाले को; (पिशाचेभ्यः) पिशित=नष्ट हो गई है आशा जिनके उन निराश

मार्गास्तेभ्यो धनं येषान्तेभ्यः प्रवृत्तां **कण्टकीकारीं** या कण्टकीं करोति तां **परासुव** दूरं गमय ॥३०।८॥

जनों अथवा पिशित=सरक्त मांस का आचमन= भक्षण करने वाले पिशाचों के लिए प्रवृत्त (विदलकारीम्) मांस के पृथक् पृथक् टुकड़े करने वाली को, (यातुधानेभ्यः) यातु= मार्गों से धन हरण करने वाले लोगों के लिए प्रवृत्त (कण्टकी-कारीम्) मार्गों को कण्टकी करने वाली को (परासुव) दूर कर ॥ ३० । ८ ॥

भावार्थः—हे राजन् ! यथा परमेश्वरो दुष्टेभ्यो महात्मनो दूरे वासयति, दुष्टाः परमेश्वराद् दूरे वसन्ति, तथा त्वं दुष्टेभ्यो दूरं वस, दुष्टांश्च स्वतो दूरे वासय, सुशिक्षया साधून् सम्पादय वा ॥ ३० । ८ ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जैसे परमेश्वर दुष्टों से महात्माओं को दूर बसाता है; दुष्ट परमेश्वर से दूर बसते हैं; वैसे तू दुष्टों से दूर बस, और दुष्टों को अपने से दूर बसा, अथवा सुशिक्षा से उन्हें श्रेष्ठ बना ॥ ३० । ८ ॥

भाष्यसार—१. **राजपुरुष क्या करें**—विद्वान् राजा का कर्त्तव्य है कि वह नदी के विनाश में प्रवृत्त पुक्कस को, रीछनियों के पकड़ने में प्रवृत्त निषाद के पुत्र को, व्याघ्र के तुल्य जो पुरुष है उसके लिए हितकारी दुष्ट अभिमानी पुरुष को, गन्धर्व जनों तथा अप्सराओं की प्राप्ति के लिए प्रवृत्त व्रात्य असंस्कृत पुरुष को, हल जोतने वालों के लिए प्रवृत्त उन्माद के रोगी को, सर्प और देवजनों के हितकारी अनिश्चित मति पुरुष को, प्राप्त करने योग्य पदार्थों की प्राप्ति के लिए प्रवृत्त जुआरी को, कम्पन=भय के लिए प्रवृत्त जुआ न खेलने वाले को, जिनकी आशाएँ नष्ट हो गई हैं अथवा जो रक्त सहित मांस भक्षण करने वाले हैं उनके लिए प्रवृत्त हुई मांस के टुकड़े करने वाली स्त्री को, मार्गों में यात्रियों से धन हरण करने वालों के लिए प्रवृत्त हुई मार्ग को कण्टकी करने वाली स्त्री को दूर करे। तात्पर्य यह है कि—जैसे परमेश्वर दुष्टों से महात्माओं को दूर बसाता है तथा दुष्ट लोग परमेश्वर से दूर बसते हैं वैसे राजा भी दुष्टों से दूर बसे और दुष्टों को दूर बसावे अथवा सुशिक्षा से उन्हें श्रेष्ठ बनावे ॥

२. **ईश्वर**—सब मनुष्य मन्त्रोक्त व्यवहार की सिद्धि के लिए ईश्वर से प्रार्थना करें ॥ ३० । ८ ॥

नारायणः । **विद्वान्**=स्पष्टम् । भुरिगत्यष्टिः । मध्यमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजपुरुषों को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

स॒न्धये॑ जा॒रं गे॒हायो॑पप॒तिमार्त्यै॒ परि॑वित्तं॒ निर्ऋ॑त्यै परिविविदा॒नमरा॑द्ध्या ऽ एदि॒धिषुःप॒तिं निष्कृ॑त्यै पेशस्का॒रीᳯ॑ सं॒ज्ञाना॑य स्मरका॒रीं प्र॑का॒मोद्या॑योप॒सदं॒ वर्णा॑यानु॒रुधं॒ बला॑योप॒दाम् ॥ ९ ॥

पदार्थः—(**सन्धये**) परस्त्रीसमागमनाय प्रवर्त्तमानम् (**जारम्**) व्यभिचारिणम् (**गेहाय**) गृहपत्नीसङ्गमाय प्रवृत्तम् (**उपपतिम्**) यः पत्युः समीपे वर्त्तते तम् (**आर्त्यै**) कामपीडायै प्रवृत्तम् (**परिवित्तम्**) कृतविवाहे कनिष्ठे बन्धावविवाहितं ज्येष्ठम् (**निर्ऋत्यै**) पृथिव्यै प्रवृत्तम् । **निर्ऋतिरिति** पृथिवीना० ॥ निघं० । १ । १ ॥ (**परिविविदानम्**) अप्राप्तदाये ज्येष्ठे प्राप्तदायं कनिष्ठम् (**अराध्यै**) अविद्यमान-

संसिद्धये प्रवृत्तम् (**एदिधिषुः पतिम्**) अकृतविवाहायां ज्येष्ठायां पुत्र्यामूढा कनिष्ठा तस्याः पतिम् । (**निष्कृत्यै**) प्रायश्चित्ताय प्रवर्त्तमानाम् (**पेशस्कारीम्**) रूपकर्त्रीम् (**सञ्ज्ञानाय**) सम्यक् ज्ञानं=कामप्रबोधं तस्मै प्रवृत्ताम् (**स्मरकारीम्**) या स्मरं=कामं करोति तां दूतिकाम् (**प्रकामोद्याय**) यः प्रकृष्टैः कामैरुद्यतस्तस्मै (**उपसदम्**) यः समीपे सीदति तम् (**वर्णाय**) स्वीकरणाय प्रवृत्तम् (**अनुरुधम्**) योऽनुरुणद्धि तम् (**बलम्**) बलवृद्धये (**उपदाम्**) उप=समीपे दीयते ताम् ।। ९ ।।

प्रमाणार्थ—(निर्ऋत्यै) पृथिव्यै प्रवृत्तम् । 'निर्ऋति' यह पद निघण्टु (१ । १) में पृथिवी-नामों में पठित है ।।

अन्वयः—हे जगदीश्वर सभेश राजन् वा त्वं सन्धये जारं गेहायोपपतिमार्त्यै परिवित्तं निर्ऋत्यै परिविविदानमराध्यै एदिधिषुः पतिं निष्कृत्यै पेशस्कारीं सञ्ज्ञानाय स्मरकारीं प्रकामोद्यायोपसदं वर्णायानुरुधं बलायोपदां परासुव ।। ९ ।।

सपदार्थान्वयः—**हे जगदीश्वर सभेश राजन् वा ! त्वं सन्धये** परस्त्रीसमागमनाय प्रवर्त्तमानं **जारं** व्यभिचारिणं, **गेहाय** गृहपत्नी-सङ्गमाय प्रवृत्तम् **उपपतिं** यः पत्युः समीपे वर्त्तते तम्, **आर्त्यै** कामपीडायै प्रवृत्तं **परिवित्तं** कृतविवाहे कनिष्ठे बन्धावविवाहितं ज्येष्ठं, **निर्ऋत्यै** पृथिव्यै प्रवृत्तं **परिविविदानम्** अप्राप्तदाये ज्येष्ठे प्राप्तदायं कनिष्ठम्, **अराध्यै** अविद्यमानसंसिद्धये प्रवृत्तं **एदिधिषुः पतिम्** अकृतविवाहायां ज्येष्ठायां पुत्र्यामूढा कनिष्ठा तस्याः पतिं, **निष्कृत्यै** प्रायश्चित्ताय प्रवर्त्तमानां **पेशस्कारीं** रूपकर्त्रीं, **सञ्ज्ञानाय** सम्यक् ज्ञानं= कामप्रबोधं तस्मै प्रवृत्तां **स्मरकारीं** या स्मरं= कामं करोति तां दूतिकां, **प्रकामोद्याय** यः प्रकृष्टैः कामैरुद्यतस्तस्मै **उपसदं** यः समीपे सीदति तं, **वर्णाय** स्वीकरणाय प्रवृत्तम् **अनुरुधं** योऽनुरुणद्धि तं, **बलाय** बलवृद्धये **उपदाम्** उप=समीपे दीयते तां **परासुव** दूरे गमय ।। ३० । ९ ।।

भाषार्थ—हे जगदीश्वर वा सभापति राजन्! तू—(सन्धये) परस्त्रीसमागम के लिए प्रवृत्त (जारम्) व्यभिचारी को; (गेहाय) गृहपत्नी के संगम के लिए प्रवृत्त (उपपतिम्) पति के समीपवर्ती उपपति को; (आर्त्यै) कामपीड़ा के लिए प्रवृत्त (परिवित्तम्) कनिष्ठ बन्धु के विवाह करने पर अविवाहित ज्येष्ठ बन्धु को; (निर्ऋत्यै) पृथिवी के लिए प्रवृत्त (परिविविदानम्) ज्येष्ठ बन्धु के दायभाग को अप्राप्त तथा दायभाग को प्राप्त कनिष्ठ बन्धु को, (अराध्यै) अविद्यमान सिद्धि के लिए प्रवृत्त (एदिधिषुःपतिम्) ज्येष्ठ पुत्री के अविवाहित रहने पर कनिष्ठ पुत्री से विवाह करने वाले पति को; (निष्कृत्यै) प्रायश्चित्त के लिए प्रवर्तमान (पेशस्करीम्) रूप बनाने वाली व्यभिचारिणी को, (संज्ञानाय) काम के प्रबोधन के लिए प्रवृत्त (स्मरकारीम्) काम को उत्पन्न करने वाली दूतिका को, (प्रकामोद्याय) अत्यन्त कामवासनाओं से उद्यत मनुष्य के लिए (उपसदम्) समीप रहने वाले साथी को, (वर्णाय) स्वीकार करने के लिए प्रवृत्त (अनुरुधम्) अनुरोधक को, (बलाय) बलवृद्धि के लिए (उपदाम्) उपदा=भेंट (रिश्वत) को (परासुव) दूर कर ।। ३० । ९ ।।

भावार्थः—हे राजन् ! यथा परमेश्वरो जारादीन् दुष्टान् दण्डयति तथा त्वमेतान् दण्डय यथेश्वरः पापत्यागिनो निगृह्णाति तथा त्वं धार्मिकाननुगृहाण ।। ३० । ९ ।।

भावार्थ—हे राजन् ! जैसे परमेश्वर जार आदि दुष्टों को दण्ड देता है; वैसे तू इन्हें दण्ड दे । जैसे ईश्वर पाप का त्याग करने वालों को स्वीकार करता है; वैसे तू धार्मिकों पर अनुग्रह कर ।।३०।९।।

भाष्यसार—१. **राजपुरुष क्या करें**—सभापति विद्वान् राजा का कर्त्तव्य है कि वह—परस्त्रीगमन के लिए प्रवृत्त व्यभिचारी को, गृहपत्नी के संगम के लिए प्रवृत्त उपपति को; कामपीड़ा से प्रवृत्त हुए, छोटे भाई के विवाह करने पर अविवाहित ज्येष्ठ बन्धु को; ज्येष्ठ भाई के दायभाग न प्राप्त करने पर दाय भाग को प्राप्त करने वाले कनिष्ठ भाई को; अविद्यमान सिद्धि के लिए प्रवृत्त हुए, ज्येष्ठ पुत्री के अविवाहित रहने पर विवाहित कनिष्ठ पुत्री के पति को; प्रायश्चित्त के लिए प्रवृत्त हुई रूप बनाने वाली स्त्री को, काम को जगाने में प्रवृत्त हुई कामोत्पादक दूती को; अत्यन्त कामवासनाओं से उद्यत पुरुष के लिए उसके समीपस्थ मित्र को; स्वीकृति के लिए प्रवृत्त हुए अनुरोध करने वाले पुरुष को, बल-वृद्धि के लिए दी जाने वाली उपदा=रिश्वत को—दूर करे। तात्पर्य यह है कि—जैसे परमेश्वर जार आदि दुष्ट लोगों को दण्ड देता है; वैसे राजा भी इन्हें दण्ड दे। जैसे ईश्वर पाप का त्याग करने वाले लोगों को स्वीकार करता है; वैसे राजा भी धार्मिक लोगों को स्वीकार करें; उन पर अनुग्रह करें।

२. **ईश्वर**—सब मनुष्य मन्त्रोक्त व्यवहार की सिद्धि के लिए ईश्वर से प्रार्थना करें ॥ ३० । ९ ॥

नारायणः । **विद्वान्=स्पष्टम्** । भुरिगत्यष्टिः । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजपुरुषों को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

उत्सादेभ्यः कुब्जं प्रमुदे वामनं द्वार्भ्यः स्रामꣳ स्वप्नायान्धमधर्माय बधिरं पवित्राय भिषजं प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शमाशिक्षायै प्रश्निनमुपशिक्षाया ऽअभिप्रश्निनं मर्यादायै प्रश्नविवाकम् ॥ १० ॥

पदार्थः—(**उत्सादेभ्यः**) नाशेभ्यः प्रवृत्तम् (**कुब्जम्**) वक्राङ्गम् (**प्रमुदे**) प्रकृष्टानन्दाय (**वामनम्**) ह्रस्वाङ्गम् (**द्वार्भ्यः**) सवर्णेभ्यः आच्छादनेभ्यः प्रवृत्तम् (**स्रामम्**) सततं प्रस्रवितजलनेत्रम् (**स्वप्नाय**) निद्रायै (**अन्धम्**) (**अधर्माय**) धर्माचरणहिताय (**बधिरम्**) श्रोत्रविकलम् (**पवित्राय**) रोगनिवारणेन शुद्धिकरणाय (**भिषजम्**) वैद्यम् (**प्रज्ञानाय**) प्रकृष्टज्ञानवर्धनाय (**नक्षत्रदर्शम्**) यो नक्षत्राणि पश्यत्येतैर्दर्शयति वा तम् (**आशिक्षायै**) समन्ताद्विद्योपादानाय (**प्रश्निनम्**) प्रशस्ताः प्रश्ना विद्यन्ते यस्य (**उपशिक्षायै**) उपवेदादिविद्योपादानाय (**अभिप्रश्निनम्**) अभितः बहवः प्रश्ना विद्यन्ते यस्य तम् (**मर्यादायै**) न्यायाऽन्यायव्यवस्थायै (**प्रश्नविवाकम्**) यः प्रश्नान् विवेचयति तम् ॥ १० ॥

अन्वयः—हे परमेश्वर राजन् ! वा त्वमुत्सादेभ्यः कुब्जं प्रमुदे वामनं द्वार्भ्यः स्रामं स्वप्नायाऽन्धमधर्माय बधिरं परासुव । पवित्राय भिषजं प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शमाशिक्षायै प्रश्निनमुपशिक्षाया अभिप्रश्निनं मर्यादायै प्रश्नविवाकमासुवं ॥ १० ॥

सपदार्थान्वयः—हे परमेश्वर ! राजन् वा ! त्वमुत्सादेभ्यः नाशेभ्यः प्रवृत्तं **कुब्जं** वक्राङ्गं, **प्रमुदे** प्रकृष्टानन्दाय **वामनं** ह्रस्वाङ्गं, **द्वार्भ्यः** सवर्णेभ्य आच्छादनेभ्यः प्रवृत्तं **स्रामं** सततं प्रस्रवितजलनेत्रं, **स्वप्नाय** निद्रायै **अन्धम्**, **अधर्माय**

भाषार्थ—हे परमेश्वर वा राजन् ! तू—(उत्सादेभ्यः) नाशों के लिए प्रवृत्त (कुब्जम्) वक्राङ्ग=कुबड़े को, (प्रमुदे) उत्तम आनन्द के लिए (वामनम्) ह्रस्वांग=बावने को, (द्वार्भ्यः) सुवर्ण आच्छादनों के लिए प्रवृत्त (स्रामम्) सतत सजल

धर्माचरणरहिताय **बधिरं** श्रोत्रविकलं, **परासुव** दूरे गमय;

पवित्राय रोगनिवारणेन शुद्धिकरणाय **भिषजं** वैद्यं, **प्रज्ञानाय** प्रकृष्टज्ञानवर्धनाय **नक्षत्रदर्शं** यो नक्षत्राणि पश्यत्येतैर्दर्शयति वा तम्, **आशिक्षायै** समन्ताद्विद्योपादानाय **प्रश्निनं** प्रशस्ताः प्रश्ना विद्यन्ते यस्य [तं] **उपशिक्षायै** उपवेदादिविद्योपादानाय **अभिप्रश्निनम्** अभितः बहवः प्रश्ना विद्यन्ते यस्य तं, **मर्यादायै** न्यायाऽन्यायव्यवस्थायै **प्रश्नविवाकं** यः प्रश्नान् विवेचयति तम् **आसुव** सर्वतो जनय ॥३०॥

नेत्र वाले को, (स्वप्नाय) निद्रा के लिए प्रवृत्त (अन्धम्) अन्धे को (अधर्माय) धर्माचरण से रहित (बधिरम्) बहरे को, (परासुव) दूर कर।

(पवित्राय) रोगनिवारण से शुद्धि करने के लिए (भिषजम्) वैद्य को, (प्रज्ञानाय) उत्तम ज्ञान की वृद्धि के लिए (नक्षत्रदर्शम्) नक्षत्रों के द्रष्टा को; (आशिक्षायै) सब ओर से विद्या को ग्रहण करने के लिए (प्रश्निनम्) प्रशस्त प्रश्न करने वाले को; (उपशिक्षायै) उपवेद आदि की विद्या को ग्रहण करने के लिए (अभिप्रश्निनम्) सम्मुख बहुत प्रश्न करने वाले को; (मर्यादायै) न्याय-अन्याय की व्यवस्था के लिए (प्रश्नविवाकम्) प्रश्नों का विवेचन करने वाले को (आसुव) सब ओर उत्पन्न कर ॥ ३० । १० ॥

भावार्थः—हे राजन् ! यथेश्वरः पापाचरणफलप्रदानेन कुब्ज-वामन-स्रवितजलनेत्र-अन्ध-बधिरान् मनुष्यादीन् करोति, भिषग्-ज्योतिर्विद्-अध्यापक-परीक्षक-प्रश्नोत्तरविवेचकेभ्यः श्रेष्ठकर्मफलप्रदानेन पवित्रता-प्रज्ञा-विद्याग्रहणाध्यापन-परीक्षा-प्रश्नोत्तर-करणसामर्थ्यं च ददाति, तथैव त्वं येन येनाङ्गेन नरा विचेष्टन्ते यस्य तस्याङ्गस्योपरि दण्डनिपातनेन, वैद्यादीनां प्रतिष्ठाकरणेन च राजधर्मं सततमुन्नय ॥ ३० । १० ॥

भावार्थ—हे राजन् ! जैसे ईश्वर पापाचरण का फल देकर कुबड़े, वामन, चिपड़े, अन्धे, बहरे आदि मनुष्यों को उत्पन्न करता है; वैद्य, ज्योतिषी, अध्यापक, परीक्षक, प्रश्नोत्तर के विवेचक लोगों को श्रेष्ठ कर्मों के फल प्रदान से पवित्रता, प्रज्ञा, विद्या का ग्रहण तथा अध्यापन, परीक्षा करना और प्रश्नोत्तर करने का सामर्थ्य देता है; वैसे तू—जिस-जिस अंग से नर विरुद्ध चेष्टा करते हैं उस उस अङ्ग के ऊपर दण्ड निपातन करके, और वैद्य आदि लोगों की प्रतिष्ठा करके राजधर्म को सदा उन्नत कर ॥ ३० । १० ॥

भा० पदार्थः—नक्षत्रदर्शनम् = ज्योतिर्विदम् । प्रश्निनम्=अध्यापकम् । अभिप्रश्निनम्= परीक्षकम् । प्रश्नविवाकम्=प्रश्नोत्तरविवेचकम्। पवित्राय=पवित्रतादानाय । प्रज्ञानाय=प्रज्ञादानाय । आशिक्षायै=विद्याग्रहणायाध्यापनाय च । उपशिक्षायै=परीक्षादानाय । मर्यादायै=प्रश्नोत्तरकरण-सामर्थ्याय ॥

भाष्यसार—१. राजपुरुष क्या करें—विद्वान् राजा का कर्त्तव्य है कि वह—नाश के लिए प्रवृत्त हुए कुबड़े को, उत्तम आनन्द के लिए वामन को, सवर्ण आच्छादन के लिए प्रवृत्त हुए सजल नेत्र वाले पुरुष को, निद्रा के लिए अन्धे को, धर्माचरण से रहित बहरे को दूर करे। रोग-निवारण से शुद्धि करने के लिए प्रवृत्त हुए वैद्य को, उत्तम ज्ञान की वृद्धि के लिए नक्षत्रों के द्रष्टा ज्योतिषी को; सब ओर से विद्या को ग्रहण करने के लिए प्रवृत्त हुए, प्रशस्त प्रश्न करने वाले जिज्ञासु को, उपवेद आदि की विद्या की प्राप्ति के लिए प्रवृत्त हुए सब ओर से बहुत प्रश्न करने वाले शिष्य को, मर्यादा अर्थात् न्याय और अन्याय की व्यवस्था के लिए प्रवृत्त हुए, प्रश्नों के विवेचक विद्वान् को शिक्षा से सब ओर उत्पन्न करे।

तात्पर्य यह है कि जैसे परमेश्वर पापाचरण का फल प्रदान करके मनुष्यों को कुबड़ा, वामन, चपड़ा, अन्धा और बहरा बना देता है; तथा वैद्य, ज्योतिषी, अध्यापक, परीक्षक प्रश्नोत्तरों के विवेचक विद्वानों को पवित्रता, प्रज्ञा, विद्या, अध्यापन, परीक्षा तथा प्रश्नोत्तर करने का सामर्थ्य प्रदान करता है; वैसे राजा भी जो नर जिस जिस अंग से विरुद्ध चेष्टा करें उस उस अंग पर दण्डनिपातन करे, वैद्य आदि विद्वानों की प्रतिष्ठा करे और राजधर्म को सदा उन्नत करे।

२. **ईश्वर**—सब मनुष्य मन्त्रोक्त व्यवहार की सिद्धि के लिए ईश्वर से प्रार्थना करें ॥ ३० । १० ॥

नारायणः । **विद्वान्**=स्पष्टम् । स्वराडतिशक्वरी । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजपुरुषों को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

अर्मेभ्यो हस्तिपं जवायाश्वपं पुष्ट्यै गोपालं वीर्यायाविपालं तेजसेऽजपालमिरायै कीनाशं कीलालाय सुराकारं भद्राय गृहपश्रेयसे वित्तधमाध्यक्ष्यायानुक्षत्तारम् ॥ ११ ॥

पदार्थः—(**अर्मेभ्यः**) प्रापकेभ्यः (**हस्तिपम्**) हस्तीनां पालकम् (**जवाय**) वेगाय (**अश्वपम्**) अश्वानां रक्षकं शिक्षकम् (**पुष्टचै**) रक्षणाय (**गोपालम्**) गवां पालकम् (**वीर्य्याय**) वीर्य्यवृद्धये (**अविपालम्**) अवीनां रक्षकम् (**तेजसे**) तेजोवर्द्धनाय (**अजपालम्**) अजानां रक्षकम् (**इरायै**) अन्नादिवृद्धये । इरेत्यन्नना० ॥ निघं० २ । ७ ॥ (**कीनाशम्**) कृषीवलम् (**कीलालाय**) अन्नाय । कीलाल इत्यन्नना० ॥ निघं० २ । ७ ॥ (**सुराकारम्**) सोमनिष्पादकम् (**भद्राय**) कल्याणाय (**गृहपम्**) गृहाणां रक्षकम् (**श्रेयसे**) धर्म्मार्थिकामप्राप्तये (**वित्तधम्**) यो वित्तं=धनं दधाति तम् (**आध्यक्ष्याय**) अध्यक्षाणां भावाय (**अनुक्षत्तारम्**) सारथ्यनुकूलम् ॥ ११ ॥

प्रमाणार्थ—(**इरायै**) अन्नादिवृद्धये। 'इरा' यह पद निघण्टु (२ । ७) में अन्न-नामों में पठित है। (**कीलालाय**) अन्नाय। 'कीलाल' यह पद निघण्टु (२ । ७) में अन्न-नामों में पठित है ॥

अन्वयः—हे ईश्वर राजन् ! वा त्वमर्मेभ्यो हस्तिपं जवायाऽश्वपं पुष्टचै गोपालं वीर्य्यायाऽविपालं तेजसेऽजपालमिरायै कीनाशं कीलालाय सुराकारं भद्राय गृहपं श्रेयसे वित्तधमाध्यक्ष्यायाऽनुक्षत्तारमासुव ॥ ११ ॥

सपदार्थान्वयः—हे ईश्वर राजन् वा ! त्वमर्मेभ्यः प्रापकेभ्यः **हस्तिपं** हस्तीनां पालकं, **जवाय** वेगाय **अश्वपम्** अश्वानां रक्षकं शिक्षकं, **पुष्टचै** रक्षणाय **गोपालं** गवां पालकं, **वीर्य्याय** वीर्य्यवृद्धये **अविपालम्** अवीनां रक्षकं, **तेजसे** तेजोवर्द्धनाय **अजपालम्** अजानां रक्षकम्, **इरायै** अन्नादिवृद्धये **कीनाशं** कृषीवलं, **कीलालाय** अन्नाय **सुराकारं** सोमनिष्पादकं, **भद्राय** कल्याणाय **गृहपं** गृहाणां रक्षकं, **श्रेयसे** धर्मार्थकामप्राप्तये

भाषार्थ—हे ईश्वर वा राजन् ! तू—(अर्मेभ्यः) देशान्तर को प्राप्त करने वालों के लिए (हस्तिपम्) हाथियों के पालक को; (जवाय) वेग के लिए (अश्वपम्) घोड़ों के रक्षक एवं शिक्षक को; (पुष्टचै) पुष्टि के लिए (गोपालम्) गौओं के पालक को, (वीर्याय) वीर्य की वृद्धि के लिए (अविपालम्) भेड़ों के रक्षक को, (तेजसे) तेज की वृद्धि के लिए (अजपालम्) बकरियों के रक्षक को, (इरायै) अन्न आदि की वृद्धि के लिए (कीनाशम्)

वित्तधं यो वित्तं=धनं दधति तम् **आध्यक्ष्याय** अध्यक्षाणां भावाय **अनुक्षत्तारं** सारथ्यनुकूलम् **आसुव** सर्वतो जनय ॥ ३० । ११ ॥

किसान को, (कोलालाय) अन्न के लिए (सुराकारम्) सोम बनाने वाले को, (भद्राय) कल्याण के लिए (गृहपम्) घरों के रक्षक को, (श्रेयसे) धर्म-अर्थ, काम की प्राप्ति के लिए (वित्तधम्) धन धारण करने वाले को, (आध्यक्ष्याय) अध्यक्षता के लिए (अनुक्षत्तारम्) सारथि के अनुकूल पुरुष को (आसुव) सब ओर उत्पन्न कर ॥ ३० । ११ ॥

भावार्थः—राजपुरुषैः सुशिक्षितान् हस्तिरक्षकादीन् संगृह्य तैर्बहवो व्यवहाराः साधनीयाः ॥ ३० । ११ ॥

भावार्थ—राजपुरुष—सुशिक्षित हाथी आदि के रक्षक पुरुषों का संग्रह करके इनसे बहुत व्यवहारों को सिद्ध करें ॥ ३० । ११ ॥

भा० पदार्थः—हस्तिपम्=हस्तिरक्षकम् ।

भाष्यसार—**१. राजपुरुष क्या करें**—विद्वान् राजा का कर्त्तव्य है कि वह—देशान्तर को प्राप्त करने वालों के लिए हाथियों के पालक को; वेग के लिए घोड़ों के रक्षक एवं शिक्षक को; पुष्टि के लिए गौओं के पालक को; वीर्य की वृद्धि के लिए अवि=भेड़ों के रक्षक को; तेज की वृद्धि के लिए अजा=बकरियों के रक्षक को; अन्न आदि की वृद्धि के लिए किसान को, अन्न=भोजन के लिए सोम आदि के निर्माता को, कल्याण (सुख) के लिए घरों के रक्षक को; श्रेय=धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति के लिए धनवान् को; अध्यक्षता के लिए सारथि के अनुकूल पुरुष को शिक्षण के द्वारा सर्वत्र उत्पन्न करे। सुशिक्षित मन्त्रोक्त हाथी के रक्षक आदि पुरुषों को स्वीकार करके नाना व्यवहारों को सिद्ध करे।

२. ईश्वर—सब मनुष्य मन्त्रोक्त व्यवहार की सिद्धि के लिए ईश्वर से प्रार्थना करें ॥३०।११॥

नारायणः । **विद्वान्=स्पष्टम्** । विराट् पङ्क्तिः । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजपुरुषों को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

भायै दार्वाहारं प्रभाया ऽ अग्न्येधं ब्रध्नस्य विष्टपायाभिषेक्तारं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारं देवलोकाय पेशितारं मनुष्यलोकाय प्रकरितारꣳ सर्वेभ्यो लोकेभ्य ऽ उपसेक्तारमवऽऋत्यै वधायोपमन्थितारं मेधाय वासःपल्पूलीं प्रकामाय रजयित्रीम् ॥ १२ ॥

पदार्थः—(भायै) दीप्त्यै (दार्वाहारम्) यो दारूणि=काष्ठान्याहरति तम् (प्रभायै) (अग्न्येधम्) अग्निश्चैधश्च तत् (ब्रध्नस्य) अश्वस्य । ब्रध्न इत्यश्वना० ॥ निघं० १ । १४ ॥ (विष्टपाय) विशन्ति यत्र तस्मै मार्गाय (अभिषेक्तारम्) अभिषेककर्त्तारम् (वर्षिष्ठाय) अतिवृद्धाय श्रेष्ठाय (नाकाय) अविद्यमानदुःखाय (परिवेष्टारम्) परिवेषणकर्त्तारम् (देवलोकाय) देवानां दर्शनाय (पेशितारम्) विद्यावयववेत्तारम् (मनुष्यलोकाय) मनुष्यत्वदर्शनाय (प्रकरितारम्) विक्षेप्तारम् (सर्वेभ्यः) (लोकेभ्यः) संहतेभ्यः (उपसेक्तारम्) उपसेचनकर्त्तारम् (अवऋत्यै) विरुद्धप्राप्तये (वधाय) हननाय प्रवृत्तम् (उपमन्थितारम्) समीपे विलोडितारम् (मेधाय) सङ्गमाय (वासःपल्पूलीम्) वाससां शुद्धिकरीम् (प्रकामाय) प्रकृष्टकामनासिद्धये (रजयित्रीम्) विविधरागकारिणीम् ॥ १२ ॥

प्रमाणार्थ—(**ब्रध्नस्य**) अश्वस्य। 'ब्रध्न' यह पद निघण्टु (१।१४) में अश्व-नामों में पठित है। अश्व=घोड़ा॥

अन्वयः—हे जगदीश्वर राजन् वा त्वं भायै दार्वाहारं प्रभाया अग्न्येधं ब्रध्नस्य विष्टपायाभिषेक्तारं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारं देवलोकाय पेशितारं मनुष्यलोकाय प्रकरितारं सर्वेभ्यो लोकेभ्य उपसेक्तारं मेधाय वासः पल्पूलीं प्रकामाय रजयित्रीमासुव। अवऋत्यै बधायोपमन्थितारं परासुव॥ १२॥

सपदार्थान्वयः—**हे जगदीश्वर राजन् वा! त्वं भायै** दीप्त्यै **दार्वाहारं** यो दारूणि=काष्ठान्याहरति तं, **प्रभाया अग्न्येधम्** अग्निश्चैधश्च तत्, **ब्रध्नस्य** अश्वस्य **विष्टपाय** विशन्ति यत्र तस्मै मार्गाय **अभिषेक्तारम्** अभिषेककर्त्तारं, **वर्षिष्ठाय** अतिवृद्धाय श्रेष्ठाय **नाकाय** अविद्यमानदुःखाय **परिवेष्टारं** परिवेषणकर्त्तारं, **देवलोकाय** देवानां दर्शनाय **पेशितारं** विद्यावयववेत्तारं, **मनुष्यलोकाय** मनुष्यत्वदर्शनाय **प्रकरितारं** विक्षेप्तारं, **सर्वेभ्यो लोकेभ्यः** संहतेभ्यः **उपसेक्तारम्** उपसेचनकर्त्तारं, **मेधाय** सङ्गमाय **वासःपल्पूलीं** वाससां शुद्धिकरीं, **प्रकामाय** प्रकृष्टकामनासिद्धये **रजयित्रीं** विविधरागकारिणीम् **आसुव**।

अवऋत्यै विरुद्धप्राप्तये **बधाय** हननाय प्रवृत्तम् **उपमन्थितारं** समीपे विलोडितारं **परासुव** दूरे गमय॥ ३०। १२॥

भाषार्थ—हे जगदीश्वर वा राजन्! तू—(भायै) दीप्ति के लिए (दार्वाहारम्) दारु=लकड़ी लाने वाले लक्कड़हारे को; (प्रभायै) प्रभा के लिए (अग्न्येधम्) अग्नि और इन्धन को; (ब्रध्नस्य) घोड़े (विष्टपाय) मार्ग के लिए (अभिषेक्तारम्) अभिषेक=छिड़काव करने वाले को, (वर्षिष्ठाय) अति विशाल एवं श्रेष्ठ (नाकाय) दुःखरहित स्वर्ग के लिए (परिवेष्टारम्) भोजन परोसने वाले को, (देवलोकाय) देवों के दर्शन के लिए (पेशितारम्) विद्या-अवयव के ज्ञाता को, (मनुष्यलोकाय) मनुष्यता के दर्शन के (प्रकरितारम्) दोषों के विक्षेपक को, (सर्वेभ्यः) सब (लोकेभ्यः) समुदायों के लिए (उपसेक्तारम्) उपसेक करने वाले को, (मेधाय) संगम के लिए (वासःपल्पूलीम्) वस्त्रों को शुद्ध करने वाली को, (प्रकामाय) उत्तम कामना की सिद्धि के लिए (रजयित्रीम्) विविध रंग करने वाली को, (आसुव) सब ओर उत्पन्न कर।

(अवऋत्यै) विरुद्ध प्राप्ति=अनिष्ट के लिए (बधाय) बध करने को प्रवृत्त (उपमन्थितारम्) समीप में मन्थन करने वाले पुरुष को (परासुव) दूर कर॥ ३०। १२॥

भावार्थः—राजपुरुषादिमनुष्यैरीश्वरसृष्टेः सकाशात् सर्वाः सामग्रीर्ग्राह्याः। ताभिः शरीरबलं, विद्यान्यायप्रकाशो, महत्सुख, राज्याभिषेकाः, दुःखविनाशो, विद्वत्सङ्गः, मनुष्यस्वभावो, वस्त्रादिपवित्रता निष्पादनीया। विरोधश्च त्यक्तव्यः॥ ३०। १२॥

भावार्थ—राजपुरुष आदि मनुष्य—ईश्वर की सृष्टि से सब सामग्री ग्रहण करें। उससे शरीर-बल, विद्या और न्याय का प्रकाश, महान् सुख, राज्याभिषेक, दुःख का विनाश, विद्वानों का संग, मनुष्य स्वभाव, वस्त्र आदि की पवित्रता को सिद्ध करें, और विरोध को त्याग दें॥ ३०। १२॥

भा० पदार्थः—पेशितारम्=विद्यान्यायप्रकाशकम्। वर्षिष्ठाय=महते। नाकाय=सुखाय। अभिषेक्तारम्=राज्याभिषेककर्त्तारम्। मेधाय=विद्वत्सङ्गाय। वासःपल्पूलीम्=वस्त्रादिपवित्रताम्।

भाष्यसार—१. **राजपुरुष क्या करें**—राजा का कर्त्तव्य है कि वह—दीप्ति की प्राप्ति के

लिए लकड़ियाँ लाने वाले लक्कड़हारे को, प्रभा की प्राप्ति के लिए अग्नि और इन्धन को; घोड़े के मार्ग की शुद्धि के लिए अभिषेक=छिड़काव करने वाले को, बहुत बड़े एवं श्रेष्ठ सुख की प्राप्ति के लिए भोजन आदि परोसने वाले को, देवों के दर्शन करने के लिए विद्या-अवयवों के ज्ञाता को, मनुष्यता के दर्शन करने के लिए दोषों के विक्षेप्ता को; सब संहत मनुष्यों के लिए उपसेचन (जल आदि उड़ेलना) करने वाले को, संगम के लिए वस्त्रों का शोधन करने वाली स्त्री को, उत्तम कामना की सिद्धि के लिए विविध राग=रंग करने वाली स्त्री को; सर्वत्र शिक्षा से उत्पन्न करे। विरुद्ध प्राप्ति अर्थात् अनिष्ट के निमित्त बध के लिए प्रवृत्त हुए एवं समीप में विलोडन करने वाले अर्थात् कष्ट पहुँचाने वाले मनुष्य को दूर करे।

तात्पर्य यह है कि राजा ईश्वर की सृष्टि से सब सामग्री को संग्रह करे और उससे शरीर-बल, विद्या और न्याय रूप प्रकाश, महान् सुख, राज्याभिषेक, दुःख का विनाश, मानव स्वभाव और वस्त्र आदि की पवित्रता को सिद्ध करे तथा विरोध का परित्याग करे।

२. ईश्वर—सब मनुष्य मन्त्रोक्त व्यवहार की सिद्धि के लिए ईश्वर से प्रार्थना करें ॥ ३० । १२ ॥

नारायणः । **ईश्वरः**=स्पष्टम् । कृतिः । निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजपुरुषों को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

ऋ॒तये॑ स्ते॒नहृ॑दयं वैरह॒त्याय॒ पिशु॑नं विवि॑क्त्यै क्ष॒त्तार॒मौप॑द्रष्ट्र्या॒यानु॑क्ष॒त्तारं॒ बला॑या- नु॒चरं॑ भू॒म्ने परि॑ष्क॒न्दं॑ प्रि॒याय॑ प्रियवा॒दिन॒मरि॑ष्ट्या ऽअश्वसा॒दꣳ स्व॒र्गाय॑ लो॒काय॑ भागदु॒घं वर्षि॑ष्ठाय॒ नाका॑य परिवे॒ष्टार॑म् ॥ १३ ॥

पदार्थः—(**ऋतये**) हिंसायै प्रवृत्तम् (**स्तेनहृदयम्**) चोरस्य हृदयमिव हृदयमस्य तम् (**वैरहत्याय**) वैरं हत्या च यस्मिन् कर्मणि तस्मै प्रवर्तमानम् (**पिशुनम्**) विरुद्धसूचकम् (**विविक्त्यै**) विवेकाय (**क्षत्तारम्**) क्षतात्तारकं धर्मात्मानम् (**औपद्रष्ट्र्याय**) उपद्रष्टृत्वाय (**अनुक्षत्तारम्**) (**बलाय**) (**अनुचरम्**) (**भूम्ने**) बहुत्वाय (**परिष्कन्दम्**) सर्वतो रेतसः सेक्तारम् (**प्रियाय**) प्रीत्यै (**प्रियवादिनम्**) (**अरिष्टयै**) कुशलप्राप्तये (**अश्वसादम्**) योऽश्वान् सादयति तम् (**स्वर्गाय**) सुखविशेषाय (**लोकाय**) दर्शनाय सङ्घाताय वा (**भागदुघम्**) यो भागान् दोग्धि=प्रपिपर्त्ति तम् (**वर्षिष्ठाय**) अतिशयेन वृद्धाय (**नाकाय**) अविद्यमानदुःखायाऽऽनन्दाय (**परिवेष्टारम्**) परितः=सर्वतो व्याप्तविद्यं विद्वांसम् ॥ १३ ॥

अन्वयः—हे परमात्मन् हे राजन्! वा त्वमृतये स्तेनहृदयं वैरहत्याय पिशुनं परासुव। विविक्त्यै क्षत्तारमौपद्रष्ट्र्यायनुक्षत्तारं बलायाऽनुचरं भूम्ने परिष्कन्दं प्रियाय प्रियवादिनमरिष्ट्या अश्वसादं स्वर्गाय लोकाय भागदुघं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारमासुव ॥ १३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे परमात्मन् हे राजन् वा! त्वमृतये हिंसायै प्रवृत्तं **स्तेनहृदयं** चोरस्य हृदयमिव हृदयमस्य तं, **वैरहत्याय** वैरं

भाषार्थ—हे परमात्मन् वा राजन्! तू—(ऋतये) हिंसा के लिए प्रवृत्त (स्तेनहृदयम्) चोर के हृदय के तुल्य हृदय वाले पुरुष को, (वैरहत्याय)

हत्या च यस्मिन् कर्मणि तस्मै प्रवर्त्तमानं **पिशुनं** विरुद्धसूचकं **परासुव** दूरे गमय ।

विविक्त्यै विवेकाय **क्षत्तारं** क्षतात्तारकं धर्मात्मानम्, **औपद्रष्ट्र्याय** उपद्रष्टृत्वाय **अनुक्षत्तारं**, **बलायाऽनुचरं**, **भूम्ने** बहुत्वाय **परिष्कन्दं** सर्वतो रेतसः सेक्तारं, **प्रियाय** प्रीत्यै **प्रियवादिनं**, **अरिष्ट्यै** कुशलप्राप्तये **अश्वसादं** योऽश्वान् सादयति तं, **स्वर्गाय** सुखविशेषाय **लोकाय** दर्शनाय सङ्घाताय वा **भागदुघं** यो भागान् दोग्धि=प्रपिपर्त्ति तं, **वर्षिष्ठाय** अतिशयेन वृद्धाय **नाकाय** अविद्यमानदुःखायाऽऽनन्दाय **परिवेष्टारं** परितः=सर्वतो व्याप्तविद्यं विद्वांसम् **आसुव** सर्वतो जनय ॥ ३० । १३ ॥

वैर और हत्या जिस कर्म में है उसके लिए प्रवृत्त (पिशुनम्) विरुद्ध सूचना देने वाले चुगल को (परासुव) दूर कर ।

(विविक्त्यै) विवेक के लिए प्रवृत्त (क्षत्तारम्) क्षत=विनाश से तारक धर्मात्मा को, (औपद्रष्ट्र्याय) उपद्रष्टृता के लिए (अनुक्षत्तारम्) अनुकूलता पूर्वक क्षत=विनाश से तारक धर्मात्मा को, (बलाय) बल के लिए (अनुचरम्) सेवक को, (भूम्ने) बहुसंख्या के लिए (परिष्कन्दम्) सब ओर वीर्य का सेचन करने वाले को, (प्रियाय) प्रीति के लिए (प्रियवादिनम्) प्रियवादी को, (अरिष्ट्यै) कुशलता-प्राप्ति के लिए (अश्वसादम्) घुड़सवार को, (स्वर्गाय) सुखविशेष, (लोकाय) दर्शन वा संघात के लिए (भागदुघम्) भागों को पूरण करने वाले पुरुष को, (वर्षिष्ठाय) अत्यन्त विशाल (नाकाय) दुःख रहित आनन्द के लिए (परिवेष्टारम्) सब ओर से विद्या से व्याप्त विद्वान् को (आसुव) सब ओर उत्पन्न कर ॥ ३० । १३ ॥

भावार्थः—राजादिमनुष्यैर्दुष्टसङ्गं विहाय, श्रेष्ठसङ्गं विधाय विवेकादीन्युत्पाद्य सुखयितव्यम् ॥ ३० । १३ ॥

भावार्थ—राजा आदि मनुष्य—दुष्टों के संग को छोड़कर, श्रेष्ठों का संग करके, विवेक आदि गुणों को उत्पन्न करके सुखी रहें ॥ ३० । १३ ॥

भाष्यसार—१. **राजपुरुष क्या करें**—राजा को उचित है कि वह—हिंसा के लिए प्रवृत्त हुए, चोर के हृदय के तुल्य हृदय वाले पुरुष को, वैर और हत्या कर्म में प्रवृत्त हुए पिशुन=चुगलखोर को दूर करे । विवेक के लिए क्षत=नाश से तारने वाले धर्मात्मा को, उपदेशकता के लिए अनुकूलता पूर्वक क्षत=नाश से तारने वाले धर्मात्मा पुरुष को, बल के लिए अनुचर को, बहुसंख्या के लिए सब ओर वीर्यसेचन करने वाले पुरुष को, प्रीति के लिए प्रियवादी को, कुशलता आदि पहुँचाने के लिए घुड़सवार को; स्वर्ग=सुखविशेष लोक=दर्शन वा संघात के लिए भागों को पूरण करने वाले पुरुष को, अत्यन्त विशाल आनन्द की प्राप्ति के लिए सब ओर विद्या से व्याप्त विद्वान् को शिक्षण के द्वारा, सब ओर उत्पन्न करे । तात्पर्य यह है कि राजा आदि मनुष्य दुष्टों का संग छोड़कर तथा श्रेष्ठों का संग करके विवेक आदि गुणों को उत्पन्न करें तथा सुखी रहें ।

२. **ईश्वर**—सब मनुष्य मन्त्रोक्त व्यवहार सिद्धि के लिए ईश्वर से प्रार्थना करें ॥ ३० ।१३ ॥ ●

नारायणः । **राजेश्वरः**=**स्पष्टम्** । निचृदत्यष्टिः । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजपुरुषों को क्या चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

म॒न्यवेऽयस्ता॒पं क्रोधा॑य निस॒रं योगा॑य यो॒क्तार॒ꣳ शोका॑याभिस॒र्त्तार॒ं क्षेमा॑य विमो॒क्तार॑-मुत्कूलनिकूलेभ्य॑स्त्रि॒ष्ठिनं॒ वपु॑षे मानस्कृ॒तꣳ शीला॑याञ्जनीका॒रीं निर्ऋ॑त्यै कोशका॒रीं य॒माया॒सूम् ॥ १४ ॥

पदार्थः—(**मन्यवे**) आन्तर्यक्रोधाय प्रवृत्तम् (**अयस्तापम्**) लोहसुवर्णतापकम् (**क्रोधाय**) बाह्यकोपाय प्रवृत्तम् (**निसरम्**) यो निश्चितं सरति=गच्छति तम् (**योगाय**) युञ्जन्ति यस्मिंस्तस्मै (**योक्तारम्**) योजकम् (**शोकाय**) (**अभिसर्त्तारम्**) अभिमुख्ये गन्तारम् (**क्षेमाय**) रक्षणाय (**विमोक्तारम्**) दुःखाद्विमोचकम् (**उत्कूलनिकूलेभ्यः**) ऊर्द्ध्वनीचतटेभ्यः (**त्रिष्ठिनम्**) ये त्रिषु जलस्थलान्तरिक्षेषु तिष्ठन्ति ते त्रिष्ठा, बहवस्त्रिष्ठा विद्यन्ते यस्य तम् (**वपुषे**) शरीरहिताय (**मानस्कृतम्**) मनस्कृतेषु=विचारेषु कुशलम् (**शीलाय**) जितेन्द्रियत्वादिशीलिने (**आञ्जनीकारीम्**) आञ्जनीः=प्रसिद्धाः क्रियाः कर्त्तुं शीलं यस्यास्ताम् (**निर्ऋत्यै**) भूम्यै (**कोशकारीम्**) या कोशं करोति ताम् (**यमाय**) दण्डदानाय प्रवृत्ताम् (**असूम्**) याऽस्यति=प्रक्षिपति ताम् ॥ १४ ॥

अन्वयः—हे जगदीश्वर ! राजन् वा त्वं मन्यवेऽयस्तापं क्रोधाय निसरं शोकायाभिसर्त्तारं यमायासूं परासुव । योगाय योक्तारं क्षेमाय विमोक्तारमुत्कूलनिकूलेभ्यस्त्रिष्ठिनं वपुषे मानस्कृतं शीलाया-ऽऽञ्जनीकारीं निर्ऋत्यै कोशकारीमासुव ॥ १४ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे जगदीश्वर राजन् वा ! त्वं मन्यवे** आन्तर्यक्रोधाय प्रवृत्तम् **अयस्तापं** लोहसुवर्णतापकं, **क्रोधाय** बाह्यकोपाय प्रवृत्तं **निसरं** यो निश्चितं सरति=गच्छति तं, **शोकायाभिसर्त्तारम्** अभिमुख्ये गन्तारं, **यमाय** दण्डदानाय प्रवृत्ताम् **असूं** याऽस्यति=प्रक्षिपति तां **परासुव** दूरे गमय ।

योगाय युञ्जन्ति यस्मिँस्तस्मै **योक्तारं** योजकं **क्षेमाय** रक्षणाय **विमोक्तारं** दुःखाद् विमोचकम्, **उत्कूलनिकूलेभ्यः** उद्ध्र्वनीचतटेभ्यः **त्रिष्ठिनं** ये त्रिषु जलस्थलान्तरिक्षेषु तिष्ठन्ति ते त्रिष्ठा, बहवस्त्रिष्ठा विद्यन्ते यस्य तं, **वपुषे** शरीरहिताय **मानस्कृतं** मनस्कृतेषु=विचारेषु कुशलं, **शीलाय** जितेन्द्रिय-त्वादिशीलिने **आञ्जनीकारीम्** आञ्जनीः=प्रसिद्धाः क्रियाः कर्त्तुं शीलं यस्यास्तां, **निर्ऋत्यै** भूम्यै **कोशकारीं** या कोशं करोति ताम् **आसुव** सर्वतो जनय ॥ ३० । १४ ॥

भाषार्थ—हे जगदीश्वर वा राजन् ! तू=(मन्यवे) आन्तरिक क्रोध के लिए प्रवृत्त (अयस्तापम्) लोह और सुवर्ण के तपाने वाले को; (क्रोधाय) बाह्य कोप के लिए प्रवृत्त (निसरम्) निश्चित यात्रा करने वाले को, (शोकाय) शोक के लिए प्रवृत्त (अभिसर्त्तारम्) अभिसारक को; (यमाय) दण्ड देने के लिए प्रवृत्त हुई (असूम्) प्रक्षेपण करने वाली स्त्री को (परासुव) दूर कर ।

(योगाय) योग करने के लिए प्रवृत्त (योक्तारम्) योगी को, (क्षेमाय) रक्षा के लिए प्रवृत्त (विमोक्तारम्) दुःख से विमुक्त करने वाले को, (उत्कूलनिकूलेभ्यः) ऊँचे-नीचे तटों के लिए (त्रिष्ठिनम्) जल, स्थल और अन्तरिक्ष तीनों में ठहरने वाले जनों से युक्त पुरुष को, (वपुषे) शरीर के हित के लिए (मानस्कृतम्) मन से किए विचारों में कुशल पुरुष को, (शीलाय) जितेन्द्रियता आदि शील वाले पुरुष के लिए (आञ्जनीकारीम्) प्रसिद्ध क्रिया करने वाली स्त्री को, (निर्ऋत्यै) भूमि के लिए (कोश-कारीम्) कोश उत्पन्न करने वाली स्त्री को (आसुव) सब ओर उत्पन्न कर ॥ ३० । १४ ॥

भावार्थः—हे राजादयो मनुष्याः! ये तप्तं लोहमिव क्रुद्धा, अन्येषां परितापका, धर्मनियमानां विनाशकाः स्युस्तान् दण्डयित्वा, योगाभ्यासकर्त्रादीन् सत्कृत्य, सर्वत्र यानगमकान् सङ्गृह्य यथावत् सुखं युष्माभिर्वर्द्धनीयम् ।। ३० । १४ ।।

भावार्थ—हे राजा आदि मनुष्यो! जो तपे हुए लोहे के समान क्रुद्ध मनुष्य अन्यों को संतप्त करने वाले तथा धर्म-नियमों के विनाशक हैं; उन्हें दण्ड देकर, योगाभ्यास करने वालों का सत्कार करके, सर्वत्र यान से गमन करने वाले को स्वीकार करके, यथावत् सुख को तुम बढ़ाओ ।। ३० । १४ ।।

भा० पदार्थः—अयस्तापम्=तप्तं लोहमिव । योक्तारम्=योगाभ्यासकर्त्तारम् । त्रिष्ठिनम्=यानगमकम् ।

भाष्यसार—१. **राजपुरुष क्या करें**—राजा का कर्त्तव्य है कि वह मन्यु अर्थात् आन्तरिक क्रोध करने के लिए प्रवृत्त हुए, लोह और सुवर्ण के तपाने वाले को; बाह्य कोप के लिए प्रवृत्त हुए निश्चित यात्रा करने वाले को; शोक के लिए प्रवृत्त हुए, अभिसारक (प्रिया का पीछा करने वाला) को; दण्ड देने के लिए प्रवृत हुई प्रक्षेपण करने वाली स्त्री को दूर करे। तात्पर्य यह है कि राजा—जो तप्त लोहे के तुल्य क्रुद्ध तथा अन्यों को संतप्त करने वाले एवं धर्मनियमों के विनाशक हैं उन्हें दण्ड देकर सुख को बढ़ावे।

योगाभ्यास करने वाले योगी को, रक्षा के लिए दुःख-विमोचक को, ऊँचे-नीचे तटों के लिए जल, स्थल और अन्तरिक्ष तीनों में स्थित रहने वालों को; शरीर के हित के लिए मानसिक विचारों में कुशल को, जितेन्द्रियता आदि शील वाले पुरुष के लिए प्रसिद्ध कर्म करने वाली स्त्री को; भूमि के लिए कोश उत्पन्न करने वाली स्त्री को शिक्षण के द्वारा सर्वत्र उत्पन्न करे। तात्पर्य यह है कि योगाभ्यास करने वाले योगी आदि लोगों का राजा सत्कार करे, सर्वत्र यान से गमन करने वाले लोगों का संग्रह करे तथा यथावत् सुख को बढ़ावे।

२. **ईश्वर**—सब मनुष्य मन्त्रोक्त व्यवहार की सिद्धि के लिए ईश्वर से प्रार्थना करें ।।३०।१४।।

नारायणः । **राजेश्वरौ**=राजा, ईश्वरश्च । विराट् कृतिः । निषादः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

राजपुरुषों को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ।।

यमायं यमसूमर्थर्वभ्योऽवतोकाᳬं संवत्सराय पर्यायिणीं परिवत्सरायाविजाता-मिदावत्सरायातीत्वरीमिद्वत्सरायातिष्कद्वरीं वत्सराय विजर्जराᳬं संवत्सराय पलिक्नीमृभुभ्योऽजिनसन्धᳬं साध्येभ्यश्चर्मम्नम् ।। १५ ।।

पदार्थः—(**यमाय**) नियन्त्रे (**यमसूम्**) या यमान्=नियन्तॄन् सूते ताम् (**अथर्वभ्यः**) अहिंसकेभ्यः (**अवतोकाम्**) निरपत्याम् (**संवत्सराय**) (**पर्यायिणीम्**) परितः कालक्रमज्ञाम् (**परिवत्सराय**) द्वितीयवर्षनिर्णयाय (**अविजाताम्**) अप्रसूतां ब्रह्मचारिणीम् (**इदावत्सराय**) इदावत्सरस्तृतीयस्तत्र कार्य्य-सम्पादनाय । अत्र वर्णव्यत्ययः । (**अतीत्वरीम्**) अतिगमनशीलाम् (**इद्वत्सराय**) पञ्चमाय वर्षाय (**अतिष्कद्वरीम्**) अतिशयेन या स्कन्दति=जानाति ताम् (**वत्सराय**) सामान्याय (**विजर्जराम्**) विशेषेण जर्जरीभूताम् (**संवत्सराय**) चतुर्थायानुवत्सराय । अत्रानोः पूर्वपदस्य लोपः । (**पलिक्नीम्**) श्वेतकेशाम् (**ऋभुभ्यः**)

मेधाविभ्यः (**अजिनसन्धम्**) जेतुमयोग्यात् संदधाति तम्। अत्र जि धातोः कर्मणि नक्॥ उ० ३। २॥ (**साध्येभ्यः**) ये साद्धुं योग्यास्तेभ्यः (**चर्मम्नम्**) यश्चर्म=विज्ञानं म्नात्यभ्यस्यति तम्॥ १५॥

प्रमाणार्थ—(**इदावत्सराय**) यहाँ वर्ण-व्यत्यय है। (**संवत्सराय**) यहाँ पूर्वपद 'अनु' का लोप है। (**अजिनसन्धम्**) यहाँ 'जि' धातु से कर्म कारक में औणादिक (३। २) नक् प्रत्यय है॥

अन्वयः—हे जगदीश्वर राजन् वा त्वं यमाय यमसूमथर्वभ्योऽवतोकां संवत्सराय पर्य्यायिणीं परिवत्सरायाविजातामिदावत्सरायातीत्वरीमिद्वत्सरायातिष्कद्वरीं वत्सराय विजर्जरां संवत्सराय पलिक्नीमृभुभ्योऽजिनसन्धं साध्येभ्यश्चर्मम्नमासुव॥ १५॥

सपदार्थान्वयः—हे **जगदीश्वर राजन् वा**! **त्वं यमाय** नियन्त्रे **यमसूं** या यमान्=नियन्तॄन् सूते ताम् **अथर्वभ्यः** अहिंसकेभ्यः **अवतोकां** निरपत्यां, **संवत्सराय पर्यायिणीं** परितः कालक्रमज्ञां, **परिवत्सराय** द्वितीयवर्षनिर्णयाय **अविजाताम्** अप्रसूतां ब्रह्मचारिणीम्, **इदावत्सराय** इदावत्सरस्तृतीयस्तत्र कार्यसम्पादनाय **अतीत्वरीम्** अतिगमनशीलाम्, **इद्वत्सराय** पञ्चमाय वर्षाय **अतिष्कद्वरीम्** अतिशयेन या स्कन्दति=जानाति ताम्, **वत्सराय** सामान्याय **विजर्जरां** विशेषेण जर्जरीभूतां, **संवत्सराय** चतुर्थायानुवत्सराय **पलिक्नीं** श्वेतकेशाम्, **ऋभुभ्यः** मेधाविभ्यः **अजिनसन्धं** जेतुमयोग्यान् संदधाति तं, **साध्येभ्यः** ये साद्धुं योग्यास्तेभ्यः **चर्मम्नं** यश्चर्म=विज्ञानं म्नात्यभ्यस्यति तम् **आसुव** समन्ताज्जनय॥ ३०। १५॥

भाषार्थ—हे जगदीश्वर वा राजन्! तू—(यमाय) नियन्ता पुरुष के लिए (यमसूम्) नियन्ताओं को उत्पन्न करने वाली स्त्री को, (अथर्वभ्यः) अहिंसक जनों के लिए (अवतोकाम्) सन्तान रहित स्त्री को, (संवत्सराय) प्रथम वर्ष के लिए (पर्यायिणीम्) सब ओर से कालक्रम की ज्ञात्री, को (परिवत्सराय) द्वितीय वर्ष के निर्णय के लिए (अविजाताम्) अप्रसूता ब्रह्मचारिणी को, (इदावत्सराय) तृतीय वर्ष में कार्यसिद्धि के लिए (अतीत्वरीम्) अति गमनशील को, (इद्वत्सराय) पञ्चम वर्ष के लिए (अतिष्कद्वरीम्) अत्यन्त ज्ञान वाली को, (वत्सराय) सामान्य वर्ष के लिए (विजर्जराम्) विशेष जर्जर हुई स्त्री को, (संवत्सराय) चतुर्थ वर्ष के लिए (पलिक्नीम्) श्वेत केश वाली स्त्री को, (ऋभुभ्यः) मेधावी जनों के लिए (अजिनसन्धम्) अजेय लोगों के साथ सन्धि करने वाले पुरुष को, (साध्येभ्यः) साध्य जनों के लिए (चर्मम्नम्) चर्म=विज्ञान का अभ्यास करने वाले पुरुष को (आसुव) सब ओर उत्पन्न कर॥ ३०। १५॥

भावार्थः—प्रभवादिषष्टिसंवत्सरेषु पञ्च-पञ्च कृत्वा द्वादश युगानि भवन्ति प्रत्येकयुगे क्रमेण संवत्सर-परिवत्सर-इदावत्सर-अनुवत्सर-इद्वत्सराः पञ्च संज्ञा भवन्ति, तान् सर्वकालावयवमूलान् विशेषतया याः स्त्रियो यथावद् विज्ञाय व्यर्थं न नयन्ति, ताः सर्वार्थसिद्धिमाप्नुवन्ति॥ १५॥

भावार्थ—प्रभव आदि साठ वर्षों में पाँच-पाँच करके बारह युग होते हैं। प्रत्येक युग में क्रम से संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, अनुवत्सर, इद्वत्सर, ये पाँच संज्ञा होती हैं, उन सब कालावयव के मूलभूत वर्षों को विशेष रूप से जो स्त्रियाँ यथावत् जानकर व्यर्थ नहीं गवाती हैं; वे सब अर्थों की सिद्धि को प्राप्त करती हैं॥ ३०। १५॥

भाष्यसार—**१. राजपुरुष क्या करें**—राजा का कर्त्तव्य है कि वह—नियन्ता पुरुष के लिए, नियन्ता जनों को उत्पन्न करने वाली स्त्री को; अहिंसक जनों के लिए सन्तान-रहित स्त्री को संवत्सर

(प्रथम बारह वर्ष) के लिए सब ओर से कालक्रम को जानने वाली स्त्री को, परिवत्सर (द्वितीय बारह वर्ष=२४) के निर्णय के लिए अप्रसूता ब्रह्मचारिणी को; इदावत्सर (तृतीय बारह वर्ष=३६) के कार्यसम्पादन के लिए अतिगमनशील स्त्री को; अनुवत्सर (चतुर्थ बारह वर्ष=४८) के लिए श्वेत केश वाली स्त्री को; इद्वत्सर (पञ्चम बारह वर्ष=६०) के लिए अत्यन्त ज्ञान वाली स्त्री को तथा वत्सर= सामान्य वर्ष के लिए विशेष जर्जरीभूत स्त्री को, मेधावी विद्वानों के लिए अजेय शत्रुओं से सन्धि करने वाले को, योगसाधना करने वाले साध्य विद्वानों के लिए आत्मिक विज्ञान का अभ्यास करने वाले विद्वान् को शिक्षण के द्वारा सर्वत्र उत्पन्न करे।

२. ईश्वर—सब मनुष्य मन्त्रोक्त व्यवहार की सिद्धि के लिए ईश्वर से प्रार्थना करें ॥३०।१५॥

नारायणः। **राजेश्वरौ**=राजा, ईश्वरश्च। विराट् कृतिः। निषादः॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजपुरुषों को क्या करना चाहिए, इसका फिर उपदेश किया है ॥

सरोभ्यो धैवरमुपस्थावराभ्यो दाशं वैशन्ताभ्यो बैन्दं नड्वलाभ्यः शौष्कलं पाराय मार्गारमवाराय कैवर्त्तं तीर्थेभ्यऽआन्दं विषमेभ्यो मैनालꣳ स्वनेभ्यः पर्णकं गुहाभ्यः किरातꣳ सानुभ्यो जम्भकं पर्वतेभ्यः किम्पूरुषम् ॥ १६ ॥

पदार्थः—(**सरोभ्यः**) तडागेभ्यस्तारणाय (**धैवरम्**) धीवरस्यापत्यम् (**उपस्थावराभ्यः**) उपस्थिताभ्योऽवराभ्यो निकृष्टक्रियाभ्यः (**दाशम्**) दाशत्यस्मै तम् (**वैशन्ताभ्यः**) वेशन्ता=अल्पजलाशयास्ता एव ताभ्यः (**बैन्दम्**) निषादस्यापत्यम् (**नड्वलाभ्यः**) नडा विद्यन्ते यासु भूमिषु ताभ्यः (**शौष्कलम्**) यश्शुष्कलैर्मत्स्यैर्जीवति तम् (**पाराय**) मृगकर्मसमाप्त्यर्थं प्रवृत्तम् (**मार्गारम्**) यो मृगाणामरिर्व्याधस्तस्यापत्यम् (**अवाराय**) अर्वाचीनमागमनाय (**कैवर्तम्**) जले नौकायाः पारावारयोर्गमकम् (**तीर्थेभ्यः**) तरन्ति यैस्तीर्यन्ते वा तेभ्यः (**आन्दम्**) बन्धितारम् (**विषमेभ्यः**) विकटदेशेभ्यः (**मैनालम्**) यो मैनं= कामदेवमलति=वारयति तं जितेन्द्रियम् (**स्वनेभ्यः**) शब्देभ्यः (**पर्णकम्**) यः पर्णेषु=पालनेषु कुत्सितस्तम् (**गुहाभ्यः**) कन्दराभ्यः (**किरातम्**) जनविशेषम् (**सानुभ्यः**) शैलशिखरेभ्यः (**जम्भकम्**) यो जम्भयति= नाशयति तम् (**पर्वतेभ्यः**) गिरिभ्यः (**किम्पूरुषम्**) जाङ्गलं कुत्सितं मनुष्यम् ॥ १६ ॥

अन्वयः—हे जगदीश्वर राजन् वा ! त्वं सरोभ्यो धैवरमुपस्थावराभ्यो दाशं वैशन्ताभ्यो बैन्दं नडवलाभ्यः शौष्कलं विषमेभ्यो मैनालमवाराय केवर्त्तं तीर्थेभ्य आन्दमासुव। पाराय मार्गारं स्वनेभ्यः पर्णकं गुहाभ्यः किरातं सानुभ्यो जम्भकं पर्वतेभ्यः किम्पूरुषं परासुव ॥ १६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे जगदीश्वर राजन् वा ! त्वं **सरोभ्यः** तडागेभ्यस्तारणाय **धैवरं** धीवरस्यापत्यम्, **उपस्थावराभ्यः** उपस्थिताभ्योऽवराभ्यो निकृष्टक्रियाभ्यः **दाशं** दाशत्यस्मै तं, **वैशन्ताभ्यः** वेशन्ता=अल्पजलाशयास्ता एव ताभ्यः **बैन्दं** निषादस्यापत्यं, **नड्वलाभ्यः** नडा विद्यन्ते यासु भूमिषु ताभ्यः **शौष्कलं** यश्शुष्कलैर्मत्स्यैर्जीवति तं,

भाषार्थ—हे जगदीश्वर वा राजन् ! तू—(सरोभ्यः) तालाबों से पार करने के लिए (धैवरम्) धीवर=मल्लाह के पुत्र को; (उपस्थावराभ्यः) उपस्थित अवर=निकृष्ट क्रियाओं के लिए (दाशम्) दास को; (वैशन्ताभ्यः) वेशन्त=छोटे जलाशयों के लिए (बैन्दम्) निषाद के पुत्र को; (नड्वलाभ्यः) नड=तृणविशेष वाली भूमियों के

विषमेभ्यः विकटदेशेभ्यः **मैनालं** यो मैनं=कामदेवमलति=वारयति तं जितेन्द्रियम्, **अवाराय** अर्वाचीनमागमनाय **केवर्त्तं** जले नौकायाः पारावारयोर्गमकं, **तीर्थेभ्यः** तरन्ति यैस्तीर्यन्ते वा तेभ्यः **आन्दं** बन्धितारम् **आसुव** सर्वतो जनय ।

लिए (शौष्कलम्) मत्स्यजीवी को (विषमेभ्यः) विकट देशों के लिए (मैनालम्) मैन=कामदेव का निवारण करने वाले जितेन्द्रिय को; (अवाराय) इधर आने के लिए (केवर्त्तम्) जल में नौका से आर-पार जाने वाले को, (तीर्थेभ्यः) तीर्थों के लिए (आन्दम्) पुल आदि बांधने वाले को (आसुव) सब ओर उत्पन्न कर ।

पाराय मृगकर्मसमाप्त्यर्थं प्रवृत्तं **मार्गारं** यो मृगाणामरिर्व्याधस्तस्यापत्यं, **स्वनेभ्यः** शब्देभ्यः **पर्णकं** यः पर्णेषु=पालनेषु कुत्सितस्तं, **गुहाभ्यः** कन्दराभ्यः **किरातं** जनविशेषं, **सानुभ्यः** शैलशिखरेभ्यः **जम्भकं** यो जम्भयति=नाशयति तं, **पर्वतेभ्यः** गिरिभ्यः **किम्पूरुषं** जाङ्गलं कुत्सितं मनुष्यं **परासुव** दूरे गमय ।। ३० । १६ ।।

(पाराय) मृगकर्म की समाप्ति के लिए प्रवृत्त, (मार्गारम्) व्याध=शिकारी के पुत्र को, (स्वनेभ्यः) शब्दों के लिए (पर्णकम्) पर्ण=पालन में कुत्सित पुरुष को (गुहाभ्यः) कन्दराओं के लिए (किरातम्) किरात नामक जनविशेष को, (सानुभ्यः) शैलशिखरों के लिए (जम्भकम्) जम्भ=नाश करने वाले को, (पर्वतेभ्यः) पर्वतों के लिए (किम्पूरुषम्) जंगली कुत्सित मनुष्य को (परासुव) दूर कर ।। ३० । १६।।

भावार्थः—मनुष्या ईश्वरगुणकर्मस्वभावानुकूलैः कर्मभिर्धीवरादीन् संरक्ष्य, व्याधादीन् परित्यज्योत्तमं सुखं प्राप्नुवन्तु ।। ३० । १६ ।।

भावार्थ—मनुष्य—ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव के अनुकूल कर्मों से धीवर आदि लोगों का संरक्षण करके व्याध=शिकारी आदि लोगों को छोड़ कर उत्तम सुख को प्राप्त करें ।। ३० । १६ ।।

भा० पदार्थ—मार्गारम्=व्याधम् ।

भाष्यसार—१. **राजपुरुष क्या करें**—राजा का कर्त्तव्य है कि वह—तालाबों से पार तारने के लिए धीवर=मल्लाह के पुत्र को; प्रस्तुत हुई निकृष्ट क्रियाओं की सिद्धि के लिए दास को; अल्प जलाशयों के लिए निषाद के पुत्र को; नड नामक तृणविशेष वाली भूमियों के लिए मत्स्यजीवी को, विकट प्रदेशों के लिए जितेन्द्रिय को; जलाशय से इधर आने के लिए नाविक को; तरने के साधन नौकादि अथवा तरने योग्य जलाशय आदि के लिए पुल आदि बांधने वाले को शिक्षण के द्वारा सर्वत्र उत्पन्न करे ।

मृग-कर्म की समाप्ति के लिए प्रवृत्त हुए व्याध=शिकारी के पुत्र को; शब्द करने के लिए प्रवृत्त हुए पालन सम्बन्धी कार्यों में निन्दित पुरुष को; कन्दराओं के लिए प्रवृत्त हुए किरात नामक जन विशेष को; पर्वतों के शिखरों के लिए प्रवृत्त हुए जम्भक=विनाशक पुरुष को, पर्वतों के लिए प्रवृत्त हुए जंगली निन्दित पुरुष को दूर करे। तात्पर्य यह है कि राजा लोग ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव के अनुकूल कर्मों से धीवर आदि लोगों का संरक्षण करें तथा व्याध=शिकारी आदि लोगों का परित्याग करके उत्तम सुख को प्राप्त करें ।

२. **ईश्वर**—सब मनुष्य मन्त्रोक्त व्यवहार की सिद्धि के लिए ईश्वर से प्रार्थना करें ।। ३० । १६ ।। ●

नारायणः । **राजेश्वरौ**=राजा, ईश्वरश्च । विराट् धृतिः । ऋषभः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजपुरुषों को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

बीभत्सायै पौल्कसं वर्णाय हिरण्यकारं तुलायै वाणिजं पश्चादोषाय ग्लाविनं विश्वेभ्यो भूतेभ्यः सिध्मलं भूत्यै जागरणमभूत्यै स्वपनमार्त्यै जनवादिनं व्यृद्ध्या ऽ अपगल्भꣳ सꣳशराय प्रच्छिदम् ॥ १७ ॥

पदार्थः—(**बीभत्सायै**) भर्त्सनाय प्रवृत्तम् (**पौल्कसम्**) पुक्कसस्यान्त्यजस्याऽपत्यम् । अत्र पृषोदरादित्वादभीष्टसिद्धिः (**वर्णाय**) सुरूपसंपादनाय (**हिरण्यकारम्**) सुवर्णकारं सूर्यं वा (**तुलायै**) तोलनाय (**वाणिजम्**) वणिगपत्यम् (**पश्चादोषाय**) पश्चाद्दोषदानाय प्रवृत्तम् (**ग्लाविनम्**) अहर्षितारम् (**विश्वेभ्यः**) सर्वेभ्यः (**भूतेभ्यः**) (**सिध्मलम्**) सिध्माः=सुखसाधका विद्यन्ते यस्य तम् (**भूत्यै**) ऐश्वर्याय (**जागरणम्**) जागृतम् (**अभूत्यै**) अनैश्वर्याय (**स्वपनम्**) निद्राम् (**आर्त्यै**) पीडानिवृत्तये (**जनवादिनम्**) प्रशस्ता जनवादा विद्यन्ते यस्य तम् (**व्यृद्ध्यै**) विगता चासौ ऋद्धिश्च व्यृद्धिस्तस्यै (**अपगल्भम्**) प्रगल्भतारहितम् (**संशराय**) सम्यग्घिसनाय प्रवृत्तम् (**प्रच्छिदम्**) यः प्रच्छिनत्ति तम् ॥ १७ ॥

प्रमाणार्थ—(**पौल्कसम्**) यहाँ 'पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्' (६ । ३ । १०९) से इस पद की अभीष्ट सिद्धि करें ॥

अन्वयः—हे ईश्वर वा राजन् ! त्वं बीभत्सायै पौल्कसं पश्चादोषाय ग्लाविनमभूत्यै स्वपनं व्यृद्ध्या अपगल्भं संशराय प्रच्छिदं परासुव । वर्णाय हिरण्यकारं तुलायै वाणिजं विश्वेभ्यो भूतेभ्यः सिध्मलं भूत्यै जागरणमार्त्यै जनवादिनमासुव ॥ १७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे ईश्वर वा राजन् ! त्वं **बीभत्सायै** भर्त्सनाय प्रवृत्तं **पौल्कसं** पुक्कसस्यान्त्यजस्याऽपत्यं, **पश्चादोषाय** पश्चाद् दोषदानाय प्रवृत्तं **ग्लाविनम्** अहर्षितारम्, **अभूत्यै** अनैश्वर्याय **स्वपनं** निद्रां, **व्यृद्ध्यै** विगता चासौ ऋद्धिश्च व्यृद्धिस्तस्यै **अपगल्भं** प्रगल्भतारहितं, **संशराय** सम्यग्घिसनाय प्रवृत्तं **प्रच्छिदं यः** प्रच्छिनत्ति तं **परासुव** दूरे गमय ।

वर्णाय सुरूपसम्पादनाय **हिरण्यकारं** सुवर्णकारं सूर्यं वा, **तुलायै** तोलनाय **वाणिजं** वणिगपत्यं, **विश्वेभ्यः** सर्वेभ्यः **भूतेभ्यः सिध्मलं** सिध्माः= सुखसाधका विद्यन्ते यस्य तं, **भूत्यै** ऐश्वर्याय **जागरणं** जागृतम्, **आर्त्यै** पीडानिवृत्तये **जनवादिनं** प्रशस्ता जनवादा विद्यन्ते यस्य तम् **आसुव** सर्वतो जनय ॥ ३० । १७ ॥

भावार्थ—हे ईश्वर वा राजन् ! तू—(बीभत्सायै) भर्त्सन=धमकाने के लिए प्रवृत्त (पौल्कसम्) अन्त्यज के पुत्र को, (पश्चादोषाय) पीछे दोष देने के लिए प्रवृत्त (ग्लाविनम्) ग्लानि करने वाले को, (अभूत्यै) अनैश्वर्य के लिए (स्वपनम्) निद्रा को, (व्यृद्ध्यै) समृद्धि के अभाव के लिए (अपगल्भम्) प्रगल्भता से रहित को, (संशराय) सम्यक् हिंसा के लिए प्रवृत्त (प्रच्छिदम्) छेदन करने वाले पुरुष को (परासुव) दूर कर ।

(वर्णाय) सुरूप निर्माण के लिए (हिरण्यकारम्) सुवर्णकार वा सूर्य को, (तुलायै) तोलने के लिए (वाणिजम्) बनिया के पुत्र को, (विश्वेभ्यः) सब (भूतेभ्यः) प्राणियों के लिए (सिध्मलम्) सुखसाधक वाले पुरुष को, (भूत्यै) ऐश्वर्य के लिए (जागरणम्) जागरण को, (आर्त्यै) पीडा की निवृत्ति के लिए (जनवादिनम्) प्रशस्त जनवाद

वाले पुरुष को (आसुव) सब ओर उत्पन्न कर ॥ ३० । १७ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या नीचसङ्गं त्यक्त्वोत्तमसङ्गतिं कुर्वन्ति ते सर्वव्यवहारसिद्धचैश्वर्यवन्तो जायन्ते । येऽनलसाः सन्तः सिद्धये यतन्ते ते सुखं, ये चाऽलसास्ते च दारिद्रचमाप्नुवन्ति ॥ ३० । १७ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य नीचों की संगति को छोड़कर उत्तमों की संगति करते हैं; वे व्यवहार की सिद्धि से ऐश्वर्यवान् हो जाते हैं। जो पुरुषार्थी होकर सिद्ध के लिए यत्न करते हैं वे सुख को; और जो आलसी रहते हैं। वे दरिद्रता को प्राप्त होते हैं ॥ ३० । १७ ॥

भाष्यसार—१. **राजपुरुष क्या करें**—राजा का कर्त्तव्य है कि वह—भर्त्सन=धमकाने के लिए प्रवृत्त हुए अन्त्यज के पुत्र को; पीछे दोष देने के लिए प्रवृत्त हुए ग्लानि करने वाले को; अनैश्वर्य के लिए प्रवृत्त हुई निद्रा को; समृद्धि के अभाव के लिए प्रवृत्त हुए प्रगल्भता (चतुराई) से रहित पुरुष को; हिंसा के लिए प्रवृत्त हुए प्रच्छेदक पुरुष को दूर करे।

सुरूप निर्माण के लिए प्रवृत्त हुए सुवर्णकार को वा सूर्य को; तोलने के लिए प्रवृत्त हुए वणिक् (बणियाँ) के पुत्र को; सब भूतों के लिए प्रवृत्त हुए सुखसाधक को; ऐश्वर्य के लिए प्रवृत्त हुए जागरण को; पीडानिवृत्ति के लिए प्रवृत्त हुए प्रशस्त जनवाद वाले पुरुष को शिक्षण के द्वारा सर्वत्र उत्पन्न करे। तात्पर्य यह है कि राजा नीचों का संग छोड़कर उत्तम जनों की संगति करके व्यवहारसिद्धि से ऐश्वर्यवान् बने। पुरुषार्थी होकर कार्यसिद्धि के लिए यत्न करे। आलसी होकर दरिद्र न बने।

२. **ईश्वर**—सब मनुष्य मंत्रोक्त व्यवहार की सिद्धि के लिए ईश्वर से प्रार्थना करें ॥३०।१७॥

नारायणः । **राजेश्वरौ**=राजा, ईश्वरश्च । निचृत्प्रकृतिः । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजपुरुषों को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

अक्षराजाय कितवं कृतायादिनवदर्शं त्रेतायै कल्पिनं द्वापरायाधिकल्पिनमास्कन्दाय सभास्थाणुं मृत्यवे गोव्यच्छमन्तकाय गोघातं क्षुधे यो गां विकृन्तन्तं भिक्षमाण ऽउप तिष्ठति दुष्कृताय चरकाचार्यं पाप्मने सैलगम् ॥ १८ ॥

पदार्थः—(**अक्षराजाय**) येऽक्षैः क्रीडन्ति तेषां राजा तस्मै हितम् (**कितवम्**) द्यूतकारिणम् (**कृताय**) (**आदिनवदर्शम्**) य आदौ नवान् पश्यति तम् (**त्रेतायै**) त्रयाणां भवाय (**कल्पिनम्**) कल्पः=प्रशस्तं सामर्थ्यं विद्यते यस्य तम् (**द्वापराय**) द्वावपरौ यस्मिन्तस्मै (**अधिकल्पिनम्**) अधिगतसामर्थ्ययुक्तम् (**आस्कन्दाय**) समन्ताच्छोषणाय (**सभास्थाणुम्**) सभायां स्थितम् (**मृत्यवे**) मारणाय (**गोव्यच्छम्**) गोषु विचेष्टितारम् (**अन्तकाय**) नाशाय (**गोघातम्**) गवां घातकम् (**क्षुधे**) (**यः**) (**गाम्**) धेनुम् (**विकृन्तन्तम्**) विच्छेदयन्तम् (**भिक्षमाणः**) (**उपतिष्ठति**) (**दुष्कृताय**) दुष्टाचाराय प्रवृत्तम् (**चरकाचार्यम्**) चरकाणां=भक्षकाणामाचार्यम् (**पाप्मने**) पापात्मने हितम् (**सैलगम्**) सीलाङ्गस्य=दुष्टस्यापत्यं सैलगम् ॥ १८ ॥

अन्वयः—हे जगदीश्वर वा राजन् ! त्वमक्षराजाय कितवं मृत्यवे गोव्यच्छमन्तकाय गोघातं क्षुधे यो गां छिनत्ति तं विकृन्तन्तं यो भिक्षमाण उपतिष्ठति दुष्टकृताय तं चरकाचार्यं पाप्मने सैलगं परासुव । कृतायाऽऽदिनवदर्शं त्रैतायै कल्पिनं द्वापरायाऽधिकल्पिनमास्कन्दाय सभास्थाणुमासुव ॥ १८ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे जगदीश्वर राजन् वा ! त्वमक्षराजाय** येऽक्षैः क्रीडन्ति तेषां राजा तस्मै हितं **कितवं** द्यूतकारिणं, **मृत्यवे** मारणाय **गोव्यच्छं** गोषु विचेष्टितारम्, **अन्तकाय** नाशाय **गोघातं** गवां घातकं, **क्षुधे यो गां** धेनुं **छिनत्ति तं विकृन्तन्तं** विच्छेदयन्तं, **यो भिक्षमाण उपतिष्ठति दुष्कृताय** दुष्टाचाराय प्रवृत्तं **तं चरकाचार्य्यं** चरकाणां=भक्षकाणामाचार्य्यं, **पाप्मने** पापात्मने हितं **सैलगं** सीलाङ्गस्य=दुष्टस्यापत्यं सैलगं **परासुव** दूरे गमय ।

कृतायाऽऽदिनवदर्शं य आदौ नवान् पश्यति तं, **त्रेतायै** त्रयाणां भवाय **कल्पिनं** कल्पः=प्रशस्तं सामर्थ्यं विद्यते यस्य तं, **द्वापराय** द्वावपरौ यस्मिन् तस्मै **अधिकल्पिनम्** अधिगत-सामर्थ्ययुक्तम्, **आस्कन्दाय** समन्ताच्छोषणाय **सभास्थाणुं** सभायां स्थितम् **आसुव** सर्वतो जनय ॥ ३० । १८ ॥

भावार्थः—यो ज्योतिर्विदादिसत्याचरणान् सत्कुर्वन्ति, दुष्टाचारान् गोघ्नादीन् ताडयन्ति; ते राज्यं कर्तुं शक्नुवन्ति ॥ ३० । १८ ॥

भाषार्थ—हे जगदीश्वर वा राजन् ! तू—(अक्षराजाय) जो अक्ष=पासों से खेलते हैं उनके राजा के लिए हितकारी (कितवम्) द्यूतकारी=जुआरी को; (मृत्यवे) मारने के लिए (गोव्यच्छम्) गौओं में विविध चेष्टा करने वाले को; (अन्तकाय) नाश के लिए (गोघातम्) गौओं के घातक को; (क्षुधे) क्षुधा=भूख के लिए (यः) जो (गाम्) गौ को काटता है उस (विकृन्तन्तम्) कसाई को; जो (भिक्षमाणः) भिक्षा मांगता हुआ (उप+तिष्ठति) उपस्थित होता है, उस (दुष्कृताय) दुष्ट आचरण के लिए प्रवृत्त (चरकाचार्यम्) चरक=भक्षकों के आचार्य को, (पाप्मने) पापात्मा के लिए हितकारी (सैलगम्) सीलाङ्ग=दुष्ट की सन्तान को (परासुव) दूर कर ।

(कृताय) कृत=सतयुग के लिए (आदिनवदर्शम्) आदि में नवीन पुरुषों को द्रष्टा को, (त्रेतायै) त्रेता के लिए (कल्पिनम्) प्रशस्त सामर्थ्य वाले पुरुष को, (द्वापराय) द्वापर के लिए (अधिकल्पिनम्) प्राप्त-सामर्थ्य से युक्त पुरुष को, (आस्कन्दाय) दुष्टों का सब ओर शोषण के लिए (सभास्थाणुम्) सभा में स्थित पुरुष को (आसुव) सब ओर उत्पन्न कर ॥ ३० । १८ ॥

भावार्थ—जो ज्योतिष शास्त्र के ज्ञाता आदि सत्य आचरण वाले विद्वानों का सत्कार करते हैं, गौओं के घातक आदि दुष्ट आचरण वाले लोगों का ताड़न करते हैं; वे राज्य कर सकते हैं ॥ ३० । १८ ॥

भा० पदार्थः—आदिनवदर्शम्=ज्योतिर्विदम् । गोघातम्=गोघ्नम् ।

भाष्यसार—**१. राजपुरुष क्या करें**—राजा का कर्त्तव्य है कि वह—जो लोग अक्ष=पासों से खेलते हैं उनके राजा के लिए हितकारी जुआरी को; मारने के लिए प्रवृत्त हुए गौओं में विविध चेष्टा करने वाले को; नाश के लिए प्रवृत्त हुए गौओं के घातक को; जो क्षुधा=भूख के लिए दुधारु गौ को काटता है उस गौ काटने वाले कसाई को; जो भिक्षा मांगता हुआ उपस्थित होता है, उस दुष्ट आचरण में प्रवृत्त हुए भक्षकों के आचार्य को; पापात्मा के लिए हितकारी दुष्ट पुरुष के पुत्र को दूर करे ।

कृत (सत) युग के लिए प्रवृत्त हुए, आदि में नवीन जनों के द्रष्टा को; त्रेता के लिए प्रवृत्त हुए प्रशस्त सामर्थ्य वाले पुरुष को; द्वापर के लिए प्रवृत्त हुए प्राप्त किए सामर्थ्य से युक्त पुरुष को; सब ओर से दुष्टों के शोषण के लिए प्रवृत्त हुए सभासद् को सर्वत्र उत्पन्न करे । तात्पर्य यह है कि जो राजा ज्योतिष-

विद्या के ज्ञाता, सत्याचरण वाले विद्वानों का सत्कार करता है; दुष्ट आचरण वाले गौ हत्यारों का ताड़न करता है; वह राज्य कर सकता है।

२. ईश्वर—सब मनुष्य मन्त्रोक्त व्यवहार की सिद्धि के लिए ईश्वर से प्रार्थना करें ।।३०।१८।।

नारायणः । **राजेश्वरौ**=राजा, ईश्वरश्च । भुरिग्धृतिः । ऋषभः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजपुरुषों को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ।।

प्रतिश्रुत्काया ऽ अर्त्तनं घोषाय भषमन्ताय बहुवादिनमनन्ताय मूकꣳ शब्दाया-याडम्बराघातं महसे वीणावादं क्रोशाय तूणवध्ममवरस्पराय शङ्खध्मं वनाय वनपमन्यतोरण्याय दावपम् ॥ १९ ॥

पदार्थः—(**प्रतिश्रुत्कायै**) प्रतिज्ञात्र्यै (**अर्त्तनम्**) प्रापकम् (**घोषाय**) (**भषम्**) पारिभाषकम् (**अन्ताय**) समीपाय ससीमाय वा (**बहुवादिनम्**) (**अनन्ताय**) निःसीमाय (**मूकम्**) अवाचम् (**शब्दाय**) प्रवृत्तम् (**आडम्बराघातम्**) आडम्बरस्याघातकं=कोलाहलकर्त्तारम् (**महसे**) महते (**वीणावादम्**) वाद्यविशेषम् (**क्रोशाय**) रोदनाय प्रवृत्तम् (**तूणवध्मम्**) यस्तूणवं धमति तम् (**अवरस्पराय**) योऽवरेषां परस्तस्मै (**शङ्खध्मम्**) यः शङ्खान् धमति तम् (**वनाय**) (**वनपम्**) जङ्गलरक्षकम् (**अन्यतोरण्याय**) अन्यतोऽरण्यानि यस्मिन् देशे तद्विनाशाय प्रवृत्तम् (**दावपम्**) वनदाहकम् ।। १९ ।।

अन्वयः—हे परमेश्वर ! राजन् वा त्वं प्रतिश्रुत्काया अर्त्तनं घोषाय भषमन्ताय बहुवादिनमनन्ताय मूकं महसे वीणावादमवरस्पराय शङ्खध्मं वनाय वनपमासुव। शब्दायाडम्बराघातं क्रोशाय तूणवध्ममन्यतोरण्याय दावपम्परासुव ।। १९ ।।

सपदार्थान्वयः—हे परमेश्वर राजन् वा ! त्वं **प्रतिश्रुत्कायै** प्रतिज्ञात्र्यै **अर्त्तनं** प्रापकं, **घोषाय भषं** पारिभाषकम्, **अन्ताय** समीपाय ससीमाय वा **बहुवादिनम्**, **अनन्ताय** निःसीमाय **मूकम्** अवाचं, **महसे** महते **वीणावादं** वाद्यविशेषम्, **अवरस्पराय** योऽवरेषां परस्तस्मै **शङ्खध्मं** यः शङ्खान् धमति तं, **वनाय वनपं** जङ्गलरक्षकम् **आसुव** समन्ताज्जनय।

शब्दाय प्रवृत्तम् **आडम्बराघातम्** आडम्बरस्याघातकं=कोलाहलकर्त्तारं, **क्रोशाय** रोदनाय प्रवृत्तं **तूणवध्मं** यस्तूणवं धमति तम्, **अन्यतोऽरण्याय** अन्यतोऽरण्यानि यस्मिन् देशे तद्विनाशाय प्रवृत्तं

भाषार्थ—हे परमेश्वर वा राजन् ! तू—(प्रतिश्रुत्कायै) प्रतिज्ञा करने वाली स्त्री के लिए (अर्त्तनम्) विद्या प्रापक को, (घोषाय) घोषणा के लिए (भषम्) उद्घोषक को, (अन्ताय) समीपवर्ती वा ससीम के लिए (बहुवादिनम्) बहुवक्ता को, (अनन्ताय) असीम के लिए (मूकम्) वाणी रहित को, (महसे) महान् के लिए (वीणावादं) वीणा बजाने वाले को, (अवरस्पराय) अवरवर्ती लोगों से परवर्ती पुरुष के लिए (शङ्खध्मम्) शंख बजाने वाले को, (वनाय) वन के लिए (वनपम्) जंगलरक्षक को (आसुव) सब ओर उत्पन्न कर।

(शब्दाय) शब्द करने के लिए प्रवृत्त (आडम्बराघातम्) कोलाहल करने वाले को, (क्रोशाय) रोने के लिए प्रवृत्त (तूणवध्मम्) तूणव=वाद्य विशेष बजाने वाले को, (अन्यतोऽरण्याय) एक ओर अरण्य

दावपं वनदाहकं **परासुव** दूरे गमय ॥ ३० । १९ ॥

भावार्थः—मनुष्यैः स्वकीयैः स्त्रीपुरुषादिभिरध्यापनसंवादादिव्यवहाराः साधनीयाः ॥ १९ ॥

वाले देश के विनाश के लिए प्रवृत्त (दावपम्) वन के दाहक को (परासुव) दूर कर ॥ ३० । १९ ॥

भावार्थ—मनुष्य अपने स्त्री पुरुष आदि लोगों के साथ अध्यापन एवं संवाद आदि व्यवहारों को सिद्ध करें ॥ ३० । १९ ॥

भा० पदार्थः—भषम्=संवादादिव्यवहारम् ।

भाष्यसार—१. **राजपुरुष क्या करें**—राजा का कर्त्तव्य है कि वह—प्रतिज्ञा करने वाली स्त्री के लिए विद्याप्रापक पुरुष को; घोषणा करने के लिए उद्घोषक को; समीप वा ससीम कार्य के लिए बहुवादी को; असीम कार्य के लिए मूक=गूंगे को; महान् शब्द के लिए वीणावादक को; अवरवर्ती लोगों से परवर्ती पुरुषों के लिए शंख बजाने वाले को; वन की रक्षा के लिए वन (जंगल) के रक्षक को शिक्षण के द्वारा सब ओर उत्पन्न करे ।

शब्द के लिए प्रवृत्त हुए, कोलाहल करने वाले को; रोने के लिए प्रवृत्त हुए तूणव नामक वाद्यविशेष बजाने वाले को; जिस देश में एक ओर जंगल हैं उस देश के विनाश के लिए प्रवृत्त हुए वन के दाहक (जलानेवाला) को दूर करे। तात्पर्य यह है कि राजा मन्त्रोक्त स्त्री पुरुषों से अध्यापन एवं संवाद आदि व्यवहारों को सिद्ध करे।

२. **ईश्वर**—सब मनुष्य मन्त्रोक्त व्यवहार की सिद्धि के लिए ईश्वर से प्रार्थना करें ॥ १९ ॥ ●

नारायणः । **राजेश्वरौ**=**राजा, ईश्वरश्च** । भुरिगतिजगति । ऋषभः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजपुरुषों को क्या करना चाहिए, इसका फिर उपदेश किया है ॥

नर्माय पुँश्चलूꣳ हसाय कारिं यादसे शाबल्यां ग्रामण्यं गणकमभिक्रोशकं तान्महसे वीणावादं पाणिघ्नं तूणवध्मं तान्नृत्तायानन्दाय तलवम् ॥ २० ॥

पदार्थः—(**नर्माय**) क्रीडायै प्रवृत्ताम् (**पुंश्चलूम्**) व्यभिचारिणीं स्त्रियम् (**हसाय**) हसनाय प्रवृत्तम् (**कारिम्**) विक्षेपकम् (**यादसे**) जलजन्तवे प्रवृत्ताम् (**शाबल्याम्**) शबलस्य=कर्बुरवर्णस्य सुताम् (**ग्रामण्यम्**) ग्रामस्य नायकम् (**गणकम्**) गणितविदम् (**अभिक्रोशकम्**) योऽभितः क्रोशति=आह्वयति तम् (**तान्**) (**महसे**) पूजनाय (**वीणावादम्**) (**पाणिघ्नम्**) यः पाणिभ्यां हन्ति तम् (**तूणवध्मम्**) यस्तूणवं धमति तम् (**तान्**) (**नृत्ताय**) नर्त्तनाय (**आनन्दाय**) (**तलवम्**) यो हस्तादि तलानि वाति=हिनस्ति तम् ॥ २० ॥

अन्वयः—हे परमेश्वर राजन् वा त्वं नर्माय पुंश्चलूं हसाय कारीं यादसे शाबल्यां परासुव । ग्रामण्यं गणकमभिक्रोशकं तान्महसे वीणावादं पाणिघ्नं तूणवध्मं तान्नृत्तायाऽनन्दाय तलवमासुव ॥२०॥

सपदार्थान्वयः—**हे परमेश्वर राजन् वा ! त्वं नर्माय** क्रीडायै प्रवृत्तां **पुंश्चलूं** व्यभिचारिणीं स्त्रियं, **हसाय** हसनाय प्रवृत्तं **कारिं** विक्षेपकं, **यादसे** जलजन्तवे प्रवृत्तां **शाबल्यां**

भाषार्थ—हे परमेश्वर वा राजन् ! तू—(नर्माय) क्रीडा के लिए प्रवृत्त (पुंश्चलूम्) व्यभिचारिणी स्त्री को, (हसाय) हँसी के लिए प्रवृत्त (कारिम्) विक्षेपक को, (यादसे) जल-जन्तु के लिए

शबलस्य=कर्बुरवर्णस्य सुतां **परासुव** दूरे गमय ।

प्रवृत्त (शाबल्याम्) शबल=चितकबरे वर्ण के पुरुष की पुत्री को (परासुव) दूर कर ।

ग्रामण्यं ग्रामस्य नायकं, **गणकं** गणितविदम्, **अभिक्रोशकं** योऽभितः क्रोशति=आह्वयति तं, **तान्महसे** पूजनाय; **वीणावादं**, **पाणिघ्नं** यः पाणिभ्यां हन्ति तं, **तूणवध्मं** यस्तूणवं धमति तं, **तान्नृत्ताय** नर्त्तनाय; **आनन्दाय तलवं** यो हस्तादि-तलानि वाति=हिनस्ति तम् **आसुव** सर्वतो जनय ।। ३० । २० ।।

(ग्रामण्यम्) ग्राम के नायक, (गणकम्) गणित के ज्ञाता, (अभिक्रोशकम्) सब ओर से आह्वान करने वाले (तान्) जनों को (पूजनाय) पूजा के लिए; (वीणावादम्) वीणा बजाने वाले, (पाणिघ्नम्) दोनों हाथों से ढोलक आदि बजाने वाले, (तूणवध्मम्) तूणव बजाने वाले (तान्) जनों को (नृत्ताय) नाच के लिए, (आनन्दाय) आनन्द के लिए (तलवम्) हस्त आदि के तल भागों को बजाने वाले पुरुष को (आसुव) सब ओर उत्पन्न कर ।। ३० । २० ।।

भावार्थः—मनुष्यैर्हास्य-व्यभिचारादिदोषांस्त्यक्त्वा गान-वादित्र-नृत्यादिकर्मणां शिक्षां प्राप्यानन्दितव्यम् ।। ३० । २० ।।

भावार्थ—मनुष्य हास्य, व्यभिचार आदि दोषों को छोड़कर गान, वादित्र, नृत्य आदि कर्मों की शिक्षा को प्राप्त करके आनन्दित रहें ।। ३० । २० ।।

भाष्यसार—**१. राजपुरुष क्या करें**—राजा का कर्त्तव्य है कि वह—काम-क्रीडा के लिए प्रवृत्त हुई व्यभिचारिणी स्त्री को; हँसी के लिए प्रवृत हुए उपहास करने वाले को; जल-जन्तुओं के लिए प्रवृत्त हुई, शबल (चितकबरा) पुरुष की पुत्री को दूर करे ।

ग्राम के नेता, गणित के ज्ञाता तथा सब ओर से आह्वान करने वाले पुरुष की पूजा के लिए; वीणावादक, दोनों हाथों से ढोलक आदि बजाने वाले तथा तूणव नामक वाद्य विशेष के वादक को नृत्य के लिए, आनन्द के लिए हथेली आदि पीटने वाले पुरुष को शिक्षण के द्वारा सर्वत्र उत्पन्न करे । तात्पर्य यह है कि राजा हास्य एवं व्यभिचार आदि दोषों का परित्याग करे । गान, वादित्र और नृत्य आदि शिक्षा को प्राप्त करके आनन्दित रहे ।

२. ईश्वर—सब मनुष्य मन्त्रोक्त व्यवहार की सिद्धि के लिए ईश्वर से प्रार्थना करें ।। ३० । २० ।।

नारायणः । **राजेश्वरौ**=**राजा, ईश्वरश्च** । भुरिगत्यष्टिः । गान्धारः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

राजपुरुषों को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ।।

अग्नये पीवानं पृथिव्यै पीठसर्पिणं वायवे चाण्डालमन्तरिक्षाय वꣳशनर्तिनं दिवे खलतिꣳ सूर्याय हर्यक्षं नक्षत्रेभ्यः किर्मिरं चन्द्रमसे किलासमह्ने शुक्लं पिङ्गाक्षꣳ रात्र्यै कृष्णं पिङ्गाक्षम् ।। २१ ।।

पदार्थः—(**अग्नये**) पावकाय (**पीवानम्**) स्थूलम् (**पृथिव्यै**) (**पीठसर्पिणम्**) पीठेन सर्पितुं

शीलं यस्य तम् **(वायवे)** वायुस्पर्शाय **(चाण्डालम्)** **(अन्तरिक्षाय)** सूर्यपृथिव्योर्मध्यस्थायाऽऽकाशाय **(वंशनर्त्तिनम्)** वंशे नर्त्तितुं शीलं यस्य तम् **(दिवे)** क्रीडायै प्रवृत्तम् **(खलतिम्)** निर्बालशिरस्कम् **(सूर्य्याय)** **(हर्य्यक्षम्)** हरीणां=वानराणामक्षिणी इवाक्षिणी यस्य तम् **(नक्षत्रेभ्यः)** क्षत्राणां विरोधाय प्रवृत्तेभ्यः **(किर्मिरम्)** कर्बुरवर्णम् **(चन्द्रमसे)** **(किलासम्)** ईषच्छ्वेतवर्णम् **(अह्ने)** **(शुक्लम्)** शुद्धम् **(पिङ्गाक्षम्)** पिङ्गे=पीतवर्णेऽक्षिणी यस्य तम् **(रात्र्यै)** **(कृष्णम्)** कृष्णवर्णम् **(पिङ्गाक्षम्)** पीताक्षम् ॥ २१ ॥

अन्वयः—हे परमेश्वर! राजन्! वा त्वमग्नये पीवानं पृथिव्यै पीठसर्पिणमन्तरिक्षाय वंशनर्त्तिनं सूर्याय हर्य्यक्षं चन्द्रमसे किलासमह्ने शुक्लं पिङ्गाक्षमासुव। वायवे चाण्डालं दिवे खलतिं नक्षत्रेभ्यः किर्मिरं रात्र्यै कृष्णं पिङ्गाक्षं परासुव ॥ २१ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे परमेश्वर राजन् वा! त्वमग्नये** पावकाय **पीवानं** स्थूलं, **पृथिव्यै पीठसर्पिणं** पीठेन सर्पितुं शीलं यस्य तम्, **अन्तरिक्षाय** सूर्यपृथिव्योर्मध्यस्थाऽऽकाशाय **वंशनर्त्तिनं** वंशे नर्त्तितुं शीलं यस्य तं, **सूर्याय हर्य्यक्षं** हरीणां=वानराणामक्षिणी इवाक्षिणी यस्य तं, **चन्द्रमसे किलासम्** ईषच्छ्वेतवर्णम्, **अह्ने शुक्लं** शुद्धं, **पिङ्गाक्षं** पिङ्गे=पीतवर्णेऽक्षिणी यस्य तम् **आसुव** सर्वतो जनय।

वायवे वायुस्पर्शाय **चाण्डालं**, **दिवे** क्रीडायै प्रवृत्तं **खलतिं** निर्बालशिरस्कं, **नक्षत्रेभ्यः** क्षत्राणां विरोधाय प्रवृत्तेभ्यः **किर्मिरं** कर्बुरवर्णं, **रात्र्यै कृष्णं** कृष्णवर्णं **पिङ्गाक्षं** पीताक्षं **परासुव** दूरे गमय ॥ ३० । २१ ॥

भाषार्थ—हे परमेश्वर वा राजन्! तू—(अग्नये) अग्नि के लिए (पीवानम्) स्थूल पदार्थ को, (पृथिव्यै) पृथिवी के लिए (पीठसर्पिणम्) पीठ से सरकने वाले प्राणी को, (अन्तरिक्षाय) सूर्य और पृथिवी के मध्य में स्थित आकाश के लिए (वंशनर्त्तिनम्) बाँस पर नाचने वाले नट को, (सूर्याय) सूर्य के लिए (हर्य्यक्षम्) हरि=बन्दरों की आँखों के तुल्य आँखों वाले को, (चन्द्रमसे) चन्द्रमा के लिए (किलासम्) अल्प श्वेत वर्ण वाले को, (अह्ने) दिन के लिए (शुक्लम्) शुद्ध=श्वेत एवं (पिङ्गाक्षम्) पिङ्ग=पीले वर्ण की आँखों वाले को (आसुव) सब ओर उत्पन्न कर।

(वायवे) वायु स्पर्श के लिए (चाण्डालम्) चाण्डाल को, (दिवे) क्रीडा के लिए प्रवृत्त (खलतिम्) बालों से रहित शिर वाले अर्थात् गंजे को, (नक्षत्रेभ्यः) क्षत्रियों के विरोध के लिए प्रवृत्त जनों के लिए (किर्मिरम्) चितकबरे वर्ण वाले को, (रात्र्यै) रात्रि के लिए (कृष्णम्) कृष्ण वर्ण वाले को एवं (पिङ्गाक्षम्) पीली आँखों वाले को (परासुव) दूर कर ॥ ३० । २१ ॥

भावार्थः—अग्निर्हि स्थूलं दग्धुं शक्नोति न सूक्ष्मम्। पृथिव्यां पीठसर्पिणः सततं विचरन्ति नेतरे, विहंगमाश्चाण्डालस्य शरीरागतो वायुर्दुर्गन्धत्वान्न सेवनीय इत्यादि ॥ ३० । २१ ॥

भावार्थ—अग्नि स्थूल को दग्ध कर सकती है; सूक्ष्म को नहीं। पृथिवी पर पीठसर्पी=पीठ के बल चलने वाले प्राणी सदा विचरते हैं; दूसरे पक्षी नहीं; चाण्डाल के शरीर से आया हुआ वायु दुर्गन्धित होने से सेवन करने योग्य नहीं होता; इत्यादि ॥ ३० । २१ ॥

भाष्यसार—१. राजपुरुष क्या करें—राजा का कर्त्तव्य है कि वह—अग्नि में एध करने के लिए स्थूल पदार्थ को; पृथिवी पर चलने के लिए पीठ से सरकने वाले प्राणियों को; सूर्य

और पृथिवी के मध्य में वर्तमान आकाश में खेल दिखाने के लिए बांस पर नाचने वाले को; सूर्य के लिए बन्दर के तुल्य आँखों वाले को; चन्द्रमा के लिए अल्प श्वेत वर्ण वाले को, दिन के लिए शुक्ल=शुद्ध (सफेद) एवं पीली आँखों वाले को शिक्षण के द्वारा सर्वत्र उत्पन्न करे।

वायु-स्पर्श के लिए चाण्डाल को दूर करे अर्थात् चाण्डाल के शरीर से आया हुआ वायु दुर्गन्ध युक्त होने से सेवनीय नहीं होता; अतः उक्त वायु का सेवन न करे। क्रीडा के लिए प्रवृत्त हुए गंजे को; क्षत्रियों के विरोध के लिए प्रवृत्त हुए चितकबरे पुरुष को; रात्रि के लिए प्रवृत्त हुए कृष्ण वर्ण वाले एवं पीली आँखों वाले पुरुष को दूर करे।

२. **ईश्वर**—सब मनुष्य मन्त्रोक्त व्यवहार की सिद्धि के लिए ईश्वर से प्रार्थना करें ॥ ३० । २१ ॥

नारायणः । **राजेश्वरौ**=राजा, ईश्वरश्च । निचृत्कृतिः । निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजपुरुषों को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

अथैतानष्टौ विरूपानालभतेऽतिदीर्घं चातिह्रस्वं चातिस्थूलं चातिकृशं चातिशुक्लं चातिकृष्णं चातिकुल्वं चातिलोमशं च। अशूद्राऽअब्राह्मणास्ते प्राजापत्याः। मागधः पुँश्चली कितवः क्लीबोऽशूद्राऽअब्राह्मणास्ते प्राजापत्याः ॥ २२ ॥

पदार्थः—(**अथ**) आनन्तर्य (**एतान्**) पूर्वोक्तान् (**अष्टौ**) (**विरूपान्**) विविधस्वरूपान् (**आ**) समन्तात् (**लभते**) प्राप्नोति (**अतिदीर्घम्**) अतिशयेन दीर्घम् (**च**) (**अतिह्रस्वम्**) अतिशयेन ह्रस्वम् (**च**) (**अतिस्थूलम्**) (**च**) (**अतिकृशम्**) (**च**) (**अतिशुक्लम्**) (**च**) (**अतिकृष्णम्**) (**च**) (**अतिकुल्वम्**) लोमरहितम् (**च**) (**अतिलोमशम्**) अतिशयेन लोमयुक्तम् (**च**) (**अशूद्राः**) न शूद्रा अशूद्राः (**अब्राह्मणाः**) न ब्राह्मणाः अब्राह्मणाः (**ते**) (**प्राजापत्याः**) प्रजापतिदेवताकाः (**मागधः**) नृशंसः (**पुंश्चली**) या पुँभिश्चलितचित्ता व्यभिचारिणी (**कितवः**) द्यूतशीलः (**क्लीबः**) नपुंसकः (**अशूद्राः**) अविद्यमानः शूद्रो येषान्ते (**अब्राह्मणाः**) अविद्यमानो ब्राह्मणो येषान्ते (**ते**) (**प्राजापत्याः**) प्रजापतेरिमे ते ॥ २२ ॥

अन्वयः—हे राजानो यथा विद्वानतिदीर्घं चातिह्रस्वं चातिस्थूलं चातिकृशं चातिशुक्लं चातिकृष्णं चातिकुल्वं चातिलोमशं चैतान्विरूपानष्टावालभते तथा यूयमप्यालभध्वम्। अथ येऽशूद्रा अब्राह्मणाः प्राजापत्याः सन्ति तेऽप्यालभेरन्। यो मागधो या पुंश्चली कितवः क्लीबोऽशूद्रा अब्राह्मणास्ते दूरे वासनीयाः। ये प्राजापत्यास्ते समीपे निवासनीयाः ॥ २२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे राजानः! यथा **विद्वानतिदीर्घम्** अतिशयेन दीर्घं **चातिह्रस्वम्** अतिशयेन ह्रस्वं **चातिस्थूलं चातिकृशं चातिशुक्लं चातिकृष्णं चातिकुल्वं** लोमरहितं **चातिलोमशम्** अतिशयेन लोमयुक्तं **चैतान्** पूर्वोक्तान् **विरूपान्** विविधस्वरूपान् **अष्टावालभते** समन्तात् प्राप्नोति

भाषार्थ—हे राजा लोगो! जैसे विद्वान्—(अतिदीर्घम्) अत्यन्त बड़े, (च) और (अतिह्रस्वम्) अत्यन्त छोटे, (च) और (अतिस्थूलम्) अत्यन्त मोटे (च) और (अतिकृशम्) अत्यन्त पतले (च) और (अतिशुक्लम्) अत्यन्त सफेद (च) और (अतिकृष्णम्) अत्यन्त काले (च) और (अति-

तथा यूयमप्यालभध्वम् ।

कुल्वम्) लोम रहित (च) और (अतिलोमशम्) अत्यन्त लोम-युक्त (एतान्) इन (विरूपान्) विविध स्वरूप वाले (अष्टौ) आठ प्राणियों को (आलभते) सब ओर प्राप्त करता है; वैसे तुम भी प्राप्त करो।

अथ अनन्तरं **येऽशूद्राः** न शूद्रा अशूद्राः, **अब्राह्मणाः** न ब्राह्मणाः अब्राह्मणाः, **प्राजापत्याः** प्रजापतिदेवताकाः **सन्ति तेऽप्यालभेरन् ।**

(अथ) और—(अशूद्राः) शूद्र नहीं तथा (अब्राह्मणाः) ब्राह्मण नहीं वे (प्राजापत्याः) प्रजापति के गुणों से युक्त पुरुष हैं वे भी इन्हें प्राप्त करें।

यो मागधः नृशंसः, **या पुंश्चली** या पुंभिश्चलितचित्ता व्यभिचारिणी, **कितवः** द्यूतशीलः **क्लीबः** नपुंसकः, **अशूद्राः** अविद्यमानः शूद्रो येषान्ते, **अब्राह्मणाः** अविद्यमानो ब्राह्मणो येषान्ते, **ते दूरे वासनीयाः** । **ये प्राजापत्याः** प्रजापतिदेवताकाः **ते समीपे निवासनीयाः** ॥ ३० । २२ ॥

जो (मागधः) नीच पुरुष, जो (पुंश्चली) पुरुषों के साथ चंचल चित्त वाली व्यभिचारिणी (कितवः) जुआरी, (क्लीबः) नपुंसक है तथा (अशूद्राः) जिनके शूद्र नहीं हैं तथा (अब्राह्मणाः) जिनके ब्राह्मण नहीं है उन चाण्डालों को दूर बसाओ। और जो (प्राजापत्याः) प्रजापति के गुणों से युक्त हैं; उन्हें समीप में बसाओ ॥ ३० । २२ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । हे मनुष्याः ! यथा विद्वांसः सूक्ष्ममहत्पदार्थान् विज्ञाय यथायोग्यं व्यवहारं साध्नुवन्ति, तथाऽन्येऽपि साध्नुवन्तु ।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् लोग सूक्ष्म और महान् पदार्थों को जानकर यथायोग्य व्यवहार को सिद्ध करते हैं, वैसे अन्य लोग भी सिद्ध करें।

सर्वैः प्रजापतेरीश्वरस्योपासना नित्यं कर्त्तव्या इति ।

सब लोग प्रजापति ईश्वर की उपासना नित्य करें ॥ इति पद अध्याय-समाप्ति सूचक है ॥

भा० पदार्थः—अतिदीर्घम्=महत्पदार्थम् । अतिह्रस्वम्=सूक्ष्मपदार्थम् ।

भाष्यसार—१. **राजपुरुष क्या करें**—राजा का कर्त्तव्य है कि वह—अति दीर्घ, अति ह्रस्व, अति स्थूल, अति कृश, अति शुक्ल, अति कृष्ण, लोम रहित, अति लोमयुक्त, इन विविध स्वरूप वाले आठ प्राणियों को प्राप्त करे। और जो शूद्र नहीं तथा ब्राह्मण भी नहीं उन प्रजापति के गुणों से युक्त क्षत्रियों को भी प्राप्त करे। और जो नीच पुरुष, व्यभिचारिणी स्त्री, जुआरी तथा नपुंसक हैं और जिनके सेवा करने वाले शूद्र नहीं तथा विद्या पढ़ाने वाले ब्राह्मण नहीं उन नीच पुरुषों को दूर बसावे और प्रजापति के गुणों से युक्त क्षत्रिय हैं; उन्हें समीप बसावे।

२. **ईश्वर**—सब मनुष्य प्रजापति ईश्वर की उपासना नित्य करें।

३. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है; अतः वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि राजा विद्वान् के तुल्य मन्त्रोक्त व्यवहार को सिद्ध करे ॥ ३० । २२ ॥

[पूर्वापराध्यायार्थसंगतिमाह—]

अस्मिन्नध्याये परमेश्वरस्वरूपराजकृत्ययोर्वर्णनादेतदर्थस्य पूर्वाध्यायेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम् ॥ ३० ॥

इस अध्याय में परमेश्वर के स्वरूप और राजा के कृत्यों का वर्णन होने से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के साथ संगति है; ऐसा समझें ॥ ३० ॥

इति श्रीयुतपण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते दयानन्दयजुर्वेदभाष्य-भास्करे
त्रिंशोऽध्यायः सम्पूर्णः ॥

* ओ३म् *

आर्य्य-समाज के नियम

१—सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।

२—ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र, और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

३—वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है।

४—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

५—सब काम धर्मानुसार, अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके, करने चाहियें।

६—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७—सब से प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्त्तना चाहिये।

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से संतुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये, और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें॥

वेद है कल्याणी वाणी, सर्वज्ञ भगवान की।
जिसके अर्थज्ञान में है, पहुँच अनूचान की॥
शुद्ध अन्तःकरण जिसका तपस्वी होवे महान।
पक्षपात करे नहीं, विद्वानों में पावे मान॥
ऋषि पद पाया जिसने करके पूरा ब्रह्म ज्ञान।
विद्या बुद्धि शुद्ध जिसकी, उसको अनूचान जान॥
बन के अनूचान समझा, वेद दयानन्द ने।
सत्य का प्रकाश किया, पड़े थे सब अन्ध में॥
विश्व भर को आर्य करना वेद का आदेश है।
पढ़ो वेद, जानो ब्रह्म, "दयानन्द-सन्देश" है॥